d by Arya Samaj Foundation Chennai and eG

# नवजागरणकालीन पत्रकारिता और भारत

नंददुलारे वाजपे

R
८१
वा।7-1- न

ANAMIKA

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नवजागरणकालीन पत्रकारिता और भारत

नंददुलारे वाजपेयी

2

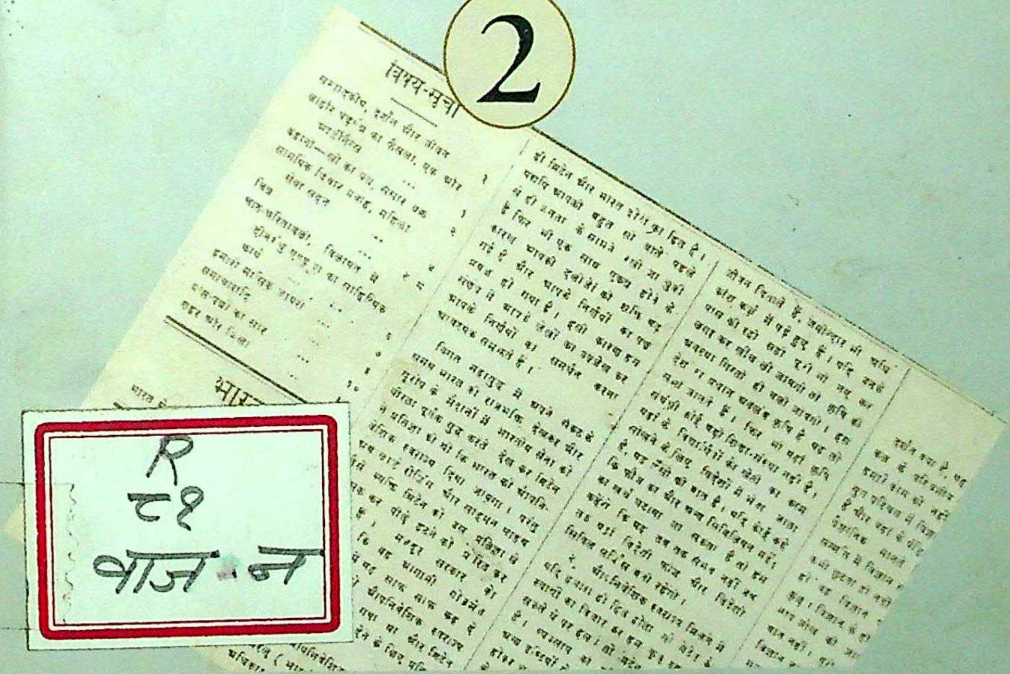

R
८१
वाज.न

संकलन एवं संपादन

कृष्णदत्त शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
८१
वाज-न

143280

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी बिश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 891 राज-न

आगत संख्या 143280

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

143280

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नवजागरणकालीन पत्रकारिता और *भारत*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नवजागरणकालीन पत्रकारिता और भारत

2

नंददुलारे वाजपेयी

*संकलन-संपादन*

कृष्णदत्त शर्मा

143280

143280

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि.
4697/3, 21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002
दूरभाष : 23281655, 23270239 फैक्स : 011-27868035
E-mail : anamikapublishers@yahoo.co.in

R
७१
वाज-न

प्रथम संस्करण : 2008
© कमल वाजपेयी
आई.एस.बी.एन. 978-81-7975-189-3
आई.एस.बी.एन. 978-81-7975-187-9 (सेट)

भारत में मुद्रित

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., 4697/3, 21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 द्वारा प्रकाशित। शिवानी प्रिंटर्स, दिल्ली 110085 द्वारा शब्दांकित, नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली 110032 में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अनुक्रम


आरंभ 453
वाइसराय का भाषण 454
हिंदी की पढ़ाई के संबंध में विश्वविद्यालयों के ध्यान देने योग्य बातें-2 455
चटगांव 457
गांधी सप्ताह और खादी 459
रेलवे में सुधार 460
हिंदी की पढ़ाई के संबंध में विश्वविद्यालयों के ध्यान देने योग्य बातें-3 460
हमारे किसान 463
हिजली कांड 466
सैनिक कॉलेज 466
बैंकिंग रिपोर्ट 467
द्विविधा क्यों? 468
नए टैक्सों का बोझ 470
मंगल कामना 472
गांधीजी का रुख 473
कच्चा चिट्ठा 475
छिपे छिपे 478
मुस्लिम राज्य की कल्पना 480
हिंदी के क्षेत्र में बाबू जैनेंद्र कुमार-1 481
प्रमाण क्या है? 483
सेना आवश्यक नहीं 485
अछूतों के प्रतिनिधि 486
हिंदी के क्षेत्र में बाबू जैनेंद्र कुमार-2 486
शक्ति संचय 488
महात्माजी की विजय 491
कोई आशा नहीं 491
राष्ट्रीय-मुस्लिम कॉन्फ्रेंस 494
किसान सत्याग्रह और सरकार 496
विलायती चुनाव 498
नए चुनाव और भारत 499
*संन्यासी* और *राक्षस का मंदिर* (समालोचना-1) 501
उद्देश्य की सिद्धि 503
*संन्यासी* और *राक्षस का मंदिर* (समालोचना-2) 506
दीपावली 508
नए टैक्स 510
बौद्ध जागृति 511
स्व. पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री 513
अभिनय या सार 514
संरक्षण 516
अछूत 519
कर बिल की शिक्षा 521
समाज सुधार का सवाल-1 522
गोलमेज का अंत 524
इलाहाबाद जिले के किसान 526
समाज सुधार का सवाल-2 527
ज्ञान की महिमा 529


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समाज सुधार का सवाल-3 532
क्या मिला? 534
बीसवीं सदी की ओर 537
फिर तूफान 540
यू.पी. आर्डिनेंस 543
हिंदी के विकास में बाधा 545
घटनाचक्र 547
मिस्टर चर्चिल 549
गांधी आएं, तब 550
कानून का नैतिक प्रभाव 552
हिंदी साहित्य सम्मेलन-4 552
महर्षि का जन्मदिवस 556
स्वागत, महात्मा 556
आर्डिनेंसों का उपयोग 558
अद्‍भुत और भयानक 559
हिंदी साहित्य सम्मेलन-5 561
राय कृष्णदास का कथासाहित्य-1 562
आतंक युग 564
राय कृष्णदास का कथा साहित्य-2 566
राय कृष्णदास का कथा साहित्य-3 570
संपूर्ण परिस्थिति 572
रूप 575
विधान का काम 579
राय कृष्णदास का कथा साहित्य-4 582
यूरोप की परिस्थिति 584
सरकार का रुख 587
वाइसराय का भाषण 587
आर्डिनेंसों की सख्ती 591
चीन-जापान संघर्ष 593
*गंगा* का वेदांक 596
*बाल सखा* का विशेषांक 596
निरस्त्रीकरण सम्मेलन 597
मालवीयजी का पत्र 599
ब्रह्मावर्त का ब्राह्मण कुल 599
मालवीय दिवस 602
आर्थिक संकट 604
समझौता क्यों नहीं? 605
काश्मीर 607
और हैदराबाद 608
*जागरण* 609
मौलाना शौकत अली 609
आंदोलन काफी नहीं हैं 610
मताधिकार कमेटी 611
साहित्य और जीवन का संबंध स्थापित करने की सीमा का निरूपण 612
आर्थिक अवस्था और राजनीति 615
चीन की राष्ट्रीय जागृति 617
शांति का प्रस्ताव 618
सम्मान 621
निरस्त्रीकरण का भविष्य 621
हिंदू समझौता 623
सर सेमुएल होर का भाषण 624
एकेडेमी का जलसा 625
साहित्यकार का सदाचार-1 626
हिंदुस्तान एकेडमी 629
कैसी "आत्मकथा" साहित्य का अंग है 631
सरकारी बजट 633
स्वदेशी का प्रचार 635
आर्डिनेंसों का व्यवहार 637
सर शाह मुहम्मद सुलेमान 639
साहित्यकार का सदाचार-2 640
होलिकोत्सव 643
होली और स्वदेशी 645
मताधिकार 645
डी. विलेरा का उदय 648
साहित्यकार का सदाचार-3 648
मुस्लिम मत 651

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| | | | |
|---|---|---|---|
| एकेडेमी का प्रतिवाद | 653 | महाकवि गेटे की जयंती | 698 |
| व्यापार संघ की बैठक | 654 | आर्डिनेंस-राज्य | 704 |
| स्वदेशी से शंका | 656 | शराब से लाभ | 707 |
| पं. पद्मसिंह शर्मा का देहावसान | 657 | साकेत-1 | 710 |
| प्रेमचंदजी का परितोष | 658 | कृषि और उद्योग-धंधा | 712 |
| कांग्रेस अधिवेशन | 660 | साकेत-2 | 715 |
| लॉयड जार्ज का मत | 662 | मताधिकार रिपोर्ट | 718 |
| व्यापार में बाधा | 663 | साकेत-3 | 721 |
| गोली कांड की जांच | 665 | सांप्रदायिक रक्तपात | 724 |
| गोस्वामीजी का एक रूपक | 666 | चतुर्वेदीजी का भाषण | 726 |
| ब्रिटेन की आर्थिक नीति | 669 | जेल में तंगी? | 727 |
| चेतावनी | 671 | और यह क्या? | 729 |
| मि. फजलुल हक की निराशा | 672 | साकेत-4 | 729 |
| व्यावसायिक सत्व का निर्णय | 672 | यूरोप की समस्या | 733 |
| सीमाप्रांत में सुधार | 674 | हिंदी का विकास | 735 |
| सर लुइस स्टुअर्ट और मुसलमान | 675 | *रंगीला* | 736 |
| शांति की आवश्यकता | 675 | यू.पी. मद्य पालिसी | 736 |
| मौलाना का विवाह | 677 | दो प्राचीनों का देहावसान | 738 |
| काश्मीर | 677 | लूसेन और ओटावा | 739 |
| जापान और ब्रिटेन | 678 | साहित्य और सदाचार-1 | 742 |
| ओटावा सम्मेलन | 679 | हिंदी संपादक-सम्मेलन-1 | 745 |
| कैदियों का श्रेणी-विभाजन | 681 | रत्नाकरजी का स्वर्गवास | 748 |
| भारत-मंत्री का भाषण | 681 | रंग बदला | 749 |
| चर्चिल-वचनम् | 683 | अब आगे | 751 |
| आर्डिनेंसों का भविष्य | 684 | दुबारा आर्डिनेंस | 754 |
| आचार्य द्विवेदी की 62वीं वर्षगांठ | 686 | यूरोप | 756 |
| आर्थिक व्यवस्था का नमूना | 687 | इंदौर पत्रकार सम्मेलन | 757 |
| अछूतों की मांग | 689 | ग्वालियर लाठी चार्ज | 758 |
| प्रचारक प्रवृत्ति | 690 | 'प्रसाद' 'निराला' 'पंत' (कुछ विकास रेखाएं)-1 | 759 |
| भाई परमानंद का भाषण | 692 | असहयोग | 762 |
| सांप्रदायिकता और अनुदारता | 692 | लूसेन परिषद और आगे | 765 |
| नेक सलाह | 695 | सौ श्रेष्ठ पुस्तकें | 767 |
| साकी बनने की साध | 697 | फरक क्या है? | 768 |
| आचार्य द्विवेदी का 'कृतज्ञता ज्ञापन' | 697 | | |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| | | | |
|---|---|---|---|
| संपादक सम्मेलन का कार्यक्रम | 771 | श्री सुमित्रानंदन पंत-1 | 825 |
| 'प्रसाद' 'निराला' 'पंत' (कुछ विकास रेखाएं)—2 | 771 | ओटावा का निर्णय | 829 |
| मनोरंजन | 774 | *विशाल भारत* का पद्मसिंह अंक | 830 |
| गोलमेज का मर्म | 777 | स्वर्गीय पं. नाथूराम शंकर शर्मा | 831 |
| नई नीति | 778 | श्री सुमित्रानंदन पंत-2 | 832 |
| 'सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें' और *सत्यार्थ प्रकाश* | 780 | भविष्य की गतिविधि | 835 |
| 'प्रसाद' 'निराला' 'पंत' (कुछ विकास रेखाएं)-3 | 780 | श्री सुमित्रानंदन पंत-3 | 837 |
| हिंदी संपादक सम्मेलन-2 | 783 | हिंदू-महासभा का कार्य | 840 |
| पं. जवाहरलाल नेहरू से भेंट | 788 | नया आर्डिनेंस बिल | 842 |
| सांप्रदायिक फैसला | 789 | व्याकरण का भविष्य | 843 |
| अनावृष्टि | 792 | वाइसराय के भाषण का सार | 843 |
| *कुमार* | 792 | कांग्रेस के बिना कठिनाई | 846 |
| निराला | 793 | जर्मनी का क्रांतिकारी प्रस्ताव | 848 |
| ओटावा सम्मेलन | 796 | द्वितीय पंचवार्षिक कार्यक्रम | 849 |
| मिस्टर गजनबी और मुहम्मद गजनी | 799 | जापान और भारत | 850 |
| 'निराला' और 'पंत' | 799 | महात्माजी का निर्वाण-व्रत | 852 |
| तिलक-जयंती | 803 | बर्नार्ड शा का प्रवचन | 854 |
| साहित्यिकों के आदर्श का निर्णय | 806 | राजनीतिक कैदियों की स्थिति | 855 |
| सांप्रदायिक विवाद | 809 | जरमनी का राष्ट्रीय जागरण | 855 |
| खींचतान | 811 | क्या यह आत्महत्या है? | 858 |
| क़िसकी बात मानी जाये | 814 | हिंदू पूजा़ पद्धति | 860 |
| अमेरिका-जापान का संघर्ष | 815 | विरोधियों का भ्रम | 861 |
| महामंडल की डाइरेक्टरी | 816 | गांधी की अमृत वाणी | 864 |
| हिंदुस्तानी और बाबू शिवपूजन सहाय | 817 | ईश्वर से लड़ाई | 864 |
| ग्वालियर सम्मेलन | 817 | विरोधियों को नहीं मित्रों को प्रभावित करना है | 865 |
| ऊधो आ गये | 820 | न्याय की तुला पर | 866 |
| द्विवेदी-मेला | 822 | प्रेरणा | 866 |
| श्रीकृष्ण जन्म | 823 | सफल व्रत | 867 |
| सुनवाई नहीं होगी | 824 | श्री केलकर का भाषण | 869 |
| क्या यहीं अटक जाएं? | 825 | महात्माजी का मत | 870 |
| | | अनमोल अवसर | 870 |
| | | सस्ता सौदा | 873 |
| | | वर्तमान धर्म | 873 |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| | | | |
|---|---|---|---|
| विजयादशमी | 876 | भारत के प्रतिनिधि | 894 |
| संपादकजी की हरिगीतिका | 879 | प्रयाग की स्वदेशी प्रदर्शनी | 895 |
| हिंदू-मुस्लिम उद्योग | 879 | दीवाली | 895 |
| निरस्त्रीकरण क्यों नहीं? | 881 | ब्रिटिश भारत का व्यापार | 896 |
| श्री जयकर का बयान | 881 | प्रेस-जगत का विस्मय | 897 |
| प्रेमचंदजी का साहित्य-1 | 882 | *प्रसादजी के दो नाटक* | 898 |
| राष्ट्रसंघ की खरी बातें | 884 | प्रयाग सम्मेलन | 901 |
| कमाल पाशा का कमाल | 886 | सर अली इमाम का स्वर्गवास | 903 |
| *कल्याण* का ईश्वरांक | 887 | साहित्य में सरल का अर्थ | 904 |
| प्रेमचंदजी का साहित्य-2 | 887 | सेकेंड चैंबर | 907 |
| राजनीतिक अवस्था | 890 | मजदूर दल का बायकाट | 908 |
| डॉक्टर इकबाल का रुख | 891 | वास्तविक 'रत्नाकर' | 909 |
| जागरण | 892 | अवसर-ग्रहण | 912 |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आरंभ

समाचार था कि ब्रिटेन की भूमि में पैर रखने के पहले महात्मा गांधी मोह का अनुभव कर रहे थे और शिथिल इंद्रिय (Nervous) हो रहे थे पर वहां पहुंचते ही उन्होंने अमेरिका को जो दिव्य संदेश भेजा और उसके बाद संघ योजना समिति में जो अतिसंवादी भाषण किया उससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि *गीता* के अठारह अध्याय शीघ्र ही समाप्त हो गए हैं और गांधीजी ने प्रकृतिस्थ होकर 'इदानामास्म संवृतः' का परिचय देते हुए कार्यारंभ कर दिया है। सहयोगी *आज* के संपादकीय लेख में इसे उद्योग पथ का आरंभ कहा गया है और मानो ऐसा कहकर आगामी युद्धपथ का संकेत किया गया है। पर संसार को शांतिपर्व की उत्कट आवश्यकता हो रही है, वह उसे अविलंब प्राप्त करना चाहता है और इस बीच में *महाभारत* की पुनराःवृत्ति को प्रत्येक प्रयत्न करके बचाना चाहता है। पिछले समस्त उद्योगों और सत्याग्रह संग्राम के बाद भारत में अब भी महाभारत छिड़ने की आवश्यकता बनी ही है, ऐसी कटु कल्पना हम नहीं करना चाहते। महात्मा गांधी ने मनुष्य जाति के चिरकालीन लड़ने-कटने की पशुवृत्ति को भयानक बतलाते हुए संसार को भारत से सबक सीखने की सलाह दी है और अहिंसा के दिव्य कवच की महिमा सुनाई है। हमारी आशा और कामना यह है कि गांधीजी के इस नयनांजन से संसार की आंखें खुलें, लीग ऑफ नेशंस अहिंसा की ज्योति में संसार का उज्ज्वल भविष्य देख सके और अपने आगामी अधिवेशन में निरस्त्रीकरण की योजना को सफल बनाकर क्षुब्ध संत्रस्त और असहाय किंतु भगवान की सर्वप्रिय विभूति इस अत्यंत मूल्यवान मनुष्य जाति की प्राणरक्षा कर ले। यही शांति की वीणावाणी महात्माजी ने ब्रिटेन को भी सुनाई है। अत्यंत विनोदप्रिय अभिरुचि का परिचय देते हुए गांधीजी ने ब्रिटेन से भारत के साथ न्याय करने का आग्रह किया है। ब्रिटेन अपना आय-व्यय का ब्यौरा बना रहा है पर वह तब तक शुद्ध नहीं बन सकता जब तक भारत का हिसाब बेबाक न कर दिया जाए। इस न्याय की प्रेरणा केवल इतने ही से नहीं की गई, गांधीजी ने बड़े ही रस पूर्ण शब्दों में प्रेम की उस रेशमी ग्रंथि का उल्लेख किया है जिसमें बंधकर प्रेमी और प्रेमिका मुक्ति पाते हैं और उन्होंने ब्रिटेन को भारत के साथ उसी ग्रंथि में बंधने को आमंत्रित किया है। यह किसी सुखांत नाटक की बड़ी ही सरस और मनोहर कल्पना-सी जान पड़ती है। आशा है ब्रिटिश जाति अपने ऊपर रसभंग करने का लांछन नहीं लगने देगी।

गांधीजी की शांति की मंजुलवाणी की लय में प्रीति काव्य की सरसता का ही संयोग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है, भारतीय संत और महात्मा के उपयुक्त बड़ी ही सुंदर दार्शनिक दृष्टि भी है। महात्माजी कहते हैं कि कांग्रेस ने दो पूर्ण स्वाधीन प्राणिसमूहों के संगम की कल्पना की है, वही उसके पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव का अर्थ है। पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ केवल संबंध विच्छेद करने वाले संदेहवादियों की समझ की बलिहारी है, उन्हें भारत के इस महात्मा की दिव्यदृष्टि पर विचार करना ही होगा। भारत की यह अत्यंत प्राचीन भावना है कि ज्यों-ज्यों स्वाधीनता बढ़ती है त्यों-त्यों संघर्ष घटता है और पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर सारे द्वंद्व दूर हो जाते हैं। यह पूर्ण स्वाधीनता भारतीय दर्शन के अनुसार संगम की अभिलाषी होती है, परम से मिलकर मुक्ति पाती है। गांधीजी भी पूर्ण स्वाधीनता की इसी संगमोन्मुख अभिरुचि का संदेश सुनाते हैं और इस प्रकार संसार के सामने भारत की एक बड़ी ही मार्मिक विचार-परंपरा को नवीन रूप में रखते हैं। आशा है, सभ्य संसार इस ओर ध्यान देगा।

यदि संक्षेप में कहना हो तो हम कहेंगे कि महात्माजी का कार्यारंभ अर्जुन के युद्धारंभ की भांति अत्यंत सचेत प्रकृति और व्यवस्थित बुद्धि के साथ हुआ है। प्रणाली भेद के कारण यह युद्ध कुछ लोगों को युद्ध के पूर्व का उद्योगमात्र जान पड़ता है पर अहिंसा के अस्त्र की सच्ची सार्थकता तो इसी में है कि विपक्षी दल भी हिंसा का त्याग कर दे। आज संसार के सामने महात्माजी ने अपने युद्ध की धार्मिकता और लोकहितैषिता को प्रकट करके दिखलाया है। भारत की प्राचीन अहिंसा का यह नवीन संस्करण संसार में अवश्य अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। प्रेम और श्रेय का यह मणि-कांचन है। इससे बढ़कर और कुछ नहीं मिल सकता। प्रेसीडेंट हूभर के ऋण माफी का ऐलान गांधीजी के दिव्य संदेश के सामने छोटी सी राजनीतिक क्रिया मात्र दीख पड़ती है। जर्मनी पर की गई दया केवल दया का व्यंग्य समझ पड़ती है। आज महात्मा गांधी ने संसार के सामने एक विश्वव्यापी समस्या और उसका समाधान उपस्थित कर संसार को चकित कर दिया है और आज गांधीजी की ओर सचेत संसार का अधिकांश आकर्षित हो रहा है। कौन कह सकता है कि भारत की इस मुक्ति प्रणाली में सारे संसार की मुक्ति अंतर्निहित नहीं है और आश्चर्य नहीं यदि गांधीजी को इस शांति की वीणावाणी में ही संसार के आनंद का स्थायी स्वर सुन पड़े। हमारी हार्दिक कामना इसके अतिरिक्त दूसरी हो ही क्या सकती है?

## वाइसराय का भाषण

परसों असेंबली में वाइसराय का जो भाषण हुआ उसे हम भारत के लिए निराशाजनक कहेंगे। देश की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति के संबंध में लार्ड विलिंग्डन महोदय ने जो विचार प्रकट किए वे आज से कई वर्ष पहले प्रकट किए जाते तो सामयिक होते। हिंदुस्तान का प्रायः प्रत्येक अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ यह पुकार-पुकारकर कह रहा है कि रुपए की वर्तमान दर ब्रिटिश व्यापार के फायदे के लिए है, उसे घटाकर एक शिलिंग 4 पेंस करना चाहिए पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वाइसराय महोदय निहायत असमंजसरहित तरीके से कहते हैं कि किसी को यह भ्रम न हो कि हमारी सरकार रुपए की दर घटाना चाहती है। वाइसराय महोदय जिसे भ्रम बताकर दूर करना चाहते हैं वह भारतीय दृष्टि से एक अत्यंत आवश्यक और सजीव समस्या है। जब इस प्रकार का दृष्टि भेद है तब भारत और ब्रिटेन के बराबरी के अधिकारों का खूब निर्वाह हो सकेगा। इसी प्रकार राजनीतिक स्थिति के संबंध में भी वाइसराय महोदय ने बड़ी ही द्विविधाजनक भाषा का प्रयोग किया है। अनुमान किया जाता है कि ब्रिटेन की नई अनुदार दल की 'राष्ट्रीय सरकार' के शासनारूढ़ होने का यह बुरा प्रभाव पड़ा है पर हमें भय है कि इस प्रकार की मनोवृत्ति भारत के असंतोष को बढ़ावेगी जिसका असर गोलमेज सम्मेलन पर अच्छा नहीं पड़ेगा। वाइसराय महोदय ने भारत के अर्थकष्ट का उल्लेख किया है पर उसके दूर करने के तरीके नहीं बतलाए। वे पीछे प्रकट किए जाएंगे पर यदि वाइसराय महोदय अपने वेतन का कुछ अंश कम करने की उदार घोषणा करते तो समस्या थोड़ी-बहुत सुलझती। उन्होंने ऐसी घोषणा नहीं की। जब मुखिया की यह हालत है तो उनके सहकारियों को क्या पड़ी है कि वे अपने वेतन कम करने को तैयार होंगे।

## हिंदी की पढ़ाई के संबंध में विश्वविद्यालयों के ध्यान देने योग्य बातें—2

पुराने कायदे के कॉलेजों में प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ विद्वान नहीं रहते थे क्योंकि कॉलेज बहुत थे और विद्वान थोड़े। इन कॉलेजों को तोड़कर आधुनिक विश्वविद्यालयों की रचना करने का एक विशेष उद्देश्य यह था कि उच्च कक्षा के विद्यार्थी अच्छे से अच्छे पंडितों के संपर्क में आवें और ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त करें। पर अफसोस का मुकाम है कि हिंदी की पढ़ाई में इस नवीन क्रम से अब तक कोई लाभ नहीं उठाया गया। एक उदाहरण ले लीजिए, हिंदी साहित्य सम्मेलन कोई शिक्षा संस्था नहीं है तथापि उसके द्वारा परीक्षाएं ली जाती हैं और उपाधियां दी जाती हैं। यद्यपि सम्मेलन के अधिकारी वक्त-बेवक्त यह कहते रहते हैं कि उनका मुख्य लक्ष्य जनता में हिंदी प्रचार करना है और सम्मेलन का प्रकाशन विभाग भी इस बात की खास निगरानी रखता है कि जितनी पुस्तकें छपे सब साधारण लोगों के लायक हों, तथापि परीक्षा लेने में वह खास दिलचस्पी रखता है, और अपनी उत्तमा परीक्षा का स्टैंडर्ड एम.ए. के बराबर बतलाता है। यह बड़ी ही अद्‌भुत परिस्थिति है कि एक ओर तो सम्मेलन अपनी राजनीतिक खातिरदारी कायम रखने के लिए जनता की संस्था बने रहने का मोह नहीं छोड़ता और दूसरी ओर वह साहित्यिक उत्कर्ष में एम.ए. से कम की बात नहीं करता। इस तरह जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाने की कोशिश की जाती है, सो भी अवैतनिक कार्यकर्ताओं के द्वारा। इसी के अनुरूप मंत्रिमंडल भी बनना ही चाहिए। प्रधानमंत्री एक वकील और राजनीतिक कार्यकर्ता हैं। परीक्षा मंत्री एक अच्छे विद्वान और साहित्य मर्मज्ञ हैं और साहित्य मंत्री एक ऐसे महानुभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं जो प्राचीन साहित्य की जानकारी के नाते थोड़े दिनों तक स्वर्गीय लाला भगवानदीन के शिष्य रह चुके हैं और नवीन साहित्य की जानकारी के नाते भी सम्मेलन के किसी अधिवेशन में एक लेख पढ़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त उनका परिचय कैसे दिया जाए यह हमें मालूम नहीं है, शायद यह कहना भी संगत होगा कि सम्मेलन की ओर से जिस प्रकार की पुस्तकें निकालने का ऐलान किया गया है, उसका श्रेय भी आपको ही है। इस प्रकार यह खिचड़ी सम्मेलन भयानक अर्थाभाव के होते हुए भी निहायत गए-गुजरे प्राइवेट तरीके से परीक्षाएं लेता है, फिर भी यह कहने का साहस करता है कि हमारे 'साहित्यरत्न' और विश्वविद्यालयों के एम.ए. दोनों ही बराबर हैं।

बीसवीं सदी के नवीन से नवीन अनुभवों के द्वारा संघटित और संचालित विश्वविद्यालय इस व्यंग्य को कब तक बर्दाश्त करते रहेंगे। यह उन्हीं के जवाब देने की बात है। आश्चर्य तो यह है कि सम्मेलन की साहित्यरत्न उपाधि के लिए बहुत से एम.ए. पास उम्मीदवार भी मौजूद रहते हैं और कुछ तो ऐसे भी देखने में आते हैं जो बी.ए. 'विशारद' और एम.ए. 'विशारद' तक की पूंछ लटकाए रहते हैं। इस सत्य को तो स्वीकार करना ही होगा कि जहां तक पाठ्यविषयों और पुस्तकों की सूची का संबंध है, 'साहित्यरत्न' और एम.ए. में विशेष अंतर नहीं है। पर ये ऐसी बातें हैं जो विश्वविद्यालयों के हिंदी-विभागों के लिए अत्यंत अनिवार्य रूप से विचारणीय हैं। बी.ए. तक की पढ़ाई में विद्यार्थियों के 12-14 वर्ष क्या इसीलिए नष्ट किए गए कि हिंदी में एम.ए. पास कर लेने के बाद वह एक अर्द्ध राजनीतिक, अर्द्ध साहित्यिक, अर्थहीन अज्ञातलक्ष्य संस्था के द्वारा परीक्षित पुराने टोलों (संस्कृत पाठशालाओं) की प्रणाली में दो-चार वर्ष रहकर शिक्षा प्राप्त उपाधिधारी की ही कोटि का समझा जाए। क्या विश्वविद्यालयों के लिए यह जवाबदेही की बात नहीं है कि विद्यार्थियों की आयु और जनता के अर्थ का इस प्रकार अपव्यय कर एम.ए. का जो ढांचा खड़ा किया गया वह कुछ भी स्पृहणीय नहीं हुआ। तब वे अपने अस्तित्व की सार्थकता किस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं तथा भविष्य में अपनी ओर लोकरुचि को कैसे आकर्षित कर सकते हैं?

विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग यदि अपने पाठ्यक्रम की ओर ध्यान दें तो वे देखेंगे कि वह बहुत ही त्रुटिपूर्ण है। कुछ मोटी-मोटी गलतियां तो असानी से ताड़ी जा सकती हैं। हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में जो कुछ, गद्य, पद्य, व्याकरण, भाषा-विज्ञान, समालोचना आदि आदि हैं सब एम.ए. स्तर के रखे गए हैं। सब मूल-पुस्तक पढ़ाई जाती हैं और दोहा-चौपाइयों का अर्थ बतलाने में ही अधिक से अधिक समय बिताया जाता है, इसका अर्थ यह होता है कि आपने हिंदी का मुंह देखा हो या नहीं, एम.ए. के दो वर्षों में उसके पारंगत बन सकते हैं। विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग ऐसे छात्रों को भी एम.ए. में भर्ती कर लेते हैं जिन्होंने बी.ए. तक हिंदी से कोई मतलब नहीं रखा। अर्थात् विकासक्रम का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। दो वर्षों में ही हजार वर्षों के विस्तृत और व्यापक साहित्य के अंग-प्रत्यंग का परिचय और परिज्ञान कराया जाता है जो किसी तरह संभव नहीं। उचित यह है कि स्कूली दिन से लेकर बी.ए. तक पहुंचते-पहुंचते हिंदी के विद्यार्थी को साधारणतः सब मूल ग्रंथ पढ़ा दिए जाएं और व्याकरण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समालोचना, साहित्यिक इतिहास तथा सामान्य भाषा विज्ञान का बोध भी करा दिए जाएं। एम.ए. में भाषा और साहित्य संबंधी ऊंची समीक्षा, भारतीय इतिहास की कला और संस्कृति पक्ष का अध्ययन, अंग्रेजी के समीक्षा-सिद्धांतों का ही नहीं उसकी प्रमुख समीक्षा पुस्तकों का परिचय, आधुनिक साहित्य की गतिविधि के प्रति विशेष सतर्कता आदि शिक्षा क्रम में सम्मिलित होने चाहिए। संस्कृत के समस्त साहित्य समीक्षा संप्रदायों की जानकारी के साथ आधुनिक मनोविज्ञान का परिचय भी अपेक्षित होगा। भारतीय समाजशास्त्र के सात्विक और ऐतिहासिक अध्ययन से ही साहित्य की राष्ट्रीय और जातीय विशेषताओं का पता लगेगा। प्रधान-प्रधान धार्मिक, राजनीतिक आदि आंदोलन के पुरस्कर्ताओं और नेताओं के संदेश, उपयोगी जीवन गाथाएं आदि भी जाननी होंगी। यह अध्ययन-पक्ष हुआ। इसके अतिरिक्त दूसरा निर्माण पक्ष है। अंग्रेजी पढ़ने वाले हिंदुस्तानी एम.ए. को इस निर्माण पक्ष की आवश्यकता उतनी नहीं है जितनी हिंदी के एम.ए. का है। इसलिए एम.ए. में हिंदी पढ़ने वालों को सामयिक साहित्य से अधिक से अधिक परिचय प्राप्त करना चाहिए। यह युग अंतर्राष्ट्रीय विचार-विनिमय का है। अतः हिंदी के विद्यार्थियों को अंग्रेजी साहित्य की सामयिक गति और उसकी समीक्षाओं का अध्ययन करना लाभदायक सिद्ध होगा और हिंदी एम.ए. के पाठ्यक्रम में उसे भी स्थान मिलना चाहिए। मौजूदी शिक्षा क्रम यह है कि भारी भरकम बोझ लदा दीख पड़ता है पर सार कुछ भी नहीं है। विश्वविद्यालयों को इसी सार की ओर विशेष रीति से ध्यान देना पड़ेगा तभी वे हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्था के व्यंग्य का प्रतिकार कर सकेंगे। इसके लिए शिक्षकों को अपने-अपने विषयों का विशेषज्ञ होना परम आवश्यक होगा, नहीं तो आज की हालत यह है कि संपूर्ण समय का 60 या 70 प्रतिशत मूल पुस्तकों का अर्थ बतलाने में व्यय होता है और शेष के अधिकांश में भी लिखित पुस्तकों की ही पुनरावृत्ति होती है। शिक्षक स्वतंत्र रीति से कुछ भी नहीं बतलाते। फल यह होता है कि एम.ए. में पहुंचते ही हिंदी के विद्यार्थी कविता करने लगते हैं और अत्यंत मूल्यवान समय को व्यर्थ के वाग्विलास में व्यय करते हैं। आज विश्वविद्यालयों में हिंदी के विद्यार्थियों की बेफिक्री मशहूर हो रही है। यह संपूर्ण दोष शिक्षकों और शिक्षाक्रम का है।

(शुक्रवार, 18 सितंबर 1931)

## चटगांव

प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता सर पी.सी. राय के सभापतित्व में पिछले दिनों कलकत्ते के नागरिकों की एक विराट सभा हुई जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ—

> इस सभा में उपस्थित हम कलकत्ता के नागरिकों की यह निश्चित धारणा है कि चटगांव शहर और जिले में पिछले 30 और 31 अगस्त तथा 1 और 2 सितंबर को जो शोचनीय घटनाएं हुईं वे हिंदू-मुसलमानों के मनमुटाव या झगड़े के कारण नहीं हुईं, बल्कि वे कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



> थोड़े से सरकारी और गैर-सरकारी यूरोपियनों के भड़काने तथा पुलिस और कुछ स्वार्थियों की करतूत से हुई। बंगाल के एंग्लो-इंडियन समाचार और यूरोपियन एसोसिएसन के कुछ सदस्य बदला लेने और दमन करने की जो आग भड़काया करते हैं, उन्हीं की मुराद पूरी करने के लिए चटगांव का दंगा कराया गया।

संयमशील और विवेकवान नेता सर पी.सी. राय जिस सभा के अध्यक्ष थे उसमें यह प्रस्ताव पास हुआ। सभा में श्रीयुत जे. एम. सेनगुप्त और श्री गोस्वामी जैसे व्यक्ति भी उपस्थित थे। श्री गोस्वामी ने सभा में बतलाया कि चटगांव में जो नृशंस अत्याचार हुए उनका वर्णन कोई नहीं करता। तरह-तरह के भयानक-भयानक आरोप किए गए और अंत में श्री सेनगुप्त के प्रस्ताव और मौलवी मुजीबुर्रहमान के समर्थन करने पर उपर्युक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। सरकार पर जो-जो आक्षेप किए गए और जैसे-जैसे अभियोग लगाए गए हैं वे इतने विकट हैं कि उनकी ओर ध्यान देना ही होगा। हमें यह पता नहीं है कि सभा में जो बातें कही गई वे पूरी पूरी सत्य हैं या नहीं पर जब श्री गोस्वामी जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति यह कहते हैं कि चटगांव का तमाम दंगा खड़ा किया गया और यह पूछते हैं कि बंगाल के गवर्नर कहां गए हैं? तब एक बड़ी ही भयानक समस्या सामने आती है।

इन इल्जामों और अभियोगों के साथ जब हम इस बात पर भी विचार करते हैं कि चटगांव में करोड़ों की संपत्ति नष्ट हुई, मकान जलाए गए, हत्याएं हुई और यह सब विपत्ति वहां की हिंदू जनता पर ही पड़ी तब सहसा यह प्रश्न होता है कि महान ब्रिटिश साम्राज्य के शांति और व्यवस्था के उद्योग में भारत की दरिद्र जनता का अनंत धन स्वाहा हो जाता है, फिर भी क्या मनुष्य की जान-माल खतरे से खाली नहीं हैं? कानपुर के भयानक अत्याचारों के घाव तक भरे नहीं थे इस बीच में चटगांव के दंगे से वे और भी ताजे हो गए हैं और हमारी असहाय स्थिति को आंखों के सामने लाकर दिखा रहे हैं। खां बहादुर अशानुल्ला खां की आत्मा को भगवान शांति दे। क्रांतिकारियों को भगवान सुबुद्धि दे, वे नहीं जानते कि अपने कृत्यों से वे कितने बड़े हाहाकार, कितनी भयानक दर्दनाक घटनाओं के कारण बन जाते हैं, जिन्हें वे स्वप्न में भी पसंद नहीं कर सकते। हत्या पाप है पर स्वजनों की हत्या महा पाप है। कौन कह सकता है कि यदि खां बहादुर अशानुल्ला की हत्या न हुई होती तो चटगांव में इस प्रकार निरीह हिंदुओं पर हमले किए जाते, उनके प्राण संकट में डाले जाते और उनकी करोड़ों की संपत्ति लूटकर और फूंककर स्वाहा कर दी जाती। यहां हम हिंदुओं का नाम इसलिए नहीं ले रहे हैं कि हम स्वयं हिंदू हैं और हिंदुओं का उचित से अधिक पक्ष समर्थन करते हैं। पर हम हिंदुओं पर न्याय करने का आग्रह क्यों न करें जब हम देखते हैं बेचारे मूर्ख मुसलमान अपना और अपने देश का हित भूल गए हैं। यहां हिंदू नाम इसलिए भी आया है कि जिस व्यक्ति पर खां बहादुर की हत्या का अभियोग लगा है वह एक नवयुवक ब्राह्मण और हिंदू है। इसलिए इस घटना के साथ जातीयता का भाव जाग सके तो हम समझते हैं वह सर्वथा उचित होगा क्योंकि संभव है इससे हत्याकारी दल कुछ शिक्षा प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करे और अपनी अदूरदर्शिता वंद करे। संभव है, धर्मांध और उत्तेजनाशील मुसलमान भी ग्लानि का अनुभव करें और पछताएं। यों तो इस अभागे देश में हिंदू और मुसलमान दोनों पर शनिग्रह चढ़ा हुआ है, अंतर इतना ही है कि एक पर प्रकोप कम है दूसरे पर अधिक। कानपुर के पिछले खूनखराबे के बाद भी अब तक सबक नहीं सीखा गया यह शनि देव की ही महिमा है।

यह संभव नहीं था कि चटगांव के निवासियों को इतनी क्षति पहुंचने के बाद और कलकत्ते की उपयुक्त सभा में जिम्मेदार नेताओं के द्वारा लगाए गए इल्जामों के बाद सरकार दंगों की जांच न करती। फलतः चटगांव के कमिश्नर साहब को यह आज्ञा दी गई है कि वे खां बहादुर अशानुल्ला खां की हत्या के बाद सद्य होने वाली घटनाओं की जांच करें। जांच एक सरकारी अफसर द्वारा हो रही है और वह भी एक स्थानीय अफसर द्वारा। उन अफसर महोदय के संबंध में हमारा परिचय नहीं है पर साधारणतः स्थानीय अफसरों द्वारा जांच कराने का फल जनता के लिए अच्छा नहीं हुआ करता। ऐसी हालत में यदि कोई दूसरा अफसर जांच के लिए नहीं रखा जाता तो कम से कम सरकार को चाहिए कि वह उन अफसरों को चटगांव से बदलकर अन्यत्र भेज दे जिन पर दंगा भड़काने और फैलाने का इल्जाम लगाया गया है। तब भी किसी कदर गनीमत होगी।

## गांधी सप्ताह और खादी

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के घोषणानुसार आगामी 2 अक्टूबर से एक सप्ताह तक गांधी सप्ताह मनाया जाने वाला है। इस सप्ताह में खादी के प्रचार तथा उसके बेचे जाने का भली-भांति उद्योग किया जाएगा। कांग्रेस के सभापति सरदार वल्लभभाई पटेल ने अभी हाल में इस आशय की अपील भारत के कांग्रेस कार्यकर्ताओं के नाम प्रकाशित की है कि इस समय अखिल भारतीय चर्खा संघ के स्टाक में 30 लाख रुपए की खादी जमा है। इसलिए गांधी सप्ताह में खादी की खूब बिक्री होनी चाहिए जिससे संघ के माल की खपत हो। इसमें संदेह नहीं है कि महात्मा गांधी को सबसे अधिक खादी का कार्य प्रिय है और आज मुल्क में खादी का जो इतना प्रचार दिखाई दे पड़ रहा है उसका श्रेय महात्मा गांधीजी को ही प्राप्त है। इसलिए 30 लाख की खादी में अधिकांश भाग की बिक्री हो जाना कोई कठिन बात नहीं है। इसके सिवा अब यह भी सिद्ध हो गया है कि देश की आर्थिक दशा को देखते हुए भी खादी का उपयोग आवश्यक है। इसके प्रचार से देश की व्यावसायिक उन्नति भी होगी। इसलिए हम खादी प्रेमियों से यह प्रार्थना करते हैं कि वे गांधी सप्ताह में खादी की खपत होने में सहयोग दें क्योंकि गांधी सप्ताह की सफलता तभी सिद्ध होगी जब महात्माजी के प्रिय खद्दर का खूब प्रचार किया जाएगा और अधिक से अधिक तायदाद में उसकी खपत होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# रेलवे में सुधार

स्टेट कौंसिल के सामने इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित होने वाला है कि भारत की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ट्रेनों में गवर्नमेंट एक डॉक्टर का प्रबंध करे जो समय-समय पर यात्रियों के अस्वस्थ हो जाने पर उनकी दवा कर सके। वास्तव में यह प्रश्न बड़े महत्व का है। प्रायः देखा गया है कि रेलों में यात्रियों को तरह-तरह की बीमारियां हो जाती है, कहीं कोई गिर पड़ता है, किसी का अंग भंग हो जाता है तथा कभी-कभी अनेक आकस्मिक दुर्घटनाएं घटित हो जाया करती हैं। परंतु रेल में डॉक्टरों का कोई प्रबंध न होने से यात्रियों को इसके कारण बड़ी तकलीफें उठानी पड़ती हैं। उनमें कितने ही काल-कलवित भी हो जाते हैं। ऐसी दशा में ट्रेनों में यात्रियों के हित के लिए डॉक्टरों को नियुक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण है। इस समय भारत सरकार की आर्थिक दशा यद्यपि ठीक नहीं है परंतु रेलवे विभाग में इस प्रकार के सुधार की आवश्यकता भी कम महत्व नहीं रखती। यदि गवर्नमेंट ऊंची तनख्वाह वाले डॉक्टरों को नियुक्त नहीं कर सकती तो कम से कम अनुभवी कंपाउंडरों को ही फिलहाल नियुक्त करने की ओर उसे ध्यान देना चाहिए। इससे रेलवे विभाग की उन्नति ही होगी। जब सरकार ट्रेनों में सोडा लेमनेड, बर्फ आदि का प्रबंध कर रही है तब उसे एक स्वास्थ्य-सुधारक रखने में कोई विशेष अड़चन न होगी। हमें आशा है कि सरकार ऐसे महत्वपूर्ण और सार्वजनिक हितवाले प्रश्न की ओर अवश्य ध्यान देगी।

# हिंदी की पढ़ाई के संबंध में विश्वविद्यालयों के ध्यान देने योग्य बातें—3

सौ बात की एक बात यह है कि अध्यापकों में दम होना चाहिए। यह भी तय है कि ईमानदार अध्यापक आसमान से नहीं उतरेंगे, यहीं ढूंढ़ने होंगे अथवा तैयार करने होंगे। इन दोनों ही मामलों में विश्वविद्यालयों के अधिकारी और विशेषकर हमारी सरकार कंजूसी, पक्षपात और अन्याय कर रही है। उसने हिंदी के विद्यार्थियों का बाजार भाव घटा दिया है और हिंदी के अध्यापकों की कीमतें कम कर दी हैं। इसका सबसे बुरा नतीजा यह हुआ कि शिक्षा-संस्थाओं में ही नहीं, तमाम समाज में एक दूषित वातावरण तैयार हो गया है जिससे हिंदी के उदीयमान साहित्यिकों, कवियों, पत्रकारों आदि के आत्मविश्वास को चोट पहुंची है और वे एक विचित्र प्रकार की ओछाई का अनुभव करते हैं। एक अभ्युदयशील साहित्य के लिए यह वातावरण कितना भयानक है यह मनोविज्ञान का कोई भी विद्यार्थी बतला सकता है। वेतन कम करने का कुफल यह कम हुआ है कि हिंदी संसार के अच्छे-अच्छे विद्वान विश्वविद्यालयों को नहीं प्राप्त हो सके, अधिक यह हुआ है कि जो प्राप्त हुए हैं वे हिंदी-अध्यापन की उन्नति करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को प्रवृत्त नहीं हो रहे। उनका उत्साह मंद रहता है और यह अस्वाभाविक बिलकुल नहीं है, एक दृष्टि से कुछ अनुचित भले ही हो। विश्वविद्यालयों के अधिकांश और सबसे बढ़कर हमारी सरकार इस बात का गर्व न करे कि उसने कंजूसी की नीति बरतते हुए भी हिंदी के उन सभी श्रेष्ठ विद्वानों को प्राप्त कर लिया है, जो शिक्षा विभाग में आ सकते थे। हम सरकार को विश्वास दिलाते हैं कि हिंदी की ही भांति प्रत्येक विभाग के अध्यापकों का वेतन कम कर दिया जाए तब ही सभी विषयों के अध्यापक उसे प्राप्त हो सकेंगे और अध्यापक भी वे ही होंगे जो आज मौजूद हैं। सरकार चाहे तो यह प्रयोग करके देख सकती है। पर वह ऐसा नहीं करती। शायद वह अपनी नीति निर्धारित कर चुकी है। उसे इस बात की ग्लानि नहीं है कि उसकी यह नीति समाज के आत्म-विकास का ह्रास करने वाली है। पर यदि उस आत्मविश्वास की उसको परवाह नहीं है और वह इस संबंध में अपना उत्तरदायित्व नहीं समझती अथवा नहीं समझना चाहती तो कम से कम वह यह तो देखे ही कि विश्वविद्यालयों में आज कई वर्षों से जिन हिंदी विभागों की स्थापना हो चुकी है उनमें कितनी क्रमोन्नति हुई है। वह देखेगी कि जो कुछ हुई है वह अत्यंत शोचनीय है। तब उसने इस प्रत्यक्ष कर्तव्य की अवहेलना क्यों की? चर्चा चल रही है प्रयाग के सरकारी विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में रीडरशिप का पदन्यास होने वाला है। यह अच्छा संवाद है और करीब-करीब एक असाधारण घटना है। आवश्यकता इस बात की है कि अत्यंत सचेत होकर योग्य से योग्य व्यक्ति का अनुसंधान किया जाए जिससे यह सिद्ध हो कि विश्वविद्यालयों के अधिकारी और सरकार अपनी जिम्मेदारी समझती है और हिंदी की हित चिंता भी करने लगी है। दूसरे विश्वविद्यालयों को भी इस दिशा में अग्रसर होना चाहिए।

हम हिंदी अध्यापकों की अयोग्यता से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। आज विश्वविद्यालयों में हिंदी के ऐसे अध्यापक नहीं के बराबर हैं जिनके मस्तिष्क में हिंदी शिक्षाक्रम का एक सुंदर चित्र मौजूद हो। जो अल्पसंख्यक विद्वान इस क्षेत्र में हैं वे पुस्तक लेखन का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं पर यह कार्य तो वर्षों और युगों का है। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की तरह हिंदी साहित्य का अध्ययन-अध्यापन अभी बहुत दिनों तक नहीं हो सकता। हिंदी में इतनी सामग्री ही नहीं है कि अंग्रेजी के कार्यक्रम का अनुकरण किया जाए। फिलहाल हिंदी का शुद्ध साहित्यिक अध्ययन संभव नहीं है। पर हिंदी-शिक्षा के स्तर को ऊंचा करने की आवश्यकता कल से नहीं, आज से है। इसके लिए एकमात्र और परम आवश्यक उपाय यह है कि मनोविज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र, इतिहास और धर्मशास्त्र के धरातल पर हिंदी का अध्ययन प्रारंभ किया जाए। इसके साथ ही अब तक के भाषा संबंधी अनुसंधानों का पूर्ण बोध कराया जाए। समसामयिक कलाओं और संस्कृति का सामान्य परिचय भी अपेक्षित है। प्राचीन हिंदी पर संस्कृत का प्रभाव है और आधुनिक हिंदी पर अंग्रेजी आदि का प्रभाव है। आवश्यकता इस बात की है कि शुद्ध बुद्धि से इन प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए और वर्तमान गतिबोध की दिशाएं देखी जाएं। विश्वविद्यालयों के अधिकारियों को उपर्युक्त शिक्षाक्रम पर ध्यान देना चाहिए। हिंदी का स्टैंडर्ड सुधारने का यह एक अव्यावहारिक कार्यक्रम नहीं है। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विश्वविद्यालयों में हिंदी की दशा सुधरेगी और सामान्यतः हिंदी साहित्य की उन्नति की भी प्रेरणा प्राप्त होगी। यदि इस क्रम के अनुसार पर्याप्त संख्या में अध्यापक न मिल सकें तो विश्वविद्यालयों का यह कर्तव्य है कि वे अपने अन्य विभागों के अध्यापकों को हिंदी विभागों के लिए उधार देने की रीति चलावें। जिस तरह (Extension Lectures) की रीति प्रचलित है उसी तरह यह रीति भी चलनी चाहिए। जब भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में परस्पर अध्यापकों का देन-लेन प्रारंभ हो रहा है तब एक ही विश्वविद्यालय के भिन्न-भिन्न विभागों में तो यह और आसानी से हो सकता है। मध्यकालीन इतिहास के अध्यापक यदि हिंदी विभाग में जाकर थोड़े से लेक्चर दे दिया करेंगे तो विशेष हर्ज नहीं होगा और आशा है इतनी उदारता उनके अजीर्ण को दूर करने में ही सहायक होगी। इसी प्रकार उपयुक्त अन्य विषयों के अध्यापक भी कर सकते हैं। इस प्रकार का कार्यक्रम हमें तो बिलकुल व्यवहार्य जान पड़ता है। भविष्य में यह तब संभव होगा जब हिंदी-विभाग में अध्यापक इस कार्यक्रम के अनुकूल रखे जाएं। पिछले जमाने में संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने के कार्य में अंग्रेजी और संस्कृत का मणि-कांचन योग हुआ था जिससे अनेक प्रसिद्ध विद्वानों का अविर्भाव हुआ था। उसी की समयानुकूल आवृत्ति हिंदी में भी होनी चाहिए। प्रयाग विश्वविद्यालय को आज की हिंदी की रीडरशिप के लिए ऐसे ही विद्वान की खोज करनी चाहिए जो इस आवृत्ति का आचार्य बन सके।

यह तो स्पष्ट है कि ऊपर जिस शिक्षाक्रम की रूपरेखा खींची गई है वह विश्वविद्यालयों की ऊंची से ऊंची कक्षा के लिए है। उसका दिग्दर्शन करा देने के बाद हम नीची कक्षाओं की पढ़ाई की तफसील देकर विश्वविद्यालयों के संचालकों का व्यंग्य नहीं करना चाहते। एक बार ऊपर से देखना शुरू किया जाए तो हमारा विश्वास है नीचे की सब वस्तुएं आप से आप दिखाई देने लगेंगी। उन सबके आधार पर एक शिक्षाक्रम बना लेना बहुत बड़ी बात नहीं होगी। हां, उच्च कक्षाओं की शिक्षा की जो दिशा ऊपर इंगित की गई है उसका कुछ अधिक विवरण हम दे सकते हैं।

साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को ही लीजिए। आज भी एम.ए. के विद्यार्थियों को 'रस' का परिचय कराने के लिए पश्चिमी मनोविज्ञान की ओर ध्यान दिलाया जाता है। मनोविज्ञान के उन तत्वों का अध्ययन करना पड़ता है जिनका संबंध 'रस' सिद्धांत से होता है। पर इस प्रकार का अध्ययन बहुत ही सीमित क्षेत्र में संभव है। इसकी सीमा बढ़ाई जा सकती है। हमारे यहां रस से जिस अलौकिक आनंद की उपलब्धि बतलाई जाती है उस अलौकिकता से हानि भी कम नहीं हुई है। पश्चिमी मनोविज्ञान का यदि इस दिशा में प्रयोग किया जाए तो बहुत सी विडंबना दूर हो सकती है और साहित्य को अलौकिकता के बदले एक लोकसामान्य स्वरूप प्राप्त हो सकता है। यह तो एक उदाहरण हुआ वह भी मनोविज्ञान के सिद्धांत पक्ष का। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक मनोविज्ञान का भी साहित्य में प्रयोग किया जा सकता है। इस संबंध में डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठीजी कुछ ध्यान देने योग्य बातें कहते हैं। आपका मत है कि हिंदी साहित्य के रीति काल के श्रृंगारिक कवियों की परख अब तक या तो पं.-पद्मसिंह शर्मा की वाहवाही तर्ज पर हुई है अथवा गंभीर समालोचकों की 'अश्लील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है, अश्लील है' तर्ज पर। उन कवियों की संपूर्ण आलोचना इन्हीं दोनों के बीच में आकर अटक गई है और गाड़ी आगे नहीं बढ़ रही। त्रिपाठीजी कहते हैं कि इन कवियों के छंदों की आलोचना मनोविज्ञान के आधार पर होनी चाहिए। यदि कवियों में कुछ तत्व होगा तो इस प्रकार का अध्ययन ज्ञान की वृद्धि में योग देगा अन्यथा यह मालूम हो जाएगा कि उनमें कुछ भी तत्व नहीं है और तमाम झगड़ा दूर होगा। यदि सब नहीं तो दो-चार प्रमुख कवियों का विश्लेषण इस रीति से किया जाना चाहिए, विशेषकर ऐसी हालत में जब इतिहास के विद्वान त्रिपाठीजी की यह धारणा है कि बिहारी, मतिराम आदि कवि भी भक्त थे, यद्यपि साहित्य-परंपरा और लोक परंपरा से इस बात की पुष्टि नहीं होती।

(सोमवार, 21 सितंबर 1931)

## हमारे किसान

यू.पी. कांग्रेस कमेटी की कौंसिल ने प्रांत के किसानों की दशा जांचने के लिए जो पंचायत बैठाई थी उसकी रिपोर्ट छप गई है। रिपोर्ट अधिकांश में सरकारी विज्ञप्तियों और बयानों के आधार पर तैयार की गई है जिससे उसकी साख सरकार की निगाह में भी कम नहीं हो सकती। पंचायत की रिपोर्ट में किसानों की जो दर्दनाक कहानी कही गई है वह बहुतों को बहुत पहले से मालूम थी पर प्रमाण दे देने से संदेह और भी दूर हो गया। पंचायत को प्रारंभ में वही रोना रोना पड़ा है जो अभागे किसानों के प्रति सहानुभूति रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को रोना पड़ता है। अधिकांश किसान केवल खेती के ही सहारे किसी तरह जीवन धारण किए हैं, खेती ही एकमात्र अवलंब है, कोई दूसरा धंधा है ही नहीं। जनसंख्या बराबर बढ़ती ही जा रही है, जमीन उतनी ही बनी हुई है, फसल की अकसर हानि हो जाती है। ये सब वे ही पुराने दुखड़े हैं जो पंचायत के बयान से ताजा हो गए हैं। बाहर से सस्ती-सस्ती वस्तुएं आकर यहां के उद्योग-धंधों को पनपने नहीं देतीं, नष्ट कर डालती हैं। रोज ब रोज धंधे छूटते जा रहे हैं और खेतिहर बढ़ते जा रहे हैं। नतीजा वही होता है जो ऐसी अवस्था में हो सकता है। कर्ज पर कर्ज लदता चला जा रहा है। फिर भी शरीर में प्राण बराबर मौजूद हैं। संख्या में कुछ भी कमी नहीं हुई है बल्कि उन्नति ही हुई है। सच पूछा जाए तो यह सब कहानी आज की नहीं है। यह किसानों के लिए मुश्किल की बात भी नहीं है, इसे वे खूब मजे में झेल चुके हैं, झेल रहे हैं और आगे भी झेल सकते हैं। यह सब तो उनकी शांति और संतोष को आज इतने दिनों से जरा भी विचलित नहीं कर सके। लगान अदा होता आया है और साधारणतः जो स्थिति रही है वह अमन-चैन के नाम से ही पुकारी जाएगी।

अमन-चैन में थोड़ी सी बाधा तब पड़ी जब अनुष्ठान बिलकुल अशक्त हो गया। राजा को अथवा मालिक (जमींदार) लगान दे देना धर्म है यह बात किसान को बहुत पहले से सिखला दी गई है। ज्यादात्तर किसान दम रहते इस सनातन धर्म का अपालन करने की कल्पना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं करते। पर मुसीबत यह हुई कि अनाज का भाव बेहद मंदा पड़ गया और किसानों की माली हालत तबाही के दर्जे तक पहुंच गई। इस कोढ़ के साथ खाज भी पैदा हुई। सरकार ने रुपए की दर बढ़ा रखी है और बहुत रोने-पीटने पर भी वाइसराय महोदय उसमें परिवर्तन करने का भ्रम दूर करना चाहते हैं। हमारे लिए जो लाभकारी है, वाइसराय महोदय के लिए वह भ्रम है। अद्भुत विडंबना है! सरकार और जनता में कितना तफरका है यह इतने से ही समझा जा सकता है। किसानों की आवाज सरकार के कानों तक पहले तो बहुत समय तक पहुंच ही न सकी, अंत में पहुंची भी तो बहुत हल्की। इतनी उदारता दिखाई गई कि रुपए में लगभग नौ पैसे की छूट मिली। फिर भी आंदोलन किया जाता रहा। महात्मा गांधी स्वयं गवर्नर से इसी संबंध में मिले और किसानों का कच्चा चिट्ठा सुनाया। उस समय तो नहीं पर उसके बाद जब प्रांतीय व्यवस्था-सभा की बैठक हुई और सदस्यों ने जोर डाला तब दुबारा जांच शुरू की गई। इस जांच कमेटी में कुछ सरकारी सदस्य थे और कुछ बड़े-बड़े ताल्लुकेदार थे। कमेटी ने कांग्रेस की ओर से श्री गोविंदवल्लभ पंत को भी शामिल करना चाहा पर पंतजी ने उसमें शामिल होना ठीक न समझा। इस कमेटी की रिपोर्ट भी हाल में निकली है। इसकी सिफारिश से किसानों को लगान में चार आने से लेकर आठ जाने तक छूट दी जाएगी।

पर कांग्रेस-पंचायत का कहना है कि गिनती के किसानों को छोड़कर बाकी सबके पास लगान देने के लिए एक पैसा भी नहीं है। ज्यादा से ज्यादा काम करने वाले किसान भी इस समय बिलकुल खाली हाथ हैं। यहां यह शंका जरूर पैदा होती है कि जब महात्मा गांधी ने जांच के बाद यह तय किया था कि दखलकार और गैर-दखलकार किसानों को रुपए में कम से कम क्रमशः आठ आने और बारह आने अदा करने चाहिए तब यू.पी. कांग्रेस की पंचायत यह कैसे कह रही है कि किसान एक पैसा भी नहीं दे सकते। या तो महात्माजी के तख्मीने में गलती रही होगी या इस पंचायत के तख्मीने में। इधर गोरखपुर और आजमगढ़ आदि के जिलों में बाढ़ आ जाने से खड़ी फसल नष्ट हुई है और अन्यत्र भी फसल बहुत संतोषजनक नहीं हो रही। जो कुछ हो, फिलहाल प्रांतीय पंचायत का यह बयान है कि किसान किसी तरह लगान देने लायक नहीं हैं और वह सरकार का ध्यान किसानों की असमर्थता की और दिलाना चाहते हैं। महात्मा गांधी ने किसानों के लिए जो सिफारिश की थी वह श्री गोविंदवल्लभ पंत और श्री पुरुषोत्तम दास टंडन के जबानी बयान के आधार पर की थी। उस समय उन्होंने कहा था कि उनका ब्यौरा गलत हो सकता है, फिर भी औसत हालत वैसी ही बतलाई गई थी। तथापि कांग्रेस पंचायत का कहना है कि वह सरकार की पिछली कमेटी की रिपोर्ट में अच्छा ही था।

हम सरकार से आग्रह करेंगे कि वह कांग्रेस पंचायत की रिपोर्ट के केवल इसी अंश को ध्यान के साथ देखें। वह देखेगी कि पंचायत का बयान सरकारी विज्ञप्तियों के आधार पर ही लिखा गया है। यह बयान स्वयं महात्मा गांधी द्वारा की गई जांच से सहमत नहीं है, यह बात भी सरकार की निगाह में आनी चाहिए। इसलिए सरकार को इस रिपोर्ट पर और भी ध्यान के साथ विचार करना चाहिए। साथ ही, प्रांतीय कांग्रेस से भी हमारा निवेदन है कि वह अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कार्यकर्ताओं खासकर देहाती कार्यकर्ताओं को इस बात की ताकीद कर दे कि वे पंचायत की रिपोर्ट को लेकर अभी से गांव-गांव में हल्ला मचाना न शुरू कर दें। यदि अभी से यह ऐलान किया जाने लगेगा कि पंचायत ने यह ढूंढ़ निकाला है कि किसान कुछ भी लगान नहीं दे सकते तो इससे किसानों और जमींदारों में विद्वेष बढ़ने के अतिरिक्त और कोई फायदा नहीं होगा। इसलिए इस क्रिया को कम से कम तब तक रोक रखना चाहिए जब तक अंतिम सरकारी विज्ञप्ति नहीं निकल जाती। और सरकार की विज्ञप्ति निकल जाने पर भी यह बात कभी नहीं भूलनी होगी कि यह समय सब कुछ त्यागकर भी शांति बनाए रखने का है। महात्मा गांधी के विलायत जाने के बाद कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह विश्वास प्रकट किया है कि गांधीजी की गैरहाजिरी में कोई नया आंदोलन भरसक नहीं उठाया जाएगा। आशा है, हमारे यहां की प्रांतीय कांग्रेस सरकार के विश्वास को पूरा करेगी। कम से कम वह ऐसा काम तो कदापि न करेगी जिससे किसानों और जमींदारों में झगड़ा बढ़े। कांग्रेस अपने अनुभव से यह जानती होगी कि छोटे-छोटे देहातों में जमींदारों की हालत, किसानों की हालत से किसी कदर अच्छी नहीं है। राय राजेश्वरबली ने अपने पिछले महत्वपूर्ण भाषण में जमींदारों को अच्छी नसीहत दी थी। कांग्रेस को चाहिए कि वह वर्ग युद्ध से खूब बचे क्योंकि किसानों और जमींदारों का संघर्ष हिंदू और मुसलमानों के संघर्ष से किसी तरह कम भयानक नहीं है। जहां तक बन पड़े समझौते से ही काम लेने की चेष्टा की जाए। यदि कोई आंदोलन उठाना अनिवार्य ही हो, यद्यपि हम समझते हैं कि फिलहाल वह अनिवार्य नहीं है, तो भी खूब सोच-समझकर काम किया जाए और इस बात का बराबर खयाल रखा जाए कि किसानों का लगान संबंधी कोई भी आंदोलन सरकार से सीधा संबंध नहीं रखता, जमींदार से ही संबंध रखता है। पिछले महीनों में देखा भी जा चुका है कि लगान-आंदोलन से गांववालों में ही दंगे-फसाद होते हैं, सरकार केवल दूर से दृश्य देखती है। किसान-आंदोलन खड़ा करने के पहले यह संपूर्ण स्थिति अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। कानपुर और चटगांव के हिंदू-मुस्लिम दंगों की ही तरह जमींदार-किसान संघर्ष भी अपना ही नुकसान कर सकता है और अपने ही उद्देश्य की पूर्ति में बाधा पड़ सकती है। उससे बचना ही होगा। असंतोष और दरिद्रता जमींदारों में भी कम नहीं है। छोटे-छोटे जमींदारों पर तो किसानों से भी अधिक कर्ज लदा हुआ है। कुछ थोड़े-से बड़े रियासतदारों को छोड़कर सबकी हालत निहायत दर्दनाक है। अच्छा हो यदि ये सब मिलकर ही अपनी मांग पेश करें और मिलकर ही आंदोलन भी करें।

अब तक हमारे प्रांत की कांग्रेस किसानों का पक्ष लेकर ही आंदोलन कर रही है। उपर्युक्त कांग्रेस पंचायत की रिपोर्ट के एक अंश में किसानों पर किए गए अत्याचारों का विवरण है। रिपोर्ट से जान पड़ता है कि किसान बिलकुल दूध के धुले हैं। राय राजेश्वरबली का यह कथन प्रत्येक जमींदार के कान तक ही नहीं, मस्तिष्क तक पहुंचना चाहिए कि जमींदार किसानों पर जोर-जुल्म करके अपने ही हाथों अपनी कब्र खोद रहे हैं। पर कांग्रेस को तो और भी ध्यान रखकर ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे जमींदार और किसान दोनों की कब्र खुद जाए और दोनों ही मटियामेट हो जाएं।

143280

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## हिजली कांड

बंगाल पर इन दिनों विपत्तियों का जमघट आया दीख पड़ता है। भयंकर बाढ़ से पनाह नहीं मिली थी कि चटगांव में करोड़ों की संपत्ति नष्ट हुई। चटगांव के बाद ही हिजली कांड का समाचार आया है जो बड़ा ही भयानक है। हिजली जेल में पिछले दिन गोली चलाई गई जिससे श्री संतोष कुमार मित्र और श्री तारकेश्वर सेन नाम के प्रसिद्ध राजबंदी मारे गए। और कितने ही घायल हुए। कलकत्ता की एक महती सभा में श्री सेनगुप्त ने अध्यक्ष पद से उक्त हत्याकांड पर बंगाल का रोष प्रकट किया है। खबर है कि सरकार की ओर से एक जांच-कमेटी बनी है जिसमें सरकारी और गैर सरकारी आदमी रहेंगे। इसी बीच में यह खबर भी आ गई है कि बंगाल गवर्नर ने चटगांव की हिंदू सभा को जवाब दे दिया है कि चटगांव के दंगे में सरकारी अफसरों की कोई साजिश नहीं है। बल्कि उन्होंने तो दंगे को दबाने में खास मुस्तैदी दिखाई है। ध्यान देने की बात है कि जब सर पी.सी. राय, श्री सेनगुप्त और श्री गोस्वामी जैसे व्यक्ति सरकार पर खुल्लमखुल्ला इल्जाम लगा रहे हैं और सरकार की जांच कमेटी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं कर चुकी है, उसके पहले ही गवर्नर महोदय ने सफाई पेश कर दी। ऐसी अवस्था में सरकारी जांच कमेटियों से कोई विशेष लाभ होने की आशा नहीं है। हिजली कांड में जो राजबंदी मारे गए हैं और जो घायल हुए हैं वे बंगाल आर्डिनेंस के कैदी हैं। उन पर कोई इल्जाम नहीं लगाए गए और न कोई मुकदमा चलाया गया। उनका कसूर प्रत्यक्ष में इतना ही है कि पुलिस का और सी.आई.डी. का उन पर संदेह है। पर उन पर किसी प्रकार कोरे अभियोग न तो पुलिस विभाग लगा सका है और न उसका खुफिया विभाग। देश की जनता एक स्वर से इस प्रकार के अन्याय का विरोध कर चुकी है और कर रही है। राजबंदियों में से अधिकांश कांग्रेस के कार्यकर्ता रहे हैं जो कांग्रेस के अहिंसा-आदेश से बंधे रहे हैं। इस कारण हिजली हत्याकांड से जनता का रोष और बढ़ गया है और उसके उत्तेजित होने की आशंका हो रही है। यहां हम सरकार को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि न तो इस प्रकार के कांडों से और इसके बाद की गई जांच-पड़ताल से जनता का असंतोष दूर हो सकता है। ऐसी-ऐसी घटनाओं से क्रांतिकारियों को ही उत्तेजना मिलती है और कोई लाभ नहीं होता। बंगाल के जो अधगोरे अखबार सरकार से कड़ाई का व्यवहार और बदला लेने की सिफारिश करते रहते हैं, उन्हें सचेत होकर अपनी क्षुद्र बुद्धि को रोकना चाहिए। हिंदुस्तान और ब्रिटेन इस समय साधारणतः मेल-जोल की फिक्र कर रहे हैं ऐसी हालत में उनकी इस प्रकार की हरकत अत्यंत निंदनीय है।

## सैनिक कॉलेज

पिछली गोलमेज सभा की सातवीं सब-कमेटी की प्रेरणा से भारत में सैनिक कॉलेज की स्कीम बनाने के लिए जो कमेटी नियुक्ति हुई थी उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। इस कमेटी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अध्यक्ष थे कमांडर इन चीफ सर फिलिप चेटवुड। यह पहले एक प्रकार से सरकारी कमेटी थी परंतु गोलमेज सभा ने इसमें 9 गैर सरकारी सदस्य और मिला दिए। रिपोर्ट में सैनिक कॉलेज के संबंध में जो सिफारिशें की गई हैं उनमें मतभेद होना अनिवार्य है। रिपोर्ट के कथनानुसार प्रति वर्ष 60 विद्यार्थी कॉलेज में भर्ती किए जाएंगे जिसमें 30 विद्यार्थी भारतीय सेना के ओहदेदारों में से होंगे। 24 के लिए प्रतियोगिता होगी और 6 विद्यार्थी कमांडर इन-चीफ साहब स्वयं चुनेंगे। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ब्रिटेन में और भारत में सैनिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों में कोई अंतर न होगा। परंतु इस प्रणाली से भारतीय सेना को सच्ची भारतीय सेना बनने में बहुत दिन लग जाएंगे। डॉक्टर मुंजे आदि नेताओं ने भारतीय विद्यार्थियों का जो अनुपात बतलाया है उसके अनुसार 30 वर्ष में भारतीय सैनिक सच्चे भारतीय कहला सकेंगे। हमारी समझ में गोलमेज कॉन्फ्रेंस की मंशा भी यही थी कि भारतीय सैनिक के रूप में परिणति हो जाए। इसके सिवा कमेटी ने विद्यार्थियों के खर्च का जो अंदाज लगाया है वह भी कुछ अधिक जान पड़ता है। तीन साल में प्रति विद्यार्थी के लिए 4,500 रुपए अर्थात् प्रतिवर्ष 1,500 रुपए खर्च होंगे। तात्पर्य यह है कि हर एक सैनिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को 125/ माहवार खर्च करना होगा। यह अमीरी अच्छी नहीं। हिंदुस्तान की हालत देखते हुए यह माहवार रकम बहुत अधिक है। साथ ही, यहां यह भी विचारणीय है कि सैनिक शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को हृष्ट-पुष्ट होना चाहिए और हृष्ट-पुष्ट विद्यार्थी साधारण कोटि में अधिक मिलेंगे, अमीर और धनी समाज में कम। इसमें संदेह नहीं है कि सैनिक शिक्षा की आवश्यकता इस समय इस देश में अधिक है। भारतीय सैनिक कॉलेज जांच कमेटी ने रिपोर्ट में जो सिफारिश पेश की गई हैं वे बहुत ही पिछड़ी हुई हैं और हिंदुस्तानियों को कभी पसंद नहीं आ सकतीं। कमेटी के गैर-सरकारी सदस्य सर शिवस्वामी ने रिपोर्ट के साथ अपना विरोधी मत प्रकट किया है और सबल तर्कों से अपना पक्ष पुष्ट किया है। सरकार को चाहिए कि वह आंखें खोलकर सर शिवस्वामी के विरोधी मत को देखे।

## बैंकिंग रिपोर्ट

बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। इस समय भारत में बैंकों की दशा बड़ी विचित्र है। देश में इतनी गरीबी फैली हुई है परंतु यहां जितने भी बैंक खुले हैं और खोले जाते हैं राष्ट्रीय दृष्टि से वे अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुए, आए दिन भारत को व्यापारिक और कृषि की उन्नति में बाधक होने का कुछ श्रेय भारत के वर्तमान बैंकों की व्यवस्था को भी प्राप्त है। किसानों के लिए कॉपरेटिव बैंक्स भी खोले गए हैं परंतु उनका कार्य भी विशेष रूप से अग्रसर नहीं हो रहा है। अन्य देशों में बैंकों की बड़ी उन्नति हो रही है और उनके द्वारा राष्ट्रीय हितों की पूर्ति अच्छे रूप में की जा रही है। विदेशी बैंकों और भारतीय बैंकों की उपयोगिता और व्यवस्था में अंतर है। भारत सरकार ने इसी आशय से प्रेरित होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी भारतीय बैंकों की जांच करने के लिए बैठाली थी कि भारतीय-व्यापार की उन्नति में वे कहां तक सहायक हैं और जो कारबार तथा व्यापार फेल हो जाते हैं उनका उन बैंकों से कहां तक ताल्लुक है। कमेटी ने जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उसकी आलोचना और उसके संबंध में पूर्ण रूप से विचार अभी यहां नहीं किया जा सकता परंतु कमेटी ने बैंकों के सुधार तथा व्यापार और कारबार की उन्नति के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं वे विचारणीय हैं। रिपोर्ट में स्वयं यह स्वीकार किया गया है कि कमेटी ने जो सिफारिश पेश की है उसे पूर्णरूपेण संपूर्ण न समझना चाहिए। फिर भी कमेटी ने जो सिफारिश की है पहले उसे काम में लाने का उद्योग करना चाहिए। तब यह ठीक-ठीक निर्णय हो सकता है कि भारतीय बैंकों की उपयोगिता कहां तक है और आगे कितनी हो सकती है।

(शुक्रवार, 25 सितंबर 1931)

## द्विविधा क्यों?

पिछले दिन जब हम देहात गए हुए थे, हमसे गांव वालों ने बहुत से प्रश्न किए जिनमें सबसे कठिन यह था कि विलायत में क्या हो रहा है? उनकी यह शिकायत थी कि पत्रों में इस संबंध के जो लंबे-चौड़े बयान निकलते हैं उनसे उनका मनस्तोष नहीं होता क्योंकि वे उनकी समझ में ही नहीं आते। इसका यह मतलब नहीं है कि देहातवाले मूर्ख होने के कारण उन बारीक मसलहतों को नहीं समझ सकते जो गोलमेज में तय की जा रही हैं। इसका स्पष्ट मतलब यह है कि गोलमेज की कार्रवाई में बातों का जमा-खर्च इस कदर बढ़ा-चढ़ा है और स्वराज्य संबंधी प्रमुख समस्याओं को अंधेरे में डाल रखने की ऐसी कोशिश की जा रही है कि देहात वाले तो क्या शिक्षित वर्ग के नागरिक भी भूल-भुलैया में पड़कर अवाक् हो रहे हैं। देहातवालों के लिए यह बड़ी तारीफ की बात है कि वे इस बार विलायती गोलमेज की कार्यवाही से खास दिलचस्पी रखते हैं और अपने देश की समस्याओं को समझने की कोशिश करते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि इस प्रकार ग्रामवासियों की राजनीतिक चेतना उन्नति कर रही है और वे थोड़े ही समय में उन बहुत सी बातों को समझ गए हैं जिन्हें समझने में दूसरे देशों के जनसाधारण को बहुत अधिक समय लग गया है। पर इसमें देहातवालों का क्या दोष है यदि समाचारपत्रों के कालम के कालम गले से उतारकर भी वे सार की एक भी बात न पा सके हों और समाचारपत्रों का भी इस संबंध में कोई अपराध हो ऐसा हम नहीं समझते। स्वयं महात्मा गांधी ने एक बार नहीं, दो-दो बार खुलेआम यह शिकायत की है कि गोलमेज का काम निहायत ढिलाई के साथ किया जा रहा है। सरकार टालमटोल करती चली जा रही है और उस विपत्ति को नहीं देख पाती जो इस प्रकार की कार्यवाही के फलस्वरूप आने वाली है।

कहा जाता है कि ब्रिटेन इस समय अपने घरेलू सवाल हल करने में लगा है। जब गोलमेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के हिंदुस्तानी प्रतिनिधियों की पहली किस्त जहाज पर थी तभी विलायत की मजदूर सरकार टूट गई थी और राष्ट्रीय सरकार का नकली और हैरतअंगेज नाम धारण कर अनुदार दल ने अधिकार पद प्राप्त किया और अपनी नीति प्रवर्तित की। पर इस बात को साफ-साफ किसी ने नहीं कहा बल्कि सब यही कह रहे कि गोलमेज का काम पहले की तरह ही होता रहेगा, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इस धोखे की टट्टी को समझने वाले पहले ही समझ गए थे और हमने अपने पाठकों को इसकी सूचना भी दे दी थी। यद्यपि ब्रिटेन का कोई भी दल भारत की मांगों के साथ पूरा-पूरा सहमत नहीं दीख पड़ता पर उस राष्ट्रीय सरकार का तो कच्चा चिट्ठा मालूम ही है जिसने सर सेमुएल होर को अपना भारतमंत्री बनाया है। सिर्फ भारत ही नहीं, तमाम वैदेशिक नीति में भी अनुदार दल की यह 'राष्ट्रीय सरकार' अपना परिचय अच्छी तरह दे चुकी है। पिछले सप्ताह सोने का विक्रय बंद कर और भारत के रुपए का संबंध ब्रिटिश पौंड से जोड़कर इसने अपनी हकीकत और भी जाहिर कर दी है। यह 'राष्ट्रीय सरकार' ब्रिटेन की राष्ट्रीय साख की रक्षा नहीं कर सकी और भारत के प्रति इसका रुख तो लार्ड विलिंग्डन के भाषण से लेकर अर्थ संबंधी पिछले अर्डिनेंसों तक में अच्छी तरह प्रतिबिंबित हो रहा है। गोलमेज की कार्यवाही वैसी ही हो रही है जैसी अनुदार दल के अधिकांश सदस्य भारतीय राष्ट्रीय जाग्रति को फूटी आंखों नहीं देख सकते और जो गोलमेज की समझौता नीति से किसी तरह राजी नहीं हैं। उनकी कार्रवाई ऐसी तो होगी ही।

*टाइम्स ऑफ इंडिया* पत्र के विलायती संवाददाता ने आज के अंक में यह खबर भेजी है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट अक्टूबर के पहले सप्ताह में टूट जाएगी और नए चुनाव शुरू होंगे। नए चुनाव में किस दल की विजय होगी यह अभी बहुत दूर की बात है। फिलहाल तो हमारे सामने यह शंका खड़ी होती है कि चुनाव के झंझट में पड़कर भारत का प्रश्न पीछे छोड़ दिया जाएगा और गोलमेज का काम और भी ढीला पड़ जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि विलायत गए हुए हमारे प्रतिनिधि महीनों तक निठल्ले बैठे रहेंगे अथवा ऐसी बातों में फंसे रहेंगे जिनसे कोई मतलब सिद्ध नहीं होगा। पर भारत की समस्या इतनी साधारण नहीं है कि वह इस लापरवाही की नजर से देखी जाए और हमारे प्रतिनिधियों को इतनी फुर्सत नहीं है कि वे विलायत में बे-मतलब निठल्ले बैठे रहें। औरों की बात नहीं कही जा सकती पर महात्मा गांधी ने स्पष्ट शब्दों में भारत लौट आने की बात कही है और जिस किसी को अपनी जिम्मेदारी का कुछ भी खयाल है और देश के प्रति अपने कर्तव्य का लेश मात्र भी ध्यान है वह इस प्रकार समय नष्ट करना कभी पसंद नहीं कर सकता।

वर्तमान ब्रिटिश सरकार भारत के प्रश्न को हल्की नजर से देख सकती है क्योंकि आए दिन उसके सलाहकार चर्चिल जैसे व्यक्ति हैं जिनको भारत पर कड़ा शासन करने का अरमान अभी बाकी ही है। लार्ड लायड जैसे आदमी अपने धंधे से लग गए हैं और कोई कारण नहीं कि उनकी फूट नीति असफल ही बनी रहे। सर सेमुएल होर के हाथों में इस समय भारत का शासन सूत्र है और प्रधानमंत्री मेकडानल्ड अथवा संघ कमेटी के अध्यक्ष लार्ड सैंके जैसे व्यक्ति नाममात्र को ही अधिकार के पद पर हैं। ऐसी हालत में जब तक कोई अचिंत्य घटना नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



घटती तब तक यह आशा करना व्यर्थ है कि गोलमेज की कार्यवाही तत्परता के साथ की जाएगी। महात्मा गांधी के समझाने पर भी ब्रिटेन यह नहीं ही समझा कि उसका संकट उसी हालत में दूर हो सकता है जब वह भारत के साथ न्याय करने को तैयार हो। हमारा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि ब्रिटेन की वर्तमान सरकार को भारतीय सत्याग्रह का मुकाबला करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ और उसमें इतनी कल्पनाशक्ति नहीं है कि वह उस भयानक चित्र को आंखों के सामने रख सके। हम देखते हैं कि लंकाशायर के व्यापारी महात्माजी को सिर-आंखों ले रहे हैं और महात्माजी विलायती व्यापार के साथ उदारता दिखाने का वचन दे रहे हैं पर ब्रिटिश सरकार न तो लंकाशायर के व्यापारियों का रुख देखती है और न गांधीजी के उदार वचनों से प्रभावित होती है। वह यह नहीं समझ रही है कि दुनिया किस रास्ते पर चल रही है और संसार की शासन पद्धति में किस प्रकार परिवर्तन हो रहे हैं। अगले चुनाव में प्रत्येक दल को अपनी भारत संबंधी नीति स्पष्ट कर देनी चाहिए क्योंकि हम साफ-साफ बातें पसंद करते हैं। उस समय तक भारत के कुछ प्रतिनिधि भी विलायत में मौजूद रहेंगे और वे ब्रिटिश जनता के सामने भारत की वास्तविक स्थिति प्रकट कर सकेंगे। अब तक भारत के संबंध में ब्रिटेन के सभी दल मिलकर काम करना चाहते रहे हैं पर यह केवल साम्राज्य संबंधी एक स्वार्थ था। अब यह बात प्रकाश की भांति खुल चुकी है और भारत अधिक समय तक इस अनुचित साम्राज्य तृष्णा की तृप्ति नहीं कर सकता। वह अपने अधिकार चहता है और वे अधिकार सब निष्पक्ष राष्ट्रों को मान्य हैं। ब्रिटेन को भी वे मान्य होने चाहिए। भारत अपनी अधिकार प्राप्ति के लिए कठोर विपत्ति का सामना करने को तैयार है। यदि अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहने का कुछ मूल्य है और यदि मुंह से निकली हुई बात का कुछ अर्थ है तो ब्रिटेन के सभी दलों को भारत संबंधी अपनी-अपनी नीति स्पष्ट प्रकट करनी चाहिए। इन भिन्न-भिन्न नीतियों का चुनाव पर जैसा प्रभाव पड़ेगा, उसे निर्धारित कर सकेगा। सत्य और स्पष्टता के नाम पर ऐसा अवश्य होना चाहिए क्योंकि द्विविधा की बातें बहुत कही-सुनी जा चुकी हैं और उनका अर्थ भी अच्छी तरह समझा जा चुका है।

(शुक्रवार, 2 अक्टूबर 1931)

## नए टैक्सों का बोझ

भारत सरकार ने उनतालीस करोड़ पांच लाख का कोटा पूरा करने के लिए पिछले मंगलवार को असेंबली में अतिरिक्त कर वृद्धि करने के लिए जो बिल पेश किया है उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि इस समय उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं है। एक ओर तो गवर्नमेंट व्यय में काट-छांट कर रही है, कितने ही व्यक्ति बेकार हो रहे हैं, दूसरी ओर जनता के सिर पर नए नए करों का बोझ भी लदा जा रहा है। एक ओर देश में निर्धनता अपना साम्राज्य बढ़ाती जा रही है, दूसरी ओर सरकार अपने आप व्यय का लेखा ठीक-ठीक मिलाने के लिए अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करों की वृद्धि कर रही है। यद्यपि असेंबली की बैठक में प्रारंभ ही में विभिन्न दल के लोगों ने सरकार को चेतावनी दे दी थी, नेशनलिस्ट दल की ओर से सर हरिसिंह गौड़ ने चेतावनी देते हुए यह कहा कि इस बिल के पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। स्वतंत्र दल वालों की ओर से सर अब्दुलरहीम ने भी इस समय बिल पेश न करने पर जोर दिया। परंतु गवर्नमेंट ने उनकी भी कोई परवाह नहीं की और अर्थ सचिव सर जॉन शुस्टर ने बहुमत के बल पर अपना बिल पेश कर दिया। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो प्रस्तावित बिल में जितने अतिरिक्त कर बढ़ाए गए हैं वह भारत की जनता पर एक जबर्दस्त बोझ है। हमें इस बात का अत्यंत दुःख है कि गवर्नमेंट ने जनता के प्रतिनिधियों की उपेक्षा करने में कोई संकोच नहीं किया। यदि उसके गवर्नमेंट के कथनानुसार उस पर आर्थिक संकट उपस्थिति है तो क्यों नहीं वह सेना के लिए जो व्यय करती है, कमी करती। परंतु दो वर्ष के अंदर सैनिक व्यय 55 करोड़ से घटकर 47 करोड़ हो जाने से सर जॉन शुस्टर फूले नहीं समाते और जंगी लाट पर धन्यवादों की वर्षा करते हैं। क्या सैनिक व्यय में से आधे रुपए की भी बचत नहीं की जा सकती थी? इसके साथ ही 10 प्रति सैकड़ा वेतन की कमी का प्रश्न भी अपर्याप्त है। जो सिविलियन बड़े-बड़े वेतन पाते हैं उनके लिए 10 प्रति सैकड़ा वेतन छोड़ देना कुछ भी कठिन नहीं है। इंग्लैंड, जापान, पोलैंड आदि देशों में सैकड़े पीछे 20 से लेकर 30 तक की कमी की गई है। हमें आश्चर्य है कि 60 हजार रुपए और उससे भी अधिक वेतन पाने वाले केवल 10 प्रति सैकड़ा छोड़ने को राजी हैं और 1,000 रुपए वार्षिक आमदनी होने वाले व्यक्ति पर कर लगाया जा रहा है? इस बात से यह कैसे कहा जा सकता है कि गवर्नमेंट अन्याय नहीं कर रही है। इसी प्रकार बाहर से आने वाली चीजों पर जो कर लगता था उसमें भी 25 प्रति सैकड़े की वृद्धि हो गई है। इस कर वृद्धि में नमक कर भी शामिल है। कहा जाता है कि सरकार की ओर से महात्मा गांधी को यह वचन दिया गया था कि सरकार कोई ऐसा कानून न बनाएगी जो गांधी-इर्विन समझौते के विरुद्ध हो। यह बात कहां तक सच है या झूठ इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। परंतु इस संबंध में यह आश्चर्य की बात है कि जिस नमक कानून के लिए देश में इतना बड़ा आंदोलन तथा गांधी-इर्विन समझौता हुआ और अंत में उस पर फिर भी कर लगा दिया गया। सबसे बड़ा अन्याय तो पोस्टकार्ड और चिट्ठियों के महसूलों को बढ़ाकर किया गया है। अब गरीब लोगों के लिए पत्र लिखना असंभव हो जाएगा। हमारा तो खयाल है कि लोग अब लिफाफा का प्रयोग कम कर देंगे और पोस्टकार्ड से ही काम लेंगे। ऐसी दशा में गवर्नमेंट को आदेशानुसार आमदनी भी नहीं होगी। वर्तमान समय में भारत में व्यापार की भी बड़ी बुरी दशा है। इस प्रकार भारतीय गवर्नमेंट ने आमदनी के बढ़ाने के लिए जिन-जिन अतिरिक्त करों की वृद्धि करने का विचार किया है उससे न जनता का और न सरकार का लाभ है। हमें आश्चर्य है कि एक ओर राउंड टेबुल कॉन्फ्रेंस में महात्मा गांधी आदि नेताओं को ब्रिटेन समझौता करने के लिए बुलाता है दूसरी ओर भारत में जनता पर करों का बोझ लादा जा रहा है और व्यवस्थापिका परिषद के सदस्यों के मतों की अवहेलना की जा रही है। गवर्नमेंट के पास इस समय 18 महीने का समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है इसी बीच में वह करों की वृद्धि करके अपना आय-व्यय का बहीखाता ठीक कर लेना चाहती है मगर परिणाम क्या होगा? हमारा खयाल है कि आगामी नवंबर महीने के बिल पर यदि विचार ... गवर्नमेंट कामयाब हो गई ... स्थिति बड़ी और ... यहां हमें व्यवस्थापिका ... पर भी दो एक बात का ... प्रतीत होती है जिस ... गौड ने फाइनेंस बिल ... का प्रस्ताव पेश किया ... केवल 100 ही सदस्य ... थे। ऐसी महत्वपूर्ण ... अन्य सदस्य क्यों उपस्थिति ... फाइनेंस बिल का प्रस्ताव ... से पास हुआ। सर हरि ... और गवर्नमेंट को 57 व ... स्थापिका सभा के उन ... हमें बहुत दुख है जो ... होकर भी ऐसे समय में ... सभा में अनुपस्थित रहे ... संकट राष्ट्र के सामने ... अवस्था उत्पन्न कर दी है ... और राउंड टेबुल कॉन्फ्रेंस ... लगाकर बैठे हैं दूसरी ओर ... पर कुछ और बोझा लादा ... जहां देश की गरीबी का ... कर का भार हल्का करना ... वहां वह और भी बढ़ाया ... क्या इसी का नाम शासन ... शासक लोग कितना ... प्रबंध करके देश में अमन ... देख सकते हैं, और भारत ... वासियों के हित के लिए ... काम कर सकते हैं यह अतिरिक्त ... मुद्रानीति के संबंध में विचार ... पूर्ण रूप से प्रकट हो जाता है ... ने यह ठीक ही कहा है कि ... मुल्क की गवर्नमेंट अपना ... जनता के मत का आदर कर ... कर सकती है उसे कठपुतली नहीं ... नहीं।

## मंगल कामना

ता. 2 अक्टूबर को महात्माजी की 63वीं वर्षगांठ है। सारे देश में इस समय महात्माजी को उनके नवीन वर्ष के उपलक्ष्य में बधाई दी जा रही है व सार्वजनिक सभाएं करके उनके दीर्घजीवी होने की मंगल कामना की जा रही है। इसे कौन नहीं जानता कि महात्माजी संसार के इने-गिने महापुरुषों में हैं जिनपर भारतवर्ष को गर्व है। महात्माजी ने अपने तप, त्याग, सहनशक्ति और अहिंसा के प्रभाव से अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। भारतवर्ष में आज जाग्रति के जो चिह्न नजर आ रहे हैं उनका अधिक श्रेय महात्माजी को ही प्राप्त है। वास्तव में महात्माजी ने संसार के सामने अहिंसा धर्म का पालन करते हुए यह दिखला दिया कि भारत अहिंसात्मक रहकर भी अपने अधिकारों की रक्षा किस प्रकार कर सकता है। आपकी इस कामयाबी और प्रभावशील व्यक्तित्व को ब्रिटिश गवर्नमेंट ही नहीं स्वीकार कर चुकी है बल्कि संसार के अन्य राष्ट्रों ने भी सच्चे हृदय से स्वीकार किया है। भारतवर्ष को ... तथा उसकी दासता की बेड़ी से ... आगे का पूरा पन्ना गायब है कृपया ध्यान दीजिएगा।

(सोमवार, 5 अक्टूबर 1931)

---

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# गांधीजी का रुख

भारत के अनेक राजनीतिज्ञों ने महात्माजी के उस रुख की कड़ी आलोचना की है जिसे उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में दिखाया है। यद्यपि गांधीजी के वास्तविक उद्देश्य के संबंध में किसी को संदेह करने का साहस नहीं है, फिर भी देश की अनेक पत्र-पत्रिकाएं उनकी उस नर्म नीति को नापसंद कर रही हैं जिसे उन्होंने धारण किया। कोई गांधीजी की सीधाई को दोष दे रहा है और कोई यह शिकायत कर रहा है कि उन्हें विधान संबंधी विशेष अनुभव नहीं है। विलायती पत्रों ने भी यह खबर भेजी है कि ब्रिटिश सरकार महात्मा गांधी को उतनी आसानी से मना सकती है जितनी आसानी से वह सर तेजबहादुर सप्रू जैसे व्यक्तियों को भी नहीं मना सकती। यह बात कहां तक ठीक है यह कहना कठिन है पर निश्चय ही गांधीजी समझौता-सम्मेलन में इतने मेल-जोल और प्रीति बुद्धि से काम ले रहे हैं कि भारत में आश्चर्य ही नहीं, आशंका भी होने लगी है। देशी नरेशों और उनकी प्रजा के मामले में उन्होंने राजाओं की ही हिमायत क़ी है और व्यवस्था-सभा में रियासती प्रजा के प्रतिनिधियों को भेजने का आग्रह नहीं किया। इस पर यहां तरह-तरह के तर्क-वितर्क हो रहे हैं और कुछ लोगों में असंतोष दीख पड़ रहा है। शिकायत की जा रही है कि महात्मा गांधी और पूज्य मालवीयजी दोनों अभिन्न हो रहे हैं और दोनों एक-दूसरे का समर्थन कर रहे हैं। केंद्रीय व्यवस्था-सभा के लिए महात्मा गांधी ने सीधे चुनाव नापसंद किए हैं और अप्रत्यक्ष चुनाव का समर्थन किया है जिससे अनुदार दल वाले लार्ड पील जैसे व्यक्ति भी खुश हुए हैं। सर तेजबहादुर सप्रू जैसे नेताओं ने इस प्रकार की चुनाव नीति को प्रजा सत्ता के नियमों के विरुद्ध बतलाया है और इसका विरोध किया है। इसी प्रकार महात्माजी और पूज्य मालवीयजी दोनों ही मुस्लिम और सिख संप्रदाय के अतिरिक्त और किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, यद्यपि डॉक्टर अंबेडकर, सर तेजबहादुर सप्रू और श्री गिडवानी जैसे व्यक्ति अछूतों आदि के विशेष प्रतिनिधित्व के लिए जोर दे रहे हैं। बाहर से देखने पर ऐसा जान पड़ेगा कि गांधीजी का यह रुख अछूतों आदि अल्प वर्गों के लिए हितकर नहीं है, पर हमें तो वास्तविक तथ्य पर विचार करना होगा।

सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि गांधीजी कांग्रेस के आदेशों से बंधे हुए हैं और उनका रुख वास्तव में कांग्रेस का ही रुख समझा जा सकता है। कांग्रेस का रुख ठीक है या नहीं, वह राष्ट्रीय दृष्टि से हितकर है या नहीं, यह दूसरी बात है। केंद्रीय व्यवस्था-सभा के चुनाव के ही प्रश्न को लीजिए। महात्मा गांधी का कहना है कि चुनाव सीधे न होकर उस तरह से हों जैसे कांग्रेस कमेटियों के होते हैं। कांग्रेस की चुनाव प्रणाली कोई आदर्श प्रणाली है यह तो हम नहीं कह सकते। हमारे पास कितनी ही कांग्रेस कमेटियों के पदाधिकारियों के पत्र आए हैं जिनमें यह शिकायत की गई है कि कांग्रेस की चुनाव शैली ठीक नहीं है। उससे देहातियों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, शहरवालों की ही तूती बोलती है। यह केवल एक बात हुई। इस प्रकार की और बातें भी हैं। परंतु बात तो यह है कि कांग्रेस के निर्णयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में परिवर्तन भी कांग्रेस ही कर सकती है और विलायत में तो अकेले गांधीजी ही कांग्रेस के प्रतिनिधि हैं।

बड़ी भारी दिक्कत तो यह है कि गोलमेज सम्मेलन के सामने महात्मा गांधी को ऐसे-ऐसे प्रश्नों का सामना करना पड़ रहा है जिनके संबंध में कांग्रेस ने कोई गंभीर विचार किया ही नहीं है। यदि सच पूछा जाए तो संघ शासन की योजना कांग्रेस के लिए बिलकुल नई है और उसकी तफसीलों पर कांग्रेस का ध्यान नहीं गया। गांधी-इर्विन समझौते के अवसर पर कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने संघ शासन की प्रणाली को स्वीकार किया था और वही कराची कांग्रेस में भी मान लिया गया। संघ शासन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर कांग्रेस ने कोई निश्चित मत नहीं प्रकट किया। ऐसी अवस्था में महात्मा गांधी को व्यावहारिक स्थिति का ध्यान रखते हुए स्वतंत्र रीति से कार्य करने की सुविधा है और हम देखते हैं कि इस संबंध में पूज्य मालवीयजी ही उनके सबसे बड़े सलाहकार हो रहे हैं। देशी नरेशों के लिए महात्माजी जो विशेषाधिकार स्वीकार करने को तैयार हैं उन्हें तो लिबरल दल के पिछले अधिवेशन के अध्यक्ष श्री चिंतामणि तक ने भी शर्त लगाकर स्वीकार किया है। इससे जान पड़ता है कि भारतीय स्वतंत्रता के मुख्य प्रश्न को सामने रखकर महात्माजी उन सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं जिनमें उनके मार्ग में बाधा न पड़े। वह हिंदू-मुस्लिम प्रश्न हो अथवा देशी नरेश और रियासती प्रजा का प्रश्न हो, अंत में वह एक घरेलू प्रश्न ही रहता है। वे सभी प्रश्न हल होने ही चाहिए नहीं तो उसकी जिम्मेदारी भारत और भारत के राष्ट्रीय प्रतिनिधि महात्मा गांधी पर पड़ेगी। महात्माजी समस्या के इस मर्म को समझते हैं। विदेशीय राजसत्ता को दूर करने के लिए वे घरेलू मामलों में अधिक से अधिक झंझट उठाने को तैयार दीख पड़ते हैं। इसलिए उन्होंने देशी नरेशों से उन्हीं की शर्तों पर समझौता किया है।

सर्वदल समन्वय का यही रुख महात्मा गांधी ने हिंदू-मुस्लिम समस्या को भी सुलझाने में दिखाया है। अंतिम समाचार यह है कि गांधीजी मुसलमानों की पृथक निर्वाचन की मांग पर भी राजी हो गए हैं और पंजाब तथा बंगाल में उनका बहुमत भी मानने को तैयार हैं। इस संबंध में उनकी एकमात्र शर्त यह है कि मुसलमान कांग्रेस की संपूर्ण मांगों को स्वीकार करें और एकमत होकर मांगें पेश की जाएं।

कहा नहीं जा सकता कि मुसलमान इस प्रस्ताव को भी स्वीकार करेंगे या नहीं, पर यह तो निश्चय ही है कि इस प्रस्ताव के द्वारा महात्माजी कट्टर सांप्रदायिक मुसलमानों को अपने पक्ष में करने के लिए अधिक से अधिक उदार बने हैं और उनकी यह उदारता बहुतों को खटकने वाली भी है। महात्मा गांधी को अब राष्ट्रीय मुस्लिम दल के डॉक्टर अंसारी आदि नेताओं की राय जाननी पड़ेगी क्योंकि यह दल पृथक निर्वाचन का कट्टर विरोधी रहा है और कांग्रेस से मिलकर काम करता रहा है। हिंदू-मुस्लिम समस्या को हल करने का महात्माजी का नया प्रस्ताव कांग्रेस कार्य समिति की बंबई वाली पिछली बैठक में पास हुए हिंदू-मुस्लिम मसविदे का भी उल्लंघन करता है। ऐसी हालत में कांग्रेस को भी फिर से विचार करने की आवश्यकता होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महात्मा गांधी ने अछूतों तथा अन्य अल्पसंख्यक समूहों को अलग-अलग संप्रदाय मानने से इनकार कर दिया है और पूज्य मालवीयजी ने उनका समर्थन किया है। मुसलमानों और सिखों के विशेषाधिकारों को स्वीकार करने के कितने ही ऐतिहासिक कारण कांग्रेस के और देश के सामने थे पर यदि प्रत्येक छोटा-मोटा दल अपने विशेषाधिकारों की घोषणा करने लगेगा तो न तो देश में राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत होगा और न गोलमेज सम्मेलन का काम ही सुलझ पाएगा। पूज्य मालवीयजी ने उचित ही कहा है अछूत हमारे ही भाई हैं, उनका हित हमारा ही हित है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वे मुख्य हिंदू वर्ग से अलग होकर अपने अधिकारों की पुकार मचाएं। पर जान पड़ता है, इस बार अछूतों के प्रतिनिधि डॉक्टर अंबेडकर पर मौलाना शौकत अली का जादू काम कर गया है और बंबई में शायद मौलाना साहब का डॉ. अंबेडकर से गले मिलना सार्थक हो रहा है। परंतु महात्मा गांधी का रुख उनके प्रति भी अतिशय उदार है और वे उनके लिए भी कांग्रेस की राय लेने को तैयार हुए हैं। व्यक्तिगत रीति से हम महात्माजी के इस सर्वदल सम्मेलन के रुख में बहुत सी त्रुटियां देखते हैं और यह भी अनुभव करते हैं कि कांग्रेस के बंधन भी महात्माजी के राजोद्धार के कार्य में सर्वथा हितकर नहीं हैं, तथापि इस सत्य को तो सभी स्वीकार करेंगे कि महात्माजी का लक्ष्य भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता और यहां की जनता के लिए सुख-समृद्धि प्राप्त करना है। विदेशी शासन चक्र ने इतने वर्षों से देश को तबाही की ओर ही बढ़ाया है इसलिए उसे किसी न किसी तरह दूर करना ही होगा। यह कार्य अत्यंत कठिन है परंतु गांधीजी इसके लिए अनेक घरेलू विपत्तियों को सहने के लिए भी तैयार हैं। उनके इस प्रधान लक्ष्य को समझ लेने पर भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर उनका रुख समझ में आ जाता है। उस रुख से सर्वांश में कोई सहमत हो या न हो पर उस लक्ष्य से तो सभी सहमत होंगे।

(शुक्रवार, 9 अक्टूबर 1931)

## कच्चा चिट्ठा

ब्रिटिश प्रधानमंत्री मेकडानल्ड ने दुनिया को दिखाने के लिए भारत में अंग्रेजी राज्य का एक ऐसा नक्शा पेश किया है जिससे बेजानकारों में भ्रम फैल सकता है। हम मिस्टर मेकडानल्ड के उद्देश्य में किसी तरह का संदेह न भी करें तो भी भ्रम फैलने देना तो किसी हालत में ठीक नहीं। पाठक जानते हैं कि हिंदू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने के लिए महात्मा गांधी ने जन्म भर कितना परिश्रम किया है और इधर कुछ दिनों से कितना अथक उद्योग कर रहे हैं। गांधी-इर्विन संधि के बाद गांधीजी का विलायत जाना एक प्रकार से वचनबद्ध हो गया था, तब भी उन्होंने घोषणा की थी कि हिंदू-मुस्लिम प्रश्न को हल करके ही वे जहाज पर पैर रखेंगे। अपनी लक्ष्य सिद्धि में उन्होंने कोई उपाय बाकी नहीं रखा। सफलता नहीं मिली। शिमला की अंतिम मेल-मिलाप सभा के भंग हो जाने पर डॉक्टर अंसारी ही नहीं, मौलाना शौकत अली जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आदमियों ने भी यह घोषणा की थी कि शिमले का सरकारी वातावरण संधि में बाधक हुआ। परंतु निराशा के अंधकार में भी आशा की ज्योति देखने वाले महात्मा गांधी हिम्मत नहीं हारे। वे विलायत गए। उनमें राष्ट्र की मुक्तिकामना थी इसलिए दिन में और रात में, जहाज में अथवा सभी सम्मेलनों में वे सर्वत्र हिंदू-मुस्लिम समझौते के लिए चिंतन करते रहे। अंतिम सात दिनों तक गैरसरकारी हिंदू-मुस्लिम समझौता सभा के अध्यक्ष बनकर गांधीजी ने प्राणपण से संधि का उद्योग किया और अधिक से अधिक उदार बनकर नाजायज मांगों को भी स्वीकार करने को तैयार हुए। पर जहां कुछ न सुनने की मंशा काम कर रही है वहां मनुष्य का कोई भी उपाय कैसे सफल हो सकता है? लाचार गांधीजी ने हिंदुस्तान की इसे राष्ट्रीय शर्म की बात प्रकट करते हुए यह बतलाया कि वास्तव में सम्मेलन के प्रतिनिधि जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं, वे सरकार के चुने हुए हैं, इससे समझौते के मार्ग में बाधा पड़ी है। सर तेजबहादुर सप्रू ने भी बतलाया कि फिरकापरस्त मुसलमानों की मांगें इस बार पहले से कहीं अधिक बढ़ी हुई हैं। गांधीजी ने सलाह दी कि सम्मेलन अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर आगे बढ़े और स्वराज्य संबंधी अन्य आवश्यक मसलहतों पर विचार करे, हिंदू-मुस्लिम प्रश्न या तो पीछे तय होगा या एक निष्पक्ष न्यायालय जांच कर उसे तय करेगा।

सर मुहम्मद शफी ने महात्मा गांधी का विरोध करते हुए जो रुख दिखाया वह उतना आश्चर्यजनक नहीं है पर प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने मुहम्मद शफी के पक्ष में अपना फैसला सुनाते हुए जो बातें कही हैं वे बहुतों को भ्रम में डाल सकती हैं। जवाब तो प्रत्येक बात का दिया जा सकता है, विशेषकर जब जवाब देने वाला मिस्टर शफी की तरह का आदमी हो। उन्हें यह कहने में क्या लगता है कि गोलमेज के प्रतिनिधि राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधि हैं, और उन्हें ऐसा कहने से रोक भी कौन सकता है? उन्होंने कांग्रेस, हिंदू महासभा, लिबरल दल और मुस्लिम दल को भारत के प्रमुख समुदाय बतलाया पर पीछे से सर पेट्रो के कहने पर अपनी गलती तसदीक करते हुए यह मंजूर किया कि और भी बहुत से दल हैं। इतने शीघ्र और इतनी आसानी से इस प्रकार की गलती स्वीकार करने का रहस्य क्या किसी से छिपा रह सकता है? सर मुहम्मद शफी इस प्रकार की गलती स्वीकार नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? अपने मन की बात सुनकर किसे खुशी नहीं होती। आश्चर्य तो यह है कि उनके मुंह से पहले यह बात कैसे निकल गई कि भारत में चार ही दल मुख्य हैं। उनके मुखारबिंद से इतनी छोटी संख्या निकल कैसे गई! वे तो बहुत बड़े आदमी हैं! उन्हें तो चार हजार या कम से कम चार सौ तो कहना ही चाहिए था। तथापि संतोष यह है कि सवेरे के भूले वे शाम तक घर आ गए और अपनी गलती मान ली।

यद्यपि मिस्टर मेकडानल्ड व्यक्तिगत रीति से बड़े भारी भारत हितैषी कहे जाते हैं पर आजकल व्यक्ति की इयत्ता ही कितनी है? मिस्टर मेकडानल्ड भी उसी शासन चक्र के कल पुर्जे हैं जो इतनी जटिल और इतनी कुटिल रीति से संघटित होकर चल रहा है। ब्रिटिश शासन के सूत्रधार की हैसियत से उन्हें जो कुछ कहना चाहिए वही उन्होंने कहा। हिंदू-मुस्लिम मतभेद से लाभ न उठाना ब्रिटिश-शासन यंत्र को शोभा नहीं देता इसलिए मेकडानल्ड ने जो कुछ कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुचित नहीं कहा। आपने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में ब्रिटेन की नेकनीयत प्रकट की और ऐसा आभास दिया कि वह पूरे तौर पर स्वराज्य का बोझ अपने सिर से उतारने को तैयार हैं, कसर है तो इतनी ही कि भारत इसका भार सहन करने के योग्य नहीं है। यद्यपि भारत की अयोग्यता की दुहाई बहुत दिनों से दी जा रही है पर इस अवसर पर तो प्रत्यक्ष प्रमाण देकर अपना पक्ष पुष्ट करने का मौका था और उसका पूरा-पूरा उपयोग किया भी गया। मिस्टर मेकडानल्ड ने बड़ी ही उदारता के साथ भारतीय सदस्यों को समय दिया है कि वे अपने मतभेदों को दूर करें क्योंकि इस मामले में हस्तक्षेप कर ब्रिटेन भारत के आत्मसम्मान के भाव को चोट पहुंचाना नहीं चाहता। भारतीय आत्मसम्मति की रक्षा की बात मिस्टर मेकडानल्ड को तब याद आई है जब उन्हें चुनाव की तैयारी करनी है। एक पंथ दो काज हो रहे हों तो इसमें हर्ज की बात क्या है?

सर मुहम्मद शफी और मिस्टर मेकडानल्ड इस बात में भी एकमत जान पड़ते हैं कि जब तक हिंदू-मुस्लिम प्रश्न हल नहीं होता तब तक गोलमेज का काम आगे नहीं बढ़ सकता। सर मुहम्मद शफी से तो नहीं पर मिस्टर मेकडानल्ड से हम पूछना चाहते हैं कि गोलमेज सम्मेलन का उद्देश्य क्या हिंदू-मुस्लिम समझौता करना ही था? क्या वे उन तमाम बातों को भूल गए हैं जो ब्रिटेन और भारत के बीच समझौता करने के मूल में हैं? मिस्टर मेकडानल्ड उस विकट परिस्थिति को याद करें जो लार्ड रीडिंग के शासन काल में उपस्थित हुई थी और जिसके कारण समझौता-सम्मेलन की जरूरत समझी गई थी। उसके बाद की समस्त घटनाएं उन्हें भूली नहीं होंगी तथापि हम आग्रह करेंगे कि एक बार वे संपूर्ण स्थिति को फिर से दोहरा लें।

यदि बिलकुल खरी बात कही जाए तो न तो सर मुहम्मद शफी के कहने के मुताबिक हिंदुस्तान में चार दल हैं और न और किसी (सर साइमन) के कहने के मुताबिक चार सौ। जहां तक राष्ट्रीय मांग से संबंध हैं कांग्रेस, हिंदू महासभा, लिबरल दल आदि में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं। भारत की राष्ट्रीय शक्ति और जीवन की झलक कांग्रेस में ही सबसे अधिक है। मुहम्मद शफी को हिंदुस्तान के चार खंड करते समय कम से कम उन खंडों की आपेक्षिक शक्ति पर भी ध्यान देना चाहिए था पर उन्होंने खाजा और भाजी टके सेर ही कर दी है। मुसलमानों का एक ही दल मानकर उन्होंने दुनिया को भ्रम में डाला है और भारत के राष्ट्रीय मुसलमान नेताओं की मानहानि की है। वास्तव में इस समय भारत में राजनीतिक दृष्टि से केवल तीन दल हैं। एक तो राष्ट्रीय दल जो स्वराज्य के लिए वर्षों से उद्योग कर रहा है और अपनी प्रगति में सबसे अधिक बढ़ा-चढा है। दूसरा अराष्ट्रीय दल जिसमें स्वार्थी सांप्रदायिक मुसलमान, गोरे और अधगोरे यूरोपियन और हिंदुस्तानी हैं जिनकी तायदाद इतने बड़े राष्ट्र को देखते हुए बहुत कम है और कम होती जा रही है। तीसरा दल शासकों का है जिसकी कहानी हम सब जानते ही हैं। हम आशा ही नहीं, विश्वास भी रखते हैं कि संसार के निष्पक्ष राष्ट्र हमारे इस वर्गीकरण को स्वीकार करेंगे और ब्रिटेन भी इसे समझकर ही अपनी नीति निर्धारित करेगा।

संक्षेप में कच्चा चिट्ठा यह है कि कालरात्रि की तरह हिंदू-मुस्लिम समस्या हमारे चारों ओर भयानक आकृतियां धारण कर रही है और हमें घेर कर अत्यंत कुरूप प्रर्दशन कर रही है, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हम बकवास बंद नहीं करते। भारतीय स्वराज्य की नाव सांप्रदायिक कट्टरता की चट्टान से टकराकर नष्ट होना चाहती है पर हमारे गुमराह कर्णधार तू-तू मैं-मैं पर तुले हुए हैं। राष्ट्र के सामने वीर अभीष्ट उपस्थित है पर हम आत्मप्रवचनों और आत्मघात से फुर्सत नहीं पा रहे। किसी भी देश-हितैषी के लिए इससे बढ़कर लज्जाजनक परिस्थिति दूसरी हो नहीं सकती और महात्मा गांधी ने अपनी शर्म प्रकट भी कर दी है। पर दुनिया में बेहया लोगों की कमी नहीं है, खासकर हिंदुस्तान में, जिसका आज इतने वर्षों से स्थिर रीति से नैतिक पतन होता चला आ रहा है। ऐसी ही स्थिति में डॉक्टर अंबेडकर जैसे व्यक्ति दंभपूर्ण वक्तव्य उपस्थित कर सकते हैं और महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों की भी सेवाओं को भूल कर स्वयं सर्वेसर्वा बन सकते हैं। हिंदू और मुसलमानों के मस्तक पर विदेशी शासन का जो चक्र घूम रहा है, उसकी गति बुद्ध का अंदाज लगाना बहुत कठिन काम है तथापि उसकी असलियत से बहुत से लोग वाकिफ हैं और बहुतों को उसका पता लगता जा रहा है। इस शासन यंत्र में हिंदुस्तान की भूमि में अपनी जड़ खूब मजबूती से जमा ली है और वह वहां से हिलना नहीं चाहता। साम-दाम-भय-भेद की नीतियां उसे अच्छी तरह मालूम हैं और इसके लिए हम उसे दोष भी नहीं दे सकते। तथापि जब वह अपने वास्तविक उद्देश्य को छिपाकर दुनिया के सामने यह ऐलान करना चाहता है कि वह बड़ा ही बेकसूर, निष्पक्ष, उदार और सात्विक है और हिंदुस्तान पूर्णतः अयोग्य होने कारण स्वराज्य पाने का हकदार नहीं, तब हमें भी खरी बातें कहने और रहस्योद्घाटन करने का मौका मिलता है।

(सोमवार, 12 अक्टूबर 1931)

## छिपे-छिपे

जब सर मुहम्मद शफी के नजदीकी विलायत वाले ही नहीं समझ रहे तब दूसरी दुनिया कैसे समझेगी कि गोलमेज सम्मेलन में शरीक होने वाले हिंदुस्तानी डेलीगेट भारत के राष्ट्रीय प्रतिनिधि हैं और हमें किस तरह मनाया जाएगा कि विलायत में बस कर 'विलायत से मेल स्थापित करने' की ख्वाहिश रखने वाले मियां और मौलाना लोग हमारे देश के हितचिंतक हैं? लंदन का प्रसिद्ध *डेली हेरल्ड* लिखता है कि यद्यपि गोलमेज सम्मेलन के मातहत हिंदू-मुसलमानों के आपसी समझौते की कोशिश की जा रही है पर लक्षण अच्छे दीख नहीं पड़ रहे। महात्मा गांधी और सर तेजबहादुर सप्रू जैसे व्यक्ति मेल के उत्कट प्रयत्न में लगे हुए हैं और महामना मालवीयजी जैसे श्रेष्ठ हिंदू नेता भी किसी तरह का हठ नहीं कर रहे पर मुसलमान कट्टरता के साथ अपनी जिद पकड़े हुए हैं। सरकार ने इन्हीं मुसलमानों को भारत की सात करोड़ मुस्लिम जनता का प्रतिनिधि बनाकर इकट्ठा किया है। यह सरकार की सूझ और रुचि का परिचय देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। इस तरह संसार को धोखा नहीं दिया जा सकता। एक विशाल जाति जो क्रमशः जाग्रत होकर राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सचेत हो रही है, जिसने अपने देशप्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का परिचय देते हुए पिछले साल हजारों की संख्या में सत्याग्रह के कष्ट झेले, उस पर इस प्रकार कलंक लगाना सरकार के लिए अभी भी संभव नहीं है। भविष्य में तो वह और भी असंभव हो जाएगा। हम अपने देशवासी मुसलमान भाइयों को *डेली हेरल्ड* का यह समाचार सुनाने में एक विशेष गर्व का अनुभव कर रहे हैं कि गोलमेज के मुसलमान डेलीगेट जो कि भारत सरकार द्वारा नामजद किए गए हैं, मुस्लिम जनता के सच्चे प्रतिनिधि हैं, यह बात संदेहग्रस्त ही नहीं, और भी बहुत कुछ है। वे सबके सब कट्टर मजहबपरस्त हैं। वे पहले अपने को मुसलमान समझते हैं पीछे और कुछ। पर हिंदुस्तान में उन्नतिशील मुस्लिम मत पहले अपने को भारतीय बतलाता है, पीछे और कुछ। यह मत प्रतिदिन बढ़ रहा है और इस मत वाले मुसलमान हिंदुओं से मिलकर रहना चाहते हैं और आसानी से समझौता कर सकते हैं। पर उन्हें मौका नहीं दिया गया। उनका केवल एक प्रतिनिधि, सर अली इमाम सम्मेलन में पहुंच सका है, पर मजहबपरस्तों के प्रतिनिधि दर्जन से ऊपर हैं। इसी पत्र ने यह दृढ़ विश्वास भी प्रकट किया है कि यदि आज भारत की व्यवस्था-सभाओं का चुनाव हो तो राष्ट्रीय दल के मुसलमान उसमें भर जाएं, हठधर्मी मुसलमानों की बहुत थोड़ी संख्या वहां पहुंच सके। सर मुहम्मद शफी, मौलाना शौकत अली और जिन्ना जैसे आदमियों को इस समाचार पर नजर दौड़ानी चाहिए।

क्या हम सरकार से पूछ सकते हैं कि इस प्रकार की कार्रवाई का क्या कारण है? क्या देश की अपार मुस्लिम जनता विनीत शब्दों में निहायत नर्मी के साथ यह दरियाफ्त कर सकती है कि किस बुनियाद पर आज उसकी इस तरह तौहीनी की जा रही है और विदेशों की आंखों में उसे गिराया जा रहा है? आपको अपना गोलमेज सम्मेलन करना है तो खुशी से करिए पर आपको क्या अधिकार है कि आप सात करोड़ जनसंख्या के उदीयमान और महान संभावनाओं वाली जाति का नाम बदनाम करें और गलतफहमी पैदा कर उसके विकास में बाधा डालें। एक जाति की बदनामी सैकड़ों गोलमेज सम्मेलनों के सफल-असफल होने से कहीं अधिक महत्व रखती है क्योंकि उसकी बदनामी से उस जाति का संपूर्ण अतीत दूषित होता है, उसका वर्तमान हास्यास्पद और ग्लानिजनक समझा जाता है और उसका भविष्य संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। क्या न्याय और सत्य के नाम पर इस संबंध की वे सच्ची बातें नहीं बतलाई जा सकतीं जो अब तक छिपे-छिपे हुई हैं।

प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने एक तरीके से गांधीजी को ही नसीहत देते हुए कहा है कि वे ईमानदारी के साथ यह बतलाएं कि हिंदू-मुस्लिम प्रश्न भारत में है या नहीं। जान पड़ता है, मिस्टर मेकडानल्ड की ईमानदारी आजकल डावांडोल हो रही है इसलिए वे महात्माजी की ईमानदारी में द्विविधा करते हैं। क्या महात्मा गांधीजी की गैर-ईमानदारी की कल्पना करने के कोई प्रमाण मिस्टर मेकडानल्ड के पास हैं? हों तो बतलाएं। हमारे पास मिस्टर मेकडानल्ड की ईमानदारी पर संदेह करने के बहुत से कारण हैं। हम मिस्टर मेकडानल्ड से पूछते हैं कि वे ईमानदारी के साथ बतलाएं कि हिंदू-मुस्लिम भेद-भाव को घटाने के कौन कौन से उद्योग उनकी सरकार ने किए? उन्होंने और उनकी सरकार ने गोलमेज के सदस्य भर्ती करने में कितनी ईमानदारी दिखलाई है, यह हम ही नहीं, *डेली हेरल्ड* भी जानता है जो उस दल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मुखपत्र है और अभी कुछ दिन हुए मिस्टर मेकडानल्ड जिसके प्रधान थे। इस तरह अपनी ईमानदारी को स्वयंसिद्ध समझकर दूसरों पर ईमान खोने का संदेह करना मिस्टर मेकडानल्ड को शोभा नहीं देता। खासकर जब मिस्टर मेकडानल्ड गांधीजी का उत्तर देते हुए ईमानदारी का सवाल खड़ा करते हैं तब लोगों को उन पर हंसी आती है।

उधर तो छिपे-छिपे कार्रवाई की जा रही है और इधर ईमानदारी की दुहाई दी जा रही है। उधर घरेलू मामलों में अटकाव हो रहा है इधर हमें नसीहत दी जा रही है कि हम अपना झगड़ा आप तय करें। हमारे आत्म-सम्मान की बहुत दिनों के बाद आज रक्षा की जा रही है। आज ब्रिटेन के प्रधानमंत्री अपना ... अपनी नेकनीयती जाहिर कर रही है अगर हम एक हो जाएं तो ... स्वराज्य सौंपने को तैयार बैठे ... जब महात्मा गांधी ... पहले स्वराज्य मिलने पर ... हो जाएगा तब ब्रिटिश ... नेकनीयती चरने चली जाती है। सरकार को अधिकार है कि वह इस तरह हमारा व्यंग्य कर ले हमारे उस दिखावटी मतभेद से बेजा लाभ उठा ले। पर राष्ट्र की आकांक्षाओं के प्रति इस तरह का बर्ताव करने और दुनिया के सामने अपनी सदभिलाषा प्रकट करने का कोई अच्छा असर नहीं पड़ सकता। जिस नैतिक साख की रक्षा के लिए यह सब आयोजन किया जा रहा है, सरकार भारतीयों की दृष्टि में उसे वर्षों हुए खो चुकी है और अब विदेशों में भी खोना शुरू कर रही है। संतोष इतना ही है कि सत्य पर बहुत दिनों तक पर्दा नहीं पड़ा रह सकता और राष्ट्रों की स्वाधीनता की कामना न छिपाकर रखी जा सकती है और न दबाकर।

## मुस्लिम राज्य की कल्पना

सर मुहम्मद इकबाल बड़े नामी-गिरामी मुसलमान हैं। आपने इधर कई वर्षों से मुसलमान जाति के उद्धार तथा उनके हितों की रक्षा का बीड़ा उठाया है और आप कई मौकों पर अपने संकीर्ण हृदय का परिचय दे चुके हैं। परंतु अभी हाल ही में *लंदन टाइम्स* में अपने पूर्व विचारों की पुष्टि करते हुए जो लेख लिखा है उससे आपके और आगे बढ़े हुए विचारों का परिचय मिलता है। आप फरमाते हैं, 'ऐसा कोई भी सही दिमाग वाला मुसलमान न होगा जो ब्रिटिश गवर्नमेंट की छत्रछाया के बाहर होकर भारत के उत्तर-पश्चिम में मुस्लिम रियासत कायम करने का विचार करे।' आप ब्रिटिश गवर्नमेंट के शासन के भीतर रहते हुए उत्तर-पश्चिम में मुस्लिम राज्य का स्थापित होना ब्रिटिश गवर्नमेंट और भारतवर्ष दोनों के लिए हितकर समझते हैं। आपका कहना है कि 'भारत के उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत की ओर एक सुसंगठित मुस्लिम राज्य की विशेष आवश्यकता है। ऐसा होने से एशिया के उन देशों से जो भारत पर अपना दांत लगाए हैं, ब्रिटिश गवर्नमेंट और भारत दोनों की रक्षा हो सकेगी। वास्तव में सर मुहम्मद इकबाल ब्रिटिश गवर्नमेंट

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और भारत की भविष्य में रक्षा के लिए बड़े चिंतित हैं। एक तो अभी फिलहाल दो में से किसी की रक्षा का कोई प्रश्न नहीं है परंतु यदि कभी आवश्यकता पड़ी भी तो क्या सर इकबाल के कथनानुसार मुस्लिम राज्य की स्थापना से ही ब्रिटिश और भारत की रक्षा हो सकेगी? आज उत्तर-पश्चिम में अशांति के जो बादल मंडरा रहे हैं क्या सर मुहम्मद इकबाल के इसी भाव कल्पित मुस्लिम राज्य की स्थापना की सूचना तो नहीं दे रहे हैं। हमें दुःख है कि इन जातिगत विद्वेष फैलाने वाले मुसलमान राष्ट्र के इस संकट काल में एकता में अड़ंगे खड़े करने का कुचक्र रच रहे हैं। वर्तमान राजनीतिक वायुमंडल में अड़ंगा लगाने में इन कट्टर मुसलमानों का बड़ा हाथ है। पता नहीं, ईश्वर उनकी बुद्धि कब ठिकाने लगावेगा।

## हिंदी के क्षेत्र में बाबू जैनेंद्र कुमार–1
## (नवीनता और आतंक की कहानियां)

हमारे मित्र बाबू जैनेंद्र कुमार जैन को हिंदी कथासाहित्य में प्रवेश किए अभी बहुत दिन नहीं हुए पर प्रसन्नता की बात है कि प्रवेश करते ही वे असाधारण स्वागत से सत्कृत हुए हैं। *परख*, *वातायन* और *फांसी* नाम की तीन छोटी-छोटी पुस्तकों के बल पर वे हिंदी कहानी लेखकों की प्रथम पंक्ति में आकर खड़े हो गए हैं। अपने मिलनसार स्वभाव के कारण वे हिंदी के अनेक लेखकों से परिचित हुए हैं और परिचय के साथ ही उनके प्रीतिपात्र भी बन गए हैं। उनके सभी मित्र समय-समय पर उनकी चर्चा करते रहते हैं। प्रेमचंदजी ने राय दी है कि जैनेंद्रजी की 'फोटोग्राफ', 'चलित चित्त' और 'भाभी' गल्प संसार-साहित्य के लिए शोभ-शालिनी हो सकेंगी। पं. अवध उपाध्याय का विचार है कि *परख* उपन्यास भारतीय जीवन का जीता-जागता चित्र है और जैनेंद्रजी ने हमें बतलाया है कि उपाध्यायजी *परख* के विवाह प्रसंग में भारतीय संस्कृति की रक्षा का आभास पाते हैं। हमें स्मरण पड़ता है कि भाई रामनाथ लाल सुमनजी ने अपनी मासिक *त्यागभूमि* में जैनेंद्रजी की एक कहानी छापकर अपने ही कालमों में उसकी अच्छी प्रशंसा की थी। जैनेंद्रजी ने हमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक पत्र दिखलाया है, जिसमें वे बड़े ही कवित्वपूर्ण तरीके से *वातायन* में रवींद्रनाथ और शरच्चंद्र को एक साथ झांकते देख रहे हैं। *माधुरी* पत्रिका के किसी प्राथमिक अंक में 'आह तेरी माधुरी, वाह तेरी माधुरी' के समस्वर की गुप्तजी ने जैनेंद्रजी के प्रकाशक ग्रंथ-रत्नाकर के प्रेमीजी को संदेश भेजते हुए लिखा है कि रवींद्र और शरत् को हमने हिंदी में पाया और अब पाया। कविगण और रचयितागण मौलिक तत्वों की खोज में व्यस्त रहने के कारण समालोचना के क्षेत्र में आकर भी यदि कुछ सूक्तियां और सरस पद कहें तो हमें उनकी व्यंजना समझनी चाहिए। इसलिए मैथिलीशरणजी की सम्मति का अर्थ हम यह नहीं लगाते कि जैनेंद्रजी कहानी कला और विचारशैली संबंधिनी रवि बाबू और शरच्चंद्र की सम्मिलित विशेषताएं लेकर उदय हुए हैं, बल्कि हम सीधी बात यह समझते हैं कि वे उन्हें हिंदी का सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक मानते हैं। दूसरे शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में हम मैथिलीशरणजी के कथन का सूक्ष्म अर्थ न ग्रहण कर स्थूल अर्थ ग्रहण करते हैं और हम समझते हैं कि ऐसा करके हम उनके साथ न्याय ही करते हैं।

हिंदी कहानियों को जैनेंद्रजी कुछ बहुत ही मूल्यवान और उपयोगी वस्तुएं भेंट कर सके हैं जिनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय उनका शक्तिपूर्ण वर्णन कौशल है। घटनाओं के असाधारण तीव्र प्रवाह में पड़कर साधारण व्यक्ति बहने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता। मोपासां की तरह उनकी कहानियों में लीरिक या रेखता का-सा केंद्रीकरण चाहे न हो पर आकर्षण उससे कम नहीं। उनका आकर्षण उनकी गति है। रवि बाबू की 'ताजमहल की कल्पना' की तरह जैनेंद्रजी की कहानियां, महाशून्य के कपोल पर दीप्तिमान अश्रु बिंदु नहीं हैं वे सिनेमा के चलचित्रों की तरह विस्मयकारिणी अथच उद्वेगमयी हैं। इसके लिए जैनेंद्रजी को असाधारण परिस्थितियां तथा असामान्य पात्रों की कल्पना करनी पड़ी है। जैनेंद्रजी के भाषा चमत्कार ने उन्हें अच्छी सहायता पहुंचाई है। हम कह सकते हैं कि इतनी सबल और चुस्त भाषा हिंदी के किसी कहानी लेखक ने नहीं लिखी। कहानियों का फिनिश बहुत की नफीस हुआ है। चित्र की अंतिम तूलिका जैसे प्रकृति के हाथों से ही फिरती हो। यदि बहुत संक्षेप में कहना हो तो हम कहेंगे कि जैनेंद्रजी कहानी की टेक्नीक के मास्टर हैं और हम समझते हैं हिंदी में इस समय उनके बराबर ऐसा कोई दूसरा मास्टर नहीं।

परंतु मास्टर लोग अपने अधिकार का बेजा फायदा भी उठा सकते हैं और दुरुपयोग भी कर सकते हैं। फिर भी उनका दोष दीख नहीं पड़ता। जोर की वर्षा में आंखें उठाकर आसमान को देखना कठिन ही है। आंधी में तो और भी मुश्किल है। 'अंकुर' की आलोचना करते हुए जैनेंद्रजी ने हाल के *हंस* में कहानी के पाठकों की, बैलगाड़ी से उतरकर मोटर पर बैठने की रुचि का जिक्र किया है। सचमुच जैनेंद्रजी ने उसी रुचि के अनुकूल अपनी कहानियों के मोटर तैयार किए हैं। हम उन पर बैठकर धकधक चलने का आनंद मजे में ले सकते हैं। पर दृश्य दर्शन तो मोटर से उतरकर ही किया जा सकता है। दूरबीन हो तो भी काम चल सकता है। पर दूरबीन इतने कहां आते हैं?

हम देखते हैं कि मोटर पर बैठाकर जैनेंद्रजी ने मैथिलीशरणजी को तो मोह ही लिया है, सुमनजी जैसे नागरिकों को भी बहला लिया है। अवध उपाध्याय के दिग्भ्रम का जिक्र तो स्वयं जैनेंद्रजी हमसे कर चुके हैं। उन्होंने साफ कहा कि *परख* के विवाह-प्रसंग में भारतीय संस्कृति की रक्षा का आभास पाते हैं। भारतीय संस्कृति अथवा भारतीय जीवन आदि जो चाहे ढूंढ़े, पर वास्तव में भारतीय-बारतीय से उनका कोई ताल्लुक नहीं है। सुन पड़ता है, उपाध्यायजी आजकल किसी नेटिव स्टेट में रहते हैं। इसलिए अंग्रेजी मोटर वहां कम देखने को मिलते होंगे। तभी जैनेंद्रजी की मोटर को देखकर चकरा गए।

एक अच्छी सी तुलना याद आई। बांग्ला में गिरीशचंद्र और बहुत कुछ द्विजेंद्रलाल भी अतिशय भावप्रवण थे और उनकी कृतियों में भावों का भ्रम काफी मात्रा में हैं। ये तो खैर बड़े आदमी थे पर बहुत से साधारण बंगाली लेखक तो केवल भावों के पुतले ही थे। आज इस वस्तुवादी के युग में उन लोगों की खूब भद्द हो रही है और हम लोग उनकी खिल्ली उड़ाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में अच्छा आनंद ले रहे हैं। आज उनके मार्मिक उद्गार में भी भाव-प्रवणता के दर्शन नहीं किए जाते हैं। पर हमें यह भूल जाता है कि उनकी भाव-प्रवणता आज से कुछ भी भिन्न नहीं है। उन्होंने कथोपथन में जो तीव्र असंतोष भरा है वहां हम पात्रों की असाधारण परिस्थितियों और कार्यों को देखते हैं। यदि दोष है तो दोनों में बराबर, नहीं तो किसी में नहीं। दोष है पर उसकी जिम्मेदारी जैनेंद्र कुमारजी पर बिलकुल नहीं है। जिम्मेदारी बस अखबारों की है और किसी की नहीं। लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा पर हम तो अखबारनवीस के नाते अपना अपराध पहले ही स्वीकार कर लें। बहुत दूर तक असमंजस में रखना अशिष्टता होगी इसलिए हम ऐसा नहीं कर सकते। कहानी लेखकों ने एक बड़ा ही अद्भुत धंधा चलाया है। हिंदी में वह इन दिनों अच्छे जोर-शोर से चल रहा है। सुनकर हंसना ठीक नहीं होगा क्योंकि चोरी पर हंसा नहीं जाता। चोरी का शब्द बड़ा कड़ा है। पर सत्य तो और भी निर्मम होता है। आपकी जिज्ञासा बढ़ रही होगी और हमारे कहानी लेखक भी अपनी अद्भुत चोरी का रहस्य जानना चाहते होंगे। हम उन्हें आगाह करते हैं कि वे इस तरह अपनी कहानियों का प्लाट ने उड़ा लिया करें। वे पूछेंगे कहां से? वे जानते ही हैं—अखबारों से।

अखबारों की 'अनोखी-दुनिया' अथवा 'विचित्र संसार' आदि शीर्षकों के समाचारों की कटिंग लेकर कहानियां गढ़ी जाती हैं इसलिए वे भी अनोखी और विचित्र होती हैं। हमारे कहानी लेखकों को नवीनता और आतंक की घटनाएं अखबारों से ही मिलती हैं। वे असत्य नहीं हैं, क्योंकि अखबारों में असत्य बातें नहीं छपतीं। पर क्या वे सत्य हैं?

(शुक्रवार, 16 अक्तूबर 1931)

## प्रमाण क्या है?

फ्री प्रेस के स्पेशल कमिश्नर ने एक खबर भेजी है। वह इस तरह की है—

> कहा जाता है कि सरकार सांप्रदायिक प्रश्न को अपने हाथ में लेकर हल करना चाहती है। यदि सरकार इस प्रश्न को हल करेगी तो मुसलमानों को पंजाब और बंगाल में स्थायी बहुमत नहीं मिल सकेगा। ऐसी संभावना नहीं है कि वह गांधीजी को यों ही भारत लौट जाने देगी। वह जानती है कि जिस विधान में कांग्रेस के हस्ताक्षर नहीं होंगे वह न तो देशी नरेशों को स्वीकार होगा और न किसी दूसरे राजनीतिक दल को। मुसलमान लोग तो कांग्रेस के सहयोग के बिना भी काम करने और विधान बनाने को तैयार हैं, पर देशी नरेश वैसा करने को राजी नहीं हैं। ब्रिटिश मंत्रिमंडल को भी यह मालूम ही है कि अकेले मुसलमान पंजाब को छोड़कर किसी भी प्रांत में विधान को चालू नहीं कर सकते।

खबर अच्छी तो है पर बड़ी आश्चर्यजनक है। हमें इस पर शंका होती है। पहली शंका तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह है कि ब्रिटिश सरकार को क्या पड़ी है कि वह सांप्रदायिक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करेगी? उसे इसकी जरूरत ही क्या है? हमारे मतभेद को दूर करने की उसकी कोई भी नैतिक जिम्मेदारी नहीं है और न इसमें उसका कोई स्वार्थ है। प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने इसी बात को अभी उस दिन इस तरह कहा है कि तुम हिंदुस्तानी लोग अपना झगड़ा आप तय करो। हम लोग तुम्हारे आत्म-सम्मान की रक्षा करना चाहते हैं। प्रधानमंत्री महोदय ने जितना कुछ स्पष्ट किया जा सकता था, स्पष्ट कर दिया है कि सरकार इस मामले में दखलंदाजी नहीं करेगी, इसलिए हमें फ्री प्रेस के कमिश्नर महोदय की यह खबर काल्पनिक ही समझ पड़ती है।

महात्मा गांधी यों ही भारत लौटा दिए जाएंगे इसकी संभावना नहीं है। शंका होती है कि क्यों संभावना नहीं है। माना कि मिस्टर मेकडानल्ड ने भी (?) सदिच्छा जाहिर करते हुए यह कहा है कि ब्रिटेन गोलमेज सम्मेलन को विफल नहीं होने देना चाहता पर यदि भारत आपस में ही सुलह नहीं करता तो बेचारे ब्रिटेन का क्या अपराध है? वह हजार चाहे उससे क्या होता है? जब तक अनुकूल परिस्थिति ही नहीं होती तब तक ब्रिटेन भारत की रक्षा का भार कैसे और किसे सौंपे? यह तो एक व्यावहारिक प्रश्न है।

लेकिन हमारा भी एक प्रश्न है। ब्रिटेन के पास इस बात का प्रमाण क्या है कि वह सचमुच गोलमेज सम्मेलन को सफल बनाना चाहता है? उसने अब तक के किन-किन कामों में यह आभास दिया है कि वह भारत को स्वराज्य देने की सदिच्छा रखता है। मौके आए हैं पर ब्रिटेन ने अवहेलना ही की है। इसी गोलमेज के कितने ही प्रसंगों में सरकारी रुख खूब साफ दीख पड़ता है। सरकार की नीयत का सबसे साफ और सबसे स्पष्ट परिचय इस बात से लगता है कि वह गोलमेज के प्रत्येक प्रतिनिधि की आवाज को एक-सी ही ताकत की समझती है। उसके लिए महात्मा गांधी की उतनी ही वकत है जितनी सर मुहम्मद शफी की। *बांबे क्रॉनिकल* के लंदन स्थित संवाददाता के पूछने पर वहां के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने वतलाया कि महात्मा गांधी ने गलती की जो अपने साथ अपना राष्ट्रीय दलबल नहीं लाए। उन्होंने मनोविज्ञान के आधार पर यह बतलाने की कोशिश की कि सरकार जितने जोर की आवाज सुनती है, उतना ही प्रभावित होती है। महात्मा गांधी तो एक हैं, कट्टर मुसलमान बहुत से हैं। इसलिए उन्हीं का बोलबाला समझा जाता है। महात्मा गांधी अकेले कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर गए हैं, यह अच्छा किया या बुरा किया इससे हमें मतलब नहीं। हमारे दो सवाल हैं। क्या सरकार को यह सलाह महात्मा गांधी ने दी थी कि राष्ट्रीयता के द्रोही कट्टर मुसलमानों को पूरे एक दर्जन की तायदाद में भर्ती करके विलायत भेजो? यह तो सरकार की ही मर्जी थी कि उसने वैसा किया। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या ब्रिटेन इतना नादान है कि वह मनोविज्ञान के साधारण नियमों से प्रभावित हो रहा है? क्या उसे स्थिति की गंभीरता नहीं मालूम होती? वह इतना बेसमझ है कि महात्मा गांधी की शक्ति नहीं समझ सकता अथवा इसमें भी कोई और रहस्य है?

मिस्टर मेकडानल्ड ने केवल इतना ही तो कहा कि हम गोलमेज को सफल बनाना चाहते हैं, हम चाहते हैं कि इसके द्वारा भारत को कुछ ऐसा पदार्थ मिले जो उन्नति करता-करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वतंत्रता का रूप धारण कर ले। मिस्टर मेकडानल्ड आदि इस पदार्थ को देकर गोलमेज पर सफलता की अपनी मोहर लगाना चाहते हैं तो इससे उनकी साख नहीं मानी जाएगी। भारत अब पदार्थ नहीं चाहता, वह स्वराज्य चाहता है। यदि स्थिति को और भी पेचीली नहीं बना देना है तो प्रधानमंत्री को इस तरह के द्विविधामूलक शब्द-जाल को मुंह से न निकालना चाहिए।

विलायत में आजकल चुनाव का बाजार खूब गर्म है, पर हम देखते हैं कि इसमें भारत की चर्चा ही कहीं नहीं है। अनुदार दल और लिबरल दलों ने चुनाव संबंधी जो वक्तव्य निकाले हैं उनमें गोलमेज का कहीं जिक्र भी नहीं किया गया। केवल मजदूर दल ने भारतीय प्रश्न का उल्लेख करने का कष्ट उठाया है और यह इच्छा प्रकट की है कि दल गोलमेज सम्मेलन को सफल बनाना चाहता है। पर जहां तक हमें पता है इस बार मजदूर दल की विजय की संभावना नहीं है। इस बार अनुदार दल का बहुत शोर है। अब तक बिना विरोध चुने जाने वाले जितने सदस्यों की संख्या है उसमें अनुदार दल वालों की संख्या मजदूर दल वालों की चौगुनी है। यदि इसे ही हम ब्रिटेन की मनोवृत्ति का प्रतिबिंब मान लें तो हमें यह समझने में देर नहीं लग सकती कि विलायत में इस बार अनुदार दल की ही सरकार प्रतिष्ठित होगी। इस अनुदार दल का भारत के प्रति जो भाव रहा है वह चर्चिल साहब की कृपा से अच्छी तरह प्रकाश में आ गया है और जो कुछ कसर थी वह चुनाव संबंधी अनुदार दल की विज्ञप्ति से और भी अधिक स्पष्ट हो गया। भारत का, गोलमेज सम्मेलन का कहीं जिक्र ही नहीं है। फिर भी फ्री प्रेस के कमिश्नर महोदय ने खबर भेजी है कि सरकार गांधीजी को लौटने नहीं देगी। वह सम्मेलन सफल करने की भरसक कोशिश करेगी। ऐसी अवस्था में कमिश्नर साहब से हमारा यह प्रश्न क्या अनुचित होगा कि इस बात का प्रमाण क्या है?

## सेना आवश्यक नहीं

अभी हाल में महात्मा गांधी ने लंदन में विद्यार्थियों की एक सभा में सेना की आवश्यकता के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है, 'समाज की मौजूदा हालत में यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि सेना का बहिष्कार कर दिया जाए। अभी तक चोर, डाकुओं और जेबकटों के लिए उपयुक्त सविनय अवज्ञा के नियम मैं नहीं बना सका।' आपका कहना है, 'यदि भारतवर्ष को अहिंसा के सिद्धांतों पर स्वराज मिल गया तो वह अवश्य ही इस बात का ऐलान कर सकेगा कि सेना की कोई आवश्यकता नहीं है।'

गांधीजी अहिंसा-धर्म के परम विश्वासी हैं। यद्यपि सभ्यता की वर्तमान अवस्था में पश्चिमी देशों से ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि वे सेना का त्याग कर सकेंगे पर कम से कम सेना से काम चलाने का प्रयत्न अवश्य किया जा सकता है। यदि आगामी निशस्त्रीकरण सम्मेलन में महात्मा गांधीजी का यह संदेश कुछ प्रेरणा कर सके तो संसार का बडा कल्याण हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# अछूतों के प्रतिनिधि

गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भारतीय अछूतों के प्रतिनिधि स्वरूप होकर शरीक होने वाले डॉक्टर अंबेडकर का असली स्वरूप पहचानकर भारत में अनेक स्थानों पर अछूतों की सभाएं हो रही हैं तथा लंदन में महात्मा गांधी आदि नेताओं के पास इस आशय के तार भेजे जा रहे हैं कि श्री अंबेडकर भारतीय अछूतों के प्रतिनिधि नहीं हैं। अहमदाबाद की अछूत सभा ने तो महात्मा गांधी को अपना प्रतिनिधि मानने के लिए कॉन्फ्रेंस के सभापति के पास तार भेजा है। यदि वास्तव में विचारपूर्वक देखा जाए तो डॉक्टर अंबेडकर ने अल्पसंख्यक समुदाय उप-समिति के आगे जो विचार प्रकट किए हैं वे बड़े ही दोषपूर्ण हैं। भारत में महात्मा गांधी अछूतों के मुक्तिदाता और गरीबों के दरिद्र नारायण के नाम से ख्यात हैं पर विलायत में डॉ. अंबेडकर अछूतों की प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और गांधीजी को फटकार बतला रहे हैं। गोलमेजी चुनाव की बलिहारी है।

# हिंदी के क्षेत्र में बाबू जैनेंद्र कुमार—2
# (*परख* की परख और *वातायन* की झांकी)

सत्य कभी संयोग नहीं होता। हमारे अखबार वाले संयोग को ही सत्य मानकर छापते हैं। तो भी यह सत्य नहीं हैं। सत्य कभी समझौता नहीं करता, वह बड़ा ही कठोर है। वह सूक्ष्म है। ऋषिगण उसे ज्ञान दृष्टि से देखते हैं। सत्य की तलवार लेकर वे तत्वदर्शी युग-युगांतर के सिद्धांतों और धारणाओं की धज्जी उड़ाते चले जाते हैं। अंत में युग के युग शून्य दीख पड़ते हैं, मानव जाति के विशाल भूखंडों का जैसे अस्तित्व ही नहीं रह जाता। बड़े-बड़े दिव्यदर्शऩ मिथ्या दीख पड़ते हैं, देश के देश साहित्यशून्य बन जाते हैं। हम नहीं कहते कि यह सत्य पूर्व अथवा पश्चिम के बांटे पड़ा है, हम इतने धृष्ट नहीं हैं। कोई कैसे कहेगा कि सत्य सदा सात्विक आलोचऩाओं में ही निहित है, मनोरंजक साहित्य, उपन्यासों और छोटी-छोटी गल्पों में भी उसकी खूब झलक मिलती है। आजकल के उपन्यास और गल्प पश्चिम से आए हैं इसलिए वहीं के उदाहरण लीजिए। अनातोले फ्रांज ने अपना *थायस* लिखा था तब कठोर परिश्रम करके उसने उस शताब्दी के संबंध का संपूर्ण प्राप्त साहित्य पढ़कर लिखा था। आर.एल. स्टीवंसन ने खान (Mines) से संबंध रखने वाली कहानियां लिखी हैं, तत्संबंधी संपूर्ण उपलब्ध जानकारी के साथ। वे लोग इसे Special कहते हैं पर हमारे यहां अभी इसकी कोई विशेष जरूरत नहीं समझी जाती। हम अपने युग के चलते-फिरते जीवन से ही परिचित और प्रभावित होते हैं, तह तक पहुंचते ही नहीं।

*परख* के मुख पृष्ठ पर तुलसीदासजी की 'करतल गत आमलक समाना' की पंक्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुकूल हथेली पर विश्व ब्रह्मांड रखा दीख पड़ता है, जिनके लिए 'विश्व वदर सम' है उनकी परख तो अच्छी ही होनी चाहिए। इसको देखकर अंतरंग की परख कीजिए। यदि आप अपने को धोखा न दें तो देखेंगे कि भारतीय संस्कृति फारसी तहजीव अथवा यूरोपियन कल्चर वगैरह *परख* के विषय नहीं हैं, *परख* का विषय है सत्यधन के आदर्शवाद की परख कर उसे रसातल भेज देना और (बिहारी बाबू के) विरोधवाद को परख कर उसे ऊपर स्वर्ग में उठा लेना। पर भगवान की मर्जी, मनुष्य के गिराने-उठाने से व्यर्थ ही कोई गिरता-उठता नहीं। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जिसकी शुरू से अंत तक मार डालने की कोशिश की गई है वही आदर्शवाद मरकर भी *परख* में भूत बनकर बैठा हुआ है और चिंरजीवी विनोदवाद नेस्तनाबूद हो गया, औलाद भी नहीं छोड़ गया। *परख* की अंतिम पंक्तियां देखिए, 'एक ने दूसरे के माथे का चुंबन किया, एक ने दूसरे के आंसू पोंछे। और दोनों फिर अलग-अलग राह चल दिए। न जाने कब ... के लिए।' कितना ... है। क्या उतना ही नहीं ... धन का, परख के प्रारंभ ... तो वहीं चक्र चला। ... कहां है? ... क्या साहित्य ... विज्ञान और ... न्यूटन का ... विकास ... समस्त तत्वों को ग्रहण कर आगे नहीं बढ़ सकते? बढ़ सकते हैं पर बिना Specialisation के नहीं। हम एक विचार हिंदुस्तान का और एक आइडिया रूस का लेकर और उसके साथ अपनी एक आध मनोवृति को मिलाकर भी बहुत कुछ लिख सकते हैं पर वह आगे बढ़ाने वाली, विकास करने वाली प्रणाली नहीं है। हम स्वामी दयानंद और मोशिए लेनिन को लड़ाकर चाहते हैं कि दुनिया को कुछ इंच ऊंचा उठा देंगे, हमारी यह परख कैसे ठीक कही जाएगी?

आज तो हम संयोग की तलाश में नित्यप्रति निकलने वाले अखबारी मजमूनों को छीना करते हैं कुछ नया मसाला-नया सदाचार, नई अश्रुतपूर्व रहन-सहन आदि आदि हमारे जी को बहुत भाते हैं। हम वन्य सौंदर्य के प्रेमी हैं, कुछ विस्मयजनक चमत्कार हो कि हम टूटें। हम उदार बनकर 'पाप' के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं पर कौन जानता है हम संकीर्ण बनकर उसी के हाथों के पुतले नहीं हो रहे। परंपरा की सामाजिक प्रतिफल की किंचित भी चिंता न कर हम व्यक्ति के लिए शायद अपने ही लिए सब कुछ पुण्य सबकुछ आचारलोभ बतलाते हैं। आज हमारी सहानुभूति तन्मय होकर समस्त विश्व को स्पर्श ही नहीं, आच्छादित भी करती है पर जो हमारे अत्यंत निकट है हमें वह उतना अच्छा नहीं लगता।

इस मनोवृत्ति के बहुत से कारण हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग ने दुनिया को छोटा बना दिया है और हमारी तृष्णा खूब बढ़ी है। हम एक छलांग में ज्ञानी बन गए हैं पर ज्ञान से हमें संतोष नहीं मिला। अद्‌भुत की तलाश में घूमना आज युग धर्म हो रहा है। समय रहते खतरे का घंटा बजा दिया जाए तो अच्छा है, नहीं तो हमारे साहित्यकार अभी तो पुरानी पगंडडी छोड़कर अद्‌भुत अपरिचित राजपथ की सैर करने लगे हैं, यदि यही रफ्तार रही तो पृथ्वी ग्रह को ही पार कर कुछ अनोखे, अपर ग्रहों के ही विस्मयजनक आख्यान शुरू हो जाएंगे। तब पछताना होगा।

[...] प्रांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साहित्यकारों को यह लाइसेंस मिला हुआ है कि वे एक-एक व्यक्ति को लेकर तमाम सामाजिक उत्तरदायित्व, शृंखला और आचार-व्यवहार को तहस-नहस कर डालें। उन्हें यह कोई नहीं जता सकता कि परंपरा का प्रभाव आदर्शों के प्रति संयम, उनका समीकरण भी कुछ अर्थ रखते हैं, कुछ अस्तित्व रखते हैं। साहित्यकार श्रेष्ठ हैं, वे विधाता बनकर जो चाहते हैं रचते हैं, यह सब उनका आत्म प्रकाश है।

हिंदी कहानी लेखकों में ये सब बातें जैनेंद्र कुमारजी को ही लक्ष्य कर कही जा सकती हैं। जो और कहानी लेखक ... अब तो इन्हें सुन नहीं ... चमक दमक की याद बनी रहती है। प्रसन्नता की बात है कि जैनेंद्रजी की कहानियां ठीक रास्ते पर चल रही हैं। अभी सर्वत्र नहीं और सब नहीं। जहां वे चमत्कार लाना चाहते हैं, जहां वे नई बात कहना चाहते हैं वहां वे फेल होते हैं। अन्यत्र वे अच्छे सफल हो रहे हैं। 'अंधे का भेद' और 'भाभी' कहानियां बहुत अच्छी हुई हैं जिनमे पहली तो विश्व साहित्य की वस्तु है।

इस लेख में हमने अपने मित्र की अधिक प्रशंसा नहीं की, कुछ कड़ाई ही की है। हमें उनके स्वभाव का भी खयाल रखना पड़ा है। वे अपनी शक्ति जानते हैं, अपनी दुर्बलता शायद ठीक-ठीक नहीं जानते। ऐसे तो हिंदी में नई और अद्‌भुत बात कहने वाले बहुत से कहानी लेखक हैं जिनके सामने जैनेंद्रजी की कोई बिसात ही नहीं। पर वे हमारे मान के नहीं। जैनेंद्रजी हमारे मान के हैं। इसलिए हमने उनके दोषों का ही अधिक विस्तार किया है। ऐसे तो हम भी जानते हैं, वे भी जानते हैं और हिंदी में जितने भले आदमी हैं जानते हैं कि बाबू जैनेंद्र कुमार हिंदी के कहानी लेखकों में सबसे अधिक संभावनाएं लेकर आए हैं और बहुत कुछ करने का सामर्थ्य रखते हैं। वे हिंदी कहानी लेखकों की प्रथम पंक्ति में हैं, यह तो हम पहले कह चुके हैं, दुबारा दोहराने की जरूरत नहीं।

(सोमवार, 19 अक्तूबर 1931)

# शक्ति संचय

आज शक्ति के समारोह का दिन है पर कितने ही कारणों से हमारे लिए यह बहुत कुछ बेमतलब हो गया है। अनेक युगों का अज्ञान इसके साथ लग गया है जिसके कारण आज इसे हम थोड़ी सी दौड़-धूप, तड़क-भड़क और उत्साह के रूप में ही देखते हैं। इसके अतिरिक्त शक्ति के उपासकों की हिंसा लीला भी होती है जिसके संबंध में भी हमें बहुत कुछ कहना है। इसके लिए हमने हिंसा लीला शब्द ही उपयुक्त समझा है क्योंकि आजकल इनमें शक्ति की उपासना कहीं नहीं दीख पड़ती, शक्ति की रूढ़ि ही इधर-उधर मारी-मारी फिरती है। प्रतिवर्ष की प्रथा की तरह इस वर्ष भी वही गाना-बजाना, वही नाटक-सिनेमा और वही भैंस-बकरी-बलि होगी।

---

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसके आलावा कुछ नहीं होगा। चेतना का एक भी परमाणु नहीं बनेगा, एक भी चिन्गारी जल नहीं उठेगी, राख का बहुत बड़ा ढेर उसे ढंके हुए है। या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता, और या, देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण, कालि रूपेण, धृष्ट रूपेण संस्थिता आदि कहकर हम 'नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः' खूब कहेंगे पर जरा भी नहीं समझेंगे कि क्यों कहा। जो अपने को बुद्धिमान और पढ़ा-लिखा समझते हैं और बड़े भारी देवीभक्त बनते हैं वे *दुर्गा सप्तशती* का पाठ करेंगे, उसे *गीता* से उत्तम बताएंगे पर यह नहीं समझेंगे कि वे क्या समझे। आज इस देश के शाक्तों तक को शक्ति का स्वरूप ज्ञात नहीं है, नहीं तो बहुत सी ऊल-जलूल बातें मुंह से निकालकर वातावरण को कलुषित न करते।

हमारे यहां के जितने भी धर्मग्रंथ हैं और जितनी भी उपासना-प्रणालियां हैं सब हमारी चेतना को, हमारे आत्मभाव को ही जाग्रत करती हैं। उनका प्रकृत आशय यही है, प्रकृत अर्थ यही है पर आजकल अर्थ तक किसी की पहुंच ही नहीं रही। जितने उपाख्यान देखिए सब इसी बात के साक्षी हैं पर कोई उनकी ओर नजर नहीं दौड़ाता। रावण सच्चा शाक्त था जिसने अपने सिर काटकर शंकर के सामने रख दिए थे, पर आजकल के शाक्त अपनी ओर ध्यान ही नहीं देते। देवों का उपाख्यान हमें स्मरण दिलाता है और आग्रह करता है कि अपने भीतर के असुर का संहार करें, मर-मर कर पुनः-पुनः जी उठाने वाली रक्तबीज की सी कलुषित भावनाओं का उन्मूलन करें पर आज यह सब कौन करता है। वैदिककाल के अश्वमेध यज्ञों की महिमा को कोई नहीं जानता पर तर्क सभी करते हैं। बेचारे आर्यसमाजियों ने समस्त दोष के परिहार के लिए और प्राचीन आर्यों को निरीह साबित करने के लिए अपने ढंग का अर्थ लगाने की चेष्टा की है और हवन के लिए घी और अनेक मूल्यवान पदार्थों को स्वाहा कर हवा को साफ करने और स्वच्छ पानी बरसाने की कोशिश करते हैं, दरिद्र देव पर भी दया नहीं दिखाते। आज शक्ति के समस्त पूजकों को यह जान लेने की आवश्यकता है कि शक्ति की पूजा आत्मशक्ति के संचय के लिए ही देवी के बहुत से रूप हैं। वह शांति रूप में भी और शक्ति रूप में भी, कीर्ति रूप में भी और अन्य असंख्य रूपों में भी सर्वत्र व्याप्त है और प्रयत्न करने पर प्राप्त भी हो सकती हैं। यह न समझना चाहिए कि पशुहिंसा में अथवा नरमेध में ही देवी का वास है। देवी इतनी एकांगी नहीं हैं। वह महाशक्ति अहिंसा में भी उतने ही प्रखर एवं प्रशांत रूप में विराजती हैं जितनी उग्र से उग्र (पवित्र से पवित्र भी कहा जा सकता है) पशुहिंसा में। इसे समझना चाहिए। न समझने के कारण ही बहुत से सांप्रदायिक विद्वेष का सूत्रपात होता है। हम अचेतन अवस्था में संघर्ष करते हैं। और अज्ञान के कारण रूढ़ियों को ही सिद्धांत मानते हैं। जड़त्व के समस्त परमाणुओं की बलि देकर यदि हम देखने लगें तो देखेंगे कि महात्मा गांधी की अहिंसा में शक्ति का अपूर्व उन्मेष है और इसी कारण वे संसार के महाशक्तिशाली व्यक्ति हैं, तथापि बहुत से झूठे, रूढ़िवादी, निश्शक्त व्यक्ति इसे मानने को तैयार नहीं होंगे।

आधुनिक बुद्धिवादियों को इन बातों का कुछ भी मूल्य नहीं समझ पड़ेगा, क्योंकि उनकी बुद्धि बढ़ी हुई है। अभी उस दिन हम नोबेल पुरस्कार प्राप्त अमेरिका के प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वैज्ञानिक राबर्ट मिलिकेल की एक किताब पढ़ रहे थे जिसमें लिखा गया है कि संसार के जितने भी अहिंसा के उपदेशक हैं वे दुनिया को प्राचीन जंगली अवस्था और जंगली जीवन की ओर ही ले जा सकते हैं। संसार का कोई उपकार नहीं कर सकते। अहिंसा, अहिंसा की पुकार मचाकर वे शक्ति संपन्न राष्ट्रों को हिंसा के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि अहिंसा की दीक्षा में दीक्षित राष्ट्र पर विजय प्राप्त करना उनके लिए बहुत ही आसान हो जाता है। पुस्तक में यह दलील भी दी गई है कि अहिंसा और प्रेम का संदेश सुनकर लोग थोड़े समय के लिए प्रभावित हो सकते हैं पर जब उसकी प्रतिक्रिया होगी तब फिर एक-दूसरे का गला काटना शुरू हो जाएगा।

परंतु राबर्ट मिलिकेल साहब को पूर्वीय जीवन का रहस्य मालूम नहीं है। वे अपनी गैस और गोला सभ्यता के बड़े प्रेमी हैं इसलिए वे इतना तो समझ सकते हैं कि आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य प्रकृति को बड़ी हद तक बदल दिया है पर यह नहीं समझ सकते कि अहिंसा के द्वारा भी मानव प्रकृति कम से कम इसी हद तक बदली जा सकती है। उन्हें यह भय तो है कि अहिंसा और प्रेम का संदेश स्थायी नहीं होगा पर यह भय नहीं है कि मोटर और हवाई जहाजों के शोर से भी पृथ्वी पटा जाएगी और उनके द्वारा बदली हुई मनुष्य प्रकृति की प्रतिक्रिया में बड़े-बड़े अनर्थ करेगी। इसके चिह्न भी थोड़े-बहुत दीख पड़ने लगे हैं और उम्मीद है कि जल्द ही और भी दीख पड़ने लगेंगे। पर वे कबूल नहीं करते कि अनिष्ट की संभावना दोनों में है।

पर हम कहेंगे कि गांधी का अहिंसामय शक्ति-संचय इस युग की बड़ी ही कल्याणमयी विभूति है। यह युग प्रहार करता, हिंसा करता-करता, संघर्ष और युद्ध करता-करता थक गया है। हम तो कहेंगे कि इसकी अतिमात्रा हो गई है। *महाभारत* के काल तक इसकी अतिमात्रा नहीं हुई थी, तब तक धर्म युद्ध होता था। युद्ध के भी नियम थे, अपराधी और निरपराधों में भेद समझा जाता था इसलिए युद्ध में भी आत्मभाव था। वह हिंसा वर्ण्य थी। पर आज की हिंसा में वह आत्मभाव कहां है? आज बड़े-बड़े राष्ट्र अशक्तों पर चढ़ाई करते हैं, साम्राज्यवादी अपनी तृष्णा का क्षेत्र बढ़ाते जाते हैं। क्या इनमें कहीं भी शक्ति के दर्शन होते हैं? हमें तो नहीं होते। परंतु गांधी के अहिंसावाद में नवीन भारत की राष्ट्रीय शक्ति आलोकमयी किरण की भांति खिल उठी है। यह अहिंसा की उषारश्मि राष्ट्र के मंगलप्रभात के अवसर पर बड़ी ही भव्य दीख पड़ी है। इसने तिमिरांध देश को ज्योति रेखा से प्रदीप्त किया है। हमारा राष्ट्र इस शक्ति का संचय कर संसार की मुक्ति में सहायक बनेगा। आज संसार जिसके बिना व्याकुल है और क्षीण वाणी में जिसकी पुकार चतुर्दिक सुन पड़ रही है, यह वही तो अहिंसा की और शांति की महाशक्ति है। बड़े-बड़े बुद्धिवादी लीग ऑफ नेशंस के द्वारा इसी का आवाहन कर रहे हैं, यद्यपि अब तक सफल नहीं हुए हैं। हमने गांधी की अहिंसा के रूप में उसी के दर्शन किए हैं अतः हम उनकी आरती उतारते हैं और उसके सामने प्रणत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# महात्माजी की विजय

आज विजयादशमी के अवसर पर हम महात्मा गांधी की उस विजय का उल्लेख बड़ी प्रसन्नता के साथ कर रहे हैं जिसे चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचारी ने *यंग इंडिया* के पिछले अंक में प्रकट किया है। आप लिखते हैं कि गोलमेज सम्मेलन सफल हो या असफल पर इसमें संदेह नहीं कि उनका लंदन जाना सार्थक हो गया। सचमुच गांधीजी की मनोमोहिनी मुसकान ने विलायत वालों को अपने वश में कर लिया है और वे बहुत दिनों तक उस प्रीति-भेंट को कभी भूल नहीं सकेंगे। गांधीजी की यह विजय पूर्व के सात्विक जीवन की विजय है। हम देखते हैं कि स्वामी रामकृष्ण के अंग स्पर्श से जो चेतना जाग उठती थी गांधीजी की मुसकान भी वही कर रही है। यहां के महात्माओं का जीवन कितना रहस्यमय है।

(गुरुवार, 22 अक्टूबर 1931)

# कोई आशा नहीं

पं. जवाहरलाल नेहरू ने महात्मा गांधी को तार से यह खबर भेजी थी कि इलाहाबाद जिले की लगान माफी नाकाफी है और उन्होंने जिले में लगान-बंदी का आंदोलन चलाने के संबंध में गांधीजी की सम्मति चाही थी। यह पता लगा है कि इस तार के जवाब में महात्माजी ने नेहरूजी को स्थिति देखकर काम करने की आज्ञा दे दी है और इसी जवाब में एक वाक्य और लिखा है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। वह वाक्य यह है—'यहां कोई आशा नहीं है।' नेहरूजी के तार का जवाब देते हुए यह वाक्य भी लिखा जाता यह आवश्यक नहीं था क्योंकि प्रसंग कुछ दूसरा था। इसलिए उस वाक्य का महत्व और भी अधिक हो जाता है। स्मरण रखना चाहिए कि यह वाक्य उन्हीं महात्मा गांधी का है जो बंबई से विलायत के लिए रवाना होते समय संदेश दे गए थे कि मैं जन्म से ही आशावादी हूं, मैं तो आशा के विरुद्ध भी आशा ही रखता हूं। ये वे ही महात्मा गांधी हैं जिनके कोष में 'कठिन' या 'असंभव' जैसा कोई शब्द ही नहीं है। ब्रिटेन के सदाशय और उनकी उदारबुद्धि पर उन्हें अब तक बड़ा विश्वास रहा है। उन्होंने प्रत्येक प्रयत्न करके देशी नरेशों को अधिक से अधिक विश्वास दिलाया ताकि वे खातिर जमा रखें। हिंदू-मुस्लिम-सिख समस्या का समाधान करने के लिए उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रखा। सारांश यह कि हिंदुस्तान के भिन्न-भिन्न मतों को एकमत करने का उत्कट उद्योग करने में आपने कुछ भी कसर नहीं की और कट्टर से कट्टर अनुदार दली अंग्रेज को भी अपने संयम से वश में किया। गांधीजी के संबंध में ब्रिटेन का लोकमत यह सुना गया कि वे बड़े ही नर्म और समझदार व्यक्ति हैं और समझौते के लिए उनसे बढ़कर उपयुक्त आदमी दूसरा है ही नहीं। आज वे ही महात्मा गांधी लिखते हैं कि 'यहां कोई आशा नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रश्न उठते हैं कि कारण क्या हैं? जैसाकि स्वाभाविक ही है ब्रिटेन के पदाधिकारी संपूर्ण अपराध हिंदुस्तान का ही बतलाएंगे और यही उन्होंने किया भी है। प्रधानमंत्री महोदय ने अपने पिछले भाषण में जो कुछ कहा, हम सुन ही चुके हैं। हिंदुस्तान यदि एकमत हो जाए तो ब्रिटेन उसे स्वराज्य दे दे। बड़ा ही पवित्र और नेक इरादा है। इसके संबंध में कोई क्या कह सकता है। सचमुच हिंदुस्तान के गोलमेजी सदस्यों में जिनकी संख्या सौ से ऊपर है, बडी फूट है। जितने देशी नरेश हैं, कई दलों में बंटे हुए हैं। पिछले गोलमेज सम्मेलन में ही छोटे-छोटे रजवाड़ों ने संघशासन में अपना अस्तित्व लोप हो जाने का भय दिखलाया था और उसके बाद पटियाला नरेश जैसे चक्रवर्ती राजा ने भी अपना विरोध प्रकट किया था। फिर भी किसी कदर खैरियत थी क्योंकि नरेंद्र मंडल के अधिकांश सदस्य संघ के पक्ष में थे। अब तो स्थिति बहुत ही चिंताजनक हो गई है। सर अकबर हैदरी ही नहीं, महाराज बीकानेर जैसे उदार नरेश भी मुहलत मांग रहे हैं और इस तरह काम अटका रहे हैं। संघशासन में देशी नरेशों की आर्थिक जिम्मेदारी कितनी रहेगी इस प्रश्न को लेकर प्रायः सभी देशी नरेश व्यस्त हो रहे हैं, इस कारण जो संघ योजना आसान जान पड़ती थी वह अधिक नहीं तो कई महीनों (एक वर्ष से भी अधिक) तक के लिए प्रायः असंभव हो गई है। जो आशंका थी वही हुआ। इसी आशंका का विचार कर श्री चिंतामणि ने लिबरल फैडरेशन के बंबई वाले पिछले महत्वपूर्ण अधिवेशन में साफ-साफ कहा था—'देशी नरेश संघशासन की योजना स्वीकार करें या न करें ब्रिटिश भारत को उत्तरदायी शासन मिलना चाहिए।' श्री चिंतामणि ने उस समय बड़ी विवेक-बुद्धि और दूरदर्शिता का परिचय दिया था क्योंकि आज ठीक वही स्थिति आई हुई है। देखें ब्रिटेन लिबरल फैडरेशन की इस मांग के संबंध में क्या कहता है? ब्रिटेन के लिए यह समझ रखने की बात है कि संघ शासन की कल्पना उसके ही द्वारा की गई है और भारत के राष्ट्रीय प्रतिनिधियों ने उसे व्यावहारिक समझकर ही स्वीकार किया है। श्री चिंतामणि स्पष्ट रीति से सिद्ध कर चुके हैं कि संघशासन की जो परिपाटी भारत में चलने वाली है वह पूर्ण प्रतिनिधि शासन को बहुत बड़ी हद तक दबा रखेगी। इसलिए इस परिपाटी में यदि किसी का हित है तो ब्रिटिश सरकार का न कि राष्ट्रीय भारत का। ब्रिटेन को इस संबंध की अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी और विदेशों के निष्पक्ष विचारक भी यह मानेंगे कि ब्रिटिश भारत की स्वराज्य की मांग, देशी नरेशों के संघ शासन में शामिल न होने के बहाने अस्वीकार नहीं की जानी चाहिए।

मजहबी प्रश्न का अड़ंगा और भी भयानक है। कोशिश की जाती है कि यह पूरा कसूर भारत के ही मत्थे मढ़ दिया जाए, पर सत्य तो किसी का पक्षपात नहीं करता। सत्य वह है जिसका उद्घाटन श्री चिंतामणि ने उक्त लिबरल फैडरेशन के भाषण में किया था। उसमें इतिहास के प्रमाण देकर, स्वयं ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड की पुस्तक का उद्धरण देकर यह दिखाया गया था कि हिंदू-मुस्लिम भेदभाव किस तरह से बढ़ा। आज ब्रिटिश प्रधानमंत्री भारतीय प्रतिनिधियों को ईमानदारी का सबक सिखाते हैं पर यह नहीं देखते कि पिछले डेढ़ सौ वर्षों के शासन काल में उनके देश ने हमें कितनी ईमानदारी सिखाई है। महात्मा गांधी कहते हैं कि गोलमेज के प्रतिनिधि राष्ट्रीय प्रतिनिधि नहीं हैं। उनका कहना दोनों अर्थों में ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक तो इस अर्थ में कि वे पक्षपात की और मतलब की दृष्टि से चुने गए हैं और दूसरा यह कि वे उस ब्रिटिश शासन की उपज हैं जिसमें शुद्ध राष्ट्रीयता का भाव ठीक-ठीक फैल ही नहीं सकता। ब्रिटेन इस संबंध में अपनी जिम्मेदारी बिलकुल ही समझने को तैयार नहीं है, पर क्या वह इतिहास के पृष्ठों को फाड़ सकता है?

सबसे बड़ी चीज है नीयत। यदि ब्रिटेन की नीयत अच्छी है तो भारत के स्वराज्य के मार्ग में कोई बाधा नहीं पड़ सकती। यदि संपूर्ण घटना-चक्र के भीतर ब्रिटेन के मंसूबे का पता लगाया जाए तो कुल मिलाकर वह किसी तरह अच्छा नहीं कहा जा सकता। उसने गोलमेज सम्मेलन बुलाया यह उसकी सदिच्छा अवश्य है पर उसके साथ भी बहुत सी बातें लगी हुई हैं। ब्रिटिश सरकार ने सलाह-मशविरे और मेल मिलाप की बात तभी की है जब वह अपने कठोर कार्यों का नैतिक समर्थन किसी से नहीं प्राप्त कर सकी है। किसी भी शासक राष्ट्र के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह साधु बनकर अपने स्वार्थ को छोड़ नहीं बैठेगा, पर ब्रिटेन तो बीच-बीच में साधु बनने का भी दम भरता है। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार नकल करने की अपेक्षा सत्य और व्यावहारिक बातों की ओर ध्यान दिया जाए। यदि ब्रिटेन को वास्तव में यह अनुभव प्राप्त हो चुका है कि भारत की राष्ट्रीय शक्ति इतनी दृढ़ हो गई है कि वह दमन नहीं की जा सकती तो वह आगामी कार्य पर विचार करे। यदि ब्रिटेन को यह मालूम हो रहा है कि वह दमन चक्र को काम में लाकर अपने समर्थकों की संख्या कम और भारतीय आंदोलन की शक्ति को अधिक ही करता जा रहा है तो उसे इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मिस्टर ब्रेल्सफोर्ड जैसे व्यक्ति, जो आंदोलन काल में भारत आए हुए थे और इस समय विलायत में हैं, स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि भारतीय जनता की सबसे प्रमुख राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस है और कांग्रेस के महान प्रतिनिधि महात्मा गांधी हैं। पर जान पड़ता है, सर सेमुएल होर जैसे व्यक्ति सत्य को बहुत शीघ्र ग्रहण नहीं कर सकते। अभी उस दिन आपने यकबयक यह फर्मान निकाल दिया कि ब्रिटिश फौजी अफसर भारत सरकार या भारतीय अफसरों की हुकुमअदूली नहीं करेंगे, यद्यपि लार्ड विलिंग्डन ने भारत में आते ही पहली बात यह कही थी कि हम वर्ण भेद मिटाकर भारतीयों और अंग्रेजों से समता का व्यवहार करना चाहते हैं। सवाल यह है कि दोनों बात एक साथ कैसे हो सकती हैं? एक ओर तो प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ब्रिटेन की नेकनीयती का सबूत देने में कोई कसर नहीं रखना चाहते और दूसरी ओर भारत सचिव सेमुएल होर ब्रिटिश अफसर को भारतीय अफसरों और भारत सरकार तक के मातहत रखने को तैयार नहीं है। मिस्टर ब्रेल्सफोर्ड का कहना है कि फौजी खर्च में पूरी काट-छांट करके ही ब्रिटेन भारत के असंतोष की पहली किश्त को दूर कर सकता है पर वैसे तो कोई लक्षण नहीं दीख पड़ते। ब्रिटेन के आगामी चुनाव में अनुदार दल का ही बोलबाला रहेगा और सर सेमुएल होर की खूब चल बनेगी। जान पड़ता है, इन्हीं सब बातों का विचार कर महात्मा गांधी ने पं. जवाहरलाल को लिखा है कि 'यहां कोई आशा नहीं'। अभी भी समय है, ब्रिटेन चाहे तो गोलमेज सम्मेलन को भंग होने से बचा सकता है यदि ब्रिटेन 'कारण ते कारज कठिन' वाली महात्मा तुलसीदास की मूल्यवान पंक्ति को समझे तो वह अपने को कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी सम्मेलन को भंग करने का कारण नहीं बना सकता। वह समझेगा या नहीं यह भी शीघ्र ही मालूम होगा।

(रविवार, 25 अक्टूबर 1931)

# राष्ट्रीय मुस्लिम कॉन्फ्रेंस

पंजाब कट्टर मुसलमानों का खास अड्डा है और मौलाना शफी दाऊदी और डॉक्टर इकबाल वगैरह के इकबाल से मजहब-परस्ती का जहर फैलाने में वहां किसी तरह की कसर नहीं की गई है, फिर भी पिछले दिन लाहौर में प्रांत के राष्ट्रीय मुसलमानों का जो सम्मेलन हुआ और उसमें जिम्मेदार नेताओं के द्वारा जो बातें कही गईं उन्हें देख-सुनकर बहुतों की आंखें खुल जाएंगी और बहुतों को अविरल मालूम पड़ेगा। सम्मेलन के स्थानापन्न सभापति डॉक्टर अंसारी के जुलूस की बेअदबी करने वाले काले झंडे लेकर मुहर्रमी सूरत जरूर दिखला गए थे पर बंबई की पिछली हुल्लड़बाजी और उत्पात को देखते हुए यह फिर भी कम ही कही और क्षमा ही की जाएगी। डॉक्टर अंसारी ने इसे जिस हल्की निगाह से देखा है वह उनके योग्य ही है और वह राष्ट्रीय मुस्लिम दल की उस सहनशीलता का ही परिचय देता है जिसकी इस समय अधिक से अधिक आवश्यकता है। जो गुमराह होकर रास्ते में भटक गए हैं अथवा जो भेड़ियाधसान की तरह आंख मूंदकर चल रहे हैं उन्हें रास्ते पर लाना आसान काम नहीं है, पर थोड़े दिनों के ही उद्योग से विपरीत परिस्थितियों में भी अपने बल पर खड़े होकर राष्ट्रीय मुस्लिम दल ने अपना अस्तित्व तो दृढ़ कर ही लिया है, अपने सहिष्णु और उदार आचरण के द्वारा उसे सार्थक भी कर दिखाया है। इस दल का उद्देश्य सत्य और सात्विक है और यह सबल ऐतिहासिक तर्कों के द्वारा अपने विरोधियों का सामना करने को तैयार है। इसीलिए इसके विरोधी या तो शिमले की चहारदीवारी के भीतर से बोलते हैं अथवा अपने अनुयायियों के द्वारा काले झंडे फिरवाकर, ढेले फेंककर या इसी तरह की दूसरी हरकतों से चाहते हैं कि सत्य को दबा दें और जाग्रत मुस्लिम राष्ट्रीयता के प्रवाह को रोक दें पर ऐसा कभी नहीं हो सकता।

इस राष्ट्रीय मुस्लिम सम्मेलन की आवाज ठीक मौके पर सुन पड़ी है क्योंकि विलायत में इन दिनों कट्टर मुसलमानों की करामात से गोलमेज के टूट जाने तक की आशंका की जा रही है, और इसकी जिम्मेदारी भारत के अतिरिक्त और किसी की हो ही कैसे सकती है? यह तो भारत का घरेलू मसला है, इसे भारत को ही हल करना होगा। यदि इस मामले में किसी को कुछ संदेह भी था तो सर मुहम्मद शफी ने पिछले मार्के के भाषण के बाद उसकी गुंजाइश ही नहीं रखी। सर मुहम्मद शफी के भाषण के बाद यह गंभीर सत्य सब पर प्रकट हो गया था कि गोलमेज के प्रतिनिधि राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधि हैं और खासकर मुसलमान प्रतिनिधियों को चुनने में सरकार ने ऐसी बारीकी की छानबीन की है जिसकी तारीफ किसी तरह चुक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही नहीं सकती। मुसलमानों की जो प्रमुख संस्थाएं और संघटित दल थे उन सबके प्रधान-प्रधान व्यक्ति चुने गए हैं। उदाहरण के लिए खिलाफत कॉन्फ्रेंस, मुस्लिम लीग, मुस्लिम कॉन्फ्रेंस इत्यादि इत्यादि। सरकार के इस सूक्ष्म विश्लेषण के बाद यह कौन कह सकता था कि उसने एकतरफा चुनाव किया है, पर डॉक्टर अंसारी ने अपने महत्वपूर्ण भाषण में इस पर नवीन प्रकाश डाला है। डॉक्टर साहब के जैसे सज्जन के लिए यह उचित ही था कि बिना जरूरत अपने और अपने सहयोगियों के महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख न करें पर जब लोग-बाग अपने झूठ बहबूदी का राग अलापने लगते हैं और सत्य को छिपाने की चेष्टा होने लगती है तब सत्यनिष्ठ व्यक्तियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे भ्रम को दूर कर और सत्य को प्रकाश में लाएं। जब सर मुहम्मद शफी ने भिन्न-भिन्न मुस्लिम दलों का नाम लिया था तब उन्होंने इस बात का जरा भी खयाल नहीं रखा था कि किस दल की कितनी शक्ति है और उस शक्ति के अनुकूल किसके कितने प्रतिनिधि चुने जाने चाहिए थे। राष्ट्रीय मुस्लिम दल के हाथों में सांप्रदायिक समझौते की कुंजी है क्योंकि इस पर भारत के सभी संप्रदायों और राजनीतिक दलों को विश्वास है। इस सत्य को प्रकट करना जरूरी था और इसे डॉक्टर साहब ने प्रकट किया। सर मुहम्मद शफी को इस जानकारी के बाद इस बात का दुबारा गौर करना चाहिए कि जो दल राष्ट्रीय दृष्टि में इतना महत्वपूर्ण है उसका केवल एक सदस्य चुना गया और वह भी बहुत कहा-सुनी के बाद। उस एक सदस्य की आवाज भी भरसक दबाई गई और दूसरे दलवालों को खूब जोर-शोर से बोलने का मौका दिया गया। बारीक छान-बीन के बाद प्रतिनिधि चुनने का खुला रहस्य यही है, जो चाहे देख सकता है।

सर मुहम्मद शफी का कहना था कि खिलाफत कॉन्फ्रेंस नामक संस्था के अध्यक्ष भी गोलमेज के प्रतिनिधि बनकर आए हैं। क्या हम उनसे पूछ सकते हैं कि इस खिलाफत कॉन्फ्रेंस की हुलिया क्या है और आजकल इसकी वकत कितनी है? किसी संस्था का नाम ले लेने भर से जिम्मेदारी पूरी नहीं हो जाती। सर मुहम्मद शफी को यह भी समझना चाहिए कि संस्थाओं की आड़ में बहुत कुछ असत्य और फरेब भी अपना काम करता रहता है। डॉक्टर ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में यह बतलाया कि खिलाफत आंदोलन का श्रीगणेश करने वाले मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली नहीं थे बल्कि स्वयं डॉक्टर अंसारी और उसके सहयोगी थे। यह ऐलान ठीक मौके पर किया गया है। आज के खिलाफत आंदोलन में कुछ भी वकत नहीं रखते इसलिए इस भ्रम में पड़ना व्यर्थ है कि खिलाफत कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष कोई प्रतिष्ठित कार्यकर्ता और मुस्लिम जनता के किसी बड़े अंश के प्रतिनिधि हैं। कम से कम इस जानकारी से इतना लाभ अवश्य हुआ कि खिलाफत कॉन्फ्रेंस के साथ भारतव्यापी खिलाफत आंदोलन का जो लगाव समझा जाता था और इस नाते गंभीरता और प्रतिष्ठा का जो भाव उसके साथ-साथ चलता था, वह झूठा साबित हुआ और उसके चलने की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई। किसी संस्था पर किन्हीं कारणों से और किन्हीं परिस्थितियों में कब्जा कर लेना एक बात है और जनता के बीच कार्य करके उसके सच्चे प्रतिनिधि बनना दूसरी बात है। सर मुहम्मद शफी के कथनानुसार सरकार ने मुस्लिम समस्याओं के प्रतिनिधि चुन लिये पर हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समझते हैं उसने इन संस्थाओं की असलियत का कुछ भी विचार नहीं किया।

डॉक्टर अंसारी ने भी और सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष मलिक बरात अली ने भी देश के राष्ट्रीय मुसलमानों का यह लक्ष्य प्रकट किया कि वे पृथक चुनाव के लिए कभी हामी नहीं भर सकते क्योंकि उससे न राष्ट्र का हित होगा, न मुस्लिम संप्रदाय का। चुनाव की लड़ाई साथ रहकर लड़ने से हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे को पहचानेंगे, एक-दूसरे का आसरा रखेंगे। मुसलमान अल्पसंख्यक हैं इसलिए हर हालत में उन्हें हिंदुओं को अपने त्याग और अपनी उदारता से संतुष्ट करना होगा। पृथक चुनाव का समर्थन तब तक तो किसी हालत में किया भी जा सकता था जब तक चुनने का अधिकार जनता के थोड़े अंश को था पर नवीन विधान में बालिग मताधिकार हो जाने पर तो पृथक चुनाव को किसी तरह स्वीकार ही नहीं किया जा सकता। कांग्रेस की राष्ट्रीय नीति के प्रति इस मुस्लिम सम्मेलन ने पूरा विश्वास प्रकट किया और महात्मा गांधी को अपने दल का प्रतिनिधि और नेता चुना। आश्चर्य है कि एक ओर भारत में राष्ट्रीय विचारों के मुसलमानों का पक्ष प्रबल होता जा रहा है और मुस्लिम लोकमत उनकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहा है तब दूसरी ओर विलायत में मुस्लिम प्रतिनिधियों की मजहबी कट्टरता बढ़ती जा रही है और समझौते की आशा दूर होती जा रही है। ऐसी हालत में भी यदि हमसे यह जबर्दस्ती मनवाया जाए कि गोलमेज के मुस्लिम प्रतिनिधियों का चुनाव निष्पक्ष रीति से किया गया है तो हम कहेंगे कि वे व्यर्थ यह कष्ट उठाने के बदले पंजाब के राष्ट्रीय मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के प्रस्तावों और डॉक्टर अंसारी आदि नेताओं के वक्तव्यों को पढ़कर लाभ उठाएं।

(शुक्रवार, 29 अक्टूबर 1931)

## किसान सत्याग्रह और सरकार

हमारे इलाहाबाद शहर के कांग्रेस नेताओं ने जिले में किसान सत्याग्रह की तैयारी की है। और उस दिन देहातों के लगभग तीन-साढ़े तीन हजार किसानों का मजमा इकट्ठा हुआ था और नेताओं ने उनकी मजलिस में भाषण दिया था। मजलिस के सभी किसानों ने हाथ उठाकर सत्याग्रह के प्रस्ताव से अपना इत्तिफाक जाहिर किया था। इस मामले में महात्मा गांधी की भी राय ली गई और गांधीजी ने पं. जवाहरलाल को जैसा उचित और आवश्यक समझें करने का अधिकार दे दिया। नेहरूजी ने यह उचित और आवश्यक समझा कि कांग्रेस कार्यकारिणी की इजाजत भी ली जाए, तदनुसार उन्होंने देहली के पिछले अधिवेशन में इलाहाबाद जिले के किसानों की हालत पेश की। सुना गया कि कार्यकारिणी के सदस्यों ने इसका विरोध किया और शायद जोरदार विरोध किया। विरोध किया, क्यों किया यह कुछ भी नहीं बताया गया। अन्य राजनीतिक संस्थाओं की ही तरह कांग्रेस भी अपनी कार्यवाही खुले आम नहीं करती। इस बात को हम न तो महात्माजी के आदर्श के अनुकूल समझते हैं और न कांग्रेस की प्रतिष्ठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के अनुरूप। यह तो प्रसंग की बात हुई। तय यह हुआ कि सत्याग्रह के संबंध में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की राय ली जाए। उसकी जो कुछ राय होगी उस पर कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल विचार करेंगे और वे जैसा कहेंगे वैसा किया जाएगा। इससे भी पता लगता है कि कार्यकारिणी का रुख सत्याग्रह के पक्ष में नहीं था अथवा था भी तो वह उसके बारे में अधिक निश्चित मत जानना चाहती थी। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का फैसला आजकल में मालूम हो जाएगा। वास्तव में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अधिकांश प्रभावशाली सदस्य इलाहाबाद के ही हैं और हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि वह सत्याग्रह के प्रस्ताव से सहमत हो जाएं। अंतिम निर्णय सरदार पटेल करेंगे यह बहुत अधिक संतोष की बात है क्योंकि सरदार पटेल इस समय देश में सत्याग्रह के सबसे बड़े विशेषज्ञ हैं और इस संबंध में उनका जितना अनुभव है, दूसरे किसी का नहीं। उनका अंतिम निर्णय अवश्य ही उनके विस्तृत अनुभव के आधार पर होगा।

देहली की कार्यकारिणी समिति ने सत्याग्रह की मंजूरी देने में इतनी आनाकानी क्यों की इसका कुछ पता नहीं लगा यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न जान पड़ता है। हमें अनुभव से ही काम लेना पड़ता है। संभव है, यह प्रश्न उठाया गया हो कि सत्याग्रह के लिए इलाहाबाद जिला ही क्यों चुना गया। किसानों की हालत तो और जिलों में भी खराब है। यह सवाल उचित भी जान पड़ता है। पिछले दिनों अवध के रायबरेली आदि कुछ जिलों की हालत शोचनीय बतलाई जा रही थी और सत्याग्रह स्थगित होने के बाद वहीं बहुत अधिक असंतोष सुन पड़ रहा था। मथुरा और सुल्तानपुर आदि जिलों की दशा भी बिगड़ी हुई थी। मथुरा के संबंध में तो स्वयं पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'अंग है क्या' में अग्रलेख लिखा है। राष्ट्रीय साप्ताहिक *प्रताप* में कानपुर जिला के किसानों की स्थिति का 'व्यवहार परिचय' और अंक भी दिए गए थे जिनसे हालत बड़ी ही नाजुक दीख पड़ी थी। पिछली बार जब महात्मा गांधी, वाइसराय और प्रांतीय गवर्नर सर मेलकम हेली से वहां के किसानों की अवस्था के संबंध में बातें करने गए थे तब भी उन्होंने किसी खास जिले को लेकर बहस नहीं की थी। बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन ने अपने पिछले वक्तव्य में प्रकट किया है कि जिले का किसान सत्याग्रह केवल आर्थिक दृष्टि से उठाया गया है। इसमें स्वराज्य पाने का राजनीतिक उद्देश्य नहीं है। यदि ऐसी बात है तब तो यह और अधिक आवश्यक है कि सत्याग्रह ही सीमा एक जिले तक ही सीमित न रखी जाए बल्कि सभी जिलों के किसानों का कष्ट दूर करने का प्रयत्न किया जाए। स्वयं टंडनजी ने लगान के संबंध में जो ब्योरे पेश किए हैं वे प्रांत भर के हैं यद्यपि उन्होंने इलाहाबाद जिले के अंक भी अलग से दे दिए हैं।

सुभीते और तैयारी की बातें भी हम मानते हैं। यह सच है कि इलाहाबाद में नेताओं की संख्या दूसरे जिलों से अधिक है और नेतागण सुभीते के साथ जिले में दौरा कर सकते हैं! यह भी ठीक है कि किसानों की माली हालत का रेकॉर्ड तैयार करने में और जिले के सरकारी अधिकारियों से बहस-मुबाहिसा करने में आसानी होगी। इससे अधिक क्या विशेषता है, यह हम नहीं जानते। हमको इस बात में विश्वास नहीं है कि इलाहाबाद जिले के किसानों की हालत सबसे अधिक गई-गुजरी है और यहां असंतोष अथवा संगठन सबसे अधिक बढ़ा हुआ है। जहां तक हमारा अनुभव है इस जिले के किसानों और जमींदारों में अधिक मनमुटाव है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इतना मनमुटाव शायद दूसरे जिलों में नहीं है। इस जिले में किसानों की बेदखली दूसरे जिलों की अपेक्षा शायद अधिक हुई है इसलिए स्वभावतः यहां के किसान, जमींदार ज्यादा बिगड़े हुए हैं। यद्यपि पिछले किसान सम्मेलन ने एक प्रस्ताव इस आशय का भी स्वीकार किया है कि कांग्रेस जमींदारों को भी मदद देगी पर बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन और श्रीयुत शेरवानी ने अपने भाषणों में यह कठिनाई दिखाई है कि जमींदार अपने को सरकार का आदमी समझते हैं और सरकार और जमींदार मिलकर किसानों को दबाते हैं, उठने नहीं देते। जब नेताओं का यह मत है तब हम समझते हैं कि किसान-सत्याग्रह में जमींदारों को मिलाने की चेष्टा नहीं की जाएगी और साधारण जनता को आंदोलन किसान और जमींदारों के संघर्ष के रूप में दीख पड़ेगा। उसका फलाफल क्या होगा यह हम अभी नहीं कह सकते पर यह जरूर है कि यह स्थिति इलाहाबाद जिले में सत्याग्रह शुरू करने के लिए सुभीते की नहीं है।

प्रबंध और दूरदर्शिता के विचार से ही ये बातें कही गई हैं। बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन के पिछले महत्वपूर्ण वक्तव्य के बाद तमाम जिम्मेदारी सरकार पर आ जाती है। इस बात में संदेह करने की गुंजाइश नहीं रही कि सरकार की मौजूदा छूट साधारणतः सब जिलों के लिए और विशेषकर इलाहाबाद के लिए बिलकुल नाकाफी है। टंडनजी ने यह स्पष्ट रीति से दिखाया है कि लगान की शरह 1900-1 के मुताबिक ही नहीं, बल्कि 1895-96 के मुताबिक होनी चाहिए, पर वह तो दूर, सरकार ने 1915-16 की शरह कायम की है। फल यह हुआ है कि जहां अनाज का भाव आधे से भी अधिक गिर गया है, वहां छूट रुपए में ढाई आना ही मानी है। 1338 (फसली) की एक फसल का लगान चुका देने के बाद 1339 के लगान के लिए किसानों के पास काफी पैसा नहीं रह सकता। पर सरकार इस पर पूरा गौर नहीं कर रही। एक ओर तो भारत सरकार टैक्सों को बढ़ाती जाती है जिसका फल एक अंश तक किसानों पर पड़ता है और दूसरी ओर काफी छूट प्रांतीय सरकार लगान में नहीं देती जिससे किसानों की दशा बड़ी शोचनीय हो गई है। प्रांतीय सरकार को चाहिए कि वह संपूर्ण स्थिति पर दूरंदेशी से विचार करे और सबसे पहले किसानों की अवस्था का सुधार करे। इस समय हिसाब-किताब को बारीकी में पढ़ना अच्छा नहीं होगा। मोटे तौर से देखकर छूट का ऐलान करना सरकार का पहला कर्तव्य है।

## विलायती-चुनाव

इस चुनाव में मजदूर नेताओं की हार और अनुदार दल वालों की जीत हुई। राष्ट्र सरकार कायम करने वाले मिस्टर मेकडानल्ड भी चुनाव में जीत गए। मिस्टर बाल्डविन, चर्चिल, लायड जॉर्ज आदि की भी इच्छा पूरी हो गई। अब प्रश्न यह है कि चुनाव तो हो गया है परंतु इस चुनाव का क्या प्रभाव पड़ेगा? हमारा तो भारतीय प्रश्न से विशेष संबंध है। अनुदार दल के पुराने कारनामों को देखते हुए यह अंदाज लगाया जा सकता है कि मजदूर सरकार के समान अनुदारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की सरकार भारत में लोकप्रियता कभी नहीं प्राप्त कर सकेगी। हमें तो इसमें संदेह है कि मिस्टर मेकडानल्ड के खड़े किए हुए राष्ट्रीय सरकार के झंडे के नीचे शायद ही ये अनुदार दल वाले बहुत दिनों तक एकमत से एकत्रित रह सकेंगे? मजदूर सरकार की देख-रेख में पहली गोलमेज कॉन्फ्रेंस जितनी सफल हुई थी उतनी मिस्टर मेकडानल्ड द्वारा रची हुई राष्ट्रीय सरकार की देख-रेख में नहीं हो रही है। प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्री पट्टाभि सीता रमैय्या ने तो अनुदार दल के विजयी होने पर हर्ष प्रकट किया है क्योंकि उनका कहना है कि अब घुमाव-फिराव की बातें न होकर सीधी-सीधी बातें होंगी और जो कुछ होना होगा जल्द हो जाएगा। देखना है क्या होता है।

(रविवार, 1 नवंबर 1931)

# नए चुनाव और भारत

विलायत के नए चुनाव का आखिरी नतीजा आज मालूम हो गया। पार्लियामेंट के 615 सदस्यों में 473 अनुदार दल के हैं पर मिस्टर मेकडानल्ड, सर जॉन साइमन और सर हरबर्ट सेमुएल जैसे सहायकों को पाकर उसकी संख्या 554 तक पहुंच गई है। जैसाकि पाठकों का मालूम ही है मिस्टर मेकडानल्ड पिछली बार मजदूर दल के नेता थे और सर जॉन साइमन तथा हरबर्ट सेमुएल उदार दल के सदस्य थे पर इन लोगों ने अपनी पुरानी पार्टियों को छोड़ दिया और अब अनुदार दल में मिलकर 'राष्ट्रीय सरकार' नाम की एक सरकार खड़ी करने को तैयार हुए हैं। कहा जाता है कि इन नेताओं ने ब्रिटेन की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए अपनी नीति बदली थी पर कारण जो कुछ हो अब हालत यह हो गई है कि मिस्टर मेकडानल्ड आदि अपना स्वतंत्र मन नहीं चला सकते, अनुदार दल के ही बनकर रह सकते हैं। उनकी संख्या यों ही इतनी अधिक है कि उन्हें किसी दूसरे के सहयोग की आवश्यकता ही नहीं। मिस्टर मेकडानल्ड तब तक अपना प्रधानमंत्री पद स्थिर रखना चाहेंगे जब तक वे अनुदार दल के बहुमत दल का किसी तरह अनादर नहीं कर सकेंगे। यह अनुदार दल की सरकार है, मिस्टर मेकडानल्ड और सर जॉन साइमन आदि पानी में नमक की तरह इसी में चुने हुए हैं।

ध्यान देने की बात है कि इस बार अनुदार दल वालों का इतना बहुमत वैसी अवस्था में हुआ है जब देश के सामने इस दल ने कोई निश्चित नीति, कार्यविधि का प्रस्ताव नहीं रखे थे। चुनाव का वक्तव्य निकालते हुए इसने केवल इतना ही कहा था कि राष्ट्रीय हित में जो उचित होगा, वही किया जाएगा। साधारण अवस्था में इस प्रकार का अस्पष्ट कार्यक्रम संदेह की दृष्टि से देखा जाता पर विलायत की जनता को इस दल पर इस बार असाधारण विश्वास था। लंकाशायर आदि मजदूरों के केंद्र हैं पर वहां से भी इस बार अधिक संख्या में मजदूर सदस्य नहीं चुने गए। खबर छपी है कि सारे मुल्क में जितने वोट अनुदार दल की 'राष्ट्रीय सरकार' को मिले, उसके आधे भी दूसरे समस्त दलों को नहीं मिले। वोट देने वालों की संख्या दो करोड़ से ऊपर थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जिसमें लगभग डेढ़ करोड़ वोटरों ने उसके पक्ष में मत दिया। विलायत में तो प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को मत देने का अधिकार है और वहां के रहने वाले शिक्षित होने के कारण अपना भला-बुरा अच्छी तरह से समझते हैं, और समझ-बूझकर राय देते हैं इसलिए यह आसानी से कहा जा सकता है कि ब्रिटेन की जनता इस समय अनुदार दल के बहुमत को पसंद करती है। संभव है, मिस्टर मेकडानल्ड आदि के 'राष्ट्रीय सरकार' में सम्मिलित होने का भी कुछ प्रभाव मत देने वाली जनता पर पड़ा हो पर उस प्रभाव की एक मर्यादा होगी, वह बहुत ही थोड़ी होगी। उस प्रभाव को निकाल देने पर भी हम कह सकते हैं कि विलायत का बहुमत यह चाहता है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीति अनुदार दल के हाथ में सौंप दी जाए।

ब्रिटेन की राष्ट्रीय नीति से हमें यहां संबंध नहीं है और न उसकी संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय नीति का ही हम यहां जिक्र कर रहे हैं। अब अनुदार दल की सरकार अधिकार पाकर फ्री ट्रेड की परंपरा को तोड़ देगी और टेरिफ की दीवाल खड़ी कर बाहरी माल के आयात को कम करने की चेष्टा करेगी, तो करे, यहां हम उसके पक्ष-विपक्ष में कुछ नहीं कहेंगे। वह आगामी निरस्त्रीकरण सम्मेलन में कौन सी नीति बरतेगा, यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न हो सकता है पर अभी यह हमारे विचार क्षेत्र से बाहर है। हम केवल भारत के प्रश्न को लेकर देखना चाहते हैं। इस प्रसंग में हमें पहली बात यह कहनी है कि अनुदार दल का जो पुराना रेकॉर्ड है वह हमारे अनुकूल नहीं है, बल्कि सीधे शब्दों में वह हमारे प्रतिकूल है। मिस्टर चर्चिल की बातें हमारे दिलों में गड़ी हुई हैं। अनुदार दल बहुत दिनों से भारत में कड़ी नीति बरतने के लिए जोर लगाता आया है और पिछले सत्याग्रह के समय बीच-बीच में उन लोगों की चढ़ी हुई आंखें खूब मजे में देखी जा चुकी हैं। अनुदार दल ने कभी खुले दिल से गोलमेज की समझौता नीति का समर्थन नहीं किया। पिछले गोलमेज सम्मेलन में लार्ड पील का रुख जैसा था हम देख ही चुके हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि सेना के भारतीय अधिकार आदि के संबंध में जैसे विचार इन लोगों के थे उन्हें भारतीय स्वीकार करने को तैयार नहीं हो सकते।

तब में और अब में अंतर इतना ही है कि अब अनुदार दल अधिकार पद पर आ गया है। इससे जहां एक ओर उसकी शक्ति बढ़ गई है वहीं दूसरी ओर उनकी जिम्मदारी भी बढ़ गई है। संभव है, अनुदार दल अपनी शक्ति के नशे में अपनी जिम्मेदारी को भूल जाए अथवा संभव है, वह दोनों को याद रखे। संभव है, अपनी जिम्मेदारी को याद रखते हुए भी यह भारत के उग्र असंतोष की शक्ति का अंदाजा लगा सके अथवा संभव है, वह जिम्मेदारी की कूटनीति का ही स्वरूप देकर बाहर वालों को भुलावे में डाल रखे और स्वयं भी धोखे में पड़ा रहे। ये सभी अवस्थाएं ब्रिटेन और भारत के भविष्य-संबंध के लिए खतरनाक हैं पर इस खतरे के टलने की कोई आशा नहीं दीख पड़ती।

प्रसिद्ध विचारक बर्नार्ड शा ने नए चुनाव पर सम्मति देते हुए मिस्टर मेकडानल्ड की अच्छी खिल्ली उड़ाई है और पत्र प्रतिनिधि के पूछने पर जहां और नई बातें कही हैं वहां यह भी कहा है कि अनुदार दल वाले गांधी को खाली हाथ भारत लौटा दें तो कोई ताज्जुब नहीं। सर तेजबहादुर सप्रू ने भी पिछले दिन सरकार को अच्छी फटकार बतलाई है और गोलमेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के साथ खिलवाड़ करने की सरकारी नीति की निंदा की है। महात्मा गांधी कभी असंयमी नहीं बनते और अंतिम क्षण तक निराश नहीं होते पर पिछले दिन कैंब्रिज में *स्पक्टेटर* पत्र के संपादक से बातें करते हुए उन्होंने लाचार होकर यह कहा कि यदि कॉन्फ्रेंस भंग हुई तो सत्याग्रह जो हमारा सुरक्षित अस्त्र है फिर से प्रयोग में लाया जाएगा। देखना है, इस अंतिम सूचना का भी कुछ असर पड़ता है या नहीं। अभी तो लक्षण दीख पड़ते हैं कि शीघ्र ही गोलमेज के सदस्यों को जो भोज दिया जा रहा है वही शायद विदाई का भोज हो। इस संबंध में हम मिस्टर मेकडानल्ड से भी विशेष आशा नहीं रख सकते क्योंकि उनकी कोई जोरदार आवाज अनुदार दल में उठ ही नहीं सकती। तब लाचार होकर हमें समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और हम बड़ी ही आशंका के साथ और उत्कंठा के साथ उस लिपि को पढ़ना चाहते हैं जो ब्रिटेन और भारत के मस्तक पर लिखी हुई है, जिससे उनके भविष्य का निर्णय होने वाला है।

## *संन्यासी* और *राक्षस का मंदिर* (समालोचना)–1

प्रयाग के साहित्य भवन लिमिटेड से हाल में पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र बी.ए. के *संन्यासी* और *राक्षस का मंदिर* नामक दो नाटक प्रकाशित हुए हैं। इसके पहले मिश्रजी छायावादी कवि की हैसियत से *अंतर्जगत* नाम की कविता पुस्तक लिख चुके हैं। और *अशोक* नाम का आपका एक ऐतिहासिक नाटक भी निकल चुका है परंतु उन दोनों कृतियों से हाल के इन दो नाटकों का कोई साम्य अथवा तारतम्य भी नहीं पाया जाता। इनमें तो आपकी विचारधारा बिलकुल ही बदली हुई है। वहां तो आप रहस्यवादी कवि थे और कहां अब नितांत शुष्क बुद्धिवादी नाटककार हो गए हैं। नितांत शुष्क तो हमें नहीं कहना चाहिए क्योंकि यद्यपि मिश्रजी बुद्धिवाद की सड़क पर चलने की घोषणा कर चुके हैं तथापि अब तक आप पूरी तरह से उस रास्ते पर नहीं आए हैं, शायद पुराने संस्कारों से अब तक जकड़े हुए हैं, मुक्त नहीं हो सके हैं। इस कारण मिश्रजी को बर्नार्ड शा अभी मन से नहीं भाते, रोमा रोलां का अध्यात्मवाद भी आपके लिए आकर्षण रखता है। इसीलिए आपने भारत के लिए एक सम्मिलित प्रकार के बुद्धिवाद की परिकल्पना की है और आपका वर्तमान बुद्धिवाद इतना आगे बढ़कर समझौता करने को तैयार है कि *राक्षस का मंदिर* की भूमिका में आपने सर राधाकृष्णन की उपनिषद जैसे रहस्यवादी और आध्यात्मिक ग्रंथों के संबंध की सम्मति भी उद्धृत कर दी है और उससे आप सहमत भी हो गए हैं। परंतु भूमिका में आप जितने उदार बन सके हैं, मूल नाटक में उतने नहीं रह सके। *राक्षस का मंदिर* में रामलाल नाम के एक पात्र को देवता की उपाधि दी गई है, तथापि उसमें (देवत्व) का चिह्न यही है कि वह अपने घर को *राक्षस का मंदिर* बना रखने को सहमत है। इसे हम देवत्व का व्यंग्य ही कहेंगे। जब देवत्व की यह अवस्था है तब उपनिषदों के उद्धरण व्यर्थ हो जाते हैं। भारतीय अथवा प्राचीनता के नाम को मिश्रजी मोहवश ही घसीटते हैं, शायद इस मंतव्य से कि इसमें कुछ मौलिकता की झलक दीख पड़ेगी। पर इस तरह भारतीय जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और भारतीय साहित्य के साथ खेलवाड़ करके उनका अपमान करते हैं और उपनिषदों के अर्थ की हत्या करते हैं इसे हम उचित नहीं समझते।

अपना मन पक्का कर लेना चाहिए उसके बाद आगे बढ़ना चाहिए। मिश्रजी का मन डावांडोल है। *अंतर्जगत* से एक छलांग में *राक्षस के मंदिर* में कूद आने का यह स्वाभाविक परिणाम हो सकता है पर उन्हें अब अपना मन स्थिर कर लेना चाहिए, शब्दों को लेकर उड़ाना बेकार होगा। 'यथार्थवाद' आज यूरोप में खूब प्रचलन पा रहा है पर 'यथार्थ' तो केवल एक संकेत मात्र है। वह रिलेटिव है। किसके लिए क्या यथार्थ है यह दूसरी बात है। हमारे लिए ईश्वर यथार्थ है, अध्यात्मवाद सत्य है और सूक्ष्म की कल्पना वास्तविक है, आपके लिए क्या सत्य और यथार्थ है इसका निर्णय आप कीजिए। बुद्धिवाद में भी आदर्शवाद की पूरी व्यवस्था की जा सकेगी यदि उदार बुद्धि से काम लिया जाए। हिंदुस्तान के ज्ञानमार्ग और आधुनिक बुद्धिवाद के मूल में एक ही वस्तु है, कलयुग के प्रभाव से दृष्टि बदल गई है। आधुनिक यूरोप की दृष्टि नाक की सीध में ही देख रही है, उसके सामने विराट जापान का कोई चित्र नहीं है। यूरोप का बुद्धिवादी प्रत्यक्षवादी है अतः वह अनीश्वरवादी भी है। इसके अनेक ऐतिहासिक कारण हैं। जिन परिस्थितियों में यूरोप के अनेक देशों में क्रांतियां हुईं, वे बड़ी ही भयानक थीं। उनके प्रभाव से यूरोप का वातावरण शुष्क हो उठा। इधर समाजवाद और साम्यवाद की जो तरंगें उठीं, उनका उद्गम बेकुनिन, कार्ल मार्क्स, लेनिन, ट्रॉटस्की आदि जिन-जिनसे हुआ सबके सब अश्नीश्वरवादी थे। उनकी सामयिक समस्या थी, उसी में वे तन्मय थे। वह समस्या ही उनके लिए ईश्वर थी पर उन्होंने इस तरह से विचार नहीं किया। उनका ध्यान कार्यप्रणाली में लगा रहा, वे दुनियादारी में फंस गए। वे स्थूल अन्याय की ओर ही देखते रहे और चूंकि वे सुधारक थे इसलिए उस अन्याय को अतिरंजित करके दिखाने में ही उनकी जिंदगी बीत गई। अन्याय को अन्याय समझने की प्रेरणा कहां से मिली, इस पर गौर करने का शायद उन्हें अवकाश ही नहीं मिला। यहां हम भले-बुरे का सवाल नहीं उठाते। केवल इतिहास और सामयिक परिस्थितियों के आधार पर अनीश्वरवादियों की मनोवृत्ति के दर्शन करते हैं। जहां तक यूरोप का ताल्लुक है अनीश्वरवाद, बुद्धिवाद, सोशलिज्म और यथार्थवाद सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। यह विज्ञान नामधारी वस्तु भी बराबर इनकी मदद करती रही है, यद्यपि कुछ वैज्ञानिक इसे स्वीकार करने में हिचकते हैं। सारांश यह है कि यूरोप में एक नई सभ्यता अथवा एक नया जीवन ही निर्मित हो गया है जिसे ऊपर की सब उपाधियां एक साथ सौंप दी जा सकती हैं।

भारत में यह विचारधारा यूरोप से आई है। यहां पहले भी यह मत था। पर वर्तमान रूप में वह पश्चिमी साहित्य, विशेषकर रूसी समाजवादी अथवा साम्यवादी साहित्य के अध्ययन का फल है। हिंदुस्तान और यूरोप की यह बुद्धि दो प्रकार के लोग में फैल रही है। एक तो क्रांतिकारियों में और दूसरे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त आरामतलब व्यक्तियों में। यह विश्लेषण कुछ मनोरंजक है क्योंकि इससे स्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। पहले तो यह बिलकुल पश्चिमी हवा सिद्ध हो जाती है। स्वर्गीय सरदार भगत सिंह ने, 'मैं अनीश्वरवादी क्यों हूं',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शीर्षक लेख में यह स्वीकार किया है कि वे रूसी लेखकों से ही प्रभावित हुए हैं और भारतीय दर्शनों के अध्ययन करने का अवसर नहीं पा सका। श्रीयुत ब्रजनारायण ने पंजाब के *पीपुल* और *ट्रिब्यून* पत्रों में जो लेख इस विषय में लिखे हैं उनमें उन्होंने चार्ल्स डार्विन की सहायता ली है और वनस्पति विज्ञान, भूविज्ञान और प्राणिविज्ञान आदि के उद्धरण और प्रमाण दिए हैं। पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने एक निरीश्वरवादी पात्र को आसमान के तारे दिखाकर उसके मन में ईश्वर के होने की शंका उत्पन्न की है परंतु श्रीयुत ब्रजनारायण ने ठीक वही उदाहरण लेकर वैज्ञानिक प्रमाण द्वारा यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी से करोड़ों गुणा बड़े संख्याहीन नक्षत्रों और उन संख्याहीन नक्षत्रों से, असंख्य गुणा बड़े आकाश के रहते यह समझना भ्रम ही है कि ईश्वर इस लघुतम मनुष्य युग के नित्यप्रति क्षण-क्षण के क्रिया-कलाप का निरीक्षण करता रहेगा। हम यह कह रहे हैं कि मिश्रजी ने तारे दिखाकर अनीश्वरवादी के मन में ईश्वर का विश्वास उत्पन्न करने की जो चेष्टा की है वह बच्चे को चांद खिलौना दिखाकर बहलाने के ही बराबर है। जब वह बड़ा होगा—विकसित बनेगा—तब अपने बहलाने वाले पर निश्चय ही हंसेगा। क्या मिश्रजी को यह अभीष्ट है? इस युग में ईश्वर की सत्ता तारों को देखकर विस्मय करने से नहीं सिद्ध होगी, पर यदि मिश्रजी भी अनीश्वरवाद की ओर बढ़ रहे हों तो दूसरी बात है।

जो बुद्धिवादी होते हैं वे ब्रह्मा भी होते हैं। नए सिरे से दुनिया को बसाने की धुन में रहते हैं। क्रांति की उनकी लत होती है, निर्माण वे कर नहीं सकते। उनके दंभ का पारावार नहीं होता। मिश्रजी एक पात्र से कई बार कहलाते हैं क्योंकि मैं ईश्वर हूं, ईश्वर दूसरा नहीं है। यह अनीश्वरवाद नहीं है क्योंकि अनीश्वरवादी में तो ईश्वर है ही नहीं। यह उससे कहीं अधिक उग्र दंभ और दुस्साहस है जिसमें स्वयं ईश्वर बनकर विश्वशक्ति की स्पर्द्धा की गई है। मिश्रजी का यह पात्र अत्यंत दुष्ट चरित्र है, इसकी कोई साइकोलोजी नहीं है तथापि सीना तानकर बात-बात पर गोली की चोट सहने को तैयार हो जाता है। पता नहीं इसमें इतनी शक्ति कहां से आती है! नाटक में तो कहीं से नहीं, शायद मिश्रजी के मस्तिष्क से।

(गुरुवार, 5 नवंबर 1931)

## उद्देश्य की सिद्धि

पाठकों को मालूम है कि पिछली बार से ही गोलमेज सम्मेलन का काम कई कमेटियों में बांट दिया गया था और उसमें सबसे महत्वपूर्ण संघ शासन योजना कमेटी थी। जब पिछले गोलमेज का अधिवेशन आरंभ हुआ था तब सबसे बड़े मार्के की बात हुई थी कि भारत की देशी रियासतों ने ब्रिटिश भारत के साथ संघ में शामिल होना स्वीकार किया था और तभी यह निश्चय हो सका था कि भारत का भविष्य शासन देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के संघ के द्वारा होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और तभी इस संबंध की पूरी तफसील से जांच-पड़ताल करने के लिए यह संघ शासन योजना कमेटी बनाई गई थी। इस दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि भारत के भविष्य शासन के संबंध में एक निश्चित निर्णय तक पहुंचने और उस निर्णय की ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने बतौर सिफारिश पेश करने का अधिकार इसी कमेटी को दिया गया था जिससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि गोलमेज सम्मेलन का वास्तविक कार्य इसी कमेटी के हाथ में था। इसके अध्यक्ष लार्ड सैंके थे जिन्होंने पिछले दो वर्षों के अंदर अपने भारत-हित का अच्छा परिचय दिया और अपने काम की जिम्मेदारी और गुरुता को भी प्रशंसनीय ढंग से समझा। उन्होंने कई बार अपने भारत प्रेम की घोषणा की है, इसके लिए वे हमारी बधाई के पात्र हैं। अब उनकी कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है और चूंकि रिपोर्ट ही कमेटी के मेंबरों और उसके अध्यक्ष की भारत हितैषिता का वास्तविक पैमाना होगी और चूंकि इसी के आधार पर ब्रिटिश पार्लियामेंट भारत को नए सुधार देगी इसलिए इसकी जांच करना जरूरी है।

हम देखते हैं कि कमेटी की रिपोर्ट भारतीय स्वराज्य के मुख्य-मुख्य प्रश्नों के संबंध में कुछ नहीं कहती और साधारण प्रश्नों पर भी जो कुछ कहती है वह भी हिंदुस्तान की मांग के अनुकूल नहीं है। इस तरह जो कुछ नहीं कहा गया वह अधिक चिंताजनक है और जो कुछ कहा गया वह भी भारत की आकांक्षाओं की तृप्ति नहीं करता। मुख्य-मुख्य सवाल अर्थनीति, अंतर्राष्ट्रीय नीति और फौजी अधिकार के संबंध के थे पर कमेटी इनके बारे में मौन धारण किए हुए है। सर जॉन साइमन की रिपोर्ट की तरफ से हिंदुस्तान ने नाराज होकर जो मुंह फेर लिया था, उसकी बुनियाद यही थी कि वह केंद्रीय शासन का अधिकार भारत को न सौंपकर केवल प्रांतों में ही प्रतिनिधि शासन देना चाहती थी। पर भारत की मांग थी पूर्ण उत्तरदायी शासन की। उसके बाद गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया, इसमें भारत सरकार की ओर से नवीन शासन विधान के संबंध में जो खरीता किया गया, उसमें भारत के केंद्रीय शासन का अधिकार भी स्वीकार किया गया, पर वह केंद्रीय शासन का अधिकार नकली अधिकार था, वास्तविक सत्व ब्रिटेन के ही हाथ में रखा गया था। इससे भारत न सहमत हो सकता था और न सहमत हुआ। उसने स्पष्ट शब्दों में अपना विरोध प्रकट किया। उसके बाद गोलमेज सम्मेलन की बैठकें होती रहीं। बैठक के अंत में जो मसविदा तैयार किया गया उसके अनुसार भारत को केंद्रीय शासन के लगभग 80 प्रतिशत व्यय पर अधिकार नहीं मिला था, केवल 20 प्रतिशत पर मिला था। फौज का संपूर्ण बजट भारतीय व्यवस्था-सभा के कब्जे से बाहर रखा गया और उस समय इसी में गोलमेज के भारतीय प्रतिनिधियों का सबसे प्रबल मतभेद था। पर 'संरक्षण' के नाम पर यह कार्रवाई की गई यद्यपि यह भी नहीं बतलाया गया कि 'संरक्षण' भारत के लिए किस तरह से हितकर है और 'परिवर्तन काल' कब तक चलता रहेगा।

राष्ट्रीय भारत को प्रथम गोलमेज सम्मेलन से किसी प्रकार संतोष नहीं हुआ और कांग्रेस का सत्याग्रह आंदोलन जारी ही रहा। परंतु लार्ड इर्विन की दूरदर्शिता के कारण देहली में इतिहास प्रसिद्ध गांधी-इर्विन समझौता हुआ और उसकी एक मुख्य शर्त यह थी कि 'संरक्षण' वे ही रखे जाएंगे जो भारत के लिए हितकर होंगे। 'संरक्षण' के संबंध में देहली समझौते के बाद भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के कई दलों ने विचार किया जिनमें कांग्रेस की ओर से कराची के अधिवेशन में और लिबरल फैडरेशन की ओर से बंबई में जो विचार हुए वे सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। कांग्रेस तो पहले से ही संरक्षणों के प्रतिकूल थी इसलिए कराची कांग्रेस में उसे विशेष वाद-विवाद करने की जरूरत नहीं पड़ी पर लिबरल फैडरेशन के अध्यक्ष श्री चिंतामणि ने इस अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न पर बड़े ही विशद रूप में विचार किया और इस निर्णय पर पहुंचे कि गोलमेज में रखे गए संरक्षण भारत के लिए हितकर नहीं हैं बल्कि वे उसकी स्वतंत्रता में बाधा हैं। श्री चिंतामणि ने उस समय, जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता के राज्य की कसौटी पर गोलमेज की समस्त सिफारिशों को कसकर देखा था और प्रायः सबको खोटा पाया था। इसके बाद इतने दिनों तक गोलमेज की मजलिस जुटी रही, मिस्टर ब्रेल्सफ्रोर्ड के शब्दों में कितने ही कीमती हफ्ते बरबाद किए गए और अब सुना जाता है कि इस मामले में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री अपनी राय बुधवार को सुनाने वाले हैं। जो गोलमेज सम्मेलन की मुख्य समस्याएं थीं उन पर तो प्रधानमंत्री एक दिन में अपना फैसला देने वाले हैं और जो थोड़े समय में तय किए जा सकते थे उनके लिए संघ-कमेटी ने साल भर से अधिक लगा दिया। समय का यह विलायती हिसाब-किताब हमारी समझ में नहीं आता।

जब तक प्रधानमंत्री अपनी राय नहीं सुना देते तब तक उस संबंध में अनुमान लगाना उचित नहीं होगा, पर संघ-कमेटी की रिपोर्ट बहुत ही असंतोषजनक है। उसने जो-जो निर्णय किए हैं उनमें बहुत से आक्षेप योग्य हैं और उसके कई ऐसे निर्णय भी हुए हैं जो अधूरे हैं, जिनके बारे में दूसरी कमेटी बैठाने की जरूरत होगी। यह और अधिक आक्षेपयोग्य है। कमेटी का मत है कि केंद्रीय शासन में दो व्यवस्था-सभाएं रहें जिनमें क्रमशः 200 और 300 प्रतिनिधि हों और इन दोनों सभाओं के अधिकार बराबर हों। इनमें एक सभा तो (अंशतः) जनता के प्रतिनिधियों से बनेगी और दूसरी प्रांतीय व्ययस्था सभाओं और संघ की रियासतों के प्रतिनिधियों द्वारा चुने हुए व्यक्तियों से बनेगी। एक तो इस प्रकार का अप्रत्यक्ष चुनाव ही लोक संघात्मक शासन के प्रतिकूल है, फिर तुम इसको लोकप्रतिनिधि सभा (Lower house) के बराबर अधिकार दिया जाता तो और भी अनुचित है। यह अनोखी व्यवस्था भारत के लिए इसलिए की ज़ा रही है जिससे जनता का शासन एक थोड़ी हद तक ही प्रतिष्ठित हो सके, सरकारी कब्जा भी बना रहे।

संघ-शासन में रियासतों का और अल्पसंख्यक दलों का प्रश्न उठाकर कमेटी ने कुछ ऐसी बातें कही हैं जिससे मुख्य प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता केवल एक सदिच्छा ही दिखाई देती है। पर स्पष्ट शब्दों में सब कुछ कह देने और सुन लेने का यही मौका है। यहीं से भारत और ब्रिटेन या तो एक रास्ते पर चलेंगे या अलग-अलग चल पड़ेंगे। यह अत्यंत महत्व का संधिस्थल है। यदि रियासतों के शरीक होने, न होने का सवाल उठाकर अथवा अल्पसंख्यक दलों की समस्या खड़ी कर ब्रिटेन यह चाहता है कि वह भारत की स्वराज्य की मांग को अनिश्चित काल के लिए टाल दे तो उसे इसमें कामयाबी नहीं मिलेगी। रियासतों का संघ में शरीक होने का हम स्वागत करते हैं, राष्ट्रीयता की दृष्टि से उसे आवश्यक भी मानते हैं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ब्रिटिश भारत के स्वराज्य को इन सबसे कहीं अधिक आवश्यक समझते हैं। अल्पसंख्यक प्रश्न को भी स्वराज्य के मार्ग में रोड़े की तरह नहीं अटकाया जा सकता। महात्मा गांधी का यह अत्यंत उचित प्रस्ताव था कि पहले सरकार अपना मंसूबा जाहिर करे फिर मजहबी मतभेद हल हो जाएगा। पर ब्रिटेन ने उनकी बात पर अब तक ध्यान नहीं दिया और कमेटी की रिपोर्ट भी उसे टालने में निपुण सिद्ध हुई है। इस तरह हम देखते हैं कि भारत के स्वराज्य का मुख्य प्रश्न बराबर गलतीखाते में रख छोड़ा जाता है और ऐसी-ऐसी समस्याओं पर लंबी-चौड़ी दलीलें पेश की जाती हैं जिनका विशेष महत्व नहीं है। संघ शासन की योजना कमेटी ने भी अधिकांश में यही रुख धारण किया है। हम नहीं देखते कि वह अपने उद्देश्य की सिद्धि कर सकी है इसलिए हम रिपोर्ट से अपना असंतोष प्रकट करते हैं।

## *संन्यासी* और *राक्षस का मंदिर* (समालोचना)—2

गल्प, उपन्यास, नाटक आदि मनोरंजक साहित्य में यथार्थ (realism) के नाम पर इतना अनर्थ हो रहा है कि जीवन के यथार्थ तत्व प्रतिदिन दूर और दुरूह होते जा रहे हैं। इन दिनों यूरोप और अमेरिका की बुद्धि साहित्य के भीतर से जीवन संबंधी समस्याओं को सुलझाने में लग रही है पर वहीं के मनीषियों का मत है कि आधुनिक सभ्यता की सबसे बड़ी विभीषिका साहित्य से ही उत्पन्न हो रही है। अमेरिका के 'एमिटिक स्कूल' के साहित्यकारों की तरह हमारे यहां भी संपूर्ण प्रचलित परंपरा के प्रति जोर-जोर से विद्रोह उठने के लक्षण दीख पड़ते हैं। पर साहित्य का अथवा जीवन का विकास इस तरह नहीं हो सकेगा। जब से बर्नार्ड शा ने शेक्सपीयर की कड़ी आलोचना की तब से हिंदी में भी भावना-मूलक साहित्य का उपहास करने की परिपाटी चल निकली है और प्राचीन समाज का चित्र अंकित करने वाली रचनाओं का विरोध इस बुनियाद पर किया जाने लगा है कि गड़े मुर्दे उखाड़ने से कोई लाभ नहीं। यह मनोवृत्ति अतिशय एकांगी है और विराट जीवन की व्यापक कल्पना के बिलकुल विपरीत है। अभी हाल में प्रसिद्ध दार्शनिक डॉक्टर राधाकृष्णन ने दक्षिण भारत के एक संगीत सम्मेलन में इस प्रकार की ऐकांगिकता की शिकायत भी की थी और यह सुझाया था कि एकांगी बनने से राष्ट्र को यथार्थ समीकृत जीवन प्राप्त नहीं हो सकेगा और आपने ऐसे ही जीवन की उपलब्धि के लिए स्वराज्य की आवश्यकता बतलाई थी। परंतु हमारे बुद्धिवादी रचयितागण अभी भिन्न-भिन्न समस्याओं के फेर में पड़े हैं, संपूर्ण समस्या पर इस दृष्टि से विचार नहीं करते। उन्होंने मनुष्य को बुद्धि का ही पर्याय मान लिया है और उसके अन्य समस्त अवयवों को नगण्य समझा है। पर चूंकि इस तरह के मनुष्य अब तक दुनिया में नहीं होते इसलिए इनमें से बहुतों की आशा भविष्य में जाकर अटकी है। आत्म-रक्षा का यह तरीका बुद्धिवादियों की खोज का एक नमूना है।

तथापि इब्सन और बर्नार्ड शा जैसे अत्यंत तीव्र बुद्धि साहित्यकार इस प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विचार-प्रणाली को कला का रूप देने में सफल हुए और ऐकांगिकता के होते हुए भी इस प्रकार का साहित्य मनोरंजक और माननीय भी है। सामाजिक समस्याओं का विवेचन करने वाले Problem plays नाटक पश्चिम में अच्छा प्रचार पा रहे हैं। मिश्रजी ने अपने नाटकों को भी यही रूप देना चाहा है, इसलिए उनमें आधुनिक समाज के अंशों का चित्रण किया गया है। तथापि समस्या नाटकों में प्रस्तुत समस्या के केंद्र से नाटक की परिधि खींची जाती है। वैसा कोई केंद्र मिश्रजी के नाटकों में नहीं है। अभी हम शा महोदय का *Getting Married* नामक नाटक पढ़ रहे थे जिसमें हमने देखा कि विवाह की समस्या पर जो विचार उन्होंने अपनी विस्तृत भूमिका (शा महोदय की भूमिका उनके मूल नाटकों से भी बड़ी होती है) में व्यक्त किए हैं, उन्हें ही नाटक में भी प्रदर्शित किया है। इस प्रकार का केंद्रीयकरण मिश्रजी में नहीं है। इसलिए उनके नाटक समस्या नाटक (Problem play) न होकर सम्मति-नाटक बन गए हैं, जिनके लिए अंग्रेजी में कोई शब्द ढूंढ़ा जाए तो Opinion Play शायद उपयुक्त हो। समस्या नाटक के लिए मूल समस्या पर अत्यधिक मनन (Intense thinking) की आवश्यकता पड़ती है पर मिश्रजी के नाटकों में वैसी बात नहीं है। इसलिए उन्हें संकुचित न होकर विस्तृत होना पड़ा है।

*राक्षस का मंदिर* पढ़ने पर हमारी यह धारणा हुई है कि यह अतिशय तिक्त रुचि के लेखक की कृति है। ऐसी रुचि रखकर न तो मनुष्य जीवन के साथ न्याय किया जा सकता है और न ही अंतर्मुखी और निष्पक्ष दृष्टि से किसी समस्या पर विचार किया जा सकता है। शा महोदय की रुचि इसके बिलकुल विपरीत है। वे जहां चुटकी लेते हैं अथवा जहां उपहास करते हैं वहां उनके भीतर के अमृत-अथवा कम से कम मिश्री का स्वाद पाठकों को सदैव मिलता है, हिंदी में भी *कंकाल* के व्यंग्यों में लेखक के आंसू झलक उठते हैं पर *राक्षस का मंदिर* के प्रायः सभी पात्र सदैव जैसे कुनैन खाकर बातचीत करते हों और मिश्रजी ने, कुनैन को मीठी करने तक की कोई व्यवस्था नहीं की। ऐसी मनोवृत्ति निस्सीम जीवन का दर्शन नहीं करने देती और अपने चारों ओर एक शुष्क कृत्रिम वातावरण बनाकर उसी में घिर जाती है।

समस्या-नाटक में पात्रों का चरित्र-चित्रण सदैव त्रुटिपूर्ण होता है क्योंकि उनमें समस्या ही प्रमुख हो जाती है, पात्र पीछे रह जाते हैं। यह प्रत्यक्ष अवगुण है, पर श्रेष्ठ कलाकार समस्या का आकर्षण इतना तीव्र कर देते हैं कि यह त्रुटि कम खटकती है, परंतु *संन्यासी* और *राक्षस का मंदिर* दोनों ही किसी समस्या की ओर तन्मय नहीं करते इसलिए चरित्र-चित्रण और भी सदोष दीख पड़ता है। मिश्रजी के एक नाटक का एक प्रधान पात्र 'मुनीश्वर' है। उसके समस्त असाधारण साहस का मूल कहां है यह कहीं देखने को नहीं मिला। इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसी तरह वकील 'रामलाल' भी एक असामान्य पात्र है। ऐसे हैं कि छुरी के गहरे घाव को खिलवाड़ समझते हैं और इतने उदार हैं कि अपनी 'नायिका' के साथ दूसरे के सहगमन को भी सहन कर लेते हैं। वे झूठे संदेह पर अपने लड़के को घर से निकाल देते हैं और जब किन्हीं कारणों से उनका जीवन पलटा खाता है तब भी वे उसे अपनी ही तरह बनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की शिक्षा देते हैं। नाटक में रामलाल की जीवन-दिशा के बदलने का पर्याप्त कारण नहीं है, नहीं तो मिश्रजी का यह पात्र प्रेमचंदजी के उस प्रसिद्ध (Platonic) पात्र के अनुरूप होता जो उनके *प्रेमाश्रम* की नायिका का पिता है। ऐसे ही असगरी का चरित्र-सुधार भी मनोविज्ञान के नियम से नहीं हुआ, न जाने क्यों वह 'कु' से 'सु' हो गई। सिद्धांतों के संबंध में भी मिश्रजी की धारणाएं मजबूत नहीं हैं। कहीं तो गांधीवाद के बड़े भक्त बनकर एक हिंदी अध्यापक की भर्त्सना करते हैं पर अन्यत्र आश्रम नियम को नापसंद कर उससे विरक्ति दिखाते हैं। ऐसे ही कई अन्य प्रसंग भी हैं।

*राक्षस का मंदिर* की अपेक्षा *संन्यासी* हमें अधिक पसंद आया, पर नाटक का नामकरण *संन्यासी* एक कृत्रिम आदर्शवाद की प्रेरणा से अथवा मोहवश किया गया है क्योंकि विश्वकांत कोई संन्यासी नहीं है, उसने वस्त्र गेरू से भले ही रंग लिये हों। बीच-बीच में वह मनीषी बनने का पाषंड करता रहा है पर यह तो उसके चरित्र की स्वाभाविक दुर्बलता रही है। तथापि उसे इस युग का संन्यासी कहा जा सकता है क्योंकि उसमें पर्याप्त देशप्रेम है। पर इसके लिए उसे संन्यासी का चोंगा पहनने की जरूरत नहीं थी।

मिश्रजी ने कथोपकथन में नाटकीय प्रभाव अच्छा लिखा है और उनकी यही प्रतिभा उन्हें सफल नाटककार बनाने में सफल होगी। मिश्रजी के पास विचारों की कमी नहीं है। हम तो कहेंगे विचारबाहुल्य है। आवश्यकता केवल उन्हें संकलित और संयमित करने की है। उनका अध्ययन अच्छा जान पड़ता है पर वह अनेकमुखी नहीं है। उनका वास्तविक अनुभव भी अभी कम है। उनके मस्तिष्क में विचार-सरणियां अनेक दिशाओं से आकर मिलती हैं और उनकी भूमिकाओं से जान पड़ता है कि उन्हें दिग्भ्रम नहीं हुआ है पर जब वे चलने लगते हैं तब रास्ता भूल जाते हैं। इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि वे भटकते ही रहेंगे। आगे चलकर कभी पथ प्रदर्शक नहीं बनेंगे। उन्होंने रंगमंच को सरल करने के जो प्रयास किए हैं वे हिंदी नाट्य जगत के लिए नवीन हैं। इस क्षेत्र में रहकर मिश्रजी मौलिक प्रयोग कर सकते हैं। हम एक मित्र के नाते सदैव उनकी उन्नति की कामना ही नहीं, उनकी सहायता भी करते रहेंगे।

(रविवार, 8 नवंबर 1931)

## दीपावली

कार्तिक की अमावस्या के दिन—दीवाली की रात में—आकाश प्रायः अपने प्रकृतिरूप में रहता है, बादल भी नहीं होते, चंद्रमा भी नहीं। नक्षत्रों की संख्याहीन पंक्तियां अपनी संपूर्ण ज्योति-शक्ति से जितना आलोक कर सकती हैं, करती हैं। आकाशगंगा में दीपावली टिमटिमाती-सी तैरती-सी दीख पड़ती है। इस गति में एक लय-सी, इस अस्थिरता में स्थिर शांति-सी जान पड़ती है। यह एक अत्यंत आकर्षक प्रकृति लीला है। आकर्षण से ही अनुकरण होता है, हमारी दीवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की सृष्टि भी प्रकृति के प्रति इसी आकर्षण के कारण हुई होगी। शरद काल के आकाश की स्वच्छता में जो चमत्कार है वह हममें भी स्वच्छता के अंकुर उत्पन्न करता है। पहले मन की शुद्धि होती है फिर उसी की प्रेरणा से बाह्य अंगों की शुद्धि होती है। हम उत्साह के साथ अपने घरों को निर्मल करने में तत्पर होते हैं। हम शक्ति के साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों की तैयारी करते हैं। यह सब प्रकृति की ही प्रेरणा है। यह भौतिकवाद (Materialism) नहीं है, शुद्ध प्रकृतिवाद है। प्रकृति धर्म और शरीर धर्म भिन्न-भिन्न नहीं हैं, केवल जब हम प्रकृतिस्थ नहीं रहते तभी भिन्नता दीख पड़ती है और तभी नियमभंग होने लगते हैं। छायापथ की मनोहारिणी सुषमा से ही प्रेरणा पा हम लोगों की पहली दीपावली जली होगी पर कालांतर से प्रकृति के बदले विकृति बढ़ती गई और नवीनयुग के कवि के आते ही 'हा! मनुष्य ने मनुष्य को और विकारयुक्त बना दिया है' पुकार उठना पड़ा। वह पुकार मर्म की चोट पहुंचाने वाली है पर सर्वथा यथार्थ है।

अशांति और उद्विग्नता की अवस्था में सत्य और यथार्थ सूझते ही नहीं। एक शुष्क वातावरण के कारण प्रकृति की पुकार अर्थात् आत्मा की पुकार अर्थात् ईश्वर की पुकार सुन नहीं पड़ती। तब सुधारक लोग पैदा होकर अपनी आवाज बुलंद करते हैं—दीवाली बंद करो, होली मत मनाओ आदि आदि के फिकरे कसने लगते हैं। 'हम भूखों' मर रहे हैं, संसार में आग लगी हुई है इत्यादि बातें बहुत कुछ सत्य और प्रभावशालिनी हैं और उनके द्वारा जोश भी खूब पैदा किया जाता है, पर निदान की ओर किसी का ध्यान नहीं है, ओषधि कोई नहीं बतलाता। जीवन के विकृत अंश को लेकर उसे रंगीन बनाकर पेश किया जाता है, जो कुछ प्रकृति है उसकी अवहेलना की जाती है। जो विकार हैं वे नहीं दूर किए जाते, रोग की दवा नहीं की जाती, रोगी को मार डालने में ही कल्याण समझा जाता है। हम दीवाली को बंद करने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि इस गर्हित अवस्था में भी उसमें हमें हानि की अपेक्षा, लाभ बहुत अधिक दीख पड़ते हैं। दीपावली में हमारी कलात्मक अनुभूति के लिए इतनी अधिक सामग्री है, हमारे मनःसंस्कार के लिए उसमें इतना अधिक आलोक है, हमारी प्रकृति से उसकी इतनी अधिक समता है कि हम उसके संपूर्ण अवगुणों के साथ भी उसे ग्रहण करने में आना-कानी नहीं करेंगे।

आकाश के श्यामल चित्रपट में हमारी दीपावली किसी अतीव दिव्य रचना की भांति खिल उठती है। यह कला की अत्यंत मनोरम सृष्टि ब्राह्मविरोध के अंतर्गत आत्मिक साम्य का परिचय कराती है। रात में दीपावली की आभा देखकर आकाश का अंधकार देखिए, एक अत्यंत सजीव चलचित्र-सा दीख पड़ता है। तिमिर और प्रकाश के इस मणिकांचन योग को हम तो किसी तरह भूल नहीं सकते। इन दिनों नगरों में बिजली की रोशनी भी काम में लाई जाती है। पर नित्यप्रति के प्रयोग से उसके भीतर दीवाली की आत्मा कहीं झलकती नहीं है, चिमनी में बंद-सी हो जाती है। दीपकों की अस्थिर टिमटिमाहट में जो गति, जो लय है वह बल्बों में तो किसी तरह आ ही नहीं सकती, दीवालियां मानो कोरस गा रही हैं और बल्ब खड़े होकर सुन रहे हैं। यह मेल भी बुरा नहीं है।

बालकों के मनोविकास के लिए यह उत्सव प्रायः अद्वितीय है। झिलमिलाती दीवालियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को देखकर उनकी चित्तवृत्ति नाचती-सी, बुझते दीपकों को देखकर उनके मन बुझते-से प्रतीत होते हैं और जब तक घर में तेल रहता है, उन्हें किसी तरह चैन नहीं पड़ती। वे प्रत्येक वायु के झोंके को अपनी प्रिय दीपावली के लिए बड़ी आशंका की दृष्टि से देखते हैं और प्रत्येक दीप की दशा के लिए उनमें स्वाभाविक स्नेह रहता है। सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति, सतर्कता, दूरदर्शिता, स्नेह, करुणा आदि उदात्त और सात्विक वृत्तियों के विकास के लिए दीपावली बड़े काम की वस्तु है और विराट सौंदर्य की अनुभूति उत्पन्न कराने में इस पर्व की समता नहीं की जा सकती।

इसी दिन महालक्ष्मी की पूजा होती है पर आज कल इसका एक अविछिन्न अंग जुआ भी बन गया है। जुए का हम निषेध करते हैं। यह संपन्न भारत की एक विलास सामग्री थी जो रूढ़ि बनकर अब जड़ जमा रही है। इससे भाग्य की परीक्षा की जाती है पर भाग्य इतनी अस्थिर वस्तु नहीं है कि उसकी इस प्रकार परीक्षा की जाए। संपन्न देश के लिए वह मनोरंजन की वस्तु भले रही हो पर दरिद्र देश में उसे भाग्य-परीक्षा का अत्यंत गंभीर काम करना पड़ रहा है। यह अज्ञान के सिवा और कुछ नहीं। वर्ष भर निठल्ले बैठकर एक दिन भाग्य आजमाने की धृष्टता करना विधि-विधान का तिरस्कार करना है, इसे रोज-रोज का रोजगार बना लेना भी अस्वाभाविक अतः अनिष्टकर है। देश में महालक्ष्मी की पूजा नित्यप्रति होनी चाहिए, दीवाली के दिन तो और भी अधिक। लक्ष्मी तो लौकिक सुख-समृद्धि की संकेत हैं। उनसे शरीर धर्म, लोकधर्म आदि का पालन होता है और 'शरीरमेषु खलु धर्म साधनम्' शास्त्रीय उक्ति है। हम भी ऊपर कह चुके हैं कि प्रकृतिधर्म और शरीर धर्म भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं।

## नए टैक्स

सरकारी फाइनेंस बिल की दूसरी किश्त असेंबली में पेश की जा चुकी है और उस पर बहस मुबाहसा भी काफी किया जा चुका है। अब जल्द ही उस पर अंतिम निर्णय होने वाला है। सरकार का यह इरादा है कि जहां तक हो सके असेंबली की स्वीकृति से ही टैक्स बढ़ाए जाएं, पर वास्तव में यह इरादा दुनिया के दिखावे के लिए ही है। सरकार के पास अधिकारों की कमी नहीं है और वह यदि चाहे तो असेंबली के अस्वीकार करने पर भी बिल को गवर्नर जनरल से सर्टिफाई कराके कौंसिल ऑफ स्टेट में पेश करे और उसकी राय से उसे कानून बना दे। कौंसिल ऑफ स्टेट रियासतदारों और सरकारी आदमियों की सभा है और सरकार की राय में राय मिलाना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। चूंकि सरकार की हालत इस समय तंगी की है इसलिए हमें यह सुनकर जरा भी आश्चर्य नहीं होगा कि असेंबली के अस्वीकार कर देने पर भी सरकार ने कानून बनाकर नए टैक्स लगा दिए।

सरकारी पक्ष का कहना है कि सरकारी विभागों में जितनी कमी की जा सकती थी, की जा चुकी है। वह सबूत में अपना हिसाब-किताब लेकर हाजिर होती है और उदाहरण देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बतलाती है कि जिस फौज-विभाग में कम खर्ची करने की आशा भी नहीं थी उसमें भी कई करोड़ रुपए घटाए गए हैं और खर्च की रकम उससे भी कम कर दी गई है जितने की सिफारिश प्रसिद्ध इंचकेप कमेटी ने की थी। इसी तरह वह प्रत्येक विभाग के लिए अपनी दलीलें पेश करती है और नए टैक्सों का समर्थन करना चाहती है। पर सरकार का ध्यान देश की दुर्दशा, जनता की आर्थिक कठिनाइयों की ओर नहीं है। असेंबली के सदस्य जोरदार शब्दों में कह रहे हैं कि टैक्सों का बोझ हद तक पार कर गया है और अब अधिक बर्दाश्त करने का सामर्थ्य बिलकुल नहीं रहा, परंतु सरकार को अपना बजट तो पूरा करना है। सर जॉर्ज शुस्टर ने असेंबली की बहस के अंत में जो भाषण दिया उससे यह निश्चित है कि सरकार प्रतिनिधियों की बात नहीं सुनना चाहती। वह अपना निश्चय कर चुकी है। अनुत्तरदायी विदेशी शासन का फल भारत को मिल रहा और नए शासन विधान में भी ऐसी व्यवस्था की जा रही है कि आगे भी वही फल मिलता रहे। संघयोजना कमेटी ने अपने मसविदे में राय दी है कि भविष्य में भी व्यवस्था परिषद् के दोनों विभागों के अधिकार बराबर रहें। कौन नहीं समझ सकता कि यह सुविधा वैसे ही दिन के लिए की गई है जब सरकार अपना मतलब सिद्ध करना चाहे। फिर भी भारत को उत्तरदायी शासन देने की बात कही जा रही है और जो 'संरक्षण' रखे जाने वाले हैं वे भी भारत की भलाई के लिए! 'भारत हित' कितना अच्छा शब्द है।

(गुरुवार, 12 नवंबर 1931)

## बौद्ध जागृति

काशी के पास सारनाथ में इन दिनों एक ऐसा उत्सव मनाया जा रहा है जिसका अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। पाठकों को मालूम होगा कि सारनाथ प्राचीन ऋषियों का वह स्थान है जहां महात्मा बुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के बाद गया से लौटे थे और जहां उनकी शिष्य मंडली सर्वप्रथम स्थापित हुई थी। सारनाथ में उस काल के अनेक अवशेष हैं जिसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण संभवतः बुद्धदेव की वह भव्य मूर्ति है जो उनकी कठिन तपसाधना के उपरांत की है। परंतु मूर्ति में तपस्याजन्य कृशता कहीं नहीं है। एक दैवी आलोक निखरकर उसके चतुर्दिक प्रकाश कर रहा है। वह तत्कालीन आदर्शोन्मुखी कला का एक अच्छा नमूना है। परंतु कालांतर में बौद्ध धर्म का ह्रास प्रारंभ हुआ और धीरे-धीरे लोगों की उसके प्रति आस्था उठने लगी। इतिहास में इस बात के भिन्न-भिन्न कारण कहे गए हैं। बौद्ध धर्म की ऐकांगिकता, बौद्ध स्थविरों की विलास-वासना, दुःखवाद के प्रति विरक्ति, हिंदू नृपतियों का पक्षपात आदि कितने ही कारण बताए जाते हैं पर मूल कारण बुद्ध देव के सिद्धांतों का अपालन ही समझ पड़ता है। कहा जाता है कि विलीन होते हुए बौद्धमत को महर्षि शंकराचार्य के अकाट्य तर्कों से मर्मभेदी प्रहार लगा और उसके प्राणांत हो गए। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि बौद्ध धर्म की मूल भावना ही यहां के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निवासियों के हृदय से मिट गई। ऐसा न हो सकता था और न हुआ। व्यक्तिगत रीति से बुद्धदेव की गणना भारत के चौबीस अवतारों में की गई और आज भी *श्रीमद्‌भागवत* का पाठ करने वाले पंडितगण अपने मंगलाचरण में उनका उल्लेख करते हैं। तथापि बौद्ध धर्म एक मत के रूप में इस देश में न रह सका। महायान संप्रदाय के बौद्धों ने आर्य धर्म के साथ समझौता करने की चेष्टा की थी पर वह सफल न हो सका और बौद्धमत अपनी जन्मभूमि छोड़कर प्रवासी बन गया। इस देश में उसके थोड़े से स्मृति अवशेष ही रह गए। सारनाथ भी मध्यकालीन युवक शासकों के हाथ में पड़कर बहुत रूपांतरित हुआ और जैसा कि आधुनिक बौद्ध आचार्य श्री देवमित धर्मपाल ने उस दिन अपने भाषण में कहा—सारनाथ में सुधार कराने वालों की बस्ती बन गई।

अब समय के प्रवाह में बौद्ध धर्म का जीर्णोद्धार किया जा रहा है और इसी उद्देश्य से सारनाथ में देश-विदेश के बौद्ध मतावलंबी एकत्र हुए हैं। इस उत्सव के साथ सारे बौद्ध संसार की सहानुभूति सुन पड़ती है और वह होनी भी चाहिए। सरकारी अधिकारियों ने भी उत्सव से अच्छी दिलचस्पी दिखाई है और वाइसराय लार्ड विलिंग्डन तथा प्रांतीय गवर्नर सर मालकम हेली आदि ने भी इसके लिए उपहार भेंट किए हैं और इसकी शुभकामना की है। हिंदू जाति की प्रतिनिधि हिंदू महासभा की ओर से भी सहयोग और उन्नति कामना की इच्छाएं प्रकट की गई हैं और इस संबंध में संदेश भेजे गए हैं। इस समय जब देश में अहिंसा का प्रवाह आया हुआ है और महात्मा गांधी की दिव्य कार्य-प्रणाली यहां प्रचार पा रही है तब स्वभावतः देश का वातावरण भी इस उत्सव के अनुकूल ही होना चाहिए और शायद वह अनुकूल है भी। राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से पं. जवाहरलाल नेहरू ने जो वक्तव्य दिया है उससे यह समझना चाहिए कि देश की सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था इस नवीन आयोजन का स्वागत करती है।

प्राचीन बौद्ध धर्म का प्रमुख संदेश सदाचार (Ethics) संबंधी था और बुद्धदेव ने आचरण विषयक कुछ व्यापक नियम (Universal Moral Code) उपस्थित किए थे। अशोक आदि चक्रवर्ती नृपतियों के द्वारा इन नियमों का अच्छा प्रचार हुआ था। व्यावहारिक जगत में इनका कहां तक पालन हो सकता है यह बहुत कुछ देश और काल की परिस्थितियों पर ही अवलंबित है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस समय भारत में उन नियमों का पालन आंशिक ही हो सका और जब बौद्धमत विदेशों में गया तब भी उसके अनुयायियों ने. उस नियम की आलोचना ही की। बीच-बीच में बड़े-बड़े संन्यासियों के अभ्युदय का प्रभाव अवश्य पड़ा पर जैसाकि प्रत्यक्ष है आधुनिक काल के बौद्धमतानुयायी चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा आदि प्रदेशों में बुद्धदेव के उपदेशों का प्रचलन अब प्रायः नहीं रहा। तथापि हम समझते हैं कि हमारे देश में उन नियमों की मान्यता भी स्वीकार है और उनका व्यवहार भी शायद यहीं सबसे अधिक किया जाता है। इस दृष्टि से शायद यह कहना भी अनुचित न हो कि बौद्धमतानुयायी प्रदेशों की अपेक्षा भारत में अब भी महात्मा बुद्ध का सबसे बड़ा अनुयायी है। इस समय हमारे देश में सदाचार संबंधी नियम शिथिल पड़ रहे हैं और सामयिक साहित्य आदि में भी उसकी छाया दीख पड़ रही है। यदि महात्मा गांधी की तरह किसी महान बौद्ध भिक्षु का प्रादुर्भाव हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तो उससे हमारे देश को निश्चय ही लाभ पहुंचेगा और हम इस नवीन जाग्रति के ऋणी होंगे।

पर यहां हम अपनी वह शंका भी प्रकट कर दें जो पिछले दिन सारनाथ के समारोह में सुनाए गए श्री देवमित धर्मपाल के संदेश से उत्पन्न हुई है। धर्मपाल महोदय का जो विस्तृत भाषण समाचारपत्रों में छपा है वह उस अवसर के चाहे जितना उपयुक्त समझा गया हो पर उसकी ध्वनि बहुत ही व्यंग्यपूर्ण है। उन्होंने बौद्धमत की प्रशंसा की यह तो अच्छा ही किया पर ईसाई और इस्लाम मतों के ही नहीं, हिंदू धर्मग्रंथों के संबंध में भी उन्होंने बहुत ही विवादग्रस्त बातें कही हैं। हिंदू समाज में जो अवगुण इस समय है उनकी उत्पत्ति हिंदू धर्मग्रंथों में ढूँढ़ना कहां तक न्यायसंगत होगा, यह समझने की बात है। पर धर्मपाल महोदय ने अच्छी तरह समझने की चेष्टा की है, ऐसा नहीं जान पड़ता। 'ब्राह्मण में दया की कमी है, *गीता* का उपदेश केवल क्षत्रियों के लिए उपयोगी है' आदि बातें कह डालने में धर्मपाल महोदय ने उचित से अधिक हल्कापन प्रकट किया है। 'वेदांत' शूद्र के लिए नहीं है और छह करोड़ शूद्रों के होते हुए वेदांत की शिक्षा का विदेशों में संचार करना व्यर्थ है, यह कहकर धर्मपाल महोदय ने महर्षि शंकर को प्रत्युत्तर देने का जो क्षीण प्रयास किया है, वह अनुचित ही नहीं, असंगत भी है। हम इस प्रकार की अनुत्तरदायित्वपूर्ण प्रणाली का विरोध करते हैं।

बौद्धमत इस देश के जनसाधारण का धर्म हो सकेगा, ऐसी आशा न हमें है और न शायद सारनाथ में उपस्थित बौद्ध संन्यासियों को ही यह आशा है। संघर्ष और तर्क के द्वारा खंडन-मंडन करने का कार्य हमें बिलकुल अच्छा नहीं लगता। जिन उदार महानुभावों ने विदेशों से आकर सारनाथ में मूलगंध कुटी विहार की स्थापना की है, हम उनके उद्योग की सराहना करते हैं। उसका सच्चा कार्यक्षेत्र देश की जनता में सदाचार की प्रेरणा करना है। अपने आचरण द्वारा भी और अपनी आत्मा को उनके इस कार्य से पूर्ण संतोष मिलेगा और भारतवासियों का भी अपार कल्याण होगा। हिंदू समाज इस समय कुरीतियों का प्रधान केंद्र बन रहा है। आवश्यकता ऐसे मनीषियों की है जो सात्विक भाव से इस तिमिर ग्रस्त समाज की सेवा कर सकें। प्राचीन आर्य धर्मग्रंथों पर आक्षेप करने से यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं हो सकेगा यह हमारा अचल, अटल विश्वास है।

## स्वर्गीय पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

हमें यह सुनकर दुःख हुआ कि हिंदी के वयोवृद्ध विद्वान और प्रसिद्ध गोभक्त पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीजी का स्वर्गवास हो गया। अग्निहोत्रीजी अपनी साहित्य संबंधी पुस्तक, अपने संपादन संबंधी कार्यों और अपने गो-सेवा संबंधी लेखों से हिंदी के क्षेत्र में अच्छी प्रतिष्ठा के अधिकारी हुए थे। पिछले कुछ वर्षों से वे हिंदी में महत्वपूर्ण गौ-साहित्य तैयार कर रहे थे और ऐसे साहित्य की उपयोगिता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। योग्य व्यक्तियों की योग्यता उनके अभाव में समझ पड़ती है और आज हम देखते हैं कि एक अत्यंत आवश्यक क्षेत्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक अत्यंत कर्मठ व्यक्ति हमसे खो गया। शर्माजी वयोवृद्ध भी थे, अतः हम अपनी श्रद्धांजलि उन्हें अर्पित करते हैं और उनके परिवार के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हैं।

(रविवार, 15 नवंबर 1931)

# अभिनय या सार

गोलमेज की संघयोजना कमेटी की अधूरी रिपोर्ट निकल जाने के बाद इधर हाल की कार्रवाई में काफी अच्छे-अच्छे गुल खिले हैं। नजदीक से देखने से चीजों की खूबसूरती जरा कम दीख पड़ती है। पर हम लोग जो दूर से दृश्य देखने वाले हैं अभिनय का पूरा आनंद ले रहे हैं। जो लोग इस विलायती महफिल में शरीक होकर ऐसे नायाब तरीके से अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं, उन्हें मनुष्य-हृदय की नाट्य-भावना सदैव बधाई देगी। दृश्यों की ऐसी रमणीयता, अंगों और गर्भांगों की ऐसी संकलित योजना, पात्रों का अत्यंत स्वाभाविक कथोपकथन एक-एक की अनेक अनेक बार प्रशंसा की जानी चाहिए। इसके साथ ही यदि पट परिवर्तन की कला तथा अन्यान्य नाटकीय कौशल भी जोड़ दीजिए तो तारीफ का पुल ऐसा बंध सकता है जो कभी पार ही न किया जा सके। यद्यपि भारतीय-स्वराज्य की समस्या को ही लेकर इसका आयोजन हुआ था, पर आधुनिक समस्या नाटकों की तरह यह बिलकुल गंभीरता की मनहूसियत नाटकों का-सा पूरा अलंकरण और भावोद्रक ही पूरी सामग्री है। कहीं आप मौलाना लोगों और बहुत डॉक्टरों के भिन्न-भिन्न पहनावे और दिलचस्प बातचीत का आनंद ले सकते हैं, कहीं लार्ड सैंके को महात्मा गांधी के साथ भारत के लिए ईश्वरोपासना करते देख सकते हैं। इसी तरह कहीं प्रधानमंत्री की आश्वासन भरी वचनावली को सुनकर आप द्रवित हो सकते हैं और कहीं भारत-मंत्री की कुछ दूसरे किस्म की बातें सुनकर आप आश्चर्य कर सकते हैं। कभी प्रांतीय-स्वशासन का दृश्य देखिए कभी केंद्रीय व्यवस्था-सभा की विचित्र रचना से आंखें ठंडी कीजिए। सारांश यह कि जिस रस की सामग्री आपको अच्छी लगती हो, आप इसमें अच्छी तरह पा सकेंगे। और इसका साज-बाज देखकर आपका जी प्रसन्न हो जाएगा।

पर मूल-समस्या की क्या गति हो रही है, यह प्रश्न करना और इसका उत्तर दे सकना कुछ आसान काम नहीं है। एक तो, समस्या यों ही बड़ी जटिल थी, फिर अभिनय करने वालों ने उसको अपने रंग में रंग कर और भी जटिल बना दिया है। समस्या को हल करने के लिए जिस सीधी-सादी, स्पष्ट और रूखी प्रणाली की आवश्यकता होती है, वह दीख नहीं पड़ती। इस त्रुटि की ओर सबसे पहले महात्मा गांधी ने ध्यान दिलाया था और उसके बाद पूज्य मालवीयजी तथा सर तेजबहादुर सप्रू ने यह आग्रह किया था कि यदि भारत के स्वराज्य की समस्या को तय करना है तो ब्रिटेन अपना इरादा साफ-साफ जाहिर करे। पर ब्रिटेन ने ऐसा कभी नहीं किया। कभी तो मजहबी और अल्पमतवालों के स्लाइट पर गाड़ी अटक गई, कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देशी नरेशों की लालबत्ती देखकर ठहर गई और इधर हाल में प्रांतीय-स्वराज्य के जंक्शन में रुककर फिलहाल आगे न बढ़ने का इरादा कर रही थी। कभी तो ऐसा जान पड़ा कि गोलमेज सम्मेलन में कई लाख रुपए खर्च कर और कई हजार मील का रास्ता तय हुए हैं। हिंदुस्तानी महानुभावों को ब्रिटेन परम धार्मिक की भांति आपसी झगड़े तय करने की पुण्य सलाह दे रहा है, और धार्मिक कृत्य का महत्व स्वयं ही इतना अधिक है कि उसे पाकर और कुछ पाना शेष नहीं रह सकता। फिर कभी ऐसा जान पड़ा कि देशी-नरेशों और ब्रिटिश भारत को एक सूत्र में गूंथकर तथा सम्मिलित राष्ट्र का विराट रूप दिखाकर ब्रिटेन ने परम-धाम दिखा दिया और कुछ बाकी रह नहीं गया। अंत में प्रांतीय-शासन की लगाम भारत के हाथों में देकर ब्रिटेन ने साक्षात मुक्तिसूत्र ही हमें सौंप दिया, अगम चरम अवधि नहीं है। सच पूछा जाए तो इस प्रकार अभिनय की रोचकता खूब ही बढ़ी है।

पर जो जरा दूसरी दृष्टि से वस्तुओं को देखते हैं, मनहूस और रूखी तबियत के हैं, साथ ही जो आधुनिक नाट्यकला के पारखी भी हैं, उनका स्पष्ट अभियोग यह है कि मूल-समस्या कुछ भी आगे नहीं बढ़ रही, केवल इधर-उधर के चलचित्र दिखाकर जी बहलाया जा रहा है। ये अनेक बार कह चुके हैं और सुनने वालों के कान सुनते-सुनते थक भी गए हैं कि ब्रिटेन अपना फर्ज नहीं अदा कर रहा। हिंदू-मुस्लिम समस्या को हल करने के लिए विलायत कोई ऐसा स्थान है जो इतने लाख रुपए खर्च करके दर्शन करने के काबिल हो, ऐसा वे ही सोच सकते हैं जो गांठ के पूरे होने के कारण मोटे शरीर और शायद वैसी ही बुद्धि के भी हैं। बिलकुल खरी बातें भी इस मामले में कही गई हैं और सुनने वालों ने सुन लिया है कि यह सब ब्रिटेन की टालमटोल करने की और अपना कसूर दूसरों के मत्थे मढ़ने की इच्छा का फल है। देशी रियासतों को ब्रिटिश भारत के साथ एकाकार करने की ब्रिटेन की अभिलाषा की प्रशंसा करते हुए यह भी कहा जाएगा कि इसमें पूर्ण स्वराज्य के मार्ग में अवश्यंभावी बाधा पड़ती है और उस बाधा का लाभ ब्रिटेन के सिवा दूसरा कोई उठाने वाला नहीं है। और जब देशी नरेशों ने मुहलत मांगकर स्वराज्य की समस्या को और अधिक दुरूह बना दिया है तब ब्रिटेन की पांचों उंगली घी में क्यों न हों! इसके बाद यदि ब्रिटेन प्रांतीय स्वराज्य से ही भारत का मुंह मीठा करके उसे संतुष्ट करना और स्वयं संतोष पाना चाहता है तब हमको और उन सब लोगों को हंसी आती है जिन्होंने भारत की राष्ट्रीय मांग को समझा है अथवा कम से कम जिन्होंने मशहूर साइमन रिपोर्ट की प्रांतीय स्वराज्य योजना की सिफारिशों को पढ़ा है और यह देखा कि पिछले दिनों भारत में उसकी कैसी छीछालेदार हुई थी। पर ब्रिटेन बिलकुल भोलेभाले व्यक्ति की तरह जैसे कुछ समझता ही न हो, हमें वही साइमन मार्ले का प्रांतीय स्वराज्य दे डालना चाहता है। यह अभिनय भी अच्छा है।

और हाल में हिंदुस्तान के कुछ अद्भुत नाम गोलमेजी प्रतिनिधियों ने जो अपने को भारत की 46 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधि कहते हैं एक मसविदा तैयार करके ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अर्पण किया है और प्रधानमंत्री ने उस पर सरकारी मुहर लगाकर उन लोगों को कृतार्थ भी कर दिया है। यह मसविदा मुसलमान-क्रिश्चियन-अछूत आदि के फिरकापरस्त डेलीगेटों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ने मिलकर तैयार किया है और यह दिखाने की चेष्टा की है कि ये सब एकमत होकर पृथक निर्वाचन और विशेष मताधिकार का दावा पेश कर रहे हैं। प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने बिना किसी शक-शुबहा के उनका यह दावा मान भी लिया, शायद अपनी उस उक्ति की रक्षा करने की गरज से कि गोलमेज के डेलीगेट भारत के सच्चे प्रतिनिधि हैं। पर महात्मा गांधी ने इस मसविदे की असलियत को प्रकट करते हुए कहा है कि यह केवल भारत में नौकरशाही का दावा मजबूत करने की गरज से तैयार किया गया है। मुसलमानों और सिखों को छोड़कर तीसरे किसी अल्पसंख्यक दल का अस्तित्व स्वीकार करना देश की राष्ट्रीयता को खंड करके नष्ट कर डालना है। इस तरह तो प्रत्येक छोटा-मोटा दल अथवा हिंदू समाज की प्रत्येक छोटी बड़ी जाति अपने भिन्न-भिन्न अधिकारों का दावा पेश करेगी और जो अभी अल्पमत का प्रश्न है यही वास्तव में बहुमत का प्रश्न हो जाएगा। अल्पमत वालों का यह मसविदा यदि उनके कहने के मुताबिक भारत की 46 प्रतिशत जनता की मांग पेश करता है तो हमारी समझ में अब थोड़ी ही कसर रह गई है और इस रफ्तार से 46 प्रतिशत के अल्पमत को 50 लांघ कर 51 का बहुमत बनने में बहुत दिन नहीं लगेंगे। यदि इस तरीके से भी अल्पमत बहुमत से मिल सके तो ईश्वर की कृपा से अभिनय का यह पहलू शायद सबसे अधिक रहस्यमय बन जाए। फिर भी हम इसे अभिनय ही कह सकेंगे।

कल की खबर है कि प्रधानमंत्री महोदय से हिंदुस्तानी प्रतिनिधियों से आग्रह किया है कि वे अल्पमत की समस्या को अपने हाथ में लें और स्वयं उसका समाधान करें। पूज्य मालवीयजी ने हिंदू महासभा तथा अन्य दलों के कई प्रतिनिधियों के और श्री श्रीनिवास शास्त्री ने भी कई सहयोगियों के हस्ताक्षर से दो पत्र प्रधानमंत्री के पास इसी आशय के भेजे हैं और सुन पड़ा है कि मुसलमानों ने भी अर्थनीति, फौज और अंतर्राष्ट्रीय नीति आदि के मुख्य और मूल प्रश्नों को हल करने में अपने अड़ंगे उठा लिये हैं और लार्ड सैंके की कमेटी में अब इन अत्यंत आवश्यक विषयों पर बहस की जा सकेगी। यह खुशखबरी है पर अब भी इसके साथ शर्तें लगी हुई हैं। हम बड़ी उत्कंठा से देखते रहेंगे कि वास्तविक मूल-समस्याओं का निपटारा हो रहा है।

(गुरुवार, 19 नवंबर 1931)

## संरक्षण

कुछ तो समय-समय पर की गई अपनी घोषणाओं और प्रतिज्ञाओं के कारण, पर अधिक भारत में होने वाले विकट राजनीतिक आंदोलन के कारण, अंत में जब ब्रिटेन को यह स्वीकार करना पड़ा कि केवल प्रांतों में ही नहीं बल्कि केंद्र में भी भारत को जिम्मेदार शासन दिया जाए, तब साम्राज्यतृष्णा रखने वाले होशियार ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को एकमात्र जिस शब्द का अवलंबन रह गया वह था 'संरक्षण'। यह तो ब्रिटेन का बहुत पहले से दावा रहा है कि भारत में अंग्रेजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राज्य भारत की ही सुविधा और संरक्षण के लिए है और बेचारी गोरी अंग्रेज जाति पर काली जातियों पर शासन करने और उन्हें सभ्य बनाने का बोझ लाद दिया गया है जो White man's burden के नाम से काफी मशहूर हो चुका है। पर जैसाकि अवश्यंभावी था, उनके इस वोझ का रहस्य भी धीरे-धीरे खुला और दुनिया को मालूम हुआ कि इस ब्रिटिश-उदारता की असलियत क्या है। हिंदुस्तान का इतिहास लिखने वाले अच्छे-अच्छे अंग्रेज और हिंदुस्तानी सज्जनों ने छापे के पृष्ठों में और राजनीति में दिलचस्पी रखने वालों ने भाषणों, समाचारपत्रों और प्रचार के अन्य साधनों से सत्य को प्रकाश में ला रखा। यही नहीं, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' के प्रसिद्ध मंत्र द्वारा देश की जनता और विदेशों के निष्पक्ष विचारकों के सामने भारत के इस न्यायोचित सत्य को उपस्थित किया। तब से अब तक देश की राष्ट्रीय जागृति प्रतिदिन बढ़ती ही गई और बाहर वालों को भी इसका पता लगता गया। अंत में ब्रिटेन को अपना बोझ हल्का करने का इरादा करना पड़ा और अब यह केवल परिवर्तन काल के लिए कुछ अनिवार्य संरक्षणों का भार अपने सिर पर ढोना चाहता है। पर इन अनिवार्य संरक्षणों की नाप-तौल करने पर जान पड़ा कि इनमें लगभग 80 प्रतिशत गुरुता अब भी मौजूद है, केवल 20 प्रतिशत से पल्ला छूटा है। परिवर्तन काल का भी कुछ ठीक-ठिकाना नहीं बताया गया पर लक्षणों से जान पड़ता है कि जहां तक बन पड़ेगा, बेचारे अंग्रेज यह भार काफी लंबे समय तक वहन करते रहेंगे और इस तरह शायद भारत पर चिरकाल तक अनुग्रह करते जाएंगे और इस ऋण से उऋण होना निकट भविष्य में किसी तरह संभव नहीं होगा।

जैसाकि अस्वाभाविक नहीं था गोलमेज सम्मेलन को बहस-मुबाहिसे के बाद संरक्षणों के इस प्रश्न पर पहुंचना पड़ा है। इसी प्रश्न को सर तेजबहादुर सप्रू ने जीवन-मरण का प्रश्न बतलाया है पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ गप-सड़ाके को इससे कम महत्वपूर्ण नहीं समझते। बहुत तूमार बांधने के बाद राम-राम करके अब यह प्रश्न उठाया गया है पर सौ-सौ जोखिमों वाला यह कानी का ब्याह किसी तरह संपन्न हो जाएगा यह अब तक ध्यान में नहीं चढ़ता। सबसे पहले मुसलमानों का मजहबी अड़ंगा है और यह गनीमत ही समझना चाहिए कि वे अपने अड़ंगे को थोड़ी देर के लिए अलग रखकर इस संबंध की कुछ बातें कानों से सुन लेने भर को तैयार हो गए हैं। दूसरी बात यह है कि गोलमेज के कुछ भारतीय प्रतिनिधि हिंदुस्तान लौट जाने की तैयारी करना चाहते हैं और ब्रिटिश प्रधानमंत्री को इस तैयारी का बड़ा खयाल रखना पड़ता है। बेचारे महात्माजी अपने खादी के कपड़ों से ही विलायत का जाड़ा काट लेने का इरादा जाहिर कर रहे हैं, और मालवीयजी प्रतिनिधियों के भारत लौटने का कारण ब्रिटेन की नीति को बतला रहे हैं। फिर भी कुछ लोग कहते हैं कि सम्मेलन का काम फिलहाल स्थगित कर दिया जाए। भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने तो खुले आम ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि सम्मेलन हफ्ते भर के भीतर ही टूट सकता है और फिर कई महीनों की छुट्टी मिल सकती है। यह सब अन्याय हो सकता है पर अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि सवाल 'संरक्षणों' का है और ब्रिटेन 'संरक्षण' छोड़ना नहीं चाहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पिछले बार जब मजदूर नेता श्री बेजल्ड बेन भारतमंत्री थे तब भी 'संरक्षण' पर अपनी राय जाहिर करते हुए उन्होंने उन्हें परिवर्तन काल के लिए, अटूट और स्थायी रखने का इशारा किया था। पर आज के भारतमंत्री सर सेमुएल होर तो परसाल बड़े ही दृढ़ भाव से संरक्षणों पर अड़ गए थे और इस बार भी उनका वही रुख है। इधर फौज, अंतर्राष्ट्रीय अधिकार और यूरोपीय व्यापार के संरक्षण पर जो बातचीत हुई है, उनसे स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के विचार पहले की तरह ही नहीं बल्कि पहले से भी अधिक कट्टर हैं और वे संरक्षणों के मामले में एक इंच भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं हैं। फौजी-संरक्षण के संबंध में लार्ड रीडिंग ने अपने विचार प्रकट करते हुए यह साफ-साफ कहा है कि वे इस संबंध के गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार में किसी तरह की दस्तंदाजी नहीं पसंद करते और इतना भी बंधन रखने को तैयार नहीं हैं कि गवर्नर जनरल इस विभाग के लिए जो मंत्री रखें वह भारतीय हों। स्मरण रखना चाहिए कि लार्ड रीडिंग उदार दल के नेता हैं और अनुदार दली भारतमंत्री सर सेमुएल होर आदि की अपेक्षा उन्नत विचार रखने वाले हैं। उनके इस रुख से हम मौजूदा सरकार के रुख का अंदाजा अच्छी तरह लगा सकते हैं।

इसी तरह यूरोपियनों को उनके भारतीय व्यापार में संरक्षण देने के मामले में जो वाद-विवाद मिस्टर बेंथल, श्रीयुत जयकर और सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास में हुआ उसमें भी लार्ड रीडिंग ने मिस्टर बेंथल के ही पक्ष का समर्थन किया और यह राय दी कि नए विधान में ही यह संरक्षण रखना चाहिए। भारत की नई सरकार की व्यवस्था-सभा की इच्छा पर इसे नहीं छोड़ना चाहिए। श्री जयकर ने और सर पुरुषोत्तम दास ने भी यूरोपीय व्यापारियों के साथ मैत्री भाव का विश्वास दिलाया और स्वयं महात्मा गांधी ने लंकाशायर की सभा में वही भाव प्रकट किया। पर यूरोपीय-व्यापार के प्रतिनिधि यह चाहते हैं कि अभी की-सी स्थिति ही बनी रहे, अर्थात् हाथी और चींटी बराबर ही करार दिए जाएं। पर ऐसा तो किसी तरह नहीं हो सकता। जब तक भारत के व्यापारी उन्नति करते-करते यूरोपीय व्यापारियों की बराबरी तक नहीं पहुंचते तब तक समान अधिकार की बात कहना दुनिया को धोखा देना है। यह संभव नहीं है कि नए शासन विधान में यूरोपीय-व्यापारियों को अब के-से ही सुभीते बने रहें और वे अपने भारतीय व्यापार से अब का-सा ही फायदा उठाते—शोषण करते रहें। नए विधान में इस तरह की शर्त पहले से तय करा लेना प्रत्यक्ष अन्याय होगा, यह बात यूरोपीय व्यवसाय के प्रतिनिधि अच्छी तरह जानते हैं पर लार्ड रीडिंग भी अद्भुत वाक्छल करके उन्हीं का साथ देने को तैयार हो गए हैं। जनता भारत के व्यवसायों और यूरोपीय व्यवसायियों से प्रीतिभाव रखेगी इसका अर्थ यह नहीं है कि अब तक अन्याय से या पक्षपात से पाई हुई सुविधाएं ज्यों की त्यों बनी रहेंगी, पर लार्ड रीडिंग महोदय ऐसी ही सुविधाओं की हिमायत करते हैं।

जब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की ऐसी हालत है और जब वे किसी तरह अन्यायपूर्ण, संरक्षण की तृष्णा नहीं छोड़ना चाहते तब भारत के राष्ट्रीय प्रतिनिधियों का यही कर्तव्य संभव है कि वे अपना पक्ष स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दें और संघ योजना समिति द्वारा की गई अंतिम सिफारिशों को सुन लें और उस पर अपनी सम्मति दे दें। महात्मा गांधी ने पिछली बार इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कमेटी की रिपोर्ट से अपना मतभेद प्रकट किया था। पर इस बार अधिक महत्वपूर्ण मतभेद की संभावना है क्योंकि संरक्षण के विषय में अधिकांश भारतीय सदस्यों का मत ब्रिटिश प्रतिनिधियों से नहीं मिलता, शायद नहीं मिल सकता। जब तक ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ, संरक्षणों के मायाजाल में फंसे हैं और शासन का वास्तविक अधिकार भारत को सौंपने के लिए तैयार नहीं हैं, तब तक यह आशा करना व्यर्थ होगा कि संरक्षणों के मामले में ब्रिटिश और राष्ट्रीय भारत के प्रतिनिधि एकमत हो सकेंगे। प्रमाण अभी से मिलने लगे हैं और यदि ईश्वर की कृपा से सम्मेलन का काम उतनी जल्द समाप्त न हो गया जितनी जल्द समाप्त होने का प्रबंध सर सेमुएल होर महोदय ने करने का विचार किया था तो देखने वाले देखेंगे कि संरक्षणों के विषय में असली स्वराज्य के विषय में—ब्रिटेन कितने असमंजस, कितनी होशियारी और कितनी मंदगति से काम कर रहा है—अर्थात् वास्तविक स्वराज्य देने में कितना आना-कानी कर रहा है।

(रविवार, 22 नवंबर 1931)

## अछूत

हम यह नहीं कह सकते कि अछूतों के प्रतिनिधि नामजद होकर विलायत गए हुए डॉक्टर अंबेडकरजी साहित्य या विज्ञान वगैरह के डॉक्टर हैं अथवा मामूली वैद्यगी करते हैं। हमें यह भी नहीं मालूम कि वे कौन चौधरी हैं, अर्थात् अछूतों के किस फिरके से उनका जाति ताल्लुक है। इस बेजानकारी का हमें ज्यादा अफसोस नहीं है क्योंकि काफी हेर-खोज करने के बाद भी हम पता नहीं पा सके, अपने तईं छानबीन में कसर नहीं की, तब भी। असल बात यह है कि गोलमेज के सौ-सवा सौ प्रतिनिधियों में तो डॉक्टर अंबेडकरजी पहचान लिये जा सकते हैं पर कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से आसाम तक फैले हुए इस विशाल देश के विशाल अछूत समाज में तो वे ही पहचान में आ सकते हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व को अपनी सेवा, अपने त्याग और अपने चरित्र के द्वारा ऊंचा किया है और इस प्रकार समाज की दृष्टि अपनी ओर खींची है। पर डॉक्टर अंबेडकरजी का नाम इस देश में कम से कम उत्तर भारत में किसी जगह लीजिए, भले आदमियों, जानकार आदमियों, पत्र-संपादकों, अछूतों की बड़ी-बड़ी सभाओं तक में नाम सुनकर सब लोग चकित होते दिखाई पड़ेंगे। ऐसी हालत में बहुत से लोगों को डॉक्टर अंबेडकरजी के संबंध में अनुमान और अंदाजा भी लगाना पड़ता है। मसलन जब वह कहते हैं कि वे छह या सात करोड़ अछूतों के हक लेने सात समुद्र फांद कर गए हैं तब लोग बड़े असमंजस में पड़कर यह जानने की कोशिश करते हैं कि ये डॉक्टरजी केवल हिंदुस्तान के ही अछूतों की बात कह रहे हैं या दुनिया के दूसरे-दूसरे हिस्सों की अछूत आबादी का भी हक अपनी उदारता के कारण इसी लाग में मांगे ले रहे हैं। हिंदुस्तान की अछूत (वास्तविक अस्पृश्य) जातियों की संख्या तो इतनी है नहीं, और न आगे सौ-पचास वर्षों तक होने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संभावना है क्योंकि डॉक्टरजी का सौभाग्य कहिए या दुर्भाग्य कहिए (हम तो अपने को दूसरे शब्द के ही पक्ष में रखते हैं) अछूतों की मर्दुमशुमारी कम होती जा रही है और आगे भी उसके बढ़ने के कोई आसार नहीं दीख पड़ते। लाचार हमें डॉक्टरजी के स्टेटमेंट को सत्य साबित करने के लिए हिंदुस्तान के बाहर के अछूतों का पता लगाना जरूरी पड़ जाता है, यद्यपि पता लगाने की गुंजाइश है नहीं। हां यदि इस मौके पर कल्पना से काम लिया जाए तो शायद डॉक्टरजी की कुछ तरफदारी की जा सके। यह एक बात हुई। इसी तरह जब डॉक्टरजी मौलाना शौकत अलीजी से और मौलानाजी डॉक्टरजी से हमदर्दी ही नहीं, एक तरह की अभिन्नता या अनन्यता प्रकट करते हैं तब प्रयास किया जाता है कि डॉक्टरजी, मौलानाजी का कोई दूसरा नजदीकी संपर्क है। यदि स्पष्ट बात कही जाए तो डॉक्टरजी और मौलानाजी का इतना हेल-मेल हम सबको शंका में डालता है। हम तो जानते ही हैं, डॉक्टरजी भी यह जानते होंगे कि पुराने जमाने में भी और आजकल भी ज्यादातर अछूतवर्ग के ही आदमी मुसलमान बने हैं और बनाए जाते हैं। अर्थात् धर्मपरिवर्तन के विचार से मुसलमानों का आक्रमण अछूतों पर ही सबसे अधिक होता है, फिर भी अछूतों के प्रतिनिधि डॉक्टरजी मुसलमानों के प्रतिनिधि मौलानाजी के हमराह बन रहे हैं और ऐसा करके आशा रखते हैं कि अछूतों के अस्तित्व की और अधिकार की रक्षा और पुष्ट हो जाएगी। अपूर्व प्रतिनिधि हैं।

दक्षिण भारत के एक छोटे हिस्से में ब्राह्मण-अब्राह्मण या छूत-अछूत का जो बिष प्रवेश कर गया है, डॉक्टरजी चाहते हैं कि सपूंर्ण भारतीय राष्ट्र के शरीर में फैल जाए। इस तरह की डॉक्टरी डॉक्टरजी को मुबारक हो। हम बंदगी करेंगे और उनसे छुट्टी लेंगे। हमें इस विष की दवा करनी है, डॉक्टरजी कुछ दूसरा मंसूबा रखते हैं। पट नहीं सकती। यूरोप के फ्रांस वगैरह देशों में जो बलवे और राज्यक्रांतियां हुई थीं उनमें झगड़े का प्रधान आधार आर्थिक था। डॉक्टरजी सामाजिक भेदभाव खड़ा कर उसी की तैयारी करना चाहते हैं। भगवान उनसे अछूतों की ही नहीं, सारे देश की रक्षा करे। फ्रांस में तो संपूर्ण प्रजा शक्ति राज शक्ति के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी, कुछ गिने गिनाए रियासतदारों का स्वार्थ भंग हुआ था, कुल मिलाकर सामाजिक जीवन का विकास ही हुआ था पर डॉक्टरजी के प्रस्ताव से तो जहां लड़ाई नहीं है या लड़ाई का कारण नहीं है वहां भी लड़ाई मोल लेने का बंदोबस्त हो जाएगा। गांव-गांव में जो एकता और भ्रातृभाव है वे नष्ट हो जाएंगे और देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आपस में जी भर कर संघर्ष मचेगा और डॉक्टरजी जिनके हमराह हैं वे मौलानाजी लोग तमाशा देखने में सबसे आगे रहेंगे।

अछूतों की संख्या कम है, साधन कम है, इसलिए इस संघर्ष में वे ही बेचारे घाटे में रहेंगे। शिक्षा में, संपत्ति में और संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में जब तक अछूत ऊंचे वर्गों पर अवलंबित हैं, और आश्रित भी हैं, तब तक पृथक्करण का डॉक्टरजी का प्रस्ताव स्वयं अछूतों के लिए ही सबसे अधिक अहितकर है। यदि एक ओर व्यवस्था-सभा में कुछ इने-गिने प्रतिनिधियों के पहुंच जाने से होने वाली सुविधा को लें और दूसरी ओर उन समस्त असुविधाओं को लें जो इस संबंध-विच्छेद से उत्पन्न हो सकती हैं तो हानि-लाभ का निर्णय अच्छी तरह से हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। इसके साथ ही अछूतों के प्रति उच्च वर्गों की आजकल की बढ़ती हुई और नित्यप्रति बढ़ने ही वाली सहानुभूति भी जोड़ दी जाए तो समाज में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अछूतों के पृथक निर्वाचन का समर्थन नहीं कर सकेगा। यह केवल अछूतों की ही दृष्टि से कहा गया। व्यवस्था-सभा ही सामाजिक या राजनीतिक जीवन की गतिविधि निर्धारित नहीं करती, बल्कि सामान्य जीवन तो उससे अधिकांश में बेलाग ही रहता है। सम्मिलित राष्ट्र के सम्मिलित जीवन की कल्पना व्यवस्था-सभाओं की सीटों से काल्पनिक ही नहीं, व्यावहारिक भी कहीं अधिक सुख देने वाली है।

हम यह भी जानते हैं कि महात्मा गांधी के अनुग्रह से अछूत वर्ग को सत्याग्रह का वह दिव्यास्त्र मिला है जो व्यवस्था-सभा के सैकड़ों वाक्य-बाणों की अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और कहीं अधिक कारगर होने वाला है। अन्याय का विरोध करने के लिए इस प्रयोग की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। हमारी धारणा है कि आगामी युगों में महात्माजी की यह सत्याग्रह-सृष्टि सामाजिक क्षेत्रों में ही अधिक पनपेगी, राजनीति में उतनी अधिक नहीं। हमारा मत है कि ऐसा होना भी चाहिए। समाज की स्वतंत्रता के लिए सिद्धांत की दृष्टि से भी यह उचित है कि राजदंड और राजकीय व्यवस्था का कम-से-कम उपयोग किया जाए और सामाजिक अन्याय सत्याग्रह द्वारा ही दूर किए जाएं। इससे राष्ट्र को अपनी जिम्मेदारी और अपनी शक्ति का अच्छा परिचय मिलेगा और उसका विकास भी विधिपूर्वक हो सकेगा। जब तक अछूत भाइयों के पास यह अस्त्र है तब तक उनके न्यायसम्मत अधिकारों से उन्हें वंचित रखने का अथवा उन्हें छीनने का किसी को साहस नहीं हो सकता। केवल इस दृष्टि से भी देश की अछूत-जनता अपने विशेषाधिकारों के कठघरे में अपने को अर्थात् राष्ट्र के एक मूल्यवान अंग को बंद करने की इच्छा न करेगा और डॉक्टरजी के प्रति अपना अविश्वास प्रकट करेगी—जैसाकि वह कर भी रही है।

## कर-बिल की शिक्षा

व्यवस्था-सभा के लिए यह गौरव की ही बात कही जाएगी कि गवर्नर जनरल की सिफारिश करने पर भी उसने अतिरिक्त कर-बिल को नामंजूर कर दिया। बिल की यह गति होगी, ऐसी आशा तो नहीं थी पर हम सब की कामना यही थी। जिस असेंबली में राष्ट्रीय विचारों के सदस्य कम थे और उसमें भी बहुत से गोलमेज में गए हुए थे और कितने ही वोट लेने के वक्त को अपनी आरजू-मिन्नत और देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भूलकर आवश्यक या अनावश्यक कारणों से गैरहाजिर थे, उस असेंबली ने भी देश पर अतिरिक्त कर लगने देना स्वीकार नहीं किया यह केवल विकट आर्थिक दुर्दशा की स्थिति में ही संभव था। पर बड़े लार्ड साहब को प्रत्यक्ष में इससे कोई मतलब नहीं जान पड़ता। लार्ड विलिंग्डन महोदय ने भारत में आने पर पहले ही महत्वपूर्ण भाषण में कहा था कि वे भारत का शासन कनाडा की संवैधानिक विधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से करना चाहते हैं, पर उनका चाहना न चाहने से भी गया-बीता सिद्ध हुआ, व्यवहार में कभी न दीख पड़ा। यह सब नौकरशाही की ही कठपुतली लीला है जिसका सूत्र सीधे विलायत से घुमाया जाता है। लार्ड विलिंग्डन भी उसी के चक्कर में हैं। यह सब कहने की जरूरत भी न होती पर बात यह है कि हिंदुस्तान को स्वराज्य देने की घोषणा इन दिनों बड़े जोर-शोर से हो रही है और लोगों को विश्वास भी काफी बंध रहा है। ऐसे अवसर पर ऐसी घटनाओं की एक विशेष शिक्षा होती है। दूसरी बात यह है कि यदि देश में अर्थकष्ट के कारण सत्याग्रह शुरू किया गया तो लार्ड विलिंग्डन को ही उसका मुकाबला करना पड़ेगा। तब वे समूचा कसूर कांग्रेस के मत्थे न मढ़ दें, अपनी इस कार्रवाई का भी खयाल रखें कि विधान द्वारा चुने हुए असेंबली के वैध प्रतिनिधियों की सम्मति का तिरस्कार करके उन्होंने ही रास्ता दिखाया है और एक हद तक उस पर चलने को भी प्रेरित किया है।

## समाज सुधार का सवाल–1
## (मूल समस्या व्यक्तिगत चरित्र सुधार की है)

हमारे देश का इस समय का एक बड़ा मर्ज है विचार शक्ति का ह्रास, और यह आज से नहीं हिंदुस्तान के ऐन गुलामी के जमाने से हमारा पिंड खा रहा है–हमें छोड़ नहीं रहा। हमारा माथा ठीक काम नहीं करता, हमारी आंखों पर चीजों का ठीक-ठाक अक्श नहीं पड़ता। नतीजा यह होता है कि हम कुछ का कुछ देखते हैं और कुछ का कुछ समझते हैं। धीरे धीरे मर्ज पुश्तैनी हो जाने की आशंका हो रही है। देश की अगली पीढ़ी के जो आधार होने वाले हैं–वे नौजवान जो इन दिनों विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं, कुछ भी ढाढ़स नहीं बंधा रहे, जरा भी आशा नहीं दे रहे। इस मामले में उसकी हालत भी बेतरह गई बीती है। राष्ट्र की वर्तमान परिस्थितियों का कोई संकलित चित्र, उसके भविष्य का कोई बाकायदा नक्शा उनके दिमाग में नहीं है। कोई अच्छी सी सूझ, कोई रचनात्मक कल्पना वे करते नहीं दीख पड़ते। अब तक सामाजिक सुधार पहले हों या राजनीतिक सुधार पहले हों, के अखिल भारतीय वाद-विवाद जारी हैं और कोई टोकने वाला नहीं है। आंखों के सामने जो दृश्य आए दिन उपस्थित होते रहते हैं उनकी कोई शिक्षा नहीं है जैसे उनकी कोई वकत ही न हो। जीवन के सब ओर से अपनी संपूर्ण चेतना को समेटकर हम केवल शब्द-रूढ़ि पर अटकते हैं और दलील करते हैं। इस तरह कोई किसी समस्या के मूल तक नही पहुंच सकता और हम आज तक कभी वहां तक नहीं पहुंचे। मूल तक पहुंचने के कारण हम भिन्न-भिन्न समस्याओं के आपेक्षिक महत्व को भी नहीं समझते और इस तरह छोटी बातों की ओर ज्यादा ध्यान देकर, बड़ी बातों से मुंह मोड़ कर कहीं हम शक्ति का अपव्यय करते हैं, कहीं विपर्यय। जो लोग किन्हीं कारणों से नेता कहकर माने जाते हैं उनमें अधिकांश लीक पीटने वाले, असत्यभाषी, कीर्तिकामी, मुखर और दुश्चरित्र होते हैं–जो थोड़े से सदाशय भी होते हैं उन्हें भी विचार विभ्रम के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दूर तक रास्ता नहीं दीख पड़ता, वे भी नेतृत्व नहीं कर सकते।

समाज सुधार से भिन्न किसी तरह के राजनीतिक सुधार का कोई चित्र हमारे मस्तिष्क में अंकित नहीं होता। अवश्य ही यहां समाज सुधार का वह अर्थ नहीं जो सुधारक लोग करते हैं। उदाहरण के लिए हम साधारण ज्ञान (Common Sense) रखने वाले निरक्षर समाज को आजकल की विचित्र शिक्षा प्रणाली में शिक्षित समाज की अपेक्षा एक हद तक अधिक सुधरा हुआ समझते हैं। देश की मुसलमान जनता सामाजिक दृष्टि से शिक्षित मुल्ला लोगों और स्वार्थ-साधक मौलानाओं के समाज की अपेक्षा अधिक संस्कृत और अधिक समुन्नत कही जाएगी। बहुत से मूर्ख अछूत, डॉक्टर अंबेडकर की अपेक्षा अधिक सुधरे हुए हैं। इसी तरह जमींदारों की अपेक्षा किसान अधिक कष्ट में रहने के कारण सामाजिक दृष्टि से अधिक प्रगतिशील भी कहे जाएंगे। बड़े-बड़े अफसरों की अपेक्षा कभी छोटे-छोटे मजदूर संगठन शक्ति में और चरित्रशक्ति में अधिक आगे बढ़े हुए मिलते हैं और इस प्रकार वे समाज में अधिक उच्चासन के अधिकारी भी हैं। इसी तरह हमारी और धारणाएं भी हैं और इन्हीं धारणाओं के आधार पर हम समाज सुधार और राजनीतिक प्रगति में एक अभिन्न तारतम्य पाते हैं। जो कोई समाज सुधार और राजनीतिक स्वराज्यप्राप्ति की समस्याओं को इस दृष्टि से देखेगा वह कभी इन दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकेगा। यह सुधार या विकास मूल में व्यक्तिगत, पर आगे चलकर व्यवहार में समाजगत बन जाता है और इसकी परख या कसौटी शिक्षा, संस्कार, मान-प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति, विद्या-बुद्धि आदि कुछ नहीं केवल चरित्र है। हमारी तो यही परख है।

महात्मा गांधी ने यह दावा पेश किया है कि कांग्रेस देश की नब्बे-पचानबे फीसदी जनता की प्रतिनिधि है। हमें समझना चाहिए कि शेष पांच-सात फीसदी में कुछ मुसलमान कुछ रियासतदार, कुछ खैरख्वाह अमन सभा वाले रईस हैं, पर अधिकांश में काशी के सनातन धर्म के रक्षक पंडित लोग और उनसे भी अधिक बैसवाड़े के बीस, अठारह, पंद्रह, दस तक बिस्वा वाले, हेकड़ कनौजिया ब्राह्मण हैं जो अदालत में नाक रगड़ेंगे, एक-एक चपरासी को सौ-सौ बार सलाम करेंगे और मौका आते ही साफा बांधे, सुरती फांकते, संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष को बनिया-बक्काल आदि के व्यंग्य बाणों से बेधे बिना नहीं रहेंगे। हम कह नहीं सकते कि हिंदुस्तान भर में इस प्रकार के समाज की संख्या 5-7 प्रतिशत ही ठहरेगी या अधिक। पर हम जिस छोटे प्रदेश की बात कह रहे हैं उसमें इसी समाज का बहुमत है। पिछले साल जब सत्याग्रह और लगानबंदी का सवाल उठा था तब हमने प्रत्यक्ष देखा था कि बैसवाड़े के इस वर्ग का किसी प्रकार का संघटन नहीं हो सका था और यदि थोड़ी-बहुत उत्तेजना हुई थी तो केवल स्वार्थ की दृष्टि से, त्याग की भावना बिलकुल ही नहीं थी। वहीं की छोटी-छोटी कौमों में उनकी अपेक्षा अधिक उत्साह, अधिक संघटन और अधिक निस्वार्थ भाव था। प्राचीन संस्कार, रूढ़ि आदि जो कुछ कहिए हमारे लिए यह केवल चरित्र का प्रश्न है।

प्रारंभिक आवश्यकता इसी चरित्र सुधार की है। यही चरित्र सुधार वास्तविक समाज सुधार है और राजनीतिक सुधार भी यही है। शब्दों के हेरफेर में पड़ने से कोई मतलब नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मूल समस्या यही है। इसी को लक्ष्य में रखकर आगे बढ़ना और आनेवाली समस्त आपत्तियों का सामना करना परम धर्म है क्योंकि इस स्तर पर पहुंचकर यह एक सार्वदेशिक और धार्मिक प्रश्न बन जाता है। हमारी शिक्षा, हमारे संस्कार, हमारी सामाजिक मर्यादा अथवा जो कुछ भी इस ऋण की प्राप्ति में बाधक हों उन्हें नष्ट कर देना कर्तव्य होगा। यहां यह मनुष्यता का सवाल हो जाता है। पर अफसोस की बात है कि हमारी जातीय सभाएं और महासभाएं इस मूल प्रश्न को नहीं पकड़तीं, इधर-उधर शाखाओं को सींचती फिरती हैं। कान्यकुब्ज महासभा हो या सारस्वत या अग्रवाल, आज यदि वह बाल, वृद्ध, विधवा, विधुर, एक-अनेक विवाह, दहेज सहभोज आदि के झूठे झगड़ों (मूल समस्या को न देखना और इनमें सुधार की कोशिश करना हम झूठा झगड़ा ही समझते हैं) से निवृत्त होकर मूल प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करने को तैयार हों तो समाज के बहुत से नेता पदधारी कल ही पंक्ति से बाहर कर दिए जाएं और सुधार का वास्तविक श्रीगणेश हो। जब तक एम.ए., बी.ए. की डिग्री, जजों का पद और रियासत का मंत्रित्व प्रतिष्ठा के मापदंड बने हैं तब तक चरित्र का सच्चा सुधार वर्तमान स्थिति में प्रायः असंभव है और जब तक समाज सुधार की यह आधार-शिला दृढ़ होकर प्रतिष्ठित नहीं होती तब तक सैकड़ों-सभाओं, महासभाओं के सैकड़ों-सहस्रों अधिवेशन एक फूंक में उड़ जाएंगे।

(गुरुवार, 26 नवंबर 1931)

## गोलमेज का अंत

गोलमेज का अंत नजदीक आ रहा है और जैसे-जैसे वह नजदीक आ रहा है वैसे-वैसे कटुता बढ़ रही है। चित्रकार अपने चित्र का और कवि अपनी कविता का अंतिम बंद (Finishing touch) यथाशक्ति अधिक रोचक बनाने की कोशिश करता है पर ब्रिटेन ने अपनी इस गोलमेजी-रचना के बारे में ऐसी कोई कोशिश नहीं की। यों तो शुरू से ही इस रचना में स्याही ज्यादा लग रही थी और चमक कम आ रही थी पर यह आखिर का काम तो निहायत बदनुमा हुआ है। जो खास खास पहलू थे—फौज, परराष्ट्रनीति, व्यापार और अर्थनीति आदि वे ही सब पीछे के लिए रखे गए थे और हमें यह देखकर दुःख होता है कि उनका जो खाका गोलमेज की संघ-योजना कमेटी ने खींचा है वह भारतवासियों को किसी तरह संतुष्ट नहीं कर सकता। महात्मा गांधी ही नहीं, भारत के प्रायः सभी राष्ट्रीय प्रतिनिधि, एक के बाद एक, इसके लिए अफसोस करते रहे पर नतीजा कुछ भी न हुआ। गोलमेज के भीतर सर सेमुएल होर ने अपने भारतमंत्री पद के बिलकुल अनुपयुक्त भारत-विरोधी रुख दिखाया और लार्ड रीडिंग ने वह नीतिज्ञता प्रकट की जो कुनैन की गोली की तरह ऊपर से मीठी पर भीतर से भारत के लिए तिक्त थी। उन्होंने पिछले गोलमेज के सभी संरक्षण भारत के गले उतार देने की चालाकी की और खेद के साथ कहना पड़ता है कि लार्ड सैंके ने अध्यक्ष की हैसियत से जो चिट्ठे (Drafts) तैयार किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं वे करीब-करीब लार्ड रीडिंग के ही लिखाए, उनके ही प्रस्तावों की नकल हुए हैं। फौज के और परराष्ट्र संबंध के अत्यंत आवश्यक प्रश्नों पर तो लार्ड सैंके ने करीब-करीब लार्ड रीडिंग की हूबहू नकल की है। पूछा जा सकता है कि ऐसा क्यों किया गया? बीच-बीच में लार्ड सैंके ने बहुमत की राय की दोहाई दी है, पर कमेटी के बहुमत का अर्थ हम सब लोग खूब समझते हैं। निश्चय ही कमेटी का बहुमत भारत का राष्ट्रीय बहुमत नहीं कहा जा सकता, पर इस पर गौर करने का कष्ट नहीं उठाया गया। यद्यपि देहली के गांधी-इर्विन समझौते में कहा गया था कि प्रांतीय और केंद्रीय शासन का संपूर्ण अधिकार भारत को सौंपते हुए केवल वे ही संरक्षण रखे जाएंगे जो भारत की दृष्टि से हितकर होंगे, पर संघ-योजना कमेटी ने लार्ड रीडिंग की सिफारिशों को ही भारत के लिए वास्तव में हितकर मानकर अपना खर्रा तैयार किया है और ऐसा करके पुराने जमाने से चले आते हुए खयाल को पुष्ट कर दिया है कि हिंदुस्तानी लोग अपनी भलाई आप नहीं समझ सकते हैं, अंग्रेज लोग ही उसे बखूबी समझ सकते हैं। अच्छा है, पर यहां यह सवाल भी होता है कि पिछली बार के सम्मेलन के प्रस्तावों को ही यदि सजाकर विधान बनाने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने पेश करना था तो इस दूसरे सम्मेलन के लिए इतनी हाय-तौबा क्यों मचाई गई? और इतना धन और इतना समय क्यों बर्बाद किया गया?

यह तो हुआ गोलमेज के भीतर का दृश्य। बाहर का दृश्य भी वैसा ही मलीन हो रहा है। पार्लियामेंट में इन दिनों जिस दल का बोलबाला है उसकी प्रतिध्वनि चारों ओर सुन पड़ती है। मिस्टर चर्चिल अब भी अपने पथ पर चले जा रहे हैं। अभी उस दिन पार्लियामेंट की लार्डसभा में तरह-तरह की तकरीरें पेश की गईं जिनमें एक यह भी थी कि महात्मा गांधी निर्वासित कर दिए जाएं। पर इनसे भी अधिक ब्रिटेन भक्त मशहूर अंग्रेजी अखबार *डेली मेल* ने, जो अनुदार दल का मुख पत्र है और जिसका प्रभाव वर्तमान ब्रिटिश सरकार पर स्वभावतः है, प्रधानमंत्री को सलाह दी है कि वे इस गोलमेज झमेले को हटाएं, गांधी को घर वापस करें और भारत पर शासन करें। गोलमेज के झमेले को हटाकर गांधी को निर्वासित कर अथवा घर भेजकर ब्रिटेन भारत पर जिस तरह शासन करेगा यह सब लोगों को मालूम है। ब्रिटेन के लिए यह कोई नया अनुभव नहीं हैं और न भारत के लिए ही यह नई बात है। इसकी परीक्षा एक बार से अधिक की जा चुकी है और ब्रिटेन के दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने देख लिया है कि दमनचक्र कारगर नहीं हो सकता। भारत की जाग्रत राष्ट्रीय शक्ति का अंदाज ब्रिटेन के ऊंचे से ऊंचे भारतीय अधिकारी लगा चुके हैं और उन्हीं के उत्कट उद्योग से गोलमेज सम्मेलन का यह दूसरा अधिवेशन किया गया था। उसी गोलमेज सम्मेलन को यदि झमेला समझा जाता है तो इसका सीधा अर्थ यही है कि ब्रिटेन का शासनचक्र अनुदार दलवालों के हाथ में है और वे नए सिरे से उस कठोर शासन विधि की परीक्षा करना चाहते हैं, जो अभी-अभी विफल सिद्ध हो चुकी है। इस प्रकार नए-नए दल अपने अनुभवों से लाभ न उठा कर,एक पीड़ित और पराधीन राष्ट्र के ऊपर, कठोरता और अत्याचार के नए-नए प्रयोग करने के मंसूबे बांधे जाते हैं। पर यह न्याय नहीं है, नैतिक दृष्टि से अपराध है और ब्रिटेन की रणनीतिज्ञता के सर्वथा प्रतिकूल है। अब भी समय है कि ब्रिटेन संभले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारत को साइमन मार्के का अधूरा प्रांतीय स्वराज्य देकर और केंद्रीय स्वराज्य के सवाल को कई वर्षों की जांच पड़ताल के लिए टालकर, ब्रिटेन भारत का समाधान करना चाहता था। पर भारतीय प्रतिनिधियों के प्रबल विरोध के कारण जब उसे केंद्रीय शासन पर विचार करने को बाध्य होना पड़ा तब बीच में ब्रिटेन के मुसलमान मेहमानों ने अपना अड़ंगा खड़ा किया। आगे की बातचीत सुनने को तो वे मेहमान लोग तैयार हुए पर स्वयं मौन हैं और तस्फिये को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि यह तस्फिया भारत की राष्ट्रीय मांग के अनुकूल होता तो शायद अपना मत रिजर्व रखने वाले मुस्लिम डेलीगेट कोई नया गुल खिलाते, पर गनीमत यह हुई कि तस्फिये से अनेक राष्ट्रीय प्रतिनिधि भी सहमत नहीं हैं। इसलिए मुसलमानों के सहमत होने, न होने का सवाल करीब-करीब उठता ही नहीं। अब तो सबसे बड़ा सवाल यह है कि आगे क्या होगा? महात्मा गांधी ने आशंका प्रकट की है कि मैं भारत पहुंचकर गिरफ्तार कर लिया जाऊंगा। पूज्य मालवीयजी और श्री जयकर आदि भी अपनी विरक्ति दिखा चुके हैं। राष्ट्रीय प्रतिनिधियों में शायद एक भी संतुष्ट नहीं है। ऐसी अवस्था में यदि ब्रिटेन की बुद्धि अंत में चेत नहीं जाती और कोई दूरदर्शी राजनीतिज्ञ स्थिति को इस तरह बदल नहीं देता जिसके अभी तक कोई चिह्न नहीं हैं तो गोलमेज का अंत अत्यंत निराशाजनक रीति से हो जाएगा जिसका परिणाम भविष्य के लिए अत्यंत भयानक हो सकता है।

## इलाहाबाद जिले के किसान

यद्यपि किसानों की हालत सारे प्रांत में बिगड़ी हुई है, पर इलाहाबाद के किसानों की देख-रेख कांग्रेस सबसे अधिक कर रही है और अभी पिछले दिन जिले के किसानों का सम्मेलन भी स्थानीय कांग्रेस कमेटी की निगरानी में हुआ। इसके पहले भी यहां के कांग्रेस नेता इलाहाबाद जिले की लगानमाफी के बारे में प्रांतीय चीफ सेक्रेटरी से पत्र-व्यवहार कर रहे थे जिसके फलस्वरूप जमुनापार के कुछ हिस्सों में जिले के किसानों की छूट कुछ बढ़ाई जाएगी। छूट की शरह अब तक नहीं बताई गई है पर उम्मीद की जाती है कि वह काफी होगी। जिला कांग्रेस कमेटी की ओर से यह सूचना निकली थी कि लगान तब तक रोक रखी जाए जब तक छूट की नई शरह मालूम न हो जाए। सरकार की ओर से कहा जा रहा है कि यह सूचना वापस ली जाए और लगान वसूली रोकी न जाए, पर कांग्रेस नेताओं को पुराने अनुभवों के अनुसार यह भय है कि एक बार वसूल की हुई अधिक लगान वापस नहीं की जाएगी, इसलिए वे अपनी सूचना वापस नहीं लेना चाहते। सरकार को चाहिए कि वह इस तरह आगे-पीछे का झगड़ा न खड़ाकर शीघ्र छूट की शरह बतला दे। इसमें बहुत अधिक गणितज्ञता की जरूरत नहीं है। सन् 1915-16 में जिले की कुल लगान लगभग साढ़े चौवालिस लाख थी, 1930-31 में वह बढ़कर सतावन लाख से अधिक हो गई। इस तरह यह तेरह लाख की रकम और बढ़े। लेकिन पुरानी विज्ञप्ति के अनुसार सरकार ने 1915-16 के ही नहीं 1909-1910

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के अनुसार छूट देने का वादा किया था। इस तरह तेरह लाख की रकम और बढ़कर कम से कम पंद्रह-सोलह लाख होती है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि मौजूदा छूट साढ़े नौ लाख से ज्यादा नहीं है। इसलिए मोटे तौर पर छह लाख की और छूट मिलनी चाहिए। सरकार की यह दलील है कि छूट या महंगाई का समस्त कष्ट सरकार और जमींदार ही क्यों उठाएं। किसान भी उठाएं। किसानों को लगान देने पर भी और दूसरे-दूसरे खर्च रहते हैं, पर सरकार का बजट तो पहले से ही फालतू खर्च की काफी गुंजाइश रखकर बनाया जाता है। इसलिए सरकार का और किसान का कोई मुकाबला नहीं है, हां जमींदारों के सुभीते का ध्यान रखना भी जरूरी है और इसके लिए सरकार को प्रबंध करना चाहिए। पर अभी तो साधारण हिसाब से ही छह लाख से अधिक छूट किसानों को मिलनी है। इस रकम का बड़ा हिस्सा पहले छोड़ा जाए फिर दूसरी बात की जाए।

## समाज-सुधार का सवाल—2
## (समाज सुधारक दस वर्ष की छुट्टी ले लें)

'यदि' एक-एक व्यक्ति का चरित्र-संस्कार हो जाए तो समाज-व्यवस्था सुधरते देर न लगे। हम मानते हैं कि यह 'यदि' की कल्पना बड़ी ही क्लिष्ट कल्पना है और क्लेश-साध्य भी है पर समाज सुधार का काम भी आसान नहीं है। इस संबंध में अपने को धोखा देना बेकार होगा। कार्य की कठिनाई तो माननी ही पड़ेगी। यदि कठिनाई की कल्पना से डर कर घर बैठे रहने का विचार हो तो भी कोई हर्ज नहीं। आजकल के पाषंड से वह फिर भी अच्छा होगा। पर यदि कार्य की गुरुता का अनुभव करके उत्साह और दृढ़ निश्चय की शक्ति आती है, यदि उससे किसी प्रकार की शुभ प्रेरणा उत्पन्न होती है तो वह सर्वथा वरेण्य है। यदि अपने स्वच्छ निर्मल और दिव्य चरित्र में कुछ भी आकर्षण है, यदि अपने कुटुंबभाई और पास पड़ोसी के निश्छल व्यवहार से कभी कुछ भी आनंद मिला है, यदि बालकों की चंचल अथच सात्विक क्रीड़ा में आपकी लेश भी रुचि है अथवा यदि देश-विदेश के साधु-संत ज्ञानी-विज्ञानी और परमहंस अपनी रहन-सहन और अपने जीवन से शिक्षा की एक भी आलोक-रेखा छोड़ गए हों तो समाज सुधार के क्षेत्र में आकर अपनी उन वासनाओं की तृप्ति कीजिए। यह त्याग नहीं है, तपस्या नहीं है, जीवन की मौज है, आनंद है। एक-एक बालक में, एक-एक युवक और एक-एक वृद्ध में, समाज के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक, इसी मौज और इसी आनंद का अमृत-प्रवाह बहाना है। यह एक सार्वभौम कल्पना है जिसमें शिक्षा-अशिक्षा, संपन्नता-दरिद्रता, सम्मान-असम्मान के समस्त बंधन कटे हुए हैं। व्यक्ति ही साधन है, व्यक्ति ही सिद्धि भी। व्यक्ति की चेतना की चिन्गारी मलिन हो रही है, बस उसे ही क्षणभर में प्रज्वलित करके शिथिल, शापग्रस्त, वातुल समाज में नवीन प्राणशक्ति लानी है। प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक विकार इसी प्रज्वलित बह्नि में स्वाहा कर दिया जाए, इस महायज्ञ का पुरोहित कौन नहीं बनना चाहेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक नवीन चेतना की ज्योति में संपूर्ण मनुष्य समाज उसी तरह खिल उठे जिस तरह उषा की ज्योति में आकाश तो यह दृश्य कैसे अच्छा नहीं लगेगा?

यही हम लोगों का चरमस्वार्थ है पर इसे बहुत से लोग परमार्थ और आदर्शवाद कह के टालने की कोशिश करते हैं। यह युग की गति है, इसकी हमें थोड़ी-सी चिंता अवश्य करनी पड़ती है पर इसके कारण हम अपने केंद्र को नहीं छोड़ सकते–उस केंद्र को जिससे समाज की ही नाड़ी, समाज के प्राण का पता लगता है। हमारा मतलब व्यक्ति से है जो संपूर्ण समस्या का मूल है। हम व्यक्ति को नहीं छोड़ सकते। जो आजकल के समाज-सुधारक हैं वे व्यक्ति को देखते ही नहीं, उनकी दृष्टि ऐसी भौंचक हो रही है। इन समाज सुधारकों को आदर्शवादी कहा जाता है पर यह तो आदर्शवाद की विपर्यय गति है। ऐसे आदर्शवादी हंसी के पात्र हैं। जो सुधारक लोग हैं वे स्थिति का साधारण विश्लेषण भी नहीं कर सकते। वे शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता समझते हैं और बाह्य कुलशील तथा मानप्रतिष्ठा से मढ़े हुए व्यक्ति को देवता की उपाधि देते हैं। पर उचित यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य समझा जाए और मनुष्यता के आधार पर ही उसके अन्य अंगों की जांच पड़ताल की जाए। हम नहीं चाहते कि कुछ विचित्र प्रकार की विधियों से कुछ अद्भुत प्रकार के शब्द समूह पर अधिकार जमा लेने वाला व्यक्ति संयोग से उस विचित्र विधि से वंचित रहने वाले एक दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ ही समझा जाए। शिक्षा व्यक्ति के चरित्र का एक उपकरण मात्र हो सकती है, अधिक से अधिक इतना ही। वह उपकरण के बदले उपकरण भी हो सकती है, विशेषकर इन दिनों की शिक्षा। इसलिए शिक्षा की कसौटी ठीक नहीं होगी। इस तरह दूसरी दूसरी कसौटियों को भी समझना चाहिए। पर दुःख की बात है कि इन्हीं कसौटियों पर परखकर समाज अपने नेताओं का चुनाव करता है और वे नेतागण अपनी शिक्षा का चमत्कार लेक्चरबाजी में दिखाते हैं और प्रतिष्ठा का चमत्कार घर में। रंगमंच पर दहेज के खिलाफ जोर-शोर से गला फाड़ते हैं, घर पर आकर दहेज ठहराने की हिदायत बाबूजी या ताऊजी को कर देते हैं और वे महाशय अच्छी से अच्छी रकम ऐंठने में कोई कसर नहीं करते। इसे वैश्यवृत्ति कहिए या वेश्यावृत्ति, यह बड़े-बड़े ब्राह्मणों की वृत्ति हो रही है।

जब तक समाज सुधार का काम आजकल की तरह एक प्रकार की रूढ़ि या परंपरा के रूप में होता रहेगा तब तक यह वृत्ति ऐसी ही बनी रहेगी। और जब तक यह वृत्ति बनेगी तब तक सुधार के कार्य में व्यक्ति और समाज का संघर्ष होता रहेगा, जो प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष हो, नाशकारी अवश्य है। इससे ही समाज की रही-सही शक्ति भी क्षीण हो जाएगी, नवीन शक्ति का उन्मेष तो दूर की बात है। आज जब संसार में अंतर्राष्ट्रीयता का भाव प्रबल हो रहा है और बेतार के तार, रेडियो आदि वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा सब देश एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं, तब इस सम्मिलन प्रवाह की अवमानना कर हमारे समाज की दूसरी ही चेष्टा हो रही है और अंतर घटने के बदले बढ़ता जा रहा है। इसका कारण केवल वह अप्राकृतिक वातावरण है जो समाज सुधार के साथ व्यक्ति सुधार का संयोग न होने के कारण उत्पन्न हो गया है। इसकी तमाम जिम्मेदारी हमारे सुधारक लोगों पर है और यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। हम पर दुनिया की हलचल का कोई असर नहीं पड़ रहा बल्कि जब दुनिया एक हो रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है तब हम अपना साधारण संघटन भी नहीं कर सके हैं, उल्टा पृथक्करण की आवाज उठा रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से हमारे समाज की यह गति विस्मयकारिणी है। और तो और, जब राजदंड (शारदा कानून) द्वारा बाल-विवाह का निषेध किया गया है तब भी समाज की रूढ़िगत हठवादिता उसका अपालन करने का प्रयास करती है। यह कोई सत्याग्रह नहीं है, दुराग्रह मात्र है क्योंकि नियमभंग करने वाले अपना भला-बुरा नहीं समझते, कहीं-कहीं तो राजाज्ञा से भी परिचय नहीं रखते। कारण यही है कि व्यक्ति का विकास नहीं हुआ है। व्यक्ति समाज सुधार की प्रक्रियाओं को समझ नहीं सकता, उसके लिए वे भार-मात्र हैं जिन्हें वह वहन नहीं कर सकता। इसी कारण आज कितने ही वर्षों से समाज सुधार की पुकार मचाई जा रही है पर अब तक बाल-विवाह से लाभ हो या हानि, बहु विवाह हो या न हो आदि आदि का निदान खंड ही चल रहा है, अब तक अंतिम निर्णय नहीं हो सका। जब तक व्यक्ति सचेतन नहीं होगा तब तक यह निदान खंड चलता रहेगा, चिकित्सा का अवसर ही नहीं प्राप्त होगा।

आवश्यक यह है कि पहले व्यक्ति की चिकित्सा की जाए, उसके बाद सामाजिक रोगों का निदान किया जाए। हम कह सकते हैं कि इस तरह समाज सुधार का सवाल आसानी से हल होगा। निदान में देर न लगेगी, जो कुछ बुराई है वह समझ में आ जाएगी। फिर थोड़ी सी व्यवस्था और थोड़ा सा कायदा कानून बना दिए जाएंगे और समझदार व्यक्ति समूह उन्हें स्वतः पालन करेगा। यदि नहीं करेगा तो राजदंड और समाजदंड तथा सत्याग्रह उसकी व्यवस्था करेंगे। बहुत कुछ आत्मप्रेरणा से ही काम होता रहेगा, सत्याग्रह को कवायद नहीं करनी पड़ेगी। तथापि निषेध के लिए यह राजदंड और सत्याग्रह के दोनों अस्त्र रहेंगे। पर आजकल की तरह इनका प्रयोग अन्य समाज में नहीं किया जाएगा, चैतन्य समाज में किया जाएगा। तभी उनकी सार्थकता होगी अन्यथा नहीं। अभी कुछ दिनों तक तो आजकल के समाज सुधारक लोग दस पांच वर्ष की छुट्टी ले लें, तो कोई नुकसान नहीं होगा। सब जातीय सभाएं और महासभाएं भंग कर दी जाएं तो अच्छा हो। उनकी कोई आवश्यकता सिद्ध नहीं हुई, सिद्ध नहीं हो सकती। हम इतने असहिष्णु नहीं हैं कि किसी ऐसे उद्योग का विरोध करें जिससे हम सहमत नहीं हैं, फिर भी जिससे कुछ लाभ हो रहा है। पर हमारा तो यह विश्वास है कि ये सभाएं समाज सुधार के कार्य को और अधिक पेचीला बना रही हैं, क्योंकि ये मूल समस्या व्यक्ति सुधार का कोई प्रबंध नहीं कर रहीं बल्कि व्यक्तियों की अनुचित और अयोग्य योजना से संपूर्ण प्रश्न को और भी जटिल बना रही हैं। व्यक्तियों की नापजोख के इनके रूढ़िगत पैमाने समाज का सुधार नहीं करते, संहार ही अधिक करते हैं।

(रविवार, 29 नवंबर 1931)

## ज्ञान की महिमा

आगरा और प्रयाग विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसरों पर संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और वक्ता सर सी.वी. रमण ने जो भाषण दिए उनमें ज्ञान की अच्छी महिमा प्रकट की गई है। रमण महोदय ने इस बात पर काफी जोर दिया कि ज्ञान देश और काल की सीमा के बाहर है, सार्वकालिक है और सार्वभौम है। उसका निरंतर विकास होता रहता है। अब से पचास-साठ वर्ष पहले जापान एक छोटा सा टापू मात्र था, पर आज वह संसार के अग्रगण्य राष्ट्रों में एक है। इसका कारण डॉक्टर रमण महोदय ने यह बतलाया है कि उसने अपनी लघुता का त्याग किया, अन्य उन्नत राष्ट्रों के संसर्ग में आया और ज्ञान पाकर ज्ञानी बन गया। इसके साथ ही अपने भारतवर्ष की हालत बतलाते हुए कहा कि पिछले डेढ़ हजार वर्ष से हिंदुस्तान का ज्ञान विलीन हो गया है। इसके पहले उसका ज्ञान अच्छा चमत्कार दिखा रहा था और संसार के सभ्य राष्ट्रों में उसकी गणना होती थी। भारतवर्ष अपने संकीर्ण दायरे में रहकर उन्नति नहीं कर सकता। उसे संसार के ज्ञान को ग्रहण करना होगा और स्वतः उसका विकास करना होगा। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो वह बल्गेरिया और रूमानिया की कोटि का ही देश बना रहेगा। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि की बराबरी नहीं कर सकेगा। ज्ञान जहां से मिले ग्रहण करना चाहिए। फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैंड आदि का साहित्य और पत्र-पत्रिकाएं ही नहीं, हमें तुर्की तक की पत्र-पत्रिकाएं पढ़नी चाहिए और उनकी ज्ञान गरिमा से लाभ उठाना चाहिए। डॉक्टर रमण महोदय ने इस प्रकार ज्ञान की महिमा प्रकट की है और यह दिखाया है कि ज्ञान के पारस को स्पर्श कर जापान लोहे से सोना हो गया और भारतवर्ष को भी वैसा ही सौभाग्य प्राप्त करना चाहिए। डॉक्टर रमण महोदय ने ज्ञानी बनने के जो उदाहरण लिये हैं वे एक विशेष प्रकार के हैं क्योंकि यह तो कहना साहस का काम होगा कि ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी ज्ञान में सर्वथा भारतवर्ष से बढ़े हुए हैं और जापान इन पचास वर्षों में सच्चे ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंच गया है। फिर भी विद्यार्थियों में समयानुकूल उत्साह की प्रेरणा करते हुए उन्होंने जो कुछ कहा, वह एकांगी हो सकता है पर प्रभावोत्पादक अवश्य है।

रमण महोदय ने ज्ञान की एकता का आदर्श दिखाने की चेष्टा की है और वह सर्वथा स्तुत्य है। उनके उदाहरणों में ऐकांगिकता हो सकती है पर उनका सिद्धांत सत्य है। उन्होंने कहा भी कि आपको ये बड़ी-बड़ी इमारतें नहीं, इनमें बहने वाली ज्ञान की धारा ही एक प्रवाह में बहा सकती, एक सूत्र में गूंथ सकती है। यदि वे इमारतें न भी होतीं और इनके स्थान पर केवल एक टीन का छायादार मकान होता अथवा मिट्टी का ही एक बड़ा सा झोंपड़ा होता, परंतु यदि उसमें ज्ञानशिक्षा मिल सकती तो उसे भी हम पसंद करते। डॉक्टर महोदय के इन उद्‌गारों में ज्ञान की सत्य-महिमा दीख पड़ती है। यहां उनके ज्ञान का मतलब केवल बौद्धिक और आधुनिक विज्ञान विषयक ज्ञान नहीं है बल्कि वह वास्तविक ज्ञान ज्योति–चैतन्यज्योति–है जो शाश्वत और निरवयव है, जो झोपड़े में भी उतनी ही सुविधा से प्राप्त की जा सकती है जितनी सुविधा से महलों में। इसी विचार का और प्रसार करते हुए रमण महोदय ने कहा कि आपके ये कुलपति महोदय, ये रजिस्ट्रार साहब, आपको एक सूत्र में बांधने वाले नहीं हैं–यहां उन्होंने उक्त महोदयों से व्यक्तिगत रीति से क्षमा मांगी–आपको एक सूत्र में बांधने वाला ज्ञान का सूक्ष्म किंतु सुवर्ण तंतु है। यहां भी ज्ञान का शुद्ध चैतन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाव है, जड़त्व का एक भी परमाणु उसे स्पर्श नहीं कर रहा। वास्तविक ज्ञान की महिमा यही है। यह ज्ञान अर्थशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भूशास्त्र आदि भिन्न-भिन्न विधाओं के कठघरे में बंद नहीं है। सर्वत्र एकरस व्याप्त है।

तथापि सर सी.वी. रमण विज्ञान विद्या विशारद हैं और पश्चिमी शिक्षा में पारंगत भी हैं, इसलिए स्वभावतः उनके विचार जिस सांचे में ढले हुए हैं उसका वे पूर्णतः परिहार न कर सकें तो कोई आश्चर्य नहीं। गतिशील सभ्यता और गतिशील संस्कारों की बात तो हम भी जानते हैं पर रमण महोदय इस विषय में हम से एक कदम आगे हैं। उनका मत है कि संसार में प्राचीनता अद्भुत तेजी के साथ बिलाती जा रही है और नवीनता अपना अधिकार जमा रही है। उन्होंने दूर देशों में भ्रमण किया है इसलिए उनके अनुभव पर विश्वास कर सकते हैं। रमण महोदय ने इसी प्रसंग में यह भी सूचना दी है कि पश्चिम के देश नवीनता को खूब मुस्तैदी के साथ ग्रहण कर रहे हैं और पुराने चोले का परित्याग कर रहे हैं। हिंदुस्तान को भी ऐसा ही करना चाहिए। हम यह भी मान सकते हैं। पर इसके आगे रमण महोदय ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का उदाहरण देकर बतलाया कि वहां धर्मशिक्षा अब तक अनिवार्य विषय थी अब वह वैकल्पिक बना दी गई है, जिसका जी चाहे पढ़े और परीक्षा दे, न जी चाहे न दे। यह उदाहरण देकर उन्होंने उक्त आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की बड़ी प्रशंसा की है क्योंकि उसने कई सौ वर्षों से प्रचलित परिपाटी को तोड़ दिया और परिवर्तित समय के अनुसार अपना नियम बदल दिया। हम यहां इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए या नहीं। यह बहुमत का जमाना है और वहां के अधिकांश नवयुवकों की रुचि इस समय अनिवार्य धार्मिक शिक्षा के प्रतिकूल होगी। तथापि हमारी यह जिज्ञासा होती है कि ज्ञान की जिस अखंड महिमा का रमण महोदय ने उल्लेख किया है, आक्सफोर्ड के अधिकारियों ने धर्म शिक्षा का बहिष्कार करने में उसका ध्यान रखा था या नहीं? यदि केवल लोक रुचि के अनुसार ही सिद्धांतों का त्याग कर दिया जाए तो ज्ञान की धारा क्षण-क्षण अपनी दिशा बदलने लगे और उसका कोई नियम ही न रह जाए। हम जानना चाहेंगे कि आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने इस दृष्टि से इसका विचार किया था या नहीं!

ज्ञान के क्षेत्र में अर्थात् विश्वविद्यालयों में अज्ञानियों का या अर्द्ध ज्ञानियों का किसी तरह अधिकार न होना चाहिए, सब तरफ से प्रवेश-निषेध होना चाहिए। ज्ञान को स्वतंत्र रीति से विकास का अवसर मिलना चाहिए। राजव्यवस्था उसके मार्ग में किसी तरह बाधा न डाले और न राजनीतिज्ञ ही उसमें प्रवेश कर सकें। यह तो हम मानते हैं कि शिक्षा संबंधी संस्थाएं बाहरी प्रभाव से जितना ही अधिक मुक्त होंगी उतना ही अच्छा होगा। पर देश के नेताओं और विचारकों को उनमें प्रवेश तक करने का निषेध हो यह तो ज्ञान की अखंड महिमा के अनुकूल नहीं समझ पड़ता। वस्तुओं को देखने की अनेक दृष्टियां हैं, ज्ञान के भी अनेक मार्ग हैं। यदि देश के सम्मान्य राजनीतिज्ञों को अपना मत प्रकट करने की सुविधा नहीं रहेगी तो विश्वविद्यालय अवश्य ही ज्ञान के उस अंश विशेष से वंचित रहेंगे। यदि शंका की जाती है कि राजनीतिज्ञगण अपने ओजस्वी भाषणों आदि से शिक्षकों और विद्यार्थियों को ज्ञान के मार्ग से अलग कर देंगे तो यह विश्वविद्यालयों और उनकी शिक्षा की ही त्रुटि कही जाएगी। उचित यह है कि विश्वविद्यालयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का द्वार राजनीतिज्ञों ही नहीं प्रत्येक क्षेत्र के सम्मान्य विचारकों के लिए सम रूप से खुला रहे और विद्यार्थियों की विवेक बुद्धि इतनी जाग्रत हो कि वे क्षणिक भावना के उद्वेग में न आएं बल्कि अपने किसी भी मार्ग को ग्रहण करने के पहले उस पर अच्छी तरह विचार कर लें। यदि विद्यार्थियों में इतनी विवेकबुद्धि नहीं है तो विश्वविद्यालयों को इसका प्रबंध करना चाहिए, पर यह तो ज्ञान की अखंड महिमा के प्रतिकूल होगा कि सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों की भिन्न-भिन्न विचार रश्मियां विश्वविद्यालयों में प्रवेश ही न कर सकें और ज्ञानाकांक्षी विद्यार्थी उनसे वंचित ही रहें।

## समाज सुधार का सवाल—3
## (निदान, चिकित्सा और परहेज की विधियां)

इस तरह समाज के सुधार के लिए तीन बातों की आवश्यकता ठहरती है। व्यक्ति की परख की, उसके सुधार की और सुधरे व्यक्ति को सम्मान प्रदान की। स्पष्ट ही इनमें से प्रथम निदान विधि, द्वितीय चिकित्सा विधि और अंतिम लोक-संग्रह विधि है जिसे वैद्यक की भाषा में परहेज भी कह सकते हैं। ये तीनों प्राथमिक आवश्यकताएं हैं जिनसे व्यक्ति का विकास होगा, अर्थात् समाज का विकास होगा। समाज के प्रत्येक रोग का मूल व्यक्ति में मिलता है इसलिए व्यक्ति की नाड़ी देखी जानी चाहिए। यही अचूक निदान विधि है। आजकल के समाज सुधारक नाड़ी नहीं देखते, रुग्ण समाज के भिन्न-भिन्न रोगों के लक्षण सुनकर अलग-अलग दवा बतलाते हैं, पर इस तरह तो चिकित्सा नहीं होती। यह नीमहकीमी बड़ी खतरनाक है और इसने पिछले कुछ वर्षों के भीतर समाज का काफी अनिष्ट साधन किया है। इसके कारण समय का बहुत अधिक अपव्यय हुआ है और रोग बढ़ते रहने के कारण शक्ति बहुत अधिक क्षीण पड़ गई है। एक-एक लक्षण को सुनकर दवा तजवीज करने का फल यह भी हुआ है कि पुराना मर्ज दूर नहीं हुआ, अनेक नए मर्ज पैदा हो गए। केवल एक उदाहरण देकर देखिए समाज सुधारक लोगों ने पिछले बहुत से वर्षों से स्त्रियों के साथ सद्व्यवहार करने का नुस्खा दे रखा है। धीरे-धीरे समाज में उनकी देवी रूप में पूजा-प्रतिष्ठा होने लगी है। साहित्य और कलाओं में स्त्रीत्व की (जनानपन की) वृद्धि हुई है और फोटोग्राफी की कृपा से पत्र-पत्रिकाएं भी स्त्री-प्रतिभा का अच्छा प्रदर्शन करने में लगी है। किसी तरह का परहेज नहीं बताया गया। इसीलिए आज पुरुषों में स्त्री-लिप्सा पिछले युग से अधिक जाग्रत है और इसका फल उन्हीं देवियों को ही भोगना पड़ता है। आज की प्रायः प्रत्येक बहू अपनी पुरखिन (पिछले युग की बहू) से अधिक बलहीन और रुग्ण हो रही है। हम देखते हैं कि चौके-चूल्हे से हाथ-पैर समेटकर बैठने का परिणाम बेचारी देवियों के ही हक में अच्छा नहीं हुआ। जिसे टॉल्सटॉय घर के भीतर बलात्कार (Indoor Prostitution) कहते थे, उसके बढ़ने का खूब मौका मिल रहा है। डॉक्टर लोगों की फीस तरक्की कर रही है। मर्दों का हार्टफेल अच्छी संख्या में बढ़ रहा है और हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समाज-सुधारक लोग आग लगाकर दूर खड़े हैं। शायद समझते हैं कि यह उनका कार्यक्षेत्र नहीं है, डॉक्टरों का कार्यक्षेत्र है। यह उनका फरेब नहीं तो अज्ञान अवश्य है। इसकी जिम्मेदारी एक बड़ी हद तक उन्हीं की है। यह बतलाने के लिए किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं है कि समाज का शारीरिक विकास दबा हुआ और दशा बिगड़ी हुई है। नई नस्ल पर इसका जो कुफल हो सकता है वह भी हमारी आंखों के सामने है। बहस करने को जो चाहे करे हम तो शरीर का और मन का घनिष्ठ संबंध मानते हैं अतः यह धारणा रखते हैं कि नवीन युग का मानसिक विकास भी यथोचित नहीं हो सकता। इस ह्रास के मूल में हमारे समाज सुधारक ही अधिकतर हैं। इसका प्रमाण समाज के उस अशिक्षित अंश को देखने से मिल सकता है जिस तक ये सुधारक लोग आज तक नहीं पहुंच सके हैं और जो शिक्षित समाज की अपेक्षा कहीं अधिक दरिद्र और कहीं अधिक मूर्ख होता हुआ भी कहीं अधिक स्वस्थ और चैतन्य है।

ऐसे ही और उदाहरण भी अनेक हैं, पर उनकी यहां आवश्यकता नहीं। सुधारकों और सुधारक सभाओं ने सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के बहाने नई-नई समस्याएं पैदा कर दी हैं और एक बड़ी हद तक (Medicine worse than the disease) रोग से अपनी दवा को ही बदतर साबित कर दिया है। ऊपर हमने जो उदाहरण लेकर देखा है, शायद समाज के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या वही हो गई है क्योंकि उसका संबंध वर्तमान संपूर्ण शिक्षित समाज और उसकी संतान से ही नहीं, आगामी समस्त वंशपरपंरा से है। पर इसके लिए समाज सुधारकों को कोसने का नहीं, स्वयं सचेत होने का समय है। हमें आज ही ऐलान कर देना चाहिए और समाज के प्रत्येक घर में यह संदेश भेज देना चाहिए कि स्त्री देवी नहीं है, स्त्री स्त्री है। हमें अपने साहित्य और कलाओं, फोटो प्रदर्शनियों, पत्र-पत्रिकाओं, रंगशालाओं, सिनेमाघरों आदि आदि से अतिस्त्रीत्व (Over sexed) अर्थात् कि जनानपन के भावों को कम करने की खबर करनी चाहिए! व्यावहारिक जीवन में स्त्री का उचित अधिकार उसे मिलना चाहिए, उचित से अधिक नहीं। इसे सुनकर लोग चौंक सकते हैं—चौकेंगे—पर यह एक बार नहीं हजार बार कहने की बात है। समाज का—स्वयं स्त्रियों का कल्याण इसी में है और आगामी पीढ़ी की आशा भी इसी में है कि हमारी स्त्रियां पीली-पीली निर्जीव कलिकाएं बनकर नहीं, जवान औरत बनकर रहें। कोई जरूरत नहीं कि हम उन्हें लवंगलता की पदवी देने के उपयुक्त, फूंक में उड़ने के उपयुक्त बनाएं! साहित्य का मधुर भाव इसके बिना अच्छी तरह गुजर कर सकता है और कलाएं भी जीवित रह सकती हैं। पर रहे या न रहे। हम अपना वास्तविक प्रतिदिन का और अनंत दिन का जीवन क्यों मुरझाई (मूर्च्छित हिस्टीरिया से) कलियों से सजाएं। हमारी सौंदर्य कल्पना इतनी निकृष्ट कोटि की नहीं है, यद्यपि सामयिक जीवन के साहित्य से लेकर सिनेमाघर तक कितने ही अंतरंगों और बाह्यांगों की चेष्टा विकृत हो रही है। इसे संभालना प्रत्येक समाजसुधारक का सबसे पहला और सबसे प्रमुख कर्तव्य है। दहेज, ठहरौनी, बालविवाह, विधवाविवाह आदि की अपेक्षा यह समस्या अधिक ध्यान देने योग्य और अधिक गंभीरता से विचार करने योग्य है क्योंकि यह समाज के सबसे बड़े नहीं तो सबसे मूल्यवान अंग से संबंध रखती है और समाज का भविष्य इसपर सबसे अधिक अवलंबित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह तो एक उदाहरण हुआ। इसी तरह व्यक्ति की नाड़ी देखकर रोगों का निदान और उसके अनुरूप ही चिकित्सा करनी होगी। निश्चय ही इसके लिए उस समस्त वातावरण का परिचय रखना होगा जिसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। भिन्न-भिन्न सभ्यताओं और रीतिनीतियों का अंतर्द्वंद्व, व्यक्ति के वस्त्राभरण हैं, सामयिक जीवन के भिन्न-भिन्न उपकरण उसकी भोजन-सामग्री है, इन सबकी जांच पड़ताल करनी होगी। दिनचर्या और ऋतुचर्या का ठीक-ठीक निरूपण करना होगा। और यह सब करते हुए सदैव ध्यान रखने की बात यह होगी कि रोग की जड़ को पहचानकर उसे उखाड़ डालने की (Curative) कोशिश की जाए, केवल उनकी वृद्धि रोकने की (Preventive) दवा न दी जाए। अब तक समाज सुधारक यदि कुछ करते रहे हैं तो यही (Preventive) दवा करते रहे हैं यह रोको, इसे बंद करो, उसे तोड़ो आदि। संभव है, समाज की अविकसित दशा में और परतंत्र देश में इतना ही किया जा सका हो पर इतना भी उचित रीति से नहीं किया गया। जैसाकि हम कह चुके हैं, सुधारकों की भिन्न-भिन्न टोलियों ने व्यर्थ बहुत सी शक्ति नष्ट की। क्रांतिकारी सुधारक लोग समाज की धारा को ही रोक देने के विफल प्रयास में पड़े रहे और शायद अब भी पड़े हुए हैं। स्वर्गीय महादेव गोविंद रानाडे के शब्दों में वे नई पार्टी (Clean slate) पर समाज की नई रचना करना चाहते हैं, पर यह किसी तरह संभव नहीं है। कुछ अन्य समाज सुधार पर लिखने वाले अतिवादी लेखक (जिनमें पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निरालाजी' का नाम हमें स्मरण है।) महात्मा शंकराचार्य के वे कर्म-संन्यास के मत पर समाज का ढांचा खड़ा करना चाहते हैं, पर कम से कम इस समय वह व्यावहारिक विधि बिलकुल नहीं है। न हम धारा को बदल सकते हैं, न संन्यासीव्रत आचरण कर सकते है। हम धीरे धीरे विकास करने के पक्ष में हैं। किसी धारा का प्रवाह हमें नहीं रोकना, अधिक से अधिक उसकी दिशा बदल देनी है। नई पार्टी पर नई सृष्टि हम नहीं करेंगे, हम केवल कुछ विकृत अक्षरों को बदल देंगे। जो अधिक विकृत हैं उन्हें पहले बदलें, जो कम हैं उन्हें पीछे। हम गुणों और अवगुणों के आपेक्षिक महत्व को समझें और समझकर आगे बढ़ें। इस क्षेत्र में बिलकुल वैज्ञानिक (Scientific) ढंग से काम करने की आवश्यकता है और गुंजाइश भी है। हम तो अनुभव करते हैं कि बाकायदा गणित की रीति से समाज-सुधार का हिसाब-किताब तैयार किया जा सकता है। पर यह तभी संभव है जब हम अतिवाद (Extremism) को छोड़कर बिलकुल व्यावहारिक रीति का खाका खींचने की कोशिश करें जैसी कि हमने ऊपर की है, अंग-प्रत्यंग के विवरण विवेचन का प्रयत्न भी हम समय-समय पर करते रहेंगे।

(गुरुवार, 3 दिसंबर 1931)

## क्या मिला?

यह दूसरे बार की गोलमेज कल खत्म हो गई इसलिए आज यह सवाल पैदा होता है कि कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लाख रुपए और सैकड़ा से अधिक प्रतिनिधियों के कई महीनों का मूल्यवान समय खर्च करके भारत को क्या मिला, अर्थात् क्या दिया गया? यही सबसे छोटा सवाल है जो पूछा जा सकता है। इससे बड़े सवाल करना और यह पूछना कि पहले कई वर्षों के उत्कंठ राजनीतिक आंदोलन और वर्ष भर की भीषण भारतीय अशांति को दूर करने के लिए भारत को कौन-कौन से अधिकार दिए गए अथवा तत्काल स्वाधीन शासन की उसकी मांग कहां तक पूरी की गई, शायद यह ठीक न होंगे। इसलिए ठीक न होंगे कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने अपनी पिछली विज्ञप्ति में गोलमेज का एक और अवतार कराने का वादा किया है, और इस अवतार में अभी कई वर्षों की देर भी लग सकती है। इसलिए तत्काल स्वराज्य का कोई सवाल नहीं रहा! सिनेमा की सब रीलें जब तक खत्म नहीं हो जातीं उसके पहले ही पूरा प्लाट कोई कैसे जान सकता है—यह बात दूसरी है कि भारत सिनेमा की द्रोपदी की चीर जैसी लंबी-लंबी रीलें देखने की इच्छा नहीं रखता था, यह स्पष्ट शब्दों में तत्काल उत्तरदायी शासन चाहता था। इसी समस्या को व्यावहारिक रीति से हल करने में जितना समय लग सकता था, उतने से अधिक भारत को स्वीकार नहीं था, पर प्रधानमंत्री ने अपनी पिछली घोषणा में यह बतलाने की कृपा की कि सौ-सौ सज्जनों के गोलमेज जैसे बड़े-बड़े सम्मेलन किसी व्यावहारिक समस्या को हल करने के लिए ठीक नहीं होते, उनसे तो केवल भारत की मांगों का एक साधारण खाका सुना-समझा और खींचा जा सकता है। पिछले दो वर्षों के बाद अब इतनी जानकारी हासिल की गई है, स्वराज्य की चर्चा तो आगामी भविष्य में ठीक-ठीक होती रहेगी। पर जो समझने वाले हैं वे समझते हैं कि इस प्रकार समय का भयंकर अपव्यय किया गया है।

इस पिछली बार के सम्मेलन के आतंकी प्रधानमंत्री की घोषणा का सबसे महत्वपूर्ण अंश यह है कि ब्रिटिश सरकार पहले सम्मेलन की जनवरी वाली घोषणा पर ज्यों की त्यों कायम है। इसे सुनकर सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने तालियां पीटीं और हर्ष ध्वनि की, पर हमें तो इसमें हर्ष ध्वनि करने की कोई बात नहीं दीख पड़ती। यह तो ब्रिटेन का एक घरेलू मामला था कि पहला गोलमेज के समय की मजदूर सरकार टूट गई और इस बार राष्ट्रीय सरकार, नाम की एक दूसरी सरकार अधिकार-पद पर पहुंची है। यदि यह दूसरी सरकार भी पहली सरकार की घोषणा पर हामी भरती है तो यह भारत के लिए कोई बड़े सौभाग्य की बात नहीं हो गई। यदि आजकल की अनुदार सरकार पिछली मजदूर सरकार की किसी बात को मानती है, किसी बात को नहीं मानती तो भारत के लिए यह एक सूचना मात्र है, कोई आनंददायक संवाद नहीं है। बल्कि साल भर से अधिक का समय बिता देने के बाद उसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने के समाचार से हमें तो उद्विग्नता ही होती है कि एक-एक बात को इस तरह साल-साल भर के बाद दोहराने तेहराने में कितना समय लगाया जाएगा और भारत की तत्काल जिम्मेदार शासन की मांग कब तक टाली जाएगी।

यह भी देखना चाहिए कि वह जनवरी की घोषणा क्या है जिसे दोहराकर प्रधानमंत्री ने कुछ भारतीय सदस्यों को आनंदमग्न कर दिया। वह शाब्दिक रूप से यह स्वीकार करती है कि भारत को प्रांतों में और केंद्र में भी उत्तरदायी शासन दिया जाए। वह यह शर्तें पेश करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि केंद्रीय शासन तब दिया जाए जब देशी-नरेश भी ब्रिटिश भारत के साथ संघ में शरीक होना स्वीकार कर लें। इस शर्त से इस बार उत्तरदायी शासन की समस्या को और भी जकड़ दिया गया है और अब इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि यदि देशी नरेश संघ में शरीक नहीं होंगे तो केंद्रीय शासन नहीं दिया जाएगा। इस प्रकार ब्रिटिश भारत की पिछले चालीस वर्षों की पुकार संघ शासन के नक्कारखाने में पड़ गई—उसका सुना जाना अब बेहद कठिन हो गया। यह स्पष्टतः अन्याय है पर इस अन्याय को हल्का करने की गरज से ही शायद प्रधानमंत्री ने मजहबी सवाल को हल करने की जिम्मेदारी अपने और अपनी सरकार पर ओढ़ ली है और इस प्रकार जमा-खर्च बराबर होने का आभास दिया है। पर सत्य यह है कि मजहबी भेद अशिकांश में ब्रिटेन का ही पैदा किया हुआ है—बल्कि जैसाकि कुछ राष्ट्रीय प्रतिनिधियों ने बतलाया—वह तब तक दूर नहीं होगा जब तक ब्रिटिश शासन भारत में रहेगा। इसलिए जो इस सब व्यापार को ध्यान के साथ देख सकते हैं वे देखते हैं कि मजहबी प्रश्न को सुलझाने का वचन देकर ब्रिटेन ने भारत पर कोई अहसान नहीं किया और ब्रिटिश भारत की स्वराज्य की समस्या को देशी राज्यों के साथ जोड़कर उसने कार्य को अधिक कठिन कर दिया है।

और जितने महत्व के प्रश्न थे—फौज के, परराष्ट्र संबंध के, अर्थनीति के उन सब पर संघ-योजना कमेटी ने जो फैसला सुनाया है उसके बारे में हम पहले अंकों में लिख चुके हैं, यहां इतना ही कहेंगे कि फैसला किसी तरह भारत को स्वीकार नहीं है क्योंकि उससे शासन का वास्तविक अधिकार ब्रिटेन के हाथ में बना रहेगा, भारत को उनकी छत्र-छाया ही प्राप्त होगी। गांधी-इर्विन समझौते में इकरार किया गया था कि सब संरक्षण भारत के हित के रहेंगे और परिवर्तनकाल के लिए ही रहेंगे। पर इस बार परिवर्तन काल की कोई अवधि नहीं दी गई और यह भी नहीं सिद्ध किया गया कि संरक्षण भारत के हित में हैं। यद्यपि अब तक अंतिम निर्णय न करने की दोहाई दी जाती है, पर अंतिम निर्णय का जो आभास मिल रहा है वह अधिकांश में निराशाजनक है। जो द्वैत शासन या डायर्की भारत में इस समय मौजूद है और जिसके परिणामस्वरूप भारत की कोटि-कोटि जनता अशिक्षित, भूखी और नंगी देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली दीख पड़ती है, उसकी दशा में सुधार होने की दिलासा कुछ भी नहीं मिल रही। लगभग आज की तरह भारत का सीधा संबंध ब्रिटेन से उसके एजेंट गवर्नर जनरल द्वारा होता रहेगा। सर सेमुएल होर भारत और ब्रिटेन के इसी संबंध को भारत को एक सूत्र में बांधने वाला अमित हितकारी कहकर पुकारते हैं।

अब तक जिन-जिन सवालों के हल होने से भारत का स्वराज्य नजदीकं आता, वे ही गोलमेज के अगले अवतार के लिए छोड़ दिए गए हैं और जिनका हल हो जाना भारत के बहुमत को अभीष्ट नहीं था वे हल कर दिए गए हैं। उदाहरण के लिए केंद्रीय व्यवस्था-सभा का चुनाव सीधा चुनाव केंद्रों से होगा या प्रांतीय सभाओं से, पृथक निर्वाचन क्षेत्र रहेंगे या सम्मिलित, मत देने का अधिकार किन्हें रहेगा, किन्हें नहीं, आदि आदि सब सवाल आगे अनुसंधान के लिए पड़े हैं, संघ में देशी नरेशों की आर्थिक जिम्मेदारी कितना और किस हिसाब से रहेगी यह तस्फिया नहीं हुआ। हां तस्फिया यह हो गया है कि सीमा प्रांत गवर्नर का प्रांत बना दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जाए, संघ को बंबई से अलग कर दिया जाए, उसकी आर्थिक अवस्था सुधार सके (कैसे यह पता नहीं?) और बर्मा प्रांत का सम्मेलन अलग से हो जिसके सभापति लार्ड फील जैसे महानुभाव हों जो सर्वथा बर्मा के पृथक्करण के पक्ष में हैं। ये सब सवाल विवादग्रस्त थे पर वे पहले ही तय हो गए। इससे यदि कोई यह अनुमान करे कि इनके इस तरह तय होने में ब्रिटेन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से लाभ था तो अनुमान अनुचित नहीं कहा जाएगा। कट्टर मजहबपरस्त मुसलमानों की जो जो मांग थीं—सिंध को बंबई से अलग करने की, सीमा प्रांत उच्च पद देने की, हम देखते हैं ये आसानी से और सिंध के केस में विरोधी प्रमाणों के होते हुए भी मान ली गईं। इसी तरह ब्रिटिश स्वार्थ के संरक्षण के लिए बर्मा को पृथक करने की योजना भी एक प्रकार से तैयार हो गई है, यह सब बड़ा रहस्यमय है। यह रहस्य तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम देखते हैं कि जो राष्ट्र की सबसे प्रबल मांग थी, जिसके लिए देश ने इतनी शक्ति के साथ आंदोलन किया था और यातनाएं सही थीं—वास्तव में जिसके लिए सारे गोलमेज सम्मेलन के अस्तित्व की सार्थकता थी, वह उत्तरदायी शासन अब तक खटाई में पड़ा हुआ है।

(रविवार, 6 दिसंबर 1931)

# बीसवीं सदी की ओर

सर सी.वी. रमण की ही भांति सर एस. राधाकृष्णन भी इस बीसवीं शताब्दी के भारत के अतिशय प्रतिष्ठित व्यक्तियों में हैं और इनके विचारों की महिमा हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी स्वीकार की जाती है। प्रायः प्रत्येक शताब्दी में अच्छे-अच्छे विचारकों और दार्शनिकों की कमी इस देश में नहीं रही, तथापि यहां की एक शक्तिशाली धारणा यह रही है कि ज्ञान का जैसा उज्ज्वल विकास प्राचीन ऋषियों ने देखा था, वैसा फिर नहीं देखा गया। यह धारणा केवल साधारण समाज में ही नहीं रही, समाज के अग्रणी नेताओं और विद्वानों का भी यह मत रहा है। महर्षि शंकराचार्य से लेकर स्वामी दयानंद सरस्वती तक जितने भी युगप्रवर्तक नेता हुए सबने प्राचीनता की ही भित्ति पर नव निर्माण किया, पूर्व के ऋषि-मुनियों को ही अपनी श्रद्धा की पुष्पांजलि अर्पित की। आज सभ्य संसार—बीसवीं सदी का संसार भी—महात्मा शंकर को जगत के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में स्थान देता है, पर महात्मा शंकर ने श्रुतियों का आधार स्वीकार किया था और प्रस्थानत्रयी में से एक का—केवल *गीता* की—भाष्यरचना करके ही संतोष माना था। उनके उपरांत भी जितने पंडित, धर्मशास्त्री और दार्शनिक हुए रामानुज, मध्वाचारी, बल्लभस्वामी और अंत में स्वामी दयानंद भी—सबने पूर्व श्रुति को ही आधार माना—यही नहीं हम लोगों ने श्रुति को स्वतः प्रमाण स्वीकार किया है, सनातन परंपरा से। यह प्राचीनता की मर्यादा केवल विचारकों में ही नहीं चली, कवियों तक में चली जो 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति' की प्रतिभा से संपन्न रचनाकार थे, जिन्हें सभ्य संसार भी महाकवि कह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वीकार करता है—तुलसी, सूर आदि-आदि। इस बीसवीं सदी की सभ्यता में सराबोर ब्राह्मसमाज के संस्थापकों ने भी उपनिषदों की मान्यता स्वीकार की, उन्हीं को लेकर चले। इस संबंध में अंतिम नाम महात्मा गांधी का आता है जो भारत की प्राचीन सभ्यता के समर्थक और उपासक भी हैं।

हम कह नहीं सकते कि भारत के इन प्राचीन और आधुनिक महापुरुषों की पंक्ति में सर सी.वी. रमण और सर एस. राधाकृष्णन कितना आदरणीय स्थान पा सकेंगे पर इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि वे आधुनिक युग की सभ्यता के भारतीय प्रतिनिधियों में महत्व का स्थान रखते हैं और प्रचलित राज-व्यवस्था ने उन्हें उच्चतम उपाधियां देकर सम्मानित किया है, साथ ही उन्हें विदेशों में भी अच्छी ख्याति प्राप्त हुई है। सामान्य भारतीय जनता अभी उनसे विशेष परिचित नहीं है पर जो अंग्रेजी शिक्षित समाज में रहते हैं वे उन्हें अच्छी तरह जानते और उनका सत्कार करते हैं। पर इस अंग्रेजी शिक्षित समाज की संख्या अभी कम ही है और यह समाज अब तक अपने विचारों का कोई नियमन नहीं कर सका है, अपने को पूरा-पूरा समझ भी नहीं सका है। इसलिए जब सर सी.वी. रमण और सर एस. राधाकृष्णन जैसे विचारक अपने विचारों को व्यक्त करते हैं तब लोगों को इस अंग्रेजी शिक्षित समाज की मनोवृत्ति की जांच करने का अवसर प्राप्त होता है।

हम सर सी.वी. रमण के भाषणों का विवरण पिछले एक अंक में दे चुके हैं और सर राधाकृष्णन के भाषण का आवश्यक अंश इसी पृष्ठ पर अन्यत्र दे रहे हैं। हम देखते हैं कि दोनों ही सज्जन बीसवीं सदी की सभ्यता की ओर विशेष दत्तचित्त हैं और विश्वविद्यालयों को भी उसी ओर प्रेरित करते हैं। इस बीसवीं सदी की सभ्यता का जो रेखाचित्र इन दोनों ने खींचा है उसमें हमारे लिए काफी आकर्षण है और हम यह भी स्वीकार करते हैं कि काफी विकर्षण भी। सर सी.वी. रमण महोदय के संबंध में हम अपना मत प्रकट कर चुके हैं। सर राधाकृष्णन ने लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को जो आदेश दिए वे यहां ध्यान देने योग्य हैं। उन्होंने शिक्षा और सहिष्णुता का अन्योन्याश्रय संबंध बतलाया और इस बात का अधिक आग्रह किया कि मत भिन्नता का अर्थ विरोध न समझा जाए, प्रकृति की अनेकरूपता का विचार करके सब कुछ सहन किया जाए। महात्मा शंकराचार्य के सर्व कर्म संन्यास का भी ठीक यही अर्थ होता है पर सर राधाकृष्णन उसे दूसरे ढंग से व्यक्त करते हैं। उन्होंने कर्म संन्यास का उल्लेख न कर केवल सहिष्णुता की जो आवाज उठाई है वह भ्रम भी पैदा कर सकती है। आजकल के अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त समाज की एक बड़ी कमजोरी है, विचारों की अस्थिरता। यह अस्थिरता और अनिर्णय ही सहिष्णुता और उदारता के नाम पर खप रही है, पर यह तो सहिष्णुता ही कही जाएगी 'हमारा आपका मतभेद है' 'यह व्यक्तिगत बात है' आदि आदि की उक्तियों के भीतर आधुनिक शिक्षित समाज का अज्ञान खूब अच्छी तरह देखा जा सकता है, और यदि इस अज्ञान को सहिष्णुता के बहाने छिपाया जाए तो इससे कदापि इष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। भविष्य में इसकी प्रतिक्रिया जब कभी होगी, (अज्ञान की प्रतिक्रिया होती ही है) तब समाज को बड़े जोर का संहारक धक्का लगेगा। इस बीसवीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सदी की सभ्य उदारता और सहिष्णुता के इस पहलू की ओर सर राधाकृष्णन का ध्यान है, यह उनके भाषण में कहीं नहीं दीख पड़ता।

नवीनता को ग्रहण करने के लिए प्राचीनता सर्वथा त्याज्य ही हो, यह तो हमारे देश के किसी भी उत्तम नेता का मत नहीं रहा। पर सर राधाकृष्णन ने प्रस्तुत भाषण में उसी ओर संकेत किया है। संभव है, यह सिद्धांत पक्ष न हो केवल अर्थवाद हो—विचार का और प्रभाव का विधान कहा गया हो। इस अवस्था में हमें दूसरा विचार करना होगा। पर फिलहाल हम कह सकते हैं कि सर राधाकृष्णन बीसवीं सदी की सभ्यता के निर्माण में प्राचीनता को किसी प्रकार उपयोगी नहीं समझते, अनेक प्रकार से बाधक और बर्बर आदि मानते हैं। जब तक हमें बीसवीं सदी की सभ्यता का ठीक-ठीक स्वरूपपरिचय न हो जाए तब तक इस संबंध में कुछ कहना ठीक नहीं होगा। भारत की यह बीसवीं शताब्दी संसार की बीसवीं शताब्दी की समता में कैसी होगी यह भी अभी अनिश्चित है। इस संबंध में हमारे देश में दो प्रमुख विचारधाराएं दीख पड़ती है। एक तो गांधी-धारा जो स्वदेशी, घरेलू धंधे, कम से कम मशीन और अधिक से अधिक लोकहित का प्रस्ताव करती है और दूसरी विज्ञान धारा जो यह मत उपस्थित करती है कि संसार के अन्य राष्ट्रों की भांति भारत को भी वैज्ञानिक युग की समस्त भली-बुरी सामग्री को स्वीकार करना पड़ेगा और उसी सांचे में ढलना भी पड़ेगा। अभी यह कहा नहीं जा सकता कि भारत का भविष्य क्या होगा। यदि हम यह मान भी लें कि वैज्ञानिक युग अपने संपूर्ण विशेषणों के साथ प्रवेश करेगा और उसी के आधार पर भारत की बीसवीं सदी का निर्णय होगा—यह हम केवल तर्क के लिए मान रहे हैं—तो भी समस्त प्राचीनता त्याज्य नहीं है, उसे बंधन समझना ज्ञान के एक मूल्यवान अंश से मुंह मोड़ लेना ही है परंतु यदि गांधी-धारा स्वीकार की गई तब तो नवीन भारत को प्राचीन असंख्य विभूतियों को धारण करना पड़ेगा—भार की तरह नहीं, आभूषण की भांति।

बीसवीं सदी के सभ्य संसार में अस्पृश्यता बुरी न समझी जाए तो यह सर्वथा उचित है। भारत का यह कलंक जितनी जल्दी दूर हो, अच्छा है। पर आधुनिक अंग्रेजी शिक्षित समाज में अछूतों के प्रति जिस प्रकार की सहानुभूति है, जरा उसका विश्लेषण कीजिए। आज अंग्रेजी शिक्षित समाज ने स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद मिटाने में साधारणतः इतना कार्य किया है कि वह खाने, पीने और शरीर स्पर्श में संकोच नहीं रखता। पर क्या अस्पृश्यता निवारण का इतना ही अर्थ है? हम अपने सुभीते के लिए यदि होटल में कहार का या मुसलमान का बनाया खा लेते हैं तो हम अछूतोद्धारक कदापि नहीं हैं। स्वार्थ को अछूतोद्धार के नाम पर छिपाने वाले ही हैं। अछूतों के शरीर का ही नहीं, जब तक उनके मानसिक समस्त अवयवों का हम स्पर्श नहीं करते तब तक हमारी स्पृश्यता-अस्पृश्यता का कोई अर्थ नहीं है, वाक्छल हम चाहे जितना करें। यह वाक्छल हमारी इस बीसवीं सदी की सभ्यता का एक मुख्य अंग हो रहा है अतः हमें अपनी संपूर्ण शक्ति से इसके प्रतिकरण का प्रचार करना चाहिए।

सर राधाकृष्णन की वक्तृता का वह अंश हमें विशेष पसंद आया जिसमें उन्होंने देश के कोटि-कोटि दरिद्रों के प्रति धनिकों की निरपेक्षता का उल्लेख किया है। आधुनिक पूंजीवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की सभ्यता का यह स्वाभाविक परिणाम है। निश्चय ही इसका संबंध प्राचीनता से नहीं है, इसी हमारी ही नवीन बीसवीं सदी से है जिसके सर राधाकृष्णन आदि विधान प्रतिनिधि हैं। हम तो कहते हैं कि इस नवीन विकार की ओषधि भी प्राचीन आर्य ग्रंथों में मिलेगी। सर राधाकृष्णन का यह आग्रह है कि समाज से ब्राह्मणवर्ग का प्रभाव दबा दिया जाए और जातीयता को देशधर्म और राष्ट्रधर्म के सामने तुच्छ समझा जाए। यह एक सामयिक उक्ति है। पर इसके आगे भी विकास बंद नहीं हो जाता। अंतर्राष्ट्रीयता और विश्वप्रेम की भावनाएं भी सामने आती हैं और अंत में वही महात्मा शंकर का सर्व-कर्म संन्यास आता है। मनुष्य मात्र की वही चरम अवधि है। फिर तो केवल लोक संग्रह की दृष्टि से ही सब काम किए जाएंगे। 'लोकसंग्रह' में विनाश की अपेक्षा निर्माण और संग्रह की ही व्यंजना बलवती है, इसलिए शायद ऊंचे स्तर पर पहुंचकर सर राधाकृष्णन के इस कथन की अपेक्षा कि ब्राह्मणवर्ग की शक्ति दबा दो, यह कथन अधिक उपयुक्त होगा—'सच्चे ब्राह्मणत्व की प्राण प्रतिष्ठा करो—ब्राह्मण वर्ग का नवनिर्माण करो' हम तो ऐसा ही समझते हैं।

(गुरुवार, 10 दिसंबर 1931)

## फिर तूफान

राजनीति के विषय की भविष्यवाणी कठिन तो नहीं होती पर अच्छी नहीं होती। फिर भी कभी-कभी सारी स्थिति इतनी धुंधली पड़ जाती है कि साधारण बातें भी समझ में नहीं आतीं, छोटी-छोटी घटनाएं देश के भविष्य का निर्णय करने लगती हैं और जिधर चाहती हैं उसे घुमाती-फिराती हैं। ऐसे मौकों पर यदि रहस्य का उद्घाटन करने के तौर पर भविष्यवाणी की जाए तो वह अच्छी चाहे न लगे पर स्थिति को संभालती अवश्य है, मौके पर काट जरूर करती है। हम समझते हैं इसी तरह का मौका आज आया हुआ है। गोलमेज का काम खत्म तो हो गया पर वह ऐसा बेतरतीब खत्म हुआ है कि लोग या तो कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकते या जैसा चाहें लगा सकते हैं। लोगों का कहना था कि मजदूर सरकार के बदल जाने और अनुदार सरकार के पदाधिकारी होने का फल यह होगा कि जो कुछ बातें होंगी, साफ-साफ और खरी होंगी—किसी तरह का मीन-मेष नहीं किया जाएगा, पर वैसा तो कुछ भी नहीं हुआ। पहले तो लार्ड सैंके महोदय की संघ योजना कमेटी एक पर एक योजना बनाई गई जो सब की सब बहुत अंशों में भारत के लिए असंतोषजनक थीं, फिर प्रधानमंत्री ने अपनी अंतिम विज्ञप्ति में समाधान करने की चेष्टा कर दी और गोलमेज को फिर से बुलाने का वचन देकर सबकी आशाओं को भविष्य में अटका दिया। महात्मा गांधी पर इस विज्ञप्ति का प्रभाव नहीं पड़ा है, यह तो नहीं कहा जा सकता। उन्होंने विज्ञप्ति पर पुनः पुनः विचार करने की सूचना दी है और यद्यपि यह भी कहा है कि 'यहां से हमारा रास्ता बदल जाता है' पर अंतिम निर्णय कांग्रेस के हाथ में छोड़ रखा है। कांग्रेस का अंतिम निर्णय और गांधीजी का अंतिम निर्णय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इन दोनों को जिस तरह चाहिए आगे-पीछे कह लीजिए अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। मतलब यह कि गांधीजी अब तक अनिर्णीत हैं।

गांधीजी ही नहीं, प्रायः प्रत्येक राष्ट्रीय व्यक्ति गोलमेज के अब तक के निर्णयों से संतुष्ट नही है, पर राजनीतिकुशल ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड की घोषणा से सबकी दृष्टि वर्तमान से हटकर भविष्य में जा लगी है। अवश्य इस भविष्य की भी एक अवधि है, यह नहीं कि इसकी कोई सीमा ही न हो। जो भारत तत्काल स्वराज्य के लिए उत्सुक था—उत्सुक ही नहीं, उतावला भी था—उसे भविष्य का सुखस्वप्न दिखाकर बहुत दिनों तक नहीं बहलाया जा सकता। राजनीति में मेकडानल्ड की सच्ची नीतिज्ञता तब देखी जाएगी जब वे अपनी विज्ञप्ति को कार्य रूप में दिखाएंगे। हम सब लोग मिस्टर मेकडानल्ड से इस बात से खुश हैं कि उन्होंने अनुदार सरकार से भी भारत के केंद्रीय शासन के अधिकार का समर्थन करा लिया, पर हमें उनके प्रति सच्ची प्रसन्नता तो तब होगी जब हम देखेंगे कि केवल शब्दों में ही नहीं, व्यवहार में भी भारत को वे अधिकार मिलते हैं जिनकी किसी भी स्वराज्य आकांक्षी राष्ट्र की कामना होती है। अभी इस संबंध में हमें निराशा ही है, तथापि यदि मिस्टर मेकडानल्ड वर्तमान सरकार को उसके लिए तत्पर कर सकेंगे और असफल होने पर उचित प्रायश्चित्त भी करेंगे तो व्यक्तिगत रीति से वे भारत के सबसे बड़े ब्रिटिश हितचिंतक ठहरेंगे। फिलहाल उनकी विज्ञप्ति ने एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया है कि संसार का लोकमत अधिकांश में ब्रिटेन की सदिच्छा पर विश्वास करने को बाध्य हुआ है यद्यपि संभव है यह विश्वास आगे चलकर समय की कसौटी में खरा न उतरे।

गांधीजी प्रवृत्ति से ही शांतिप्रिय हैं। वे स्वभावतः मनुष्य की और दूसरे राष्ट्रों की भी नेकनीयती में विश्वास रखते हैं। उनमें अंतिम समय तक आसरा देखते रहने की शक्ति है। वे एक राजनीतिज्ञ के नाते संसार के सभ्य लोकमत को भी अपनी ओर रखना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात यह है कि गांधीजी क्रमशः विकास में अत्यधिक विश्वास रखते हैं। राजनीति में भी उनका मत विकासवाद का ही है। वे बहुत धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं। जहां तक संभव होता है नहीं ही बढ़ते। वे स्थिर (Conservative) प्रकृति के हैं। उनका जो आदिम मत था जहां तक संभव है ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत स्वराज्य, वह अब भी ज्यों का त्यों बना है क्योंकि यद्यपि पिछले गोलमेज में उन्होंने अपने को विद्रोही बतलाया था पर साथ ही ब्रिटेन को भारत के साथ प्रीति की ग्रंथि में बंधने की माया भी दिखाई थी। गांधी जो हद दर्जे के आशावादी भी हैं वे इतनी देर तक प्रतीक्षा कर सकते हैं जितनी देर तक कोई दूसरा नहीं कर सकता। वे भारत की दरिद्र और अधमरी जनता को ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति का मुकाबला करने का जब कभी आदेश करते हैं तब कदापि सुख का अनुभव नहीं करते—प्रत्येक व्यक्ति के और संपूर्ण राष्ट्र के अमित कष्ट की कल्पना करके वे जितना दुःखित और द्रवित होते हैं दूसरा कोई नहीं होता। इन कारणों को एक ओर रखकर देखने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रधानमंत्री की पिछली विज्ञप्ति के विरुद्ध वे कदापि सत्याग्रह की घोषणा नहीं करेंगे, बल्कि अधिक से अधिक सहयोग करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर दूसरी ओर दूसरी बातें भी हैं। गांधीजी कट्टर आदर्शवादी हैं अतः उन्हें सत्याग्रह की शक्ति पर अमिट विश्वास है। वे जन्म से ही अन्याय और अत्याचार के विरोधी रहे हैं और लोकहित उनका मूल सिद्धांत रहा है। वे किसी का अन्याय नहीं देख सकते, इसलिए कभी-कभी तो छोटी-छोटी घटनाओं से इतना प्रभावित हो जाते हैं कि लोगों को आश्चर्य होता है। एक बार चौरीचौरा की घटना के कारण उन्होंने देशव्यापी आंदोलन को सहसा रोक दिया और दूसरी बार बारडोली के एक हिस्से की लगान वसूली में थोड़ी-सी गड़बड़ी के कारण गोलमेज में शरीक होना अस्वीकार कर दिया। उनकी यह प्रकृति उनसे सहसा कब क्या करा सकती है यह साधारण आदमी नहीं बतला सकता। बंगाल में सरकार की ओर से जो मार्शल-ला से मिलता-जुलता आर्डिनेंस जारी किया गया है, उससे साधारण से साधारण नागरिक अधिकार भी सुरक्षित नहीं रहे। यह बड़ी ही भयावह बात है और इसके कारण गांधीजी के मर्म को चोट पहुंची है। उन्होंने कहा है कि बंगाल आर्डिनेंस के विरुद्ध बंगाल में ही नहीं, देश भर में सत्याग्रह शुरू किया जा सकता है। यदि ऐसा हो तो इसकी जिम्मेदारी भारत सरकार अथवा उसके पथ-नियामक ब्रिटिश पार्लियामेंट पर पड़ेगी। लार्ड विलिंग्डन महोदय यह भले ही कहें कि उन्हें आर्डिनेंस जारी करने में कोई आनंद नहीं मिलता पर यह तो लगभग उसी तरह की बात हुई जैसे कोई क्रांतिकारी कहे कि हमें क्रांति करने में कोई आनंद नहीं मिलता। लार्ड विलिंग्डन ने अपने पिछले भाषण में देश से सहयोग की अपील की है पर प्रतिष्ठित देशवासियों को संदेह मात्र पर अनिश्चित समय के लिए जेल में बंद कर रखना तो सहयोग नहीं है। व्यक्तिगत रीति से लार्ड विलिंग्डन अवश्य ही निरीह होंगे। वे जिस शासन चक्र के प्रधान प्रतिनिधि हैं वह तो निरीह नहीं है, सब तरह से जड़ और निर्दय है। इसी चक्र को बदलने में सहायता देना ही सच्चा सहयोग है, अतः यह उचित होगा कि बेशुमार आदमियों को जेल में डालकर नहीं, ब्रिटिश मंत्रिमंडल पर प्रभाव डालकर वे आगामी शासन विधान के बनाने में सहायक हों और गांधीजी से भी सहायता लें। बंगाल में ही नहीं, हमारे संयुक्त प्रांत में भी स्थिति अशांतिपूर्ण हो गई है और यहां की अशांति का कारण बंगाल से कम गहरा नहीं है। यहां किसानों का अर्थकष्ट बढ़ा हुआ है और सरकार ने आदि से अंत तक यथोचित कष्टनिवारण नहीं किया। पहले बहुत दिनों तक उसने स्थिति की गंभीरता का विचार तक नहीं किया, फिर काफी पैमाने पर छूट नहीं दी और अब तक उस पैमाने का भी लेखा-जोखा पूरा-पूरा तैयार नहीं हो सका, लगान वसूली के समय आ जाने के कारण अब वह किसी तरह की रोक-टोक बर्दाश्त नहीं कर सकती बल्कि कानून बनाकर मालगुजारी की तरह ही लगान-वसूली भी करना चाहती है।

इसके विरोध में बंगाल और युक्त प्रांत में कांग्रेस का आंदोलन उठ खड़ा हुआ है और काफी उत्तेजना फैल गई है। बंगाल अभी सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है पर प्रांतीय कांग्रेस ने अपने अधिवेशन में विलायती वस्तु बहिष्कार का प्रस्ताव पास कर लिया है। युक्त प्रांत में हमारे इलाहाबाद जिले के अलावा कानपुर, उन्नाव, रायबरेली आदि ने भी प्रांतीय कांग्रेस कमेटी से सत्याग्रह शुरू करने की अनुमति मांग ली है और संपूर्ण स्थिति अब-तब हो रही है। तूफान आ रहा है। यदि यह आ गया तो समझौते की समस्या की ओर आंख उठाकर देखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी कठिन हो जाएगा। विपत्ति और संकटों का नए सिरे से आह्वान होगा और मिस्टर मेकडानल्ड की स्कीम यूं ही रखी जाएगी। महात्मा गांधी को भारत आकर इस संपूर्ण समस्या पर विचार करने का अवसर नहीं मिल सकेगा, पर हम समझते हैं उन्हें यह अवसर अवश्य दिया जाए। लार्ड विलिंग्डन ने अपने पिछले भाषण में भारत से सहयोग की अपील की है। उसका वास्तविक अर्थ क्या है यह गांधीजी के भारत आने पर ही मालूम हो सकेगा। सरकार अपने आर्डिनेंसों पर किस तरह दृढ़ रहना चाहती है, किस तरह नहीं, यह जानने में अभी कुछ समय लगना ही चाहिए। यदि ब्रिटिश पार्लियामेंट अपनी अनुदार नीति के अनुसार नहीं बल्कि अपने प्रधानमंत्री की कथित नीति के अनुसार काम करना चाहती है तो उसका सबूत मिलना चाहिए, आर्डिनेंस उसके सबूत नहीं हैं। इसके साथ ही हम कांग्रेस संस्थाओं से भी यह आशा रखते हैं कि देश को सत्याग्रह की अग्नि में प्रवेश कराने के पहले महात्मा गांधी का आदेश अवश्य लेंगे और हमारा विश्वास है कि उनके भारत पर पहुंचने पर वर्तमान स्थिति में आशापूर्ण परिवर्तन होगा।

(रविवार, 13 दिसंबर 1931)

## यू.पी. आर्डिनेंस

कार्रवाइयां भीतर ही भीतर होती रहीं, बड़े लाट बहादुर लार्ड विलिंग्डन महोदय बंगाल चेंबर ऑफ कामर्स में यह बयान ही देते रहे कि आर्डिनेंस निकालने में उन्हें कोई मजा नहीं मिलता, कि इतने में यू.पी. आर्डिनेंस की फौरन से पेश्तर आमद भी हो गई! कांग्रेस वालों को सुराग पहले से ही लग गया था पर आम जनता को यह गुमान नहीं था कि यह सब रचना इतनी जल्द हो जाएगी। अभी पिछले ही अंक में हमने यह विचार प्रकट किया था कि लार्ड विलिंग्डन हिंदुस्तानियों से सुलह और सहयोग की जो अपील कर रहे हैं उसका अर्थ गांधीजी के आने पर ठीक-ठीक मालूम होगा। पर उसका कोई खास अर्थ नहीं था यह अब मालूम पड़ा। चटगांव के विप्लवकारियों का दमन करने की गर्ज से पूरे बंगाल भर के लिए मार्शल ला से मिलता-जुलता आर्डिनेंस जारी करने की अच्छी-बुरी फिर भी एक बुनियाद थी। सरकार को खतरा था कि बिना आर्डिनेंस के यह समस्या सुलझेगी ही नहीं और शायद यह विश्वास था कि आर्डिनेंस के लगते ही सुलझ जाएगी। यद्यपि मिस्टर स्टीवेंस आई.सी.एस. की पिछली हत्या से (जिसका हमें हार्दिक दुःख है) उसका यह विश्वास सत्य नहीं सिद्ध हुआ, फिर भी उसकी एक बुनियाद थी। पर हमारे प्रांत का आर्डिनेंस तो किसानों और जमींदारों का बीच-बचाव करने की नीयत बतलाकर निकाला गया है, लगान बंदी आंदोलन से अभी तक झगड़ा-फसाद की नौबत नहीं आई थी। 144 की मुंहबंदी भी अब तक तोड़ी नहीं गई थी, सरकार यह विचार कर रही थी कि प्रांतीय व्यवस्था सभा की आगामी बैठक में वह लगान वसूली के सुभीते के लिए कानून बनवाएगी, पर वह सब तो कुछ भी नहीं हुआ, आ गए ये महाकार आर्डिनेंस देव! इसमें जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बयान भरा है,उसमें तो बहुत पुराने पुराने रिकॉर्ड भरे गए हैं। सरकार की कद्रदारी की तारीफ करनी चाहिए कि वह कांग्रेस के मुंह से निकाली हुई कुछ बातों की बड़ी कद्र करती है और उनको लिख रखती है ताकि मौके पर काम आएं। सरकारी बयान में पं. जवाहरलाल नेहरू आदि के कई महीने पहले के भाषणों का हवाला पेश किया गया है और उससे यह साबित करने की चेष्टा की गई है कि कांग्रेस ने गांधी-इर्विन समझौते पर अमल नहीं किया बल्कि युक्त प्रांत के कांग्रेसी नेताओं ने किसानों की अवस्था से लाभ उठाकर जमींदारों और सरकार के विरुद्ध आंदोलन खड़ा करना चाहा है। इसी बयान में महात्मा गांधी के खिलाफ यह अभियोग है कि उन्होंने एक जमाने में एक ऐसी विज्ञप्ति निकाली थी जिसमें कांग्रेस को लगान के संबंध में तस्फिया करने और किसान-जमींदारों के झगड़ों को तय करने का अधिकार माना गया था। इसके आगे सरकार ने बहुत सी इधर-उधर की बातें कहकर अंत में यह कहा है कि धीरज की भी एक सीमा होती है, सरकार सब्र करते-करते थक गई। करोड़ से ऊपर की छूट भी दे चुकी। अब इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकती—सिर्फ आर्डिनेंस निकाल सकती है।

गांधी-इर्विन समझौते के प्रति, अलग-अलग व्यक्तियों का चाहे जो भाव रहा हो पर साधारण तौर पर कांग्रेस ने उसे मंजूर किया और उसके मुताबिक अमल भी किया। खुद सरकार के ही द्वारा कांग्रेस के सर्वश्रेष्ठ नेता महात्मा गांधी के शांति संबंधी उद्योगों की प्रशंसा की गई और लोगों ने देखा कि सारे देश ने लड़ाई के हथियार रख दिए और शांति के साथ महात्माजी की वीणा वाणी सुनी। इतने थोड़े समय में देश भर का रुख इस तरह बदल देने का सामर्थ्य दूसरे किसी व्यक्ति में नहीं, एक गांधीजी में था। इसके बाद गांधी-इर्विन समझौते के मुताबिक कैदी छूटने लगे पर सब कैदी नहीं छूटे, जितने शीघ्र छूटने चाहिए थे, उतने शीघ्र नहीं छूटे। उस मौके पर कांग्रेस के कुछ नेताओं ने सरकार की शिकायत की और थोड़ा सा वाद-विवाद भी चला। वाद-विवाद के साथ संभव है कि धमकियां भी दी गई हों पर वे दोनों ओर से दी गईं इसलिए उनकी नकल उतारकर रखने और मौके पर उसे दिखाने की कोई जरूरत नहीं थी। हम यह जानते हैं कि गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी का जाना और वहां से लौटते ही सत्याग्रह न शुरू करने का वचन देना ही कांग्रेस की मनोवृत्ति के स्पष्ट उदाहरण हैं और ये उदाहरण इस बात को साबित करते हैं कि आमतौर पर कांग्रेस को गांधी-इर्विन-पैक्ट स्वीकार था और कोई कारण नहीं कि अब भी न स्वीकार हो। इसलिए यू.पी. सरकार ने आर्डिनेंस जारी करने के बारे में जो बयान पेश किया है वह केवल एक पक्ष की दलील है और वास्तविक स्थिति का शायद बढ़ा-चढ़ाकर खींचा गया नक्शा है।

पं. जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तिगत मत चाहे जो हो पर कांग्रेस का यह मत कभी नहीं सुन पड़ा कि वह जमींदार वर्ग का अंत कर डालना चाहती है। पिछले गोलमेज सम्मेलन में महात्मा गांधी ने इतना अवश्य कहा था कि नए विधान में यह गुंजाइश रखी जाए जिसमें रियासत और संपत्ति के प्राप्त करने के जरियों की जांच हो सके और अनुचित जरियों से प्राप्त संपत्ति को किसी व्यक्ति से जब्त भी किया जा सके, पर इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि जमींदारी प्रथा उठा दी जाए। जैसाकि सरकार को मालूम ही है लार्ड सैंके ने इस विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की जो रिपोर्ट तैयार की है उसमें संपत्ति को स्थिर रखने की ही सिफारिश है। उसमें यह उल्लेख भी है कि प्रतिनिधियों का बहुमत संपत्ति में किसी तरह की जांच-पड़ताल को पसंद नहीं करता। ऐसी हालत में सरकार एकाध व्यक्ति के कहने से फिर वह व्यक्ति कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो—इस नतीजे पर कैसे पहुंच गई कि जमींदार खतरे में हैं? यह जरूर है कि कांग्रेस के कुछ स्वयंसेवक देहातों में कुछ गैर-जिम्मेदार बातें जमींदारी प्रथा के खिलाफ बका करते हैं पर उनका मुकाबला करने के लिए सरकार को अपने ब्रह्मास्त्र का साधन नहीं करना चाहिए था। कम से कम ब्रह्मास्त्र के साधन की इतनी जल्दी बिलकुल नहीं थी।

करबंदी आंदोलन के संबंध में हम अपने विचार पहले भी प्रकट कर चुके हैं। यह तो निश्चय है कि इससे किसानों की विपत्ति बहुत ही बढ़ जाएगी और आपसी कलह बढ़ेगा जो खतरे की चीज है। संगठित न होने के कारण उन्हें और भी कष्ट उठाने पड़ेंगे। इसलिए कम से कम महात्मा गांधी के भारत लौटने तक सत्याग्रह न शुरू करने की राय हम पहले ही दे चुके हैं। अब जब लड़ाई छेड़ दी गई तब यह आशा नहीं रही कि गांधीजी के आने के बाद स्थिति में कुछ सुधार होगा और एकबार की लगी हुई आग जल्द बुझेगी। कम से कम सरकार को ऐसी आशा नहीं ही रखनी चाहिए। फिर भी विलायत से प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड यह पुकार रहे हैं कि गांधी के भारत पहुंचने के बाद ही समझौते का काम चालू कर दिया जाए तो इसका क्या अर्थ होता है यह भगवान जाने!

यहां हम आर्डिनेंस के अंतरंग के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहेंगे क्योंकि हमारा विरोध संपूर्ण आर्डिनेंस और उसके प्रयोग करने की उतावली से है।

## हिंदी के विकास में बाधा
## (राजनीति और पूंजीवाद के खतरे)

बेचारे हिंदी साहित्य की दुर्गति का कोई वार-पार नहीं मिलता। *गीता* के शब्दों में वह अनार्यजुष्ट संसर्ग से नष्ट संस्कार हो रही है और निकट भविष्य में उसके उद्धार की कोई आशा नहीं। हिंदी साहित्य सम्मेलन साहित्यिक दृष्टि से तो अपनी संपूर्ण संपत्ति की विरासत कर मरने की तैयारी में है। उसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं रह गया। यह उसके साल भर के क्रियाकलाप और सालाना जलसों से अच्छी तरह मालूम हो गया है। राजनीति के शुष्क आकाश में साहित्य का इंद्रधनुष अपना लक्ष्य भेद नहीं कर सकेगा—नहीं कर सकेगा। साहित्य की सहस्र शाखाएं राजनीति के कठघरे में बंद नहीं होगी, बंद की गई तो सूख जाएंगी, सूख कर मर जाएंगी। रुपयों के लालच से किसी देश का साहित्य कभी नहीं पनपा, फिर यह तो बीसवीं सदी बहुमत का युग है। हम आशा करते थे कि हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसे-जैसे उन्नति करता जाएगा वैसे-वैसे अपने राजनीतिक चोले को छोड़कर साहित्य-संग्रहालय, कला प्रदर्शनी, उच्चकोटि की शिक्षा, सुचारु प्रकाशन आदि की व्यवस्था करेगा पर हम देखते हैं कि वह प्रतिदिन राजनीतिक एकाधिकार (Dictatorship)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के द्वारा जकड़ा जा रहा है और अब उसके सिर्फ दो काम रह गए हैं—भले आदमियों को अपदस्थ करना और वार्षिक अधिवेशनों के बहाने शुद्ध साहित्यिक विकास में बाधा डालना। क्या सम्मेलन बतला सकता है कि इस बीस वर्षों से अधिक के जीवन में उसने एक भी बड़ा साहित्यकार पैदा किया? उसके सालाना जलसों के लिए जिन तरीकों से जैसे-जैसे लोगों का चुनाव होता है वह संपूर्ण साहित्य के लिए कलंक की कहानी है। पिछले गोलमेज सम्मेलन में महात्मा गांधी ने ललकार कर कहा था कि यदि देश भर का मत (Refrendum) की विधि से लिया जाए तो कांग्रेस की शक्ति का पता लग सकता है। पर हिंदी साहित्य सम्मेलन के कर्ता-धर्ता गांधीजी के राजनीतिक अनुयायी श्री पुरुषोत्तम दास टंडनजी के हृदय में कभी ऐसी तरंग नहीं उठी कि अधिक से अधिक पचास सिखाए-पढ़ाए आदमियों के वोटों से नहीं, बल्कि हिंदी के सामूहिक शिक्षित लोकमत से सभापति का निर्वाचन हो और सम्मेलन का कार्य संचालन भी उसी विधि से हो। इसमे सम्मेलन को कोई खतरा नहीं, साहित्य का अमित उपकार है। इसमें टंडनजी की कोई बदनामी नहीं, सब प्रकार से श्रेय ही है। टंडनजी यह समझें कि राजनीति में ही नहीं, साहित्य में भी बल्कि राजनीति से भी अधिक साहित्य में पूर्ण स्वतंत्रता की आवश्यकता है। किंतु राजनीति ने जो प्रकृति बना दी है उसे कोई क्या करे।

यह तो राजनीति का एक दूषण हुआ। दूसरा दूषण है प्रोपेगेंडिस्ट वृत्ति, जिसे साहित्य के शब्दों में हम 'अनिष्ट प्रचार' कहेंगे और जिसके आचार्य हैं पं. बनारसी दास चतुर्वेदी जी। चतुर्वेदीजी की यह धारणा होगी कि हम उनके विरुद्ध लिखने में सुख का अनुभव करते हैं पर हमें ऐसा करने में ग्लानि ही होती है, लेशमात्र आत्म परितोष नहीं होता। हम चतुर्वेदीजी के संपादन कौशल के बड़े प्रशंसक हैं पर जो कलुष है उसे मिटाना ही होगा। चतुर्वेदीजी अयोग्य व्यक्तियों की मिथ्या स्तुति करके, योग्य व्यक्तियों की अवेहलना करके साहित्य में बड़ा ही विषम भाव उत्पन्न कर रहे हैं। अधिकांश में उन्हीं के संपादकीय लेखों के कारण हिंदी में आत्मप्रशंसा की बहिर्मुखी वृत्ति प्रसार पा रही है, पर यह कदापि इष्ट नहीं। हम मान सकते हैं कि जब तक हिंदी का लेखक समाज स्वतः अच्छे संपादकों की ओर आकर्षित नहीं होता तब तक चतुर्वेदीजी की प्रशंसा-वृत्ति से लेख आदि मिलने में सुविधा होती रहेगी पर हिंदी के भविष्य के लिए यह अतिशय अनिष्टकर प्रथा है। संस्मरण लिखना एक कला है जिसमें अपने व्यक्तित्व को अधिक से अधिक दबाने की ही जरूरत पड़ती है पर हिंदी में इसके विपरीत प्रगति हो रही है। अभी परसों हमने बिहार प्रदेश से निकला हुआ एक नया पत्र देखा जो आर्यसमाज का पत्र है पर जिसका अग्रलेख स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीजी के संस्मरण के रूप में है। संस्मरण तो उसमें जैसे ही तैसे हैं! लेखक महाशय लार्ड रीडिंग, महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू आदि से अपनी भेंट-मुलाकात का ही भरपूर हवाला देने में तत्पर हैं। पर यह तो संस्मरण लिखने की कला का गला घोंटना और जड़त्व का प्रदर्शन मात्र हुआ, संस्मरण तो कुछ भी नहीं हुआ। पत्र के संपादक महोदय, जिनका यह लेख है, प्रवासीलाल के रूप में प्रतिष्ठित हैं और संन्यासी संज्ञा विशिष्ट भी है! ये सब राजनीतिक प्रक्रिया के अवगुण हैं जो साहित्य कला के विकास को दुराग्रहपूर्वक रोक रहे हैं। साहित्य में भिन्न-भिन्न रंग-रूप धारण कर यह कीटाणु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमें सशंक कर रहा है। पत्र-पत्रिकाओं में दो अक्षर लिख लेने वाले लेखकों के चित्रों की वृद्धि, संपादकीय विभाग के व्यक्तियों की अपने पद को बढ़ाकर मान करने की मिथ्यालिप्सा आदि इसी के अवांतर रूप हैं और इस संबंध की अंतिम प्रगति यह है कि सहयोगी *हंस* 'आत्मकथांक' नाम का विशेषांक निकाल रहा है जिसमें सब लोग अपनी-अपनी गाथा गाएंगे। यदि *हंस* ने नीरक्षीरविवेक न रखा तो कुल मिलाकर हिंदी की शक्ति क्षीण ही होगी, कोई लाभ न होगा।

पूंजीवाद से भी हिंदी को बहुत बड़ा खतरा है और वह खतरा प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विलायती पूंजीपति लार्ड रोथरमियर और वीभरब्रुक के *डेली मेल* आदि पत्रों की हम लोग बड़ी निंदा करते हैं पर अपने यहां के पूंजीपति पत्रकारों का फरेब नहीं देखते जो स्वयं साहित्य से छत्तीस का संबंध रखते, फिर भी प्रधानसंपादक बनने में जरा भी ग्लानि का अनुभव नहीं करते। वे अपने नीचे नितांत अयोग्य, पेट के लिए सब कुछ करने को तैयार, बेकारीग्रस्त एम.ए. एल.एल-बी. वगैरह को रखते हैं जो अपने मालिक के दिए हुए थोड़े से टुकड़े खाते, उन्हीं के इच्छानुसार भूंकते और सब तरह से गुनाह-बेलज्जत करते हैं। फिर जैसी कि कहानी है, अपने टुकड़े को नदी के स्वच्छ जल में देखकर उसकी ओर लपकते हैं? पर लपक कर क्या पाते हैं यह वे ही जानें! यह दयनीय दशा अब दूर होनी चाहिए।

ये प्राथमिक बाधाएं हैं जिनके मिटाने के उपरांत ही हिंदी को आशामय विकास गति मिल सकेगी और जो अभी कली है वह मूर्च्छित न होकर वरन् सम्यक् खिल कर दिगंत को स्निग्धसौरभित कर सकेंगी।

(गुरुवार, 17 दिसंबर 1931)

## घटनाचक्र

घटनाचक्र का सरअंजाम बांधना और लेखा लगाना उपन्यासकारों का काम है या महात्माओं का, राजनीतिज्ञों का नहीं। यह श्रेय हम उनसे छीन कर राजनीतिज्ञ को नहीं दे सकते कि वह निष्पक्ष रीति से सहानुभूति के साथ प्रत्येक घटना को सजा कर हमारे सामने पेश कर सकेगा। देखने वाले इस सत्य को नित्य प्रति की राजनीति में देखते हैं। अभी पिछले दिन यू.पी. सरकार ने नए आर्डिनेंस की ताईद करते हुए जो बयान दिया है उसमें गांधी-इर्विन समझौते के दिन से शुरू कर आर्डिनेंस जारी करने के दिन तक का घटनाचक्र दिखाने की कोशिश की गई है। पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि कोशिश एक-पक्षीय और विकृत हुई है। उसका दृष्टिकोण ठीक नहीं इसलिए वह स्थिति का सच्चा चित्र न देख सकी है, न दिखा सकी। तभी तो प्रांतीय कौंसिल में श्री चिंतामणि को यह कहने का मौका मिला कि आर्डिनेंस की शब्दावली से सरकार को मार्शल-ला के अधिकांरं मिल जाते हैं और यदि उनका उसी प्रकार व्यवहार भी हुआ तो कोई भी भला आदमी प्रांत में इज्जत के साथ नहीं रह सकेगा। साथ ही सरकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ओर से भी यह स्वीकार करने का मौका मिला कि आर्डिनेंस के शब्द अवश्य ही स्पष्ट नहीं हैं, पर सरकारी इरादा यह है कि उसका प्रयोग केवल करबंदी-आंदोलन का मुकाबला करने के लिए होगा। पर इस बात पर विश्वास करने के लिए बड़े ही साहसी आदमी की जरूरत है। पुलिस कर्मचारियों और छोटे-छोटे अफसरों की हरकतों से जो वाकिफ हैं और यह जानते हैं कि प्राप्त अधिकारों का अधिक से अधिक व्यवहार करना बल्कि नाजायज तरीके से व्यवहार करना भी उनकी आएदिन की आदत है, उनको सरकार के दिलासे से अधिक आश्वासन नहीं हो सकता। ऊंचे अफसरों—यहां तक कि प्रांतीय गवर्नरों और वाइसरायों तक की प्रवृत्ति प्रायः सदैव ही पुलिस की प्रशंसा करने की रही है। आजतक प्रकट रीति से शांति और व्यवस्था के इन रक्षक को बड़े पैमाने पर दंड दिया गया हो या सरकार की ओर से लांछित किया गया हो, ऐसा बहुत कम देखने में आया है। ऐसी हालत में यू.पी. आर्डिनेंस का कितना भयानक रूप देखने को मिल सकता है इसका बहुत कुछ अंदाज आर्डिनेंस की धाराओं से लगाया जा सकता है। लड़के की हरकत के लिए मां-बाप को सजा, एक इसी नमूने को देखकर परखिए—आर्डिनेंस सभ्य-जीवन की, शांति और व्यवस्था की—रक्षा करता है या संहार। और इन अधिकारों को लेकर जब सरकार यह कहती है कि यह सब आत्मरक्षा का उपाय (DefensiveAction) है तब आश्वासन से विशेष आश्चर्य होता है।

यू.पी. के किसानों की हालत का वर्णन करते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने बंबई की सभा में जो वक्तृता की है वह अवश्य ही मर्मस्पर्शिनी हुई है। आपने बतलाया कि हमारा प्रांत देश भर की अपेक्षा दीन और दरिद्र है। यदि विपन्नता का रूप देखना हो तो कोई हमारे प्रांत में चले। यह वर्णन हम लोगों के लिए नया नहीं है और न अनदेखा ही है। यह दशा आज की नहीं है, गांधी-इर्विन पैक्ट के बाद की भी नहीं है, यह तो वर्षों से है। मूल में इसका कारण शासन पद्धति ही है जो एक शताब्दी के ऊपर हुए कायम हुई थी और जिसके विरुद्ध स्वराज्य का व्यापक आंदोलन चल रहा है। किसानों की गरीबी के लोक-प्रसिद्ध कारण सरकार की नीति, बढ़ा हुआ फौजी खर्च, अशिक्षा आदि हैं। इसमें जमींदारों का हाथ बहुत थोड़ा ही हो सकता है। अधिकांश छोटे जमींदार भी तबाही की हालत में गुजर कर रहे हैं। गांधी-इर्विन समझौते के बाद किसानों की हालत जरूर बिगड़ी है। फसल अच्छी नहीं हुई, छूट माकूल नहीं मिली। यदि ऊंचे कर्मचारियों के वेतन में और अधिक कमी की व्यवस्था की जाती या सरकार की ओर से किसानों के प्रति और अधिक उदारता दिखाई जाती तो उससे मौजूदा हालत तो कुछ और सुधरते पर स्थायी रीति से सुधार फिर भी नहीं हो सकता। स्थायी सुधार के लिए संपूर्ण तंत्र को बदल देने की जरूरत है इसलिए राजनीतिज्ञों के विचार का मुख्य विषय क्षणिक दुर्दशा को दूर करना ही नहीं, स्थायी सुधार भी होना चाहिए और ऐसे विषयों के हल करने के लिए गोलमेज कॉन्फ्रेंस की आवश्यकता हुई थी। बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन का यह कहना है कि ऐसे आंदोलनों से राष्ट्रीय जाग्रति उत्पन्न होती है जो भविष्य के विकास के लिए उपयोगी है। पर इस प्रकार की आजमाइश के लिए वर्तमान अवसर अनुकूल नहीं कहा जा सकता। भयंकर सस्ती के कारण किसानों की गरीबी का वार-पार नहीं है और वे शांत भाव से सत्याग्रह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कष्टों को झेलने के लिए तैयार रह सकेंगे यह बहुत ही संदेहजनक है। जमींदारों ने अपने स्वार्थ की दृष्टि से सरकार का ही साथ देने का इरादा दिखाया है। उधर दूसरी ओर एक तरह के विचारों की ऐसी आमद हुई है जो जमींदारों की स्वार्थ नीति का नहीं, स्वयं उन्हीं का अस्तित्व नष्ट करना चाहती है। यह विद्वेष इस समय भयानक रीति से प्रसार पा सकता है और वर्गयुद्ध प्रारंभ हो सकता है। यह समय प्रांत में सत्याग्रह के अनुकूल नहीं।

बंगाल के पिछले प्रांतीय राजनीतिक अधिवेशन में श्री सुभाषचंद्र बोस ने यह स्वीकार कर बड़ी ही दूरदर्शिता दिखाई कि प्रांत अभी सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है। उस अधिवेशन में विलायती बायकाट का जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसका भी प्रांतीय कांग्रेस के जिम्मेदार नेता विरोध कर रहे हैं। समाचार आया है कि यह नवयुवकों का प्रस्ताव था और भारतीय कांग्रेस कमेटी की आज्ञा नहीं ली गई थी। तय हुआ है कि जब तक महात्मा गांधी विलायत से वापस न आ जाएं तब तक प्रस्ताव को अमल में न लाया जाए। कांग्रेस के अध्यक्ष राष्ट्रपति पटेल के द्वारा हमारे प्रांत की स्थिति की जांच नहीं की गई। संभव है, अभी यह एक प्रांतीय अथवा स्थानीय प्रश्न समझा गया हो पर आगे चलकर यह व्यापक रूप भी धारण कर सकता है और इसका अखिल भारतीय महत्व भी हो सकता है। इस जिम्मेदारी का अंदाज लगा लेना चाहिए।

देश की राजनीति इस समय दो दिशाओं में प्रवाहित हो रही है। एक तो गोलमेज के समझौते की धारा है जो वर्तमान राज्यचक्र को बदलने और नवीन विधान बनाने के उद्देश्य रखती है और जिसमें महात्मा गांधी भी सम्मिलित हुए थे और दूसरी सामयिक परिस्थितियों से उत्पन्न असंतोष की धारा है जिसके एक कूल में आर्डिनेंस और दूसरे कूल में सत्याग्रह है। इन दोनों धाराओं के भविष्य के संबंध में अभी कोई कुछ नहीं कह सकता पर फिलहाल यह अवस्था है कि समझौते की प्रणाली स्थायी सुधार का लक्ष्य रखती है और दूसरी प्रणाली सामयिक स्थिति में सुधार चाहती है। इन दोनों का अलग महत्व है। यह उचित नहीं कि आज की बेचैनी के कारण ऐसे मार्ग का अवलंबन किया जाए जो कल आत्महत्या का कारण सिद्ध हो। राजनीति के क्षेत्र में एक महात्मा गांधी ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनका संबंध उपर्युक्त दोनों धाराओं से है और वे ही दोनों के आपेक्षिक महत्व और कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सकते हैं। गोलमेज के संबंध में उन्होंने अंतिम राय अब तक नहीं प्रकट की है और देश की वर्तमान हालत से परिचित नहीं हैं। सबकी दृष्टि आज उनकी ही ओर लगी है और वास्तव में देश के भविष्य का निर्णय करने में आज उनके ही विवेक की आवश्यकता है।

## मिस्टर चर्चिल

मिस्टर चर्चिल का नाम देखते ही पाठकों की कल्पना उनके किसी भारत-विरोधी भाषण पर चली गई होगी पर हम यहां कुछ और ही बात कह रहे हैं। भारत के मामले में वे इतने मशहूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और बदनाम विचार रखते हैं कि आज कल की अनुदार दल की सरकार तक उनसे परेशान है। फिर भी मिस्टर चर्चिल अपनी टांग अड़ाते ही रहते हैं। इस दृष्टि से वे क्रोध के नहीं, अब विनोद की वस्तु बन गए हैं। यहां हम ऐसी दैवी घटना का उल्लेख कर रहे हैं जो अकस्मात मिस्टर चर्चिल पर घटी है। दुनिया अदृष्ट पर विश्वास करती है और इस घटना का तरह-तरह का अर्थ लगावेगी। हमें इस बात का बड़ा दुःख है कि पिछले दिनों चर्चिल साहब भारत के संबंध में भाषण देने अमेरिका गए थे पर वहां मोटर से चोट खाकर जख्मी हो गए हैं। पहले तो चोट खतरनाक समझी जाती थी पर बाद की खबर है कि खतरे की बात अब नहीं रही। इसकी हमें खुशी है। दुनिया में हर तरह के आदमी हर समय में रहते हैं और रहेंगे। मिस्टर चर्चिल भी अच्छे होकर अपनी विशेषताएं बनाए रखें तो हमारा मनोरंजन ही होगा। हम चर्चिल साहब की स्वास्थ्य कामना करते हैं।

(रविवार, 20 दिसंबर 1931)

## गांधी आएं, तब

युक्त प्रांत में आर्डिनेंस भी जारी है और सत्याग्रह भी शुरू है। सभाएं भंग की जा रही हैं धाराएं तोड़ी जा रही हैं। प्रेसों में ताले, मकानों में भी ताले पड़ने लगे हैं। लारियों की मनाही हो गई, प्राइवेट मोटर भी जब्त किए जा रहे हैं। लाठी चार्ज का लग्गा लग गया है और—झूठी ही सही—गोली भी चल निकली है। दुर्दिन का दृश्य बाहर से सभी देख सकते हैं पर हम जरा भीतर भी देखना चाहते हैं। अंदरूनी हाल यदि हम न भी बता सकें तो इतना तो जरूर कह सकते हैं कि प्रत्येक आंदोलन की ही तरह इस लगानबंदी आंदोलन की कल्पना और प्रेरणा करने वाले कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अवश्य होंगे। निश्चय ही किसानों की बुरी हालत उस प्रेरणा के मूल में थी, पं. जवाहरलाल नेहरू ने महात्माजी को विलायत तार देकर उसकी खबर भी दी थी। परंतु यह संभावना नहीं थी कि गांधीजी के भारत लौटने के पहले ही स्थिति इस तरह उबल उठेगी। राष्ट्रपति सरदार वल्लभ भाई पटेल ने युक्तप्रांत का हाल दूर से ही सुना और बंबई की सभा में यह घोषणा की कि हम महात्मा गांधी के आने पर उनका आदेश पालन करने को तैयार रहें। पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी लगानबंदी का काम स्थानीय नेताओं के ही मातहत रहने दिया, ऐसा जान पड़ता है। वे इधर कुछ दिनों से प्रांत में नहीं हैं। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री शेरवानी साहब भी इस मामले में जैसी चाहिए, दिलचस्पी नहीं दिखा रहे। प्रांत के प्रतिष्ठित कांग्रेस नेता और वृद्ध दार्शनिक काशी के बाबू भगवानदासजी ने गांधीजी के आने तक ठहरने की सलाह दी है और अपने वक्तव्य में हिंदू-मुसलमान भेद, जमींदार-किसान भेद, वर्ण भेद, जाति भेद आदि के प्रश्नों को लेकर स्पष्टतः आंदोलन जल्दबाजी में करने की मनाही करते हैं और बराबर ठहरने की ही आवाज उठाते हैं। कारण चाहे जो भी हो, यह बात छिपी नहीं रही कि प्रांत में भी कांग्रेस के नेता लगानबंदी के बारे में एकमत नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं। सरकारी लगान वसूली का समय आ जाने के कारण जल्दबाजी करने की जरूरत पड़ी, पर इसके फलाफल का भी विचार कर लेना ठीक होता। अभी उस दिन अमरोहे में एक जमींदार अपने दो आदमियों के साथ कत्ल कर दिए गए। जो समझाने वाले हैं वे कांग्रेस नेता जेल पहुंच रहे हैं। किसानों का संघटन नहीं के बराबर हो सका है। उग्रभाव बहुत शीघ्र बढ़ सकता है। लगानबंदी का आंदोलन चलाने वाले कांग्रेस नेताओं को इस तरफ ध्यान देना चाहिए। सभाओं में देहाती किसान काफी संख्या में लाठी लेकर पहुंचते हैं। यह लक्षण अच्छा नहीं। इसे रोकना उचित होगा। सभाएं करना बंद कर दिया जाए तो अच्छा हो। किसानों को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अपने भावी कष्टों का अनुभव करने की है। सभाएं जिस तरह का जोश बढ़ा कर जो क्षणिक मनोवृत्ति उत्पन्न करती हैं वह किसी तरह अभीष्ट नहीं क्योंकि उसमें हिंसा फैलने का खतरा है।

तमाम काम जल्दबाजी में हुआ है, इसमें किसी को ज्यादा संदेह करने की गुंजाइश नहीं। प्रांत के प्रायः सभी जिम्मेदार राष्ट्रीय पत्र ही नहीं, दो-एक आग उगलने वाले खबर-कागज भी कुछ सौम्य हो रहे हैं और लगानबंदी का समर्थन करने में हिचक रहे हैं। इसका मुख्य कारण तो आर्डिनेंस है पर एक कारण लगानबंदी के संबंध में उनकी अनिर्णीत नीति भी है। पिछली बार जिस उद्देश्य के साथ और जिस तीव्र प्रतिवाद के भाव को लेकर अनेक पत्र-पत्रिकाएं बंद हो गई थीं इस बार वैसा न करने की बुद्धिमानी प्रकट दीख पड़ रही है। *हिंदुस्तान टाइम्स* के विलायती संवाददाता का कहना यदि सच है तो महात्मा गांधी के चलते-चलते ब्रिटेन के जिम्मेदार शासन सूत्रधारों से उनकी जो बातचीत हुई है वह काफी संतोषजनक है। इधर हाल में इटली के पत्र *जर्नल डी इटेलिया* में गांधीजी के मुंह से यह झूठी बात कहलाई गई थी कि वे भारत पहुंचते ही लड़ाई ठान देंगे। पर गांधीजी ने इसका एक बार नहीं, दो-तीन बार खंडन किया है और यह संतोषप्रद संवाद भेजा है कि बंगाल, युक्त प्रांत और सीमाप्रांत की परिस्थितियों की परीक्षा किए बिना और उस संबंध में सरकार से परामर्श किए बिना सत्याग्रह प्रारंभ करने में वे दुःख का अनुभव करेंगे। ये बातें सत्य हैं और विशेष आशाजनक भी।

दूसरी ओर सरकारी रुख भी देखने लायक है। कलकत्ते के यूरोपियन एसोसिएशन और एंग्लो-इंडियन पत्रों ने जोर लगाकर वाइसराय महोदय से जिस बंगाल आर्डिनेंस के फर्मान पर दस्तखत करा लिया उसे देखकर पार्लियामेंट तक में आश्चर्य छा गया। मार्शल-ला से मिलते जुलते इस फर्मान को देखकर यदि स्वतंत्रताप्रिय ब्रिटेन को आश्चर्य न हो तो यह उसके नैतिक पतन की ही सूचना है। संशोधन के तौर पर यह तय हुआ है कि मृत्युदंड देने के पहले प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकेगी और वाइसराय महोदय खुद देखभाल भी करेंगे। इसके अलावा प्राइवेट तरीके से राष्ट्रीय नेताओं को विश्वास दिलाया गया है कि आर्डिनेंस का बेजा प्रयोग नहीं होगा। यह विश्वास करने की बात तो नहीं है। पर कहा जाता है गांधीजी के आने पर समझौते की बातचीत आगे बढ़ाई जाएगी। सहयोगी *प्रताप* प्रश्न करता है कि आर्डिनेंसों का रहस्य क्या इस बात में है कि महात्माजी के आने के बाद, उनके कहने-सुनने और विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिलाने पर, ये काले कानून तो वापस ले लिये जाएं और कांग्रेस से करबंदी की बात उठा लेने को कहा जाए? वही आगे लिखता है कि यदि यह बात हुई तो सरकार वहीं रहेगी, जहां वह इन काले कानूनों को चलाने के पहले थी, पर कांग्रेस झुक जाएगी। कहने को तो सरकार कहेगी कि हमने आपकी यह बात भी भान ली और वह भी, हम तो देखिए इतने झुक गए कि अपने काले कानून तक वापस ले लिये तो क्या आप करबंदी की घोषणा भी वापस नहीं ले सकते? इस तरह इन काले कानूनों को चलाकर सरकार आगे के समझौते की बातचीत में कुछ बातों में सिरे रहना, कुछ पाइंट 'स्कोर' करना तो कहीं नहीं चाहती? भविष्य की बात तो कहनी नहीं चाहिए पर हम समझते हैं यदि कांग्रेस को करबंदी आंदोलन बंद करके भी समझौते की बातचीत करने का अवसर मिले तो महात्माजी इससे लाभ उठाने में संकोच न करेंगे। शांति के वातावरण में बातचीत होने में हानि से अधिक लाभ ही सब प्रकार से है। हम आज उसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

## कानून का नैतिक प्रभाव

पिछले दिन बाबू पुरुषोत्तमदास टंडनजी और पंडित कृष्णकांत मालवीयजी के जो बयान जेल की अदालत में हुए और फिर जो अदालती कार्रवाई हुई वह विचारणीय है। कानून की दृष्टि से जो अपराध माना जाता है उसके एक पहलू को टंडनजी ने अपने को 'दोषी' बतला कर और दूसरे पहलू को कृष्णकांतजी ने अपने को 'निर्दोष' बतलाकर पेश किया। दोनों ने अपना नैतिक निर्दोष दिखाने में दो प्रकार के बयान दिए। प्रचलित कानून का नैतिक प्रभाव दोनों ही सज्जनों पर बहुत ही क्षीण, नहीं के बराबर, दीख पड़ा। इस नैतिक प्रभाव का घटने देना किसी भी सरकार के लिए सराहनीय नहीं है पर वर्तमान काल में प्रचलित शासन व्यवस्था ऐसी हो गई है। और स्वेच्छाचारी कानूनों के द्वारा और भी होती जा रही है कि उसका नैतिक महत्व घटता ही जा रहा है। टंडनजी जैसे वयोवृद्ध व्यक्ति को कड़ी (Rigorous)। सजा सुनाकर और दोनों ही प्रतिष्ठित सज्जनों को बी-क्लास में रखकर सरकार जनता के असंतोष को बढ़ाने के अतिरिक्त कोई नैतिक महत्व नहीं प्राप्त कर सकती।

(गुरुवार, 24 दिसंबर 1931)

## हिंदी साहित्य सम्मेलन—4

झांसी के एक जिम्मेदार 'हिंदी प्रेमी' महोदय के पत्र से हमें शंका हो रही थी कि गृह-कलह और आर्थिक दुर्गति के कारण सम्मेलन का होना दुश्वार होगा और उसकी तिथियां बदल देनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होंगी। इधर हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्राण—अर्थात् आर्थिक प्राण बाबू पुरुषोत्तम दास टंडनजी के जेलखाने चले जाने से रुपयों का सवाल और भी टेढ़ा हो गया होगा, पर सम्मेलन के सौभाग्य से ओरछा नरेश ने अंत समय में चांदी का (!) मकरध्वज खिलाकर और सफेद (!) कायफल लगाकर किसी तरह रक्षा कर ली है और हम लोगों को प्रयाग के प्रतिनिधि बनकर झांसी पहुंचने का आदेश पत्र भी मिल गया है। पर स्वागतसमिति के गृह-कलह की अनिष्टसूचना से हम सब लोग बड़े सशंक हो रहे हैं। झांसी ही नहीं समस्त बुंदेलखंड के निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार जो हिंदी की मूल्यवान विभूति हैं—बाबू मैथिलीशरण गुप्त और बाबू सियारामशरण गुप्त—वे स्वागत समिति में सम्मिलित क्यों नहीं हैं? स्वागत समिति का अध्यक्षपद हिंदी संसार के लिए सम्मान्यपद बनाया जाना चाहिए। स्वयं हिंदी साहित्य सम्मेलन के ही एक अधिवेशन के स्वागत सभापतिपद पूज्य चरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ग्रहण कर चुके हैं, उस परंपरा का निर्वाह न कर सकना सम्मेलन के पतन की ही सूचना है। पर साहित्य से प्रतिदिन दूर होकर यह तथाकथित हिंदी साहित्य सम्मेलन जिस दिशा में चल रहा है उसमें ऐसे ही ऐसे दृश्य देखने को मिलेंगे।

स्वागत समिति कार्यालय की ओर से जो निमंत्रण-पत्र हम लोगों को मिला है उसमें सभापति का परिचय इस तरह दिया गया है, 'हिंदी भाषा के वयोवृद्ध सुकवि और लेखक श्री निंबार्क, संप्रदायाचार्य, हिंदी साहित्य सम्राट गोस्वामी श्री किशोर लालजी महाराज' बड़ा कीर्तिसंपन्न शुभ नाम है। इधर कई वर्षों से अपने साहित्य में एक शुभनाम बहुत कुछ गुमनाम सा हो गया था पर प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुओं की तरह साहित्य सम्मेलन ने भी जीर्णोद्धार का यह प्रशंसनीय कार्य किया है। हमारे लिए नामों का कोई महत्व नहीं, विशेषणों का तो बिलकुल ही नहीं रहा। यह कोई हमारा हठवाद नहीं है, आजकल हमारे लिए यह एक व्यावहारिक आवश्यकता हो गई है। एक 'हिंदी साहित्य सम्राट' शब्द को ही लीजिए। इसके कितने ही दावेदार हैं। प्राचीनों की तो जाने दीजिए अभी हाल में एक हेमचंद्र जोशी महोदयजी एक मामूली अखबार का संपादन कर चुके हैं और इस महीने से *विश्ववाणी* नाम की हिंदी में एक अनुवाद पत्रिका निकाली है, अपने को 'हिंदी का सर्वश्रेष्ठ साहित्याचार्य' घोषित करते हैं। ऐसी हालत में हम लोग विशेषणों की परवाह करें तो परवाह ही करने भर को हों। इसलिए हम लोगों ने विशेषणों को छोड़ दिया है, क्या करें।

'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के सभापति महोदय से हम आशा रखते हैं कि वे पिछले वर्ष भर के साहित्यिक क्रियाकलाप पर महत्वपूर्ण विवेचन करेंगे। हम समझते हैं कि पिछले वर्ष भर वे सामयिक साहित्य का विस्तृत और अंतरंग अध्ययन कर रहे होंगे, इसलिए उनकी कोई स्वतंत्र रचना प्रकाशित नहीं हो सकी। राजनीति की ही भांति साहित्य में भी एक जमाना था जब दिलबहलाव और छुट्टी बिताने के लिए सम्मेलन होते थे। सूरत के पहले कांग्रेस के जितने अधिवेशन हुए, यद्यपि उनमें कुछ न कुछ काम अवश्य हुआ, पर काम से अधिक आराम किया गया। कुछ दिनों बाद कांग्रेस एक कार्यकर्ता की संस्था के रूप में प्रतिष्ठित हुई। जनता के संसर्ग में आई—उसका प्राणस्पर्श किया। अब उसके अधिवेशनों में बाबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आदम के जमाने का लेखा नहीं लगाया जाता, प्रस्तुत परिस्थिति पर विचार किया जाता है। साहित्य सम्मेलन के सभापति का पद राजनीति के सम्मेलन के सभापति की गद्दी से अधिक महत् है क्योंकि राजनीति में तो अधिकतर राष्ट्रीय समस्याओं का ही विवेचन होता है—साहित्य तो सार्वभौम और अंतर्राष्ट्रीय विचार-प्रवाह की समीकृति, सामयिक जीवन का विश्लेषण आदि का लक्ष्य रखकर चलता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में सामयिक सभ्यता और संस्कृति की कौन कौन सी विशेषताएं झलक रही हैं—उनके उद्गम, प्रवाह, प्रसार, गुण-दोष, भविष्य आदि के संबंध में अपना मत सभापति महोदय प्रकट करें—यह प्राथमिक आवश्यकता है। हम उस समय से बहुत आगे चले आए हैं जब अनुप्रासों का अड़ंगा खड़ा कर सभापति महोदय सम्मेलन की गाड़ी खड़ाकर देते थे, उस समय से भी आगे आ गए हैं जब चमत्कृत उक्तियों से सभा स्तब्ध हो जाती थी। हमारा साहित्य आज जिन-जिन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित हो रहा है, हम चाहते हैं कि सभापति महोदय सामाजिक जीवन के संबंध में देशी और विदेशी विचारकों के मत के आधार पर अपनी स्वतंत्र सम्मति दें। निमंत्रण पत्र में यह सूचना भी दी गई है कि इस वर्ष के गौरवमय, महत्वपूर्ण कार्यों को देखते हुए इस इक्कीसवें अधिवेशन को प्रथम अधिवेशन समझना चाहिए। सम्मेलन को नए सिरे से समयोचित बनाने का विचार हम पहले भी प्रकट कर चुके हैं, उपर्युक्त सूचना पढ़कर हमें संतोष मिल रहा है।

निंबार्क संप्रदायाचार्य सभापति महोदय यदि चाहें तो अपने संप्रदाय के उन सिद्धांतों का स्पष्टीकरण करें जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से प्राचीन हिंदी साहित्य पर पड़ा है। हम बहुत दिनों से उत्सुक हैं और यह उत्सुकता प्रकट भी कर चुके हैं कि भक्तिकाल की और शृंगारकाल की हिंदी काव्यधारा का अन्वेषण तत्कालीन सांप्रदायिक विचार पद्धति के अनुसार होना चाहिए। सूरदास जैसे महान् भक्त और संत ही हिंदी में नायिका भेद के संभवतः आदि कवि हैं। ऐसी अवस्था में नायिका भेद की परंपरा तो बड़ी पवित्र समझी जानी चाहिए। उसकी अर्थसिद्धि शुद्ध मनोवैज्ञानिक रीति से की जानी चाहिए। संपूर्ण नायिका भेद की कविता यदि सांप्रदायिकों के प्रयास से सांकेतिक (Symbolic) सिद्ध की जा सके तो हिंदी साहित्य के तिरस्कृत शृंगार काल के कवियों का बहुत कुछ कलुष धुल जाए और उस काल की संपूर्ण कविता का अध्ययनक्रम ही बदल जाए। सांप्रदायिकों और मनोविज्ञान विशारदों के सम्मिलित उद्योग से ही यह उलटफेर संभव है, पर यह अवश्य करणीय है। निंबार्काचार्य सभापति महोदय से इस कार्य में योग देने की हम आशा करते हैं। यह अच्छा किया गया है कि इस बार साहित्य सम्मेलन के साथ दर्शन आदि विषयों के सम्मेलन भी होंगे। साहित्य सम्मेलन के साथ होने वाले दर्शन-सम्मेलन की सीमा उतनी ही हो सकती है जितनी साहित्य और दर्शन का तारतम्य मिलाने के लिए आवश्यक है। हम दर्शनसभापति से सामयिक दर्शन और मनोविज्ञान का विवेचन चाहते हैं। यदि दर्शन विभाग के सभापति महोदय साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष को सहयोग प्रदान कर भक्तिकाल और शृंगार काल की कविता का तथ्य निरूपण करा सकें तो उनकी उतने में ही सफलता समझी जाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्मेलन के साथ-साथ जो साहित्य परिषद बैठ रही है वह प्राचीन और नवीन साहित्य के संबंध में भिन्न-भिन्न मत प्रकाश का कार्य करे। अब तक सम्मेलन के प्रधान सभापति अपने ऊपर यह व्यर्थ का बोझ लादे हुए हैं कि वे पूर्व प्राकृत से लेकर ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि का अधिकारी-अनधिकारी वाग्विस्तार करते रहे हैं। यह सब काम साहित्य परिषद के सभापति को सौंप दिया जाए और भिन्न-भिन्न विषयों के निबंध पाठ उन्हीं की निगरानी में हों। सम्मेलन के प्रकाश-कार्य का निरूपण भी साहित्य-परिषद के ही अध्यक्ष करें।

साहित्य सम्मेलन का एक प्रमुख उद्देश्य हिंदी प्रचार का है। उसे चाहिए था कि साहित्य परिषद की तरह एक प्रचार परिषद का अलग से आयोजन करता, नहीं तो साहित्य कार्य में ही बाधा पड़ेगी। अगले वर्षों से यदि साहित्य परिषद के साथ कला परिषद का प्रबंध किया जाए तो साहित्य के विकास में उसका बड़ा उपयोग हो। हमारा मत है कि साहित्य सम्मेलन के साथ विज्ञान परिषद से कहीं अधिक आवश्यकता कला परिषद की है। विज्ञान परिषद को तोड़कर भी कला परिषद का निर्माण हो सके तो श्रेयस्कर है। विज्ञान परिषद की सार्थकता इतनी ही है कि यह हिंदी में भिन्न-भिन्न विज्ञान विधाओं की शब्द-सृष्टि करे, और उस संबंध में प्रामाणिक मत निरूपण करे, और कुछ नहीं। इतिहास परिषद की सार्थकता साहित्य से संबंधित ऐतिहासिक विवेचना, कवियों का समय निरूपण आदि में है। संपादक सम्मेलन के सभापति महोदय यदि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों की चित्रबुद्धि की रोक थाम का प्रयत्न कर सकेंगे और संपादकों की आत्मप्रशंसा के उद्दाम वेग को नियंत्रित कर सकेंगे तो बड़ा काम करेंगे।

हमसे कई मित्रों का आग्रह रहा है कि हम हिंदी साहित्य सम्मेलन का विरोध ही न करें, रचनात्मक गतिविधि भी बतलाएं। हम सम्मेलन को साहित्य की दृष्टि से अब तक अस्तित्व-हीन समझते हैं अथवा मृत। हम हिंदी प्रचार, परीक्षा और अर्थसंग्रह के कार्य को भी महत्व देते हैं पर इतना नहीं दे सकते कि वह साहित्य को हजम कर जाए। फिर तो 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' नाम का अर्थ ही क्या रह जाएगा? हम राजनीति और साहित्य को अलग-अलग कठघरों में बंद नहीं देखना चाहते, हमें यह देखकर प्रसन्नता ही होती है कि समय की गति के अनुसार सम्मेलन में खद्दर और गांधी टोपी की प्रमुखता है। पर खद्दर और गांधी टोपी के भावों की सात्विकता का, समता का, लोकतंत्र का यदि अभाव है तो बाहरी चिह्न बेकार हैं। राजनीति फिर भी कर्कश वस्तु है, उसमें बहुत सी सीधी, टेढ़ी वस्तुएं खप सकती हैं पर साहित्य विकास तो शुद्ध चैतन्य, सार्वभौम, सार्वयुगीन वातावरण में होना चाहिए—सब प्रकार की जड़ शृंखलाएं टूट जानी चाहिए। व्यक्ति की, वय की, सेवा की मान्यता हो पर साहित्य की सबसे अधिक हो। किसी भी स्थायी समिति या अस्थायी समिति को कोई अधिकार नहीं कि वह 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के सभापति का निर्वाचन मनमाने तरीके पर करे, उसे लोकमत का भय ही न रहे। सब प्रकार के स्वार्थ प्रचार के कलंक को दूर करके यदि हिंदी साहित्य सम्मेलन अपना पुनर्संघटन करेंगे तो हम सदैव उसकी शुभकामना करेंगे और यथाशक्ति उसके कार्यों में योग भी दे सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# महर्षि का जन्मदिवस

देश के तपःपूत नेता महर्षि मालवीयजी का जन्मदिवस देश के अनेक स्थानों में बड़ी ही भक्ति के साथ मनाया गया। महर्षि का यह सतरवां वर्ष समाप्त हुआ है। इस समय वे लोकहितैषियों की प्रेरणा से अपनी मातृभूमि में नहीं हैं, दूर देश में भारत की मुक्ति-साधना कर रहे हैं। 'परोपकाराय हिसतांविभूतयः' की उक्ति इन महर्षि के लिए सब प्रकार से चरितार्थ होती है। जो आचार धर्म उन्हें इतना प्राणप्रिय है उसका कष्टसाध्य निर्वाह करते हुए वे विदेश में पर्यटन कर रहे हैं—जननी जन्मभूमि के लिए ही तो। यहां उन महर्षि का गुणकीर्तन का आयोजन तो आगामी बसंत पंचमी के दिन किया जाएगा जब वे देश में हमारे बीच-अपने परम प्रिय विद्यार्थियों और विश्वविद्यालय के बीच उपस्थित रहेंगे। यहां हम केवल अपने देशवासियों की हां में हां करते हुए महर्षि के जन्मोत्सव के अवसर पर उनकी शुभकामना प्रकट करते हैं। शतं जीवेत शरदः आदि श्रुति वाक्य के अनुसार महर्षि मालवीयजी भी कम से कम सौ वर्षों तक शरीर धारण कर अपने देशवासियों की मुक्ति हेतु बने रहें, यही हमारी विनती है।

(रविवार, 27 दिसंबर 1931)

# स्वागत, महात्मा

शास्त्र प्रवचन करते हैं कि एक-एक अणु में संपूर्ण ब्रह्मांड की शक्ति निहित है। कविगण उपमा देते हैं 'गागर में सागर' की, 'बिंदु में सिंधु' की। दार्शनिक देखता है—जो कतरा है वही दरिया है। जो तू है वही मैं हूं। महात्मा कबीर उलटबांसी कहते हैं नैया बिच नदिया डूबी जाए—नाव में नदी डूबी जा रही है। पिंड में ब्रह्मांड समा रहा है, वही धारा एक-एक में आपूरित हो रही है। अंत में पश्चिम की विज्ञान विधा भी यही साबित करने लगी है। विद्युत में अपार शक्ति देखी गई। आगे उससे भी अपार देखी जाएगी। यही भारतीय शास्त्र का सत्य है। *गीता* में 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' उसी का समर्थन करता है। आगे चलकर वही मातृपूजा की जन्मदातृ भावना हुई जिसको लोग बाग कुछ और समझते हैं। उनकी इस समझ को समझाने के लिए ही मानो महात्मा गांधी ने अपने डेढ़ पसली के शरीर में भारत की अमित शक्ति केंद्रित की है। आज उनके इशारे से यह शक्ति चैतन्य होती है, गतिशील होती है और स्थित होती है। पिछले कितने ही वर्षों से हम देख रहे हैं कि शक्ति का यह केंद्रीयकरण गांधी के रूप में नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है। अभी पिछले ही वर्ष इस केंद्र से इतनी बड़ी शक्ति विकीर्ण हुई थी कि संसार चकित होकर उसकी ओर खिंच आया था। पिछले कुछ महीने से इस केंद्र का इस देश से अपसरण हुआ था। महात्मा विलायत गए थे, तब संसार की दृष्टि उनके साथ साथ गई थी और साथ-साथ रही थी। उनकी अनुपस्थिति में यहां महत्वपूर्ण कार्य हुए पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सबसे महत्वपूर्ण कार्य उनकी ओर सबकी दृष्टि का आकर्षित रहना—खींचा रहना था। यह प्रत्यक्ष न हो पर यही सबसे बड़ी शक्ति-केंद्र था। अब जब वे यहां आए हैं तब आकर्षण इतना बढ़ा है कि जो उन्हें देखते हैं उनकी सिर्फ आंखें काम करती हैं शेष इंद्रियां नहीं-सी रहतीं, जो उन्हें सुनते हैं उनके केवल श्रवण काम करते हैं शेष सब शून्य। अर्थात् उस शक्ति-केंद्र से ही सबकी गतिविधि का निर्धारण हो रहा है। इसी को शास्त्र में कहते हैं पिंड ब्रह्म, इसी को हम लोग कहते हैं मूर्ति पूजा, यदि बुद्धिवादी (Rationalists) चाहें तो इसे देख लें।

क्या सर्वशक्तिमती सरकार, क्या देश की राष्ट्रीय जनता, हिंदू-मुसलमान सबसे उस शक्ति का संबंध है—सब उससे खिंच रहे हैं। जो मतभेद रखते हैं वे उसके विवेक पर विश्वास करते हैं, जो विरोधी हैं वे उसके सत्वगुण और धर्मभाव को मानते हैं और जो उसके अनुयायी हैं उनका तो वह प्राण ही है। जो अज्ञानी हैं वे भी उस ज्ञानवान से ही प्रतिक्रिया करते हैं जैसाकि उनके आगमन पर कुछ अछूतों ने किया। मूर्ति का यही विकर्षण गुण है जो उसके आकर्षण गुण के समानांतर चलता है। अनिष्ट शक्ति भी उसी केंद्र को लक्ष्य रखती है, यद्यपि उस केंद्र में स्वतः अनिष्ट शक्ति नहीं है। अर्थात् ईश्वर ही मायापति है, यद्यपि उससे सर्वथा निर्लिप्त है। पश्चिमी मतों के अनुसार शैतान ईश्वर का प्रतिद्वंद्वी है, पर हम इस तरह कहेंगे कि शैतान ईश्वर की सृष्टि है। महात्मा गांधी को घेर कर इस समय देश की संपूर्ण इष्ट शक्ति और अनिष्ट शक्ति साथ-साथ प्रदर्शन कर रही हैं और हम देखते हैं कि वह उन सबके बीच में मुस्कराता-सा है। बड़ी ही दिव्यमूर्ति बनी।

कांग्रेस के छोटे-मोटे सदस्य अकसर अपने स्वतंत्र विचारों पर काफी से अधिक जोर दिया करते हैं और ऐसा आभास देते हैं कि महात्मा गांधी की ही भांति वे भी देश की नीति निर्धारित करने में और अपने मन-मुताबिक काम करने में स्वाधीन हैं। पर हम इसे केवल बातों का जमाखर्च समझते हैं। कांग्रेस देश की स्वतंत्रता जनतावाद के ढंग की बतलाई जाती है। इसलिए कुछ लोग अपने को किसी ऊपर के बंधन में नहीं बांधना चाहते, पर गांधी का बंधन अपरिहार्य है। सबकी उस केंद्रबिंदु की ओर टकटकी लगी रहती है। कोई स्वीकार करे या न करे। यद्यपि आवश्यकीय परिस्थिति समझकर हमारे प्रांत में लगानबंदी आंदोलन प्रारंभ कर दिया गया है पर उसे देश की शक्ति, कम से कम प्रांत की संपूर्ण कांग्रेस शक्ति प्राप्त नहीं हो रही। उसका अधिकांश भाग महात्माजी की ओर उन्मुख है, उन्हीं से प्रेरणा पाने की प्रतीक्षा कर रहा है प्रजातंत्र का सिद्धांत या दुनिया का कोई सिद्धांत इसके विपरीत कुछ नहीं कह सकता। शक्ति के प्रति सब आकर्षित होते हैं, उसके सामने सब प्रणत। गांधी की इस शक्ति का अनुमान लगाने के बाद जरा उस विश्वशक्ति का अंदाज लगाइए जिसके एक इशारे से अनंत पत्ते हिलते हैं और दूसरे इशारे से एक भी नहीं हिलता! इसके बाद भी यदि कोई ईश्वर पर अविश्वास करे तो उसे करने देना चाहिए!

महात्माजी अपने महान् उत्तरदायित्व को कैसे नहीं समझेंगे जब देश ने उन पर वह उत्तरदायित्व छोड़ रखा है! उन्होंने भारतभूमि में पदार्पण करते ही अपनी जिम्मेदारी की बात कही है! सचमुच आज की जिम्मेदारी से हजार गुणा अधिक है। पिल्सना जहाज से उतरे हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सामान्य व्यक्तियों में प्रेसीडेंट पटेल भी हैं जिन्होंने गोलमेज के असफल हो जाने की सम्मति प्रकट की है और शीघ्र लड़ाई छेड़ देने का प्रस्ताव किया है। अवश्य ही लड़ाई छेड़ना बड़ी जिम्मेदारी और बड़ी शक्ति की अपेक्षा रखता है, पर देश की संपूर्ण स्थिति का यथातथ्य अन्वेषण करने और सबको ध्यान में रखते हुए आगे का कार्यक्रम बतलाने में उससे भी अधिक जिम्मेदारी, शक्ति, संयम और विवेक की आवश्यकता है। महात्मा गांधी ने जिस हल्के मोद और हंसी-खुशी के भाव से पं. जवाहरलाल आदि की गिरफ्तारी का हाल सुना, उसे वाइसराय का 'क्रिसमस' उपहार और सत्याग्रही की वरमाला बतलाया, उसकी केवल 'अद्भुत' संज्ञा हो सकती है। कोहाट की गोली वर्षा से हताहत अनेक पठानों का विवरण सुनकर भी वे विचलित नहीं हुए। गोलमेज के अब तक के परिणाम से वे संतुष्ट नहीं हैं पर इस असंतोष के कारण वे उस कार्य को छोड़ने की बात नहीं कहते। वे उस कार्य को कठिन अवश्य बतलाते हैं और कांग्रेस के प्रतिष्ठित नेताओं की—विशेषकर पं. जवाहरलाल की गिरफ्तारी के बाद उसे कौन कठिन नहीं कहेगा, पर इससे अधिक उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। सत्याग्रह के लिए उन्होंने 'अग्नि परीक्षा' नाम चुना है जिससे उसका अर्थ बहुत ही स्पष्ट हो जाता है। अग्नि परीक्षा में पवित्रता है पर ज्वाला भी है। देश की जनता को इस ज्वाला में प्रवेश कराने के पहले वे अन्य समस्त उपायों से काम लेंगे यह उनके आजाद मैदान के भाषण से स्पष्ट है और इसकी ही हम सबको आशा भी थी।

## आर्डिनेंसों का दुरुपयोग

बंगाल, युक्तप्रांत और सीमा प्रांत में आर्डिनेंस जारी हैं। बंगाल आर्डिनेंस क्रांतिकारियों के लिए बताया जाता है, युक्तप्रांत का आर्डिनेंस लगानबंदी को रोकने और सीमा प्रांत के तीन आर्डिनेंस खान अब्दुल गफ्फार खां और उनके शिष्यों से प्रांत की शांति और व्यवस्था की रक्षा करने का उद्देश्य रखते हैं। जब से बंगाल आर्डिनेंस जारी हुआ तब से बहुत सी गिरफ्तारियां हुई हैं जिनमें बहुत से कांग्रेस संस्थाओं के पदाधिकारी भी हैं। कांग्रेस का लक्ष्य हिंसावाद कदापि नहीं है, इसलिए कांग्रेस के सदस्यों को बिना जुर्म कायम किए, केवल संदेह पर पकड़ना, आर्डिनेंस का दुरुपयोग करना ही हुआ। हमारे प्रांत में भी पं. जवाहरलाल नेहरू और श्री शेरवानी की गिरफ्तारी आर्डिनेंस के अंदर की गई है। ये दोनों सज्जन महात्मा गांधी से मिलने और कांग्रेस वर्किंग कमेटी में शरीक होने बंबई जा रहे थे। बंबई शहर में लगान बंदी का कोई आंदोलन नहीं चल रहा है, इसलिए सरकार को खतरे की कोई बात नहीं थी। फिर भी उसने उक्त दोनों नेताओं को गिरफ्तार किया। सीमा प्रांत से आई हुई खबर भी बहुत ही आशंकाजनक है। कोहाट में गोली चलने से दर्जन भर से अधिक मृत्युएं हुई हैं और पचासों जख्मी हुए हैं। इस संबंध में हम विस्तृत विवरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं पर खबर बड़ी ही अशुभ है। सरकार ने यह विश्वास दिलाया था कि वह आर्डिनेंसों से बेजा फायदा नहीं उठावेगी। परंतु लक्षणों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जान पड़ता है कि 'शांति और व्यवस्था' के रक्षक लोग उस विश्वास को गलत साबित करने लगे हैं। इसके दो ही कारण हो सकते हैं, एक तो यह कि विलायत की वर्तमान अनुदार सरकार कड़े शासन की दुबारा आजमाइश करना चाहती है अथवा पुलिस के आदमी ऊपर के अफसरों के कहने में नहीं हैं। जो भी बात हो आर्डिनेंसों का बेजा प्रयोग कर स्थिति को बिगाड़ने की पूरी जिम्मेदारी सरकार पर है।

(गुरुवार, 31 दिसंबर 1931)

## अद्‌भुत और भयानक

एक अद्‌भुत और भयानक परिस्थिति किमाकार बनकर सामने खड़ी हो गई है। 'हमारे रास्ते जुदा-जुदा हुए' यह महात्माजी की उक्ति गोलमेज के आखिरी दिन तो नहीं, आज सत्य-सी हो रही है। पिल्सना जहाज पर की उनकी स्कीम बेकार हो गई, यह उन्होंने बंबई में कह ही दिया। कांग्रेस के बड़े कुछ नेताओं की गिरफ्तारी से देश में क्षोभ और महात्माजी के कार्य में बाधा हुई है। वर्किंग कमेटी के आदेश के अनुसार वाइसराय महोदय को तार दिया गया था कि वे गांधीजी के साथ बातचीत करें पर उन्होंने आर्डिनेंसों के संबंध में बात करना अस्वीकार कर दिया है। उन्हें दुबारा विचार करने का तार भेजा गया है और खबर है कि यदि वाइसराय अपना मत नहीं बदलेंगे तो महात्माजी देश को सत्याग्रह शुरू करने की सम्मति देंगे। बड़े आदमी दुबारा विचार कम किया करते हैं इसलिए भविष्य का भयानक रूप हमें दीख पड़ रहा है। महात्मा गांधी के हृदय में जो तूफान चल रहा होगा उसकी कल्पना बड़ी करुण है। वे विलायत से यह धारणा लेकर आए हैं कि वहां के राजनीतिज्ञ ईमानदार हैं और वे जो कहते हैं, करना भी चाहते हैं। सर सेमुएल होर जैसे व्यक्ति की उन्होंने प्रशंसा की है। महात्माजी कूटनीतिज्ञों की भांति कोई बात छिपाना नहीं जानते—आकाश की भांति उनके विराट हृदय में सब कुछ प्रकृतिविहित है, कृत्रिमता कहीं भी नहीं। सत्य यह है कि वे यह नहीं चाहते कि लड़ाई छिड़े। वे अवश्य शांति चाहते हैं। सब प्रकार से कांग्रेस को समझौते में शरीक करना उनका लक्ष्य है। अपने अनेक अंग्रेज मित्रों को वे विश्वास दे चुके हैं कि संधि भंग नहीं करेंगे, विधान रचना में सहायता देंगे। सत्याग्रह के संकट उनसे बढ़कर दूसरा कौन जानेगा?

उस ओर ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड गोलमेज के काम का तार टूटने नहीं देना चाहते, जल्द ही उसे आगे बढ़ाना चाहते है। देखने वालों पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है, और दुनिया की यह धारणा बंधती है कि प्रधानमंत्री भारतीय स्वराज्य के लिए उत्सुक हो रहे हैं। यह स्वराज्य सचमुच स्वराज्य ही होगा यह अभी तो कोई नहीं कह सकता। पर यहां हम प्रभाव की बात कह रहे हैं। मौका मिलते ही प्रधानमंत्री यह भी विज्ञप्ति करते हैं कि इस समय समझौते को छोड़कर सत्याग्रह छेड़ना शरारत है, स्वराज्य प्राप्ति या राजनीतिक मुक्ति का उपाय नहीं। वाइसराय महोदय भी कलकत्ता-यूरोपियन एसोसिएशन के भाषण में लगभग ऐसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उद्‌गार करते हुए महात्मा गांधी के प्रति आशा प्रकट करते हैं कि वे सरकारी अवज्ञा के आंदोलन को रोक देंगे और समझौते में शामिल होंगे। दोनों ही महाशय देश की अधिकांश जनता से सरकारी नीति के समर्थन की आशा रखते हैं, बल्कि भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों को एकत्र होकर सहयोग करने को आमंत्रित करते हैं। जो आर्डिनेंस जारी किए गए हैं वे केवल स्थिति को संभालने—शांति और व्यवस्था की रक्षा अर्थात् 'आत्मरक्षा' करने के मतलब से कहे जाते हैं। इस प्रकार सरकार की तरफ से एक ऐसा वातावरण तैयार किया गया है जिससे विदेशों में ब्रिटिश जाति की सदाशयता का सिक्का जम जाए, सत्याग्रह केवल शरारत समझी जाए और जहां तक संभव हो भारत का लोकमत भी एक हद तक सरकार की तरफदारी करता रहे।

इधर कुछ दिनों से सत्याग्रह की 'शरारत' करने वाले को कड़ा दंड दिया गया और आतंक दिखाकर भयभीत करने का प्रयत्न भी किया गया है। सीमा प्रदेश में सात-आठ सौ गिरफ्तारियां की जा चुकी हैं जिनमें तीन सौ के लगभग तो नेता हैं। यह तीन सौ नेताओं का शिष्यसमूह अवश्य ही वृहद मंडल होगा। हमारे इलाहाबाद जिले में ही सौ के लगभग गिरफ्तारियां पहुंच गई हैं और कानपुर में तो सौ से भी अधिक। प्रांतीय आर्डिनेंस रोज-रोज विस्तार पा रहा है। इसका मतलब वही है जो वाइसराय महोदय कह चुके हैं—अर्थात् गैर-कानूनी कार्रवाई को सब प्रकार से दबाना। हमारे प्रांत में तो यह देहातों का आंदोलन है, जो बहुत ही व्यापक रूप धारण कर सकता है। पार साल शहरों में ही अधिकतर आंदोलन था, जहां अधिकांश में रोजगारी और नौकरी जीवी बसते हैं। गांवों के देखते हुए शहर की संख्या बहुत ही कम है। इसलिए सरकार को अपने दमनचक्र का प्रयोग करने के पहले इस बात पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए कि 'शरारत' को इस तरह रोकने से वह और भी बढ़ न जाए। कांग्रेस नेताओं को अभी से आशंका हो रही है कि इस बार सरकार का दमनचक्र पहले से कहीं अधिक उग्र रूप धारण करेगा। सरकार के लिए यह ठहरकर विचार करने की बात है। उसने संसार की यह धारणा अपने प्रति उत्पन्न की है कि वह भारत को स्वराज्य देना चाहती है। वह हिंदुस्तानियों से सहयोग की अपील भी करती है। वह सोचे कि जिसको हम स्वराज्य देना चाहते हैं उस पर कठोर दमन करना मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत के अनुकूल नहीं है। विदेशों पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ सकता और हिंदुस्तानियों की सहानुभूति की आशा करना तो दुराशा मात्र होगी।

मनुष्य की भांति संस्थाओं का भी एक आत्मसम्मान होता है। कांग्रेस की भी एक बड़ी मर्यादा है, जिसकी वह रक्षा करती है। हमारे प्रांत की कांग्रेस कमेटी ने किसानों का साथ देने का निश्चय किया है। मान लिया कि उसका यह निश्चय जल्दबाजी में बिना सोचे-विचारे ही हुआ है। मान लिया कि इससे किसानों की ही तबाही होगी। यह भी माना कि इसमें सरकार के लिए कोई खतरे की बात नहीं है। पर क्या यह उचित नहीं कि महात्मा गांधी प्रांत की स्थिति को परखें और प्रांतीय कांग्रेस को फिर से विचार करने का मौका मिले? क्या सरकार के लिए ही यह अधिक फायदेमंद नहीं है कि महात्माजी शांति के वातावरण में जांच करें? यदि सरकार का यह दावा है कि उसने हमारे प्रांतों में जो छूट दी है वह काफी है तो उसे इस बात में क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अड़चन पड़ रही है कि दोनों ओर से शांति की व्यवस्था की जाए! हमें तो इसमें वही प्रेस्टीज वाला सवाल फिर आया दीख पड़ता है जिसका कुपरिणाम अच्छी तरह देखा जा चुका है। जब आर्डिनेंस केवल आत्म रक्षा के लिए हैं, उनका कोई उग्र उद्देश्य नहीं है तब तो यह सवाल और भी आसान है।

यहां हम महात्मा गांधी से भी एक निवेदन करेंगे। वे महापुरुष हैं। इस समय देश पर संकट उपस्थित है। उनपर इस समय महान् उत्तरदायित्व आ गया है। भयानक स्थिति उपस्थित हो गई है। सवाल जीवन-मरण का भी है। इस समय आत्मसम्मान का प्रश्न दब जाता है। 'अर्द्धः तजहि, बुध सर्वस जाता' नीति भी है। यदि वाइसराय महोदय हठवश आर्डिनेंसों पर विचार करने को न भी उद्यत हों तो एकबार वे संपूर्ण देश की स्थिति को अपनी आंखों से देखें। समझौते के कार्य की गुरुता वे समझते ही हैं। उन्हें यह भी जानना नहीं है कि देश की स्थायी शांति और समृद्धि के लिए समझौते का मार्ग ही अधिक उपयोगी है। सत्याग्रह का फलाफल आगे चलकर कैसा होगा यह तो निश्चय नहीं, यह निश्चय है कि फिलहाल उससे जनता का कष्ट बढ़ेगा। महात्माजी उसे अग्नि परीक्षा कहते हैं जिसमें कोई सती ही प्रवेश कर सकती है। आशा है राष्ट्र को सत्याग्रह की अग्नि परीक्षा में प्रवेश कराने के पहले वे उसके सतीत्व की परीक्षा कर लेंगे।

लेख लिखते-लिखते समाचार मिला है कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अस्थायी रूप से सत्याग्रह शुरू करने का प्रस्ताव पास कर दिया है। विलायती वस्तुओं और व्यवसाय-संस्थाओं का जोरदार बहिष्कार और अनैतिक कानूनों की अवज्ञा की जाएगी। यदि वायसराय महोदय महात्माजी से मिलना स्वीकार करेंगे तो सत्याग्रह स्थगित करके आशा की जाएगी कि वह दुबारा न शुरू किया जाए। 'अनैतिक' कानूनों से वर्किंग कमेटी का क्या आशय है, स्पष्ट नहीं हुआ। संभव है, आर्डिनेंसों से हो। वाइसराय महोदय को आर्डिनेंस निकालने में कोई सुख नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में यदि आर्डिनेंसों के संबंध में महात्माजी से बातचीत करके कोई ऐसी व्यवस्था की जा सके जिससे आगामी हलचल से देश की रक्षा हो तो वाइसराय महोदय के प्रति हम ही नहीं, देश भर कृतज्ञ होगा।

## हिंदी साहित्य सम्मेलन–5

झांसी हिंदी साहित्य सम्मेलन के साथ-साथ होने वाले दर्शन परिषद और संपादक-परिषद के सभापतियों के भाषण प्रकाशनार्थ आए हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि दर्शन परिषद के सभापति महोदय का भाषण न प्राचीन हिंदी साहित्य से संबंध रखता है, न नवीन से। यह तो किसी मासिक पत्रिका में एक निबंध में छप सकता है। हिंदी साहित्य सम्मेलन से इसका कोई संबंध नहीं। अब तक हम लोगों को परिस्थिति का ज्ञान नहीं हुआ और न हम हिंदी की आवश्यकताओं को ही समझ सके। अन्यथा ऐसे अवसर पर ऐसी चर्चा की लेशमात्र आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न थी। यह साहित्य सम्मेलन की शिथिल और अज्ञात-लक्ष्य नीति का सीधा नतीजा है। संपादक-सम्मेलन के सभापति महोदय का भाषण कुछ हद तक सामयिक है। पर अधिकांश में वे विषय के अन्य रंग में प्रवेश नहीं करते। संपादकों का असंघटनात्मक, आर्थिक कष्ट आदि बातों का ही अधिक उल्लेख किया गया। संपादकीय नीति, शैली के विकास तथा पत्रकार कला संबंधी आवश्यक विषयों का स्पर्श नहीं किया गया। सभापति महोदय ने 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' को अंग्रेजी पढ़े लिखों की संस्था बताया है, उसके संचालकों की हिंदी की बेजानकारी की चर्चा की है और उनके अंग्रेजी ज्ञान-पर भी संदेह प्रकट किया है। सबको सब विषयों पर अपनी राय रखने का अधिकार है पर संपादक परिषद के सामने उसे इस तरह प्रकट करने में उन्होंने आवश्यकता से अधिक रोषवृत्ति से काम लिया है। हम अन्य भाषणों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

## राय कृष्णदास का कथासाहित्य—1
## (*सुधांशु* और *अनाख्या* की आख्यायिकाएं)

अंग्रेज कवि वड्र्सवर्थ को मरे पूरे सौ वर्ष नहीं हुए, नब्बे भी नहीं—अभी बयासी ही हुए हैं। इंग्लैंड में साहित्य के परखने वालों की कमी नहीं थी और न प्रचार-प्रसार करने वाले प्रेस ही कम थे पर वे मारे भी गए, जिंदगी में उनकी कविता-श्री से इतने पैसे भी न जुटे कि जूते के फीते ही नए लेते। और एक शताब्दी के भीतर वे ही अंग्रेजी के प्रमुख कवि और सारे यूरोप के स्तुत्य साहित्यकार मान लिये गए हैं। कवि की कविताएं झाड़ियों में पड़ी मिली हैं, जिनसे बाद की उन्हीं के संबंधियों ने अच्छी रकमें पैदा कीं—उसी प्रेस, साधन-संपन्न, प्रवृत्तिमार्गी ब्रिटेन में, जिसे हम लोग सेंट-परसेंट व्यवसायी, अनाध्यात्मिक आदि विशेषण मजे के साथ दे देते हैं। हम समझते हैं, यह निरपेक्ष वृत्ति ही सच्ची कविवृत्ति है—कला का प्राणस्पर्श करने वाली। हमको कवि का नाम कभी नहीं अच्छा लगता अज्ञात नाम कवि ही अभीष्ट है। मिस्टर बेंसन कहते हैं कि कला के मूल में दो शक्तियां चाहिए। भावना-शक्ति और भावना की सुंदर प्रकाशिका शक्ति। इनमें पहली कम हुई तो कवि आत्मवंचना करने लगता है, दूसरी कम हुई तो उसे उन्माद हो जाता है। दोनों के मणिकांचन संगम में साहित्य का त्रिवेणी-तीर्थ अधिष्ठित है। इसे ही स्वांतः सुखाय कह सकते हैं। यहां कहीं विज्ञापन की गति नहीं है। विलायत से अधिक भारत में ये बातें सुनी-समझी जाती हैं—आज नहीं, और कभी। यह यहां की प्रकृति संस्कृति से मिलती हुई थी। अभी कल ही मद्रास में 'अज्ञात स्वयंसेवक' संज्ञा देकर एक मूर्ति का उद्घाटन करते हुए चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कैसी मर्म की बात कही कि 'पिछले वर्ष तीन हजार से अधिक अज्ञातनाम व्यक्तियों ने जिस भावना से प्रेरित होकर अनेक यातनाएं सहीं और कुछ ने मृत्यु भी वरण की' उनकी स्मृतिमूर्ति है यह 'अज्ञात स्वयंसेवक'। इन व्यक्तियों के साथ मूर्ति अतीव सजीव हो उठती है। साहित्य में भी ऐसे ही 'अज्ञात स्वयंसेवक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमें मिलते हैं पर 'आत्मकथांकों' के इस युग में यह सब 'तरंग' बहक' और 'स्वप्न' समझा जाता है और इसे लोग आदर्शवाद कह के चिढ़ाते हैं। कोई जो चाहे कहे, पर वड्‌संवर्थ को मरे अभी सौ वर्ष पूरे नहीं हुए। हम लोग तो परम संन्यासी और अध्यात्मवादी होने के कारण सब कुछ कर सकते हैं, इसलिए पश्चिम का ही उदाहरण लेकर हमने देखा!

इस संबंध में तो हिंदी के हमारे अग्रज 'द्विवेदी युग' का साहित्य-परिवार हमसे अच्छा था। उस परिवार में छोटी-छोटी बातों पर बड़ी-बड़ी लड़ाइयां हुईं, तानेजनी हुई पर साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आचार्यत्व की डींग किसी ने नहीं मारी। यह नहीं कि उन्हें शक्ति का परिचय नहीं था, उनमें वह वृत्ति ही नहीं थी। वह परिवार का परिवार निसर्गसिद्ध अंतर्मुखी वृत्ति का था, अपनी अनेक परिमितियों, अनेक त्रुटियों के साथ उसमें यह संस्कृति ओतप्रोत थी। तब से अब तक वह निरंतर क्षीण ही पड़ती गई, यह राह चलता आदमी भी देख सकता है। पूज्यचरण द्विवेदीजी हम लोगों को डांटते हैं, हम लोगों के विरुद्ध लिखते हैं केवल प्रेम के कारण अथवा अधिक से अधिक वयसंभव अपरिवर्तनवादी (Conservative) प्रकृति के कारण, अपने को बड़ा साबित करने के लिए कदापि नहीं। वे सब आस्तिक थे, धर्मभीरु थे, एक सरल अकृत्रिम प्रकृति उस युग की विशेषता थी, जो आज स्मरण आकर एक दर्द पैदा करती है। हमारे इस युग में साहित्य वस्तु का विस्तार अवश्य हुआ है पर विशेषज्ञों की अधिक वृद्धि नहीं हुई। शब्द-भंडार बहुत कम बढ़ा है, शैली का चस्का नहीं लगा। व्याकरण में तो हम पहले से पिछड़ भी गए हैं। परंतु इन बातों की चिंता न कर हमारी नई फिलासफी सिखाती है कि हमारा विकास हद दर्जे को पहुंच गया है और हम विनय को दब्बूपन समझकर अपने को एक सांस में 'हिंदी का साहित्याचार्य' घोषित कर सकते हैं। लोकमान्य तिलक के कर्मयोग की यही शिक्षा हमने पाई है। हमारी इसी नई शिक्षा का परिचय पाकर प्राचीनों ने अब हमसे बातें करना बंद कर दिया है।

द्विवेदी युग के संस्कारों को लेकर हमारे साथ काम करने वाले साहित्यकारों में हिंदी के सुविज्ञ कलाविद् काशी के राय कृष्णदासजी अपनी गद्य-काव्य शैली की धार्मिक रचनाओं से विशेष सम्मानित और सम्माननीय हुए हैं। उनके उपरांत वे आख्यायिकाएं लिखने में प्रवृत्त हुए जिनके संबंध में यहां विचार रहे हैं। 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं' के प्रश्न के उत्तर में हम उनकी ओर संकेत कर सकते हैं अपनी जानकारी से। 'द्विवेदी काल' की यह विशेषता उनमें उनकी संपन्नता के कारण और भी खिली हुई मिलती है। सौम्य प्रकृति, परिमित वाक् शक्ति, जैसी आचार्य द्विवेदीजी की है वैसी ही शिष्य कृष्णदासजी की भी (मैथिलीशरणजी की भी।) पारिवारिक मंडली और आत्मीयता के वातावरण में ये बातें कर सकते हैं। विराट जनसमूह के सामने नहीं आ सकते। इनकी साहित्य-सृष्टि भी इनकी प्रकृति के ही अनुरूप विनीत, आदर्शोन्मुखी अथच चमत्कारशालिनी हुई हैं। चमत्कार घर की बातचीत का-सा आपसी चुटकुलों के ढंग का है। राय कृष्णदासजी की पात्रियां अधिकांश में गृहरमणियां हैं, उन्मादिनी, मुखरा और दार्शनिक दृष्टि से नग्नवसना बहुत कम हैं। ओंठ पर ओंठ रख देने की लीला वे अधिक नहीं कराते, संकोच करते हैं। दो-एक कहानियों में जो आलिंगन, चुंबन आदि अधिक हैं उन्हें नई हवा समझना चाहिए। 'नई हवा' केवल नवीन युग की गति का पर्याय है। साधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तौर पर राय कृष्णदासजी की प्रकृति से इसका सामंजस्य नहीं। हम समझते हैं, इसे वे देखादेखी करने लगे हैं। सौंदर्य की विराट चैतन्य सृष्टि के लिए अथवा प्रकृति पुरुष के सम्मिलन का रूपक दिखाने के लिए 'निराला' जैसे कवि 'नग्न वसन तनु-सा-तनु अभरण' 'सिमट सट सट अंतर भर भर' और 'गाढ़ालिंगन द्वारा एक अनुभव बहता रहे उभय प्राणों में' जैसे अनिंद्य प्रयोग करते हैं पर अधिकांश में अनधिकारी हाथों में पड़कर वे रूपक कार्यवृत्तियों की ही तृप्ति करने लगे हैं, जिससे सामयिक साहित्य अतिकाय हो रहा है जो संपूर्ण समाज के लिए अनिष्ट का हेतु है। दो-एक को छोड़कर *सुधांशु* और *अनाख्या* की सब कहानियां इस विपथगति से वचकर चली हैं। आदर्श के हलके पुट को लिये हुए वे सबकी सब मानवीय हैं। वे अलौकिक और विराट प्रायः कहीं नहीं। राय कृष्णदासजी की प्रकृति के अनुकूल उनके साहित्य की प्राणतंत्री यही है।

(रविवार, 3 जनवरी 1932)

## आतंक युग

आतंक युग आ गया। सिर्फ एक दिन की कार्रवाई देखिए। रात के तीन बजे से ही शुरू कीजिए—महात्मा गांधी पकड़े गए, सरदार वल्लभ भाई पटेल और उनके उत्तराधिकारी बाबू राजेंद्र प्रसाद भी पकड़ लिये गए। महात्माजी और सरदार पटेल नजरबंद करके यरवदा पहुंचाए गए जहां वे बंबई रेगुलेशन नं. 25 के मुताबिक अनिश्चित काल तक रखे जा सकते हैं। बाबू सुभाषचंद्र बोस भी नजरबंदी हालत में नागपुर के किसी अनिश्चित स्थान को ले जाते देखे गए। पं. जवाहरलाल नेहरू को दो वर्ष सख्त कैद और जुर्माना और श्री शेरवानी को छह महीने सख्त कैद और जुर्माना की सजा सुनाई गई। चार और आर्डिनेंस निकाले गए जिनके जरिए प्रेस, कांग्रेस संस्थाएं और जायदाद खतरे में पड़ गई और पिकेटिंग भी गैरकानूनी बतला दी गई। आर्डिनेंस लागू भी ही गए और कांग्रेस वर्किंग कमेटी गैर-कानूनी करार दी गई। नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में जो प्रदर्शन किए जाने वाले थे वे हमारे प्रांत के प्रायः सभी बड़े शहरों में एक साथ 144 लगाकर रोक दिए गए है! जिन्होंने विरोध किया उन पर सख्ती की गई। हमारे इलाहाबाद में पुलिस घुड़सवारों की तैनाती थी जिसने एकत्र भीड़ को हटाने के लिए घोड़े दौड़ाए जिसका नतीजा दो आदमियों की मृत्यु और कितनों का आहत होना है। ध्यान देने की बात यह है कि मृत व्यक्ति कांग्रेस स्वयंसेवक नहीं थे, साधारण नागरिक थे। हमारे शहर के दर्जनों कांग्रेसजन पकड़ लिये गए हैं और बाहर भी बहुत से पकड़े गए। इन सब घटनाओं के साथ भारत सरकार की ओर से एक विज्ञप्ति निकली है जिसमें यह खबर भेजी गई है कि सरकार अपनी पूरी ताकत से सत्याग्रह को दबाएगी। परंतु इस विज्ञप्ति के पहले ही हम सरकार का आशय समझ गए थे। इसकी जरूरत नहीं थी।

ऊपर की एक-एक घटना के संबंध में बहुत-बहुत लिखा जा सकता है, पर यहां उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गुंजाइश नहीं। हम मान लेते हैं कि यह आतंक युग है। जैसाकि लार्ड विलिंग्डन कह चुके हैं, इसके पीछे भारत सरकार की ही नहीं, ब्रिटिश सरकार की भी पूरी शक्ति लगी है। यह काम काफी सोच-विचार कर और दृढ़ निश्चय के साथ किया जा रहा है, यह अनुमान सहयोगी *लीडर* के देहली स्थित संवाददाता के इन शब्दों से लगता है—

> सरकार, कुछ दिन हुए अपना निश्चय कर चुकी है। अंदरूनी रक्षा के लिए पुलिस शक्ति बाकायदा बांट दी गई है। पुलिस की मदद के लिए फौज भी मुकर्रर है। कांग्रेस के चेलैंज का सरकार अपनी संपूर्ण शक्ति से मुकाबला करेगी। कानून की कार्रवाई तेजी के साथ की जाएगी जिससे कोई खतरा न उठाना पड़े। ... सरकार का कार्यक्रम यह है कि जो कोई हुकुम तामील न करे और कांग्रेस के साथ हो उसे जेल भेज दिया जाए। ... उसमें कोई संदेह नहीं कि ... पंद्रह दिन के भीतर कांग्रेस के सभी सदस्यों को मैदान से हटाकर पहला मोर्चा फतह किया जाएगा।

दो दिन बाद सहयोगी *लीडर* के प्रतिनिधि ने फिर तार दिया—'सरकारी नीति का गैर-कांग्रेसी लोगों पर जो प्रभाव पड़ा है उससे वह उद्विग्न हो रही है।'

यदि ऐसी बात है तो यह समझा जा सकता है कि सरकार की ओर से निश्चय किया जा चुका है और उसके सामने सत्याग्रह को दबाने, न दबाने का कोई सवाल हल करने को बाकी नहीं है। उसने एक दिन के भीतर जितनी कार्रवाई की है वह भी इसी अनुमान को पुष्ट करती है।

आर्डिनेंस लार्ड इर्विन के जमाने में भी निकले थे पर वे एक साथ इतने नहीं निकले थे जैसे-जैसे आंदोलन बढ़ रहा था और दबाने की आवश्यकता समझी जाती थी वैसे-वैसे वे निकलते थे। उस बार परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए आर्डिनेंस निकले थे इस बार परिस्थिति के पहले ही उनका मुकाबला किया जा रहा है, ताकि उसका मौका ही न आए। अर्थात् पुराने अनुभवों से फायदा उठाया जा रहा है। पहले सरकार की दमन नीति के विरोध में नर्म से नर्म पत्र लिखकर अपना असंतोष प्रकट करते थे, इस बार विशेष लिखने-पढ़ने का मौका ही नहीं रखा गया—असर की बात तो क्या है? किसी के गुण तुलना की दृष्टि से देखे जा सकते हैं, इसलिए आज हम लार्ड इर्विन और लार्ड विलिंग्डन की नीति में अंतर स्पष्ट देख सकते हैं। वह उतनी आतंकपूर्ण नहीं थी जितनी यह है। उस शासन-चक्र में फिर भी कुछ मनुष्यता थी यह तो बिलकुल यंत्रतुल्य है।

खयाल करने की बात है कि यह वह समय है जब गोलमेज कॉन्फ्रेंस करके सरकार की ओर से यह इरादा प्रकट कर दिया गया है कि वह भारतीयों को प्रांतों में और केंद्र में भी जिम्मेदार शासन देना चाहती है। प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने इस संबंध की घोषणा की है और ब्रिटिश पार्लियामेंट की दोनों सभाओं ने इसकी मंजूरी दे दी है। विलायत से जांच कमेटियों के प्रतिनिधि भारत पहुंचने ही वाले हैं। मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी चकित होकर सुधार (Reformation) और दमन (Repression) की इस दुरंगी दुनिया में भटक जाएगा, पर इतिहास में इसके भी प्रमाण हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महात्मा गांधी के पत्र का वाइसराय महोदय ने जिस तरह से जवाब दिया है उसमें साफ दूरंदेशी की कमी है। यह अनुमान भी अनुचित नहीं है कि पिछले दिनों विलायत में जो अनुदार सरकार अधिकारी हुई है उसी की प्रेरणा से यह सब किया गया है। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास कांग्रेस के सदस्य नहीं हैं, वे भारत के श्रेष्ठ व्यवसायियों में से एक हैं। उन्होंने वाइसराय की इस अदूरदर्शी नीति की निंदा की है। लिबरल एसोसिएशन की ओर से एक डेपूटेशन वाइसराय से मिलने भी वाला है। पर यदि भारत सरकार ब्रिटिश सरकार के इशारे पर काम कर रही है तो इनका कोई आशाजनक परिणाम नहीं हो सकता। ताजा खबर है कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया लीग के अध्यक्ष श्री वर्टाम रसल ने प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड को तार देकर महात्मा गांधी की गिरफ्तारी से खतरा बताया है और उनकी रिहाई की प्रार्थना की है। पर भूतपूर्व मजदूर दल के प्रधानमंत्री इन दिनों के अनुदार दली सरकार में कितना व्यक्तिगत प्रभाव रखते हैं यह अनुमान हम भारत में होने वाली पिछली घटनाओं से लगा सकते हैं। यदि रिहाई ही होनी होती तो गिरफ्तारी ही क्यों होती और लार्ड विलिंग्डन यह घोषणा ही क्यों करते कि ब्रिटिश सरकार की शक्ति भी उनके साथ है?

यदि लार्ड विलिंग्डन महोदय और उनकी सरकार का इरादा पूरा हुआ और कांग्रेस के नेता जिस तेजी से पकड़े जा रहे हैं उसके कारण आंदोलन दब भी गया तब आगे क्या होगा? क्या शांति-अमन-चैन का युग आ जाएगा? सबसे बड़ी बात दरियाफ्त करने की यह है कि कांग्रेस आंदोलन को दबाकर सरकार राष्ट्र की स्वराज्य की मांग के साथ कैसा बर्ताव करेगी? अभी तक वाइसराय महोदय और उनकी सरकार को इस बात में ऐतराज है कि महात्मा गांधी सरकार की नीति में दस्तंदाजी करना चाहते हैं और कांग्रेस अपना विशेषाधिकार दिखाना चाहती है, पर आगे चलकर जब लार्ड विलिंग्डन के इरादे के मुताबिक कांग्रेस की शक्ति ही नहीं रह जाएगी तब भारत के स्वराज्य का मसला कोई मसला समझा भी जाएगा या नहीं इसमें भी संदेह है! ऐसे मौके पर हमें मिस्टर चर्चिल और अनुदार दल के उनके साथियों के उद्गार याद आ रहे हैं जो कड़ाई से भारत का शासन करते रहने का इरादा प्रकट करते रहे हैं। इस संबंध में कहना आवश्यक है कि सरकार की तरफ से एक विज्ञप्ति निकली है जिसमें आश्वासन दिलाया गया है कि सुधार का काम जल्दी से आगे चलाया जाएगा और कांग्रेस की गैर-कानूनी कार्रवाई से इसमें विलंब न होगा। और इस बड़े कार्य में सरकार ने लोगों की मदद के लिए अपील भी की है।

# राय कृष्णदास का कथासाहित्य—2
## *सुधांशु* और *अनाख्या*
## (शैली के क्षेत्र में रायकृष्णदास के प्रयास)

हिंदी की भाषाशैली पर दो-तीन किताबें और कई निबंध निकले हैं, पर वे गहरे पानी में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पैठते। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की, हमारे मित्र श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा, एम.ए. की पुस्तक कुछ अच्छी है पर नियमित और वैज्ञानिक विवेचन उसमें बिलकुल नहीं। उसके आदि में आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने जो 'दो शब्द' लिखा है वह भी कहीं व्याकरण की अशुद्धियां दिखाकर, कहीं भावात्मक, विचारात्मक शैलियों का प्रसंग खड़ाकर विषय को दुरूह बनाने में ही सहायक हुआ है। यों तो प्रत्येक कला का कृतिकार पक्ष (Subjective side) उसके कृतिपक्ष (Objective side) से अभिन्न रूप से संपर्कित है यद्यपि शैली एक ऐसी कला (Conscious art) है कि हम चाहें तो कृति में संपूर्ण रूप से कृतिकार को समन्वित कर सकते हैं। कृतिकार की असंख्य अज्ञेय भावनाओं और वृत्तियों की झलक और उसके सभी संस्कार-संक्षेप में उसके संपूर्ण मनोवैज्ञानिक अस्तित्व को हम शैली में प्रतिबिंबित देख सकते हैं। शैली को भावों का परिच्छेद (पोशाक) कहा गया है। कोई उसे इससे अधिक महत्व भी देते हैं, पर हम शैली में—भावों से अलग शैली में—कलाकार की बुद्धि की, रुचि की और सौंदर्य उद्भावना की शक्ति की परख करते हैं। संस्कृत में जो ओज, प्रसाद आदि गुण हैं, वे कृतिकार के हैं, उन्हीं गुणों से विशिष्ट शैलियों को गौड़ी, पांचाली आदि विशेषण दिए गए हैं। यहां भी शैली में शैलीकार निहित है। इसी पद्धति का अधिक विस्तार कर शैली का वैज्ञानिक विवेचन-विश्लेषण किया जाना चाहिए। अब तक तो हिंदी में कहीं उर्दू को लेकर कहीं व्याकरण को लेकर और कहीं थोड़े से असाधारण प्रयोगों को लेकर शैली का निर्णय कर दिया जाता है। 'हिंदुस्तानी एकेडमी' ने पिछले अधिवेशन में हिंदी-उर्दू को एकाकार करने के विषय पर जो व्याख्यान कराए उनमें भाषाशास्त्र, छंदशास्त्र आदि का कहीं नाम भी नहीं सुन पड़ा और न मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शैली की अनेकरूपता की कल्पना करके देखी गई। 'एकेडमी' पहले ही कोई सिद्धांत बना ले, बाद को उसके पीछे-पीछे चलने लगे, यह तो 'एकेडमी' नाम का ही अपमान हुआ। यह केवल रूढ़ि या हठवाद एकेडमी को किसी तरह शोभन नहीं है—यदि यह विशेषज्ञों की संस्था बनकर भाषा की उन्नति चाहती है। भाषा की उन्नति में शैलियों का विस्तार, उसके विविध प्रकार आदि तो स्वतः व्यंजित हैं। एकेडमी का लक्ष्य होना चाहिए उन शैलियों का परिष्कार, उनका नियमन, आगामी प्रगति का दिशानिर्देश, पर अब तक यह सब कुछ नहीं हुआ। अंग्रेजी के आदि कवि चॉसर के बाद कविता का विकास बहुत वर्षों तक दबा रहा। इसका प्रमुख कारण भाषा का स्वरूप परिवर्तन था, जिसके कारण छंद की रचना कठिन हो गई थी। यह सब भाषाशास्त्रियों के समझने की बातें हैं पर एकेडमी का ध्यान इस ओर नहीं है। एकेडमी जिसकी अपनी धारणा बन चुकी कि हिंदी-उर्दू का अंतर उचित से अधिक भयानक रीति से बढ़ा हुआ है, यह धारणा ही गलत नहीं तो बहुत अधिक संदेहास्पद है। भाषाशास्त्र के नियमों और विविध शैलियों की आवश्यकताओं और स्वरूपों को देखते हुए हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हिंदी और उर्दू का वर्तमान विभेद भाषा की निसर्गसिद्ध प्रगति के अनुसार है, उसमें जातीय विद्वेष का प्रभाव नहीं के बराबर है। एकेडमी यदि एक बार हिंदी के अखबारों को देखने की तकलीफ करे तो वह समझेगी कि हिंदी-उर्दू का भेद उससे बहुत कम है जिसकी उसने कल्पना कर रखी है और जिस कल्पना से वह सशंक हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हिंदी-उर्दू का अंतर उससे तो बहुत ही कम है जितना आए दिन हिंदू-मुसलमानों में हो रहा है। इतने पर भी यदि एकेडमी की जिद हो कि हिंदी कविता में 'ताजिया' और 'अल्लाह' वगैरह का इस्तेमाल हो तो हम दरियाफ्त करेंगे कि इनके 'फिकरे' बताइए।

कहने का मतलब है कि शैलियों के विस्तार में अपनी रुचि और अपने संस्कार के साथ-साथ भाषा की रुचि भी काम करती है। पहले से अधिक दूसरे का महत्व है। हमको अनेक अवसरों पर अपनी इच्छा को दबाकर भाषा के साथ समझौता करना पड़ता है। कहीं-कहीं हमारी सौंदर्य कामना कुंठित होकर अरुचिर शब्दपुष्पों का चयन करती है। कहीं तो किसी शब्द का एक ही अक्षर हमें निराश कर देता है पर विवश होकर हम उसे अपनाते हैं। कहीं व्याकरण की बाधा लगती है जैसे पं. सुमित्रानंदन पंतजी की 'प्रभात' में जिसकी स्त्री मूर्ति पर वे मोहित हैं। मूर्ति के संबंध में हम तर्क नहीं कर सकते पर व्याकरण को देखते हुए इसे हम भाषा के प्रति पंतजी की बेदर्दी कहेंगे। यदि हम यह समझते कि भाषा केवल चित्रकाव्य नहीं स्वयं एक सजीव और गतिशील रमणी है तो हमारा बहुत सा स्वेच्छाचार आज ही बंद हो जाए।

भाषा को हम मानसरोवर समझते हैं। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में यह आपूरित रहता और रिक्त भी होता है। इसकी आकृति सदैव परिवर्तित होती तथापि इसमें अक्षय जलराशि रहती है। भिन्न-भिन्न शैलियों की धाराएं, इससे भिन्न-भिन्न दिशाओं में फूट निकलती हैं, सिंधु और ब्रह्मपुत्र की भांति। कभी इन्हें निकलने में भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता है। जो जिस दिशा में जाती है वहां की जलवायु और स्थल विशेषता के अनुकूल। कहीं-कहीं ऋजु-कुटिल गति, कहीं विस्तार और अन्यत्र प्रपात भी प्राप्त होते हैं। कहीं की तरंग भंगिमा रमणीय, कहीं का तोड़ आतंककारी और भयंकर। इन्हीं को ओज, मधुर, प्रसाद आदि नाम दिए जाते हैं। कहीं कलकल ध्वनि और कहीं हहर-हहर का शब्द करती है। आप चाहें तो एक-एक बिंदु की कल्पना कर सकते हैं और उसे मानसरोवर से प्रतिक्षण 'अक्षर' रूप में निकलते देख सकते हैं।

आश्चर्य और विस्मय की बात यह है कि भाषा मानसरोवर जंगम है, अर्थात् गतिशील है। परंतु इसकी गति चीन की नदियों की भांति सहसा कोई अनिष्ट नहीं करती। आपातकाल नहीं खड़ा होता। तथापि गति का प्रभाव शैलीधाराओं पर पड़ता ही है। कभी-कभी तो व्यापक रीति से पड़ता है जैसे लोग कहते हैं आधुनिक मराठी में कोमलता नहीं। बांग्ला में ताकत नहीं। कभी रेत और रोड़े रह जाते हैं, धारा बदल जाती है। नए तट पर नए नगर बसते हैं। कभी-कभी कोई धारा ऊपर से सूखकर उस प्रदेश में अंतःसलिला बनकर रहती है।

हम लोग भाषा को देवी रूप में प्रतिष्ठा करते हैं। सरस्वती उसका नाम है। भिन्न-भिन्न शैलियों का भी अच्छा आदर है। एक का नाम है पिंगल देव। कल्पना आदि मनोवृत्तियों के कारण उत्पन्न हुई उपमा आदि (अलंकार) भी ओपम्य ऋषि की संतान अतः माननीय हैं। पर हम लोगों ने मूल को कभी नहीं छोड़ा। भाषा की सरस्वती से अधिक 'शब्द' की मान्यता है जिसे 'ब्रह्म' की उपाधि मिली है। इससे भी आगे बढ़कर हमने तत्व को ग्रहण किया और अक्षर तक पहुंचे। याद रखिए यह 'अक्षर' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अंग्रेजी के आलोचकों ने कहीं इस दृष्टि से विचार किया है या नहीं, हम नहीं कह सकेंगे। वे लोग अच्छे मुहावरे, सलीक भाषा खूब पसंद करते हैं। अंग्रेज लेखक लैंब के समय में उक्तियों की बड़ी परख होती थी। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता रस्किन ने मिल्टन के *लिसिडस* पर टिप्पणी करते हुए उसके शब्द प्रयोग की बड़ी महिमा गाई है। महिमा अधिक सार्थकता की है। कुछ रूप सौंदर्य की भी है। हिंदी में अभी भाषा ही शैली समझी जाती है। आप हिंदी लिखते हैं या उर्दू या हिंदी-उर्दू या उर्दू-हिंदी। इस चक्कर से अभी आगे बढ़ने की नौबत कम आई है। कहीं किसी के मुहावरेबाजी की भी तारीफ रहती है। अभी हम लोग शुद्ध लिखना सीख रहे हैं, सुंदर लिखना आगे देखा जाएगा। शब्दों की सार्थकता और चित्रोपमता तक अभी हमारी पहुंच नहीं है। एक उदाहरण, सुनते हैं, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने *काकली* पुस्तक के लेखक स्वर्गीय श्री कौशलेंद्र राठौर से 'काकली' का अर्थ पूछा तो कविजी ने कुछ का कुछ बताया।

वे अच्छे कवि थे, उनकी यह दशा थी। हमारे आधुनिक अच्छे से अच्छे कवियों ने भी 'काकली' शब्द को कोयल के साथ मिला रखा है। उन्हें *अमरकोष* के पन्ने उलटने चाहिए।

राय कृष्णदास हिंदी के उत्कृष्ट कलाविद होने के कारण शैली के क्षेत्र में सजग कलाकार के रूप में दीख पड़े हैं। *साधना* आदि की प्रारंभिक रचनाओं में उन्होंने भाषा के अनुरूप वाक्यों की छोटी-बड़ी लड़ी अच्छी खड़ी की हैं और शब्द चयन में भी सफल हुए हैं। जैसे आदर्शवादी रचना है वैसे ही शब्द भी। *संलाप* में जब इन्हें बातचीत का चमत्कार दिखाने की जरूरत पड़ी तब वे स्वभावतः 'यथार्थ' की ओर बढ़े। *शैवाल* में उन्होंने बच्चों की भाषा यथावत ले ली है। पर इतना यथार्थ वे संभाल नहीं सके हैं क्योंकि उनकी प्रकृति 'आदर्श' की ओर है। इसलिए *शैवाल* का बच्चा कहीं-कहीं तुतली भाषा में वेदांत छांटने लगता है। *अनाख्या* में और, *अनाख्या* से अधिक *सुधांशु* में भाषा खूब चुस्त और दुरुस्त हुई है। राय कृष्णदासजी वैयाकरणों का अर्द्ध मात्रालाघव वाला भाव समझते हैं और उसको निभाते भी हैं। भावनाओं की लघु-दीर्घ अथवा मंद-क्षिप्र गति के अनुसार वाक्यों का गठन और शब्दों का चयन अतीव प्रशंसनीय है। 'शब्दचयन' में सार्थकता से अधिक कृष्णदासजी सौंदर्य देखते हैं। सचमुच वे शब्दशास्त्रों से अधिक कलाविद है। कहीं-कहीं 'हो' आदि प्रयोग उनके यथार्थवादी 'नने' के फलस्वरूप हैं क्योंकि नाद सौंदर्य तो उसमें जैसा ही तैसा है। 'अक्षर' सौंदर्य की झांकी भी कृष्णदासजी ने ली है या नहीं उनकी अब तक की रचनाओं से हम निश्चय के साथ नहीं कह सकेंगे। 'निराला' और पंतजी की रचनाओं में 'अक्षरों' की अच्छी परख मिलती है। रुचिभेद के कारण भी हमारी धारणा ऐसी हो सकती है पर इसका निर्णय बिना राय कृष्णदासजी से बातें किए नहीं हो सकेगा। यह तो निश्चय है कि आधुनिक हिंदी साहित्य में चैतन्य होकर शैली का न्यास करने वाले तीन-चार व्यक्तियों में राय कृष्णदास एक हैं।

(गुरुवार, 7 जनवरी 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# राय कृष्णदास का कथासाहित्य–3
# *सुधांशु* और *अनाख्या*
# (आदर्श, कल्पना और संकेत की कहानियां)

इन कहानियों के लेखक इनके प्रकाशक भी हैं, इसलिए *सुधांशु* के प्रकाशकीय वक्तव्य से लेखक की प्रयास दिशा का पता लगेगा। वह उद्धरण के योग्य है :

> *सुधांशु* की अधिकांश कहानियों की एक नई परिपाटी है। ये न घटना मूलक हैं, न भावमूलक। ये उन गूढ़ एवं रहस्यमय वृत्तियों को थाहना चाहती हैं जिन पर मानवता का हृदय और मस्तिष्क एवं विकास, कला और सहृदयता, समाज और राष्ट्र—यों कहिए कि वे सभी विशेषताएं जिनके कारण मनुष्य मनुष्य है—अवलंबित है। अतएव इन्हें मनोवृत्तिमूलक कह सकते हैं। जहां किसी वृत्ति का पूर्ण विकास अभिव्यक्त हो जाता है वहां कथावस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती, ऐसा रस प्रवाहित हो उठता है।

यह व्याख्या इतनी विस्तृत है कि लोग इसका ओर-छोर नहीं पा सकेंगे। मनोवृत्ति का कोई दृश्यमान अस्तित्व न होने के कारण इसको यथार्थवादी अपनी ओर खींचते हैं और आदर्शवादी अपनी ओर। अंग्रेजी मनोविज्ञानशास्त्र को ब्रह्मवाक्य समझकर मानने को हम लोग तैयार नहीं हैं, हमारे संस्कारों ने कुछ ऐसी मनोवृत्ति बना दी है। जो हमसे अधिक स्थिर प्रकृति के हैं और संस्कृत शास्त्रों के अभ्यासी हैं वे तो मनोवृत्तियों की ऐसी व्याख्या करते हैं कि वे उनके सदाचार-प्रचार के धार्मिक कृ᠁नक के लिए उपयोगी बन जाती है। वे सज्जन सत्य, अस्तेय अपरिग्रह आदि की गिनती मनावृत्तियों में करते हैं। यथार्थ क्या है भगवान जाने। परंतु उन्हें ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता, किसी को रोकने का अधिकार नहीं है।

स्वयं राय कृष्णदास की *सुधांशु* की कहानियों में जिन मौलिक मनोवृत्तियों का निदर्शन है वे वैसी हैं जैसी अंग्रेजी में आदर्शोन्मुखी कहलाएंगी। हम बिना विवाद के अंग्रेजी में सामान्यतः प्रयुक्त होने वाले आदर्श और यथार्थ के भेद को मानकर आगे बढ़ते हैं क्योंकि शब्दों पर अड़ने से कोई मतलब नहीं। कृष्णदासजी की कहानियों का रुझान आदर्श की ओर है। इस विचार से 'क्रांति का केतु' यही एक कहानी रियलिस्टिक कही जा सकेगी। इसमें समूह मनोविज्ञान के यथार्थ चित्र हैं और रूढ़ि में परिणत होने वाली धारणाओं का रहस्य बतलाया गया है। समष्टि में व्याप्त क्षति की आस्था स्वीकार की गई है, तभी तो धूमकेतु देखकर समूह के सशस्त्र विद्रोह करने का समर्थन किया गया है। राय कृष्णदास की इस प्रकार की आख्यायिकाओं में यही सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त इस शैली की जो और कहानियां *अनाख्या* और *सुधांशु* में हैं वे औसत दरजे की हैं।

पर हम कह चुके हैं कि उनकी अधिकांश कहानियों का झुकाव यथार्थ की ओर नहीं है। 'गल्प लेखक' *अनाख्या* की दो-तीन श्रेष्ठ कहानियों में और राय कृष्णदास की मध्यश्रेणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की एक अच्छी कहानी है। संकलित भावना के और तदनुरूप कथानक की चुस्ती की दृष्टि से इसका महत्व अधिक है। इसी से शुरू कीजिए और *सुधांशु* की कहानियों में आइए (स्मरण रखने की बात है कि *सुधांशु, अनाख्या* की अपेक्षा उच्चकोटि की कथापुस्तक है)। 'प्रसन्नता की प्राप्ति', 'सुनार का स्वप्न', 'चित्रकार का चित्त', 'कवि और कलावंत', 'कला और कृत्रिमता' सभी कहानियां स्पष्टतः आदर्श में अवसित तो होती ही है। आदर्श ही उनका केंद्र-बिंदु भी है। कथा भिन्न होते हुए भी उनकी टेक एक हीं है। यह टेक देखिए—

> 'उस प्रसन्नता की मुद्रा में उसे कृत्रिमता जान पड़ने लगी।' (प्रसन्नता की प्राप्ति)
>
> 'सच है कारीगर हृदय की प्रेरणा ही से ऐसा काम कर सकता है, राजा की प्रेरणा से नहीं।' (सुनार का स्वप्न)
>
> 'कला का जगत तो कृत्रिमता है।' (चित्रकार का चित्र)
>
> 'जब तक उसे प्रत्यक्ष न कर दूंगा, जब तक कोई समझेगा ही क्या? 'बस एक कलम का तो काम है।' (कवि और कलावंत)
>
> 'यह कल्पना स्वांतःसुखाय उपजी है और वह हुकुम पाई उपजाई गई है। कोई फरमाइश मुझे भी दें तो मेरी कलई आप ही खुल जाए।' (कला और कृत्रिमता)

अनाख्या के 'गल्प लेखक' के व्यंग्य की तो आदि से अंत तक यही टेक है। और इस टेक के मूल में जो आदर्शभावना है वह भी कहीं 'छुल्लक' के रूप में प्रकट अन्यत्र लक्षित और व्यंजित होकर कला की जिस मूलवृत्ति को प्रकट करती है वह पूर्णतः दार्शनिक और शास्त्रीय है जिसे गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत संक्षेप में कह दिया है :

*सगुन छीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता ॥*

शुद्ध आनंद से रची हुई यह सृष्टि जैसी शोभन है वैसी ही कलाकार की कला वस्तु भी होनी चाहिए। कलाकार में एक भी जड़ बिंदु न हो। वह ऐषणा रहित रचना करे इत्यादि-इत्यादि। आदर्श की उपलब्धि तो होती नहीं। इसलिए उपयुक्त सभी कहानियों में निर्दोष कृति कभी पूरी नहीं हुई। एक में 'छुल्लक' की हंसीं में ही 'प्रसन्नता की प्राप्ति' हो गई, दूसरी में सुनार जंगल में भाग गया, ऐसे ही अन्यत्र भी।

इस आदर्शवाद के संबंध में बहुत कुछ कहा-सुना जा सकता है। निश्चय ही राय कृष्णदास इसके द्वारा संन्यास धर्म का उपदेश नहीं देते। जो सुनार राजकुमार का आभूषण बनाना छोड़कर बनवास ले लेता है, उसके इस कार्य का दार्शनिक रीति से कोई समर्थन नहीं है। वह एक माया छोड़कर दूसरी माया में लिप्त हुआ अतः मुक्ति का अधिकारी नहीं। उसे सिर्फ अपनी खीझ मिटानी है, वह कृत्रिम जीवन से ऊब उठा है। वह पुराने कायदे नहीं मानता, नए बनाना चाहता है। ये नए भी कभी पुराने हो जाएंगे यह तय है।

कला की दृष्टि से भी इस प्रकार के आदर्श तात्विक नहीं कहे जा सकते। संसार की बड़ी-बड़ी कला सृष्टियां युगों में बनी हैं। सैकड़ों-हजारों की सम्मिलित रचना है और अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में फरमाइशी हैं। ताजमहल और सेंटपीटर का गिरजा ऐसी ही कृतियां हैं तथापि संसार में श्रेष्ठ समझी जाती हैं। महात्मा तुलसीदास श्रेष्ठ भगवद भक्त और आदर्श निर्माता थे। राय कृष्णदासजी की ही भांति वे भी कला की कृत्रिमता प्रकट करते रहे हैं, जैसे चित्रकूट में भरत मिलाप के अवसर पर :

*मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी ॥*
*परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥*
*कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥*
*कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ॥*
*अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥*
*सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥*

तथापि वे *रामचरितमानस* लिखकर कृत्रिम कला को भी अमर बना गए।

राय कृष्णदास के आदर्शवाद के दो समाधान हो सकते हैं। एक तो सामयिक साहित्य और कलाओं में बढ़ती हुई कृत्रिमता का संकेत करना और सचेत होने की सूचना देना और दूसरा अलंकृत और कृत्रिम वातावरण से क्षुब्ध होकर आदर्श की शरण लेना और उसमें सांत्वना पाना। इधर कुछ दिनों से स्वदेशी आंदोलन और राष्ट्रीय जाग्रति के साथ-साथ सादगी की एक छोटी-मोटी फिलासफी ही बन गई है। राय कृष्णदासजी भी उसे ही पुष्ट करते हैं। इस प्रकार उनका आदर्शवाद सामयिक परिस्थितियों से ही उत्पन्न, सामयिक विकारों की ही ओषधि है। सामयिक ही सुयोग पाकर स्थायी बन जाता है। इसी आदर्शवाद का अधिक गंभीर अथवा अधिक जिज्ञासु रूप रहस्यवाद है। अंग्रेज कवि कीट्स की प्रसिद्ध कविता (Ode on a Grecian Urn) की दो पंक्तियां इस प्रकार हैं :

Heard melodies are sweet,
but those unheard
Are sweeter; therefore
ye soft pipes, play on;

राय कृष्णदासजी की आदर्शोन्मुख कहानियों की मूलमनोवृत्ति कीट्स की इन पंक्तियों की-सी ही है। मलने और निखरने में जो कसर हो और विकास में जो कमी हो।

(रविवार, 10 जनवरी 1932)

# संपूर्ण परिस्थिति

संपूर्ण परिस्थिति का खाका खींचना कठिन काम है, उसका सारांश बताना भी आसान नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है, फिर भी चेष्टा करनी चाहिए। आज हमारे देश में क्या हो रहा है इस सवाल के साथ दो और सवाल लगे हुए हैं—क्या हो चुका था और क्या हो रहा था। भारत की राष्ट्रीय शक्ति का जागरण हो चुका था और हो चुकी थी पिछले वर्ष उसकी परीक्षा। भारत के स्वराज्य की मांग जोरदार शब्दों में पेश हो चुकी थी और देश के सभी दलों के विचारशील नेताओं की जिम्मेदार शासन मंजूर करने की विज्ञप्ति भी प्रकाशित हो चुकी थी। ब्रिटेन के पक्ष में आर्थिक प्रश्न बहुत अधिक जटिल हो चुका था। संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यापारी राष्ट्र का पद तो वह पहले से ही खोता जा रहा था। प्रसंग ऐसा आ गया कि उसकी आर्थिक साख एक दर्जे तक घट गई और अमेरिका और फ्रांस जैसे मित्रराष्ट्रों ने भी उसका विश्वास न कर अपना रुपया खींचना शुरू कर दिया। ब्रिटेन में अर्थ संकट से खलबली मच गई और उसे नोटों के बदले सोना देना बंद करना पड़ा। इस समय के पहले ही लंकाशायर जैसे तिजारती शहरों की सैकड़ों मिलों में ताले लग चुके थे और कई लाख मजदूर बेकार होकर राष्ट्र के भार बन गए थे। ब्रिटेन तो हमारे एक प्रांत के बराबर छोटा सा टापू है जो अब तक अपने विस्तृत साम्राज्य और विशाल व्यापार के बल पर संसार का श्रेष्ठ शक्तिशाली राष्ट्र बना रहा। परंतु आधुनिक समय में अमेरिका का संयुक्त राज्य व्यापार की प्रतियोगिता में ब्रिटेन से टक्कर लेने लगा है जिससे उसे बड़ा धक्का पहुंचा है। संसार का सबसे बड़ा नगर लंदन अब तक ब्रिटेन में था। अब अमेरिका वाले अपने न्यूयार्क को उससे भी बड़ा बताने लगे हैं। संसार का महान कोषग्रंथ *इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका* जो ब्रिटेन के गौरव की वस्तु था उसका नवीन संस्करण अमेरिका से छपा है और इस संस्करण में साहित्य, विज्ञान, सभ्यता और संस्कृति के विषयों में अमेरिका की गहरी छाप है। ब्रिटेन स्पष्ट रीति से अपने ऊंचे पद से खिसक गया है। पदस्खलित होने पर भी पद मर्यादा बनाए रखने का प्रयास मनुष्यों की भांति राष्ट्र भी करते हैं और ब्रिटेन भी अपनी विद्याबुद्धि के अनुसार वही प्रयास कर रहा है। व्यापार की दिशा में स्थिति सुधार के उद्देश्य से ब्रिटिश जनता ने अनुदार दल को अत्यधिक शक्ति देकर शासन की बागडोर सौंपी है। यह दल साम्राज्यवादी है और देश में व्यापारी संरक्षण की दीवाल खड़ी करने के पक्ष में रहा है।

राजनीतिक ही नहीं, आर्थिक विषयों में भी अनुदार दल कट्टर पंथ पर चलने वाला है। भारत की केंद्रीय व्यवस्था परिषद के राष्ट्रीय सदस्य एकमत से रुपए की वर्तमान विनिमय दर का विरोध करते आए हैं। आज से नहीं वर्षों से। भारत के प्रायः सभी व्यापारी समाज एक स्वर से इसे हानिकर बता चुके हैं, और कांग्रेस ही नहीं, नर्म से नर्म राष्ट्रीय नेता भी इसके विरुद्ध आंदोलन करते आए हैं, परंतु अनुदार दल की ब्रिटिश सरकार इसमें सुधार करने को किसी प्रकार तैयार नहीं है। राजनीति में अनुदार दल का असली रूप लार्ड इर्विन के शासनकाल में दीख पड़ा था जब मिस्टर चर्चिल वगैरह की कड़े शासन की जोरदार आवाज और लार्ड इर्विन की समझौता नीति की कड़ी आलोचना ब्रिटिश पार्लियामेंट की एक आम बहस हो गई थी। इस समय वही अनुदार दल बेशुमार बहुमत से पार्लियामेंट पर कब्जा कर चुका है। भारत और ब्रिटेन के बीच होने वाले गोलमेज के संघपरिषद के साथ अनुदार दल का खैरियत का व्यवहार रहा। इसका कारण यह भी हो सकता है कि गोजमेज में पार्लियामेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का खैरियत का व्यवहार रहा। इसका कारण यह भी हो सकता है कि गोजमेज में पार्लियामेंट के तीनों दलों के साथ अनुदार दल भी शुरू से ही शरीक था। फिर भी संरक्षणों पर अटल रहकर और तदनुसार ही संघयोजना की स्कीम बनवाकर अनुदार दल ने गोलमेज की कार्रवाई में अपनी छाप अच्छी तरह लगा रखी है। जब से अनुदार दल अधिकारी हुआ तब से भारत की राजनीति में प्रतिक्रिया स्पष्ट रीति से दीख पड़ी है। भारत की व्यवस्था-सभा के बहुमत के विरुद्ध अतिरिक्त कर लगाना तथा उसके परिणाम की परवाह न करना साधारण अवस्था में संभव नहीं था। भिन्न-भिन्न प्रांतों के लिए जो आर्डिनेंस बनाए गए और पिछले दिनों देश भर के लिए जो महाकार आर्डिनेंस निकाले गए वे लार्ड इर्विन के कड़े कानूनों को भी नर्म बना देते हैं। इसके साथ ही जब यह खयाल किया जाता है कि ब्रिटेन भारत को शीघ्र से शीघ्र स्वराज्य देने की विज्ञप्ति कर चुका है तब तो राह चलता आदमी भी आर्डिनेंसों की तह में अनुदार दल का हाथ देख सकता है।

भारत में नर्म नेता यह कह चुके हैं कि वाइसराय लार्ड विलिंग्डन ने महात्मा गांधी के प्रस्ताव को अस्वीकार कर उनसे मिलना नामंजूर कर दिया, यह अच्छा नहीं किया। हिंदुस्तान का एक भी विचारशील व्यक्ति ईमानदारी के साथ नहीं कह सकता कि महात्मा गांधी संधि के पक्ष में नहीं थे। सर पुरुषोत्तमदास जैसे गैरकांग्रेसी नेताओं ने भी इस मामले में वाइसराय के रुख को अदूरदर्शी और अशिष्ट तक बतलाया है। यदि महात्मा गांधी वाइसराय से मिलकर देश की परिस्थिति पर विचार करते तो यह किस तरह से संभव था कि वे वाइसराय की शर्त मानकर आर्डिनेंसों पर जबान ही न खोलते। यह स्पष्ट है कि अनुदार दल की सरकार पहले से ही शक्ति की आजमाइश करने का इरादा कर चुकी थी और वाइसराय महोदय ने गांधीजी की जो जवाब दिया वह उसी इरादे के मुताबिक था। कांग्रेस की गैरकानूनी कार्रवाई को दबाने के लिए ही वाइसराय ने महात्मा गांधी से आर्डिनेंसों पर बातचीत न करने की शर्त लगाई, यह कहना किसी को शोभा नहीं देता। महात्माजी ने खुले शब्दों में यह कह दिया था कि वे वाइसराय के साथ संपूर्ण परिस्थिति पर खुले दिल से विचार करेंगे, सरकारों के साथ देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में घूमकर असली हालत देखेंगे और यदि यह सब करने के बाद यह समझेंगे कि कांग्रेस की गलती है तो उसे समझाकर ठीक रास्ते पर लाएंगे। इतने उचित और हितकर मार्ग का निर्देश करने वाले महात्मा गांधी की प्रार्थना नहीं मानी गई यह ब्रिटिश अनुदार दल की कट्टर नीति का सीधा नतीजा है।

इस कार्रवाई से देश की शांति की रही-सही आशा को भी मटियामेट करने के बाद अब सरकार सुधार और प्रहार की दुहरी कार्रवाई करने का इरादा जाहिर करती है। वह अपने इस कार्य में भारत के भिन्न-भिन्न दलों का सहयोग भी चाहती है। उसकी ओर से देश के व्यापारी दलों से यह अपील की गई है कि वे सरकार का साथ दें और कांग्रेस के बहिष्कार आंदोलन में शरीक न हों, सरकार उनकी सब प्रकार से सहायता करने को तैयार भी है।

जैसाकि ऊपर कह आए हैं अपनी गिरती हुई व्यापारी दशा को उबार लेने के लिए अनुदार सरकार हर तरह के यत्न कर रही है। वह अंदरूनी रोजगार के लिए टेरिफ की दीवाल खड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करती है। किसी तरह की पिकेटिंग को किसी तरह सहन नहीं कर सकती और हड़ताल करना-कराना भी अनेक स्थानों में जुर्म बताती है। पिछले आंदोलन में भी ऐसे व्यापारियों की कमी नहीं थी जिन्होंने विलायती वस्तुओं का व्यापार बंद नहीं किया था। आंदोलन के समाप्त होने पर देहली में एक मजबूत व्यापारी संघ बना था जो विलायती वस्तु विषय का काम चलाने वाला था। परंतु सरकार को यह समझना चाहिए कि बेचना व्यापारियों के हाथ में है। खरीदना तो उनके हाथ में नहीं है। खरीदना जनता के हाथ में है जिनपर आए दिन आर्डिनेंस जारी किए गए हैं। एक ओर आर्डिनेंस और दूसरी ओर रोजगार को कायम रखना इन दोनों छोरों को मिलाने की कोशिश व्यर्थ है। यह आज नहीं तो जल्द ही सरकार की समझ में आ जाएगा।

ब्रिटेन अपने व्यापार की उन्नति करना चाहता है। साथ ही वह साम्राज्य को भी कायम रखना चाहता है। सच बात यह है कि भारत स्वराज्य चाहता है और जोरदार शब्दों में उसकी सूचना भी दे चुका है। कांग्रेस स्वराज्य चाहती है। अखिल भारतीय लिबरल फैडरेशन के अध्यक्ष श्री चिंतामणि भी बंबई के पिछले अधिवेशन में यह घोषणा कर चुके हैं कि वे जनता के लिए जनता के द्वारा जनता का राज्य चाहते हैं। श्री चिंतामणि ने इस मांग को शीघ्र से शीघ्र पूरा करने का आग्रह किया है और यह सम्मति दी है कि 'संघ शासन' में देशी नरेशों के शामिल होने में यदि कुछ भी देर हो तो पहले ब्रिटिश भारत को स्वराज्य दे दिया जाए, उसके बाद देशी राज्यों की व्यवस्था की जाए। अभी उस दिन श्री चिंतामणि और रंगाचारियर में से एक सज्जन ने (कौन है, पता नहीं) वाइसराय से कह दिया है कि वे गोलमेज की कमेटियों में सहयोग देने को तैयार नहीं हैं। कहने का मतलब यह है कि अब सरकार के लिए यह समझने का समय आ गया है कि भारत शीघ्र स्वराज्य चाहता है और इस चाहने में केवल कांग्रेस का 'गैरकानूनी' दल ही नहीं है। राजनीतिक चेतना प्राप्त भारत का प्रत्येक व्यक्ति है। अनुदार दल की सरकार को यह समझने का भ्रम न करना चाहिए कि भारत स्वराज्य नहीं चाहता। अधिक से अधिक उस चाहने की तीव्रता भिन्न-भिन्न और तदनुसार कार्य की प्रणाली भिन्न-भिन्न हो सकती है। पर अधिकारियों को इस बात में संदेह न करना चाहिए कि 'कानून' और 'गैरकानून' का सरकारी विभेद कोई तात्विक नहीं, केवल मात्रा का भेद है। इसलिए 'कानून' की रक्षा में अपनी संपूर्ण शक्ति और साहस से वास्तविक कानून की प्रतिष्ठा की जाए और यह वास्तविक कानून स्वराज्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं। ब्रिटेन की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के सुधार-व्यापार की वृद्धि और साम्राज्य को स्थिर रखने का यही एकमात्र उपाय है दूसरा कोई नहीं।

(गुरुवार, 14 जनवरी 1932)

## रूप

कल के तारों से जो खबरें आई हैं उनमें दो विशेष रीति से ध्यान देने योग्य हैं। एक तो भारतभूमि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में पदार्पण करने पर बंबई में की गई पूज्य मालवीयजी की विज्ञप्ति है, जिसके आवश्यक अंश ये हैं–

> महात्मा गांधी और सरकार का मतभेद आपस की बातचीत से आसानी के साथ तय हो सकता था। वाइसराय को उचित था कि वे महात्मा के सहयोग का स्वागत करते, न कि उन्हें सत्याग्रह शुरू करने को मजबूर करते। वाइसराय ने महात्माजी के साथ मेल-मिलाप न कर, उलटा जोर-शोर के साथ प्रायः समस्त भारत में दमनचक्र चला कर स्वयं गांधीजी को और सभी कांग्रेस नेताओं को जेल में भेज दिया है। तथापि जिस तरह दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का आना निश्चित है उसी तरह सरकार को भी अवश्य यह दमनरीति छोड़नी पड़ेगी।

दूसरी ब्रिटिश पत्रकारों को दी गई भारत सचिव सर सेमुएल होर की सूचना है जिसके महत्व के वाक्य इस तरह हैं :

> सरकार नहीं चाहती कि आर्डिनेंस उस समय के एक दिन बाद, अथवा एक घंटे बाद भी जारी रहें जब उनकी जरूरत न रहे। जब तक धमकियां दी जाती हैं और सरकार को भंग करने की चेष्टाएं की जाती हैं, तभी तक आर्डिनेंस रहेंगे। धमकी देना बंद कर दिया जाए और सहयोग से काम किया जाए। बस गवर्नमेंट हाथ मिलाने को तैयार है। हम नहीं चाहते कि गोलमेज सम्मेलन की कुर्सियां खाली पड़ी रहें, पर अभी तो हम से जबर्दस्ती लड़ाई ठनाई गई है।

ये दोनों ही खबरें एक-दूसरे से मिलाकर देखने लायक हैं। पूज्य मालवीयजी कहते हैं, सरकार को अवश्य लड़ाई बंद करनी पड़ेगी, सर सेमुएल होर जवाब देते हैं कि सरकार तो हर घड़ी लड़ाई बंद करके मेल करने को तैयार है। शर्त इतनी ही है कि धमकी न दी जाए और सरकार को तोड़ने की कोशिश न की जाए। यदि पूरी शर्त इतनी हो और सारी बात यही हो तो सचमुच बड़ी मीठी बात है और रूप बड़ा ही सुंदर है।

परंतु क्या रूप वास्तव में इतना सुंदर है? पूज्य मालवीयजी के कथनानुसार जब संपूर्ण मतभेद का विषय ऐसा था कि परस्पर की बातचीत से महात्मा गांधी और सरकार में समझौता बड़ी आसानी से हो सकता था तब वाइसराय ने उसे नामंजूर क्यों किया और ऐसी परिस्थिति क्यों उत्पन्न की जिसे देश के सभी विचारशील नेता अदूरदर्शी कहते हैं? शांति के लिए बढ़ाए हुए हाथ को यों ही फेर देना क्या किसी प्रकार उचित कहा जाएगा और ऐसी हालत में सर सेमुएल होर की इस सूचना का क्या अर्थ समझा जाएगा कि लड़ाई जबर्दस्ती ठाननी पड़ी है? एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा एंग्लो-इंडियन पत्र इन दिनों सदैव यह उद्‌गार करते रहे हैं कि कड़े शासन की आजमाइश की जाए और विलायत में अनुदार दल का जोर होने के कारण उनकी सुनवाई भी हुई है। यहां के यूरोपियन एसोसिएशनों का आए दिन यह धंधा ही हो गया है कि वे देश की राष्ट्रीय जाग्रति को सब प्रकार से दबाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कोशिश करें और क्रांतिकारियों की निंदनीय चेष्टाओं का दोष प्रतिष्ठित अहिंसावादी संस्था कांग्रेस पर लगावें। आज भी जब सर सेमुएल होर यह कह रहे हैं कि वे गोलमेज सम्मेलन की कुर्सियों को खाली नहीं देखना चाहते, शीघ्र से शीघ्र अनुपस्थित व्यक्तियों (महात्मा गांधी आदि) को उन पर आसीन करना चाहते हैं तब कलकत्ते का *स्टेट्समैन* युद्ध की वाक्यावली का प्रयोग करता है और लिखता है कि 'पहला मोर्चा फतह किया गया, सरकार जीत गई।' क्या यह शांति की और मेलजोल की हरकत है और क्या ऐसी ही प्रवृत्ति से गोलमेज की खाली कुर्सियां भरी जा सकेंगी? एक ओर जब हमारे प्रांत की लिबरल परिषद प्रस्ताव पास करके आर्डिनेंसों के शासन की और प्रबल दमनचक्र की निंदा करती है तब दूसरी ओर एंग्लो-इंडियन पत्र यह बयान पेश करते हैं कि महात्मा गांधी और उनकी कांग्रेस प्रोपेगेंडा करने और प्रचार करने में खूब सिद्धहस्त हैं और सरकार प्रोपेगेंडा करना जानती ही नहीं। साधारण प्रेस कानून के बदले प्रेस आर्डिनेंस से सभी राष्ट्रीय पत्रों का जीवन खतरे में डाल दिया गया है और कुछ प्रांतों में कांग्रेस संबंधी साधारण से साधारण प्रचार की भी मनाही और मुंहबंदी की गई है, फिर भी एंग्लो-इंडियन पत्रों को कांग्रेस के प्रोपेगेंडा की शिकायत है। जान पड़ता है, वे वर्तमान प्रेस आर्डिनेंस से संतुष्ट नहीं हैं और उससे भी भयानक आर्डिनेंस बनवाकर संपूर्ण राष्ट्रीय पत्रों का अस्तित्व ही नष्ट कर देना चाहते हैं। परंतु इस प्रकार की कार्रवाई से अनिष्ट ही अनिष्ट है। जो असंतोष आज बाहर व्याप्त है और उसे बलात दबाकर स्थिति और भी खतरनाक कर दी जाएगी। संवादपत्रों के बंद होने से भयानक अफवाहें फैलेंगी, जैसीकि पिछली बार फैलती थीं। दमन चक्र से आंदोलन को रोकने की क्रिया उचित नहीं है और न स्थायी है, पूज्य मालवीयजी ने यही समझकर दृढ़ता के साथ यह ऐलान किया है कि सरकार को अपनी वर्तमान नीति अवश्य छोड़नी पड़ेगी और बहुत शीघ्र छोड़नी पड़ेगी। एंग्लो-इंडियन पत्रों की दूसरी शिकायत यह है कि सरकार को अपनी ओर से प्रचार कार्य करना नहीं आता। जो शक्तिशाली सरकार देश पर शासन कर रही है उसे सब प्रकार का प्रचार करने के साधन प्राप्त हैं। पिछले आंदोलन में अमन-सभाएं खुली थीं जो सरकारी प्रचार करती थीं। इस बार तो अभी से ऐसे पत्र निकलने लगे हैं जो सरकार का प्रोपेगेंडा करेंगे। जिले के हाकिम इन दिनों रोजगारियों को समझाने में खूब व्यस्त हैं और जिला मजिस्ट्रेटों के बंगलों पर दुकानदारों का स्वागत हो रहा है। ये सब तो प्रत्यक्ष बातें हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि एंग्लो-इंडियन पत्रों के मौजूद रहते सरकार को प्रोपेगेंडा की कमी किसी तरह नहीं हो सकती। उनसे बढ़कर खैरख्वाह और कौन होगा? संसार की सबसे बड़ी प्रचार संस्था *रायटर* की न्यूज एजेंसी सात समुद्र पार जापान में होने वाली हत्या चेष्टा का ताल्लुक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन से बतलाती है। जब ऐसी-ऐसी खोजें करने वाली संस्थाएं मौजूद हैं जो शुद्ध समाचार न भेजकर अटकल लगाकर भारत के विरुद्ध आंदोलन फैलाती हैं तब और क्या चाहिए?

परिस्थिति को आज का रूप देने में कांग्रेस की कुछ भी जिम्मेदारी नहीं है ऐसा कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति या संवाद पत्र निष्पक्ष रीति से नहीं कह सकता और न हम कह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर यह जितनी है उतनी ही प्रकट करनी चाहिए। प्रत्येक संस्था की भांति राष्ट्रीय कांग्रेस में भी कुछ उतावले व्यक्ति मौजूद हैं। कांग्रेस जैसी शक्तिशाली और विस्तार प्राप्त संस्था को देखते हुए यह भी स्वीकार करना होगा कि उसमें विशेषज्ञों की कमी है। हम अपने ही प्रांत का हवाला देते हैं। यहां लगान में छूट देने का आंदोलन कांग्रेस चला रही थी। सरकार की ओर से जितनी छूट अंत समय तक दी गई वह नाकाफी थी। ऐसा श्री हृदयनाथ कुंजरू जैसे सज्जनों का मत है जिनका कांग्रेस से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं। छूट के संबंध में जो सरकारी वक्तव्य निकले वे कांग्रेस जांच कमेटी की रिपोर्ट का कितने ही जगह खंडन करते हैं। कांग्रेस की जांच कमीशन की रिपोर्ट का आधार यद्यपि सरकारी कागज पत्र ही अधिकांश में है फिर भी आवश्यकता ऐसे विशेषज्ञों की थी जो सरकारी तर्कों का उत्तर देते। परंतु हमारे जिले में श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टंडनजी को छोड़कर प्रायः सभी उपप्रधान लोग आर्थिक प्रश्न को राजनीतिक बनाकर आंदोलन खड़ा करने की धुन में थे। श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजी का सबसे बलशाली तर्क यह था कि सरकारी महकमों में लंबी-लंबी तनख्वाहें प्रायः ज्यों की त्यों बनी रहीं, उनमें काट-छांट नहीं हुई। यह तो हमारी भी शिकायत है कि सैकड़ों-हजारों नौकरीजीवी मध्य श्रेणी के आदमियों की रोजी छीनकर बेकारी की भयानक समस्या को और भी भीषण बना दिया गया और ऊंची तनख्वाहों में उचित से बहुत कम की गई है तथापि जहां तक लगान माफी का सवाल है, यह तर्क विशेष शक्तिशाली नहीं सिद्ध होता क्योंकि विषय दूसरा पड़ जाता है। छूट नाकाफी होने पर भी जिले के नेताओं ने, विशेषकर उपप्रधानों ने लगानबंदी की जो चर्चा छेड़ दी, उससे उनकी जल्दबाजी और हलकापन जाहिर होता है। इसका विरोध कांग्रेस के ही नेताओं के पीछे से किया। हमारे जिले में अंतिम मर्तबा की छूट की किस्त के बाद अनाज का भाव भी काफी चढ़ा और *हिंदुस्तान टाइम्स* पत्र ने टिप्पणी लिखी कि मौजूदा हालत में लगानबंदी की जरूरत शायद नहीं रह गई। सारांश यह कि कांग्रेस में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो जनता के सुख-दुःख की उतनी चिंता नहीं करते जितनी अपनी रुचि की करते हैं और उसमें ऐसे लोगों की संख्या कम है जो उचित संघटन और पूर्वापर परिस्थिति का विचार कर कोई आंदोलन प्रारंभ करें।

परंतु ऐसे लोगों में महात्मा गांधी कदापि नहीं हैं और महात्मा गांधी ही कांग्रेस के सब कुछ हैं। उनके सामने जो परिस्थिति तैयार करके रखी गई, उसमें कांग्रेस की लड़ाई ठानने की वृत्ति हो सकती है पर यदि महात्माजी उस वृत्ति से अनुचित रूप में प्रभावित होते तो वे महात्मा ही क्यों कहलाते? उन्होंने कांग्रेस की बातें ज्यों की त्यों मान लेना उचित नहीं समझा, सरकारी बयान भी सुनना जरूरी समझा। बंगाल की हिंसाओं पर उन्होंने मार्मिक दुःख प्रकट किया और सरकार के साथ सहयोग कर उनका उन्मूलन करने को तैयार हुए। एक प्रसिद्ध अंग्रेज सज्जन की शिकायत है कि महात्माजी ने क्रांतिकारियों के कृत्यों की रोकथाम करने की कोई कोशिश नहीं की, पर जिन्होंने पिछले साल भर से कांग्रेस के प्रस्तावों पर ध्यान दिया है वे समझ सकते हैं कि महात्मा गांधी ने शक्ति भर प्रत्येक प्रकार की हिंसा को दबाने की भरपूर चेष्टा मन-वचन-कर्म से की है। जो महात्माजी के अहिंसा धर्म को जानते हैं वे तो उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्रांतिकारी आंदोलन को रोकने वाली सबसे बड़ी शक्ति समझते हैं। यदि सरकार महात्माजी की द्विविधा से घिरी हुई परिस्थिति का अंदाज लगा सकती और यह समझ सकती कि एक लोकनेता को ऐसी अवस्था में कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ता है तो सर सेमुएल होर आज जिसे धमकी समझते हैं उसे केवल स्थिति को संभालने की चेष्टा समझते और पूज्य मालवीयजी की इस बात को स्वीकार करते कि विवाद का विषय आपसी बातचीत से तय हो सकता था। अब भी जब एक ओर से कहा जा रहा है कि सरकार ने कड़े शासन की आजमाइश के लिए लड़ाई ठानी है और दूसरी ओर सर सेमुएल होर कहते हैं कि सरकार से बलात लड़ाई ठनाई गई है तब दोनों ओर से लड़ाई नापसंद की जा रही है। ऐसी व्यंजना स्पष्ट है। यदि आज की लड़ाई का सचमुच यही रूप है अर्थात् यदि वह किसी को पसंद नहीं है तो उसे आसानी के साथ, शीघ्र से शीघ्र बंद किया जा सकता है। जो कल करना होगा उसे आज ही करना ठीक है। केवल निश्चय होना चाहिए। मेल का ढंग ढूंढ़ निकालना कोई बड़ी बात नहीं है।

विशेषकर आज जब पूज्य मालवीयजी देश में आ गए हैं और संधि के पक्ष में हैं।

(रविवार, 17 जनवरी 1932)

## विधान का काम

पिछले दिन ब्रह्मदेश के गोलमेज का खात्मा करते हुए ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने जो कुछ कहा उसमें भारत के लिए भी नसीहत की बहुत सी बातें हैं। कांग्रेस के आंदोलन के विपक्ष में उनकी जोरदार दलील यह थी कि भारत के लिए नए विधान का बंदोबस्त किया जा रहा है जिससे उसकी स्वराज्य की मंजिल नजदीक आ जाएगी। और अधिक समझाते हुए आपने दृष्टांत दिया और कहा कि यह सेंट जेम्स पैलेस जिसमें आज आप लोग बैठे हुए हैं, शुरू से ही आम बैठक खाना नहीं रहा, पहले हम लोगों को यहां इस तरह आने की इजाजत नहीं थी। बहुत विकास के बाद धीरे-धीरे समय बदला और जनता के अधिकार स्वीकार किए गए। इसी दृष्टांत को भारत पर लागू करते हुए आपने, सब्र के फल मीठे होते हैं ऐसी शिक्षा दी और इस बात पर जोर दिया कि ऊधम नहीं मचाना चाहिए। मिस्टर मेकडानल्ड के दृष्टांत में असंगति मौजूद है, क्योंकि ब्रिटेन में प्रजा के अधिकारों का विकास अनेक बार आंदोलन करने से हुआ है जिसके प्रमाण में इतिहास उपस्थित है। कांग्रेस की प्रणाली से हम सहमत नहीं हैं तो भी अब स्वराज्य प्राप्ति के लिए धीरे-धीरे विकास करने और आहिस्ता-आहिस्ता मंजिल तय करने का संदेश सुनते-सुनते ऊब उठे हैं। मिस्टर मेकडानल्ड या किसी भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ के मुंह से भारत के स्वराज्य की चर्चा में मंजिल तय करने और आगे बढ़ने आदि की उक्तियां सुनने से इस देश में किसी को उत्साह नहीं होता, असंतोष ही बढ़ता है। पिछले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गोलमेज सम्मेलन में भारत को केंद्रीय और प्रांतीय शासन का अधिकार दिया गया, इसे ब्रिटिश सरकार की इनायत समझने को हममें से एक भी विचारशील राष्ट्रवादी व्यक्ति तैयार नहीं है। उसी सम्मेलन में संरक्षणों की सूची तैयार करके बहुत से अधिकार अपने हाथ में रख छोड़ने की सरकारी नीति का कोई भी प्रगतिशील विचारों का भारतवासी समर्थन नहीं कर सकता। फिर संरक्षणों की अवधि की भी कोई मर्यादा नहीं है। ऐसी परिस्थिति में ब्रिटेन की अनुदार सरकार जब भारतीय विधान में सुधार की तत्परता दिखाती है तब उसके प्रति लोगों का अधिक आकर्षण न होना स्वाभाविक है। यह आकर्षण उन महाशयों के नाम सुनकर और भी कम हो जाता है जो भारत में गोलमेज कमेटियों को मदद देकर विधान के काम को आगे बढ़ाने वाले हैं।

देश की सबसे बड़ी और शक्तिशाली राजनीतिक संस्था कांग्रेस ही है, इसे साबित करने के लिए अधिक शब्द खर्च करने की आवश्यकता नहीं। लार्ड विलिंग्डन महोदय इसे जानते हैं और मानते हैं। अभी उस दिन श्री चिंतामणि ने *पायनियर* के प्रतिनिधि को वक्तव्य देते हुए यह खरी बात यह सुनाई है कि कांग्रेस के विरुद्ध आवाज उठाने में जनता में उसकी सुनवाई नहीं हो सकती। कांग्रेस के बाद राजनीतिक दृष्टि से सबसे अधिक प्रगतिशील संस्था 'नेशनल लिबरल फैडरेशन' है। उसी फैडरेशन के इस वर्ष के अध्यक्ष श्री चिंतामणि की यह बात विशेष ध्यान देने की है। विधान बनाने का काम करने में उन भारतीयों का सम्मिलित होना बहुत अधिक आवश्यक है जो यहां की राजनीतिक प्रगति के नेता हैं और जिनका देश की जनता पर प्रभाव है। उसमें बुद्धिमान विशेषज्ञ और राष्ट्रवादी व्यक्तियों का प्रवेश होना चाहिए जो संतोषजनक विधान बना सकें। सरकार ने इन कमेटियों के कार्यक्षेत्र को संकुचित कर रखा है और संकुचित विचारों के व्यक्तियों को अधिक संख्या में भाग लेने के लिए भर्ती किया है। इस प्रकार जो विधान बनेगा उसका अंदाज हम लगा सकते हैं, और अंदाज लगाने के बाद यह कह सकते हैं कि उस पर अमल करने के लिए भारत की ऐसी शक्तिशाली पार्टी तैयार नहीं हो सकेगी जो व्यवस्था का काम संभाल सके और जिसे जनता का समर्थन मिल सके। विधान बनाने से भी अधिक आवश्यक और महत्व का काम उस पर अमल करने के लिए उपयुक्त और दृढ़ पार्टियों का संघटन है। बिना उसके विधान केवल कागजी चीज बनी रहेगी, और परिश्रम व्यर्थ जाएगा। क्या सरकार बतला सकती है कि गोलमेज कमेटियों में भारत के जिन महाशयों को भर्ती किया गया है वे आगामी विधान को कार्य रूप में परिणत करने के योग्य होंगे और क्या उनके पीछे देश की जनता का कोई मजबूत दल मौजूद है? यदि नहीं तो क्या सरकार कागज के ऊपर विधान बनाने के काम को निरर्थक नहीं समझती? यदि देश के वास्तविक प्रतिनिधियों का सहयोग आवश्यक नहीं था और यदि जनता के मत का कुछ मूल्य नहीं था तो विधान बनाने का काम बड़ी आसानी से ब्रिटेन में ही पूरा किया जा सकता था।

लार्ड विलिंग्डन ने सर तेजबहादुर सप्रू आदि नेताओं से दिल्ली में क्या परामर्श किया और परामर्श करने के बाद वे कैसी नीति बर्तना चाहते हैं, यह मालूम नहीं। पंद्रह दिन के भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही कांग्रेस के आंदोलन को दबाकर पहला मोर्चा फतह करने की सरकारी नीति के संबंध में जो अनुमान प्रकट किए गए थे वे कहां तक ठीक थे यह पता नहीं। इन पंद्रह दिनों में सरकार की तरफ से गैर-कानूनी कार्रवाई को दबाने की पूरी कोशिश की गई और ऐसे कड़े तथा संघटित उपायों से काम लिया गया जो पहले नहीं देखे गए। एक साथ सैकड़ों संस्थाओं को गैर कानूनी ठहरा कर, समस्त प्रमुख कार्यकर्ताओं को कैद कर लेना, कांग्रेसी भवनों और स्वयं सेवकों के शिविरों, अस्पतालों पर कब्जा करना, अधिक सहायता की मनाही करना, फंड जब्त करना, यात्रा के साधनों को बंद करना, स्त्रियों को कड़ी कैद की सजा सुनाना—कुल मिलाकर आंदोलन को क्या ठंडा कर सकें हैं? व्यापारियों को समझाना, जनता में सरकारी प्रचार करना भी जारी है पर उसका कोई विशेष परिणाम तो अब तक प्रकट नहीं हुआ। सरकार जिस वस्तु को सामने रखकर यह सब कृत्य कर रही है वह है गोलमेज की कमेटियां और विधान का काम। पर विधान के काम में जनता की दिलचस्पी की आशा तब तक नहीं की जा सकती जब तक वर्तमान आतंक युग आज की तरह मौजूद रहेगा।

अब भी यदि चेष्टा की जाए तो सर सेमुएल होर के जाहिर किए गए मनसूबे के मुताबिक गोलमेज की खाली कुर्सियां भर सकती हैं। परंतु इसके लिए सरकार को उदारता की नीति वर्तनी होगी। देश के लिबरल नेताओं का वाइसराय पर प्रभाव पड़ना चाहिए। शांति और व्यवस्था की रक्षा की अस्थायी परिस्थिति के साथ यदि सरकार नवीन विधान के स्थायी महत्व को भूलना नहीं चाहती तो वह बहुत दिनों तक ऐसी कार्रवाई नहीं कर सकती जैसी आज कर रही है। बहुत कम समय में उसे यह मालूम हो जाना चाहिए कि शांति और व्यवस्था की रक्षा बहुत बड़े अंश में भारत को दिए जाने वाले विधान पर अवलंबित है। उचित रोग की उचित ओषधि ही काट करती है।

दिल्ली में कतिपय लिबरल नेताओं ने वर्तमान परिस्थिति के संबंध में अपना मत वाइसराय से प्रकट किया है। पूज्य मालवीयजी विलायत से भारत आ गए हैं और यह निश्चत भविष्यवाणी की है कि सरकार को अपनी वर्तमान नीति बदलनी पड़ेगी। शीघ्र ही केंद्रीय व्यवस्था-सभा का अधिवेशन होने वाला है जिसमें देश की राजनीतिक परिस्थिति पर चर्चा होगी। व्यवस्था परिषद की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह वर्तमान वातावरण को बदलने की चेष्टा करे क्योंकि इससे जनता को क्लेश मिल रहा है और वे जनता के प्रतिनिधि हैं। लिबरल नेता भी अपनी शक्ति लगाकर विधान के काम को सरल और उपयोगी बनाएंगे। पूज्य मालवीयजी पर इस समय देश की बड़ी आशा लग रही है। इस प्रकार यदि देश के कतिपय प्रभावशाली पुरुष और व्यवस्था परिषद प्रयत्न करके बिगड़ती हुई स्थिति को सुधार सकें और राजनीतिक वातावरण को शांत कर विधान के आगामी कार्य में भारत का लोकमत आकर्षित कर सकें तो देश का और सरकार का बड़ा उपकार हो। यदि एकबार गांधी-इर्विन समझौता संभव हुआ था तो दूसरे बार गांधी-विलिंग्डन समझौता भी हो सकता है, विशेषकर ऐसे मौके में जब संधि के लिए उपयुक्त पुरुष मौजूद हैं और सर सेमुएल होर भी गोलमेज की कुर्सियों को खाली नहीं रखना चाहते, विधान का काम सफल करना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# राय कृष्णदास का कथासाहित्य–4
## *सुधांशु* और *अनाख्या*

*अनाख्या* और *सुधांशु* की जिन कतिपय कहानियों के साथ हमने कीट्स की पंक्तियां उद्धृत कीं, उनके मूल में आत्मानुभव का आदर्श है। देश-विदेश के अनेक संत-महात्मा और दार्शनिक यही दर्शन करते रहे हैं तथा बहुसंख्यक कवियों की यही अभिव्यक्ति हुई है। हमारे यहां की दर्शन परंपरा सनातन से इसका समर्थन करती रही है, इसलिए इसे सिद्ध करने में दूसरे प्रमाण अथवा तर्क की आवश्यकता नहीं। उपनिषदों में इस मर्म की व्यंजना हुई है और *गीता* में भी 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन', 'यामिमां पुष्पितां वाचं' आदि-आदि पद आए हुए हैं। महात्मा शंकर के अद्वैत दर्शन में इसी निवृत्ति की ही दृढ़ स्थापना है जिसे भारतीय दर्शन के इतिहासलेखक बौद्ध धर्म का प्रभाव बतलाते हैं तथापि जिसके पक्ष में श्रुतियों के प्रमाण हैं। यही अनुभूति हमारे आज के कवियों की भी है, जैसे–

*मौन मधु हो जाए,*
*भाषा मुक्ता की आड़ में*
*मन सरलता की बाढ़ में*
*जल बिंदु-सा बह जाए।*
*सरल अति स्वच्छंद जीवन*
*प्रात के लघु पात सा*
*उत्थान पतन घात से*
*रह जाए चुप, निर्द्वंद्व।*

और मनोविज्ञान के मत से असंगति ठहराने वाले तथा लक्षणा-व्यंजना आदि के बल पर बहस करने वाले लोगों को उत्तर देते हुए एक रसमय गीत 'नीरव गान' शीर्षक है–

*नीरव तार हृदय में*
*गूंज रहे अतिमंजुल लय में*
*अनिल पुलक से अरुणोदय में*

(पं. सुमित्रानंदन पंत)

राय कृष्णदास की उपर्युक्त आख्यायिकाएं भी इसी आदर्श की अभिव्यंजना करती हैं जिससे इनकी अनुभूति के गहरे स्तर का अनुमान सहज ही लग सकता है।

परंतु चिंतनजन्य सनातन आदर्शों के अतिरिक्त कुछ बुद्धिजन्य आदर्श भी समय-समय में उद्गम पाते हैं जिन्हें ग्रहण करने वाले साहित्यकार भी अपने को आदर्शवादी कहते हैं। इनके लिए कोई दूसरी संज्ञा अधिक सार्थक होगी। हिंदी के आख्यायिक जगत् में प्रेमचंदजी इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



टाइप के आदर्शवादी हैं। राय कृष्णदासजी की 'माहात्म्य', 'नरराक्षस', 'न्यायपक्ष' आदि कहानियां भी ऐसी ही कही जाएंगी। 'माहात्म्य' में एक अंधभक्त और एक दुरात्मा की संगति का नतीजा बयान किया गया है। यहां माहात्म्य की रूढ़ि ही माहात्म्य मान ली गई है। इस रूढ़ि का व्यंग्य करना ही कहानी का लक्ष्य है। इसे आदर्शवादी इसी अर्थ में कहा जाता है कि यह प्रतिक्रिया से 'माहात्म्य' का आदर्श प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है। स्पष्टतः ऐसी रचनाओं के लिए सामान्य चलते-फिरते जीवन से ही परिचित होने की आवश्यकता है, विशेष अंतर्दृष्टि अपेक्षित नहीं। ऐसी कहानियों का आकर्षण अधिकांश में उनकी विविधता में होता है, जैसे छोटे-छोटे अनेक पौधों की कलमें, सतह की मिट्टी खोद कर लगा दी गई हों, एक विशाल वटवृक्ष का अतलस्पर्शी अधिसमूह उनके संरक्षण के लिए आवश्यक नहीं।

आदर्शवादी कलाकार के सामने सबसे कठिन समस्या यह होती है कि वह उचित रंगरूप, विविधता और आकर्षण के साथ अपनी रचना को किस प्रकार उपस्थित करे। वर्तमान यथार्थवादी और विस्मयप्रिय युग में तो यह और भी मुश्किल की बात हो गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राय कृष्णदास ने कल्पना और संकेत की विधियों का आश्रय लिया है। अंग्रेजी में (Soliloqcy Reverie) आदि अन्य कतिपय प्रणालियां भी प्रचलित हैं परंतु *सुधांशु* और *अनाख्या* में प्रायः स्वप्न की ही प्रणाली से कल्पना व्यक्त की गई है। 'वसंत का स्वप्न', 'इनाम', 'कल्पना' आदि कहानियां निद्रितावस्था की हैं, अर्थात् स्वप्न में देखी गई हैं। आधुनिक मनोविज्ञानशास्त्र के प्रणेताओं ने स्वप्न की बड़ी मीमांसा की है और इस प्रकार स्वप्न को भी यथार्थत्व प्राप्त हुआ है। स्वप्न का प्रश्रय लेने वाले राय कृष्णदासजी ने इस यथार्थत्व का पालन कहां तक किया है, यह हम नहीं कह सकेंगे क्योंकि हमें उस विषय का विशेष ज्ञान नहीं।

'अंतःपुर का आरंभ' नाम की कहानी में पारिवारिक जीवन में पुरुष और स्त्री के प्रथम प्रवेश और उनके परस्पर के व्यवहार की कल्पना की गई है। आज स्त्रियों के लिए विशेषाधिकार चाहने वाले हिंदुस्तानियों अथवा पार्लियामेंट को घेर कर नग्न प्रदर्शन करने वाली लंदन की मेमों को यह कल्पना कहां तक रुचेगी यह नहीं कहा जा सकता पर इतिहास के अन्वेषक और Sex Psychology के विद्यार्थी इसे पसंद करेंगे। अवश्य ही राय कृष्णदास की काल्पनिक कहानियों में यही सबसे अधिक सजीव है।

किसी-किसी कलाकार पर आदर्शों और सिद्धांतों की छाप इतनी गहरी होती है कि वह उन्हें साहित्यकला का रूप न दे सकने पर भी केवल रमणीय संकेतों के रूप में प्रकट कर देता है। अवश्य ही ऐसी रचनाएं कला की दृष्टि से अतीव निम्न कोटि की हैं, क्योंकि इनकी एकमात्र कला सामग्री संकेतों की रमणीयता ही है। महाकवि रवींद्रनाथ ने इस प्रकार की रचनाओं में आकर्षण लाने की बड़ी चेष्टा की है और पूरी, सुंदरी, जलविहार आदि प्रभावशाली संकेतों के सुचारु उपयोग से उन्हें सफलता भी अच्छी मिली है। कहीं माया और जीव का रूपक, कहीं जीव और ब्रह्म का मिलन संकेत। इसी प्रकार और भी हैं। परंतु यथार्थ के अत्यंत तिरस्कार और मनोविज्ञान की अवहेलना के कारण इस प्रकार का साहित्य अधिक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अधिक तिलिस्मी कहानी का-सा विस्मय और चमत्कार उपत्न्न करने के योग्य होता है। कभी-कभी जब आदर्श अथवा सिद्धांत विशेष परिचित और संकेत भी विशेष यथार्थोन्मुख होते हैं तब निष्पत्ति पूरी हो जाती है, तथापि बहुत कम। राय कृष्णदास ने 'तापसी की तितिक्षा' आदि दो ही एक संकेत की कहानियां लिखी हैं फिर भी उनमें यत्किंचित आकर्षण तथा रमणीयता मिलती है।

*सुधांशु* और *अनाख्या* की कहानियों का यही संक्षेप में परिचय है। इस परिचय से यह स्पष्ट होने में सहायता मिली कि राय कृष्णदास की चेष्टा जीवन की उन अनुभूतियों की थाह लेने की है जो सतह पर नहीं है, अंतरंग है, अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं है, परोक्ष है। अनेक बार वे दूर तक पहुंचे हैं तथापि सर्वत्र अंतरंग तक प्रवेश नहीं कर पाए। उनकी प्रयास-दिशा वही है। गहन अनुभूतियों में विस्तार और विविधता लाना कठिन काम है। उन्हें वाणी का वेष पहनाना भी अनेक बार असंभव हो जाता है। इस प्रकार की साहित्य सृष्टि करने वालों के सामने दो मुख्य अंतराय होते हैं। एक है अनुभूतियों का अतिरंजित निरूपण और दूसरी रूढ़ि की नीरस व्यंजना। पहली बाधा से साहित्य के 'सत्य' के लोप होने की आशंका होती है और दूसरी से उसके 'सुंदर' को चोट लगती है। इन दोनों त्रुटियों के साथ साहित्य में शिव अथवा कल्याण की समुचित प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। प्रसन्नता की बात है कि राय कृष्णदास की अधिकांश कहानियों में ये बाधाएं नहीं लगीं। वे विस्तार की मिथ्यालिप्सा में नहीं फंसे। अपने परिचय और मनन के विषय कला अथवा कारीगरी के अनुभवों को ही व्यक्त करने में तत्पर हैं। इसे हम सर्वथा प्रशंसनीय समझते हैं। परंतु विषय विस्तृत न हो तो उसकी अभिव्यंजना प्रणाली में अनेकरूपता होनी चाहिए, नहीं तो साहित्य Stereotyped हो जाता है। राय कृष्णदासजी को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

(गुरुवार, 21 जनवरी 1932)

# यूरोप की परिस्थिति

फ्रेंच सरकार की ओर से मो. लावल ने संयुक्त राज्य अमेरिका से यह दरियाफ्त किया था कि पिछले वर्ष प्रेसीडेंट हूवर ने यूरोपियन राष्ट्रों को अमेरिका का कर्ज चुकाने के बाबत जो एक साल की मुहलत (Moratorium) दी थी उसे साल-छह महीना और बढ़ाने को वह सहमत है या नहीं? इसके उत्तर में पेरिस (फ्रांस) स्थित अमेरिकन राजदूत मिस्टर वाल्टर एज ने कहा है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का लोकमत और राजनीतिक मत मुहलत बढ़ाने के विरुद्ध है। इस उत्तर का यूरोप की आर्थिक स्थिति पर अवश्य ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। फ्रांस ने यह दृढ़ घोषणा की है कि उसे कर्ज में जितनी छूट मिलेगी उसी के मुताबिक वह दूसरों को भी छूट देगा, उससे अधिक कभी नहीं। अब जब मालूम पड़ रहा है कि अमेरिका का संयुक्त राज्य ब्रिटेन, फ्रांस और इटली को कर्ज की बाबत मुहलत देने को राजी नहीं है और न कर्ज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कुछ रकम माफ ही करने को तैयार है तब इसका मतलब यह हुआ कि कम से कम फ्रांस तो जर्मनी को कर्ज में कुछ भी छूट देना मंजूर नहीं करेगा। फ्रांस की इस नीति का प्रभाव ब्रिटेन और इटली पर भी पड़ेगा। यदि जर्मनी को मुहलत न दी गई तो वह मीयाद पर युद्ध की क्षतिपूर्ति का अपना देन न अदा कर सकेगा। अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों ने जर्मनी की आर्थिक स्थिति की जांच करके यह मत प्रकट किया है कि वह क्षतिपूर्ति की रकम अदा करने में असमर्थ है। संयुक्त राज्य अमेरिका समझता है कि उसकी ओर से काफी रियायत की जा चुकी है और महायुद्ध के अवसर पर उसके द्वारा दिए गए कर्ज के संबंध में गहरी रकमें छोड़ी जा चुकी हैं। ब्रिटेन को दिए गए कर्ज का एक-चौथाई, फ्रांस को दिए गए कर्ज का आधा और इटली को दी गई रकम की तीन-चौथाई, उसने माफ कर दी है और यह पूरा भार अमेरिकन जनता को उठाना पड़ा है। प्रेसीडेंट हूवर ने गतवर्ष एकसाल की मुहलत यूरोपीय राष्ट्रों को दी थी ताकि वे अपनी हालत सुधार लें, पर अमेरिका के लोकमत ने उनकी इस उदारता का तीव्र प्रतिवाद किया है अब प्रेसीडेंट हूवर अनुभव कर रहे हैं कि यूरोपीय राष्ट्रों की तृष्णा और भी बढ़ गई है और आज यूरोप की मांग यह है कि अमेरिका उससे एक पाई भी लिये बिना उसे ऋणमुक्त कर दे। इस समय स्वयं अमेरिका गवर्नमेंट साठ करोड़ पौंड के घाटे में है। ऐसी अवस्था में यूरोप की उक्त मांग भयानक है। यह अमेरिका की बात हुई।

ब्रिटेन यह समझता है कि अमेरिका ने युद्ध कर्ज में छूट देने के मामले में उसके प्रति उतनी उदारता नहीं दिखाई जितनी फ्रांस और इटली आदि अन्य मित्र राष्ट्रों के प्रति दिखाई है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन ने फ्रांस और इटली को अपनी ओर से दिए गए कर्ज का क्रमशः 62 और 63 प्रतिशत माफ कर दिया है और इस रकम का बोझ टैक्स देने वाली ब्रिटिश जनता पर लग गया है। मिस्टर जॉर्ज ग्लेसगो *कंटेंपोरेरी रिव्यू* में लिखते हैं कि 'अकेले फ्रांस को कर्ज देने के लिए जो रकम लोन द्वारा उगाही गई थी उसे चुकता करने के लिए ब्रिटेन के इनकम टैक्स देने वालों को सदा के लिए प्रति पौंड सात पेंस अधिक देने पड़ेंगे। पार्लियामेंट में मिस्टर चेंबरलेन ने प्रश्न करने पर यह बताया है कि ब्रिटेन ने अमेरिका के कर्ज बाबत अब तक 32 करोड़ 62 लाख पौंड अदा किया है और मित्र राष्ट्रों से ब्रिटेन को 7 करोड़ पौंड के लगभग मिले हैं। इसलिए ब्रिटिश जनता यह समझती है कि युद्धकर्ज में उसे पाने के बनिस्पत देना कहीं अधिक पड़ता है। वह यह भी अनुभव करती है कि उसने फ्रांस और इटली के साथ बहुत अधिक उदारता का व्यवहार करके बड़ी रकम छूट में दे दी है और अमेरिका ने भी फ्रांस और इटली के प्रति अधिक उदारता दिखाई है, ब्रिटेन के प्रति कम। यह अनुमान किया जाता था कि युद्ध का सबसे अधिक घातक परिणाम फ्रांस पर पड़ा है इसलिए ब्रिटेन और अमेरिका दोनों ने ही उसे अत्यधिक छूट दी और जर्मनी से क्षतिपूर्ति की जो रकम मिली है वह भी विशेष परिमाण में फ्रांस को ही दी गई है। इतनी रियायत करने पर भी फ्रांस की ओर से बराबर यही घोषणा की जाती है कि उसके महाजन ब्रिटेन और अमेरिका उसे जितनी माफी देंगे उतनी ही छूट वह क्षतिपूर्ति के संबंध में जर्मनी को देगा, उससे अधिक नहीं। आज की स्थिति ऐसी है कि फ्रांस को युद्ध की क्षतिपूर्ति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रकम मिलने की संभावना नहीं है इसलिए वह अपनी रकम वसूली के इस 'पवित्र अधिकार' के लिए जर्मनी के विरुद्ध खड़ा होगा। परंतु जर्मनी कुछ भी दे सकने में असमर्थ है यह बात सत्य रूप में सिद्ध हो चुकी है।

कोई नहीं कह सकता कि यह बखेड़ा कैसे तय होगा। शीघ्र ही लासेन कॉन्फ्रेंस होने वाली थी जिसमें युद्ध की क्षतिपूर्ति के विषय पर बहस होती। पर अब इस कॉन्फ्रेंस का होना बहुत संदिग्ध हो गया है। राजनीतिक ऋण के प्रश्न के साथ ही व्यापारी कर्ज का प्रश्न भी मिला हुआ है और इस पिछले कर्ज से ब्रिटेन और अमेरिका का खास ताल्लुक है। ब्रिटेन और अमेरिका चाहते हैं कि जर्मनी पहले इस व्यापारी ऋण को चुकता करे, युद्ध कर्ज पीछे देखा जाएगा। परंतु फ्रांस को यह मंजूर नहीं है। व्यापारी कर्ज के लिए जो मुहलत दी गई थी वह आगामी फरवरी में खत्म हो जाएगी और युद्ध कर्ज की मुहलत जुलाई तक चलेगी। यदि फरवरी के अंत में अमेरिका और ब्रिटेन जर्मनी को व्यापारी कर्ज के बाबत मुहलत न दें तो उसे यही कर्ज पहले चुकता करना पड़ेगा जिससे वह युद्ध की क्षतिपूर्ति वाला ऋण किसी प्रकार दे ही न सकेगा। यदि इस मामले में कोई बीच-बचाव न हो सका तो आपत्तिजनक समस्या पैदा हो सकती है। आगामी कुछ महीने यूरोप के लिए बड़े कठिन हैं।

अमेरिका का संयुक्त राज्य यूरोप की रक्षा करने को किसी तरह तैयार नहीं है। यदि आगामी निरस्त्रीकरण सम्मेलन सफल हुआ तो स्थिति किसी तरह सुधर सकती है। परंतु अस्त्रत्याग के प्रश्न को भी फ्रांस भय और अविश्वास की दृष्टि से देखता है जिससे बड़ी बाधा की संभावना है। मिस्टर सिसली हडलस्टन लिखते हैं कि निरस्त्रीकरण, टेरिफ क्षतिपूर्ति, और ऋण के विषयों में अंतर्राष्ट्रीय एकमत होना अत्यंत आवश्यक है। परंतु वातावरण अंतर्राष्ट्रीय एकमत के अनुकूल नहीं। आज भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की परस्पर विरोधी नीतियां प्रबल हो रहीं हैं। ब्रिटेन की वर्तमान सरकार का नाम राष्ट्रीय है। यह राष्ट्रीय हितों की रक्षा और पुष्टि के लिए बनी है। यह राष्ट्रीय सरकार संपूर्ण समस्या को व्यापक अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से देख सकेगी ऐसी बहुत कम उम्मीद है। यद्यपि राष्ट्रीय सरकार के शीर्ष पर मिस्टर मेकडानल्ड जैसे अंतर्राष्ट्रीय शांति के आकांक्षी व्यक्ति हैं फिर भी शांति की आशा नहीं के बराबर है। स्थिति की कठोर आवश्यकता के कारण ही उन्होंने अंतर्राष्ट्रीयता का त्याग कर राष्ट्रीयता धारण की है। आगामी कुछ समय में ब्रिटेन में होने वाले पिछले राजनीतिक परिवर्तन का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाएगा। वास्तव में राष्ट्रीय सरकार का निर्माण इसलिए किया गया है कि वह संपूर्ण ब्रिटेन पर आने वाली विपत्ति का सामना करने को एकमत होकर तैयार रहे। भिन्न-भिन्न पार्टियां भी इसलिए तोड़-सी दी गई हैं। जो किसी समय राजनीति में एक-दूसरे के विरोधी थे वे आज कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। ब्रिटेन अब यूरोप से पहुंचने वाले खतरे के खिलाफ शक्ति बटोरकर खड़ा है और अपनी नीति पर फ्रांस या किसी राष्ट्र का दबाव नहीं सहन करना चाहता। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना केवल एक संकेत है जिसके पूर्वापर कारण अब तक अस्पष्ट और अप्रत्यक्ष ही रहे हैं, सतह पर नहीं दीख पड़े। मिस्टर मेकडानल्ड, मिस्टर बाल्डविन तथा अन्य दलपतियों ने मिलकर संपूर्ण परिस्थिति का लेखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लगाने के बाद ही आपस में मिलने की ठानी होगी, यह अनुमान ठीक जान पड़ता है। ब्रिटेन के भिन्न-भिन्न दलों का भेदभाव छोड़कर आपस में मिल जाना और दलबंदियां तोड़ देना क्या अर्थ रखता है, यह यूरोप की परिस्थिति के संबंध में आए दिन प्रकट होने वाली बातों से स्पष्ट होता जा रहा है।

## सरकार का रुख

पिछले दिन पूज्य मालवीयजी और लिबरल नेताओं से मिलकर देश की परिस्थिति पर विचार करने के उद्देश्य से सेठ जमनालाल बजाजजी बंबई गए थे वहीं गिरफ्तार कर लिये गए। श्रीयुत जे.एम. सेनगुप्त स्वास्थ्य सुधारने के लिए यूरोप गए थे उस दिन जहाज पर ही पकड़ लिये गए और नजरबंद करके जेल में पहुंचा दिए गए। और सब घटनाओं को छोड़कर केवल इन दोनों पर भी विचार करने से सरकार की सख्ती का पता लग जाता है। *पायनियर* अखबार की यह बात बिलकुल सच जान पड़ती है कि लार्ड विलिंग्डन सरकारी कार्रवाई की संपूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं और जब मुखिया ही जिम्मेदारी लिये हुए हैं तब मातहतों को स्वेच्छा के साथ काम करने में कौन सी अड़चन हो सकती है? आजकल बेचारे जिला अफसर ही नहीं, प्रांतीय गवर्नर भी व्यापारियों और जमींदारों आदि भिन्न-भिन्न फिरकों को समझाकर सत्याग्रह से दूर रखने की चेष्टा कर रहे हैं। पर ऊपर दिखाई सरकारी नीति के रहते यह दूसरी चेष्टा केवल आंदोलन को दबाने का सरकारी प्रचार (Propaganda) समझी जाएगी, जनता का उस ओर खिंचना कठिन ही है। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी और आर्डिनेंसों के विरोध में व्यापारियों की सभाएं बंबई में बाधित की गई हैं। इसका कुछ भी अच्छा प्रभाव व्यापारियों पर पड़ सकता है?

यद्यपि देश और विदेशों का विचारशील और सात्विक मत महात्माजी की रिहाई के लिए एकत्र होने लगा है और अनेक प्रकार से शांति स्थापित करने की चेष्टाएं की जा रही हैं पर सरकार का यह रुख निराशाजनक है।

(रविवार, 24 जनवरी, 1932)

## वाइसराय का भाषण

नए साल की असेंबली का जलसा शुरू करते हुए वाइसराय महोदय, लार्ड विलिंग्डन, ने जो लंबी वक्तृता की उसे पढ़कर हम इस नतीजे पर पहुंचे कि हिंदुस्तान भर में आनंद युग का प्रवेश हो रहा है और जिन देश-विदेशों का इस हिंदुस्तान से कुछ भी संबंध है उनकी ग्रहदशा भी निहायत शुभ हो रही है। हम लोग यह जानते हैं कि राष्ट्र-परिषद अर्थात् लीग-ऑफ नेशंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में बेचारे भारत को कितना गौरवशाली और महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और हम लोगों पर यह बात भी प्रकट है कि राष्ट्र परिषद के आगामी निरस्त्रीकरण सम्मेलन से भारत का कितना घनिष्ठ और जोरदार संबंध है। यूरोप से जो खबरें आई हैं वे उक्त निरस्त्रीकरण सम्मेलन के सफल होने में संदेह ही प्रकट करती हैं तथापि लार्ड विलिंग्डन हम लोगों को इस बात की पेशतर बधाई देते हैं कि भारत ने इस सम्मेलन की सफलता में अपना फर्ज अदा किया है और संसार से युद्ध का अस्तित्व मिटा देने में सहायक हुआ है। इस बधाई के लिए हमें उन्हें धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि निरस्त्रीकरण सम्मेलन सफल हो या न हो वाइसराय महोदय ने राष्ट्र परिषद के नाचीज सदस्य भारत को विशेष गौरव प्रदान किया है और उसके श्रेय की सीमा बढ़ा दी है। महात्मा तुलसीदास ने एक जगह लिखा है कि राजा लोग बड़े-बड़े सेतु बांध देते हैं, उन पर चढ़कर चींटियां भी पार हो जाती हैं। इसी प्रकार ब्रिटिश सरकार की कृपा से राष्ट्रसंघ के सेतु से भारत भी पार उतरता रहता है, इसमें भारत की क्या बड़ाई है? फिर जब निरस्त्रीकरण जैसे महत अनुष्ठान में निरस्त्र भारत भी वाइसराय महोदय के कथानुसार योग दे रहा है तो भारत के शुभग्रह अद्‌भुत रीति से उदय हुए समझना चाहिए जिसके कारण उसे यह कीर्ति प्राप्त हो रही है। यही एक नहीं, दक्षिण अफ्रीका के केपटाउन कॉन्फ्रेंस के सफल होने का प्रमाणपत्र मिलना भी भारत के उज्ज्वल भविष्य की सूचना है। हम नेपाल के प्रधानमंत्री के भारत आगमन और स्वागत के संबंध में भारत के यशोविस्तार का विशेष विवरण नहीं देना चाहते क्योंकि वह अनावश्यक है। जब हमने यह देख लिया कि भारत के पारस को स्पर्श कर बड़ी-बड़ी अंतर्राष्ट्रीय सस्थाएं और सम्मेलन सफल मनोरथ होने जा रहे हैं तब नेपाल और भूटान का क्या लेखा?

देश की अवस्था इतनी सुचारु हो रही है कि कल्पना को आनंद प्राप्त होता है। यह वाइसराय महोदय के भाषण के आधार पर कह रहे हैं। देश की कृषि संबंधी दशा सुधर रही है क्योंकि युक्त प्रांत की सरकार ने किसानों को चार करोड़ की और जमींदारों को एक करोड़ से ऊपर की छूट दी है। स्वयं पंजाब में 46 लाख की रियायत की गई है। इसके अलावा कृषि संबंधी अनुसंधान के प्रस्ताव पर राय देने के लिए जो एक कौंसिल बैठाई गई है उसने कम से कम दो अनुसंधान संस्थाओं को खोलने की सिफारिश की है। यद्यपि भारत कृषिप्रधान देश है और सब विभागों से अतिरिक्त इसकी ही प्रधानता होनी चाहिए तथा कौंसिल ने कुछ लाख रुपयों की मंजूरी देकर यह जो प्रारंभिक कार्य किया है इसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी ही होगी। इसके आगे बढ़कर बजट का हवाला लीजिए। बड़ी खुशी की बात है कि और टैक्स लादने का विचार वाइसराय महोदय और उनकी सरकार फिलहाल नहीं कर रहे यद्यपि वे संसार की आर्थिक अवनति का नतीजा देखकर ही इस संबंध की अंतिम बात कर सकेंगे। पिछले मर्तबा असेंबली और जनता की राय और आग्रह के विरुद्ध नए टैक्स लगाने के बाद अब सरकार कुछ दिन तक मुहलत देने का वचन भी एक शर्त लगाकर देती है, इसके लिए भी हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए। और आगे बढ़िए और देश की सामान्य आर्थिक (Financial) अवस्था पर गौर कीजिए। वाइसराय महोदय कह रहे हैं कि और देशों के मुकाबले में यह तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निहायत अच्छी है। भारत की साख विदेशों में जोर-शोर से बढ़ी है और रुपए का संबंध सोने से तोड़ देने का आशातीत शुभ फल हुआ है। अब भारत की आर्थिक अवस्था केवल स्वस्थ और दृढ़ ही नहीं है, संसार के अन्य देशों के लिए आशा का संदेश भी दे सकती है। यह जो चालीस करोड़ से अधिक का सोना 26 सितंबर 1931 से 23 जनवरी 1932 तक पिछले लगभग 4 महीनों में ही भारत से बाहर चला गया वाइसराय महोदय उसके भी समर्थक हैं। परंतु राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करने वाले अर्थशास्त्री इससे कदापि सहमत नहीं हैं और पूज्य मालवीयजी ने अभी उस दिन विज्ञप्ति निकालकर स्वर्ण निर्यात का निषेध किया है। सहयोगी *लीडर* के संवाददाता का कहना है कि असेंबली के सदस्य श्रीयुत बी. दास भारत के स्वर्ण निर्यात के पक्ष में वाइसराय की वकालत करने पर हंसते थे।

संपूर्ण सुंदर चित्र अंकित कर वाइसराय महोदय एक ही मुख्य ऐब दिखाते हैं। वह ऐब भारत के एक दल अर्थात् कांग्रेस पार्टी की राजद्रोहात्मक कार्रवाई है जिसके कारण देश की आर्थिक अवस्था में गड़बड़ी होने की संभावना हो रही है। इस एक ऐब को मिटाने के लिए उन्होंने 'राज्य की संपूर्ण शक्ति' लगाने का इरादा प्रकट किया है पर शायद वे इस शक्ति को भी काफी नहीं समझते हैं। उन्होंने भारत के प्रत्येक दल विशेषतः व्यवसायी दल से अपील की है कि वे सब मिलकर सरकार का साथ दें। परंतु अभी हाल में ही अनेक प्रमुख व्यापारी संस्थाओं की ओर से आर्डिनेंसों का विरोध किया गया है और देश की सबसे बड़ी व्यापारी संस्था 'इंडियन चैंबर ऑफ कामर्स' ने मौजूदा हालत में अपने प्रतिनिधि सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास को गोलमेज की कमेटियों में शरीक होने से मना कर दिया है। *टाइम्स ऑफ इंडिया* पत्र सरकारी आर्डिनेंसी नीति की ताईद करते हुए व्यापारियों को नसीहत देता है कि कांग्रेस के द्वारा उनके स्वतंत्र व्यवसाय में बाधा डालने की चेष्टा के विरुद्ध आर्डिनेंस हैं। इसलिए आर्डिनेंस से उन्हें लाभ है। पर *टाइम्स* व्यवसायियों को आदमी नहीं समझता। यंत्र समझता है जो सदा स्वार्थ की चक्की पीसने में लगे रहते हैं। अपने देशभाइयों पर कठोरता का प्रयोग होते देखकर व्यवसायी वर्ग यदि असंतुष्ट है और आर्डिनेंसों के आतंक से यदि जनता उनका माल खरीदने को तैयार नहीं तो केवल मनुष्यता की दृष्टि से नहीं, स्वार्थ की दृष्टि से भी व्यापारी महात्माजी की रिहाई और आर्डिनेंसी शासन को उठाने का प्रस्ताव करते हैं। पर जब सरकार दुकान खुला रखने का आर्डर निकालकर स्वयं उस स्वतंत्रता पर आघात करती है जिसका वाइसराय महोदय उल्लेख करते हैं तो व्यापारी मंडल का असंतुष्ट होना स्वाभाविक है। वाइसराय महोदय यदि देश में व्याप्त राजनीतिक असंतोष का अनुभव ठीक-ठीक कर सकते अथवा यदि वे भारत की जनता में व्याप्त महात्मा गांधी के प्रति अपार श्रद्धा के भाव को समझते तो उन्हें यह मालूम होता कि कांग्रेस को दबाने में संपूर्ण शक्ति लगाने का ऐलान करना और देश के भिन्न-भिन्न दलों से सहयोग की अपील करना एक-दूसरे के पूरक नहीं हैं बल्कि एक बड़े हद तक एक-दूसरे के विरोधी हैं। उनके भाषण की ध्वनि जनता से कोई अनुकूल प्रतिध्वनि नहीं प्राप्त कर सकेगी। संधि और समझौते की बातों के चलते रहने से एक प्रकार की आशा और अवलंब बहुतों के हृदयों में बना रहता है। तर्क और दलील की गुंजाइश रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। पर वाइसराय महोदय के भाषण में कांग्रेस के साथ किसी प्रकार का समझौता न करने की जो आवाज है वह बहुत ही असंतोषजनक है।

वाइसराय महोदय ने राजनीतिक स्थिति का विवरण देते हुए सरकारी वकालत की है। गांधी-इर्विन समझौते का पालन करने में सरकार की ओर से कुछ उठा नहीं रखा गया, वह उनका वक्तव्य है। युक्त प्रांत और सीमा प्रांत में कांग्रेस की ओर से अशांति खड़ी की गई, यह उनका इल्जाम है। एक स्थान पर तो वे बहुत ही विनीत और भावुक बनकर कहते हैं :

> मैंने कांग्रेस के नेता और उनके अनुयायियों से भी व्यक्तिगत रीति से अपील की वे सहयोग करें। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे साथ मिलकर भारत के स्वराज्य का विधान शीघ्र से शीघ्र बना डालें। मैं नहीं जानता कि मेरी ओर से और मेरी सरकार की ओर से कभी देहली समझौते के विरुद्ध आचरण किया गया, पर कांग्रेस ने बेदर्दी के साथ उसे तोड़ दिया।

हम वाइसराय महोदय की सदाशयता पर किसी तरह का संदेह नहीं करते। इससे यह मालूम होता है कि उनका विश्वास है कि गवर्नमेंट की तरफ से मेल के भाव का उचित जवाब कांग्रेस की तरफ से नहीं मिला और लाचारी दरजे गवर्नमेंट को दमन नीति का सहारा लेना पड़ा। हम मानने को तैयार हैं कि उन्होंने अपनी सरकार को सब प्रकार से हिदायत कर दी थी कि वे देहली समझौते का पालन करें। हम महात्मा गांधी और भारत सरकार द्वारा उपस्थित किए गए आरोपों (चार्ज शीटों) का भी यहां उल्लेख नहीं करना चाहते। युक्तप्रांत और सीमा प्रांत में कांग्रेस की बेजा कार्रवाइयों का भी हम समर्थन नहीं करते और हमारी राय में सुधार के काम में सहयोग की नीति जो कांग्रेस ने स्वीकार की थी उसका त्याग नहीं करना चाहिए था। तथापि हम वाइसराय महोदय का ध्यान इस अत्यंत आवश्यक प्रश्न की ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि क्या सीमा प्रांत और युक्तप्रांत की बेजा कार्रवाइयों का फल सारे भारत पर न पड़ने देने के लिए सरकार का कुछ कर्तव्य नहीं था। क्या वाइसराय महोदय की व्यक्तिगत उच्चता के लिए यह किसी प्रकार का धब्बा होता कि वे महात्मा गांधी के निवेदन को स्वीकार कर उनसे देश की परिस्थिति पर स्वतंत्र बातचीत करते। हमारा विश्वास है कि असेंबली के सदस्यों के सामने वाइसराय महोदय ने जो ऊपर उद्धृत की हुई विनीत वाक्यावली कही ऐसी ही खुले दिल से यदि महात्मा गांधी से बातचीत होती तो उसका देश की राजनीतिक परिस्थिति पर बड़ा ही शुभ फल पड़ता और जो तूफान उठा था वह दब जाता। यदि सरकार का पक्ष इतना पुष्ट था जितना वाइसराय महोदय बतलाते हैं तो महात्मा गांधी अवश्य कांग्रेस की गलती स्वीकार करते और उसे नेकसलाह देते, ऐसा हमारा विश्वास है। ऐसी अवस्था में इसका अवसर न देकर सरकारी पक्ष को निर्बल बनाया गया है। यह निर्बलता जितनी जल्दी दूर की जाए उतना ही अच्छा है। पर वाइसराय महोदय के भाषण में कांग्रेस से किसी प्रकार की संधि न करने की जो ध्वनि निकलती है उससे यह दुर्बलता दूर नहीं होगी और भी बढ़ेगी। कांग्रेस के साथ समझौते का द्वार बंद करने का हम विरोध करते हैं।

(गुरुवार, 28 जनवरी 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# आर्डिनेंसों की सख्ती

जब साधारण सभ्य कानून और लोक व्यवस्था का उल्लंघन करते हुए कानून को, आर्डिनेंस के दुरुपयोग को क्या कहना चाहिए, यह हम नहीं कहना चाहते। अभी उस दिन संसार भर के चार हजार सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों और मनीषियों ने जिनमें ब्रिटिश और भारतीय भी सम्मिलित हैं, एक विज्ञप्ति निकालकर सभी सभ्य राष्ट्रों से अपील की थी कि वे धार्मिक और राजनीतिक कैदियों के साथ सद्व्यवहार करें। पर हमारे देश के लिए तो वह नक्कारखाने में तूती की आवाज ही सिद्ध हुई। यू.पी. के पिछले इमर्जेंसी आर्डिनेंस का प्रांतीय कौंसिल में श्री चिंतामणि ने विरोध किया था तब सरकार की ओर से यह धीरज धराया गया था कि उसका बहुत ही सीमित क्षेत्र में बड़े ही संयम से प्रयोग किया जाएगा और वाइसराय लार्ड विलिंग्डन भी एक से अधिक मर्तबा अपनी अखिल भारतवर्षीय आर्डिनेंस परंपरा के संबंध में इसी बात को दोहरा चुके हैं तथापि वे दोहराने भर को ही थे। उनके कुछ मातहतों से ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने केवल इस वाक्य को अच्छी तरह सुना और समझा है कि राज्य की संपूर्ण ताकत से आंदोलन का दबाया जाएगा। जब बंगाल सरकार श्री सेनगुप्त को भारतभूमि में पदार्पण करने के पहले ही इटालियन जहाज में पकड़ने की उतावली दिखाकर नजीर पेश कर रही है और संयम तो दूर अंतर्राष्ट्रीय विधान पर भी संदिग्ध रीति से आचरण करती है तब छोटे-मोटे अफसरों की तो बात ही निराली है।

बड़े ही मौतदिल विचारों के बूढ़े श्री फिरोज सेठना ने विज्ञप्ति निकाली है कि *बांबे क्रॉनिकल* के संपादक श्री ब्रेल्वी तथा उन्हीं की कोटि के प्रतिष्ठित आदमियों पर यह हुक्म तामील करना कि वे पुलिस चौकी पर जाकर हाजिरी लिखाया करें अनुचित है और यह आशा करना कि वे वैसा करेंगे, बेवकूफी है। ऐसी-ऐसी कितनी बेवकूफियां देशभर में की जा रही हैं इसकी गिनती हमारे वश की बात नहीं है। मद्रास के प्रमुख न्याय विशारदों की एक सूचना पत्रों में छपने के लिए आई है जिसमें आर्डिनेंस राज्य के अंदर पुलिस के लाठी-चार्ज के कानूनी पहलू पर विचार किया गया है। उनका मत है कि गैरकानूनी करार दी गई संस्था के सदस्य उस संस्था के कार्यक्रम को पांच से अधिक संख्या में एक साथ मिलकर कर रहे हों तब वे पुलिस द्वारा हटाए जा सकते हैं। पांच से कम संख्या में अलग-अलग काम करने वाले गैरकानूनी संस्था के सदस्यों अथवा दृश्य देखने वाली जनता को बल से तितर-बितर करने का अधिकार कानून नहीं देता। तितर-बितर करने के ही उद्देश्य से कम से कम शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। भागते हुए गिरोह के घेरने अथवा गिरे हुए व्यक्ति पर बेंत चलाने का अख्तियार पुलिस को नहीं है। इसी तरह के और भी प्रतिबंध हैं, हम नहीं कह सकते कि कानूनी दृष्टि से वाइसराय और उनके मातहत इसे स्वीकार करेंगे या नहीं। पर देश में आए दिन जो दमनचक्र चल रहा है उसमें इसकी जोर-शोर से अवहेलना की जा रही है। कांग्रेस की कार्रवाई को गैरकानूनी कहकर उसे दबाने में सरकार अपने विशेषाधिकारों और आर्डिनेंसी कानूनों के रहते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गैर कानूनी काम करे तो क्या कहा जाएगा? कांग्रेस की ओर से मुकदमों की पैरवी नहीं की जाती और न मुकदमे चलाए जाते हैं। इसलिए इस विषय में गवर्नमेंट की और भी जिम्मेदारी है कि कानून की पाबंदी पूरी तौर से करावे।

कानून को बारीक पहलू को छोड़कर यदि उदार और दूरदर्शी दृष्टि से देखा जाए तो मालूम पड़ेगा कि सरकार की वर्तमान नीति इतनी कठोर है जितनी सिपाही विद्रोह के जमाने से कभी नहीं थी। आर्डिनेंस तो पिछले वर्ष भी थे पर आज की तरह सख्ती नहीं की जाती थी। उस बार प्रतिष्ठित सज्जनों को जेलों में अच्छे दर्जे का रहन-सहन और सुविधाएं प्राप्त थीं। इस बार समाज के माननीय और संपन्न व्यक्तियों को भी सी क्लास में रखा गया है जिसका ताजा उदाहरण हमारे प्रांत के प्रसिद्ध पत्र *प्रताप* के संपादक पं. बालकृष्ण शर्मा का है। पिछली बार महिलाओं की गिरफ्तारी में संकोच किया जाता था और अधिकांश को सादी कैद दी जाती थी और अच्छे दर्जे के सुभीते मिलते थे पर इस बार उन्हें कड़ी सजाएं दी गई हैं और कुछ भी रियायत नहीं की गई। उस बार व्यापारियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं किया जाता था जिसके कारण इस बार कानपुर के प्रमुख व्यापारियों के डेपूटेशन को शिकायत करनी पड़ी और बंबई के व्यापारियों का असंतोष बढ़ा। यात्रा के साधनों को बंद करने, खद्दर पहने व्यक्तियों को उनके नागरिक अधिकारों से वंचित करने के दृश्य पहले इस तरह नहीं देखे गए। सामूहिक रूप से पूरे प्रदेश में इतनी सख्ती उस बार नहीं की गई जिसके कारण इस बार भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारों के मुसलमान सरकारी कठोरता का प्रतिवाद करने को एकत्र हुए हैं। सीमा प्रांत में प्रेस पर इस तरीके का नियंत्रण नहीं था कि घटनाओं का जो कुछ विवरण मिले प्रायः सरकारी विज्ञप्तियों से ही मिले। पुलिस की कार्रवाइयों में भी रंगीन ठंडा पानी छिड़ककर भीड़ भगाने आदि की विविधता और विचित्रता की वृद्धि हुई है पर इसे तो मामूली बात समझना चाहिए। जेलों के व्यवहार के संबंध में अब तक काफी समाचार नहीं मिले, पर श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजी तथा अन्य कतिपय व्यक्तियों को स्थानांतरित कर उनके संबंधियों का उनसे मिलना कठिन कर देना उचित नहीं कहा जाएगा। जेल-भोजन में सुधार के संबंध में मद्रास के विशेषज्ञ ने जो सलाह दी है क्या सरकार पर उसका कोई प्रभाव पड़ा?

आर्डिनेंसों के प्रयोग में ज्यादा सख्ती करने का प्रभाव बुरा पड़ेगा। इस बारे में संदेह नहीं किया जा सकता। वाइसराय महोदय राज्य की संपूर्ण शक्ति से कांग्रेस का मुकाबला करने के लिए तैयार हैं और किसी प्रकार के समझौते के पक्ष में नहीं हैं। 1930 के सत्याग्रह में ब्रिटिश अनुदार दल के मिस्टर चर्चिल आदि 'अंत तक युद्ध' (Fight to the finish) का राग अलाप रहे थे और ऐसा कुछ कांग्रेस नेता भी कहते थे। इस बार सरकारी नीति इतनी सख्ती और व्यापक रीति से इस्तेमाल की गई है और वाइसराय महोदय इतनी दृढ़ता से उस पर आमादा है कि 'अंत तक युद्ध' की बात सच जान पड़ रही है। तथापि 'अंत तक युद्ध' की भावना चल नहीं सकती और न अंत तक युद्ध होना चाहिए। सरकार की इसी युद्ध तत्परता के कारण उसके अहलकार आर्डिनेंसों का जोर-शोर से उपयोग कर रहे हैं और उन्हें रोकने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का उपाय नहीं किया जा रहा। वाइसराय महोदय ने उस निरस्त्रीकरण सम्मेलन से बड़ी आशा प्रकट की है जिसका भविष्य अब तक स्पष्ट नहीं है। ऐसी हालत में लार्ड विलिंग्डन को संसार में शांति के लिए अत्यधिक आशावादी समझना चाहिए। पर शांति संबंधी उनकी आशावादिता कांग्रेस के साथ युद्ध करने में नहीं दीख पड़ती। यह युद्ध की नीति किस तरह स्थायी हो सकेगी इसकी कल्पना हम नहीं कर सकते। इन आर्डिनेंसों के बाद फिर नए आर्डिनेंस बन सकते हैं, लार्ड विलिंग्डन के उपरांत भी उनकी नीति पर अमल करने वाले वाइसराय आ सकते हैं। ब्रिटिश अनुदार दल का राज्य चिरंजीवी हो सकता है पर यदि भारत को नवीन विधान देने की बात सच है तो कांग्रेस और महात्मा गांधी के साथ किसी न किसी समय संधि करना अनिवार्य ही है। नए विधान का काम सफल हो तब भी और असफल हो तब भी संधि और मेल-जोल की आवश्यकता पड़ेगी ही। यह एक व्यावहारिक सत्य है। आज जब संसार में शांति की स्थापना के प्रयास हो रहे हैं तब भारतीय शांति के संबंध में इस व्यावहारिक सत्य को समझना चाहिए।

देहली में पं. मदन मोहन मालवीयजी की अध्यक्षता में भारत के भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों को संग्रह करने के आयोजन का हम स्वागत करते हैं। हमारी आशा है कि यदि देश का प्रभावशाली मत एक होकर विचार करेगा तो वह वर्तमान राजनीतिक स्थिति के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए उसके सुधार का उपाय किए बिना नहीं रहेगा। लड़ाई के समय वृत्तियां संयमित नहीं रहतीं इसलिए जो दल युद्धप्रिय नहीं हैं और शांति चाहते हैं उन्हें व्यक्तिगत रीति से बहुत कुछ लांछित भी होना पड़ता है। पर उस लांछना की चिंता न कर देश के कल्याण के लिए उद्योग करना चाहिए। जब तक यह उद्योग सफल नहीं होता तब तक आर्डिनेंसों की सख्ती के दूर होने की संभावना नहीं है, इसलिए शांतिप्रिय नेताओं और वर्गों की शीघ्रता और तत्परता दिखानी चाहिए।

(रविवार, 31 जनवरी 1932)

## चीन-जापान संघर्ष

उधर पश्चिम में यूरोप और अमेरिका मिलकर निरस्त्रीकरण सम्मेलन रच रहे हैं इधर पूर्व में चीन-जापान से युद्ध के नक्कारे सुन पड़ने लगे। लीग ऑफ नेशंस के लिए यह कहना आसान है कि वह अंतर्राष्ट्रीय संस्था है जो क्षुद्र राष्ट्रीयता को नष्ट कर संसार में शांति की स्थापना करना चाहती है। पर मौके पर शरणागत की रक्षा करने और अन्यायी को दंड देने में आनाकानी कर वह अपने को केवल स्वार्थी साम्राज्यवादी राष्ट्रों का एक गुट्ट सिद्ध करती है। संसार में शांति की स्थापना करना यह एक महत कार्य है जो यदि लीग ऑफ नेशंस के द्वारा संभव हो सका तो संपूर्ण पश्चिम राष्ट्रों को इतिहास में अमर कीर्ति प्राप्त होगी। पर अभी उसके लक्षण नहीं दीख पड़ते। जापान भी राष्ट्रसंघ का सदस्य है और चीन भी। जापान शक्तिशाली और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साम्राज्यवादी राष्ट्र है और चीन हाल तक पराधीन रहा और जब से स्वाधीन हुआ तब से कूटनीतिज्ञों के शिकंजे में जकड़ा रहा। राष्ट्रीय समृद्धि को जिस एकता की आवश्यकता है उसका विकास अब तक चीन में नहीं हुआ। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कभी-कभी भारत को स्वतंत्रता पाने के योग्य बनने का उपदेश देते हुए चीन का उदाहरण देते और कहते हैं स्वतंत्र चीन से तो परतंत्र भारत ही अच्छा। उन राजनीतिज्ञों का यह साम्राज्यवादी प्रोपेगेंडा चीन के संबंध में साम्राज्यवादी राष्ट्रों की नीति देख लेने पर समझ में आ जाता है। चीन के मंचूरिया प्रदेश पर हमला करने वाले जापान ने राष्ट्रसंघ के कायदों को तोड़कर मनमाने तरीके पर व्यवहार किया, पर राष्ट्रसंघ के प्रमुख सदस्य फ्रांस और इंग्लैंड चुप्पी साधकर रह गए और अमेरिका भी कोई मदद न पहुंचा सका। अब वह जापान अपनी तृष्णा बढ़ाकर चीन के शंघाई शहर पर चढ़ाई कर रहा है जहां ब्रिटेन और अमेरिका आदि के हित भी खतरे में पड़ सकते हैं। एक बार फिर चीन ने राष्ट्रसंघ को पुकारा है कि वह उसकी मदद करे। मदद क्यों, रक्षा करे, पर अब तक वैसे चिह्न नहीं दीख पड़ते। शंघाई का जो विभाग 'अंतर्राष्ट्रीय भूमि' (International Settlement) है उसे जापान अपनी फौज का टिकाव बनाना चाहता है, उसे इतनी स्पर्द्धा हो रही है। तथापि क्या ब्रिटेन और अमेरिका विरोध प्रदर्शन के अतिरिक्त किसी निश्चित रीति से जापान को सबक सिखा सकते हैं?

जापान ने चीन में स्थित सोवियत रूस की साउथ-ईस्टर्न रेलवे से अपनी फौज को ढोने की अनुमति चाही थी पर रूस ने चीन और जापान दोनों ही को अपनी रेलवे से या अन्य किसी प्रकार से कोई भी मदद न देने और तटस्थ रहने का इरादा दिखाया। इस पर खबर है कि जापान ने बलपूर्वक उक्त रूसी रेलवे पर अधिकार कर लिया है। तथापि रूस अब तक चुप है। इटली के शंघाई स्थित राजदूत की पत्नी मुसौलिनी की पुत्री है इसलिए इटली भी विशेष उत्सुकता के साथ स्थिति का निरीक्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहा।

प्रश्न उठता है कि जापान इतनी धृष्टता किस बल पर कर रहा है। राष्ट्रसंघ के नियमों का अपालन कर और उससे इस्तीफा देने की धमकी देकर जापान जो उग्र रूप दिखाता है क्या यह यूरोप के लिए अपमानजनक नहीं है? तब जापान ने ऐसा क्यों किया? क्या उसकी साम्राज्यवादी तृष्णा उसके विवेक को हजम कर गई है? क्या वह ऐसी स्थिति का मुकाबला करने को तैयार है जब यूरोपीय राष्ट्र और अमेरिका उसके विरुद्ध लोहा लेने को सन्नद्ध होंगे? यह जरूर है कि शंघाई की युद्ध भूमि जापान से नजदीक होने के कारण उसे हर प्रकार का सुभीता है और अनुमान किया जाता है कि उस स्थान पर अमेरिका भी जापान का मुकाबला करने में असमर्थ नहीं हो सकता, तथापि क्या जापान अपनी शक्ति पर इतना विश्वास कर चुका है? आर्थिक और व्यावसायिक संबंध तोड़कर यूरोप और अमेरिका के राष्ट्र जापान को जो धक्का पहुंचा सकते हैं, क्या जापान उसे सहन करने को तैयार है?

इन सब प्रश्नों का उत्तर देना बड़ा ही कठिन है। बाहर से देखने पर तो यह मालूम पड़ता है कि जापान ने अपने आचरण से संसार के सभी बड़े-बड़े राष्ट्रों को अपना विरोधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बना लिया है पर इस संबंध में एकमत नहीं है। मंचूरिया पर कब्जा करने के समय भी जापान ने विज्ञप्ति की थी कि वह केवल मंचूरिया स्थित जापानी प्रजा की रक्षा की व्यवस्था कर रहा है और इस बार शंघाई पर चढ़ाई करके भी उसने ऐसी ही घोषणा की है। जापान की नीति का विलायत के साम्राज्यवादी पत्र ने समर्थन किया था जिसका कारण विल्फ्रेड वेलाक महोदय यह बतलाते हैं कि भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सिक्का जमा रखने की इच्छा करने वाले ब्रिटिश साम्राज्यवादी चीन में जापान की साम्राज्यवादी चढ़ाई का विरोध नहीं कर सकते। यदि ऐसी बात है तो वर्तमान सरकार के मौजूद रहते यह संभावना नहीं है कि ब्रिटेन जापान के विरुद्ध कार्रवाई करेगा। फ्रांस अपने घरेलू मामलों में व्यस्त है और न भी हो तो क्या? अमेरिका भी फिलहाल पूरा हाल जानने और आत्मरक्षा करने का ही मंसूबा रखता है। आश्चर्य नहीं कि जापान यूरोप के वर्तमान व्यापार संकट, आर्थिक दुर्दशा और आपसी द्वंद्व से परिचित होकर अवसर से लाभ उठाने का इरादा करता हो। मंचूरिया पर कब्जा करते समय उसने देख लिया है कि यूरोप को इस समय शस्त्र ग्रहण करने का समय नहीं है और ऐसा मौका फिर नहीं आ सकता।

यद्यपि शंघाई के इस संघर्ष का आरंभ यह बतलाया जाता है कि चीनियों की ओर से जापानी नागरिकों पर आक्रमण किया गया और कुछ हत्याएं भी हुईं। पर इसके बदले में जापान ने जो पांच लाख की आबादी के चीनी शहर को तहस-नहस कर डाला वह अत्यधिक निंदनीय है। कुछ चीनियों ने प्रारंभ में उपद्रव किया होगा पर बाद को जापान की ओर से लगाई प्रायः सब शर्तों को चीन ने स्वीकार कर लिया था। चीन शांति स्थापना के लिए उत्सुक था, लाचार था क्योंकि अकेले जापान का मुकाबला कर सकने में वह समर्थ नहीं था। फिर भी जापान ने अपने आक्रमण द्वारा धन जन की जो बड़ी क्षति पहुंचाई है क्या वह किसी तरह उचित है?

चीन पर इस समय विपत्ति के पहाड़ टूटे हुए हैं, तथापि समाचारों से विदित होता है कि वह अपनी क्षीण शक्ति से भी बलवान जापान का मुकाबला करेगा। वह ऐसा करने को बाध्य है। चीनी जनरल च्यांग काई शेक के संरक्षण में चीन राष्ट्र की सेना जापान का सामना करने को रवाना हुई है और देशभक्त चीन ने राष्ट्र के इन सैनिक सेवकों को समारोह के साथ विदा किया है। सेना में भर्ती होने के लिए सेनापति काई शेक ने जो मर्मस्पर्शी अपील की है, उसका आशातीत प्रभाव पड़ा है। तथापि साम्राज्यवादी जापान की सैनिक शक्ति के सामने चीन की सेना बहुत समय तक कैसे ठहर सकेगी?

क्या इस आपत्काल में चीन की रक्षा का कोई उपाय है? हम युद्ध के पक्ष में कदापि नहीं; विशेषकर संसार की वर्तमान आर्थिक उलझनों को देखते हुए युद्ध को और भी घातक समझते हैं। कुछ पश्चिमी राष्ट्र यह आशा करते हैं कि पूर्व में कहीं युद्ध छिड़े तो उनका व्यापार संभले, पर इस अत्यंत स्वार्थपूर्ण और संकीर्ण नीति को हम निंद्य समझते हैं। आर्थिक कारणों से हो अथवा और किन्हीं कारणों से हो, जब पश्चिमी राष्ट्र निरस्त्रीकरण सम्मेलन की योजना कर रहे हैं तब पूर्व में भयंकर युद्ध खड़ा करना एशिया के हितों के सर्वथा विरुद्ध होगा। एशिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का अहित संसार का भी अहित है, इसलिए युद्ध का बंद होना और भी आवश्यक है। क्या जापान स्वतः युद्ध बंद करने को तैयार है अथवा क्या चीन अपनी शक्ति से युद्ध को रोक सकता है? इन प्रश्नों का उत्तर अभी 'नहीं' में ही दिया जाएगा। तब क्या राष्ट्रसंघ का गौरव बखान करने वाले यूरोपीय राष्ट्र कुछ उद्योग करेंगे? अब तक तो कोई प्रमाण नहीं क्योंकि यद्यपि राष्ट्रसंघ की अवहेलना की गई है और शंघाई के ब्रिटिश, अमेरिकन आदि राजदूतों और निवासियों की स्थिति भी खतरे से खाली नहीं है फिर भी जापान से कलह मोल लेने को कोई भी तैयार नहीं।

## *गंगा* का वेदांक

बिहार प्रदेश से हिंदी की एक मात्र पत्रिका *गंगा* निकलती है। उसी का यह वृहत विशेषांक वेदांक प्रकाशित हुआ है। यह बड़े प्रसन्नता की बात है कि हिंदी पत्रकार जगत में अब परिश्रम और पांडित्य का मूल्य समझा जाने लगा है और इस कार्य में जो वस्तु सबसे अधिक आवश्यक है, धन, वह भी प्राप्त होने लगा है। *गंगा* के और विशेषकर इस वेदांक के लिए उसके प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं। संपादक महोदयों को भी इस अंक की मूल्यवान सामग्री जुटाने और अनेक लेखों का अनुवाद करने में पूरी मेहनत करनी पड़ी है। हिंदी में मौलिकता की कुछ ऐसी परिभाषा बन रही है कि सिर से पैर तक मौलिकता ही मौलिकता नजर आती है। परंतु ऐसी मौलिकता साहित्य में स्वाध्याय की प्रगति नहीं होने देती जिसके कारण पांडित्य का आदर नहीं होता। *गंगा* के वेदांक में अनेक लेखक भिन्न भाषा-भाषी हैं—यह हमारी अनोखी मौलिकता का ही परिणाम है। जो लोग प्राचीन समस्त वस्तुओं को गड़े मुर्दे समझते हैं उनकी बात निराली है पर जो हिंदी में अध्ययन और पांडित्य की वृद्धि देखना चाहते हैं वे इस वेदांक में प्राप्त मूल्यवान सामग्री से विशेष प्रसन्न होंगे। इस वेदांक को हम संपूर्ण वैदिक साहित्य की एक सुंदर अनुक्रमणिका कह सकते हैं। इसके प्रस्तुत करने में जो महत् उद्योग संपादकों ने विशेषकर पं. रामगोविंद त्रिवेदीजी ने किया है वह हमारी स्तुति का विषय है।

## *बाल सखा* का विशेषांक

इंडियन प्रेस प्रयाग से निकलने वाले बालकोपयोगी प्रसिद्ध मासिक पत्र *बाल सखा* का विज्ञापित जनवरी का विशेषांक प्रकाशित हो गया। इसके संपादक ठाकुर श्री नाथ सिंह का परिचय उस सामग्री से है जो बालकों के लिए मनोरंजक हो सकती है। हमारे देश में बालकों की शिक्षा की उपदेशात्मक शैली ही अब तक विशेष रूप से प्रचलित रही है, इसलिए *बाल सखा* के इस अंक में भी वह थोड़े मात्रा में मौजूद है। उदाहरण के लिए प्रथम पृष्ठ में छपी 'बांसुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वाला' कविता और बक्षीजी का पद्य। बालकों के लिए इन दोनों का कोई मूल्य नहीं। इसके अतिरिक्त जो सामग्री है उसमें अधिकांश बहुत ही आकर्षक अतः प्रभावशाली है। अंग्रेजी के बालकोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं की ही कोटि की हिंदी में पत्र-पत्रिकाएं निकालने के लिए यह परम आवश्यक है कि हम अपने देश के बालकों से घनिष्ठ रीति से परिचित हों और जो समस्याएं बालकों की शिक्षा आदि के विषय की हों उन्हें बालकों के उपयुक्त खेल तमाशे की भाषा में प्रकट करें। हम यह देखकर प्रसन्न है कि *बाल सखा* के इस विशेषांक में अनेक लेख ऐसे हैं। इसके लिए संपादक श्री ठाकुर श्रीनाथ सिंहजी को हमारी बधाई।

(गुरुवार, 4 फरवरी 1932)

## निरस्त्रीकरण सम्मेलन

चीन और जापान से भयंकर शस्त्र संचालन का कोलाहल सुनने के साथ ही सुदूर पश्चिम से शांति की वीणा भी सुन पड़ी है इसे संसार की द्वैत बुद्धि का ही परिचय समझिए। एक ओर जापान विगत महासमर में सम्मिलित न होने के कारण अच्छा सुदृढ़ हो चुका है और आज उसकी लड़ने की तबीयत हो रही है, दूसरी ओर यूरोपीय शस्त्रसंपन्न राष्ट्र महायुद्ध के भयंकर परिणामों का दृश्य देख चुके हैं और उनका आर्थिक शरीर अब तक घायल ही बना हुआ है। युद्ध की यादगार अभी ताजा है और जख्म भी पूरा नहीं हुआ इसलिए पश्चिमी राष्ट्रों में युद्ध के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई है और निरस्त्रीकरण सम्मेलन के सभापति श्रीयुत हेंडरसन ने प्रथम समारोह के दिन सूचना दी है कि सम्मेलन को असफल नहीं होने दिया जाएगा और उससे संसार शांति और सहयोग के ऊंचे धरातल पर पहुंच सकेगा। यूरोप के सबसे बड़े धर्मगुरु रोम के पोप ने शांति स्थापना के लिए मत प्रकट किया है और अपील निकाली है और ब्रिटेन के धर्माचार्य केंटरबरी के आर्च विशप ने संपूर्ण क्रिश्चियन राष्ट्रों से सम्मेलन को सफल करने का निवेदन किया और आशा प्रकट की है। आजकल की सभ्यता में धर्मगुरुओं का प्रभाव नाममात्र को ही समझना चाहिए और नैतिक उपदेशों का यूरोप के राष्ट्रों पर कोई विशेष असर होना कठिन ही है। लीग ऑफ नेशंस को संसार के सभी बड़े-बड़े राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त है और वह चाहे तो युद्ध को बलात बंद कर सकती है पर जापान ने लीग के नियमों को तोड़कर संपूर्ण यूरोपीय राष्ट्रों के सामने जो हिमाकत की है वह ऐसी बात नहीं जो निरस्त्रीकरण सम्मेलन की सफलता का लक्षण हो। यदि जापान लीग आफ नेशंस का सदस्य होते हुए भी उसका तिरस्कार कर सकता है और यदि यूरोप तथा अमेरिका शक्ति होते हुए भी शांति स्थापित नहीं कर सकते तो इसका रहस्य कौन समझ सकता है?

वैज्ञानिक प्रवर आइंसटाइन ने *भारत* के पिछले अंक में उद्धृत अपने महत्वपूर्ण लेख में कुछ व्यावहारिक विधियां बतलाई हैं जो निरस्त्रीकरण सम्मेलन को सफल बना सकती हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संसार शांति में सहायक बन सकती हैं। उनके मत में संकीर्ण राष्ट्रीयता के कारण व्यापक अंतर्राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो पाता और संघर्ष होते हैं। इनके दूर करने के लिए अनिवार्य सैनिक सेवा का नियम उठा देने की तजवीज करते हैं। उनकी दूसरी सिफारिश यह है कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायागार के अधिकार में ऐसी शक्ति रहनी चाहिए जिसे सब सम्मिलित राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त हो और जो आर्थिक तथा सैनिक प्रतिकार द्वारा अपराधी राष्ट्र को दंड दे सके। अवश्य ही प्रोफेसर आइंसटाइन की ये विधियां बहुत ही व्यावहारिक और उपादेय हैं। यदि 'वाह्याभ्यंतर शुचिः' हो जाए तब तो युद्ध का नाम ही मिट जाए और रामराज्य की भी अवस्था हो जाए। परंतु रामराज्य की स्थापना के लिए समता के भाव की भी बड़ी आवश्यकता है। पराधीन राष्ट्रों को स्वाधीन बनाने और निर्बल राष्ट्रों का पीड़न न करने की वृति जब तक शक्तिशाली साम्राज्यवादी राष्ट्रों की नहीं होती तब तक अंतर्राष्ट्रीय भावना की प्राप्ति कठिन ही है। यदि आज जापान अपनी महती शक्ति से चीन में आतंक फैला रहा और कब्जा जमा रहा है तो चीन के लिए यह स्वाभाविक ही नहीं, उचित और आवश्यक भी है कि वह राष्ट्रीयता के नाम पर अपने देश के बहादुरों को पुकारे कि वे आपत्काल में राष्ट्र की रक्षा करें। वैसी अवस्था में अनिवार्य सैनिक सेवा भी अनुचित नहीं कही जा सकती। वह राष्ट्रीयता अंत में मनुष्य समाज का कल्याण करने वाली ही सिद्ध होगी। इसलिए यदि अंतर्राष्ट्रीय न्यायागार की स्थापना की जाए और संकीर्ण राष्ट्रीयता को रोकने की व्यवस्था की जाए तो इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि न्यायागार पर परतंत्र और निर्बल देशों की रक्षा का विशेष उत्तरदायित्व रहे।

प्रतिष्ठित ब्रिटिश पत्रों ने निरस्त्रीकरण सम्मेलन की सफलता की मुख्य कसौटी यह रखी है कि ब्रिटेन इस अवसर पर उदार और दूरदर्शी बनकर निरस्त्र बनने के पक्ष में कदम बढ़ाता है या नहीं। परंतु ब्रिटेन की वर्तमान 'राष्ट्रीय' सरकार इस मामले में कहां तक आगे बढ़ सकेगी और निरस्त्रीकरण सम्मेलन के मजदूर दली अध्यक्ष मिस्टर हेंडरसन की बातों की कहां तक कद्र करेंगे यह कहा नहीं जा सकता। फ्रांस की इस सम्मेलन के साथ विशेष दिलचस्पी नहीं है और समाचारपत्रों से विदित है कि वह उसकी कार्रवाई को भय और संदेह की दृष्टि से देखता है। भयानक अर्थकष्ट के कारण यूरोप के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों ने टेरिफ की दीवालें खड़ी कर एक-दूसरे के प्रति जो भेदभाव बढ़ाया है वह भी सम्मेलन को सफल बनाने में अनिष्टकर ही होगा। युद्ध ऋण और व्यापारिक कर्ज की समस्याओं को लेकर अमेरिका और यूरोप के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में मन मलीनता बढ़ी है और पारस्परिक सहयोग के द्वारा काम बन सके ऐसे लक्षण कम ही हैं। यह भी कहा जाता है कि चीन और जापान के झगड़े को निपटा सकने की क्षमता बहुत अंश तक निरस्त्रीकरण की सफलता का भी निर्णय करेगी। पर अब तक तो उसकी कोई सूचना नहीं मिलती।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध सब-मेरीन के डूब जाने और पचासों मनुष्यों के जल समाधि लेने का करुण संवाद हाल में ही प्राप्त हुआ है। विज्ञान ने लड़ाई के साधनों को बढ़ाकर जो विषम स्थिति संसार के सामने उपस्थित की है उसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण इस सब-मेरीन के डूब जाने से मिल जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि सब-मेरीन किसी युद्ध में नहीं डूबा, शांति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समय में संयोगवश डूबकर कितने ही बड़े अफसरों और नाविकों के प्राण अपहरण किए। ऐसे वैज्ञानिक आविष्कारों से संसार को कितना बड़ा खतरा है यह प्रकट ही है। जिस राक्षसीशक्ति को विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में सौंप दिया है उसका कोई भी सदुपयोग नहीं हो सकता बल्कि उससे संपूर्ण मनुष्य जाति की स्थिति अनिश्चित हो गई है। इसे दूर करने की परम आवश्यकता है। निरस्त्रीकरण सम्मेलन को यदि सफल होना है तो उसे अनिष्टकारी वैज्ञानिक आविष्कारों के नियंत्रण का भी प्रबंध करना होगा।

निरस्त्रीकरण सम्मेलन इस युग की एक अत्यंत महत्वपूर्ण पर साथ ही साथ पेचदार घटना है। इसके संबंध में हम साधारण जन जो राय दे सकते हैं या विचार प्रकट कर सकते हैं उसका वजन अधिक नहीं है क्योंकि इस सम्मेलन के साथ राष्ट्रीय ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति का संबंध होना भी अनिवार्य ही है। तथापि हम उत्सुकता के साथ इसकी गतिविधि देखते रहेंगे।

## मालवीयजी का पत्र

पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने वाइसराय लार्ड विलिंग्डन को देश की वर्तमान स्थिति के संबंध में जो अत्यंत महत्वपूर्ण पत्र लिखा है और जो हितकारिणी सम्मति प्रकट की है उसे स्वीकार करना अथवा न करना वाइसराय की मर्जी की बात है। पर संपूर्ण स्थिति का ऊहापोह करके मालवीयजी ने जो अर्हणीय कार्य किया है उसका आभार हम सबको मानना चाहिए। इस समय जब देश में दमन का दौरदौरा है और क्षणिक परिस्थिति में ही संपूर्ण ध्यान अटका है तब मालवीयजी की-सी दूरदर्शिता भारत और ब्रिटेन दोनों के लिए कल्याण की वस्तु है। भारत में और भारत के बाहर प्रेस पर सेंसर बैठाने की अपेक्षा संधि के संबंध में मालवीयजी के खरे उद्‌गारों को सुनने और मानने में अधिक दूरदर्शिता, उदारता और साहस है। कड़े शासन का प्रयोग करते हुए एक महीने से ऊपर हो गया। सरकार देख रही है कि उसे अधिक से अधिक कड़ाई का ही इस्तेमाल करना पड़ रहा है। बंबई के संबंध में अंतिम सरकारी विज्ञप्ति यह है कि वह पुलिस को कानून द्वारा दिए गए सब अधिकार सौंप रही है। क्या यह आंदोलन को दबाने का कोई आशाजनक समाचार है? तब क्यों नहीं सरकार मालवीयजी के आग्रह के अनुसार संधि के प्रस्ताव को स्वीकार करती और एक विकट स्थिति से देश को उबारने का श्रेय प्राप्त करती है?

## ब्रह्मावर्त का ब्राह्मण कुल
## (समाज सुधारकों के जानने योग्य बातें)

प्राचीन ब्रह्मावर्त प्रदेश के आस-पास इन दिनों बबुरीवन की आशातीत उन्नति हो रही है जिसके लकड़ी के कट्टे काट-काट के कानपुर शहर के मिलों और भट्ठों, होटलों और रेल के इंजनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में झोंके जाते हैं, जिसके फल (सेंगरा) पशुओं के लिए मेवे मिठाई से बढ़कर ईप्सित हैं और जिसके बीते-बीते भर तक के कांटे वहां वालों के चुभने के काम में आते हैं। कभी रायबरेली-ऊंचाहार-कानपुर के ब्रांच लाइन से होकर गुजरने का मौका लगने पर बैसाख-जेठ के दोपहर में दो-दो तीन-तीन कोस लंबे सपाट ऊसर और बंजर के दृश्य देखने को मिल सकते हैं। अगर गर्म हवा तेजी से चल रही हो और लू की लपटें आपकी कोमल आंखों को बंद किए देती हो तो भी एक बार हरा-नीला चश्मा लगाकर और कांच के जंगले बंद कर मौका देख लेने की हम सिफारिश करते हैं। आप कुछ दूर पर कई आदमियों को बैलगाड़ी में बैठे, किसी आदमी को रेल का तार लांघ कर पार होते अथवा किसी स्त्री को लंबा बांस लिये जाते देख रहे होंगे। वे बैलगाड़ी वाले संभव है किसी बारात के सिलसिले में जा रहे हों क्योंकि लग्नों का यही मौसम है, वह अकेला आदमी जो संभव है जर्मन लड़ाई का बूट पहने हो, संभव है बाजार जा रहा हो क्योंकि बाजार का यही वक्त है और वह औरत जो बांस लिये जा रही है या तो पके आम गिराकर अपना पेट भरेगी या बबूल की सेंगरी गिराकर अपने पशुओं का पेट। छाता उनमें से एक भी नहीं लगाए होंगे क्योंकि उनकी ऐसी आदत नहीं है। पर आप अब आंखें फेर लीजिए नहीं तो झुलस जाएंगी।

गंगा और जमुना की जलधाराओं के सन्निकट बाहर के यात्री को ये दृश्य आश्चर्यजनक जान पड़ेंगे पर जो अभ्यस्त हो गए हैं उनके लिए यह रोजमर्रा है। इस प्रदेश में ऋषि-मुनियों ने पंचाग्नि तापी थी पर आज यहां के निवासी अधिक संख्या में आग जैसे घाम में तपते हैं। प्राचीन सुविधाओं के कारण ब्राह्मणों की तपस्या से ब्रह्मावृत्ति ही जागती थी परंतु परिस्थिति विपर्यय के कारण आज इस प्रदेश के रहने वाले 'कान्यकुब्जा, द्विजाश्रेष्ठाः' धूप में तप-तप के क्षत्रिय होते जा रहे हैं। परंतु इस क्षत्रिय शक्ति का कोई उचित उपयोग करने का ज्ञान न होने के कारण इसकी प्रयोगदिशा आजकल आपस में मुकदमे लड़ने की ओर हो रही है जिसके फलस्वरूप क्षत्रियत्व भी नष्ट होता जाता और शूद्रत्व की ओर प्रगति होती जाती है। परंतु अब तक क्षत्रियत्व का पल्ला शूद्रत्व से गुरुतर है जिससे यह सिद्ध है कि ब्रह्मावर्त का प्राचीन ब्राह्मण कुल अपनी पूर्व तपस्या के कारण शनैःशनैः ही अवनत हो रहा है। जिस ठहाकेदार धूप में आजकल के बड़े-बड़े क्षत्रिय (थानेदार वगैरह को हम क्षत्रिय कहते हैं) शिकार खेलने निकलें तो पसीज जाएं और ठंडे भी पड़ जाएं उसमें हमारे ब्रह्मावर्त वासी आएदिन बारात करते, उत्सव मनाते, बाजार करते अथवा पेट भरते हैं। क्षत्रियत्व की मात्रा इतने से ही परखी जा सकती है। स्थूल उदाहरण लेना हो तो यह लेकिन पिछले जर्मन महासमर में ब्राह्मण पलटन में ये लोग ही थे जिन्होंने जौहर दिखाया था।

ब्रह्मावर्तवासी इस श्रेष्ठ द्विजकुल में क्षत्रियत्व की यह वृद्धि क्यों हुई, क्या कोई समाज सुधारक बतला सकता है? नहीं बतला सकता। क्योंकि हमारे युग का समाज सुधारक कुछ चुने हुए रूढ़ि क्रमागत दोषों को दिखा सकता है, इतने से ही वह सुधारक कहलाता है यद्यपि इससे बढ़कर 'सुधारक' शब्द का दुरुपयोग किस प्रकार हो सकता है यह कल्पना करने में हम समर्थ नहीं हैं। शहरों की सभाओं में फूलमाला पहने विधवा विवाह की सिफारिश करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक बात है और समाज के अंतरंग का स्पर्श करके उसकी प्राणाति देखना बिल्कुल ही दूसरी बात। समाज की रीति-नीति ही नहीं उसके वाह्याभ्यंतर संपूर्ण अस्तित्व के अंतर्गत प्रवेश करना अत्यंत आवश्यक है पर समाज सुधारक दूर से खड़ा होकर तमाशा देखने के लिए बनाया गया है। उसे कठपुतली कहना चाहिए।

हमें उनके पास जाकर उनसे मिलकर और उनमें एक होकर देखेंगे तो समझेंगे कि ब्रह्मावर्तवासी क्षत्रिय वृत्ति धारण करने को बाध्य है। इतिहास देखने की उतनी जरूरत नहीं है, यही देख लेना काफी होगा कि उनके आज के जीवन का प्रत्येक पहलू इतना कर्कश है कि कोमल वृत्तियों के विकास का स्वप्न देखना बिलकुल व्यर्थ है।

संपूर्ण प्रदेश में बिछे हुए बबूल के कांटे समाज के भाव के सच्चे प्रतिबिंब और प्रत्यक्ष प्रमाण से हैं, दूसरे की आवश्यकता नहीं। उस समाज की प्रत्येक क्रिया में ये कांटे दीख पड़ेंगे। तपी हुई जमीन पर दोपहर भर चलकर बाजार करने में कांटे हैं, विवाहों तक में कांटे हैं, सब बातें कंटीली हैं और साहित्य में भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी आदि उस प्रदेश के निवासियों की कांटेदार आलोचनाएं प्रसिद्ध ही हैं। जिस समाज में यह सर्वत्र व्याप्त प्रज्वलन हो रहा है उससे सुधारक लोग यह कहने का दुस्साहस कहते हैं कि विधवा विवाह करना चाहिए। यह जले पर नमक लगाने का-सा औचित्य है। लाक्षणिक भाषा में कह सकते हैं कि प्रदेश के संपूर्ण ब्राह्मण समाज की संस्कृति अपना ब्राह्मणतत्व खोकर विधवा हो रही है। पर समाज सुधारकों की यहां तक पहुंच नहीं।

ब्राह्मणत्व से गिरकर जो क्षत्रियत्व क्षणकाल के लिए प्राप्त हुआ है क्या वह भी स्थायी रह सकेगा? लक्षण नहीं देख पड़ते। उस प्रदेश में पहुंचकर यह टूटा-फूटा पद सर्वत्र सुनने को मिलेगा—

*चारि महीना आम खाई*
*चारि महीना अठुली*
*चारि महीना रहित है*
*ससुरारि के सहारे मां*

*झूठ ना कहित है*
*बसित बैसवारे मां*

क्या कोई बतला सकता है कि यह प्राचीनों की उच्छ, ऋत आदि वृत्तियों से कितनी मात्रा में हेय है क्योंकि आज की यह वृत्ति कोई सात्विक त्याग नहीं है, केवल एक अनिवार्य ग्लानिजनक और रुदनशील स्थिति है। यह स्थिति उस प्रदेश भर में व्याप्त हो गई है। इसके कारण वहां के ब्राह्मण कुल का मानसिक और नैतिक पतन अब तीव्र वेग से होने लगा है और शारीरिक भी साथ ही साथ होगा।

इस प्रदेश के अनेक विभागों में गांव के गांव ऐसे मिलेंगे जिनमें निवासियों का अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाग अविवाहित जीवन व्यतीत कर रहा है परंतु वे आजन्म और आमरण ब्रह्मचारी गण भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा नहीं किए हुए हैं, उनके लिए पारिवारिक जीवन असंभव बन गया है और स्त्री सुख से वे सदैव के लिए वंचित हो गए हैं। उनके वंश नष्ट होते जा रहे हैं। गांवों के उजड़े खंडहर इसके साक्षी हैं। प्राचीन ऋषि-मुनि के ऋषिपत्नी और मुनिकन्या आदि अविच्छिन्न अंग थे परंतु आज के उनके वंशजों को यह सुख प्राप्त नहीं है, यह कल्पना बड़ी निर्दय है। ब्राह्मणत्व का नाश हो जाने के बाद इस परिस्थिति में व्यभिचार और अनाचार के बढ़ने की बड़ी आशंका है यद्यपि प्राचीन संस्कारों के कारण इस प्रदेश में अब भी परिस्थिति अधिक भीषण नहीं बन सकी है। परंतु यह संयम शीघ्र ही टूटने वाला है। शहरों में जिस तरह गुंडे सामाजिक शांति और सदाचार में बाधक हैं वही हालत इस प्रदेश के गांवों में शीघ्र ही क्यों नहीं होगी, इसका कोई कारण हमें नहीं मिलता। अनिच्छित ब्रह्मचर्य के नतीजे आजकल में प्रकाशित होने वाले हैं।

प्रत्येक अन्वेषक को यह मालूम होना चाहिए कि इस ब्राह्मण कुल की अधोगति का कारण अधिकांश में अर्थकष्ट, अर्थकष्ट के बाद अशिक्षा, फिर सामाजिक रूढ़ि और अंत में अपरिवर्तनशील प्रकृति है। समाज सुधारकों को चाहिए कि वे इन लक्षणों की परीक्षा करें, फिर अपना नुस्खा बनाएं। अभी जो उनके वे बालविवाह, विधवा विवाह वगैरह के नुस्खे हैं वे नीम हकीमी से भी बदतर और अज्ञानजन्य हैं। समाज के वर्तमान अनिवार्य कर्कश जीवन के मौजूद रहते सुधार की मृदुल सीख खीस दिखाकर चुप ही रहेगी। उसके लिए कुछ नहीं होगा।

(रविवार, 7 फरवरी, 1932)

## मालवीय दिवस

दमन दावानल के ज्वलंत दृश्य के सामने प्रकृति की हरितछवि की ओर किसकी दृष्टि जाती है? तथापि देश ने आज पूज्य मालवीयजी का जन्मोत्सव मनाने का आयोजन करके आत्मलाभ का एक अपूर्व अवसर उपस्थित किया है। आज क्षण भर को हम उस पवित्र चरित्र की सुधि में मग्न होकर सब कुछ भुला सकें तो हमारी वसंत पंचमी सार्थक हो जाए। यद्यपि वसंत पंचमी पूज्य मालवीयजी का जन्म दिवस नहीं है तथापि आज के ही दिन उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना करके अपने तथा समस्त हिंदू जाति के जीवन को नवजन्म दिया था। आर्यगण सदैव से द्विजत्व की श्रद्धा करते आए हैं और आज के दिन देश में जो समारोह किया जा रहा है वह पूज्य मालवीयजी के सच्चे द्विजत्व का ही परिचय है। हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना वसंत पंचमी को हुई थी, मानो संपूर्ण जाति की संस्कृति उस दिन वसंत की ही पुष्पराशि की भांति खिल उठी थी। जातीय जीवन को उसी दिन नवीन श्रीशोभा और नवीन विकास प्राप्त हुआ था। शिशिर के शीत में ठिठुरे हुए समाज को वसंत का जागरण उत्साह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आज ही प्राप्त हुआ था और सुख से सोने की माया छोड़कर आज ही जाग्रति के गीत गए थे। उसी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक और व्यवस्थापक, आत्मा और शरीर पूज्य मालवीयजी का जन्मदिवस यदि वसंत पंचमी के दिन मनाया जाता है तो हम इसे अतीव समुचित समझते हैं। मालवीयजी को पुष्पों से अतिशय प्रीति है और वे पुष्प की सुषमा में ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं। इस दृष्टि से भी पुष्पराशि की जननी वसंत पंचमी के दिन मालवीयजी की आध्यात्मिक अनुभूतियों के निदर्शन स्वरूप जन्मदिवस मनाने की यह तिथि उपयुक्त ही है।

वैदिक काल में प्रकृति की पूजा अनेक रूपों में होती थी। उस समय के ऋषि-मुनि प्रकृति-धर्म के अनुयायी थे। वे तेजपुंज अग्नि देव की, जलदेव वरुण की, इंद्र आदि की अर्चना करते थे। आज भी हम उसी धर्म के अनुयायी होने के कारण महर्षि मालवीयजी की अर्चना करते हैं जिन्होंने अपने तेज से देश को चकित-आलोकित किया, जो अपने प्रत्येक स्वर से राष्ट्र का कल्याण साधन करते हैं, जिनके स्वेदकण ही नहीं, रक्तधारा भी देश की सेवा में सूखती और उसकी आबरू बढ़ाती है, जिनका शरीर संपूर्ण राष्ट्र शरीर की दृढ़ प्रतिमा है और जिनके श्वास-श्वास में देश हित निहित है उन दिव्य विभूतियों को धारण करने वाले मालवीयजी की अभ्यर्थना करके हम प्राचीन धर्म का पालन करते हैं। पूज्य मालवीयजी के पंचतत्वात्मक शरीर का प्रत्येक कण सृष्टि की कल्याणी वस्तु हैं, इसलिए हम उनके प्रति प्रणत हैं।

आरंभ से अब तक कठोर आचार धर्म का निर्वाह करने वाले उसका हम अभिवादन करते हैं। लोक सेवा में संपूर्ण स्वार्थ का विसर्जन करने वाले और परार्थ आत्माहुति देने वाले उस याज्ञिक को हमारा प्रणाम। जिसने हिंदू जाति की संतान के लिए भिक्षावृति धारण की और भिक्षुसम्राट बनकर श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व प्राप्त किया, वह अर्हणीय है। जिसकी आत्मा विराट विश्व की और उसके स्त्रष्टा की अनुभूति करने में समर्थ है वह हमारी स्तुति का विषय है।

पूज्य मालवीयजी की जीवनी संसार को अध्यवसीय, आत्म त्याग, आचार धर्म, संघटन शक्ति, शांति और स्वाध्याय का संदेश देती है। इन सद्वृत्तियों का संग्रह जितना उनमें दीख पड़ता है, संसार के बहुत आदमियों में नहीं दीख पड़ता। हमारे देश के लिए मालवीयजी का संदेश सच्चे ब्राह्मणत्व का है क्योंकि इस युग में ब्राह्मण वृत्ति का विकास मालवीयजी में अत्यधिक मात्रा में हुआ है। सच्चे ब्राह्मण के रूप में मालवीयजी ने हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान की जो सेवा की है वह इस युग में अद्वितीय है। उनका स्वदेशी, मंत्र देश में शक्ति की लहर दौड़ा चुका है और उनका अछूत मंत्र हिंदुत्व का कवच सिद्ध हुआ है। उनकी वाणी में जो अमृत है वह राष्ट्र की मंगल विभूति है। इन गुणों से उप्रेत महर्षि अपनी सत्तर वर्ष की आयु के उपरांत हमारा पथ प्रदर्शन करने को युवकों की-सी दृढ़ता से तत्पर हैं, यह हमारा परम सौभाग्य है। हम सब समवेत होकर गुणगान करें जिससे हममें उनकी दिव्यशक्ति का संचार हो, साथ ही, हम ईश्वर से विनय भी करें जिससे वे आज की ही भांति चिरदिन तक हमारे संग रहकर हमारा पथ प्रदर्शन करते रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# आर्थिक संकट

इस समय देश में आर्थिक संकट का प्रकोप अपना विस्तार कर रहा है। पिछले तीन वर्षों के भीतर देश में जो उथल-पुथल हुई है उससे भारतीय व्यवसाय की प्रगति में जो शिथिलता आई है इसमें किस को संदेह हो सकता है। सरकार की ओर से जो व्यावहारिक रिपोर्ट प्रतिवर्ष प्रकाशित होती है उसे देखने से भी यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि सन् 1929 ई. की अपेक्षा सन् 1930 ई. में और सन् '30 की अपेक्षा सन् '31 में भारतीय व्यवसाय की हानि हुई है। परंतु लार्ड विलिंग्डन ने अपने पिछले भाषण में कहा था, 'देश की आर्थिक दशा प्रगतिशील है, भविष्य आशापूर्ण और उज्ज्वल है। चिंता करने का कोई कारण नहीं है।' पता नहीं इन वाक्यों को कहने का लार्ड विलिंग्डन का वास्तविक अभिप्राय क्या था? लार्ड विलिंग्डन ने कहा था कि सन् 1930 ई. की अपेक्षा सन् 1931 के दिसंबर मास में आयात कर से 86 लाख की अधिक आय हुई है। परंतु व्यापारिक रिपोर्ट के आंकड़ों को देखने से उक्त बातें ठीक नहीं सिद्ध होतीं। रिपोर्ट के अनुसार सन् 1930 के दिसंबर मास में 11 करोड़ 6 लाख की विदेशी चीजें इस देश में आईं और सन् 1931 में 9 करोड़ 2 लाख की। सन् 1930 में दिसंबर मास में आयात वस्तुओं के मूल्य में 30 लाख की और राजस्व में 8 लाख की कमी रही। हिसाब लगाने से ज्ञात होता है कि दिसंबर सन् 1930 ई. की अपेक्षा दिसंबर सन् 1931 ईसवी में वाइसराय महोदय के कथानुसार कम आय हुई, अधिक नहीं। इसी प्रकार सन् 1931 ई. के दिसंबर मास में आयात-निर्यात के जो आंकड़े प्रकाशित हुए हैं उन्हें भी देखने से यह सिद्ध होता है कि आयात वस्तुओं के मूल्य में सन् 1929 की अपेक्षा 100 करोड़ की कमी रही। सन् 1929 ई. में सूती कपड़े की आय 5,194 लाख, सन् 1930 में 2,929 लाख और सन् 1931 में घटकर केवल 1,419 लाख रह गई। इन आंकड़ों के देखने से मालूम होता है कि प्रतिवर्ष देश के व्यापार की प्रगति कम होती गई और आर्थिक संकट का उसे सामना करना पड़ा। यद्यपि सरकार की ओर से व्यापारियों को बराबर आश्वासन दिया जाता है और दिया जा रहा है परंतु उसे व्यापार की प्रगति में कोई उन्नति नहीं हो रही है। इधर जब से आर्डिनेंसों का प्रकोप हुआ है तब से व्यापारी समाज और भी संकटपूर्ण अवस्था में पहुंच गया है। एक ओर कांग्रेस की ओर से दुकान बंद करने का आदेश दिया जाता है और यदि वे दुकान बंद करते हैं तो सरकार दूसरी ओर उन्हें विद्रोही करार देकर उनके ऊपर आर्डिनेंसों का प्रयोग करती है। इस प्रकार व्यापारी समाज की दशा बड़ी दुविधा में पड़ गई है, व्यापार का पतन हो रहा है और अर्थ संकट प्रतिदिन उनकी कमर तोड़ रहा है। व्यापारी समाज में गवर्नमेंट का रुख देखकर आतंक-सा छा गया है। वे नए व्यापार की ओर भी अपनी पूंजी लगाने में आगा-पीछा करते हैं कि न जाने भविष्य में क्या होने वाला है। इन बातों में गंभीरतापूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि देश की आर्थिक स्थिति के सुधारने की शीघ्र आवश्यकता है और इसकी जिम्मेदारी सरकार पर अधिक है। आर्थिक स्थिति का सुधार ही शांति और कल्याण का मार्ग है।

(गुरुवार, 11 फरवरी 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# समझौता क्यों नहीं?

लार्ड विलिंग्डन महाशय ने विलायती अधिकारियों की मंजूरी लेकर शुरू साल से ही जो कांग्रेस के विरुद्ध नीति चलाई है उसे वे बंद नहीं करना चाहते और विलायती अधिकारी बड़ी मुस्तैदी के साथ उन्हें समर्थन करते हैं। कलकत्ता यूरोपियन एसोसिएशन के घेर में वाइसराय महाशय ने यह जो मंसूबा जाहिर किया था कि भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार की पूरी शक्ति के साथ अराजकता को कुचलने की चेष्टा की जाएगी, वह चेष्टा ही बदली है। पिछले दिन फिर भी असेंबली के जलसे में, आपने कांग्रेस के साथ समझौता न करने की बात कही और विलायत से सर सेमुएल होर के मुंह से भी वही विचार और भी सख्ती के साथ निकले हैं। शुरू से ही विलायती और हिंदुस्तानी सरकारों की ओर से यह कोशिश की जा रही है कि लड़ाई छेड़ने की पूरी जिम्मेदारी कांग्रेस को दें। हम यहां यह बहस नहीं कर रहे हैं कि समझौता किसने पहले तोड़ा और लड़ाई किसने शुरू की क्योंकि *टाइम्स ऑफ इंडिया* जैसे पत्र भी महात्मा गांधी की मेल की इच्छा की हामी भर चुके हैं और वाइसराय से उनकी भेंट को आवश्यक बतला चुके हैं, यद्यपि वाइसराय महाशय ने उसकी आवश्यकता नहीं समझी। इस समय हमारे सामने यह सवाल नहीं है कि लड़ाई किसने छेड़ी, सवाल यह है किसे समझौता अच्छा नहीं लगता? इस सवाल का उत्तर वाइसराय महादेय के आर्डिनेंस, उनके आए दिन के भाषण और विलायती अधिकारियों की नीति साफ-साफ दे रहे हैं और यह स्पष्ट है कि सरकार समझौता नहीं करना चाहती।

समझौता क्यों नहीं? इस सवाल का सरकार के पास क्या जवाब है? क्या सिर्फ इतना ही कि जब तक उस पर भारत पर शासन करने की जिम्मेदारी है तब तक वह राज्य करना चाहती है और अराजकता को सहन नहीं कर सकती? परंतु क्या यह उत्तर संतोषजनक है? क्या भारतीयों ने आज इतने वर्षों के प्रबल आंदोलन से यह सिद्ध नहीं कर दिया कि शासन की प्रणाली में हेरफेर होना चाहिए? इसका जवाब सर सेमुएल होर के असभ्य शब्दों में यह होगा कि कुत्ते भूंकते हैं पर काफिले चले चलते हैं, अर्थात् कांग्रेस दल चिल्लाया करे भारत में नवीन विधान का कार्य निश्चित विधि से होता रहेगा। यह जो विधान बनाने की सिफारिश करने वाला काफिला हिंदुस्तान में आया है और आकर चक्कर लगा रहा है क्या भारतीयों के चुने हुए प्रतिनिधियों का है और क्या यह सरकार द्वारा बहाल किए गए मनुष्यों का नहीं है? क्या इस काफिले के अधिकारों पर भी गौर करके देखा गया है कि रायजनी करने के अतिरिक्त इसके पास कोई दूसरे अधिकार नहीं हैं? बहुत से विलायती अधिकारियों का यह खयाल है कि कांग्रेस को दबा देने के बाद विधान का काम करने और सरकार का साथ देने के लिए लाखों-लाखों नर्मदल के विद्वान लोग मैदान में आ जाएंगे, पर जैसाकि *पायनियर* के प्रतिनिधि को संदेश देते हुए लिबरल फैडरेशन के अध्यक्ष श्री चिंतामणि ने कहा था कांग्रेस के विरुद्ध खड़े होने वाले किसी दल की जनता में सुनवाई नहीं हो सकती और जैसाकि देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की अनेक-अनेक नर्म संस्थाएं जोर देकर कह रही हैं कि सरकार अपनी नीति के कारण गैरकांग्रेसी दलों की सहानुभूति खोती चली जा रही है।

सरकार समझौता क्यों नहीं करना चाहती? हम जानते हैं कि गोलमेज सम्मेलन केवल एक सिफारिशी संस्था थी और उसकी ये भारत में पहुंची हुई कमेटियां तो और भी सिफारिशी हैं। ब्रिटिश पार्लियामेंट को पूरी स्वतंत्रता है कि वह सिफारिशों की परवा न करके भारत के लिए जैसा चाहे विधान बनावे।

क्या महीने-डेढ़ महीने तक भारत और ब्रिटेन की शक्ति लगा चुकने के बाद वाइसराय महोदय भारतीयों में राजभक्ति का भाव दृढ़ कर चुके हैं और अराजकता दूर कर चुके हैं या परिस्थिति इसके विपरीत हो गई हैं? इतने अभूतपूर्व दमनचक्र के संचालन के उपरांत यदि राजभक्ति नहीं बढ़ी तो इसका क्या कोई सबब नहीं है? कांग्रेस सब प्रकार से गैर कानूनी संस्था हो और सरकार को उससे कितनी ही बड़ी नफरत हो फिर भी वह भारत की और भारतवासियों की ही संस्था है। आज भारत का प्रत्येक राजनीतिक चेतना प्राप्त व्यक्ति अपने देश में अपना राज्य चाहता है। इसलिए जब कांग्रेस को दबाने की चेष्टा की जाती है तब देशवासियों को यह अनुभव होना अस्वाभाविक नहीं है कि उन्हीं की राजनीतिक चेतना दबाई जा रही है। जब कांग्रेस के कार्यकर्ताओं पर सख्ती की जाती है तब देश में सरकार को विरुद्ध भाव फैलाने में मदद मिलती है और जब वाइसराय महाशय कांग्रेस के साथ समझौता न करने का मंसूबा बांधते हैं तब देशवासियों की सहानुभूति खोते हैं। इसे एक मनोविज्ञान सम्मत क्रिया समझना चाहिए।

हम जिस किसी दृष्टि से देखते हैं समझौता अनिवार्य जान पड़ता है। नए विधान को संतोषजनक बनाने और देशवासियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समझौते की आवश्यकता है। भारत की अराजकता दूर करने और ब्रिटिश साम्राज्य का कद बना रखने के लिए समझौता अनिवार्य है। समझौते के बिना भारत में शांति नहीं होगी। कोई स्वार्थ न रहते हुए भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं का अमेरिका आदि समर्थन करते हैं और यह स्वाभाविक ही है। ब्रिटेन का गौरव इस बात में नहीं है कि वह अपनी संपूर्ण शक्ति एक असंतुष्ट राष्ट्र को दबाने में खर्च करे उसका गौरव इस बात में है कि वह असंतोष के कारणों को समझे और उन्हें दूर करे। इस संसार के प्रमुख राष्ट्रों का निरस्त्रीकरण सम्मेलन हो रहा है और संसार के सर्वश्रेष्ठ मनुष्यों ने संसार शांति का यही उपाय बताया है कि आत्मा शुद्ध होनी चाहिए, अहिंसा का भाव प्रत्येक हृदय में दृढ़ होना चाहिए और साम्राज्य विस्तार की ममता छोड़नी चाहिए। हमें यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि निरस्त्रीकरण सम्मेलन के ब्रिटिश प्रतिनिधि सर जॉन साइमन ने युद्ध की पशुवृत्ति का प्रतिवाद किया है। आज यदि संसार में शांति के लिए उद्यम किया जाता है और ब्रिटेन उसमें प्रमुख भाग ले रहा है तो भारत में समझौता और शांति का उद्यम न हो बल्कि उसके विरुद्ध ही बातें की जाएं तो यह महान आश्चर्यजनक है।

(रविवार, 14 फरवरी 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# काश्मीर

इधर वर्ष भर के ऊपर से काश्मीर राज्य में जो अराजकता फैल रही थी उसने पिछले कुछ दिनों से भयंकर संघटित उत्पात और जनसंहार का रूप धारण कर लिया है जिसके कारण राज्य की हिंदू और सिख प्रजा की एक बड़ी संख्या अत्यंत आरक्षित अवस्था में आपत्काल के दिन काट रही है। अभी उस दिन दस-बारह हजार मुसलमानों द्वारा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर लूटमार, गृहदाह और हत्या किए जाने के जो नृशंस समाचार आए हैं उन्हें काश्मीर की राज्यशक्ति के प्रति तिरस्कार और चुनौती समझना चाहिए क्योंकि जो राज्यशक्ति अपनी प्रजा की प्राण रक्षा और संपत्ति रक्षा का प्रारंभिक कर्तव्य पूरा नहीं कर सकती उसका लांछन इस से अधिक और क्या होगा? आज से कुछ महीने पहले यह समझा जा सकता था कि काश्मीर के मुसलमान अपने अधिकारों के लिए आंदोलन कर रहे हैं पर आज यह स्पष्ट है कि वे अपनी अधिकांश संख्या और राज्य की दुर्बल शक्ति से लाभ उठाकर उस प्रदेश की हिंदू और सिख जनता पर मनमाने अत्याचार करते और अपनी धर्मांधता का परिचय देते हैं। कोई समय रहा होगा जब काश्मीर महाराज का यह कर्तव्य था कि राज्य के मुसलमानों के वैध अधिकारों के संबंध में विचार करते, परंतु आज उनका पहला कर्तव्य यह है कि वे अपनी पीड़ित और आरक्षित प्रजा का आततायियों से उबार करें, उजड़े हुए गांवों को फिर से बसाने का उद्यम करें और भविष्य के लिए उन्हें सुरक्षित बनाएं। काश्मीर नरेश हिंदू अधिपति हैं और हिंदू प्रजा की रक्षा करना उनका जातिधर्म है, यह कहना कोई मतलब नहीं रखता। सभ्य राष्ट्रों के इस युग में प्रजा को सुरक्षित रखना पहला राजधर्म है। इसलिए काश्मीर नरेश को इस धर्म का पालन करना चाहिए। अब तक काश्मीर राज्य की तरफ से यह काम उचित तत्परता से नहीं किया गया और अंत में (Paramount Power) अंग्रेजी राज्य से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ी। तथापि राज्य में उपद्रव इतना बढ़ गया है कि अंग्रेजी राज्य की ओर से जितनी सहायता की जा रही है, वह असेंबली के कतिपय हिंदू सदस्यों की राय में आवश्यकता से कम है। काश्मीर महाराज और वाइसराय महोदय को इस शिकायत पर ध्यान देना चाहिए।

जिन्होंने काश्मीर में प्रचार पाने वाले इस मुस्लिम आंदोलन का अध्ययन किया है वे इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि इसकी तह में वैध अधिकार पाने की इच्छा उतनी नहीं है जितनी कूटनीति और षड्यंत्र द्वारा काश्मीर में मुस्लिम राज्य स्थापित करने और इस प्रकार पान-इस्लामिक कल्पना को पूरा करने की है। प्रारंभ से ही काश्मीर के मुसलमानों की मदद के लिए बल्कि उन्हें उभाड़ने के लिए ब्रिटिश भारत के और विशेषकर पंजाब के कट्टर मुसलमान नेता तरह-तरह के आयोजन करते रहे हैं।

यदि काश्मीर के मुसलमान अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए ही लड़ते होते तो उन्हें ब्रिटिश भारत के इन कट्टरपंथी नेताओं से मदद लेने की कोई आवश्यकता न थी। विशेषकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऐसी अवस्था में जब ये नेता लोग ब्रिटिश भारत के स्वराज्य संबंधी आंदोलन के विरोधी और मजहबपरस्त प्रसिद्ध हैं। काश्मीर के मुसलमानों को अधिक दोष देना उचित नहीं होगा क्योंकि अब से कुछ समय पहले तक वे शांतिप्रिय प्रजा बने रहे हैं और अचानक उभाड़े जाने पर उत्तेजना के वश काम करने लगे हैं। आंदोलन के सिलसिले में एक मौका ऐसा भी आया जब काश्मीर महाराज की उदारनीति के कारण राज्य के मुसलमानों ने बड़ी संख्या में उनकी सराहना की और शांति से रहने को तैयार हुए परंतु षड्यंत्रकारियों के कुचक्र से शांति स्थिर न रह सकी और फिर उपद्रव मचा। इसलिए अपने वर्तमान रूप में काश्मीर का यह आंदोलन न तो वैध है और न स्थानीय राज्यप्रणाली के विरुद्ध वहां की जनता का आंदोलन है। राजनीतिक अधिकार पाने का लक्ष्य धर्मांधता और कुचक्र के सामने डूब गया है और इस धर्मांधता तथा कुचक्र के मूल में ब्रिटिश भारत के कुछ मुस्लिम दल हैं जिनकी पीठ ठोंकने वाले कुछ एंग्लो-इंडियन समाचारपत्र हैं। इस आंदोलन के कारण आए दिन जो विद्रोह काश्मीर में फैल रहा है और धन जन की जो अपार हानि हो रही है उसे शीघ्र से शीघ्र रोकना सभ्यता और समाज की पहली मांग है।

## और हैदराबाद

काश्मीर के साथ ही हैदराबाद रियासत में भी असंतोष का भाव बढ़ रहा है और समाचारपत्रों में हैदराबाद की राज्य प्रणाली की शिकायतें छप रही हैं। अभी हाल में ही राज्य के प्रमुख हिंदुओं का एक डेपूटेशन निजाम महोदय के पास पहुंचा था जिसने उनसे निवेदन किया था कि वे राज्य की हिंदू और मुसलमान प्रजा के साथ समता का व्यावहार करें। डेपूटेशन द्वारा पेश किए गए हवाले को देखने से यह मालूम पड़ता है कि यद्यपि हैदराबाद रियासत में हिंदू 85 प्रतिशत हैं फिर भी सरकारी नौकरियों और खिताबों में उनकी बहुत थोड़ी तादाद है। निजाम महोदय की ओर से धार्मिक और शिक्षा संबंधी संस्थाओं को जो मदद दी जाती है वह बहुत अधिक परिमाण में मुसलमानों को मिलती है और रियासत के बाहर की मुस्लिम संस्थाओं को ही विशेष आर्थिक सहायता पहुंचाई जाती है। यही नहीं, निजाम की शासन प्रणाली भी प्रतिनिधि मूलक नहीं है इसलिए डेपूटेशन की ओर से आग्रह किया गया है कि वे जनता के प्रतिनिधियों की व्यवस्था-सभा स्थापित करें। इस प्रकार न केवल राजनीतिक बल्कि आर्थिक और धार्मिक मामलों में भी निजाम की हिंदू प्रजा को शिकायत करने का मौका मिला है। हमें आशा है कि रियासत की ओर से वैध आंदोलन के प्रति सहानुभूति दिखाई जाएगी। साथ ही हम हैदराबाद के हिंदुओं से यह भी आशा रखते हैं कि वे काश्मीर के मुसलमानों की तरह बहकाए जाकर उत्तेजना का कोई कार्य नहीं करेंगे बल्कि अंत तक शांतिपूर्ण और वैध उपायों से ही काम लेते रहेंगे जिससे उपद्रव करने वालों को शिक्षा मिले कि वे भी शांति का सबक सीखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## *जागरण*

इस पाक्षिक साहित्यिक पत्र का हम स्वागत करते हैं जो काशी के पुस्तक मंदिर से बाबू शिवपूजन सहाय के संपादन में निकला है। पुस्तक मंदिर के उत्साही संचालक पं. विनोदशंकर व्यास और बाबू शिवपूजन सहाय जैसे ख्याति प्राप्त और कर्मठ संपादक के सम्मिलित उद्यम से *जागरण* सहज ही हिंदी जनता का प्रीतिपात्र बन जाएगा पर *जागरण* केवल इतना ही नहीं है। उसके मूल में बाबू जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यकार की प्रेरणा काम कर रही है जिसके कारण उसका महत्व और भी अधिक हो गया है और *जागरण* नाम के सार्थक होने की भी पूरी आशा हो गई है। पहले अंक में *प्रताप* आकार के 32 पृष्ठ हैं जिसमें सामयिक साहित्य की मनोरंजक और उपयोगी सामग्री अच्छी मात्रा में है। आगामी अंकों में अधिक गंभीर और भावनात्मक लेख भी रहेंगे, विज्ञापन से ऐसा विश्वास होता है। नवीन कवियों की रचनाओं से अलंकृत हास्य विनोद के लेखों और मनोरंजक टिप्पणियों से सुसज्जित उच्च साहित्यिक समालोचनाओं से समन्वित यह *जागरण* अपना नाम सार्थक करे और हिंदी संसार के काम्य वस्तु को यह हमारी कामना है।

(गुरुवार, 18 फरवरी 1932)

## मौलाना शौकत अली

जिन मौलाना शौकत अली से जेल निवासी डॉक्टर मो. अंसारी और मौलाना बुखारी साहब ने मिलने से अस्वीकार कर दिया है, वे सब पूछा जाए तो बड़े सीधे-सादे आदमी हैं। उनके राजनीतिक जीवन का कोई सिद्धांत न हो तो भी यह सिद्धांत तो है ही कि जब जिस रास्ते से चलने में सुभीता देखो, उसी से चलो। यह उनकी सिधाई का ही नमूना है कि उनको जैसा समझा दिया जाए वैसा ही समझ जाते हैं और ईमानदारी से समझते हैं कि वे वैसा ही रहे हैं। स्थूलकाय मनुष्यों का दिल अकसर साफ देखा गया है क्योंकि उनका शरीर और बुद्धि एक ही सांचे में ढली होती है। एक जमाना था जब मौलाना साहब खिलाफत का खरीता लेकर महात्मा गांधी के दाहिने हाथ बने थे, परंतु शीघ्र ही उन्होंने बाना बदल दिया। उसके उपरांत वे मुसलमानी कट्टरता के पृष्ठपोषक बन गए तथापि अपने प्रतिभाशाली बंधु स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली के प्रभाव से विचलित नहीं हुए।

मौलाना मुहम्मद अली का लक्ष्य भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना ही सदैव रहा और अपने स्वर्गवास के कुछ पूर्व गोलमेज सम्मेलन के एक मर्मस्पर्शी भाषण में उन्होंने अपने इस लक्ष्य को जोरदार शब्दों में प्रकट किया था, वे स्मरणीय बन गए हैं। मौलाना मुहम्मद अली के स्वर्गवास के उपरांत बड़े मौलाना शौकत अली को जो सहचर मिले और उन्होंने जिन लोगों से मैत्री जोड़ी उनमें पंजाब के मुसलमानों के अतिरिक्त डॉक्टर अंबेडकर का नाम विशेष रीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से उल्लेखनीय है। पिछले गोलमेज सम्मेलन में इन बड़े मौलाना को अनुदार दल के ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की दोस्ती का व्याज हासिल हुआ और अभी उस दिन नई दिल्ली से प्रकाशित उनकी एक विज्ञप्ति में शायद उसी संगति का फल प्रकट हो रहा है। आप कहते हैं–

> समय आ गया है जब हमें जो दिया जा रहा है, उसे मंजूर कर लेना चाहिए। मैं समझता हूं कि हमको रुपए में आठ आना स्वराज्य मिल रहा है। परराष्ट्र संबंध, फौज और अर्थव्यवस्था पर जो संरक्षण रखे गए हैं वे केवल परिवर्तन काल के लिए हैं। विश्वास फलदायक होता है।

अवश्य ही मौलाना शौकत अली का यह राजनीतिक मत स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली के द्वारा की गई घोषणा के अनुकूल नहीं है, पर समय की गति विचित्र है। इसी के साथ मौलाना साहब का यह वाक्य भी मिलाकर पढ़ने लायक है।

> यूरोपीय राजनीति का निकट से अध्ययन करने के बाद मेरे मन में कुछ भी संदेह नहीं रह गया है कि अंग्रेजों के सामने ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि वे बाध्य होकर मुसलमानों की मांगें स्वीकार करने और उनका सहयोग तथा सदिच्छा प्राप्त करने के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते।

इस प्रकार के मौलाना शौकत अली के विचार हैं। एक ओर आप यूरोपीय राजनीति के पंडित बनकर यह कहते हैं कि अंग्रेज विवश होकर मुसलमानों की मांगें स्वीकार करेंगे और दूसरी ओर भारत से जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों ही हैं, यह आग्रह करते हैं कि जो कुछ दिया जा रहा है, उसे ले लो। जब अंग्रेज मुसलमानों की मांगें स्वीकार करने का बाध्य हैं तो क्यों नहीं, मुसलमान राष्ट्र के लिए स्वाधीनता की मांग पेश करते हैं? हां, यदि ब्रिटेन मुसलमानों की केवल वे ही मांगें स्वीकार करने को विवश हुआ है जो कट्टरपंथी मजहबी दल की हैं तो बात दूसरी है। पर वैसी अवस्था में क्या मौलाना शौकत अली साहब इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि अंग्रेज लोग क्यों वैसी मांगें स्वीकार करने को बाध्य हुए हैं? क्या उन मांगों को न्यायोचित समझ कर? अथवा किसी और ही उद्देश्य से?

## आंदोलन काफी नहीं है

काशी नरेश के अभिषेकोत्सव में नियंत्रित होकर काशी गए हुए हमारे प्रांत के गवर्नर सर मालकम हेली ने दो महत्वपूर्ण भाषण किए जिनमें एक में आपने देशी नरेशों के और संघशासन के भविष्य के संबंध में विचार प्रकट किए और दूसरे में राजनीतिक आंदोलन पर सम्मति देते हुए यह रहस्यमय वाक्य कहा कि 'खराबी इस बात में नहीं है कि आंदोलन उचित से अधिक है, बल्कि आंदोलन तो काफी से कम है।' आपके कहने का मतलब यह था भारतीय राजनीतिज्ञों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का केवल एक दल जो अनिष्टकारी दल है—आंदोलन कर रहा है और शेष सब दल चुपचाप बैठे हुए हैं। आपके कहने की मंशा यह थी कि देश के संयत विचार वाले दलों को चाहिए कि वे कांग्रेस दल वे विरुद्ध उठ खड़े हों और आंदोलन करें। यद्यपि आपने नाम लेकर नहीं पुकारा पर आपका लक्ष्य नर्म दल वालों की सुस्ती का प्रतिवाद करने का था। अभी जो आंदोलन काफी नहीं है वह इसी नर्म दल सुस्ती के कारण। परंतु गवर्नर महाशय को यह मालूम होना चाहिए कि देश के संयत विचारों वाले दल भी भरसक आंदोलन कर रहे हैं, हां वे उस प्रकार का आंदोलन उतनी मात्रा में नहीं कर रहे जितनी कि सर मालकम आशा करते हैं। सर मालकम को इस मतभेद की ओर ध्यान देना चाहिए। केवल कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करना माडरेट दल उचित नहीं समझता। इसका मुख्य कारण यह है कि यह दल तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग पेश कर चुका है पर उसके प्राप्त होने के लक्षण साफ नहीं दीख पड़ते। केंद्रीय व्यवस्था-सभा में और भिन्न-भिन्न प्रांतीय व्यवस्था-सभाओं में इस दल के नेताओं ने जो विचार प्रकट किए सरकार की तरफ से उन पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। हमारी युक्त प्रांत की ही व्यवस्था-सभा में श्री चिंतामणि ने प्रस्ताव किया था कि जब तक नवीन विधान नहीं मिलता तब तक मौजूदा गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के मुताबिक जो अधिक से अधिक अधिकार मिल सकते हैं वे तत्काल भारतीयों को दे दिए जाएं, पर क्या अब तक वैसा किया गया? क्या लिबरल फैडरेशन, इंडियनं मर्चेंट्स मेंबर वेलफेयर ऑफ इंडिया लीग जैसे विधान प्रिय दलों की महत्वपूर्ण सिफारिशें सरकार के कान में नहीं पड़ीं? पर सरकार ने उन पर कितना अमल किया? जो संयत और नर्मदल के विचारवान नेता हैं वे इस बात के लिए निरंतर आंदोलन कर रहे हैं और करते रहेंगे कि लड़ाई बंद हो, कड़े कानून वापस लिये जाएं और शांति की स्थापना की जाए। परंतु सर मालकम हेली इसको काफी आंदोलन नहीं समझते। शायद वे समझते हैं कि केवल कांग्रेस के विरुद्ध आंदोलन करना ही 'काफी' आंदोलन है। अभी वे और उनकी सरकार लड़ाई की मनोवृत्ति में है इसलिए उन्हें उदारदल के आंदोलन का कल्याणकारी रूप नहीं देख पड़ रहा है। पर वह समय भी आवेगा जब संधि और मेलजोल ही स्थायी शांति के उपाय मान लिये जाएंगे और तब सर मालकम हेली नर्मदल के वर्तमान आंदोलन का महत्व समझेंगे और उसे आज की तरह 'ना काफी' नहीं कहेंगे।

## मताधिकार कमेटी

गोलमेज की जो मताधिकार कमेटी है वह पटना पहुंची है। वहां उसने जितने बयान लिये हैं उसमें एक श्रीयुत हेलेट आई.सी.एस. का बयान खास तौर पर ध्यान देने लायक है। कमेटी का यह तख्मीना था कि बिहार प्रांत की जनता को सैकड़े में दस के हिसाब से मताधिकार दिया जाए परंतु हेलेट महाशय ने इसमें भी कठिनाई बतला दी है। आपकी राय में यह ठहरता है कि सरकार के पास इतने आदमी नहीं है कि वह 10 प्रतिशत मताधिकार के लिए उपयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



केंद्रों की व्यवस्था कर सके और वोटिंग का उचित प्रबंध कर सके। दूसरी दिक्कत, आप यह बतलाते हैं कि वोटिंग के इतने उचित अड्डे ही नहीं मिलेंगे और न बनाए जा सकेंगे। आपने बिहार के मुजफ्फरपुर जिले का उदाहरण देकर बतलाया है कि वहां की जनसंख्या लगभग 24 लाख है। यदि 10 प्रतिशत मताधिकार दिया गया तो दो लाख चालीस हजार आदमी वोट देने के काबिल हुए। इनमें यदि दो लाख भी अपने अधिकार का उपयोग करें तो उनके लिए कम से कम दो सौ वोटिंग केंद्र होने चाहिए। इन केंद्रों का निरीक्षण करने वाले दो सौ अफसर सरकार के पास नहीं हैं और न निष्पक्ष गैर-सरकारी आदमी भी इतनी संख्या में मिल सकेंगे। फिर वोटिंग के लिए मकान मिलना भी कठिन है। श्रीयुत हेलेट महाशय ऐसा फरमाते हैं। इसका अर्थ यही हो सकता है कि या तो नौकरशाही के कर्मचारियों की संख्या बढ़ाई जाए या मताधिकार की संख्या कम की जाए। यह अड़ंगा अनोखा ही है। जिले में लोअर प्राइमरी से लेकर हाईस्कूल और कॉलेजों की संख्या, पुस्तकालयों तथा अन्यान्य पब्लिक संस्थाओं की संख्या क्या दो सौ से भी कम है? और यदि कम है तो क्या कम ही बनी रहेगी? वोटिंग का निरीक्षण करने वाले निष्पक्ष और ईमानदार आदमी इतनी थोड़ी संख्या में भी नहीं मिल सकेंगे। यह यदि सत्य है तो यह अंग्रेजी राज्य की नैतिक अवस्था का अच्छा परिचय कराता है पर देश की अवस्था सुधरने पर, ऐसी ही अवस्था नहीं रहेगी, इसमें हमें कुछ भी संदेह नहीं। जब देश की राजनीतिक संस्थाएं बालिग मताधिकार का आग्रह कर रही हैं तब इस प्रतिशत के अधिकार में भी व्यावहारिक कठिनाइयां दिखाना नौकरशाही की उसी संकीर्ण नीति का परिचय है जो आए दिन किसी से छिपी नहीं।

## साहित्य और जीवन का संबंध स्थापित करने की सीमा का निरूपण

हमारी हिंदी में और अन्यत्र भी इन दिनों साहित्य और जीवन में घनिष्ठ संबंध स्थापित करने की जोरदार मांग बढ़ रही है। आज परिस्थिति ऐसी प्रवेगपूर्ण है कि इस मांग की खूब कद्र की जा रही है और खूब दाद दी जा रही है। स्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थी बड़े उमंग के साथ इस विषय के व्याख्यान सुनते और ताली बजाते हैं। लेखकगण घर के बाहर स्वदेशी लिबास में रहने में प्रतिष्ठा पाते है और समालोचकगण उत्कर्षपूर्ण साहित्यकार की अपेक्षा जेल का चक्कर लगा आने वाले सैनिक साहित्यिक के बड़े गुणगान करते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में जोशीले लेख छपते हैं जो जीवन और साहित्य को एकाएक करने के एक कदम और आगे बढ़कर लेखों को लेखकों के खून से सराबोर देखना चाहते है। एक प्रकार का उन्माद उत्पन्न किया जाता है जो साहित्य समीक्षा की जड़ से उखाड़ फेंकने का सरंजाम करेगा और जीवन को नितांत उग्र और संभव है पाषंडपूर्ण भी बना देगा। बंगाल में ऐसे ही विचार प्रवाह के कारण महाकवि रवींद्रनाथ को किंचित्काल के लिए ही सही धक्का उठाना पड़ा है और आज हिंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में भी वही हवा चल रही है। हम जिस संकीर्ण वात्याचक्र में घिरे हुए सांस ले रहे हैं उसमें यदि साहित्य को राजनीतिक प्रोपेगेंडा का साधन बनाया जाए तो यह स्वाभाविक है, ऐसा अन्य देशों में भी होता है पर इसे ही साहित्यिक समीक्षा की स्थिर कसौटी बनाने और इसी के अनुसार उपाधि वितरण करने का हम समर्थन नहीं करेंगे। साहित्य और जीवन का संबंध देखने के लिए क्षणिक राष्ट्रीय आवश्यकताओं की परिधि से ऊपर उठने की आवश्यकता है। हम साहित्य के आकाश में क्षितिज के पास के रक्तिम वर्ण को ही न देखें, संपूर्ण सौरमंडल और उसके अपार विस्तार अगणित रंग रूप के भी दर्शन करें। साहित्य की शब्दावली में हम क्षणिक यथार्थ को ग्रहण करने में लगकर वास्तविक यथार्थ का तिरस्कार न करें जो विविध आदर्शों से सुसज्जित है। हम साहित्य और जीवन का संबंध अत्यंत व्यापक अर्थ में मानें देश और काल की सुविधा के ही मोह में न पड़ें।

साहित्य के साथ जीवन का संबंध स्थापित करने का आग्रह यूरोप में पिछली बार फ्रेंच राज्य क्रांति के उपरांत किया गया और हमारे देश में, आधुनिक रूप में यह अभी कल की वस्तु है। इंग्लैंड में वर्ड्सवर्थ और फ्रांस् में विक्टर ह्यूगो आदि साहित्यकार इस विचारशैली के आविर्भाव करने वालों में हैं। प्रारंभ में इसका रूप अत्यंत समीचीन था। यूरोप का मध्यकालीन जीवन असंगत हो गया था, उसके स्थान में नवीन जीवन का उदय हुआ था, जिसके मूल में बड़ी ही तरल और सात्विक भावनाएं थीं। नवीन जीवन के उपयुक्त ही नवीन समाज का विकास हुआ और इसी विकास के अनुकूल साहित्य में भी प्रकृतिप्रेम, सरल जीवन आदि की भावनाएं दीख पड़ीं। यहां तक कि कृत्रिमता किंचित नहीं थी। अंग्रेजी साहित्य में मेथ्यू आर्नल्ड और वाल्टर पेटर जैसे दो समीक्षक—एक जीवन पक्ष पर स्थिर होकर और दूसरे कला अथवा सौंदर्य पक्ष पर मुग्ध होकर समान रीति से कवियों की प्रशंसा कर सकते थे। परंतु बहुत दिन ऐसे नहीं रह सके। शीघ्र ही यूरोप में राष्ट्रीयता और प्रादेशिक भावनाओं का विस्तार हुआ और रूस में समाज संबंधी शक्तिशाली उत्क्रांति हुई। रूसी साहित्य को वहां के समाजवाद की सेवा में उपस्थित होना पड़ा, जिसके कारण उसकी स्वतंत्रता बरकरार न रह सकी। साहित्य अधिकांश में राष्ट्र के सामाजिक और राजनीतिक संघटनों का प्रयोग साधन बन गया। नवीन युग की नवीन वस्तु के रूप में उसको बाजार अच्छा मिला और आज उसका सिक्का यूरोप ही नहीं भारत में भी धड़ाके से चल रहा है। परंतु इतना तो स्पष्ट है कि इस रूप में साहित्य परतंत्र और सामयिक जीवन की बंधी हुई लीक में चलने को बाध्य किया गया है। साहित्य और जीवन का स्वभावसिद्ध संबंध सर्वथा मंगलमय है। पर क्या इस प्रकार का संबंध स्वभावसिद्ध है? स्वाभाविक धारा ही जहां बंधी हुई है वहां साहित्य तो शिकंजे में जकड़ा ही रहेगा। आज साहित्य और जीवन का संबंध जोड़ने के बहाने साहित्य को मिथ्या यथार्थ की जिस अंधेरी गली में ले चलने का उपक्रम किया जाता है, हम उसकी निंदा करते हैं।

और जीवन का संबंध जोड़ने के सिलसिले में समीक्षकों ने साहित्यकार के व्यक्तिगत बाह्य जीवन से भी परिचित होने की परिपाटी निकाली। यातायात के सुलभ साधनों के रहते, सम्मिलन के सभी सुभीते थे। तब साहित्यकार को भी पब्लिक मनभावना दिया गया। साहित्यालोचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की जो पुस्तकें निकलीं उनमें यह आग्रह किया गया कि साहित्यकार की व्यक्तिगत जीवनी का परिचय प्राप्त किए बिना उसके मस्तिष्क और कला का विकास समझ में नहीं आ सकता। ऐतिहासिक अनुसंधानों के इस युग में यदि कवियों और लेखकों का अन्वेषण किया गया तो कुछ अनुचित नहीं। इस प्रणाली से बहुत से लाभ हुए। मस्तिष्क और कला के विकास का पता चला। बहुत से पाषंडी प्रकाश में आए। परंतु जीवन इतना रहस्यमय और अज्ञेय है और परिस्थितियां इतनी बहुमुखी हैं कि इस संबंध में अधिक से अधिक सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है, नहीं तो पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की तरह 'सैनिक' और 'साहित्यिक' तथा 'आनंद भवन' और 'शांतिनिकेतन' के बीच में ही अटके रहने का भय है। 'सैनिक' होने से ही कोई साहित्य समीक्षक की सराहना का अधिकारी नहीं बन सकता क्योंकि 'सैनिक' बनने का पुरस्कार उसे जनता के साधुवाद अथवा व्यवस्था-सभा के सभासद के रूप में प्राप्त हो चुका है। साहित्यिक दृष्टि से 'सैनिकत्व' का स्वतः कोई महत्व नहीं। सैनिकत्व इस बाह्य का जो अंतरंग है, साहित्य के भीतर से सैनिक की आत्मा का जो प्रकाश है, वह हमारी स्तुति का विषय बनना चाहिए। साहित्य और जीवन का यह संबंध है जिसको हम साहित्य समीक्षा की एक स्थायी कसौटी बना सकते हैं, पर हिंदी में लोग ऐसा नहीं करते। दुःख है। अंग्रेजी साहित्य समीक्षा में यह व्यक्तिगत चरित्र चित्रण की परिपाटी काफी समय तक चली, पर हाल में इसका प्रयोग कम पड़ रहा है और शायद इसका त्याग किया जा रहा है। जीवन की जटिल अज्ञेयता से परिचित हो जाने पर साधारण असूक्ष्म दृष्टि आलोचक इस मार्मिक प्रणाली का त्याग कर दें, यह अच्छा ही है, नहीं तो साहित्य में बड़ा विषम भाव और बड़ा विद्वेष की आशंका है।

साहित्यकार को जीवन के संबंध में स्वतंत्र विचार रखने और भिन्न-भिन्न साहित्य सरणियों में चलने के अधिक से अधिक अधिकार मिलने चाहिए। उसके अध्ययन उसकी परिस्थिति और उसके विकास को हम सामयिक आवश्यकताओं और उस संबंध को अपनी धारणाओं से नहीं परख सकते। हमें उसकी दृष्टि से देखना और उसकी अनुभूतियों से सहानुभूति रखना सीखना होगा। हम कवियों और लेखकों के नैतिक और चरित्रसंबंधी स्खलन ही न देखें, प्रचलित सामाजिक अथवा राजनीतिक कार्यक्रम से उनकी तटस्थता की ही निंदा न करें, यदि वास्तव में उन्होंने अपनी साहित्य सृष्टि द्वारा नवीन शैली, नवीन सौंदर्य कल्पना और भव्य भाव जगत की रचना की है। महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के महर्षित्व पर नवयुवक बंगालियों ने विकट विकट आक्षेप किए हैं और वर्तमान राजनीति में सक्रिय भाग न लेने के कारण उनके विरुद्ध कठोर व्यंग्यों की भी झड़ी लगी है पर क्या साहित्यिक समीक्षकों की अब ये ही प्रणालियां रह जाएंगी। जिस देश के दर्शनशास्त्र गोचर क्रिया को विशेष महत्व नहीं देते, चेतनशक्ति पर विश्वास करते हैं उसमें महाकवि रवींद्रनाथ को इससे अच्छे पुरस्कार मिलने चाहिए। रवींद्र बाबू स्वदेश प्रेम को संपूर्ण मनुष्यता और विश्व प्रेम के धरातल पर उठाकर रखने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने स्वदेश की प्रादेशिक सीमा के जड़त्व का नाश किया है अपनी उदार अनुभूतियों और अपनी विराट कल्पना की सहायता से। उन्होंने संसार की शांति और सभ्यता के लिए एक व्यापक आदर्श की सृष्टि की है जिसकी संभावनाएं भविष्य में अपार हैं। इसके लिए यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हम उनके कृतज्ञ नहीं होते और यह जरूरी समझते हैं कि वे जनता के नेता का रूप धारण करें तो यह हमारी ही संकीर्ण भावना है जो हमें प्रकृति की अनेकरूपता को समझने नहीं देती।

साहित्य और जीवन में घनिष्ठ से घनिष्ठ संबंध स्थापित होने पर भी दोनों में अंतर रहेगा ही। जीवन तो एक धाराप्रवाह है, साहित्य में उसकी प्राणदायिनी और रमणीय बूंदें एकत्र की जाती हैं। जीवन के अनंत आकाश में साहित्य के विविध नक्षत्र आलोक वितरण करते हैं। सामयिक जीवन तो अनेक नियमित-अनियमित, ज्ञात-अज्ञात घटनावली का समष्टि रूप है, साहित्य में कुछ नियम भी अपेक्षित हैं। यह अवश्य है कि हम जिस हवा में सांस लेते हैं, प्रत्येक क्षण उसके परमाणु हममें प्रवेश पाते हैं तथापि हमारा साहित्य केवल इन परमाणुओं का संग्रह होकर ही नहीं रह सकता। प्रत्येक सभ्य और प्रतिभाशाली मनुष्य वर्तमान में रहता हुआ, अतीत और भविष्य में भी रहता है। साहित्यकार के लिए तो ऐसा और भी स्वाभाविक है। महान कलाकार तो देश और काल की सीमा भंग करने में ही सुख मानते हैं और सार्वभौम समाज के प्रतिनिधि बनकर रहते हैं। सामयिक जीवन का उनके लिए उतना ही महत्व है जितना वह उनके लिए विराट, सर्वकालीन यथार्थ जीवन की कल्पना में सहायक बन सकता है। निश्चय ही यह महान कलाकारों की बात कही जा रही है।

साहित्यकला की कुछ ऐसी सुष्टु प्रभावशाली और सुंदर विशेषताएं हैं जो जीवन के स्थूल यथार्थ से मेल नहीं खाती। साहित्य में 'राम' और 'कृष्ण' चिरसुंदर अंकित किए जाते हैं, कलाओं में उनके चित्र भी वैसे ही मिलते हैं पर यह जीवन में तो वे वैसे नहीं रहे होंगे। साहित्य की अतिशयोक्तियां इंद्रधनुष-सा जीवन के स्थूल, अकाल्पनिक, रूखे अस्तित्व को मनोरम बना देता है। साहित्य में मनुष्य का जीवन ही नहीं, जीवन की वे कामनाएं जो अनंतजीवन में भी पूरी नहीं हो सकतीं, निहित रहती हैं। जीवन यदि मनुष्यता की अभिव्यक्ति है तो साहित्य में उस अभिव्यक्ति की आशा उत्कंठा भी सम्मिलित है। जीवन यदि संपूर्णता से रहित है तो साहित्य उसके सहित है। तभी तो उसका नाम साहित्य है। यहां तो साहित्य जीवन से अधिक महत्वपूर्ण बन गया है।

(रविवार, 21 फरवरी, 1932)

# आर्थिक अवस्था और राजनीति

बंबई, बंगाल और अपने युक्तप्रांत का सालाना सरकारी बजट देखकर अब हम कह सकते हैं कि सरकार की आर्थिक दशा चिंतनीय हो रही है। बंबई में लगभग एक करोड़, बंगाल में 2 करोड़ और हमारे प्रांत में तीन करोड़ के घाटे का तख्मीना लगाया गया है। बंबई व्यवस्था-सभा में सरकार के इस दिवालियापन का कड़े शब्दों में प्रतिवाद किया गया और आशा है हमारे प्रांत में भी किया जाएगा। बजट बनाते समय तो सरकार की तरफ से बड़े-बड़े आशा के पुल बंधाए जाते हैं पर साल के अंत में वे हवाई किले ही साबित होते हैं। बजट बनाते समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



खर्च-खाते में अकसर कुछ फालतू रकमें भी कूत ली जाती हैं, पर सालतमामी में वे रकमें तो जैसे बिला जाती हैं और उल्टा लेने के देने पड़ जाते हैं। यद्यपि नौकरशाही में सरकार बड़ी-बड़ी तनख्वाहों के आदमी रखती है और उन्हें अपनी दूरदर्शी नीति का ढिंढोरा पीटते भी देखा जाता है पर बजट के मामले में यही बहाना बतलाया जाता है कि सरकार बजट बनाते समय भविष्य की अवस्था का ठीक-ठीक अंदाज नहीं लगा सकी। परंतु दरिद्र देश में नौकरशाही के आदमियों की गलतियां बड़ी महंगी पड़ती हैं। सरकार की गलतियों का असर सरकार पर नहीं के बराबर पड़ता है क्योंकि बजट तो किसी न किसी तरह पूरा किया ही जाता है। ज्यादातर तो कर्ज लेकर बजट की पूर्ति होती है और नए टैक्स लगाकर भी। यह सब भार जनता को ही सहन करना पड़ता है। सरकारी खर्च में थोड़ी-बहुत कमी कर दी गई तो गनीमत समझिए। यह उस सरकार के विषय में कहा जा रहा है जो बजट बनाने में देश की जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं है और जनता के प्रतिनिधियों की अवहेलना कर अपना मतलब हल कर सकती है। जब ऐसी सरकार अपने मन मुताबिक बजट बना लेने के बाद भी वर्ष के अंत में दिवालियापन दिखाती है तब क्या कहा जाए?

सरकार के लिए यह न्याय नहीं है कि वह कर्जा ले लेकर अपना काम चलावे। अधिक से अधिक टैक्स के भार से लदे हुए देशवासियों पर नए टैक्स लगाना भी सब प्रकार से अनुचित है। उसे चाहिए कि जरा अपनी ही ओर नजर फेरे और आत्म निरीक्षण करे। बेहद बढ़े हुए सरकारी खर्च में जब तक ज़ोर-शोर से काट-छांट नहीं की जाएगी तब तक बजट भले ही बन जाएं, देश की जनता किसी तरह सुख और संतोष की सांस नहीं ले सकेगी। मामूली तनख्वाहों के मध्य और नीची श्रेणी के सरकारी कर्मचारियों को नौकरी से बर्खास्त करने और उनकी तलब काटने से जो बचत हो सकती है वह थोड़ी ही होगी और उससे मध्यश्रेणी की बेकारी बढ़ेगी जिसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ सकता। पिछली बार तो सरकारी छांट में मामूली तनख्वाहों के नौकरीजीवी निकाले गए थे, जिससे अनेक परिवार आश्रयहीन हो गए होंगे। इस समय भारत के किसानों की दरिद्रता को छोड़कर दूसरी सबसे बड़ी व्याधि मध्यश्रेणी की बेकारी है। सरकार के लिए उचित है कि वह इस व्याधि की दावा करे पर वह तो उल्टा उसे बढ़ाने के ही साधन जुटा रही है। आवश्यकता है बड़ी-बड़ी तनख्वाहों में गहरी कमी करने और फालतू ऊंचे ओहदों को हटा देने की। और मदों का बारीकी के साथ निरीक्षण किया जाना चाहिए। ध्यान देने की बात यह है कि आज इस बात की पुकार मचाई जा रही है कि ब्रिटिश सरकार भारत को पूर्ण प्रांतीय स्वतंत्रता देने जा रही है, यही नहीं केंद्र में भी प्रतिनिधि अधिकार दिए जा रहे हैं। यदि ऐसे मौके पर भी बजट बनाने में लोकमत की अवहेलना की जाएगी तो इसे हद दर्जे की मनमानी ही कही जाएगी।

बजट चाहे किस तरह से पूरे किए जाएं और काम चलाने के चाहे जैसे तरीके निकाले जाएं पर सरकार की आर्थिक अवस्था तब तक स्थिर नहीं होगी और न शांति और व्यवस्था ही प्रतिष्ठित होगी जब तक मूल कारणों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। बजट में घाटा पड़ने के कारणों का हवाला देते हुए बंबई व्यवस्था-सभा में सत्याग्रह आंदोलन को एक कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बतलाया गया है और अन्यत्र भी ऐसे ही बयान दिए गए हैं। जब ऐसी बात है जब शुद्ध आर्थिक दृष्टि से देश की जनता को सरकार से यह पूछने का अधिकार है कि क्यों इस प्रकार के आंदोलन के उठने की नौबत आने दी गई और क्यों नहीं ऐसी चेष्टा की जाती कि आंदोलन शांत हो जाए। यदि सरकार जनता की सम्मति की कुछ भी कद्र करती है और बजट बनाते समय कानूनी नहीं तो कम से कम नैतिक जिम्मेदारी समझती है कि प्रजा की राय ले ली जाए तो इस समय सरकार का यह कर्तव्य है कि वह आर्थिक अवस्था के सुधरने के वे उपाय भी जनता से पूछे जिनका संबंध राजनीति से है। जब सरकार की ओर से व्यवस्था-सभाओं में यह स्वीकार किया जा रहा है कि राजनीतिक और आर्थिक अवस्था का एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध है तब केवल आर्थिक दृष्टि से भी जनता की सम्मति की कद्र करना सभ्यता का तकाजा है। आज कल वाइसराय महोदय से लेकर प्रांत के प्रायः सभी गवर्नर यह कहने में लगे हैं कि कांग्रेस के साथ किसी तरह का समझौता नहीं किया जाएगा, पर क्या उन्होंने आर्थिक पहलू पर ध्यान देकर देखा है कि इस लड़ाई का क्या आर्थिक असर पड़ेगा। यदि इस आर्थिक जिम्मेदारी पर सरकार की तरफ से गौर किया जाए और लोकमत की कद्र की जाए तो हमारा विश्वास है कि सरकार की वर्तमान युद्ध वृत्ति ठंडी पड़ जाए और समझौते के उपायों से काम लिया जाए जो स्थायी शांति उत्पन्न कर सकते हैं। हां यदि राजनीति की तरह आर्थिक मामलों में भी सरकार देश की सम्मति नहीं मानना चाहती तब तो कुछ कहना ही नहीं हैं।

बजट बनते हैं और बिगड़ते हैं, फिर सुधारे जाते हैं, फिर बिगड़ते हैं। इस चक-चक में भीतर से देश की आर्थिक दरिद्रता रोती हुई नजर आती है। जो दूरदर्शी हैं वे इस बजट चक्र के भीतर ही देश के वर्तमान असंतोष की आकृति भी देख सकते हैं। यदि सरकार में दूरदर्शिता हो तो वह केवल आर्थिक दृष्टि से ही वर्तमान आंदोलन को शांत करने का उपाय करे। महात्मा गांधी की प्रसिद्ध ग्यारह शर्तों में अधिकांश तो आर्थिक ही हैं। उन्हें ही वे स्वराज्य का सार कहकर पुकारते हैं जिस स्वराज्य के लिए आजकल देश में अशांति फैल रही है उसके सबसे बड़े कारण शायद ये बजट ही हैं। पर बजट बनते हैं, बिगड़ते हैं, सुधरते हैं और फिर बिगड़ते हैं पर मूल कारण की ओर सरकार की दृष्टि ही नहीं जाती।

## चीन की राष्ट्रीय जागृति

जापान के द्वारा चढ़ाई करने और युद्ध की कठोर नीति बर्तने के कारण चीन में जो अद्‌भुत राष्ट्रीय जाग्रति उत्पन्न हो गई है वह राजनीति के विद्यार्थियों को यह सबक सिखाती है कि कठोरता करने का फल अच्छा नहीं होता। जापान ने अब तक समझ रखा होगा कि अपने अस्त्र-शस्त्र और युद्धशक्ति का प्रदर्शन करके वह चीन वालों को भयभीत कर देगा और इस तरह चीन में अपने व्यापार विस्तार का कथित उद्देश्य पूरा कर लेगा। जापान का चीन पर चढ़ाई करने का उद्देश्य साम्राज्य विस्तार नहीं था केवल व्यापार विस्तार था, इस पर विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करने के प्रमाण नहीं मिलते, पर जो कुछ हो चीन इस समय जिस बहादुरी के साथ जापान से लोहा ले रहा है उससे यह स्पष्ट है कि व्यापार विस्तार की आशा तो स्वप्न हो गई, जापान को अपनी युद्ध संबंधी प्रतिष्ठा बरकरार रखने में भी लोहे के चने चबाने पड़ेंगे। शुरू में चापेई नगर को नष्ट भ्रष्ट करके जापान ने जो अपार धन-जन को नृशंस क्षति पहुंचाई उससे उसका इरादा तो पूरा नहीं हुआ, उल्टा चीन में युद्धज्वर का ताप चढ़ आया और आज चीन के नवयुवक तथा नवयुवती दल वीरोत्साह के भावों से ओतप्रोत होकर देश की रक्षा में तत्पर हो रहे हैं। जापान के पास पश्चिमी विज्ञान की करामात से नवीन से नवीन विनाशकारी साधन है और संघटित सेना है, इस पाशविक शक्ति से वह यदि चीन को कुछ समय के लिए पराजित भी कर दे तो भी चीन में जापान का व्यवसाय पनपना अब प्रायः असंभव ही है। यदि जापान यह समझता हो कि वह चीन पर निष्कंटक साम्राज्य स्थापित कर सकेगा तो यह भी मृगतृष्णा ही होगी। चीन में राष्ट्रीयता की जो लहर उमड़ पड़ी है वह तब तक शांत नहीं होगी जब तक वह देश विदेशी अधिकार से मुक्त न हो जाएगा। जापान की वर्तमान नीति से उसका न व्यावसायिक लाभ होगा, न साम्राज्य संबंधी थोड़े समय के लिए वह आत्म परितोष कर सकता है। पर वर्तमान समय में उसने जो उग्र नीति अख्तियार की है उससे संसार की शांति खतरे में पड़ गई है और निरस्त्रीकरण सम्मेलन के सफल होने में एक ओर अड़ंगा लगा गया है। जो मानसिक और शारीरिक शुद्धि अपेक्षित है वह राष्ट्रों में मौजूद नहीं है और जो है वह भी भंग की जा रही है। चीन पर यदि इसी प्रकार विपत्ति पड़ती रही तो उसका विश्वास निरस्त्रीकरण से उठ जाएगा और वह भी अधिकाधिक शस्त्र संग्रह करने और संहार के साधन एकत्र करने में अपनी शक्ति लगाएगा। संभव है, चीन जापान युद्ध आगे चलकर ऐसा रूप भी धारण करे जो संसार के अंधराष्ट्रों को भी युद्ध के लिए आमंत्रित करे। यदि ऐसा हुआ तो निरस्त्रीकरण की कल्पना हवा में उड़ जाएगी और संसार के सामने युद्ध और भयानक नाश का दृश्य उपस्थित होगा। क्या इसकी जिम्मेदारी जापान पर नहीं हैं?

(गुरुवार, 25 फरवरी 1932)

# शांति का प्रस्ताव

जहां शुरू-शुरू में युद्ध की आग भड़की वहीं पहले पहल शांति के ठंडे छींटे भी छोड़े गए। यह स्वाभाविक ही है, और इन दोनों का श्रेय इस बार हमारे संयुक्त प्रांत को प्राप्त हुआ है। हमारे यहां गांधी-इर्विन समझौते के हो जाने पर भी समझौता नहीं-सा ही हुआ क्योंकि सरकार और किसानों के बीच में लगान की छूट के बाबत मतभेद बना ही रहा। यह मतभेद कभी दूर नहीं हुआ और अंत में यही वर्तमान संघर्ष के रूप में परिणत हो गया। यद्यपि देश भर में सत्याग्रह आंदोलन को आरंभ हुए अभी दो महीने से अधिक नहीं हुए पर युक्त-प्रांत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किसान-आंदोलन का श्रीगणेश हुए दस महीने से भी अधिक हो गए हैं। इतने समय के बाद यदि युद्ध की मनोवृत्ति कच्ची पड़ रही हो और सरकार की ओर से भी शांति के प्रस्ताव से चिढ़ कम पड़ गई हो तो आश्चर्य नहीं। अब तक तो वर्तमान लड़ाई का रूप यह रहा है कि सरकार को कांग्रेस के साथ किसी प्रकार का समझौता मंजूर ही नहीं था, पर पिछले दिन हमारे प्रांत की व्यवस्था-सभा में रायबहादुर ठाकुर हनुमान सिंह और चौधरी अर्जुन सिंह के शांति संबंधी प्रस्ताव जिस आसानी से पास हुए और सरकार की ओर का जो रुख देखा गया उसमें कम से कम सरकार की सरगर्मी का पारा उतरा दीख पड़ता है। यद्यपि अर्थ मंत्री के भाषण से वही उद्गार निकला जो वाइसराय महोदय की 'न समझौता' वक्तृता से विशेष विभिन्न नहीं। व्यवस्था-सभा ने चौधरी अर्जुनसिंह की तरफ से किए गए इस प्रस्ताव को पास कर दिया है कि वाइसराय महोदय से आग्रह किया जाए कि वे देश के भिन्न-भिन्न दलों का सम्मेलन बुलाएं और मेल-जोल के उपाय ढूंढ़ें जिससे सब दल मिलकर विधान रचना के काम में शरीक हो सकें। रायबहादुर ठाकुर हनुमान सिंह का यह प्रस्ताव भी बहुमत से मंजूर कर लिया गया है कि सरकार अपनी उग्रता के बदले हेलमेल का भाव धारण करे, आर्डिनेंसों की सख्ती को अधिक से अधिक मिटाने का प्रयत्न करे, 144 धारा का कम से कम व्यवहार करे और अहिंसात्मक आंदोलन के सभी कैदियों को आमतौर पर 'ए क्लास' के सुभीते दे, खास केसों में 'बी क्लास' का दंड दे और 'सी क्लास' तो राजनीतिक कैदियों को दे ही नहीं।

प्रांतीय गवर्नर सर मालकम हेली अभी उस दिन कांग्रेस के आंदोलन को सब प्रकार से दबाने का विचार प्रकट कर चुके हैं और नर्म दल वालों के प्रति यह उपालंभ भी दे चुके हैं कि ये संगठित होकर कांग्रेस का विरोध नहीं करते। आशा है उन्हें व्यवस्था-सभा के उक्त प्रस्तावों से नर्म दल वालों की राय का पता चला होगा, क्योंकि आजकल की व्यवस्था-सभाओं के सदस्य नर्म दल के ही हैं, कांग्रेस अपने प्रतिनिधियों को उससे खींच चुकी है। प्रांतीय लिबरल संस्था तथा अन्यान्य दलों के प्रस्तावों को यदि गवर्नर महाशय ने ध्यान देने के योग्य नहीं समझा तो कम से कम वे प्रांतीय कौंसिल की बहस से यह अनुभव करने का प्रयत्न करें कि देश का गैर कांग्रेसी दल वर्तमान सरकार की नीति के संबंध में क्या राय रखता है, और उस राय का कितना महत्व है। प्रांत की व्यवस्था-सभा में जो नेशनलिस्ट दल के सदस्य हैं वे ही नहीं बल्कि परम राजभक्त ठाकुर विक्रम सिंह महाशय भी यह कहने को मजबूर हुए हैं कि कांग्रेस से उनका चाहे जितना विरोध हो, वे समझौते की नीति का सब तरह से समर्थन करते हैं। लड़ाई शुरू करने के कारण के संबंध में प्रायः सभी गैर सरकारी सदस्य एकमत हैं कि लार्ड विलिंगडन ने महात्मा गांधी से मिलना अस्वीकार करके गलती की। प्रायः सभी सदस्य कांग्रेस के महान प्रभाव और उसके सच्चरित्र नेताओं की देश भक्ति को स्वीकार करते हैं और उनके प्रशंसक हैं। प्रायः सभी का यह विश्वास है कि कांग्रेस का आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन है और दबाकर उसका अस्तित्व नहीं मिटाया जा सकता। इन्हीं कारणों से सब सरकार से यह प्रस्ताव करते हैं कि विधान के महत्वपूर्ण कार्य को आगे बढ़ाने के लिए यह परम आवश्यक है कि वह कांग्रेस के साथ समझौता करे और देश में शांति और सुकाल की प्रतिष्ठा करे। प्रसन्नता की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि उक्त प्रस्ताव व्यवस्था-सभा में पास हो गए हैं।

जैसाकि हम कह चुके हैं, प्रांतीय सरकार का रुख इस बार कुछ सुधरा हुआ है और इतने दिनों के अनुभव के बाद उसका सुधरना उचित भी है। सरकार की ओर से मिस्टर ब्लंट ने यद्यपि लार्ड विलिंग्डन की तरफदारी और कांग्रेस के विरोध में थोड़ा-बहुत कहने की कोशिश की पर उनकी वक्तृता का मुख्य आशय यह था कि सरकार समझौता करने को तैयार है यदि समझौते का प्रस्ताव कांग्रेस की ओर से किया जाए और साथ ही यह एतबार दिलाया जाए कि विधान के काम में कांग्रेस देश के एक विशेष दल के बतौर ही हाजिर होगी, पूरे देश का प्रतिनिधि बनने का बीड़ा न उठाएगी। परंतु उन्होंने एक और शर्त लगाई है कि कांग्रेस फिर कभी सत्याग्रह आंदोलन शुरू न करे जो कांग्रेस यदि स्वीकार करे तो उसका अर्थ यही होगा कि उसने अपनी पूरी हार मान ली। कांग्रेस की ओर से समझौते का प्रस्ताव कौन कर सकता है जब उसके सभी बड़े और माननीय नेता जेलों में पड़े हुए हैं? महात्मा गांधी जब नजरबंद किए गए थे तब उन्होंने बड़े ही मार्मिक शब्दों में यह कहा था कि सरकार ने शांति और मेल के लिए बढ़ाए हुए मेरे हाथ को फेर दिया। महात्माजी के पकड़ लिये जाने और समस्त कांग्रेस संस्थाओं के गैर कानूनी घोषित हो जाने के बाद स्वभावतः समझौते के योग्य परिस्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है जब सरकार उसके लिए उद्योग करेगी। जो गैरकानूनी संस्था है वह जब तक कानूनी नहीं की जाती तब तक कानून की जानकार सरकार क्या उसके साथ बातचीत करने को तैयार हो जाएगी? मिस्टर ब्लंट की दूसरी शर्त और भी चिंतनीय है। कांग्रेस देश की एकमात्र प्रतिनिधि नहीं हो सकती है, यह माना जा सकता है, पर वह देश में कितने प्रतिशत समाज का प्रतिनिधित्व करती है इसका निर्णय तो खुलेआम चुनाव के द्वारा ही ठीक-ठीक हो सकता है। कांग्रेस देश के एक दल विशेष की ही हैसियत से विधान के काम में भाग ले यह तो संभव है पर इस दल विशेष की शक्ति कितनी है इसका निर्णय कौन करेगा? क्या सरकार? पर सरकार पिछले गोलमेज सम्मेलनों में जिस तरह देश के प्रतिनिधि चुनने का अभ्यास दिखा चुकी है उससे तो यह विश्वास नहीं होता कि वह न्याय कर सकेगी। यदि सरकार को यह इष्ट है कि कांग्रेस विधान रचना के काम में अन्य दलों के साथ एक दल बनकर ही शामिल हो तो कांग्रेस की तरफ से यह आग्रह करना न्याय होगा कि विधान रचना के काम के लिए देश में आम चुनाव हो जिससे कांग्रेस अपने प्रतिनिधियों को उचित संख्या में रख सके और उसी संख्या के अनुसार उसकी हैसियत समझी जाए। पर क्या सरकार ऐसा करने को तैयार है ?

शांति का प्रस्ताव किया गया है यह प्रसन्नता की बात है। सरकार की तरफ से यह कहा गया है कि यह प्रस्ताव विशेष महत्वपूर्ण है, यह और भी प्रसन्नता की बात है और यह साबित करती है कि युद्ध का इरादा शायद कच्चा पड़ रहा है। प्रस्ताव का पास हो जाना भी संतोष का विषय है। इससे सरकार को देश के गैरकांग्रेसी दलों का विचार जान लेने में सहायता मिली। जो हमारे प्रांत की व्यवस्था-सभा का निर्णय है, हम समझते हैं कि देश के संपूर्ण राजनीतिक दलों का भी वही निर्णय है। वह निर्णय यह है कि समझौते का समय आ गया है और बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समझौते के विधान का काम नहीं चल सकता। यदि प्रांतीय सरकार की ही तरह भारत सरकार को भी यह निर्णय महत्वपूर्ण समझ पड़े और उसी के अनुसार वह अपनी नीति भी निर्धारित कर सके तो व्यावहारिक रीति से समझौते के काम में कोई बड़ी बाधा नहीं पड़ सकती।

## सम्मान

हम यह जानकर प्रसन्न हुए कि हिंदी संसार के सुपरिचित और प्रतिष्ठित कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह को रीवां दरबार ने अपनी स्टेट कौंसिल में नियुक्ति दी है। इस नियुक्ति से ठाकुर साहब का ही नहीं स्टेट कौंसिल का भी गौरव है क्योंकि ठाकुर साहिब निष्पक्ष, लोकप्रिय और काव्य कुशल सज्जन हैं। राज कार्य संचालन की निपुणता आप में अधिक है और आप समय पाकर स्टेट कौंसिल के एक श्रेष्ठ सदस्य प्रमाणित होंगे ऐसी आशा है। इस उचित नियुक्ति पर हम रीवां नरेश को धन्यवाद देते हैं।

(रविवार, 28 फरवरी 1932)

## निरस्त्रीकरण का भविष्य

निरस्त्रीकरण के विषय में वर्षों से सभ्य संसार का लोकमत एकत्र हो रहा है और सम्मेलन के आरंभ होने के बाद इधर अनेक राष्ट्रों की अनेक नीतियां भी मालूम पड़ी हैं। इन सबका अध्ययन करने वाला भोला-भाला आदमी भूलभुलैया में पड़े बिना नहीं रहेगा, इसलिए हम ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सामूहिक और वैयक्तिक दृष्टि से इस समस्या पर विचार करें तो संभव है इसके भविष्य पर कुछ प्रकाश पड़े। निरस्त्रीकरण की भावना पिछले महासमर के भयंकर विनाश के बाद उत्पन्न हुई थी, परंतु विस्मय की बात यह थी कि यह उन राष्ट्रों में उत्पन्न हुई थी, जो महायुद्ध में विजयी हुए थे और अपनी विजय के कारण हारे हुए राष्ट्र जर्मनी को बलात् निरस्त्र कर सके थे। वर्सेलिस की संधि के अनुसार जर्मनी का निरस्त्र होना, संसार के निरस्त्रीकरण की पहली सीढ़ी थी पर उसके बाद दूसरी सीढ़ी कभी नहीं बढ़ाई गई, उल्टा अस्त्र-शस्त्रों का विराट विस्तार हुआ और संहारक वैज्ञानिक अविष्कारों का क्रम कभी टूटा नहीं। संसार के संत और महात्माओं का एक दुर्बल दल अपनी संतवाणी में धार्मिक बनो, 'अहिंसक बनो, विश्वशांति का मार्ग निष्कंटक करो' वगैरह की रट लगाए रहा पर राजनीतिज्ञों का उग्र समुदाय कभी भी अपने मार्ग से नहीं डिगा जिसका फल यह है कि आज संसार को विनाश की इतनी अपार शक्ति प्राप्त है जितनी अब से पहले कभी नहीं थी। इन सशस्त्र राष्ट्रों की जनता यद्यपि संतों की वाणी में आनंद का अनुभव करती है पर व्यावहारिक और राजकीय प्रश्नों में वह राजनीतिज्ञों को ही सब कुछ समझती है और उन्हें ही सर्वस्व अर्पण करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जनता की यह संपूर्ण शक्ति पाकर राजनीतिज्ञ मनमाने तरीके पर अपनी नीति निर्धारित करते हैं और आज निरस्त्रीकरण सम्मेलन के संबंध में उनकी नीति देखकर यह कहा जा सकता है कि संसार में अभी शांति की दिल्ली दूर है।

निरस्त्रीकरण सारे संसार के राष्ट्रों से संबंध रखता है और सारे संसार के राष्ट्रों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। एक तो वे महान राष्ट्र जो स्वतंत्र है और अधिकांश में साम्राज्यवादी हैं, जैसे ब्रिटेन, फ्रांस, जापान आदि। दूसरे वे जो स्वतंत्र हैं पर महान नहीं जैसे बेलजियम अथवा यूरोप के अन्य छोटे राष्ट्र, तीसरे वे जो न स्वतंत्र है और न शक्तिशाली हैं जैसे हमारा भारत। इनमें दूसरे और तीसरे वर्ग के राष्ट्रों का स्वार्थ इस बात में है कि निरस्त्रीकरण की योजना पूरी की जाए ताकि वे अपनी-अपनी सीमा में रह कर, निर्भीक भाव से आत्मविस्तार कर सकें। परंतु इन राष्ट्रों की आवाज निरस्त्रीकरण परिषद में सुन पड़ेगी, इसमें भी संदेह ही है। जो छोटे-छोटे स्वतंत्र राष्ट्र हैं वे तो छोटे हैं ही, भारत जैसे पराधीन देश की सुनवाई होना तो प्रायः असंभव ही है। निरस्त्रीकरण में भारत का प्रतिनिधित्व सर सेमुएल होर करने वाले हैं, एक इसी बात से अंदाज लगाया जा सकता है कि भारत का लोकमत किस तरह व्यक्त किया जाएगा। सर आगा खां सम्मेलन को संदेश भेजते हुए, यह खबर भेजने से नहीं चूके कि भारत में फौज की संख्या घटाई जाने की गुंजाइश नहीं है। भारत देश में भारत की आर्थिक शक्ति से अधिक खर्च होता है और यहां के राष्ट्रीय नेता दीर्घकाल से फौज घटाने का आंदोलन कर रहे हैं पर निरस्त्रीकरण सम्मेलन को तो भारत की ओर से सर आगा खां की ही उक्ति सुनने को मिली। ऐसी अवस्था में महाकवि रवींद्रनाथ का यह वचन अत्यंत सत्य है कि भारत केवल अपनी शुभकामना प्रकट कर सकता है, व्यावहारिक रीति से उसमें इतना शक्ति नहीं कि संसार की शांति के लिए कोई उचित आयोजन कर सके।

ऊपर के विवेचन में यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि निरस्त्रीकरण सम्मेलन का भविष्य न तो संसार के शांतिमय संतों के हाथ में है, न छोटे-छोटे स्वतंत्र राष्ट्रों के हाथ में और न भारत जैसे परतंत्र देश के हाथ में। वह पूर्णतः महान् शक्तिशाली और साम्राज्यवादी राष्ट्रों के अपार सामर्थ्यवान राजनीतिज्ञों के हाथ में है। विचार नीति विगत वर्षों में अस्त्र-शस्त्र के होड़ की रही है। जिस नीति से उनकी मनोवृत्ति का परिचय मिल सकता है। निरस्त्रीकरण के अध्यक्ष ब्रिटिश मजदूर दल के नेता आर्थर हेंडरसन नियुक्त किए गए हैं, पर इस समय ब्रिटिश राज्यचक्र में उनका कोई हाथ नहीं है। फ्रांस में निरस्त्रीकरण के अनुकूल वातावरण नहीं है और इधर कुछ दिनों में वहां के अनेक मंत्रिमंडलों का भंग होना भी अर्थपूर्ण है। जर्मनी के प्रधान ब्रनिंग यद्यपि निरस्त्रीकरण के पक्ष में हैं, परंतु जर्मनी का हिटलर दल निरस्त्रीकरण की पोल समझता है और इससे उदासीन है। इस दल की शक्ति बढ़ी हुई है। जापान ने सम्मेलन में सबसे अधिक प्रतिनिधि भेजकर और साथ ही चीन के संहार के लिए बड़ी सेना भेजकर शायद महान् राष्ट्रों की वास्तविक नीति का उद्घाटन किया है।

इन्हीं महान राष्ट्रों के हाथ में निरस्त्रीकरण सम्मेलन का भविष्य है, इसलिए वह निराशापूर्ण है। जितने प्रस्ताव अब तक सम्मेलन में उपस्थित किए गए हैं उनसे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वार्थपूर्ण नीति का रहस्य प्रकट होता है। निरस्त्रीकरण की जितनी योजनाएं अब तक उपस्थित की गई हैं उनसे यह स्पष्ट है कि बहुत कम राष्ट्र शुद्ध हृदय से संसार की शांति की उदार भावना लेकर अग्रसर होने को तैयार हैं। सभी फूंक-फूंककर कदम रखते हैं। सबके मन में एक-दूसरे के प्रति आशंका और अविश्वास भरा है। चतुर व्यवसायियों की तरह सब मोल-तोल करने और अपना मुनाफा देखने में लगे हैं। वणिकवृत्ति का ही प्रसार है। उदार क्षात्रधर्म का पालन करने वाला एक भी महान् राष्ट्र निरस्त्रीकरण सम्मेलन के प्रांगण में नहीं दीख पड़ता इसलिए उनकी सफलता अतिशय संदिग्ध है और उसका भविष्य आशा से रहित है।

## हिंदू-समझौता

हिंदू महासभा की ओर से डॉक्टर मुंजे ने अखिल भारतीय अछूत-संघ के प्रतिनिधियों से जो समझौता किया उसके लिए डॉक्टर मुंजे और अछूत संघ के प्रतिनिधि दोनों ही बधाई के पात्र हैं। केवल जातीय ही नहीं, राष्ट्रीय दृष्टि से भी हिंदू समाज के ये दो दल अलग-अलग रहकर अहितकारी थे परंतु अब एक होकर वे उचित मार्ग पर आ गए हैं। यद्यपि अछूतवर्ग अधिकांश में अब से पहले भी मुख्य हिंदू जाति से मिलकर रहना चाहता था पर डॉक्टर अंबेडकर के रूप में उसे एक ऐसा नेता मिल गया था पृथक निर्वाचन द्वारा हिंदुओं की एकता में व्याघात पहुंचाने का कारण होता। मजहबपरस्त मुसलमान नेताओं की ही नीति से प्रभावित होकर उन्हीं का अनुकरण करने और अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र की मांग पेश करने वाले डॉक्टर अंबेडकर महोदय पिछले दोनों गोलमेज सम्मेलनों में ब्रिटिश सरकार के चुने अछूत प्रतिनिधि थे और इसी हैसियत से उन्होंने अपने प्रतिनिधित्व का दम भरते हुए महात्मा गांधी जैसे नेता के प्रति भी बहुत कुछ असंगत शब्दों का प्रयोग किया था। परंतु आज अखिल भारतीय अछूत संघ उनके साथ नहीं है यह स्पष्ट ही है। ध्यान देने की बात यह है कि महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रीय नेता ने अछूतों को पृथक मताधिकार देने का विरोध राजनीतिक प्रमाण देकर नहीं किया, केवल सामाजिक कारणों से किया था। हिंदू समाज का खंड-खंड होना इसकी सबसे बड़ी बाधा का उल्लेख महात्माजी ने किया था। अवश्य यह एक बड़ी बाधा थी जिसके दूर हो जाने से अब हिंदू मत को संतोष मिलेगा। पृथक निर्वाचन राष्ट्रीयता के सिद्धांत के भी प्रतिकूल है इसलिए राष्ट्रीय मुसलमान उसके विरुद्ध हैं। जातीय भेदभाव बढ़ाने का पृथक निर्वाचन सबसे सरल साधन है इसलिए इसे दूर करके अछूत संघ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

डॉक्टर अंबेडकर ने इस संबंध में असेंबली के अछूत प्रतिनिधि के नाम जो पत्र लिखा था, उससे जान पड़ता है कि वे अपने को अछूतों का सर्वे-सर्वा समझते थे और डिक्टेटर बनकर उनपर नियंत्रण रखना चाहते थे। गोलमेज की कमेटियों के सामने अछूतों की ओर से जो बयान दिए जाएं वे डॉक्टर अंबेडकर के बनाए हुए 'आदर्श उत्तर' (Matel Answer) के आधार पर दिए जाएं ऐसी उनकी मंशा थी। परंतु अछूत संघ ने हिंदू महासभा के साथ समझौता करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



डॉक्टर अंबेडकर को चक्कर में डाल दिया होगा। देखना है भविष्य में डॉक्टरजी कौन सा नया प्रस्ताव उपस्थित करते, अथवा नया गुल खिलाते हैं।

गोलमेज के दोनों ही अधिवेशनों में डॉक्टर अंबेडकर अछूतों के प्रतिनिधि थे पर उस हैसियत से उन्होंने जो कुछ कहा उसका अब क्या मूल्य रह गया? अछूतों के पृथक निर्वाचन की स्कीम रद्द हो जाने पर अब हिंदू अछूत-सिख समस्या आसान हो गई। राष्ट्रीय मुसलमान भी संयुक्त निर्वाचन के समर्थक हैं। आशा है सरकार ने इस प्रगति पर ध्यान दिया होगा। देखना है, इस संबंध में उसकी क्या नीति होती है।

(गुरुवार, 3 मार्च 1923)

# सर सेमुएल होर का भाषण

भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने पार्लियामेंट की जनसभा में भारत की स्थिति की समालोचना की और वर्तमान आर्डिनेंस राज्य की जो खूबियां बताईं ये एक दर्जे तक एकतरफा थीं। पिछले मजदूर मंत्रिमंडल के अवसर पर जब मिस्टर चर्चिल और उनके साथी लोग भारत में कड़े शासन की ख्वाहिश जाहिर करते थे तब भारत में ही नहीं, ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी उनके विचार पर आश्चर्य किया जाता था, परंतु जमाने के फेर से आज उसी नीति का समर्थन करने वाले महाशयों की कमी नहीं है आर्डिनेंस राज्य न केवल नैतिक किंतु राजनीतिक दृष्टि से भी गुजरे जमाने का सूचक है परंतु आज सर सेमुएल होर जैसे राजनीतिज्ञ उसकी आवश्यकता समझते हैं। इस बात से कोई विचारणीय पुरुष इनकार नहीं करेगा कि देश के कुछ भागों में स्थिति बहुत बिगड़ चली थी जिसके सुधारने के लिए कुछ विशेष अधिकार के प्रयोग की आवश्यकता थी परंतु यह विचारणीय है कि क्या ऐसे कड़े आर्डिनेंस बगैर काम नहीं चल सकता था। सरकार का कहना है कि जब कांग्रेस ने ललकारा तब उसके लिए कोई और रास्ता नहीं था सिवाय इसके कि कांग्रेस का मुकाबला करे और अमन चैन को देश हित के लिए कायम रखे। यह मानना पड़ेगा कि सरकार के सामने कठिन समस्या थी। सर सेमुएल होर यह ऐलान करते हैं कि भारत की स्थिति सुधर गई है, वह कुछ भी आपदाजनक नहीं है। जब भारत में असंतोष का प्रसार हो रहा है और आर्थिक, व्यावसायिक तथा राजनीतिक परिस्थिति बिगड़ी हुई है तब सर सेमुएल होर के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। जब हमारे यहां एक प्रांत के बाद दूसरे प्रांत लगातार दिवालिया बजट निकालते जा रहे हैं और जब एक के बाद दूसरे व्यापारिक संकट प्रकट हो रहे हैं तब जो कोई ऐसी स्थिति को संतोषजनक समझता है उसे या तो घटनाओं का ठीक परिचय नहीं है अथवा उसकी प्रकृति ही आश्चर्यजनक है।

सर सेमुएल होर के लिए यह कर्तव्य-सा ही था कि उस नीति का समर्थन करते जो उन्हीं के संरक्षण में भारत में व्यवहार की जा रही है। ऐसा करने में उन्हें वास्तविक एकतरफा बातों का प्रचार करना पड़ा है। वर्तमान ब्रिटिश अनुदार दल के अधिकारपद कर रहते हुए सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सेमुएल होर की भारतीय नीति में कोई बाधा पड़ने की संभावना नहीं है, इसलिए सर सेमुएल को अपने समर्थन में ऐसी बातें कहने की कोई वैसी आवश्यकता नहीं थी। सर सेमुएल होर ने कांग्रेस का विरोध करते हुए यह अवश्य आश्वासन दिया कि ब्रिटेन हिंदुस्तान से मैत्री भाव रखना चाहता है और उसके साथ सहयोग करना चाहता है। उनके कहने का आशय यह था कि आर्डिनेंस राज सरकार का लक्ष्य नहीं है और सुधार के लिए यथाशक्ति जल्दी काम किया जा रहा है। इस काम में जो अड़ंगा लगा रहे हैं देश के हितैषी नहीं हैं। आज के ही समाचारपत्रों में लार्ड इर्विन महोदय का यह तार छपा है कि 'भारत के वर्तमान दुर्भाग्य की परिस्थिति में हमारी दोहरी नीति यह होनी चाहिए कि एक ओर तो राज्य की स्थिरता की रक्षा की जाए और दूसरी ओर यह समझा जाए कि केवल दमन से कोई भी राजनीतिक समस्या आज तक नहीं सुलझी है।' वास्तव में यही दोहरी नीति ब्रिटेन के प्रति विदेशों में सद्भाव उत्पन्न कर सकती है और ब्रिटिश-भारतीय संबंध के स्थायी होने की आशा दिला सकती है। शक्ति के द्वारा राजनीतिक आकांक्षाएं थोड़े समय के लिए ही दबाई जा सकती हैं पर उनकी प्रतिक्रिया और भी खराब हुआ करती है। जब एक पक्ष में बुद्धिमानी नहीं रहती तब दूसरे पक्ष में भी राष्ट्रीय मानरक्षा की भावना जोर पकड़ती है और सब प्रकार के तर्क अथवा संयम पीछे रह जाते हैं। सर सेमुएल होर की विज्ञप्ति और भारत के वाइसराय से लेकर जिला अफसरों तक समर्थित 'समझौता होने' नीति का फल संतोषजनक नहीं होगा। पर इन लोगों ने भी इस दोहरी नीति का समर्थन किया है। भारत की खबरें विदेशों में एकतरफा सेंसर से गुजरकर पहुंच पाती हैं इसका उदाहरण मीरा बहन और श्री महादेव देसाई के तार हैं जो ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य श्री विलियम्स को भेजे गए थे, पर रोक लिये गए। कांग्रेस के नेताओं और उसके अनुयायियों की गणना बलवाइयों की श्रेणी में की जाती है इसी कारण से कांग्रेस आंदोलन के प्रति इतना कठोर व्यवहार किया जाता है। कांग्रेस के नेता भी तो इस लड़ाई को सरकार से युद्ध वर्णन करते हैं। जैसे वाइसराय लार्ड विलिंग्डन महोदय ने अपने असेंबली वाले पिछले भाषण में भारत का गौरव बढ़ाने के लिए महान निरस्त्रीकरण सम्मेलन की सफलता में भारत का हाथ बतलाया था वैसे ही क्या सर सेमुएल होर महोदय ने आगामी ओटावा सम्मेलन में भारत के विशेष रीति से भाग लेने की आशा प्रकट की? आपने यह सदिच्छा दिखाई कि सम्मेलन में भारतीय हितों की दृष्टि से भारत के प्रतिनिधि प्रस्ताव उपस्थित करें। अब तक जब-जब भी भारतीय हित का प्रश्न आया है तब-तब अधिकांश में उसके समझने वाले हमारे शासक लोग ही रहे हैं। क्या भविष्य में भी वही क्रम जारी रहेगा? यदि रहेगा तब ओटावा कॉन्फ्रेंस में भारतीय हित पर पूरा विचार किया जाएगा इसमें शंका हो सकती है।

## एकेडमी का जलसा

इस अंक के प्रकाशित होते ही प्रयाग की हिंदुस्तानी एकेडमी का तीसरा सालाना जलसा शुरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो जाएगा। इस जलसे के बारे में कई विज्ञप्तियां प्रकाशित हुई हैं जिनमें कुछ हमारे पत्र में भी निकली हैं। कोई महाशय हिंदुस्तानी एकेडमी को नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा यू.पी. के विश्वविद्यालयों का संगमक्षेत्र समझकर उसे तीर्थ का महत्व देते हैं, कोई हिंदू-उर्दू के साहित्यकारों के सम्मिलन के आधार पर हिंदू-मुस्लिम समस्या का समाधान भी एकेडमी के भीतर ही ढूंढ़ते है। बाबू धीरेंद्र वर्मा का जो पत्र हमारे पिछले अंक में प्रकाशित हुआ है उसमें आपने यह प्रस्ताव रखा है कि हिंदी लिपि, भाषा, शैली तथा साहित्य के इतिहास आदि में संबंध रखने वाली ग्रंथियां जलसे में सुलझाई जाएं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न आशाएं और आकांक्षाएं एकेडमी से तृप्त कराना चाहते हैं। एकेडमी की परिस्थिति देखते हुए हमें जो प्रस्ताव सबसे अधिक समयोचित, व्यावहारिक और महत्वपूर्ण जान पड़ता है वह यह है कि एकेडमी अपने प्रकाशन विभाग को संभालने की चेष्टा करे। हम जब कभी एकेडमी का स्मरण करते हैं तब हमारी दृष्टि हिंदू-मुस्लिम एकता, साधन अथवा भाषा शैली ग्रंथि निवारण की ओर नहीं जाती, सदैव उन रुपयों की ओर जाती है जो उसे साल में सरकार की ओर से मिलते हैं। एकेडमी को हम धन के संबंध में हिंदी की सबसे सौभाग्यशालिनी संस्था समझते हैं इसलिए हमारी यह इच्छा है कि वह रुपयों का सदुपयोग करने का विचार करे। अपने प्रकाशन की शक्ति पर ही एकेडमी किसी समय गर्व कर सकता है और उसे इसका ही श्रेय मिल सकता है। जो साधन एकेडमी को प्राप्त हैं उसका ही अधिक से अधिक उपयोग न कर अप्राप्त साधनों की कल्पना करना व्यावहारिक बुद्धि के साथ अन्याय करना और अपने को धोखा देना है।

## साहित्यकार का सदाचार—1
## (क्या कवि को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं?)

(यह एक अच्छा विवाद-योग्य विषय है और इसी दृष्टि से लिखा भी गया है। यदि हिंदी के विद्वान इसके पक्ष-विपक्ष में अपना मत प्रकट करें तो एक मनोरंजक लेख माला इन्हीं स्तंभों में निकल सकती है और अंत में कुछ तथ्यपूर्ण निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं—संपादक।)

आधुनिक हिंदी कविता को द्वेष की दृष्टि से देखने वाले समीक्षकों ने एक बलशाली आरोप यह किया है कि कवि वर्ग सदाचारी नहीं है। विशेषकर छायावाद के कवियों को इस प्रकार की शिकायतों का लक्ष्य बनाया गया है। जहां तक छायावादी कवि समुदाय के अंग्रेजीनुमा लच्छेदार बालों का संबंध है वहां तक आक्षेप करने वालों की विभिन्न संस्कृति और रुचि का ही हेतु समझकर हम चुप रह सकते हैं। पोशाक, रहन सहन और खान-पान के विषय में भी यदि कोई आक्षेप करे तो विशेष चिंता नहीं क्योंकि समाज का एक प्रगतिशील अंश इन बातों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का प्रतिवाद करने के लिए मौजूद है। हां जब समीक्षक दल कवियों और साहित्यकारों के चरित्र पर आक्रमण करते हैं, उन्हें उच्छृंखल और असदाचारी बतलाते हैं, यही नहीं जब वे इन चरित्र संबंधी आक्षेपों को साहित्य समीक्षा की कसौटी बनाकर पारखी बनाते हैं तब परिस्थिति विचारणीय बन जाती है। हिंदी में साधारण ही नहीं, पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे असाधारण कोटि के साहित्य पारखी भी इस प्रकार की प्रणाली का अनुसरण कर चुके हैं और कुछ विशेष उद्धरण देकर कवियों की विलास-वासना को प्रमाणित समझ चुके हैं, इसलिए यह विषय और भी विवेचनीय हो गया है।

पश्चिम के अधिकांश विचारक सदाचार को जीवन की एक क्रियाविशेष और रुचि विशेष मानते हैं। समाज की सुव्यवस्था के लिए जिन नियमों को हम सभ्य मनुष्य अपनाते जाते हैं वे ही सदाचार कहलाते हैं। शारीरिक और मानसिक विकास के लिए भी कुछ नियमों को आदर्श बनाकर सदाचार संज्ञा दे दी गई है। समाज की व्यवस्था और सभ्यता का मापदंड सर्वत्र एक-सा नहीं होता। शारीरिक और मानसिक विकास के लिए तो कोई भी नियम आदर्श रूप में नहीं माने जा सकते। ऐसी अवस्था में सदाचार कोई निर्विकल्प, व्यापक (Universal) सिद्धांत समुच्चय नहीं माने जाते, फिर भी हमारे देश में सदाचार के संबंध में एक दृढ़ भावना रहती आई है और आज उसी दृढ़ता का निदर्शन करते हुए पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे समीक्षक भी कृतियों की शब्दावली को लेकर कृतिकारों को लांछित करते हैं।

साहित्यकार को सदैव से कुछ न कुछ विशेषाधिकार मिलते रहे हैं। वेदों में कवि को स्वयंभू के समकक्ष रखा गया है और काव्यसृष्टि के कारण उसके इस सम्मान को हम स्वीकार करते हैं। चिरकाल से कवि के व्यक्तित्व के साथ मानो उसी की कल्पना से बनी हुई समाज की एक अवर्णनीय भावना लगी चली आ रही है। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का जैसा एक लघु 'मोदमय' भाररहित अस्तित्व कवियों को हम दे चुके हैं और अब ले नहीं सकते। वे ही उसके उत्तराधिकारी हैं। मध्यकाल के संस्कृत के साहित्यशास्त्रों में कवियों के असामान्य रूप के चित्र मिलते हैं। जिन्हें समाज छैल चिकनियां कहता है वह असामान्यता स्पृहणीय नहीं होती पर कवियों की वैसी ही असामान्यता प्रतिभामयी विद्वता के कारण वरेण्य बन जाती है। मानो कविजगत सदैव से ही हमारे स्थूल संसार से विभिन्न रहा है।

वाद और यथार्थवाद के इस युग में यदि कवियों के परंपरा प्राप्त विशेषाधिकार छिन रहे हैं तो यह समय की गति ही है। परंतु साहित्य कला का स्वरूप इस छीना-झपटी में विकृत न हो जाए यह ध्यान में रखना ही होगा। पुराकाल में तार्किकों और नैयायिकों ने मिलकर संस्कृत साहित्य के कलात्मक विकास में बाधा डाली थी ऐसा बहुतों का मत है। हमें देखना होगा कि आजकल के सदाचारपरायण समीक्षक अपनी सीमा का उल्लंघन कर साहित्य की श्रीवृद्धि में बाधक न बनें। साहित्य का यह सुधारक दल यदि समाज सुधारक लोगों की तरह अपना दिशा-ज्ञान भूल जाएगा तो अनिष्ट की संभावना होगी। साहित्य की परिमार्जित सरणियां समाचार समीक्षकों की उड़ाई धूल से आच्छन्न न हो जाएं इसके लिए सचेष्ट रहना होगा। 'राम नाम का भजन करो बरत करो तुम एकादशी' के ढंग का धर्म प्रचार यदि साहित्य में प्रसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पावेगा तो हमारी साहित्यिक-संस्कृति अपनी शालीनता खो बैठेगी।

सदाचार से अधिक हमें साहित्य कला का ध्यान है। उपयोगिता की दृष्टि से ही नहीं, सौंदर्य दृष्टि से भी साहित्य निर्माण स्वतः एक सदाचार है। बाह्य व्यवहार संबंधी सदाचार तो इससे दूसरे साहित्य सदाचार की अपेक्षा कम ही महत्व रखता है। चरित्र संबंधी विशेषताएं भी साहित्य-चरित्र के सामने दब जाती हैं। कवि का यह दोहरा अस्तित्व कल्पना और प्रतिभा के संयोग से उसे मानव समाज की श्रेष्ठ द्विज श्रेणी में रखने में समर्थ है। कवियों को सचेष्ट होकर अपने साहित्य चरित्र का उत्कर्ष साधन करना चाहिए। भाषा, शैली और काव्यशास्त्र का उन्नयन करते हुए यदि नैतिक स्खलन भी होंगे तो समाज पीढ़ी दर पीढ़ी में उन्हें क्षमा कर देगा। प्राचीन काल के जिन कवियों का हम सम्मान करते हैं उनमें से अधिकांश के व्यावहारिक सदाचार और चरित्र का हमें कोई पता नहीं।

जब कवि का साहित्यिक सदाचार भंग हो तब समीक्षक उसका प्रतिवाद कर सकता है। यदि कवि की उच्छृंखल और हीन प्रकृति का प्रतिबिंब उसकी रचनाओं को भी ग्रस्त करने लगे, यदि उसका साहित्यिक संयम उसके नैतिक असंयम से पराजित हो जाए, तब समालोचकदल आंखें दिखा सकता है, अन्यथा समीक्षा की कोई ऐसी पद्धति नहीं है जो उसे दोषी ठहरा सके।

वर्तमान युग यदि जनतावाद का है तो साथ ही यह स्वाधीनता का युग भी है। वाणी के प्रकाश (Freedom of Speech) के लिए आज अधिक से अधिक सुभीते हैं। वह विशेषाधिकारों का युग नहीं है तो भी यह अधिक से अधिक व्यक्तिगत अधिकारों का युग है। साहित्य समीक्षकों को इस तथ्य पर विचार करना चाहिए।

सदाचार तो जीवन में दूध-मिश्री की तरह मिला होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की भांति कवि के जीवन संघटन में सदाचार एक अंतरंग वस्तु है। कवि के अनेक अवयवों के साथ सदाचार का भी गठन हम उसकी काव्यवस्तु में देखें। कल्पना, भावना, विचारशक्ति आदि जो कवि की विशेषताएं हैं उनके निर्माण में उसके आचार को एक सीमित स्थान ही प्राप्त हो सकता है।

साहित्य का प्रभाव बहुत कुछ उसके सौंदर्य के कारण विस्तृत होता है। शब्द-सौंदर्य के साथ साहित्यकार को चित्र सौंदर्य की सृष्टि करनी पड़ती है। इस सौंदर्य का रूपक ऐसा होता है जो सदाचारी समीक्षकों को पसंद नहीं पड़ता। महात्मा तुलसीदास जैसे कवि ने भी अपने-आराध्य देव राम की चिरकिशोर, काममदमोचन, सुंदर मूर्ति ही अंकित की है, परंतु, सदाचारी आलोचकों को उसमें भी अपवाद ढूंढ़ते देखा गया है। ऐसे आलोचकों से साहित्य को सदैव सावधान रहना होगा, नहीं तो उसके अंगभंग हो जाने की आशंका है।

आज के जमाने में हम साहित्यकार के लिए विशेषाधिकारों की मांग तो नहीं रख सकते पर साहित्यिक कर्तव्य पालन के लिए हमें उसे अधिक से अधिक आचरण की स्वतंत्रता देनी होगी।

(रविवार, 6 मार्च 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# हिंदुस्तानी एकेडमी

पिछले सनीचर और इतवार को प्रयाग की हिंदुस्तानी एकेडमी का सालाना जलसा किया गया जिसके हिंदी विभाग में अधिकांश यहीं के साहित्य-सेवी और इलाहाबाद युनिवर्सिटी के अध्यापक गण मौजूद थे। विगत दो वर्षों के जलसों को देखते हुए इस बार उपस्थिति असंतोषजनक थी क्योंकि बाहर से आने वाले लोग बहुत थोड़े थे और प्रतिष्ठित प्रतिनिधि तो इने-गिने ही थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का एक भी सदस्य वहां से नहीं आया और न हिंदी साहित्य सम्मेलन के कर्णधार मंत्रिगण उपस्थित थे। पिछले वर्ष नागरी प्रचारिणी सभा के आचार्य श्यामसुंदर दास ने एकेडमी की 'हिंदी-उर्दू नीति' के संबंध में जो विचार प्रकट किए थे और *नागरी प्रचारिणी पत्रिका* में एकेडमी पर जो टिप्पणी निकली थी उसका जवाब सहूलियत के साथ न देकर एकेडमी ने 'सभा' जैसी सम्मानित संस्था से संबंध विच्छेद किया और इस प्रकार हिंदी की सबसे बड़ी संघटित महत्वपूर्ण तथा विद्वान मंडली कांग्रेस की तरह 'हमारे तुम्हारे रास्ते जुदा हुए' उक्ति चरितार्थ कर रहा है। हिंदी साहित्य सम्मेलन की आफिशियल नीति भी एकेडमी के पक्ष में नहीं दीख पड़ती, जिसका एक प्रमाण झांसी सम्मेलन के संपादक परिषद के अध्यक्ष अपनी वक्तृता में उपस्थित कर चुके हैं। शायद इसी की प्रतिक्रिया में एकेडमी की तरफ से श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा ने साहित्य सम्मेलन के लिए जो कटूक्ति की, उसका जवाब देने वाला साहित्य सम्मेलन का कोई प्रतिनिधि मौजूद नहीं था। पं. पद्मसिंह शर्मा जो सभापति थे और साहित्य सम्मेलन से संबंधित भी थे, इसलिए उन्हें इस अनाकांक्षित विद्वेषवृद्धि को रोकना चाहिए था पर जो हो गया, वह हो गया और अब हिंदुस्तानी एकेडमी हिंदी के व्यापक साहित्य समाज से कट-छंट कर जिस घेरे में आ गई उसमें प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापकगण ही उसके प्रमुख नियंता रह गए।

हिंदी विभाग में जो प्रस्ताव रखे गए वे महत्वपूर्ण तो थे पर उन पर किए गए वाद-विवाद का स्तर निम्न कोटि का था। प्रस्ताव एकेडमी से सिफारिश करने के रूप में ही थे, उनका उपयोग करना न करना एकेडमी के हाथ में है। इस प्रकार प्रस्तावों की वास्तविक शक्ति कम ही समझनी चाहिए। प्रस्तावों पर सम्मति देने वाले सज्जन और पूरी सभा भी जलसा मात्र समझी गई, अंतिम निर्णय एकेडमी के अधिकारी करेंगे। इस रीति से एकेडमी अपने वार्षिक अधिवेशनों को लोकप्रिय नहीं बना सकेगी, लोकप्रियता कम कर देगी। प्रायः सभी प्रस्ताव ऐसे थे जिन पर अमल करने का विचार यदि एकेडमी करेगी तो सिलैक्ट कमेटी बनाएगी। इस सिलैक्ट कमेटी के सदस्य भी एकेडमी द्वारा ही चुने जाएंगे। आजकल के युग में एकेडमी की लोकमत का चारों ओर से बहिष्कार करने की यह प्रणाली निराली ही है। हिंदी के अधिकांश साहित्य समाज को अपनी ओर से निरपेक्ष और उदासीन बनाकर तथा अपने कार्यक्रम द्वारा रहे सहे सहयोग को भी असंभव बनाकर एकेडमी क्या अच्छा काम कर रही है?

हिंदी और उर्दू को एक कर देने के मसले पर इस बार कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एकेडमी के उर्दू विभाग के अध्यक्ष जस्टिस सर अब्दुल कादिर ने उसकी ओर संकेत किया था और पंडित पद्मसिंह शर्माजी के पुरस्कृत भाषण के भाव और आशा दोनों ही उसी उद्देश्य की पूर्ति करते जान पड़े। इनके अतिरिक्त जलसे में पं. रामनरेश त्रिपाठी का 'हिंदी या हिंदुस्तानी' शीर्षक एक लेख भी बांटा गया जो हमारे पास भी 'विचार और प्रचार' के लिए आया हुआ है। इन बाहरी संकेतों से समझ पड़ता है कि एकेडमी हिंदी-उर्दू एकता चाहती है पर उसने उसे प्रस्ताव रूप में उपस्थित करने की दृढ़ता क्यों नहीं दिखाई, यह नहीं जाना जा सकता। हिंदी-उर्दू एकता के संबंध में एकेडमी के क्या विचार हैं यह अब तक एक रहस्य ही बना हुआ है यद्यपि *हिंदुस्तानी* पत्रिका को अब से बहुत पहले इस रहस्य का उद्‌घाटन कर देना चाहिए था और एकेडमी की नीति के अनुसार अपनी भाषा का जामा पहन लेना चाहिए था। सबसे उपयुक्त और व्यावहारिक विधि यह होती की *हिंदुस्तानी* पत्रिका की भाषा 'हिंदुस्तानी' नाम की भाषा का आदर्श उपस्थित करती। अब तक ऐसा न करने का कारण 'हिंदुस्तानी' नाम की भाषा की अक्षमता है अथवा एकेडमी की नीति है यह भी हम लोगों को मालूम नहीं हो सका। हम समझते हैं, भाषा संबंधी नीति प्रकट करने में एकेडमी को कोई हिचक नहीं होनी चाहिए क्योंकि इस समय हिंदी के क्षेत्र में भाषा संबंधी बड़ी विविधता फैल रही है और एकेडमी उससे यथोचित लाभ उठा सकती है। अभी वे दिन दूर देख पड़ते है जब हिंदुस्तानी एकेडमी भाषा के झगड़े से अलग होकर लिपि, शैली, व्याकरण आदि के संबंध में प्रभावशाली विवेचना करा सकेगी। इन सबसे भी ऊपर उठकर साहित्योत्कर्ष का साधन करना शायद उसके लिए और भी दूर की मंजिल है। तथापि 'एकेडमी' नाम की सार्थकता तभी होगी जब यह सब मंजिल तय हो जाएगी और शुद्ध साहित्यिक क्रियाकलाप ही एकेडमी के ध्येय बनेंगे। पर राजनीति, भाषा और साहित्य की उलझनों से मुक्त होना सरल काम नहीं है।

यदि श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा के प्रस्ताव के अनुसार एकेडमी हिंदी लिपि, व्याकरण आदि का नियमन (Standardisation) करना चाहती है तो उसे प्रारंभ में अधिक से अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता, क्रम क्रम से परंपरा त्याग और कम से कम नियमन, इन तीन विधियों के अनुसार कार्य करना उचित होगा। शैली के विकास के इस युग में बंधन स्वीकार नहीं किए जाएंगे और न बंधन सहने ही चाहिए। शैली का प्रश्न अभी कुछ वर्ष तक शैलीकारों पर छोड़ देने में ही दूरदर्शिता है और हिंदी की नाड़ी देखते हुए उसके स्वास्थ्य के लिए यही उपयोगी भी है।

प्राचीन हिंदी ग्रंथों के प्रामाणिक संस्करण निकालने की आवश्यकता के संबंध में हिंदी के किसी भी प्राचीन शोधक को संदेह नहीं हो सकता और ऐसे ग्रंथों से विश्वविद्यालयों के शिक्षकों का कार्य सुगम भी हो जाएगा। तथापि समाज में उस साहित्यिक चेतना को उत्पन्न करने का कार्य समय की गति देखते हुए अधिक महत्वपूर्ण, अधिक रुचिकर अतः अधिक सुगम भी है। इस ओर संलग्न होकर एकेडमी आधुनिक साहित्य सेवियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगी और इस विकर्षण की परिस्थिति में उसे ऐसे आकर्षण की आवश्यकता भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# कैसी 'आत्मकथा' साहित्य का अंग है?

*जागरण* के पहले अंक में श्रीयुत प्रेमचंदजी ने अपने *हंस* के आत्मकथांक के लिए लेख लिखते हुए *भारत* की साहित्यिक नीति और लेख शैली को बहुत बुरे शब्दों में याद किया है। प्रेमचंदजी के उपन्यास उनकी प्रोपेगेंडा वृत्ति के कारण काफी बदनाम हैं और हिंदी के बड़े-से-बड़े समीक्षक ने उसकी शिकायत की है। वही वृत्ति उनके इस लेख में भी प्रसार पा रही है। यद्यपि प्रेमचंदजी लिखते हैं कि 'हमने तो कभी प्रोपेगेंडा नहीं किया, हमारा बड़ा से बड़ा दुश्मन भी हमारे ऊपर यह आक्षेप नहीं कर सकता' पर प्रेमचंदजी के सभी समीक्षक जानते हैं कि उनका सबसे बड़ा दोष—जो उनकी साहित्य-कला को कलुषित करने में समर्थ हुआ है—यही प्रोपेगेंडा है। यदि प्रेमचंदजी बिलकुल ही भोले-भाले न बनें तो वह अपने विरुद्ध इस प्रकार का आरोप एक नहीं अनेक बार सुन चुके होंगे, पढ़ चुके होंगे और हृदय की थाह लगाकर देख भी चुके होंगे। यदि उनके साहित्य के साथ उनके जीवन का कुछ भी संबंध है—और वह अवश्य है—तो उनकी साहित्य की मशहूर प्रोपेगेंडा-वृत्ति उनके जीवन में भी मौजूद है और हमें तो मनोविज्ञान के विद्यार्थी की हैसियत से उनके इस लेख में यह वृत्ति देखकर संतोष ही हुआ क्योंकि एक और प्रमाण पाकर उनसे हमारा परिचय बढ़ा। *भारत* के संबंध में इतनी बुरी सम्मति पढ़कर हमें क्षोभ किंचित नहीं हुआ क्योंकि उसमें भी हमें प्रेमचंदजी की उपन्यास कला का एक रहस्य ही दीख पड़ा। उपन्यास लिखने का पुराना तरीका यह था कि एक पक्ष को परम धार्मिक, वीर और वरेण्य बनाकर दूसरे को हद दर्जे तक उसके विपरीत बना दिया जाए और इन्हीं दोनों विरोधी दलों के संघर्ष से कथा का विकास होता रहे। यह बहुत पुराना ढर्रा था, जिसमें सत्य की ओर से आंखें मूंदकर उपन्यास का ढांचा खड़ा किया जाता था। प्रेमचंदजी ने 'आत्मकथांक' की स्तुति करते हुए *भारत* की जो निंदा की है, उसमें हमें उपन्यास लिखने का उपर्युक्त पुराना ढर्रा ही दीख पड़ा, जिसे आधुनिक विकसित साहित्य एक जमाने से छोड़ चुका है। *जागरण* के अनुद्वेगशील संपादक को प्रेमचंदजी के लेख से आश्चर्य हुआ और विरोध में टिप्पणियां जड़नी पड़ीं। पर हम तो उनके इस लेख में उनका वही रूप देखते हैं, जो उनके साहित्य में देख चुके हैं।

साहित्य में हम शुद्ध साहित्यिक संस्कृति चाहते हैं, लाग-लपेट कुछ भी नहीं। चाहे वह साहित्य का कोई लेख हो, पुस्तक हो अथवा संस्था हो। हम उसकी परख अपनी इसी मूल भावना की कसौटी पर करते हैं। यदि हम हिंदी साहित्य सम्मेलन के विपक्ष में हैं तो इसलिए कि वह सम्मेलन वास्तव में साहित्य सम्मेलन नहीं है और न वैसा बनने का प्रयास ही कर रहा है, न बनने की विधि जानता है, न सुनना ही चाहता है। यदि हम पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी अथवा श्रीयुत भवानीदयाल संन्यासीजी के किसी लेख अथवा साहित्यिक नीति का विरोध करते हैं तो इसलिए कि वे सज्जन शुद्ध साहित्य को साहित्यबाह्य वस्तुओं का भारवाही बनाते हैं, जिसे देखकर हमें ग्लानि होती है। जब हम पत्र-पत्रिकाओं में दो अक्षर लिख लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वालों की चित्र-वृद्धि पर आक्षेप करते हैं, तब समझते हैं कि हिंदी में अब तक बहुत थोड़े साहित्यकार ऐसे हैं, जिनके चित्र छपने चाहिए, और जब हम 'आत्मकथांक' का विरोध करते हैं, तब अपने साहित्य में बढ़ते हुए आत्म विज्ञापन के कलुष का ध्यान करते हैं और यह निर्विकल्प रूप से जानते हैं कि ऐसे व्यक्ति जो आत्मकथा लिखने में योग्य हों हिंदी संसार में दो-चार से अधिक नहीं, हम तो कहते हैं दो-एक से अधिक नहीं। यदि वे सब प्रेमचंदजी के लिखे अनुसार उन्हें चौंकाने वाली बातें हैं तो हम उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए भी चौंकाने वाली बातें कहना अपना धर्म मानते हैं। हिंदी का साहित्यिक जमघट अभी शुद्ध साहित्यिक वातावरण से कोसों दूर है इसलिए इस तरह की बातें प्रेमचंदजी को ही नहीं, औरों को भी अभी कुछ दिन चौंकाती रहेंगी और इसका हम बुरा भी नहीं मानते।

साहित्य तो एक सात्विक जीवन है। उसे कठिन तपस्या और महान यज्ञ समझना चाहिए। जहां व्यक्ति के व्यक्तित्व के कोई स्वतंत्र विषय नहीं रह जाते, उच्च साहित्य की वह भावभूमि है। वहां अपरिग्रह का साम्राज्य है, फोटो नहीं छापे जाते। वहां वाणी मौन रहती है, गाथा गाने में सुख नहीं मानती। उस उच्च स्तर से जितने क्रिया-कलाप होते हैं, आत्म-प्रेरणा से होते हैं। पर आज दिन हिंदी में आत्मप्रेरणा और 'आत्मकथा' का नाम लेना पाषंड है और पाषंड बढ़ाना है। पश्चिम से आए हुए प्रवाह में पड़कर हमें दिग्भ्रम हो गया है। समाज और साहित्य सब अज्ञान-लक्ष्य, विवश बहे-ढहे जा रहे हैं और हम प्रवाह को रोकने का प्रयास न कर उल्टा उसका प्लावन-वेग बढ़ा रहे हैं। हमारे देश में आत्मकथा लिखने की परिपाटी नहीं रही। यहां की दार्शनिक संस्कृति में उसका विधान नहीं है। यहां के संत हिमालय की कंदराओं में गलकर विश्वशक्ति की वृद्धि करते थे और करते हैं। प्राचीन भारत अपना इतिवृत्त और अपनी 'आत्म-कथा' नष्ट कर आज चिरजीवन का रहस्य बतलाता है और जिन्होंने गाथाएं लिखीं वे बिला गए। इस युग के महापुरुष महात्मा गांधी ने जो आत्मकथा लिखी है, उसकी मूल भावना है प्रायश्चित—अर्थात् वह केवल एक नकारात्मक योजना है। परंतु प्रेमचंदजी कैसी आत्मकथाएं लिखा रहे हैं, वह बतलाने की जरूरत नहीं।

साहित्य को केवल वाणी-विलास माननेवाले आदमी उसके उपयोगितावाद की दुहाई दे सकते हैं, जैसे श्रीयुत प्रेमचंदजी ने सुरेंद्रनाथ बनर्जी वगैरह का नाम लेकर दिया है। परंतु हम तो उसे बहुत ही साधारण कोटि की धारणा मानते हैं। लौकिक उपकार ही साहित्य की कसौटी नहीं है और न वह साहित्यकार के विकास में सहायक बन सकती है। नीति के दोहे लिखने वाले दिन गए। इस समय हिंदी के रचनाकारों को अपने संस्कार और अपनी साधना की आवश्यकता है। दूसरों को भलाई का बीड़ा वे आगे कभी उठावेंगे। फिर इस साधारण परोपकारी दृष्टि से भी आत्मकथा लिखने के योग्य हिंदी में कितने आदमी हैं? कितने ऐसे महच्चरित हैं, जिनकी जीवनी हिंदू-जनता की पथ नियामिका बन सकती है।

निष्कर्ष यह कि वर्तमान हिंदी में जैसी आत्मकथाएं लिखी जा सकती हैं, वे साहित्य-समीक्षा की दृष्टि से निम्न कोटि की ही होंगी। प्रेमचंदजी ने ताज्जुब जाहिर किया है कि हमने कैसे जान लिया कि आत्मकथाएं ऐरे-गैरे लोग लिखेंगे। आशा है, वह अब समझ गए होंगे कि आंखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



खोलकर अपने साहित्य की गति देखने वाले व्यक्ति ऐसा समझे बिना रह ही नहीं सकते। यही नहीं, और प्रमाण भी हैं। *हंस* कार्यालय से हमारे पास गश्ती चिट्ठी तो कोई नहीं, यह पत्र अवश्य आया था कि हम भी इस आत्मकथांक के लिए कुछ लिखें। यदि हमारे जैसे कल के साहित्यिकों से 'आत्मकथांक' की भर्ती होगी, तब प्रेमचंदजी को समझने का मौका है कि मैंने कैसे समझा कि ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे लोग उसका कलेवर भरेंगे।

जब मेरे पास उक्त पत्र आया था, तब मैंने मित्र भाव से और प्राइवेट तरीके से *हंस* कार्यालय को लिखा था कि मेरी सम्मति नहीं है कि आत्मकथांक जैसा अंक इस समय निकले और अंक के निमित्त अपनी गाथा गाने की अक्षमता के लिए मैंने क्षमा मांगी थी। परंतु जब *हंस* की ओर से यह लिखा गया कि आत्मकथांक तो निकलेगा ही, तब मैंने उपर्युक्त टिप्पणी लिखी थी, जिसपर बिगड़कर प्रेमचंदजी लिखते हैं कि *हंस* को मेरी सम्मति की जरूरत नहीं है। प्रेमचंदजी यदि साहित्यिक शिष्टाचार का पालन नहीं कर सकते तो उन्हें कम-से-कम अपने प्रबंधकों और कर्मचारियों से यह दरियाफ्त कर लेना चाहिए कि किस प्रकार का पत्र-व्यवहार वे लोग कर चुके हैं। ऐसा न करने से उनकी असहिष्णुता जो असत्य और असभ्य रूप धारण करती है, उससे दूसरों को नहीं, उनको और उनके पत्र को ही क्षति उठानी पड़ेगी—ऐसी आशंका है।

(गुरुवार, 10 मार्च 1932)

## सरकारी बजट

अर्थ सदस्य पर जॉर्ज शुस्टर ने भारत सरकार की ओर से 1931-32 के बजट को दुबारा सुधार कर रखा और 1932-33 का नया बजट पेश किया। 1931-32 के बजट में 234 करोड़ के घाटे का तख्मीना लगाया गया और घाटे का कारण संसार की आर्थिक स्थिति बतला दी गई। बाहर से भारत आने वाले माल और भारत से जाने वाले माल में पिछले वर्ष की अपेक्षा सौ करोड़ से भी अधिक की कमी हुई, जिसके कारण सरकार को जकात में तख्मीने से बहुत कम आय हुई। विदेशों में प्रायः सर्वत्र बाहर से आने वाले माल को रोकने के लिए टेरिफ (चुंगी) की ऊंची-ऊंची दीवाल खड़ी हो गई हैं जिसके कारण भारतीय वस्तुओं के निर्यात को धक्का लगा और विदेशों से आने वाली वस्तुओं में करवृद्धि हो जाने के कारण आयात कम पड़ गया। टैक्स के बोझ से लदे हुए देश की क्रयशक्ति प्रायः नष्ट हो गई जिसके कारण व्यापार को बड़ी क्षति पहुंची। विदेशी वस्तुओं पर अतिरिक्त कर लगाने का एक परिणाम यह हो सकता था कि घरेलू उद्योग-धंधे बढ़ते, पर अर्थकष्ट के कारण यह न हो सका और भारत के देशी रोजगारों की दशा भी बिगड़ी ही रही। इस अर्थकष्ट का मूल कारण जनता पर लगे हुए टैक्सों का भार है जो वर्तमान सस्ती के जमाने में, रुपया न होने के कारण, भयानक रीति से कष्टकर हो गया है। सरकार के सिविल और फौजी महकमों के लिए जो महान रकमें जनता को देनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पड़ती हैं, वे अब से पहले ही कष्टसाध्य हो गई थीं, पर वर्तमान संकट के काल में तो उन्हें असाध्य और आर्थिक अत्याचार कहा जाएगा। पिछली बार असेंबली का अतिरिक्त अधिवेशन करके, असेंबली के मत के विरुद्ध, जो अतिरिक्त कर लगाए गए, वह भी नाकाफी सिद्ध हुआ। जो सब जनसाधारण के रोज के इस्तेमाल की चीजें हैं उन पर टैक्स बढ़ाने के पक्ष में शुस्टर साहब हैं। पर यह तो जनता को हताश कर देना है और इस प्रकार के टैक्स बढ़ाकर अधिक आमदनी की आशा रखना व्यर्थ है। पिछली बार चीनी पर टैक्स बढ़ाने का परिणाम देखकर सरकार को सचेत होना चाहिए था, पर जान पड़ता है वह सचेत नहीं होना चाहती। वह अकिंचन जनता के अर्थकष्ट को सीमा के पार ले जाकर राजनीतिक अशांति बढ़ाएगी और व्यापार के मूल में कुठाराघात कर देगी। इससे जो आर्थिक और राजनीतिक क्षति स्वयं सरकार को उठानी पड़ेगी, उसका उसे ध्यान करना चाहिए।

हमारा स्पष्ट मत यह है कि जनसाधारण पर टैक्स का बोझ लादने से बहुत अधिक खीज बढ़ेगी और राजनीतिक दशा बिगड़ जाएगी। इसके अतिरिक्त जनता के पास पैसा न रह जाने के कारण देश के व्यापार का नाश होगा जिससे सरकार को आर्थिक धक्का भी उठाना पड़ेगा। मध्य श्रेणी के समाज पर बेकारी का सबसे बड़ा टैक्स यों ही लगा हुआ है उस पर इनकमटैक्स लगाकर दशा शोचनीय बना दी गई है। उस पर भी हजारों नौकरीजीवी सरकार द्वारा निकाले जा रहे हैं। इस मध्यश्रेणी के शिक्षित वर्ग को अपनी सामाजिक मर्यादा की रक्षा करना प्रायः असंभव होता जा रहा है और ऐसा समय आ गया है जब इस वर्ग के क्षोभ की सीमा पार हो सकती है। वह अवस्था सरकार के लिए संकट पूर्ण होगी जब शिक्षित मध्यश्रेणी आर्थिक कारणों से हताश होकर राज्यचक्र के विरुद्ध उठ खड़ी होगी। अभी भी उसके लक्षण देखे जा सकते हैं पर आगे उनके और बढ़ने का समय आ रहा है। ऐसे समय में मध्य वर्ग पर टैक्स बढ़ाना अनिष्टकर होगा। ऊंची श्रेणी वालों पर टैक्स बढ़ाए जा सकते हैं और इन ऊंची श्रेणी वालों में अधिकांश सरकारी नौकर ही हैं। लंबी-लंबी तनख्वाहें खींचने वाले उच्च श्रेणी के सरकारी अफसरों की संख्या कम करने, कमीशन आदि के सुभीते दूर करने वाले उनके वेतन में काट-छांट करने में सरकार सुस्ती और आनाकानी दिखा रही है। हमारे जैसे दरिद्र देश में अत्यंत-सुनियंत्रित, सुव्यवस्थित शासन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम उसका खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते। जैसे हमारे साधन हैं वैसा ही हमारा शासन भी होना चाहिए। सर जॉर्ज शुस्टर ने कहा कि लगभग 300 अफसरों को बरखास्त किया जाएगा। यह संख्या कम ही है क्योंकि इसके साथ ही मध्य और मामूली श्रेणी के सात हजार से ऊपर आदमी निकाले जा रहे हैं। जब और देशों में सरकारी ओहदेदार समय की गति को देखते हुए अपने वेतनों का काया-पलट कर देने को तैयार हुए हैं तब हमारे देश में भी ऐसा ही क्यों न किया जाए, क्या सरकार बतला सकती है? एक अड़चन यह बताई जाती है कि यहां के ऊंचे अफसरों की तनख्वाह ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रस्ताव से ही घटाई जा सकती है और संपूर्ण फौज विभाग भी अर्थ सदस्य के नियंत्रण से बाहर है। पर इस अड़चन को दूर करने के लिए क्या भारत के हितार्थ ब्रिटिश पार्लियामेंट तत्पर नहीं हो सकता? हिंदुस्तान में एक जमाने से फौजी खर्च को विशेष परिणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में तोड़ देने की आवाज उठाई जा रही है और सेना के भारतीयकरण पर जोर दिया जा चुका है। इस प्रकार सरकार की तरफ से भारत के व्यवस्थाप्रिय दलों की अत्यंत नर्म सलाह, ऐसे संकट काल में भी सुनी-अनसुनी की जा रही है।

सरकारी बजट के विरोध में प्रायः सभी गैर सरकारी सदस्यों ने, यहां तक कि यूरोपियन सदस्यों ने भी, टैक्स बढ़ाने का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और सरकारी खर्च में कमी करने की सलाह दी। यदि देश के व्यापार को चौपट नहीं कर देना है और यदि व्यापार से आने वाली आय का द्वार बंद नहीं कर देना है तो सरकार को प्रचलित टैक्सों का भार हलका करना चाहिए। यदि दरिद्र जनता के सोने की बिक्री से सरकार कर्ज चुकाती है और अपनी आर्थिक अवस्था सुधरी बतलाती है तो यह उसका अनुचित व्यवहार है। जो सरकार भारत में रिजर्व बैंक की स्थापना हुए बिना आर्थिक अधिकार देने में रुकावट डाल रही है वही जब देश का सोना बाहर चला जाने देती और रिजर्व बैंक की स्थापना कठिन बनाती है तब उस नीति पर आक्षेप किए ही जाएंगे। हम सरकारी व्यय में स्थायी छांट चाहते हैं पर सरकार संकटकाल की रियायत भी करने को तैयार नहीं दीख पड़ती। असेंबली के प्रायः सभी नर्म से नर्म सदस्य आर्थिक सुधार के लिए वर्तमान राजनीतिक संघ को घातक बतलाते और संधि की सलाह देते हैं पर सरकार की तरफ से वैसी कोई ध्वनि नहीं सुन पड़ती। जब देश की दृष्टि में और सरकार की नीति में इतना अंतर है तब जिस बजट को सरकार की ओर से पांडित्यपूर्ण कहा जाता है उसे जनता की ओर से व्याधिपूर्ण कहा जाए तो इसमें आश्चर्य क्या है?

(रविवार, 13 मार्च 1932)

## स्वदेशी का प्रचार

आज कल आर्डिनेंसों के मुताबिक विदेशी वस्तुओं की पिकेटिंग करना, उनमें सील-मोहर लगाना, दुकानें बंद करने या कराने की चेष्टा करना राजनीतिक अपराध है और दंडनीय है, परंतु स्वदेशी का प्रचार करना कोई जुर्म नहीं है। विदेशी या विलायती के बहिष्कार को राजनीतिक आंदोलन का एक अंग समझकर सरकार उसे सहन नहीं करती, परंतु स्वदेशी प्रचार के आंदोलन से उसे विरोध नहीं है। विदेशी बहिष्कार का अर्थ आर्थिक आक्रमण समझकर सरकार उसका सामना करने को उन्नत होती है, लेकिन स्वदेशी प्रचार का अर्थ वह आर्थिक आक्रमण नहीं लगाती। सर प्रफुल्लचंद्र राय महोदय ने विदेशी-बहिष्कार और स्वदेशी प्रचार में यह भावना भेद बतलाया है कि एक के भीतर द्वेष बुद्धि है और दूसरे के भीतर शांति, अहिंसा और आत्मरक्षा का भाव है। विदेशी-बहिष्कार को सरकार राजनीतिक आंदोलन का एक अंग समझकर दंड-विधान करती है। आज कल यूरोप के प्रायः सभी राष्ट्रों ने टेरिफ की ऊंची-ऊंची दीवालें खड़ी कर स्वदेशी-प्रचार और विदेशी माल के रोकने का प्रबंध किया है। ब्रिटेन में इन दिनों 'ब्रिटिश वस्तु खरीदो' की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उक्ति बड़े से बड़े से लेकर छोटे से छोटे की जबान पर है। वहां के अनुदार दल की सरकार ने देशी व्यापार के संरक्षण की नीति चलाई है। यह नीति विलायत की प्रतिष्ठित परंपरा को तोड़कर चलाई गई है। बढ़े हुए करों के कारण बाहर की वस्तुएं विलायत में प्रवेश नहीं पा सकतीं और वहां की जनता अधिक कीमत देकर भी स्वदेशी खरीदने को शिक्षित की गई है, इसलिए वह स्वदेशी का अर्थ नहीं समझती। यहां दरिद्रता के कारण अधिक दाम देकर स्वदेशी खरीदना असाध्य ही है। यहां की औद्योगिक उन्नति के लिए सरकार की सहायता अब तक इतनी नाकाफी रही है कि स्वदेशी का बाजार भारत में तैयार नहीं हो सका है। यद्यपि सरकार अपना काम चलाने के लिए भारत में आने वाली वस्तुओं पर कर बढ़ा रही है पर इससे स्वदेशी के प्रचार में कोई विशेष सहायता नहीं मिली है। इधर जापान ने स्वर्णमुद्रा का त्यागकर भारत में अपना बाजार खूब मजबूत कर लिया है और जापानी कपड़े पहले की अपेक्षा आधे दाम में बिक रहे हैं। इन सब कारणों से भारत में स्वदेशी प्रचार का आंदोलन बड़े पैमाने पर नहीं चल सका है। ऐसी अवस्था में स्वदेशी का प्रचार एक थोड़े परिणाम में ही संभव रहा है और सरकार को उसमें अब तक कोई विशेष आपत्ति नहीं दीख पड़ी।

स्वदेशी प्रचार के जितने उपाय अब तक कानून से दंडनीय नहीं बन गए हैं उन सब पर अमल करना देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अत्यंत आवश्यक है। ब्रिटेन का ही अनुकरण कर यदि 'स्वदेशी खरीदो' का प्रचार किया जाए तो इसे कोई अनुचित नहीं कह सकता। जैसी योजना पूज्य पंडित मदन मोहन मालवीयजी ने बनाई है, यदि देश भर में सर्वत्र स्वदेशी संघ स्थापित हो जाएं तो स्वदेशी की एक संघटित संस्था तैयार हो सकती है। भारत के आर्थिक हित को लक्ष्य में रखकर जो-जो वक्तव्य निकाले उनका पालन करना सारे देशवासियों का कर्तव्य है। यह संस्था 'स्वदेशी' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण कर सकती और उन तमाम समस्याओं पर प्रकाश डाल सकती है जिनका संबंध भारतीय हित से है। केवल स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार का ही नहीं, संपूर्ण स्वदेशी नीति का उद्घाटन इस संस्था द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यह भारत से जहाजों में लदकर बाहर जाने वाले सोने का निर्यात कम करने या रोकने की व्यवस्था दे सकती है और अधिक से अधिक कमखर्ची का संदेश सुना सकती है। यह जनता में स्वदेशी समस्याओं को समझाने का आंदोलन चला सकती है और वर्तमान परिस्थिति में अधिक दाम देकर भी स्वदेशी ही खरीदने के लाभ बतला सकती है। वर्तमान आर्डिनेंसों के शासन में आर्थिक विवेचन को भी राजनीतिक प्रोपेगेंडा समझा जा सकता है पर स्वदेशी-संघ को चाहिए कि जहां तक संभव हो आर्थिक पहलू को लेकर अपनी स्वदेशी नीति का प्रचार करे।

आयात और निर्यात के जो मासिक और वार्षिक विवरण निकला करते हैं उनके देखने से मालूम पड़ता है कि विदेशी कपड़ों का आयात भारत में इधर तीन-चार वर्षों से लगातार कम पड़ रहा है और इसका सबसे अधिक धक्का विलायत को ही उठाना पड़ा है। संसार-व्यापी मंदी, भारत में टैक्स वृद्धि और राजनीतिक असंतोष के कारण इस धक्के से संभलने के अभी लक्षण नहीं दीख पड़ते। भारत के देशी व्यापार में इधर कुछ दिनों से सुधार अवश्य हो रहा है क्योंकि स्वदेशी मिलों का काम बढ़ रहा है। परंतु राजनीतिक वातावरण के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्यापार ढीला ही है। जनता की आर्थिक स्थिति भी बाधा डाल रही है। इस पर टैक्स बढ़ाए जा रहे हैं। इन कारणों से स्वदेशी का यथोचित विस्तार नहीं हो रहा। अखिल भारतीय चरखा संघ के जो आंकड़े अभी-अभी प्रकाशित हुए हैं उनके देखने से यह नतीजा निकलता है कि शुद्ध खद्दर की उत्पत्ति के भी कोई विशेष चिह्न नहीं दीख पड़ते। सन् 1929-30 और 30-31 में क्रमशः 66 और 65 लाख के खद्दर की बिक्री हुई। चरखा संघ ही शुद्ध खद्दर के प्रचार की सबसे बड़ी और प्रामाणिक संस्था है। इसके अतिरिक्त जो खद्दर तैयार हो कर बिका होगा उसका हिसाब हमारे पास नहीं है पर उसकी मात्रा कम ही रही होगी। हम अनुमान कर सकते हैं कि एक करोड़ से अधिक की बिक्री नहीं हुई होगी। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई को एक व्यापक औद्योगिक धंधा बनाने का प्रयास महात्मा गांधी कई वर्षो से कर रहे हैं पर अब तक यथोचित सफलता नहीं मिली है। इसके प्रमुख कारण देश की दरिद्रता, खद्दर का अधिक मूल्य, जनता में राष्ट्रीय चेतना का अभाव, विदेशी होड़, अर्थशास्त्र की अनभिज्ञता आदि हैं। यदि स्वदेशी संघ इस दिशा में ध्यान दें तो स्वदेशी का यह उद्योग-धंधा पनप सकता है और देश की बेकार, आलसी और किंकर्तव्य-अचेत जनता काम से लग सकती है।

स्वदेशी के प्रचार के रचनात्मक अंग पर भी हमें ध्यान देना चाहिए। स्वदेशी प्रचार का हमारी राय में एक मुख्य अंग यह है कि जो चीजें बाहर से आती हैं और हमारे देश में नहीं बनतीं उनके बनाने का उचित प्रबंध किया जाए। यह काम कठिन है। इसमें द्रव्य की आवश्यकता है और मानसिक और व्यावहारिक गुणों की जरूरत है। ऐसे कामों को सफल करने के लिए ईमानदारी और सच्चाई से काम लेना होगा। इसके सिवा जो चीजें स्वदेशी बनाई जाएं वह मूल्य में और सफाई और रंग-ढंग में विलायती वस्तुओं की टक्कर की होनी चाहिए। यह सब बातें केवल प्रचार से नहीं हासिल हो सकतीं। इसके कठिन परिश्रम और विचार की भी आवश्यकता है।

(गुरुवार, 17 मार्च 1932)

## आर्डिनेंसों का व्यवहार

देश के प्रायः सभी विचारशील व्यक्ति और विदेशों के भारतहितैषी प्रायः सर्वत्र यह कह चुके हैं कि आर्डिनेंसों से थोड़े समय के लिए शांति भले ही हो जाए पर स्थायी रीति से अराजकता दूर नहीं होगी। लोग यह भी बतला चुके हैं कि जो शांति दमन के द्वारा तैयार की जाएगी उसके मूल में अशांति के विस्फोटक अंकुर बने ही रहेंगे जो समय पर फूटकर अनिष्ट कर सकते हैं। कांग्रेस संस्था को गैरकानूनी बतलाकर उसका अस्तित्व तोड़ देने का काम सरकार कर सकती है पर स्वतंत्रता की भावना कैसे नष्ट की जा सकती है? *मैनचेस्टर गार्जियन* के भारतीय संवाददाता ने ब्रिटेन की अदूरदर्शिता की शिकायत करते हुए यह लिखा है कि अंग्रेज लोग केवल आई हुई परिस्थिति का मुकाबला करना जानते हैं, वे दूर तक नहीं सोच सकते कि आगे वे क्या करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संवाददाता ने इस व्यावहारिक प्रश्न की ओर ध्यान दिलाया है कि सब कुछ ठीक हो जाने पर भी उन हजारों कैदियों का क्या किया जाएगा जो भारतीय जेलों में पड़े हुए हैं? क्या वे मियाद पूरी होने पर जब छूटेंगे तब नवीन विधान के रास्ते में रोड़े नहीं अटकाएंगें? अथवा आर्डिनेंस ही कितने समय तक दोहराए-तिहराए जा सकेंगे? भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने अभी उस दिन भारतीय स्थिति का हवाला देते हुए पार्लियामेंट को यह बतलाया था कि आर्डिनेंस कारगर हुए हैं और अवस्था सुधरी है। उन्होंने यह भी कहा था कि आर्डिनेंस उस समय के एक दिन बाद भी नहीं रखे जाएंगे जिस दिन अराजकता मिट जाएगी। परंतु वह दिन कब आवेगा इसके संबंध में कुछ अनुमान नहीं प्रकट किया गया। सरकार का पहला कर्तव्य तो यह है कि वह भारत के स्वराज्य-विधान का काम मुस्तैदी के साथ आगे बढ़ाए और उसे सफल करने के लिए मेल-मिलाप की नीति का व्यवहार करे। यदि सर सेमुएल होर के कथनानुसार अवस्था सुधर रही है तो आर्डिनेंसों में भी उसी के अनुसार सुधार होने चाहिए। भविष्य का विचार करके अधिक से अधिक जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए कड़ाई से काम नहीं लेना चाहिए, नर्मी की आवश्यकता है। सरकार को इस लक्ष्य को सामने रखकर काम करना चाहिए कि उसे भारत में ऐसी परिस्थिति तैयार कर देनी है जब असंतोष आप से आप कम हो जाएगा और अशांति स्वतः मिट जाएगी। राष्ट्र की सभी जातियों, सभी फिरकों और सभी श्रेणियों में असंतोष कम करने के लिए सरकार को सतत प्रयत्न करना चाहिए। हमारे प्रांत में करबंदी आंदोलन चलने के कारण जमींदारों ने सरकार के साथ सहयोग किया क्योंकि उसमें उनका हित था। इसी प्रकार और वर्गों को भी समझना चाहिए। जब सरकार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देगी कि सभी वर्ग अपने-अपने हितों की रक्षा और विकास के लिए सरकार का साथ देने लगेंगे तब अराजकता का आंदोलन रह ही नहीं जाएगा। परंतु वर्तमान समय में आर्डिनेंसों का जिस प्रकार व्यवहार हो रहा है उससे शांति-संतोष बहुत दूर होते जा रहे हैं। हमारी प्रांतीय व्यवस्था-सभा में राजनीतिक कैदियों को अधिकांश में 'सी' क्लास की सजा देने का विरोध किया गया और अन्यत्र लाठी चार्ज आदि की निंदा की गई। प्रांतीय गृह सदस्य का यह उत्तर संतोषजनक नहीं है कि राजनीतिक कैदियों को उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार 'ए', 'बी' या 'सी' श्रेणी में रखा जाना चाहिए। स्त्री कैदियों के संबंध में भी इसी नियम को लागू करना तो और भी अनुचित है। राजनीतिक कैदियों को अन्य अपराधियों की अपेक्षा अधिक सम्मान और सुविधाएं मिलनी चाहिए। उनके अपराध में चरित्र संबंधी दोष नहीं होता। गृह सदस्य के कहने के अनुसार राजनीतिक कैदियों और अन्य अपराधियों में भेद ही क्या रह जाता है? फिर सामाजिक स्थिति का भी तो विचार अनेक व्यक्तियों के साथ नहीं किया जाता जिसके रिपोर्ट समाचारपत्रों में निकलते रहते हैं। मजिस्ट्रेटों और जेल के अधिकारियों को इस संबंध में ध्यान देना चाहिए। लाठी चार्जों का समर्थन तो सरकार की ओर से अनेक बार किया जा चुका है और मद्रास कौंसिल में तो सरकारी सदस्य ने यह दलील की थी कि लाठी या गोली इन दो में से लाठी हल्की है इसलिए उसका प्रयोग किया जाता है। सरकार सब आंदोलनकारियों को जेल में रखकर उनका खर्च नहीं बर्दाश्त कर सकती। सर सेमुएल होर ने भी आर्डिनेंसों के द्वारा होने वाली बहुत सी सख्तियों का समर्थन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किया है। परंतु क्या ऐसी मनोवृत्ति से भारत की अवस्था सुधर सकती है?

आर्डिनेंसों के व्यवहार का एक नमूना अभी उस दिन मद्रास में देखा गया जब स्वदेशी लीग की अराजनीतिक संस्था का प्रचार संबंधी जुलूस पुलिस द्वारा बेंत के जरिए से भंग कर दिया गया। वाइसराय महोदय ने इंडियन चेंबर ऑफ कामर्स के डिपूटेशन का जवाब देते हुए कहा था कि स्वदेशी धंधा के प्रचार का कार्य कोई अपराध नहीं है और अब सरकार का यह रुख भी था कि वह बहिष्कार आंदोलन दबाने का मन तो करती रही है पर स्वदेशी प्रचार में विघ्न नहीं डालती रही। परंतु मद्रास से आए हुए इस समाचार के बाद यह कौन कह सकता है कि पुलिस उच्च सरकारी अधिकारियों के आदेशों का पालन कर रही है? यह भी संदेश हो सकता है कि आर्डिनेंसों के राज्य में स्वदेशी आंदोलन को भी दबाया जा सकता है। परंतु इस प्रकार के व्यवहार से नर्म से नर्म व्यक्ति भी क्षुब्ध हो जाएंगे और समाज में रोष बढ़ जाएगा। मद्रास की खबर है कि स्वदेशी-जुलूस के प्रति पुलिस के ऐसे व्यवहार से असंतोष फैला है और नेताओं ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री, भारतमंत्री और मजदूर नेता लैंसबरा से इसकी शिकायत की है। भारत सरकार और प्रांतीय सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार की कार्रवाई की तुरंत रोकथाम करे और मद्रास के मामले की जांच करे।

बंबई के व्यवसायी वर्ग की शिकायत है कि आर्डिनेंसों के व्यवहार के कारण जनता का मस्तिष्क ठीक नहीं और व्यापार की गति रुकी हुई है। पिछले दो महीनों के ऊपर से बंबई में लगातार हड़ताल हो रही है और वहां का सबसे बड़ा मूलजी जेठा मार्केट तो महात्माजी की गिरफ्तारी के समय से ही बंद रहा। अब इसके खुलने की आशा है। अवश्य इन हड़तालों आदि का कारण महात्मा गांधी के प्रति व्यवसायी वर्ग की श्रद्धा भी कुछ अंश तक हो सकती है पर अधिकांश में इसका कारण वर्तमान राजनीतिक स्थिति में जनता की मनोवृत्ति है। व्यापारी वर्ग कोरे आदर्शवाद के कारण अपना हित नहीं त्याग रहा, उसे ऐसा करने को लाचार भी होना पड़ा है। व्यापारियों के इस बढ़े हुए असंतोष की दवा यह नहीं है कि उनकी जबान बंद कर दी जाए और उनकी सभाएं न होने दी जाएं–दवा है उनके साथ सहानुभूति का बर्ताव करना और उनकी कठिनाइयों को सुनना-समझना। परंतु सरकार की ओर से इस बार इंडियन मर्चेंट्स चेंबर के अधिवेशन से असहयोग किया जा रहा है। वास्तव में इसका अर्थ यही है कि सरकार अपने दमनचक्र के सामने और किसी बात पर विश्वास नहीं करती और किसी तरह का समझौता करने या नर्मी दिखाने को तैयार नहीं है। पर इस नीति से तो अवस्था सुधर नहीं सकती।

## सर शाह मुहम्मद सुलेमान

सम्राट की ओर से सर शाह मुहम्मद सुलेमान को इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ-जस्टिस पद पर अधिष्ठित होने की स्वीकृति मिल जाना भारतीय न्यायविभाग के लिए अत्यंत अनुकूल और सामान्य जनता के लिए संतोषप्रद घटना है। सर शाह मुहम्मद इसी प्रांत के जौनपुर जिले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के निवासी हैं। अपने शिक्षा काल में आपने अपनी प्रतिभा और अध्यवसाय का परिचय दिया और प्रयाग विश्वविद्यालय में विशेष योग्यता के साथ बी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इसके बाद आपने विलायत में कानून की शिक्षा पाई और वहां से भारत लौट कर जौनपुर में बैरिस्ट्री करने लगे। परंतु इनकी विद्या बुद्धि, प्रतिभा और उच्चाकांक्षा जौनपुर की छोटी अदालत में परितृप्त न हो सकी। सन् 1912 में, साल भर के बाद ही, आपने स्थानीय हाईकोर्ट में प्रवेश किया। पांच-छह वर्षों के भीतर ही आप हाईकोर्ट के प्रमुख वकीलों में गिने जाने लगे। सन् 1918 में सर सुंदर लाल के स्वर्गवास के उपरांत डॉक्टर सुलेमान का सितारा और भी चमका और स्वर्गीय पंडित मोतीलालजी के राजनीति में प्रवेश करने के बाद तो आपकी कीर्ति और भी बढ़ी। सन् 1922 में आप इलाहाबाद हाईकोर्ट के दीवानी विभाग के 2-3 श्रेष्ठ वकीलों में गिने जाने लगे। सर तेजबहादुर सप्रू इस समय भारत सरकार के कानूनी-सदस्य बन गए थे। सन् 1923 में डॉक्टर सुलेमान प्रयाग हाईकोर्ट के जज बनाए गए और तब सें अब तक वे न्याय का कार्य बड़ी दक्षता से करते आए हैं। इस बीच में आपने कई बार स्थानापन्न चीफ-जस्टिस का पद भी प्राप्त किया। गत 15 मार्च को जब चीफ जस्टिस सर ग्रिमउड मियर्स की विदाई हुई तब आपको उस पद पर अभिषिक्त किया गया। भारतीय न्याय विभाग के इतिहास में दूसरा ही मौका है जब एक भारतीय को यह उच्च पद प्राप्त हुआ है। इस पद की गौरवरक्षा पूरे तौर पर कर सकने के योग्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति सर शाह मुहम्मद को प्राप्त हो। अभी उनकी आयु 46 वर्ष के लगभग ही है इसलिए उनके विकास का पर्याप्त समय अभी शेष है।

## साहित्यकार का सदाचार–2
## (आचरण को साहित्य से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता)

*भारत* के पिछले 6 मार्च के अंक में साहित्यकार के सदाचार की चर्चा की गई है जिसका निष्कर्ष यह है कि कवि या लेखक का व्यक्तिगत आचरण साहित्य समीक्षा की कसौटी नहीं बनाया जा सकता। कवि को चिरकाल से आचरण संबंधी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त रहे हैं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के इस युग में भी आचार-व्यवहार के अधिक से अधिक अधिकार मिलने चाहिए। इस निष्कर्ष के संबंध में हमें भी कुछ निवेदन करना है। कवि या साहित्यकार का आचरण उसके जीवन का अभिन्न अंग है और उसकी साहित्यसृष्टि भी उसके जीवन से घनिष्ठ रूप में संबंधित है। इसलिए आचरण को साहित्य समीक्षा की कसौटी बनाया जाए या न बनाया जाए, साहित्य निर्माण में आचरण का हाथ तो है ही। कवियों और लेखकों को चिरकाल से आचरण संबंधी कुछ विशेषाधिकार मिलते आए हैं पर उनका विश्लेषण करने पर पता लगेगा कि विशेषाधिकार वे ही हैं जो कवि की काव्य-प्रेरणा में सहायक, उसकी सौंदर्य-भावना की तृप्ति करने वाले और उसके आचरण का संस्कार करने वाले हैं। साहित्यशास्त्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में कवियों को सात्विक भोजन करने और पान आदि खाने की सम्मति दी गई है। उनके वस्त्र ऋतु के अनुकूल भिन्न-भिन्न रंग-रूप के हों ऐसे वस्त्र जिनसे कवि का प्रकृतिप्रेम लक्षित हो और वह बुद्धि प्राप्त करे। आजकल के छायावादी कवि यदि अपने लंबे लच्छेदार बाल संवार कर निकलते हैं तो वह तो कवि की स्वभावसिद्ध सौंदर्य कामना है। उनकी पोशाक की सुघरता में भी ऐसे ढूंढ़ने की संकीर्णता और रुखाई न दिखानी चाहिए। ये सब तो कवि का सौंदर्योन्मेष करते हैं, उसका आचरण करते हैं। हम यह नहीं कहते कि प्राचीनकाल में कवियों ने इस सुविधाओं और विशेषाधिकार का दुरुपयोग नहीं किया पर दुरुपयोग किस वस्तु का नहीं हो सकता? हमें तो विशेषाधिकारों की मूल भावना पर ध्यान देना है और उस पर ध्यान देकर हम कह सकते हैं कि उनका उद्देश्य कवि-सुलभ वृत्तियों का विकास और आचरण-संस्कार ही था। उनका दुरुपयोग भी हुआ, पर उसे अपवाद मानना ठीक होगा। कुछ अंग्रेज आलोचकों का मत है कि कवि कालिदास ब्राह्मणकालीन भारत के सुखी कवि थे, उनकी दृष्टि दुःख की ओर गई ही नहीं और न वे ब्राह्मण संस्कारों से ऊपर उठकर मानवहृदय की गंभीर अनुभूतियों की थाह लगा सके। परंतु उनके ग्रंथों का अन्वेषण करने से हमें यह धारणा सत्य नहीं जान पड़ती। अवश्य कालिदास भारत के समृद्धिकाल के कवि थे और उन्हें व्यक्तिगत जीवन में भी संपन्नता के सुख प्राप्त थे। संभव है, इस संपन्नता की छाया में उनका व्यक्तिगत आचरण मलिन हो गए हों पर क्या इसके लिए संपन्नता ही सर्वथा दोषी है?

हमारा आचरण लखनऊ की तहजीब की तरह केवल एक ऊपरी दिखावा नहीं है, यह तो जीवन के अंतरंग को स्पर्श करता है। इस बीसवीं सदी के सभ्य किंतु उथले युग में संभव है हम आचरण को रुचिविशेष अथवा परिस्थिति विशेष की उपज बतलाने की धृष्टता करें पर हमारे ही देश में महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था जिन्होंने आचरण को धर्म का अभिन्न अंग बनाकर उसे सार्वजनीन और सर्वयुगीन बना दिया। महात्मा बुद्ध की संपूर्ण शिक्षा और संपूर्ण सिद्धांत जिन्होंने पृथ्वी में स्वर्ग की आभा छिटकाई थी और मनुष्य जीवन में युग परिवर्तन किया था, ये ही आचार हैं। बुद्ध का धर्म मूल में आचार धर्म ही है। उन्होंने जो व्यापक आचार निरूपण (Universal Moral Code) किया था क्या वह आज के उन्नत दर्शन से भी अकाट्य नहीं है? सदाचार को महात्मा बुद्ध ने मनुष्य समाज की सामान्य भाव-भूमि बनाने का आदेश किया था और बौद्ध ही क्यों संसार के सभी धर्म आचार की शिक्षा देते हैं। बाइबिल का सबसे अधिक प्रसिद्ध और पवित्र प्रसंग (Sermon On The Mount) केवल आचारों की ही तालिका तो है। ऐसी अवस्था में हम आचार को जीवन के अंतरंग से संपर्कित मानते हैं और जब आचार ही जीवन है तब सजीव साहित्य में आचार की छाप मिलेगी ही। इस आचार की व्यापक आस्था हमें स्वीकार करनी पड़ेगी इसे हम केवल रुचिविशेष या क्रियाविशेष नहीं मान सकते।

तर्क करने के लिए कुछ लोग पाश्चात्य देशों के साहित्यकारों का उदाहरण देते और यह कहते हैं कि व्यक्तिगत आचरण अच्छा न होते हुए भी अनेक ने अमर साहित्य का सृजन किया। विक्टर ह्यूगो और टाल्सटाय जैसे युगपरिवर्तक साहित्यमनीषी भी जीवन में सदाचारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं रहे। अहंकार तो पश्चिम में कलाकार की स्थायी संपत्ति माना जाता है। हमारे यहां भी अनेक भक्तकवियों तक के चरित्र संबंधी निंद्य अपवाद प्रचलित हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने अपने 'प्रतिभा' निबंध में अधिकांश ऐसे व्यक्तियों को प्रतिभावान बताया है जिनका शारीरिक विकास गया गुजरा था और चरित्र भी विशेष उन्नत था इसका प्रमाण नहीं। कवियों और साहित्यकारों की परंपरा अधिकांश में शरीर से क्षीण चरित्र में अनुन्नत और मस्तिष्क शक्ति में तीव्र रही हैं, ऐसा कहा जाता है। कहते हैं कि कवि को सदैव से प्रेमी और रसिक की उपाधियां मिली हैं और पश्चिम में यह तर्कना की जाती है कि साहित्यनिर्माता को जीवन संबंधी व्यापक अनुभूति तभी हो सकती है जब वह स्वयं उनका स्वाद ले। कवि की कल्पना जिस आसमान में उड़ती है वह सदैव निर्मल ही नहीं अनेक बार मलिन भी रहता है। कुछ समीक्षक तो साहित्य को जीवन की प्रतिक्रिया बतलाते हैं और यहां तक कहते हैं कि जीवन में असदाचारी व्यक्ति ही पवित्र साहित्य का निर्माण करते हैं। कविवर पं. सुमित्रानंदन पंतजी ने महादेवी वर्माजी के *नीहार* की आलोचना करते हुए *भारत* के इन्हीं स्तंभों में लिखा था कि 'करुणकाव्य *नीहार* की कवि अधिकतर सदैव प्रसन्न मुख रहती हैं। जिस प्रकार कविता की कल्पना लोक में पीड़ा उनकी अभिन्न संगिनी है उसी प्रकार वस्तु एवं व्यवहारलोक में हंसी। उसमें सार्थकता चाहे उतनी न हो पर वह स्वाभाविक अत्यंत है। कविता के मोती चुनने के लिए कल्पना के गंभीर विषादमय समुद्र में डुबकी लगाने के बाद, हास्य से आलोकित समभूमि पर उतर आना उनके मन की स्वाभाविक प्रतिक्रिया जान पड़ती है। मनोविज्ञान के प्रेमियों को कवि के इन दो स्वरूपों में सामंजस्य स्थापित करने में देर न लगेगी। स्पष्ट है कि इस प्रकार के विचारक प्राणायाम साधकर कविता लिखने अथवा साहित्य सृष्टि करने पर अधिक विश्वास रखते हैं। इनके लिए साहित्यजगत और व्यवहारजगत में प्रतिक्रिया द्वारा संबंध स्थापित होता है। ये कल्पना को ही साहित्य मानते हैं। इनके लिए साहित्यकार का दोहरा अस्तित्व है और जीवन और आचार को ये साहित्य से बहिष्कृत कर सकते हैं।

परंतु क्या यह तब औचित्य की सीमा पार नहीं कर गया? टाल्सटाय का श्रेष्ठ साहित्य उनके चरित्र-संस्कार के उपरांत का है। कीट्स की प्रेमवाहिनी के संबंध में यह प्रमाणपुष्ट होता जा रहा है कि वह इंद्रियजन्य (Sensual) उतना नहीं था जितना कि इंद्रियग्राह्य (Sensuous) था। शेली की प्रेम कल्पना तो उच्च मानसिक उड़ान बतलाई जाती है। जो साहित्य जीवन की प्रतिक्रिया के रूप में निर्मित होगा उसमें सत्य को विकृत करने की चेष्टा की जाएगी और झूठी आध्यात्मिकता का ढांचा खड़ा किया जाएगा। कथासाहित्य में कला का तिरस्कार करने वाली प्रोपेगेंडा वृत्ति इसी कारण आती है। केवल कल्पना ही उच्च साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकती। यदि कल्पना की पतंग वस्तु की अनुभूति के तागे से कटकर अलग हो जाएगी तो वह शून्याकाश में इधर-उधर उड़ती फिरेगी, और हमारे वश की नहीं रह जाएगी। आज हमारे नवीन साहित्य में अनेकाधिक प्रयोग हो रहे हैं पर अभी आधुनिक साहित्य का 'दर्शन' (Philosophy) स्थिर नहीं हुआ। यह अनिवार्य नहीं कि साहित्यिक दर्शन सामयिक जीवन के ही अनुसार बने पर यह आवश्यक है कि वह एक स्थिर रूप धारण करे। पर जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हम कल्पना के आकाश में उड़ते रहेंगे और बुद्धि के आसरे ही साहित्य की सृष्टि करेंगे तब तक यह आशा नहीं कि हमारे साहित्य का दर्शन कोई पुष्ट रूप धारण करेगा। विविध कल्पनाएं और भावनाएं जब तक जीवन और जीवन के आचार से परिणयजन्य ग्रंथिबंधन नहीं करेगी तब तक वे अप्सराओं की भांति हमें मिथ्यामोह में भले ढाले रहें पर साहित्यपरिवार में सच्ची गृहरमणियों का 'दर्शन' दुर्लभ ही है।

(रविवार, 20 मार्च 1932)

# होलिकोत्सव

होली हमारा जातीय पर्व और हमारी राष्ट्रीय संस्था है जिसके अधिवेशन अचल रूप से ठीक वर्ष पर हुआ करते हैं। देश भर में एक ही तिथि, एक ही समय पर होने वाले इन विराट अधिवेशनों को देखकर आश्चर्य होता है। देश भर के करोड़-करोड़ निवासी बालक, वृद्ध, युवक, स्त्री, पुरुष उमंग के साथ इसमें भाग लेते हैं फिर भी इनके लिए कोई आयोजन नहीं करना पड़ता। राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष भर में एक बार एक स्थान पर होता है फिर भी उसके लिए कितनी कमेटियां मिलकर कितना प्रबंध करती है और कितने रुपए खर्च करने पड़ते हैं। होली कब होगी पर क्या आज तक उसकी कोई स्वागत समिति बनी है? प्रकृति स्वयं उसकी स्वागत समिति है। हम सभी उसके स्वयंसेवक हैं। होली जलवायु की भांति हमारे लिए स्वाभाविक हो गई है, हमारी अपनी बन गई है। हम सबके हृदय की समष्टि के हृदय की तमाम वृत्तियां इसे अपना चुकी हैं इसलिए यह देश के एक कोने से दूसरे कोने तक आप से आप बिना प्रबंध किए और पर्चा बांटे न जाने किस सनातन काल से होती चली आ रही है। यही कल होगी और भविष्य में संख्या हीन वर्षों तक होती रहेगी। पिछले अगणित वर्षों की भांति इस वर्ष और इस वर्ष की भांति फिर होली होगी। हम नहीं थे तब होली थी, हम नहीं रहेंगे तब होली रहेगी। हम जहां रहते हैं वहां होली होती है, ऐसी होली की विराट भावना के सामने हम नतशिर होते हैं। यह आत्मनियोजित विराट पर्व, अनादि काल से असंख्य प्राणियों की अनंत वृत्तियों पर शासन कर रहा है अतएव इस सनातन सम्राट को हमारा प्रणाम। समूह की वाणी मुक्त कंठ से इसकी अभ्यर्थना करती है अतः इसकी दिगंत व्यापिनी विभूति को अबीर को हम सिर-माथे लेते हैं।

वैदिक युग में चेतन का उद्रेक आज की अपेक्षा कहीं अधिक था। एक चिर उत्कंठित चिरजिज्ञासु चेतना उस युग की सहचारी थी। उनके निर्मल मानसमुकुर में प्रकृति अपना प्रतिबिंब प्रतिफलित करती थी। होली जैसे प्राकृतिक पर्व की उत्पत्ति अवश्य उसी वैदिक काल में संभव थी। पतझड़ के उजाड़ दृश्य और बसंतागमन की हंसित हरित छवि की मध्यबिंदु यही होली है। प्राचीनों ने इस दिन जैसे तमाम जीर्ण-शीर्ण रुक्षता को जलाकर नवचेतना के आविर्भाव का आयोजन किया था। सब के सब इस आयोजन में भाग लेते थे क्योंकि सबकी हृत्तंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक ही स्वर में बजती थी। आप से आप ऐसा होता था। पर आज तो हममें से बहुत से जोर देकर इस पर्व को दूर करना चाहते हैं। यह व्यक्तिवाद की जड़ और विषयगति है। जो लोग अबीर से चिढ़ते, रंग से नफरत करते और होली को असभ्यों का पर्व समझते हैं वे प्रकृति से संबंध-विच्छेद कर चुके और नीरस शुष्क वातावरण में पड़कर होली का वास्तविक अर्थ भूल चुके हैं। आश्चर्य तो यह है कि ये लोग समाज सुधारक के नाम से पुकारे जाते हैं।

होली हमारे समाज में इतने दिनों से अविचल भाव से स्थित है यही उसका सबसे बड़ा मंडन है। उसने राष्ट्रीयता की इतनी दृढ़ नींव खड़ी की है कि जिसे राष्ट्र अपने कल्याणार्थ कभी भूल नहीं सकता। हिंदुओं के चारों वर्णों का समीकरण इस पर्व की अद्वितीय विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी इस दिन चिरदिन का भेद-भाव तोड़कर एक होते हैं और यही एकता हमारे आज के समाज के लिए परम आवश्यक जीवन मंत्र है। महात्मा गांधी ने समूह के जिस 'रामधुन' को श्रेष्ठ कला बतलाया है होली में वही प्रत्यक्ष होती है। सारे देश में एक साथ असंख्य मंडलियां निकलती हैं, जैसे असंख्य लहरें एक महासागर में उठें। एक साथ गाना बजाना, एक साथ भोजन-पान, एक साथ आमोद-प्रमोद। आज कल हमारे समाज की विशेषकर नागरिक, यंत्र तुल्य जीवन की जड़ता दूर करने के लिए आमोद-प्रमोद का यह आयोजन परम आवश्यक है। रवींद्रनाथ जैसे आदर्शवादी का यह कथन है कि सारा संसार आनंदरूप है, दुःख रूप नहीं। संसार में यदि आनंद न होता, प्रेम न होता तो संसार का व्यवहार किस प्रकार चलता? हम सब जीव आनंद से उत्पन्न हुए हैं, आनंद ही हमारी आत्मा का विकास कर रहा है और आनंदरूप भगवान हमें अंत में अवश्य मिलेगा। तो फिर इस आनंद की उपलब्धि के लिए यदि वर्ष में एक दिन होली के दिन समाज के छोटे बड़े एक साथ एकत्र होकर उत्सव मनाते हैं तो अनुचित तो कुछ भी नहीं करते। वर्ष भर परदेश में हाय पैसा और हाय पेट करते-करते जिनकी जीवनी एक अविश्रांत करुणा की कहानी बन गई यदि वे एक दिन सुख उपसंहार की प्रार्थना करते हैं तो क्या उसे स्वीकार कर हम उनका एक दिन का सुख भी नहीं देख सकते?

होली के विरोध में कभी-कभी कुछ राजनीति का पुट भी रहता है। उद्वेगपूर्ण शब्दों में कहा जाता है, आज प्राणों की होली लगी हुई है। सामयिक राजनीति में इस प्रकार की बातें अपना अलग महत्व रखती हैं और उनका प्रभाव भी पड़ता है। परंतु इस विषय को कुछ व्यापक दृष्टि से भी देखा जा सकता है। होली तो राजनीति लक्ष्यसिद्धि का साधन भी है। यह पर्व केवल हिंदू जाति का ही संघटन नहीं करता बल्कि सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधता है। जो पढ़-लिखकर जड़ बन गए हैं उनकी बात तो जाने दीजिए पर जो भविष्य की आशा हैं वे हिंदू-मुसलमान और ईसाई बच्चे होली से विशेष प्रेम रखते हैं। वे माताओं से पूछा करते हैं कि होली किस दिन होगी, उसमें क्या होगा और वह क्यों मनाई जाती है। जहां हिंदुओं का संसर्ग अधिक है वहां की अहिंदू स्त्रियां प्रह्लाद और होलिका की कथा भी जानती हैं और बालकों को सुनाती हैं। देश का भविष्य जिनके हाथ में है उनके संस्कार इस प्रकार बनते रहते हैं। यह राष्ट्रीय विकास के लिए कितना उपयोगी है, इसे सहज ही समझा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## होली और स्वदेशी

पिछले अंक में हम लखनऊ स्वदेशी संघ की वह विज्ञप्ति प्रकाशित कर चुके हैं जिसमें सारे देशवासियों से यह अपील की गई है कि होली के उत्सव में स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग किया जाए। विदेशी पिचक्कों, रंग और अबीर के बदले देशी टीन के पिचक्कों, कुसुम फूल के रंग आदि का व्यवहार करने का उसने निवेदन किया है। इस समय देश की आर्थिक परिस्थिति बड़ी ही शोचनीय हो रही है और होली का पर्व ऐसे ही समय आ रहा है। यह सच है कि अपने अनेक प्रतिष्ठित देश नेताओं और भाई बंधुओं के जेल में रहते हुए होली मनाने का उत्साह स्वभावतः मंद रहेगा। गत वर्ष इसी होली के मौके पर लार्ड इर्विन और महात्मा गांधी में समझौता हो गया था और सारे देश में उत्साह की उमंग उमड़ चली थी। इस वर्ष सरकारी नीति अब तक समझौता करने की नहीं हुई है। इससे देश में मलिनता छाई हुई है। होली का रंग आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही कारणों से फीका रहेगा। फिर भी साल भर का त्योहार जिस किसी तरह मनाया जाए, फिजूलखर्ची से बचने का ध्यान रखना उचित है। देश का पैसा देश में रहे यही इस समय का मूलमंत्र है। पंडित मदन मोहन मालवीयजी सारे देश में स्वदेशी संघों की स्थापना कर रहे हैं जो देश की आर्थिक स्थिति का यथासंभव सुधार करेंगे। होली के लिए निकले हुए इस स्वदेशी संघ की लखनऊ शाखा की विज्ञप्ति का पालन करने की हम देशवासियों से सिफारिश करते हैं।

(गुरुवार 24 मार्च 1932)

## मताधिकार

मताधिकार के विषय की लार्ड लोथियन की जो कमेटी हिंदुस्तान के भिन्न-भिन्न केंद्रों का चक्कर लगा रही है, उसे कहीं दस दिन के, कहीं एक दिन के, कहीं आधे दिन के अधूरे हड़ताल से भेंट होती है और कहीं काले झंडों के दर्शन मिलते हैं। पर यह बयान देने वालों के बयान लेती ही है और इस नीति से परस्पर विरोधी बयानों का संग्रह हो गया है। यदि सच पूछा जाए तो कोई भी ऐसे दो महत्वपूर्ण बयान नहीं हैं जो बिलकुल एकमत हों। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रांतों की समस्याएं अलग-अलग हैं और इस दृष्टि से 'मताधिकार' (Franchise) के संबंध में भी मतभेद होना स्वाभाविक ही नहीं, उचित भी है पर मताधिकार के कुछ मूल विषय ऐसे भी हैं जिनमें हम अधिक मतैक्य की आशा रखते थे। मताधिकार के ही विस्तार पर वास्तविक लोकतंत्र की नींव रखी जा सकती है। पर हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अधिकांश बयान देने वालों ने इस विषय पर उचित जोर नहीं दिया। पिछले गोलमेज सम्मेलन में देश के सबसे अधिक लोकप्रिय दल कांग्रेस के नेता महात्मा गांधी ने बालिग मताधिकार का आग्रह किया था और यह बतलाया था कि बालिग मताधिकार मिल जाने पर पृथक निर्वाचन की जरूरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं रह जाएगी। अछूत वर्ग तथा स्त्रियां भी उचित संख्या में अपने प्रतिनिधि भेज सकेंगी और किसी विशेष वर्ग को, विशेष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं रहेगी। बालिग मताधिकार सबसे पहले लोकतंत्र का साधन है। फिर वह देश की वर्तमान स्थिति में फैली हुई हिंदू-मुस्लिम तथा हिंदू-अछूत पृथक भावना को दूर करने में समर्थ है। राष्ट्र में राजनीतिक चेतना की वृद्धि के लिए बालिग अधिकार बड़ा काम करेगा। स्त्री समाज में भी चेतना बढ़ेगी जिससे सामाजिक कुप्रथाएं दूर होंगी और समाज का कल्याण होगा। किसी वर्ग को किसी प्रकार की शिकायत की गुंजाइश नहीं रहेगी। महात्मा गांधी ने इन लक्ष्यों को सामने रखकर बालिग मताधिकार का प्रस्ताव किया था पर वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के कारण कांग्रेस, राष्ट्रीय मुस्लिम दल, व्यापारी दल तथा अन्य संस्थाएं मताधिकार कमेटी में भाग नहीं ले रहीं जिसके फलस्वरूप बालिग मताधिकार के लिए उतना आग्रह नहीं किया जा रहा जितना किया जाना चाहिए। इस समय मताधिकार कमेटी को केवल भिन्न-भिन्न वर्गों की सम्मतियां प्राप्त हो रही हैं, जो बहुत अंश में अराष्ट्रीय, स्वार्थपूर्ण और संकीर्ण है। सरकारी गवाह तो और अधिक अनुदार रुख दिखा रहे हैं। हम पटना में दिए गए सरकारी अफसर के उस बयान पर टिप्पणी लिख चुके हैं जो अधिक मताधिकार का इस आधार पर विरोध करता है कि मताधिकार बढ़ाने से इतने भले आदमी और इतनी जगहें नहीं मिल सकेंगी जो वोटिंग का निरीक्षण कर सकेंगी और जहां वोटिंग का प्रबंध किया जा सकेगा। इस प्रकार एक ओर सरकार की ओर से व्यावहारिक कठिनाइयां दिखलाई जा रही हैं और दूसरी ओर भिन्न-भिन्न दल अधिकांश में अपने हितों का विचार कर अपना मत दे रहे हैं। लार्ड लोथियन की कमेटी को इस संपूर्ण परिस्थिति से अवगत होकर ही अंतिम मसविदा बनाना चाहिए।

मताधिकार के संबंध में और भी कितने ही प्रश्न हैं जिन पर तरह-तरह के मतभेद हो रहे हैं। प्रांतीय व्यवस्था-सभाओं का और केंद्रीय संघ-परिषद (FederalAssembly) का निर्वाचन किस पद्धति पर हो। केंद्र की दूसरी परिषद के लिए प्रांतीय व्यवस्था-सभाएं चुनाव करें या जनता से सीधा चुनाव हो। इन सबमें चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की संख्या कितनी हो। प्रांतों में एक ही व्यवस्था-सभा हो या दूसरी सभा भी हो आदि अनेक महत्वपूर्ण समस्याएं मतभेद से भरी हुई हैं। लार्ड लोथियन की कमेटी को इस संबंध में जितने बयान मिले हैं उनमें सब प्रकार की रायें जाहिर की गई हैं। यदि मताधिकार के संबंध में सबसे बड़ा प्रश्न मताधिकार कि संख्या का निरूपण करना और पृथक निर्वाचन और सम्मिलित निर्वाचन का प्रश्न हल करना है तो दूसरा सबसे बड़ा प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रांतीय और व्यवस्था-सभाओं की प्रतिनिधि संख्या और निर्वाचन विधि को तय करना है। पहले प्रश्न में लोकतंत्र की प्रतिष्ठा की समस्या को व्यावहारिक रूप में उपस्थित करने का सवाल है। मजहबी मुसलमान, अंबेडकर दल आदि के पृथक-निर्वाचन के सवाल के साथ मजदूर दल, अछूत दल, स्त्री दल आदि के 'विशेष प्रतिनिधित्व' के प्रश्न आते हैं। इनके अतिरिक्त जमींदारों और तालुकेदारों की अलग मांगें हैं। यूरोपियन व्यवसायी भी अपने अधिकारों को बड़ी तत्परता से पकड़े हुए हैं। इन सब मांगों के कारण लार्ड लोथियन की मताधिकार कमेटी के सामने पेश किए गए बयान ऐसे हो गए हैं जैसे तरह-तरह के जीवों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कोई अजायबघर हो। यद्यपि इन सभी मांगों में अधिक से अधिक समन्वय करना लोथियन कमेटी का कर्तव्य है पर इनके औचित्य-अनौचित्य पर भी ध्यान देनी जरूरी है। यदि भारत को स्वतंत्रता का सार देने की बात में कुछ भी सार है तो मताधिकार कमेटी को उसी के अनुसार सदसद् का विवेक कर अपनी रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।

पिछले दिन बाबू रामानंद चटर्जी ने प्रस्तावित केंद्रीय संघ सभा का विश्लेषण करते हुए सुझाया था कि यदि राजा-महाराजाओं का दल, मुस्लिम दल और अछूत दल पृथक-निर्वाचन से चुने जाएंगे तो आगामी विधान स्वराज्य का केवल ढकोसला होगा, वास्तविक स्वराज्य नहीं होगा। यह बात लिबरल नेता भी कई बार कह चुके हैं। युक्तप्रांत के लिबरल-एसोसिएशन के प्रतिनिधि श्री पी.एन. सप्रू ने भी लोथियन कमेटी के सामने अनेक ऐसी आशंकाओं की ओर ध्यान आकर्षित कराया जिनसे स्वराज्य के मार्ग में बाधा पड़ सकती है। लिबरल दल के प्रतिनिधि श्रीयुत सप्रू का बयान राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत ही संतोषजनक कहा जाएगा। उन्होंने बालिग मताधिकार का प्रस्ताव रखा यद्यपि व्यावहारिक अड़चनों को देखते हुए संपूर्ण जनता का पच्चीस प्रतिशत प्रांतीय सभा के लिए और केंद्रीय संघपरिषद के लिए है अन्यथा बालिग मताधिकार का ही शीघ्र से शीघ्र स्थायी प्रबंध हो। श्री सप्रू ने सम्मिलित निर्वाचन के पक्ष में राय दी और सब प्रकार के 'विशेष प्रतिनिधित्व' का विरोध किया। यद्यपि यह दायरे के बाहर था तथापि आपने यह मत प्रकट किया कि प्रांतीय व्यवस्था सभा का चुनाव सीधे जनता के केंद्रों से हो और प्रांतों में दूसरी सभा (Second Chamber) की आवश्यकता नहीं है। केंद्रीय संघपरिषद में ब्रिटिश भारत के प्रस्तावित दो-सौ प्रतिनिधियों के बदले तीन सौ के लिए राय दी जिससे लोकमत की अधिक रक्षा हो सके। प्रतिनिधि संख्या बढ़ाने की सलाह श्री रामानंद चटर्जी महोदय ने भी दी है। जायदाद का अर्थ केवल जमीन या पुरखों से प्राप्त संपत्ति ही न माना जाए बल्कि स्वयं अर्जित नौकरी से मिलने वाले रुपए भी संपत्ति समझे जाएं। प्रसन्नता की बात है कि प्रांतीय लिबरल-संस्था के प्रतिनिधि सप्रू महाशय ने राष्ट्रीय दृष्टि से हितकर सम्मतियां पेश कीं और वर्तमान परिस्थिति में इससे अच्छा बयान मिलना कठिन ही है।

पिछले गोलमेज सम्मेलन में अधिक से अधिक मतभिन्नता थी और सरकार ने सब सदस्यों को भारत का समान प्रतिनिधि समझकर सबकी राय पर ध्यान देना आवश्यक समझा था। फल यह हुआ कि अधिक संख्या में भर्ती किए गए मजहबी मुसलमान अपने रास्ते से डिगे ही नहीं और किसी प्रकार का समझौता न हो सका। सबने अपना राग अलग ही अलापा। राष्ट्रीय दृष्टि से यह बहुत बड़ी बाधा हुई और सरकार की इस नीति का प्रतिवाद भी किया गया। स्वयं महात्मा गांधी ने गोलमेज की मजलिस में ही प्रतिनिधियों के वास्तविक प्रतिनिधि होने में संदेह प्रकट किया। फल यह हुआ कि फैडरेल कमेटी ने जो ड्राफ्ट तैयार किया, वह भारत की राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत त्रुटिपूर्ण हुआ। लार्ड लोथियन की मताधिकार कमेटी तो इससे भी अधिक खराब परिस्थिति में काम कर रही है। देश में असंतोषपूर्ण आंदोलन चल रहा है। यद्यपि लार्ड लोथियन ने पिछले दिन लखनऊ में राजा रामपाल सिंह के एक वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'यहां हमें कांग्रेस से मतलब नहीं है, हम तो मताधिकार पर विचार कर रहे हैं' तथापि अंतिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रिपोर्ट तैयार करते हुए उनके लिए यह उचित होगा कि वह वर्तमान राजनीतिक आंदोलन का भी ध्यान रखें और यह कल्पना करें कि उन्हें जितने बयान मिले हैं वे देश के वास्तविक मत को थोड़े अंश में ही प्रकट करते हैं। हमारे प्रांत के बयान देने वालों में प्रांतीय लिबरल दल के प्रतिनिधि श्री सप्रू ने सबसे अधिक उचित और राष्ट्रोपयोगी बयान दिया है। लोथियन कमेटी को यह स्मरण रखना चाहिए कि यह भी नर्म दल के एक सदस्य का ही बयान है।

## डी. विलेरा का उदय

समाचारपत्रों के पाठक यह पढ़ रहे हैं कि आयरलैंड में क्रांतिकारी नेता डी. विलेरा के उदय से एक विकट स्थिति उत्पन्न हो गई है। डी. विलेरा पिछले चुनावों के बाद आज आइरिश जनसभा केंद्र की अध्यक्ष हो गई हैं और उन्होंने अधिकार पद पर आते ही दो अत्यंत महत्वपूर्ण घोषणाएं की हैं। इन दोनों का संबंध ब्रिटेन से है और ये ब्रिटेन के लिए चिंताजनक हैं। डी. विलेरा और उनकी पार्टी वाले ब्रिटिश सम्राट से संबंध की शपथ नहीं लेना चाहते और तीस लाख पौंड के सालाना देन को बंद कर देना चाहते हैं। इन घोषणाओं का अर्थ यही होता है कि आयरलैंड ब्रिटेन से संबंध-विच्छेद कर लेगा, वेस्टमिंसटर विधान के अनुसार साम्राज्य से बाहर हो जाएगा और देन की रकम को भी नाजायज करार दे देगा। बड़े ही संयत शब्दों में, हल्के-हल्के, इस भीषण स्थिति की चर्चा ब्रिटिश पार्लियामेंट में हुई। ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्य श्री थामसन ने आयरलैंड की नाजुक परिस्थिति के संबंध में जो कुछ कहा वह बड़ी ही नर्मी से कहा। भारत की समस्या पर मत प्रकट करते हुए सर सेमुएल होर 'कुत्ते भूंकते रहते हैं पर कारवां चले चलते हैं' आदि वाक्यों का व्यवहार कर चुके हैं पर आयरलैंड के लिए वैसे शब्द श्री थामसन के मुंह से नहीं निकले। बहुत मना करने पर भी मजदूर सदस्य मिस्टर मेक्सटन ने कह ही दिया कि यह आयरलैंड-ब्रिटेन का तीस लाख पौंड का युद्ध है। पर कोशिश यह की गई कि डी. विलेरा और उनके दल को उत्तेजित न किया जाए। ब्रिटेन को अब भी आशा है कि शांति के साथ किसी तरह का समझौता हो सकेगा। आयरलैंड और उसके नेता डी. विलेरा को अधिक से अधिक रजामंदी के साथ नीति निर्धारित करने देने का आयोजन किया जाता है पर भारत में एकमात्र दमनचक्र ही शांति का साधन समझा जा रहा है। ये दोनों नीतियां आगे चलकर कौन सा रूप धारण करती हैं और इनके कैसे फल फलते हैं यह भविष्य बतला सकेगा।

## साहित्यकार का सदाचार—3
## (क्या कवि को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं?)

(हम चाहते हैं कि इस मनोरंजक विषय पर *भारत* में चर्चा चले और हिंदी के विद्वान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस पर अपना मत प्रकट करें। इसलिए पिछले 6 मार्च के अंक में अस्पष्ट और अशुद्ध छपे हुए इस लेख को हम शुद्ध प्रकाशित कर रहे हैं। इसी विषय का एक अन्य लेख भी इन्हीं स्तंभों में प्रकाशित किया जा चुका है—संपादक।)

आधुनिक हिंदी कविता को द्वेष की दृष्टि से देखने वाले समीक्षकों ने एक बलशाली आरोप यह किया है कि कविवर्ग सदाचारी नहीं है। विशेषकर छायावाद के कवियों को इस प्रकार की शिकायतों का लक्ष्य बनाया गया है। जहां तक छायावादी कवि समुदाय के अंग्रेजीनुमा लच्छेदार बालों का संबंध है वहां तक आक्षेप करनेवालों को विभिन्न संस्कृति और रुचि का ही हेतु समझकर चुप रह सकते हैं। पोशाक, रहन सहन और खान-पान के विषय में भी यदि कोई आक्षेप करे तो विशेष चिंता नहीं क्योंकि समाज का प्रगतिशील अंश इन बातों का प्रतिवाद करने के लिए मौजूद है। हां, जब समीक्षक दल कवियों और साहित्यकारों के चरित्र पर आक्रमण करते, उन्हें उच्छृंखल और असदाचारी बतलाते हैं, यही नहीं, जब से इन चरित्र संबंधी आक्षेपों को साहित्य समीक्षा की कसौटी बनाकर पारखी बनते हैं तब परिस्थिति विचारणीय बन जाती है। हिंदी में साधारण ही नहीं, पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे असाधारण कोटि के साहित्य पारखी भी इस प्रकार की प्रणाली का अनुसरण कर चुके हैं और कुछ विशेष उद्धरण देकर कवियों की विलास-वासना को प्रमाणित समझ चुके हैं, इसलिए यह विषय और भी विवेचनीय हो गया है।

पश्चिम के अधिकांश विचारक सदाचार को जीवन की एक क्रियाविशेष और रुचिविशेष मानते हैं। समाज की सुव्यवस्था के लिए जिन नियमों को हम सभ्य मनुष्य अपनाते जाते हैं वे ही सदाचार कहलाते हैं। शारीरिक और मानसिक विकास के लिए भी कुछ नियमों को आदर्श बनाकर सदाचार संज्ञा दे दी गई है। समाज की व्यवस्था और सभ्यता का मापदंड सर्वत्र एक-सा नहीं होता। शारीरिक और मानसिक विकास के लिए तो कोई भी नियम आदर्श रूप में नहीं माने जा सकते। ऐसी अवस्था में सदाचार कोई निर्विकल्प, व्यापक (Universal) सिद्धांत सचमुच नहीं माने जाते, फिर भी हमारे देश में सदाचार के संबंध में एक दृढ़ भावना रहती आई है और आज उसी दृढ़ता का निदर्शन करते हुए पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे समीक्षक भी कृतियों की शब्दावली को लेकर कृतिकारों को लांछित करते हैं।

साहित्यकार को सदैव से कुछ न कुछ विशेषाधिकार मिलते रहे हैं। वेदों में कवि को स्वयंभू के समकक्ष रखा गया है और काव्य सृष्टि के कारण उसके इस सम्मान को हम स्वीकार करते हैं। चिरकाल से कवि के व्यक्तित्व के साथ मानो उसी की कल्पना से बनी हुई समाज की एक अवर्णनीय भावना लगी चली आ रही है। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का जैसा एक लघु, मोदमय, भाररहित अस्तित्व कवियों को हम दे चुके हैं और अब उसे ले नहीं सकते। वे ही उसके उत्तराधिकारी हैं। मध्यकाल के संस्कृत के साहित्यशास्त्रों में कवियों के असामान्य रूप के चित्र मिलते हैं। जिन्हें समाज छैलचिकनियां कहता है वह असामान्यता स्पृहणीय नहीं होती पर कवियों को वैसी ही असामान्यता प्रतिभामयी विभूति के कारण वरेण्य बन जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मानो कविजगत सदैव से ही हमारे स्थूल संसार से विभिन्न रहा है।

जनतावाद और यथार्थवाद के इस युग में यदि कवियों के परंपराप्राप्त विशेषाधिकार छिन रहे हैं तो यह समय की ही गति है। परंतु साहित्य कला का स्वरूप इस छीना-झपटी में विकृत न हो जाए यह ध्यान तो रखना ही होगा। पुराकाल में तार्किकी और नैयायिकी ने मिलकर संस्कृत साहित्य के कलात्मक विकास में बाधा डाली थी। ऐसा बहुतों का मत है। हमें देखना होगा कि आजकल के सदाचारपरायण समालोचक अपनी सीमा का उल्लंघन कर साहित्य की श्रीवृद्धि में बाधक न बनें। साहित्य का यह सुधारक दल यदि समाज सुधारक लोगों की तरह अपना दिशा-ज्ञान भूल जाएगा तो अनिष्ट की संभावना होगी। साहित्य की परिमार्जित सरणियां साहित्य समीक्षकों की उड़ाई धूल से आच्छन्न न हो जावें इसके लिए सचेष्ट रहना होगा। 'राम नाम का भजन करो, बरत करो तुम एकादशी' के ढंग का धर्म प्रचार यदि साहित्य में प्रसार पावेगा तो हमारी साहित्यिक-संस्कृति अपनी शालीनता खो बैठेगी।

सदाचार से अधिक हमें साहित्य कला का ध्यान है। उपयोगिता की दृष्टि से ही नहीं, सौंदर्य सृष्टि की दृष्टि से भी साहित्य निर्माण स्वतः एक सदाचार है। बाह्य व्यवहार संबंधी सदाचार तो इस दूसरे साहित्यसदाचार की अपेक्षा कम ही महत्व रखता है। चरित्र संबंधी विशेषताएं भी साहित्य-चरित्र के सामने दब जाती हैं। कवि का यह दोहरा अस्तित्व कल्पना और प्रतिभा के संयोग से उसे मानव समाज की श्रेष्ठ द्विज श्रेणी में रखने में समर्थ है। कवियों को सचेष्ट होकर अपने साहित्यचरित्र का उत्कर्ष साधन करना चाहिए। भाषा शास्त्र और काव्य शास्त्र का उन्नयन करते हुए यदि नैतिक स्खलन भी होंगे तो समाज पीढ़ी-दो पीढ़ी में उन्हें क्षमा कर देगा। प्राचीन काल के कवियों का हम सम्मान करते हैं जिनमें अधिकांश के व्यावहारिक सदाचार और चरित्र का हमें कोई पता नहीं।

जब कवि का साहित्यिक सदाचार भंग हो तब समीक्षक उसका प्रतिवाद कर सकता है। यदि कवि की उच्छृंखल और हीन प्रकृति का प्रतिबिंब उसकी रचनाओं को भी ग्रस्त करने लगे, यदि उसका साहित्यिक संयम उसके नैतिक असंयम से पराजित हो जाए, तब समालोचकदल आंखें दिखा सकता है, अन्यथा समीक्षा की कोई ऐसी पद्धति नहीं है जो उसे दोषी ठहरा सके।

वर्तमान युग जनतावाद का है तो साथ ही, वह स्वाधीनता का युग भी है। वाणी के प्रकाश (Freedom of speech) के लिए आज अधिक से अधिक सुभीते हैं। यह यदि विशेष अधिकारों का युग नहीं है तो भी अधिक से अधिक व्यक्तिगत अधिकारों का युग है। साहित्य समीक्षकों को इस तथ्य पर विचार रखना चाहिए।

सदाचार तो जीवन से दूध-मिश्री की तरह मिला होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की भांति कवि के जीवन संघटन में सदाचार एक अंतरंग वस्तु है। कवि के अनेक अवयवों के साथ सदाचार का भी गठन हम उसकी काव्यवस्तु में देखें। कल्पना, भावना, विचारशक्ति आदि जो कवि की विशेषताएं हैं उनके निर्माण में उसके आचार को एक सीमित स्थान प्राप्त हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साहित्य का प्रभाव बहुत कुछ उसके सौंदर्य के कारण विस्तृत होता है। शब्द-सौंदर्य और भाव-सौंदर्य के साथ साहित्यकार को चित्र सौंदर्य की सृष्टि करनी पड़ती है। इस सौंदर्य का एक रूपक ऐसा होता है जो कुछ सदाचारी समीक्षकों को पसंद नहीं पड़ता। महात्मा तुलसी दास जैसे कवि ने भी अपने आराध्य देव राम की चिरकिशोर, काममदमोचन, सुंदर मूर्ति ही अंकित की है परंतु सदाचारी आलोचकों को उसमें भी उपवाद ढूंढ़ते देखा गया है। ऐसे आलोचकों से साहित्य को सदैव सावधान रहना होगा नहीं तो उसके अंगभंग हो जाने की आशंका है।

आज के जमाने में हम साहित्यकार के लिए विशेषाधिकारों की मांग तो नहीं तो रख सकते पर साहित्यिक कर्तव्य पालन के लिए हमें उसे अधिक से अधिक आचरण की स्वतंत्रता देनी होगी।

(रविवार, 27 मार्च 1932)

# मुस्लिम मत

अफसोस की बात है कि मुस्लिम समाज में कुछ ऐसी संस्थाएं कायम हो गई हैं जो उस समाज की प्रतिनिधि होने का दम भरती हैं और जिनके प्रतिनिधित्व को ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार भी पिछले गोलमेज सम्मेलनों से लेकर अब तक स्वीकार करती जाती हैं। मनुष्यों की तरह संस्थाओं में भी पतन के भयावह परमाणु प्रवेश कर जाते हैं जो समाज के शुद्ध जीवन के लिए अनिष्ट के हेतु होते हैं। पूर्व अर्जित प्रतिष्ठा के कारण ये पतनोन्मुख संस्थाएं पर्याप्त समय तक अबोध जनता को अपने साथ लगाए रहती हैं और वह धोखे में पड़कर गड्ढे में गिरती रहती हैं। अखिल भारतीय खिलाफत कमेटी अपने प्रारंभिक काल में एक जीवनमय और प्रगतिशील संस्था थी जिसने कांग्रेस के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया था। उस समय डॉक्टर अंसारी और अली बंधुओं आदि के नेतृत्व में वह राष्ट्रीयता की सच्ची प्रतिमा थी परंतु वर्तमान समय में उसकी हालत चिंतनीय हो रही है। आज वह जीहुजूर, 'फिरकापरस्त' मुसलमानों के गुट्ट से नियंत्रित हो रही है। इसी प्रकार 'अखिल भारतीय मुस्लिम कॉन्फ्रेंस' नाम की संस्था के संस्थापकों में कुछ महानुभाव थे परंतु आज उसकी कैसी अवस्था हो गई है यह उसके लाहौर वाले पिछले अधिवेशन के विवरण और पास हुए प्रस्तावों से अनुभव किया जा सकता है। *ट्रिब्यून* पत्र के संवाददाता ने पत्र को यह सूचना भेजी है कि सम्मेलन में बहुत थोड़ी उपस्थिति थी, व्यवस्थासभाओं के कुछ नामजद सदस्य, कुछ दकियानूसी अखबारों के संपादक, कुछ सरकारी ठेकेदार वहां मौजूद थे और अहरारी दल के प्रवाह के कारण उन्हें झटपट, बिना बहस-मुबाहिसा के सब प्रस्ताव पास कर लेने पड़े। परंतु जब ये ही प्रस्ताव ब्रिटिश प्रधानमंत्री के पास तार द्वारा सात करोड़-मुस्लिम समाज के रूप में भेजे जाएंगे और नादान मुस्लिम जनता में कट्टर मुस्लिम अखबारों द्वारा उनका भारत व्यापी प्रचार किया जाएगा तब सत्य का जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपमान होगा वह तो होगा ही, मुस्लिम समाज और सारे देश की अपार हितहानि होगी।

जब सर मुहम्मद इकबाल जैसे भारत प्रसिद्ध कवि और विचारक इन सम्मेलनों के अगुआ बनते हैं और ऐसे प्रस्तावों के पास करने में हाथ बंटाते हैं, हठात् यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या देश के इतने विशाल मुस्लिम-समाज में ऐसे नेताओं का नितांत अभाव हो गया है जो जाति को और देश को नेक सलाह दे सकें और उसे पतन के कगार से उबार सकें। क्या स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता की बीसवीं सदी के इस चरण में भी ऐसी घटना के लिए गुंजाइश रह गई है कि स्वार्थी समुदाय राष्ट्र हित को बेच डाले और कोई जोरदार आवाज उठाकर उसका प्रतिवाद न कर सके? जब सारे संसार में सहयोग और समन्वय की पुकार मची हुई है तब सर मुहम्मद इकबाल के इस कथन पर दुनिया क्या राय कायम करेगी कि मुसलमान सबसे अलग होकर अपनी ढाई चावल की खिचड़ी पकावें। क्या भारत के मुस्लिम समाज का यही उच्चतम विवेक है जो अन्य जातियों की विचारधाराओं के समकक्ष रखे जाने के लिए उपस्थित किया जा सकता है? किसी भी व्यक्ति को अपने मुसलमान देशवासियों की इस शोचनीय अवस्था पर ग्लानि हुए बिना नहीं रह सकती।

इस दयनीय दशा का कारण क्या है? कारण अधिकांश में मुस्लिम जनता की सुप्तावस्था है जो अपना भला-बुरा नहीं पहचान सकती। सामाजिक रूढ़ियों ने उसे इतना विनीत और बुद्धिहीन बना दिया है कि वह धर्म के नाम पर अत्यंत कड़वी और नाशकारी वस्तु भी ग्रहण कर लेती है। कट्टरता की मात्रा इतनी है कि नवीन विचारों की उद्भावना करने और उन्हें ग्रहण करने की क्षमता उसमें बहुत थोड़ी है। संतोष का विषय है कि मुस्लिम समाज में यह क्षमता अब थोड़ी-बहुत उत्पन्न हो रही है। इसे सब प्रकार से पनपने देने का अवसर मिलना चाहिए। इसके पनपने में एक बड़ी बाधा पिछले गोलमेज सम्मेलन में मजहबपरस्त मुसलमानों की भरमार कर देना था। अभी हाल में भी देहली के राजनीतिक क्षेत्र में यह अफवाह उड़ी कि वाइसराय महोदय राजनीतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालने विलायत उड़ेंगे। इस अफवाह के साथ यह बात भी जोड़ी गई थी कि उपर्युक्त मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के अल्टिमेटम के कारण भारत सरकार चिंतित हो रही है। जब कांग्रेस जैसी शक्तिशाली और राष्ट्रव्यापी संस्था के विकट आंदोलन को गवर्नमेंट दबाने के लिए तत्पर है तब इस दुर्बल मुस्लिम दल की धमकी से चिंतित कैसे हो सकती है?

इस कट्टर और राष्ट्रविरोधी मुस्लिम समाज की हरकतें देखकर हिंदू समाज के एक भाग में यह शंका उठ रही है कि हिंदुओं कि उदारता और राष्ट्रीय भावना से लाभ उठाकर मुसलमान अपना फायदा उठाना चाहते हैं। वे एक ओर सरकार से अधिक से अधिक फायदा उठाने की कोशिश में हैं और दूसरी ओर हिंदुओं से। परिस्थिति वास्तव में कुछ ऐसी ही विषम हो रही है। हिंदू समाज के इस विभाग का यह मत हो रहा है कि हिंदुओं को राष्ट्रीय आंदोलन बंद कर अपना घर संभालना चाहिए। परंतु हमारे विचार में यह एक दुर्बल भावना का परिणाम है। वास्तविक राष्ट्रीयता इस बात में है कि हम स्वयं राष्ट्रवादी बनें और भटकी हुई मुसलमान जनता को भी बनाएं। यही सच्चे हिंदू की शिक्षा भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# एकेडमी का प्रतिवाद

स्थानीय हिंदुस्तानी एकेडमी के मंत्री महाशय का यह प्रतिवाद हम इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं जो उन्होंने हमारे 20 मार्च के 'हिंदुस्तानी एकेडमी' शीर्षक अग्रलेख का किया है। इस बीच में गंगाजी का बहुत सा जल पुल पारकर समुद्र के पास पहुंच गया है और *भारत* में भी 'हिंदुस्तानी एकेडमी' पर एक दूसरी लेखमाला निकल चुकी है। इस दूसरी लेख माला को नजर में रखते हुए मंत्री महाशय का यह प्रतिवाद प्रायः निस्सार हो जाता है। पर उस विभाग के प्रधान की हैसियत से भेजा गया उनका यह लेख छप जाने के योग्य है। समाचारपत्र के संपादकों की टिप्पणियां सूत्र-रूप में होने को बाध्य रहती है क्योंकि उन्हें थोड़ी जगह में बहुत कुछ कहना होता है। इसलिए उन टिप्पणियों के साथ न्याय तभी हो सकता है जब उन्हें सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए और उनका अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा की जाए। एकेडमी के मंत्री महाशय के इस प्रतिवाद में वैसा करने का कष्ट नहीं उठाया गया, इसका हमें खेद है। तथापि हमें संतोष है कि हमारे ही पत्र में दूसरी लेखमाला भी निकल चुकी है जो सूत्र रूप में लिखे गए हमारे उपर्युक्त अग्रलेख की बहुत कुछ विवृति करती है। हम उसकी ओर मंत्री महाशय का ध्यान आकृष्ट करते हैं और संक्षेप में ये जिज्ञासाएं हैं—

1. क्या एकेडमी की ओर से नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन को निमंत्रित किया गया था और क्या उन संस्थाओं ने अपने प्रतिनिधि एकेडमी के जलसे में भेजे थे? यदि नहीं तो मंत्री महाशय ऐसा आभास क्यों देते हैं कि पं. रामनारायण मिश्र सभा के सभापति के रूप में और डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी आदि सम्मेलन के मंत्री के रूप में पधारे थे?
2. क्या पं. रामनारायण मिश्र एकेडमी के को-आप्ट किए हुए मेंबर नहीं हैं और क्या वे उसी हैसियत से, न कि नागरी प्रचारिणी के सभापति की हैसियत से, उपस्थित नहीं थे? उन्होंने जलसे में कितना प्रमुख भाग लिया? क्या उन्होंने कोई भाषण दिया? क्या उसमें उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति होने के कारण सभा की नीति की कोई घोषणा की?
3. क्या राय साहब बाबू श्यामसुंदर दास इतने अस्वस्थ थे कि वे एकेडमी के जलसे में सम्मिलित नहीं हो सकते थे? हमें विश्वस्त सूचना मिली है कि ऐसी बात नहीं थी।
4. आप लिखते हैं कि मुझे यह मालूम नहीं है कि झांसी-सम्मेलन के संपादक-परिषद के सभापति ने एकेडमी के संबंध में क्या कहा था। क्या इससे साहित्य सम्मेलन के संबंध में आपकी उदासीनता नहीं प्रकट होती?
5. जब एकेडमी की स्थापना हुई थी तब तत्कालीन गवर्नर महोदय ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि एकेडमी का लक्ष्य हिंदी और उर्दू के विकास में सहायता पहुंचाना है। पर क्या दूसरे अधिवेशन में अध्यक्ष सर शाह मुहम्मद सुलेमान साहब ने हिंदी-उर्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को मिलाने की अपील नहीं की? क्या उस अधिवेशन में प्रचार का यही एकमात्र प्रधान विषय नहीं रहा? सरकारी शिक्षा विभाग के बजट में क्या यह नहीं लिखा कि एकेडमी हिंदी-उर्दू को मिलाने का मंसूबा रखती है? क्या स्वयं मंत्री महोदय ने पिछले वर्ष एक निहायत कृत्रिम और अनहोनी भाषा में अपनी रिपोर्ट नहीं पढ़ी और उसे ही 'आदर्श हिंदुस्तानी' बनने का आभास नहीं दिया। पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. रामनरेश त्रिपाठी आदि को पुरस्कार देकर जो लेख लिखाए गए हैं उनकी व्यंजना क्या है? ऐसी अवस्था में जब आप कहते हैं कि हमारा कहना ठीक नहीं और एकेडमी ने अभी कुछ निश्चय नहीं किया तो आप किस मनुष्य से इस पर विश्वास करने की आशा रखते हैं?

इसके अतिरिक्त आपने श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा की साहित्य सम्मेलन संबंधी कटूक्ति को जिस रूप में समझाया और तीसरे जलसे की समीक्षा की उसे मानने को हम तैयार नहीं हैं। यदि आप दूसरे और तीसरे सम्मेलनों के हिंदी विभाग में आए हुए प्रतिष्ठित हिंदी सेवियों की सूची प्रकाशित करें तो पाठक आप से आप समझ लेंगे।

हमारा यह कहना कुछ भी अस्पष्ट नहीं है कि जब तक एकेडमी भाषा के झगड़े से अलग नहीं होती तब तक लिपि, शैली, व्याकरण आदि के संबंध में महत्वपूर्ण विवेचन नहीं करा सकती। इन सबसे भी ऊपर उठकर साहित्योत्कर्ष का साधन करना उसके लिए और भी दूर की मंजिल है। यदि इस संबंध में आपको संदेह हो तो आप एकेडमी के पिछले तीन वर्षों के क्रियाकलाप का हाल देख लीजिए, और संदेह को निवृत कीजिए।

यह तो एकेडमी को ही सोचना चाहिए कि वह इस जनतावाद के युग में किस प्रकार अधिक आकर्षण उत्पन्न कर सकती है? हमने तो यह दिखाया था कि वह इस समय अधिक से अधिक घिरी हुई और सिकुड़ी हुई है। इसके लिए उसका विधान जिम्मेदार है या नीति जिम्मेदार है, इसका लेखा हम नहीं मांग रहे।

अंत में हम एकेडमी के आय-व्यय विभाग, व्यवस्था विभाग और विशेषकर प्रकाशन विभाग के संबंध में कितने ही महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहते हैं जिनमें दो-तीन ये हैं—

*हिंदुस्तानी* पत्रिकाओं में वार्षिक कितना खर्च होता है और उसके लेखकों को किस हिसाब से पुरस्कार दिया जाता है?

शेष प्रश्न भी हम यथावसर पूछने का विचार करते हैं।

## व्यापार संघ की बैठक

अखिल भारतीय व्यापार संघ का पांचवां वार्षिक अधिवेशन नई दिल्ली में हुआ जिसकी विशेषता यह थी कि अपने पूर्व निश्चय के अनुसार सरकारी प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हुए। परंतु देश भर के प्रमुख व्यापारी उसमें उपस्थित थे और उन्होंने मिलकर व्यापारिक, आर्थिक और प्रसंगवश राजनीतिक अवस्था पर विवेचन किया। भारत में बनिया बुद्धि प्रसिद्ध ही है और यूरोप में भी चतुर ब्रिटिश जाति को बनियों का राष्ट्र कहा जाता है। इसलिए इस सम्मेलन में लिये गए विचारों और पास हुए प्रस्तावों पर मनन करना शासकों के लिए भी उतना ही जरूरी था जितना साधारण जनता के लिए। नौकरशाही ने अधिवेशन में सम्मिलित न होने के अपने निर्णय से लाभ उठाने की बनिया बुद्धि नहीं दिखाई और न यह आशा की जा सकती है कि अब भी वह उसके निर्णयों पर ठंडे दिमाग से विचार करेगी। अध्यक्ष श्री जमाल मुहम्मद साहब की वक्तृता में एक प्रकार से वर्तमान स्थिति की व्यापारियों की मनोवृत्ति का निष्कर्ष प्रकट किया गया है और देश की दशा सुधारने के लिए वे उपाय बतलाए गए हैं जो वास्तव में अनिवार्य हैं। दमनचक्र के द्वारा एक प्रकार की राजनीतिक शांति भले ही प्राप्त कर ली जाए पर व्यापार की उन्नति तो शांति के समय में ही हो सकती है। इस सत्य पर जितना अधिक जोर दिया जाए, कम ही है। एक ओर विधानप्रिय दल कह रहे हैं कि विधान के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए सरकार को अपने आर्डिनेंस छोड़कर स्वयं विधानप्रिय बनना चाहिए। दूसरी ओर व्यापारी कह रहे हैं कि व्यापार की उन्नति के लिए दमनचक्र को दूर करना चाहिए। ये दोनों ही आवाजें एक स्वर में उठ रही हैं पर सरकार तक उनकी भनक नहीं पहुंचती।

व्यापारियों के अधिवेशन में भारतीय जनता के लिए सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा यह है कि वह अपने घर का सोना बाहर भेजना बंद कर दे और देशी रोजगार की उन्नति करे। पिछले दिन पूज्य पं. मदनमोहन मालवीय ने इस संबंध की एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी पर उसी बीच वाइसराय महोदय ने अपने भाषण में यह घोषणा की कि स्वर्ण निर्यात भारत के ही हित में है। श्री जमाल मुहम्मद ने अपने भाषण में स्पष्ट रीति से यह दिखाने की चेष्टा की है कि भारत से जो सोना बाहर जा रहा है वह दरिद्र जनता की कौड़ी-कौड़ी करके जोड़ी हुई संपत्ति है और अर्थकष्ट के कारण जनता उसे बेचने को विवश हो रही है। यह किसी व्यावसायिक लाभ की दृष्टि से निर्यात नहीं हो रहा, केवल विवश होकर किया जा रहा है। इतने अधिक परिमाण में सोना कभी बाहर नहीं गया। सरकार को चाहिए कि वह उसे देश में रहने देने की व्यवस्था करे, पर वह उल्टा उसे बाहर भेजने की सिफारिश करती है।

बाहरी माल के आयात में कमी होने का प्रधान कारण यह है कि जनता की क्रय शक्ति अधिकाधिक टैक्स लगाकर नष्ट कर दी गई है। फिर भी सरकारी अर्थ मंत्री नए टैक्स बढ़ाने में तत्पर ही रहते हैं। यह देश का आर्थिक शोषण है और कुछ नहीं। व्यापारी मंडल ने इसकी ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है और सर जॉर्ज शुस्टर की अर्थनीति की खरी आलोचना की है। इस प्रकार की आलोचना व्यवस्था-सभाओं और परिषद में भी की जा चुकी है पर सरकारी नीति अपने स्वार्थ के रास्ते से नहीं डिगती। वह आगे भी डिगेगी इसका कोई आसरा नहीं।

(गुरुवार, 31 मार्च 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# स्वदेशी से शंका

हमारे देश में अब तक स्वदेशी की जड़ मजबूत होकर जम नहीं पाई है इसलिए उसके प्रचार का आंदोलन करना पड़ता है। स्वदेशी वस्तुएं अब भी विदेशी की अपेक्षा कीमत में अधिक और रूप-रंग, गुण में उनसे कम होती हैं, यही सबसे बड़ी बाधा है जो उचित साधन मिलने से दूर हो सकती है, जिनमें एक बड़ा साधन अधिक से अधिक स्वदेशी खरीदकर उसे प्रोत्साहन देना है। जो स्वदेशी वस्तुएं विदेशी वस्तुओं की टक्कर लेने लगी हैं वे विदेशी वस्तुओं का आप से आप बहिष्कार करने में समर्थ हो गई हैं और उनके लिए प्रचार-आंदोलन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रही। उदाहरण के लिए कुछ प्रसिद्ध देशी कंपनियों के साबुन। परंतु ऐसी वस्तुएं बहुत थोड़ी हैं। अधिकांश के लिए अभी प्रचार करने, स्वदेशी के नाम पर त्याग करने, राष्ट्रीयता की भावना पर जोर देने की आवश्यकता पड़ती है। स्वदेशी वस्त्रों के लिए तो ऐसा विशेष रीति से करना पड़ता है। यह स्वाभाविक बात है कि राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से स्वदेशी के प्रचार का कार्य किया जा रहा है यद्यपि उचित यह है कि वह प्रत्येक देशवासी द्वारा किया जाए। कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था है और इस समय वह युद्धनीति पर चल रही है। पर इसका यह मतलब नहीं कि उसे स्वदेशी का प्रचार करने का अधिकार न हो। उसने विदेशी-बहिष्कार को प्रदर्शनकारी (Demonstrative) नीति से जनता में प्रभाव उत्पन्न करना चाहा पर वर्तमान आर्डिनेंस राज्य में वह जुर्म करार दिया गया है। अनेक स्थानों में कांग्रेस की ओर से स्वदेशी-प्रदर्शनियां खोली गईं पर सरकार द्वारा वे भी बंद कर दी गईं। उसके बाद अब देश भर में 'स्वदेशी संघों' की स्थापना हो रही है जो स्वदेशी के प्रचार के लिए जुलूस निकालने और प्रदर्शन करने का कार्य करना चाहते हैं। इन स्वदेशी संघों के अध्यक्ष और मंत्री आदि अधिकांश में नर्म दल के नेतागण हैं जो स्वदेशी को केवल आर्थिक समस्या समझने और दरिद्र जनता के लिए उसका उपयोग बतलाते हैं। पर कुछ सरकारी कर्मचारियों को उनमें भी कई स्थानों में कांग्रेस-आंदोलन का ही भूत दिखाई पड़ा है।

सवाल यह है कि स्वदेशी-आंदोलन के प्रति सरकार किस प्रकार का बर्ताव करना चाहती है। वाइसराय महोदय भारतीय व्यापारी संघ को आश्वासन देते हुए कह चुके हैं कि वे स्वदेशी को सहायता पहुंचाना चाहते हैं। पर क्या केवल इस शंका पर कि स्वदेशी के साथ कांग्रेस का संबंध है, सरकार उसे दबाना चाहेगी? क्या ऐसा करना उचित होगा? कांग्रेस को सरकार एक अराजक संस्था करार दे चुकी है तो क्या न्यायसम्मत स्वदेशी आंदोलन में भी उसे हाथ बंटाते नहीं देख सकती? यदि कांग्रेस की कुछ कार्रवाइयां गैरकानूनी हैं तो क्या उसकी सब कार्रवाइयों को गैरकानूनी समझा जाएगा अथवा उसके संपर्क से ही एक कानूनी कार्रवाई गैरकानूनी बन जाएगी? विदेशी दुकानों पर पिकेटिंग करने के विरुद्ध तो सरकार की यह दलील है कि उससे व्यापारियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है पर स्वदेशी के प्रचार में यदि कोई जुलूस निकाला जाता है और सभा की जाती है तो इसमें किसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



छिनती है? और यदि देश का सामाजिक, औद्योगिक, आर्थिक अथवा किसी न्यायोचित कार्य से कांग्रेस का कुछ भी संबंध हो गया तो वह कार्य सरकार द्वारा रोक दिया जाएगा? वर्तमान स्वदेशी आंदोलन अधिकांश में व्यवस्थाप्रिय देशभक्तों की प्रेरणा से उठाया गया है जिसके प्रमुख पूज्य पं. मदनमोहन मालवीयजी हैं। हमारे प्रांत के भिन्न-भिन्न जिलों के स्वदेशी संघों के अध्यक्ष, मंत्री और कार्यकारिणी के सदस्य प्रायः सब नर्म दल के नेता हैं। 'स्वदेशी संघ' कांग्रेस संस्थाएं नहीं हैं, और न कांग्रेस का वर्तमान कार्यक्रम उस दिशा में काम करने का विशेष आग्रह करता है। तब क्या व्यक्तिगत रीति से कुछ कांग्रेस वालों के स्वदेशी संघों में भाग लेने मात्र से ही सरकार उन संघों को शंका की दृष्टि से देखने लगेगी?

वास्तविक बात यह जान पड़ती है कि 'स्वदेशी संघ' में यदि कांग्रेस के कुछ नेता या जनता भाग ले रही है तो वह कांग्रेस का वह भाग है जो 'कांग्रेसी माडरेट' कहा जा सकता है और जिसे जेल जाने की विशेष उत्सुकता नहीं और न इच्छा ही है। व्यक्तिगत कारणों से या विचार मतभेद से कांग्रेस के भीतर ऐसे व्यक्तियों का होना स्वाभाविक ही है जो संघर्ष प्रिय नहीं हैं, जेल नहीं जाना चाहते और देश का काम भी करना भी चाहते हैं। यदि वे स्वदेशी प्रचार के आंदोलन में शरीक होते हैं तो सरकार को उनका स्वागत करना चाहिए क्योंकि वे सरकार द्वारा 'गैरकानूनी' करार दी गई कार्रवाइयों से अलग होते हैं। सरकार यदि स्वदेशी में कांग्रेस का हाथ देखकर सशंक होती है तो जनता सरकारी कार्रवाई में ब्रिटिश स्वार्थ की नीति देखकर सशंक हो सकती है, शंका किसी पक्ष में अच्छी नहीं। इस संबंध में सरकार को स्पष्टनीति का अवलंबन करना चाहिए और शीघ्र ऐसा प्रबंध करना चाहिए जिससे स्वदेशी-आंदोलन के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा न डाली जा सके, चाहे उस आंदोलन को चलाने वाले हिंदू हों या मुसलमान, नर्म दल हो या कांग्रेस।

## पं. पद्मसिंह शर्मा का देहावसान

नायकनंगला, जिला बिजनौर से विशेष शोकजनक समाचार आया है कि हिंदी के चिरपरिचित विद्वान पं. पद्मसिंह शर्माजी का अचानक प्लेग के आक्रमण से देहावसान हो गया। अभी उसी दिन शर्माजी हिंदुस्तानी एकेडमी के सालाना जलसे में उपस्थित थे, जिसमें उन्होंने एक निबंधपाठ किया था जो एकेडमी द्वारा पुरस्कृत हुआ था। इसके बाद ही शर्माजी अपने घर गए और वहां उनकी मृत्यु हो गई।

पं. पद्मसिंह शर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। उनकी प्रतिष्ठा उनके महत्व से भी अधिक थी। हिंदी में ऋषि दुर्वासा की भांति उनका सम्मान होता था। हिंदी भाषा को उनके द्वारा शक्ति मिली और हिंदी साहित्य को समालोचनात्मक निबंध और जीवनचरित्र मिले। उनके *सतसई संहार* में भाषाशैली का उग्ररूप और तेज प्रवाह दीख पड़ता है। यही हिंदी की उनकी सबसे बड़ी देन है जिसके लिए हिंदी उनकी कृतज्ञ रहेगी। इसी शैली में उनकी आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्यक्त हुई है इसलिए इसी में उनका स्थायित्व है। जिसे हिंदी में 'कटाक्ष' ( Soathing criticism) की शैली कह सकते हैं शर्माजी की वही शैली थी। 'बिहारी' की आलोचना करके उन्होंने प्राचीन हिंदी साहित्य की ओर एक अभिनव रुचि उत्पन्न करने में योग दिया जिसका फलाफल भविष्य में अधिक दीख पड़ेगा। अलंकारप्रियता में वे स्वर्गीय लाला भगवानदीन और मिश्रबंधुओं की जैसी दृष्टि रखते थे और बारीक खयाली तथा मुहावरेबाजी की सराहना में उनसे भी आगे थे। आधुनिक साहित्य-समीक्षा में इन दोनों विशेषताओं का सम्मान कम है पर यह प्रतिक्रिया का युग समाप्त होने पर उनका उचित सम्मान किया जाएगा।

यह विशेष विवेचन का प्रसंग नहीं है। शर्माजी के असमय अवसान से हिंदी संसार में विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ है। हम इस अवसर पर शर्माजी को श्रद्धा से स्मरण करते और उनकी शुभगति की आकांक्षा करते हैं।

## प्रेमचंदजी का 'परितोष'

जिस साहित्य के मूल में यह साधनामय व्यक्तित्व नहीं है वह संपूर्ण वाणी विलास है। वह लतीफा हो या ब्रह्म मीमांसा। उसकी उपयोगिता हम मानते ही नहीं, चाहे बाहर से उसमें वह दीख भी पड़ती हो। बहुत से कनकटे ब्रह्म-ब्रह्म रटा करते हैं और मूर्ख समाज में उसकी उपयोगिता भी हो जाती है पर वह वास्तविक उपयोगिता नहीं। उपयोगिता की परीक्षा की एक सीधी कसौटी यह है कि हम देखें कि कोई कृति अपने कृतिकार के विकास में कहां तक सहायक हो सकती है। कनकटे के ब्रह्म-ब्रह्म से उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। वह अपने श्रोता समाज को धोखा देता और अपने को गड्ढे में गिराता है। यही उसकी वास्तविक उपयोगिता है। यही कसौटी साहित्य की भी हो सकती है। कनकटे को किसी भले काम से लगाना चाहिए। साहित्यकार को भी दूसरों की उपयोगिता का ढोंग न कर अपनी उपयोगिता का रास्ता पकड़ना चाहिए। तुलसीदास का *रामचरितमानस* उनके ही 'स्वांतः सुखाय' है। उसकी उपयोगिता उन्हें ही संत बनाने में थी। दूसरों की बात दूसरे जानें। कोई गाली देता है, कोई पूजा करता है। महात्मा गांधी की आत्मकथा उनके ही *सत्य का प्रयोग* है। इससे अधिक हम क्या कहें?

'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' का लतीफा हिंदी संसार में खूब चल गया है। यह बंगाल के ब्राह्म समाज की उद्भावना है जिसे महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर महाशय के द्वारा बड़ा विस्तार प्राप्त हुआ है। कुछ लोग इसे उपनिषदों से उत्पन्न बतलाते हैं। पर उपनिषदों में वह मेरे देखने में नहीं आया। तथापि हिंदी में वेदवाक्य से बढ़कर उसकी मान्यता है और प्रेमचंदजी को भी उसका व्यवहार करना भाता है। इसका अर्थ समझने में हमें अब तक द्विविधा ही है। यदि इसका अर्थ यह है कि जो सत्य है वही शिव है और वही सुंदर भी है तो यह सत्य शब्द की व्याख्या मात्र हुई। यह साहित्यसमीक्षा की कसौटी तो नहीं हुई। यदि इसका अर्थ यह है कि जो सत्य, शिव और सुंदर की अभिव्यक्ति साहित्य का लक्ष्य है तो यहां बहुत कुछ आरोप करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पड़ा। अर्थशैथिल्य स्पष्ट ही है। प्रेमचंदजी इसका व्यवहार इसी दूसरे अर्थ में करते हैं। उनका कहना है कि साहित्य का मूलाधार सत्य, सुंदर और शिव है। इस 'शिव' शब्द को हम व्यर्थ समझकर निकाल देना चाहते हैं। सत्य और सुंदर पर्याप्त हैं। जो सत्य और सुंदर हैं वे 'शिव' होंगे ही। 'शिव' को बाहर से लाने की आवश्यकता नहीं। बाहर से लाया हुआ 'शिव' साहित्य का विलास (Luxury) है। हम उसकी कीमत नहीं चुका सकते। बाहर से लाने का ही नतीजा है कि साहित्यकार दूसरों का कल्याण करने के धोखे में अपनी ही सत्य-साधना भंग करते, अपने ही विकास में बाधा डालते हैं।

विवाद के प्रसंग में एक जगह प्रेमचंदजी सत्य के बहुत नजदीक पहुंच गए हैं। वहां उनमें और मुझमें केवल शब्दों के स्वाघात (Accent) का भेद रह गया है। परंतु प्रेमचंदजी समझते हैं कि यहां वे मुझसे सबसे अधिक दूर हैं क्योंकि उन्होंने यह उदाहरण दो बार उपस्थित किया है। वे लिखते हैं—

1. 'अब रह गई यह बात कि हिंदी में ऐसे लिखने वाले कितने हैं जिनकी जीवनी हिंदी जनता की पथनियामिका बन सकती है। आपका खयाल है, एक भी नहीं, मेरा खयाल है कि मेरे घर के मेहतर के जीवन में भी कुछ ऐसे रहस्य हैं जिनसे हमें प्रकाश मिल सकता है। अंतर यही है कि मेहतर में साहित्यिक बुद्धि नहीं, लेखक में विवेचन शक्ति होती है।'
2. 'एक मालूमी मजदूर के जीवन में भी खोजने से कुछ ऐसी बातें मिल जाएंगी जो अमर साहित्य का विषय हो सकती हैं। केवल देखने वाली आंख और लिखने वाली कलम चाहिए।'

इन दोनों बातों से मेरा कोई आक्षेप नहीं है कि आपके घर का 'मेहतर' और एक 'मालूमी किसान' के जीवन में अमर साहित्य का विषय बनने की क्षमता है। मैं आपकी इन शर्तों को भी सही समझता हूं कि देखने वाली आंख और लिखने वाली कलम अथवा विवेचन शक्ति की आवश्यकता है। मैं केवल यह चाहता हूं कि आप इन आवश्यकताओं के नीचे सौ-सौ सतरें खींच दें ताकि आपके हृदय में भी एक लकीर खिंच जाए कि ये आवश्यकताएं कितनी आवश्यक हैं। मुझ से यदि आप अपना पक्ष समर्थन कराना चाहते हैं तो मैं तो यहां तक कहूंगा कि आपके मेहतर के जीवन में ऐसे रहस्य हैं जिनसे इतना प्रकाश मिल सकता है जितना महान छत्रधारी सम्राटों के जीवन से मिल सकता है। पर आपको भी यह मानना पड़ेगा कि उस मेहतर के जीवनरहस्य से प्रकाश पाने के लिए अपना जीवन भी प्रकाशमय बनाना होगा। हिंदी में इस प्रकाशमय जीवन की ही तो कमी है।

इसमें आश्चर्य क्या है? यह तो एक व्यावहारिक सत्य है। जो विषय कठिन है उसे कठिन कहना आदर्शवाद नहीं, न वह आत्मविरुदावली है। हम जड़ व्यक्तित्व को मिटाने का निवेदन करते हैं आप उसे 'हमचुनी दोगरे नेस्त' समझते हैं। हम साहित्य की साधना का उल्लेख करते हैं, आप उसे मेरी महत्वाकांक्षा बतला देते हैं। हम क्रम-विकास पर विश्वास रखते हैं, आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मुझे गुफा में भेज देना चाहते हैं। हिंदी में साहित्य समीक्षा हाल में शुरू हुई है। इसलिए नई बातें कही ही जाती हैं। पर आप प्रत्येक नई बात को अहंकार का महान कुटिल रूप ठहराते हैं। क्या इस तरह इल्जाम लगाकर आप साहित्य का विकास करेंगे अथवा क्या मुझे अपने विचार प्रकट करने से रोक देंगे?

सिद्धांतों की चर्चा इतनी ही है। इसके अतिरिक्त प्रेमचंदजी ने अपने 'आत्मकथांक' के समर्थन में कुछ ऐसी बातें कहीं है जो केवल भ्रम हैं। उदाहरण के लिए वे एक स्थान पर यह आभास देना चाहते हैं कि महात्मा तुलसीदास ने जो कुछ लिखा 'आत्मकथा' ही लिखा। यही नहीं आपने तो एक तरफ *उपनिषद, वेद, रामायण, महाभारत* और दूसरी तरफ कालिदास और माघ, भास और बाण, जो कुछ गिनाते बना सब आत्मकथा की श्रेणी में गिना दिया। यह इस आधार पर कि सबने अपने-अपने अनुभव व्यक्त किए। पर जब प्रेमचंदजी 'क्या आत्मकथा साहित्य का अंग है या नहीं' शीर्षक पहले लेख में 'आत्मकथा' (Autobiographies) को साहित्य के एक विशेष अंग के रूप में ग्रहण कर तर्क आरंभ कर चुके हैं तब अन्यत्र इस प्रकार की विज्ञप्ति करने का अधिकार नहीं रखते। जब 'आत्मकथा' का एक अर्थ (Connotation) आप प्रारंभ में मान चुके हैं तब दूसरे अर्थ को ग्रहण करने में या तो आपका अनिश्चय प्रकट होता है या वाक्छल।

अंत में मुझे यह समझकर मनोरंजन युक्त विस्मय होता है कि जिस मूलवस्तु को लेकर यह संपूर्ण विवाद हुआ वह *हंस* का तथाकथित 'आत्मकथांक' वास्तव में 'आत्मकथांक' (Autobiographies) नहीं, 'संस्मरणांक' (Reminiscences) के रूप में निकला है। यदि इसका विज्ञापन करने वाले इस विभेद का ध्यान रखकर 'संस्मरणांक' के नाम से विज्ञापन करते तो शायद इतना तूफान उठने की नौबत ही न आती। तथापि 'आत्मकथा' के विषय में प्रेमचंदजी की बातें सुनने, अपनी बातें कहने और उनके आदरणीय हिंदी सेवियों की बातें जानने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ उसका श्रेय *हंस* के तथा विज्ञापित 'आत्मकथांक' को ही है। हिंदी जनता की इस कहा-सुनी से जो मनोरंजन हुआ—और मुझे सूचना मिली है कि उसका विशेष मनोरंजन हुआ है—वह अलग है।

व्यक्तिगत संबंध को विचार कर ऊपर मैं जो कुछ कह चुका हूं आशा है उसके बाद अब मुझे प्रेमचंदजी से क्षमा-प्रार्थना की आवश्यकता नहीं रही। मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब पिछले दिन लखनऊ में दिए हुए अपने वचन के अनुसार प्रेमचंदजी प्रयाग आ कर मुझे दर्शन देंगे और मेरे अतिथि बनेंगे।

(रविवार, 10 अप्रैल 1932)

# कांग्रेस अधिवेशन

आगामी देहली कांग्रेस के लिए जमीन और सुभीते न देने की सरकारी विज्ञप्ति के बाद पं. मदनमोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मालवीयजी ने प्रेस प्रतिनिधि से यह प्रकट किया कि वे आशा करते हैं कि कांग्रेस का अधिवेशन निश्चित समय पर ही होगा। कांग्रेस की वर्तमान डिक्टेटर श्रीमती सरोजिनी नायडू भी यह प्रकट कर चुकी हैं कि सरकार की रायजनी से कांग्रेस के अधिवेशन का कोई संबंध नहीं है, यह अधिवेशन प्रतिवर्ष की भांति वार्षिक अधिवेशन है, न असाधारण न आपत्कालीन। अंतिम सूचना स्वागतकारिणी समिति के मंत्री श्री जे.एन. साहनी महोदय की भी निकल चुकी है जिसमें वे कहते हैं कि जब व्यवस्थापरिषद में सरकारी तौर पर यह कहा गया था कि राष्ट्रीय कांग्रेस गैरकानूनी नहीं है उसके पहले ही तय किया जा चुका था कि कांग्रेस का अधिवेशन किया जाएगा और अब जब शीघ्र ही सरकार अपना मत बदलकर अधिवेशन को नहीं होने देना चाहती तब भी दिन-रात अधिवशेन की तैयारी की जा रही है। कांग्रेस अधिवेशन के संबंध में अब तक भारत और विलायत दोनों में ही तरह-तरह के अटकल लगाए जाते रहे हैं पर अब मालवीय जी, श्रीमती नायडू और साहनी महोदय की विज्ञप्तियों से यह प्रकट हो गया है कि कांग्रेस का अधिवेशन सरकार से किसी गुप्त समझौते का फल नहीं था और न उसे किसी विशेष अधिवेशन का रूप देने की इच्छा थी। इस अधिवेशन के संबंध में अफवाहें उड़ाई गई थीं कि यह 'कांग्रेस माडरेटों' का अधिवेशन होगा जो कांग्रेस पर कब्जा कर लेगा और अपने उग्र पूर्व पुरुष का नर्म उत्तराधिकारी बनेगा। उत्तराधिकारी बनकर वह कांग्रेस के नाम पर सरकार से समझौते का संकेत करेगा। इसके विपरीत ऐसी अफवाह भी उड़ी थी कि देहली-अधिवेशन सरकार की इच्छा से किया जा रहा है क्योंकि वह अब अपनी मर्यादा भंग किए बिना सम्मानपूर्वक समझौता करना चाहती है। विलायत में तो और भी विचित्र प्रकार के अटकल लगाए जा रहे थे। पर अंतिम संवाद से यह निश्चय हो गया कि फिलहाल सरकार समझौता नहीं करना चाहती और कांग्रेस भी उसके भी लिए लालायित नहीं है। इसके विपरीत स्थिति तो यह दीख पड़ती है कि शीघ्र ही देहली सत्याग्रह आंदोलन का केंद्र बनने की संभावना है और सरकार भी उसका भरपूर मुकाबला करने वाली है।

भारत के राष्ट्रीय पत्रों ने आगामी कांग्रेस अधिवेशन के संबंध में अनेक प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। प्रारंभ में जब यह घोषणा की गई कि पुरी में न होकर कांग्रेस देहली में होगी तब कुछ पत्रों ने उसका विरोध किया था। उन्हें आशंका थी कांग्रेस के वास्तविक नेताओं की अनुपस्थिति में देहली में कुछ ऐसी कार्रवाई न की जाए जो उसकी राष्ट्रीयता में बाधक हो। कुछ की यह राय थी कि अभी समझौते का समय नहीं आया और कांग्रेस की ओर से जो समझौता कर सकते हैं वे जेलों में बंद हैं। कलकत्ते की *अमृतबाजार पत्रिका* ने तो सरकारी निषेध के प्रति प्रसन्नता-सी प्रकट की क्योंकि उसके मत में कांग्रेस-अधिवेशन का उपयुक्त अवसर यह नहीं था। काशी के *आज* में एक लेख लिखकर किसी महाशय ने पूज्य मालवीयजी के सदाशय में भी संदेह कर डाला जो सर्वथा निंदनीय था। मद्रास के एक राष्ट्रीय पत्र ने कांग्रेस की कार्यकारणी समिति (Working Committee) और राष्ट्रीय कांग्रेस में भेद दिखाते हुए यह सूचना दी कि ये दोनों अलग-अलग संस्थाएं हैं, जिसकी व्यंजना यह हुई कि कांग्रेस का अधिवेशन होना चाहिए, वह गैरकानूनी समझकर रोका नहीं जा सकता। हमने इस समस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को व्यावहारिक रीति से देखा था और यह प्रकट किया था कि मालवीयजी के हाथ में यद्यपि कांग्रेस का गौरव सर्वथा सुरक्षित रहेगा, तथापि यदि अधिवेशन से वर्तमान स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की संभावना न हो तो इस अर्थकष्ट के समय में लाखों रुपए खर्च करने की आवश्यकता नहीं है।

परंतु हाल की विज्ञप्तियों से अब दृष्टिकोण बदल गया है। घटनाओं से जान पड़ता है कि संधि की चर्चा न तो कांग्रेस में चलाई जा सकती है और न सरकारी विभाग में कांग्रेस की युद्धनीति सहन की जा सकती है। इसका मतलब यह हुआ कि देहली कांग्रेस राजनीतिक संघर्ष का केंद्र बन सकता है। और सरकार सुभीते के साथ आज्ञा-भंग करके आने वाले अथवा 'गैरकानूनी' प्रस्ताव पास करने वाले प्रतिनिधियों को पकड़ लेगी अथवा अधिवेशन भंग कर देगी। जो प्रतिनिधि रुपए खर्च करके देहली जाएंगे वे यदि वहां पकड़ लिये जाने को ही जाएंगे तो उनका रुपया व्यर्थ बर्बाद जाएगा। इस कठिन काल में यह तो आर्थिक विलास (Luxury) ही कहा जाएगा। कलकत्ते का गोरा पत्र *स्टेट्समैन* लिखता है कि कांग्रेस अधिवेशन करने का उद्देश्य बंद होने वाले कॉलेजों के विद्यार्थियों को अपने साथ लगाना और गर्मी के दिनों में खाली रहने वाली जनता को फिर से उत्तेजित करना है। परंतु गोरे पत्र को यह समझना चाहिए कि कॉलेज के विद्यार्थी देहली में ही नहीं रहते और न गर्मियों में खाली रहने वाली जनता देहली में वास करती है। विद्यार्थियों को देश भर में छुट्टी मिलती है और जनता भी देश भर में फैली हुई है। उन्हें उत्तेजित करने और अपनी ओर लाने के लिए कांग्रेस को देहली में एकत्र होने की आवश्यकता नहीं है। पर हम तो केवल आर्थिक दृष्टि को ही ध्यान में रखकर देहली में देश भर के कांग्रेस कार्यकर्ताओं के एकत्र होने और एक साथ पकड़ लिये जाने का समर्थन नहीं करते। यदि व्यावहारिक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार किया जाए तो इस अधिवेशन की सार्थकता तभी हो सकती थी जब सरकार की नीति में कुछ परिवर्तन होता। पर वैसा न होने से अब वह केवल रुपए खर्च करके जेल जाने की समस्या रह गई है जिसे कांग्रेस नेता भी उचित नहीं समझ सकते, ऐसा हमारा अनुमान है।

## लायड जॉर्ज का मत

विगत यूरोपीय महायुद्धकाल के वीर राजनीति विशारद लायड जॉर्ज महोदय इधर कई महीनों से अस्वस्थ रहने के कारण ब्रिटिश राजनीति में विशेष भाग न ले सके थे, पर पिछले दिन एक व्यंग्यपूर्ण वक्तृता में उन्होंने वर्तमान 'राष्ट्रीय सरकार' नामक सरकार की कड़ी आलोचना की और उसके धुजा-धारियों को खूब खरी-खोटी सुनाई। यद्यपि मिस्टर लायड जॉर्ज पिछले चुनाव में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चुन लिये गए थे पर वे तब से अब तक उससे प्रायः बाहर ही रहे। कई महीनों के बाद जब वे स्वास्थ्य सुधार कर विलायत लौटे तब उपयुक्त अवसर पाकर उन्होंने राजनीति संबंधी अपने स्पष्ट विचार व्यक्त किए और अपने दल वाले उन लिबरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(उदार) सदस्यों की खास तौर पर खबर ली जो अपनी उदारता ताक में रखकर उस संकीर्ण दल में मिल गए हैं जो 'राष्ट्रीय सरकार' की खाल ओढ़े हुए पूर्णतः अनुदार हैं। कुछ थोड़े से ओहदों के लिए जो सर्वथा 'सम्मानहीन' हैं, उदारदल ने अपनी 'फ्री ट्रेड' की उदारनीति का संहार कर डाला और 'संरक्षणनीति' स्वीकार कर अपने नाम पर ही व्याघात पहुंचाया। अपनी प्रख्यात चुटकियों की भाषा में मिस्टर लायड जॉर्ज ने प्रधानमंत्री मेकडानल्ड की तुलना उस बिगड़ी मोटर से की जो आगे नहीं बढ़ती, पीछे को ही घिसटती है। यह मेकडानल्ड साहब के 'आत्मपक्ष परित्यज्य परपक्षोषुयो रतः' का प्रसाद मिला। अनुदार दल के प्रधान मिस्टर बाल्डविन की व्याख्या लायड जॉर्ज महोदय ने इन शब्दों में की, 'इनमें और ज्वालामुखी पहाड़ में केवल इतनी ही समता है कि दोनों निरंतर धुआं उड़ाया करते हैं।' यह या तो मिस्टर बाल्डविन की सिगरेट-प्रियता का परिचय है या उनकी धूमिल (अस्पष्ट) घोषणाओं का छायाचित्र है। संभव है, इसका संबंध मिस्टर बाल्डविन की भारत संबंधी नीति से भी हो, जो पहले गोलमेज से अब तक का लेखा लगाने से 'धूमिल' ही सिद्ध होती है। लायड जॉर्ज महोदय ने 'राष्ट्रीय सरकार' नाम का थोथापन बड़े ही ज्वलंत शब्द में प्रदर्शित किया। उनकी अपील यह थी कि तुम जो हो वही अपने को कहो। हनुमान नाम रखने से तुम समुद्र फांद कर लंका नहीं पहुंच सकते।

ये श्रीयुत लायड जॉर्ज के वीर हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं जिनमें राजनीतिक वाक्छल का लेखा भी नहीं है। तथापि लायड जॉर्ज महोदय एक व्यावहारिक बुद्धि के व्यक्ति भी हैं और वे जानते हैं कि वर्तमान अनुदार सरकार का ही राजनीति में बोलबाला है और उसके विरोधियों कि संख्या पार्लियामेंट में बहुत कम है। इस दृष्टि से वे पार्लियामेंट में विशेष दिलचस्पी लेना व्यर्थ समझते हैं क्योंकि निकट भविष्य में उससे किसी अच्छे नतीजे की संभावना नहीं है। वे साहित्यिक क्रियाकलाप में दत्तचित्त होना चाहते हैं। शायद वे साहित्य के द्वारा देश में अपने मत का प्रचार करेंगे जिससे आगे के लिए लाभ पहुंचे। पार्लियामेंट में भी वे चुपचाप बैठेंगे ऐसी उनकी प्रकृति को देखते हुए संभव नहीं है। तथापि संभवतः वे पार्लियामेंट के बाहर अधिक काम करना चाहते हैं और यह जानते हैं कि मौजूदा हालत में यही संभव और फायदेमंद भी है। भारत के संबंध में लायड जॉर्ज महोदय के इस समय विचार क्या हैं यह स्पष्ट नहीं मालूम, परंतु पहले तो जो उनकी राय थी वह अनुदार दल से विशेष भिन्न नहीं थी।

(गुरुवार, 14 अप्रैल 1932)

## व्यापार में बाधा

यद्यपि इस अशांति के युग में कहीं भी बाधा-रहित जीवन नहीं है परंतु कई कारणों के एकत्र हो जाने से व्यापारी समाज का जीवन सबसे अधिक संकटापन्न हो गया है। एक तो उन्हें संसारव्यापी मंदी का कटुफल प्राप्त हो रहा है, दूसरे जनता पर अधिकाधिक सरकारी टैक्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वृद्धि के कारण उनकी खरीद को धक्का लग रहा है। राजनीतिक वातावरण के कारण विदेशी ही नहीं, देशी व्यापार तक डावांडोल हालत में है। सरकारी आर्डिनेंस भारतीय व्यापारी-समाज की सम्मति में व्यापार के लिए बहुत बड़ी बाधा बन गए हैं। सरकार की अर्थनीति और करेंसी पॉलिसी का रोना तो देश का व्यापारी-समाज चिर दिन से रोता आ रहा है। इन परिस्थितियों की चक्की में पिसकर व्यापारी समाज तबाही हालत तक पहुंचता जा रहा है पर अभी इनसे निस्तार पाने का कोई लक्षण नहीं दीख पड़ता। संसार-व्यापी मंदी की दवा तो भारतीय व्यापारियों के हाथ में है ही नहीं, भारत सरकार की अर्थनीति और विनिमय नीति में भी वे विशेष हेर-फेर नहीं करा सकते। दरिद्र जनता का कर-भार भी उनके हित और सम्मति के विरुद्ध बढ़ रहा है पर वे उसे रोक नहीं सकते। जो उपाय उनके वश में है वह यही है कि वे देश में जैसे-जैसे अपना व्यापार चलावें, पर अब तो वह भी कठिन हो गया है। राजनीतिक परिस्थिति के कारण विदेशी वस्तुओं की बिक्री ढीली है और आर्डिनेंसों के कारण असंतुष्ट जनता में उसकी खपत कम ही होती जा रही है। इधर कुछ दिनों से कितने ही व्यापारी केंद्रों में सरकार की ओर से नोटिस व्यापारियों को दिए जा रहे हैं कि वे हड़ताल करके दुकानें बंद न करें। सरकार का कहना है कि ऐसा करके वह व्यापारियों के व्यक्तिगत अधिकार की रक्षा कर रही है पर एक ओर सरकार की यह आज्ञा निकलती है कि दुकानें खोले रहो नहीं तो दंड दिया जाएगा दूसरी ओर लाल परचे बंटते हैं जिनमें तरह-तरह की धमकी व्यापारियों को दी जाती हैं। बेचारों की परिस्थिति वास्तव में दयनीय है। यदि वे सरकारी हुकुम न माने तो जेल जाएं, जुर्माना दें, शहर से बाहर निकाले जाएं अथवा अन्य इसी प्रकार का दंड भुगतें और यदि हुकुम मानें तो जनता के अप्रीतिपात्र बनें, बिक्री से हाथ धोएं और संभव है व्यक्तिगत खतरे में भी पड़ें। ऐसी अवस्था में वे क्या करें? जो कुछ उनसे करते बनता है वही वे करते हैं। कुछ स्थानों में उन्होंने प्राइवेट तरीके से सरकारी हुकुम मानकर हड़ताल न करने का वचन दिया, फिर हड़ताल में शामिल भी हुए और अंत में सरकार को जुर्माना देकर किसी तरह पिंड छुड़ाया। यह क्या अत्यंत शोकजनक परिस्थिति नहीं? यदि सरकार व्यापारियों की इस हालत का अनुभव करे तो वह हड़ताल न मानने के अपने ऐलान बंद कर दे और शीघ्र आर्डिनेंसों को वापस ले ले।

वाइसराय महोदय ने वेस्टन इंडिया लिबरल एसोसिएशन के प्रतिनिधि-पत्र का उत्तर देते हैं कि 'ब्रिटिश वस्तुओं का बायकाट न केवल राजनीतिक उद्देश्य से वरन् भारत सरकार और ब्रिटेन को आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाने के उद्देश्य से एक नीति के रूप में चलाया जा रहा है। आंदोलन का एक प्रमुख रूप यही है जो सरकार को उलट देने का उपाय करता और शांति-व्यवस्था में अत्यंत बाधा डालता है।' इस अनिष्ट से बचने का सरकार जो उपाय कर रही है वह यही है कि पिकेटिंग करने वालों को दंड देती और व्यापारियों का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा करती है। पिकेटिंग को दंडित करने से ही जनता की भावना बदल जाएगी, ऐसी संभावना कम ही है। यदि *डेली एक्सप्रेस* के विशेष संवाददाता मिस्टर एच.जी. ग्रीनवाल की रिपोर्ट ठीक है तो कलकत्ते में बायकाट का कोलाहलकारी अथवा प्रदर्शनकारी रूप न होने पर भी पूर्ण बायकाट हो रहा है। मिस्टर ग्रीनवाल ने संकेत किया है कि कलकत्ता का व्यापारी समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्रांतिकारियों से भयभीत होकर बहिष्कार आंदोलन का साथ दे रहा है। हम समझते हैं कुछ क्रांतिकारियों के भय से पर अधिक खरीदने वालों के न मिलने से विलायती व्यापार ठंडा हो रहा है। जनता विधान की बातें कम समझती है। यदि सरकार 'स्वराज्य का सार' भी नए विधान में देने को तैयार हो जाए—जिसके लक्षण नहीं हैं—तो भी जनता आर्डिनेंसों के धर-पकड़ के कारण और अनेक नेताओं के जेल में बंद होने के कारण शायद ही संतुष्ट हो सके। व्यापारियों से सहयोग प्राप्त करने के लिए आर्डिनेंसी हुकुम की विधि उचित नहीं की जा सकती। व्यापारियों के व्यापक स्वार्थों के साथ सहानुभूति दिखाने और उनकी निजी मांगों पर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है।

भारतीय राजनीतिज्ञों के एक दल विशेष की यह धारणा है कि नए विधान में यदि आर्थिक अधिकार भारत को सौंप दिया गया तो न केवल व्यापारी समाज बल्कि कांग्रेस का एक भाग भी रचनात्मक कार्य में लग जाएगा। आर्थिक अधिकारों से लाभ उठाकर अन्य दल ही नहीं, कांग्रेस का एक दल भी देश की दरिद्र जनता की दशा सुधारने में लग जाएगा और देशव्यापी कृषक वर्ग में भी संतोष की मात्रा बढ़ेगी। व्यापारी वर्ग तो निश्चित रीति से अपने व्यापार में लग जाएगा क्योंकि सरकार की उदार अर्थनीति के अतिरिक्त उसका स्वार्थ अन्यत्र अधिक नहीं है। व्यापारी समाज इस बात की विशेष चिंता नहीं करता कि फौज किसके हाथ में रहेगी, अथवा पर राष्ट्र संबंध किसके हाथ में रहेंगे। फौज चाहे किसी के अधिकार में हो उन्हें तो देश में शांति चाहिए जिससे उनका व्यापार चले। आर्थिक नीति में वे अवश्य आमूल परिवर्तन चाहते हैं और इसी में उनका वास्तविक स्वार्थ है। यदि अनुकूल अर्थनीति, विनिमय नीति, व्यापारिक सुभीते आदि मिल जाएं तो उन्हें और कुछ न चाहिए। यदि देश की जनता का करभार हलका हो जाए और वह संपन्न हो तो यह व्यापारियों के लिए सोने में सुगंध है। व्यापारी समाज आर्डिनेंसों से आत्मरक्षा नहीं चाहता वह संतुष्ट और संपन्न देश में अपने व्यापार का विस्तार चाहता है। क्या सरकार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने को तैयार है? नए विधान की समस्या चारों ओर से शंका और संदेह के वातावरण में घिरी है और आर्डिनेंस ही सबके अधिक स्पष्ट और निश्चित देख पड़ते हैं।

जैसाकि वाइसराय महोदय कहते हैं सत्याग्रह आंदोलन का प्रमुख प्रदर्शन बायकाट के रूप में हो रहा है। सरकार को व्यापारियों की वास्तविक कठिनाइयों को समझने की चेष्टा करनी चाहिए और व्यापार वृद्धि के सुभीते ढूंढ़ने चाहिए। जनता संतुष्ट हो यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। व्यापारी प्रसन्न हों यह दूसरी सबसे बड़ी आवश्यकता है। इन दोनों की पूर्ति होते ही आंदोलन की शक्ति क्षीण पड़ जाएगी।

143280

## गोली कांड की जांच

इलाहाबाद डिवीजन के कमिश्नर महाशय नोटिस निकालते हैं कि सरकारी हुकुमनामे के मुताबिक वे विगत 8 और 9 अप्रैल को इलाहाबाद में हुए गोलीकांड की जांच करेंगे। विशेष करके इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बात का पता लगाने की कोशिश करेंगे कि कितने आदमी मरे और कितने घायल हुए। वे इस संबंध में गैर-सरकारी गवाहियां भी लेना चाहते हैं जिससे घटनाओं का पता लग सके। परंतु इस कार्य में बाधाएं दीख पड़ती हैं। स्थानीय जनता और विशेषकर वे जो घटनास्थल पर मौजूद थे क्षुब्ध और भयभीत अवस्था में होंगे। वे गवाह बनने के लिए उत्सुक हैं ऐसी संभावना नहीं है। फिर उन्हें यह भय है कि गवाही देने से उन पर भी उपद्रव में शरीक होने का इल्जाम न लगाया जाए। पहले दिन लाठी चार्ज के संबंध में भी सरकारी बयानों से सबका संतोष नहीं हुआ है जिसका एक प्रणाम श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू 'जवाहरलाल की माता' को लगने वाली चोट है। लाठीचार्ज, ढेलेबाजी और गोलीकांड का आपस में संबंध है पर जांच केवल गोली चलने की होगी। यदि सरकार की ओर से यह ऐलान किया जाए कि वह गवाही देने वालों पर आरोप नहीं करेगी तो संभव है घटनाओं का पता बताने में अधिक लोग भाग ले सकें। यदि गोलीकांड के साथ ही उससे संबंधित अन्य घटनाओं की भी जांच की जाए तो संभव है, उससे और अधिक लोग दिलचस्पी लें। जांच प्रेस प्रतिनिधियों के लिए खुली हो तो उससे और अधिक लोकमत प्राप्त होने की आशा की जा सकती है।

## गोस्वामीजी का एक रूपक

साहित्य के अलंकार साहित्य पुस्तकों की पिटारी में अलंकारों की पुड़िया बांधकर रख देते हैं और उनके उत्तराधिकारी उनकी तालिका बनाकर, धरोहर के रूप में उन्हें यत्नपूर्वक धरते हैं। कोई-कोई उनको कंठाभरण भी बनाते हैं, पर जो प्रतिभाशाली कवि होते हैं वे उन पुड़ियों को लेकर काम नहीं चलाते। वे तो जीवन और प्रकृति की गहनतम निधियों से सुरम्य रत्न निकालते और उनसे अपना काव्य शृंगार करते हैं। तालिका बनाने वाले शास्त्रियों और रसान्वेषी कवियों में दृष्टिकोण का मौलिक अंतर होता है। एक की दृष्टि विश्लेषण और विभाजन 'श्रेणी विभाग' की ओर होती है, दूसरे की संगीत के लय की भांति सामंजस्य की प्रयासी होती है। केवल एक उदाहरण लेकर देखें। रूपक नाम का अलंकार एक सौ आठ अलंकारों में प्रमुख है। अलंकार विशारद उसके सांग, तद्रूप आदि विभेद करते हैं। किसी तरह अंग-प्रत्यंग का निर्वाह हो जाने से ही वे रूपक की सार्थकता मान लेते हैं। परंतु वे इस बात की चिंता नहीं करते कि संपूर्ण रूप कैसा हुआ। वे रूपक के हाथ-पैर जुटाने को ही सब कुछ समझते हैं और यह भूल जाते हैं कि रूप-चित्र कितना काम्य, अतः कितना प्रभावशाली बना। इस ओर ध्यान देना आलंकारिकों से नहीं बन पड़ा, कवियों की कल्पना से ही बन पड़ा। जो कवि अंतर्दृष्टि संपन्न होते हैं, जो रूढ़ियों की शृंखला से जकड़े नहीं रहते वे उतनी ही अधिक रूप-सृष्टि करने में सक्षम होते हैं। अलंकारशास्त्रियों को रूपक शब्द का अर्थ विस्मृत हो जाता है, वह उसके अंग-संगठन में ही उसकी सार्थकता समझता है। पर कवि के लिए रूपकों के विभिन्न विभेदों का कोई विशेष महत्व नहीं। जिस प्रकार सरिता-धारा के शीर्षबिंदु हीरे की कणिकाओं की भांति उछल-उछल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कर क्षण भर चमकते फिर उसी में विलीन होते रहते हैं उसी प्रकार कवि की काव्यधारा में रूपक के भिन्न-भिन्न भेद—रूपक ही क्यों संपूर्ण अलंकारों के भिन्न-भिन्न भेद उन्हीं शीर्ष बिंदुओं की भांति उछल-उछल कर चमकते, उसकी शोभा बढ़ाते और उसी में विलीन होते जाते हैं। कवि के लिए अलंकारों का महत्व सजीव, गतिशील सौंदर्य सृष्टि करने में है अलंकार शास्त्रियों के लिए उनका महत्व गणना करने और यथाशक्ति उनकी संख्या बढ़ाने में है। कवि के लिए अलंकार चलते सिक्के हैं, आलंकारिक के लिए वह घड़े में भर कर जमीन में गाड़ कर रखा जाने वाला धन है।

काव्य कला और चित्रकला का ग्रंथि बंधन करने वाला रूपक अलंकार है। हम तो यह भी कह सकते हैं कविता में रूपक चित्रकला से उधार लिया गया है। उधार ली हुई वस्तु का उपयोग अधिक से अधिक सुंदरता के साथ किया जाना चाहिए। यदि रूपक से कविता में रूप सृष्टि न हो सकी तो उसका 'सांग' आदि होना निरर्थक है। ऐसे सूर्पनखा भी 'सांग' थी। वह तो 'सांग' से कुछ अधिक ही थी, तथापि क्या वह सुंदर थी? 'रूपक' की सहायता बिना भी महाकवि तुलसीदास ने काव्य में चित्र कला का रूप प्रतिष्ठित किया है और पूर्ण क्षमता के साथ—

*बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥*
*खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥*

कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी ने इस चित्र संकेत के संबंध में कुछ आक्षेप किए हैं, परंतु यहां हम चित्र की रूपरेखा देख रहे हैं और वह सचमुच चमत्कारशालिनी है। रूपक अलंकार इसमें नहीं पर श्रेष्ठ रूपसृष्टि चित्रकला सार्थक हो गई। प्रसंगवश, बाबू मैथिलीशरणजी के आक्षेप के संबंध में भी एक शब्द कह देना है। सीताजी अंचल से मुख ढंक लेती हैं। इसमें केवल हल्की लज्जा की व्यंजना है। कोई हाव नहीं। फिर वे 'पियतन'—रामचंद्रजी की दिशा में देखती हैं। पति से आंखें नहीं लड़ा रहीं। संभव है, आंखें पृथ्वी की ओर ही गड़ी रही हों केवल भौंहें और शिर ही पति का संकेत कर रहे हों। यहां भी लज्जा का त्याग नहीं, न कोई विलास है। 'पिय तन चितइ' का अर्थ प्रिय की दिशा में देखना है, न कि प्रिय को देखना। एक चल सौंदर्य की सृष्टि के साथ-साथ लज्जाशीलता की रक्षा अद्भुत काव्य शक्ति की अपेक्षा रखते हैं। साधारणतः जहां लज्जा होती है वहां दृष्टि में जड़ता होती है और जहां 'बांकी चितवन' होती है वहां लज्जा नहीं होती। पर जहां लज्जा तो है पर जड़ता नहीं। उस स्त्री चित्र के चित्रण में अद्भुत काव्य कौशल है।

कवियों की भी भिन्न-भिन्न मुद्राएं और प्रकृतियां होती हैं। कभी तो वे वैज्ञानिक अन्वेषी की भांति प्रकृति के गहनतम स्तरों में प्रवेश करते और वहां के स्वच्छ दीप्तिमान रत्नों का चयन करते, कभी विद्यावारिधि बनकर विशाल अध्ययन क्षेत्र से अलंकारमुक्ताओं का संग्रह करते हैं। हमें तो उसकी पहली मनोवृत्ति ही अधिक रुचिकर प्रतीत होती है। कवि स्वयं अन्वेषक बनकर दूर के पथिक की भांति हमारा अधिक आकर्षण अथवा अधिक रस प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करता है और ऐसी अवस्था में वह जीवन-संबल भी अधिक मात्रा में उपस्थित करता है। परंतु जब वह पंडित के रूप में हमें चमत्कृत करना चाहता है तब न तो वही विशेष जागरूक और न हम ही विशेष प्रसन्न होते हैं। इन दोनों कवि मुद्राओं का उद्धरण गोस्वामी तुलसीदास के *रामचरितमानस* से लिया जा सकता है। दोनों में रूपक अलंकार है—

*अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥*
*पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥*
*दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥*
*ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥*
*लखि नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥*

अलंकार शास्त्रियों को इससे प्रयोजन नहीं। पर कवि ने एक-एक शब्द, एक-एक वर्ण से भयंकरता का रूपक खड़ा करने का प्रयास किया है। स्पष्ट है कि कवि का ध्यान रूपक के 'निर्वाह' में नहीं है, वह रूपक की 'रचना' करना चाहता है। 'निर्वाह' और 'रचना' का यह भेद हमें समझ लेना चाहिए क्योंकि इसी से वास्तविक कवि की विशेषता प्रकट होती है। यहां अलंकार का शरीर संघटन नहीं हो रहा उसका अंतर्निर्माण—उसमें आत्मा की प्रतिष्ठा की जा रही है। अलंकार शास्त्री इस आत्मा को नहीं देख सकते शरीर को ही देखते हैं। कैकेयी की तुलना रोष तरंगिनी से की गई है। यहां अलंकार विशारदों के अनुसार न रूप का साम्य है, न रंग का और न विशेष गुण का ही। तथापि शब्दों से स्वर साम्य और संपूर्ण वर्णन में आत्मिक साम्य स्थापित हो गया है। रुष्ट कैकेयी और प्रलयकारी सरित्प्रवाह दोनों एक ही हैं। यहीं कवि की संपूर्ण सफलता सिद्ध हो गई।

परंतु इस दूसरे उद्धरण को देखिए जिसे हिंदी के काव्य मर्मज्ञ संसारसाहित्य की श्रेष्ठ सौंदर्यसृष्टि सिद्ध करना चाहते हैं—

*जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥*
*गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥*
*विष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥*
*जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥*
*सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥*
*एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।*
*तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥*

कवि ने सीताजी की अलौकिक शोभा वर्णन करने की चेष्टा की परंतु अंतिम रूपक देखिए! यह समुद्र मंथन का पौराणिक प्रसंग है। पुराणप्रिय कवि के हृदय में यह कल्पना बनी हुई है कि राम विष्णु के अवतार थे इसलिए सीताजी को भी लक्ष्मी की तुलना मिलनी चाहिए। अलंकार तो गढ़ा गढ़ाया है ही। पर तुलना करने, अलंकार मढ़ने आदि में और सीता की मनोरम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



छविसृष्टि में विशेष अंतर है। यहां कवि की दृष्टि पुराणों में अटक गई। सौंदर्य के उस विद्युत प्रवाह तक नहीं पहुंच सकी जो अंतरात्मा से निसृत होता है। कवि ने यह अनुभव करने का कष्ट नहीं किया 'परम रूपमय' का बाह्य विशेषण दे देने से ही कच्छप का कच्छप रूप नहीं नष्ट होगा। पुरुष 'मार' (कामदेव) का मथानी लेकर मथने वाला चित्र भी बिगड़ गया और संपूर्ण रूपक में एक प्रकार की जड़ता आ गई जो सीताजी की अलौकिक सुषमा व्यक्त नहीं कर सकती। रूपक बोझीला-सा हो गया। सीता के अलौकिक छाया सौंदर्य की झांकी नहीं मिल सकी। कहीं मंदर कहीं मथानी के साथ मार नहीं कच्छप, आदि आकर चित्र की रुचिरता में बाधक बन गए हैं। तथापि रूपक अलंकार तो निर्दोष स्वतः सिद्ध है, कोई मीन-मेष नहीं।

सीताजी के रूप चित्रण में गोस्वामीजी ने अन्यत्र बड़ी ही उत्कृष्ट कोटि की सफलता प्राप्त की है पर क्या इस रूपक के संबंध में यही बात कह सकते हैं? इसके समर्थन में दो बातें फिर भी कही जा सकती हैं और उसे सुनने को हम तैयार हैं। एक तो यह कि रूपक में पौराणिक गाथा का उल्लेख है इसलिए उसके सौंदर्य को पौराणिक दीक्षा प्राप्त व्यक्ति ही अनुभव कर सकते हैं। परंतु यह कोरी सांप्रदायिकता काव्य के लिए अनिष्टकर है। जो काव्य सौंदर्य को नष्ट कर दे वह पौराणिक कवि के लिए काम्य नहीं। रूपक के पूर्व गिरा, रति, भवानी, रमा आदि की तुलना में जितनी पौराणिकता है वह काव्य में खप सकती है पर कच्छप वाली 'पौराणिकता' तो भय का संचार करेगी। दूसरा मार्जन यह किया जा सकता है कि गोस्वामीजी सीता के रूप-वर्णन में श्रृंगार रस की निष्पत्ति नहीं करना चाहते। परंतु जगन्माता का रूप वर्णन करने के लिए क्या यह अनिवार्य है कि मगरमच्छ आदि का दृश्य दिखाकर रस विक्षेप किया जाए? फिर प्रसंग को देखते हुए यहां गोस्वामीजी का लक्ष्य श्रृंगार वर्णन ही है और अब तक हिंदी के अनेक आचार्य इसे रूप सौंदर्य 'श्रृंगार' की श्रेष्ठ सृष्टि समझते आए हैं। आलंकारिक और पौराणिक दृष्टि छोड़कर शुद्ध काव्य दृष्टि से देखने पर हमें यह रूपक उपर्युक्त 'रोष तरंगिनि' वाले रूपक से विशेष निम्न कोटि का और गोसाईंजी जैसे प्रसन्न दृष्टि महाकवि के अनुकूल नहीं जान पड़ता है।

(रविवार, 17 अप्रैल 1932)

## ब्रिटेन की आर्थिक नीति

महायुद्ध के पश्चात् यूरोप के प्रायः सभी राष्ट्रों को अर्थ-संकट का सामना करना पड़ रहा है। प्रधानतः ब्रिटेन को संसार में अपने व्यापार की सीख मजबूती के साथ कायम रखने की विशेष चिंता लगी हुई है। इस समय ब्रिटेन के प्रधान राजनीतिज्ञ साम्राज्य के बड़े अंगों को एक व्यापारिक सूत्र में बांधने के लिए बड़ी मुस्तैदी के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि महायुद्ध के समय से उन्हें आर्थिक क्षति उठानी पड़ रही है। उसकी रक्षा की जाए, इसी संघर्ष के निवारण करने के लिए एक प्रकार का संगठन करके उसको आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वरूप दिया जा रहा है। भविष्य में संगठित होने वाले इस आर्थिक साम्राज्य का संचालन भी संभवतः ब्रिटेन ही करेगा, ऐसा कुछ राजनीति विशारदों का अनुमान है। आजकल जिस 'राष्ट्रीय सरकार' के हाथ में शासन सूत्र है, वह पुरानी सरकारों से सर्वथा भिन्न है। वर्तमान प्रधान सचिव के एक पुराने साथी का कहना है कि इन्हीं कारणों से प्रभावित होकर मेकडानल्ड भी अपना पक्ष त्यागकर दूसरे पक्ष में सम्मिलित हो गए हैं। यद्यपि वर्तमान पार्लियामेंट में लिबरल और अनुदार दल वाले सदस्यों की संख्या काफी तायदाद में है यद्यपि मिस्टर मेकडानल्ड ही को प्रधानमंत्री रहने दिया गया है। परराष्ट्र सचिव सर जान साइमन साहब भी--मंत्रिमंडल में जब आयात कर नीति के संबंध में यदि विवाद तथा आपस में मदभेद होता है, तब काफी नम्रता से पेश आते हैं और सहिष्णुता की मूर्ति बन जाते हैं। एक राजनीतिज्ञ का कहना है कि इस समय ब्रिटेन को आर्थिक कठिनाइयों का जो सामना करना पड़ रहा है, उसके निवारण की मांगें संभवतः वह इसी को समझते हैं, क्योंकि एक समय था जब कि ब्रिटेन को ही संसार में व्यापार करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी, परंतु अब उसकी साख गिर चुकी है और उसके अनेक प्रतिद्वंदी खड़े हो गए हैं।

एक विद्वान ने उपर्युक्त विचारों पर अभी हाल में *रिव्यू ऑफ रिव्यूज* में एक सुंदर और अध्ययनशील लेख लिखते हुए कहा है कि इस प्रकार के आर्थिक साम्राज्य के संगठन से ब्रिटेन का व्यापार बढ़ने के बजाय कम हो जाएगा। अमेरिका महायुद्ध होने के पूर्व अपने देश का बना हुआ 95 प्रति सैकड़ा माल अपने ही देश में विक्रय करता था और 5 औसत अन्य देशों में। परंतु महायुद्ध ने उसके व्यापार का विस्तार और बढ़ा दिया और ब्रिटेन का घटा दिया। साथ ही साथ इस नए संगठन के एक प्रबल समर्थक का यह भी कहना है कि ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर आपस में स्वतंत्र व्यापार हो परंतु बाह्य प्रदेशों से जो माल आए उस पर चुंगी लगाकर अर्थ नीति की रक्षा की जाए। इन बातों से ब्रिटेन की अर्थ-नीति की रक्षा के लिए भारतवर्ष की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। आज ब्रिटिश साम्राज्य में निवास करने वाले लोगों की संख्या लगभग 50 करोड़ है जिसमें से लगभग 33 करोड़ केवल भारत की ही जनसंख्या है। ऐसी दशा में ब्रिटेन का सबसे अधिक माल भारतवर्ष में ही खपता है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि लगभग 1 अरब 20 करोड़ का माल ब्रिटेन भारतवर्ष में बेचता है। इसलिए भारत और ब्रिटेन के बीच में भी अर्थ नीति की एक विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। इस समय भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहां अन्य देशों के माल की खपत से कहीं अधिक ब्रिटेन का माल खपता था और खपता है। इसी बात पर विचार कर एक समालोचक ने कहा है कि 'ब्रिटेन ने अब तक कभी का भारत को आंतरिक स्वराज्य देने का साहस कर लिया होता परंतु इस समय उसको परराष्ट्र नीति, अर्थ नीति और व्यापार नीति को स्वतंत्रता देने से इस नए संगठित आर्थिक साम्राज्य के मजबूत बनाने में बाधा उत्पन्न होगी।'

*रिव्यू ऑफ रिव्यूज* के विद्वान लेखक ने लिखा है कि इस समय ब्रिटेन अपने व्यापार संबंधी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिक प्रयत्न कर रहा है। महात्मा गांधी ने भारतवर्ष में जो आंदोलन चलाया है उसका भी एक प्रधान अंग है ब्रिटिश वस्त्र और वस्तुओं का बहिष्कार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसलिए इस समय इंग्लैंड के लिए यह नितांत आवश्यक हो गया है कि वह भारत के बाजारों में नियंत्रण प्राप्त करे। वास्तविक रूप से यदि देखा जाए तो ब्रिटेन के पक्ष में यह प्राकृतिक भी है कि वह अपने उद्योग की रक्षा करे। आज ब्रिटेन पर यह तुहमत लादा जाता है कि वह भारत की मांगों को स्वीकार नहीं कर रहा है। विद्वान लेखक का कहना है कि ब्रिटेन के प्रतिनिधि यदि जिनेवा में जावें और वहां भारत की वर्तमान प्रगति के संबंध में पूछ-ताछ हो तो वे इस बात को कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे कि भारत में जन समुदाय की इच्छाओं को दबाने के लिए नियंत्रण नहीं किया जा रहा है, बल्कि न्याय और शांति की रक्षा के लिए कार्य किया जा रहा है। इस संबंध में भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने अपने पिछले व्याख्यानों में भी स्पष्ट कर दिया है। लीग ऑफ नेशन में प्रतिनिधि यह बलपूर्वक कहेंगे कि वे भारतवर्ष को वास्तविक और निष्कंटक आंतरिक स्वराज देने की पूर्ण चेष्टा कर रहे हैं। परंतु इसके साथ ही साथ वे अपने स्वार्थ और अधिकारों रक्षा करने के लिए काफी गुंजाइश रख छोड़ेंगे और वह स्वार्थ केवल व्यापार संबंधी ही हो सकता है। जो कुछ भी हो इस समय ब्रिटेन जो रुख अख्तियार कर रहा है उसका मुख्य कारण है अपने व्यापार का संरक्षण करना। वह चाहता है कि भारत को स्वराज्य दिया जाए, परंतु इसके साथ ही वह अपने व्यापार के संरक्षण की जड़ मजबूत बना लेना चाहता है। भारत और ब्रिटेन में जो बाह्य और आंतरिक मनोमालिन्य बढ़ गया है उसका एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि ब्रिटेन अपने आर्थिक साम्राज्य की संस्थापना और उसकी रक्षा करने के लिए उद्यत है और उसमें किसी प्रकार भी दूसरे के हस्तक्षेप की वह आवश्यकता नहीं समझता। ब्रिटेन लगभग सौ वर्षों से अपना माल सारे संसार में बेचता है और स्वतंत्र व्यापार प्रणाली का अनुसरण कर अन्य देशों से खाद्य पदार्थ और कच्चा माल खरीदता रहा है और इस समय उसके प्रबल प्रतिद्वंद्वी राष्ट्र भी आगे बढ़ आए हैं। ऐसी दशा में संसार के बाजार में उसके माल की खपत कम हो जाना अनिवार्य है। परंतु भारतवर्ष में जहां उसका एकछत्र शासन है वहां तो वह अपने व्यापार का संरक्षण रखेगा ही। इसलिए इस समय ब्रिटेन का प्रधान उद्देश्य अपने व्यापार की रक्षा करना ही सिद्ध होता है और इसी अर्थनीति की रक्षा करने के लिए वह अनेकानेक उपायों का अवलंबन ले रहा है।

## चेतावनी

भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति के संबंध में जहां मिस्टर चर्चिल जैसे व्यक्ति जहर उगलने वाले हैं वहां प्रोफेसर लास्की जैसे विचारवान निष्पक्ष भाव से उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने वाले भी हैं। यद्यपि ऐसे विचारों से हमारा कोई लाभ नहीं होता परंतु इतना पता अवश्य चल जाता है कि वह व्यक्ति कैसा है, कितना विचारवान है और उसका हृदय कैसा है; सहृदयतापूर्ण है। प्रोफेसर लास्की का कहना है कि 'भारतीय महासभा' ही भारत की एकमात्र संस्था है जो भारत के हित के लिए बोलने का दावा कर सकती है। उसे दबाकर अन्य नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धारी संस्थाओं से सहयोग करना तथा उसे सुधार के काम को आगे बढ़ाना कहां तक उचित है यह साधारण रूप से समझा जा सकता है। सर सेमुएल होर को मालूम होना चाहिए कि कोई भी निर्णय तब तक सफलता को नहीं प्राप्त हो सकता जब तक उसके समर्थन करने में उन बड़े राजनीतिक नेताओं का हाथ न हो जो इस समय जेल में हैं। उनके जेल जीवन का एक-एक दिन स्थिति को गंभीर बना रहा है तथा सर्वसम्मति से होने वाले निर्णय को दूर ले जा रहा है। क्या प्रोफेसर लास्की के यह विचार ऐसे लोगों के हृदय में प्रवेश पा सकेंगे जो यह समझे बैठे हुए हैं कि उनकी जो नीति इस समय भारत में बरती जा रही है वह सफल हो जाएगी? प्रोफेसर लास्की का कहना है कि शक्ति और भय प्रदर्शन से संबंधों की नींव मजबूत नहीं हो सकती। हमारी समझ में यह आता है कि प्रोफेसर लास्की जिस गंभीरता से भारत की परिस्थिति के संबंध में विचार कर रहे हैं यदि उसी गंभीरता के साथ भारत सचिव महोदय भी करते तो भारत में यह भयावह स्थिति शायद न उत्पन्न होती।

## मिस्टर फजलुलहक की निराशा

कलकत्ता कार्पोरेशन के अध्यक्ष पद पर पुनः एक कांग्रेसवादी का आसीन होना मि. फजलुलहक प्रभृति मनुष्यों को अखर गया है। स्वयं भी फजलुलहक अध्यक्ष पद के लिए खड़े हुए थे। उन्हें इस बात की पूर्ण आशा थी कि मुसलमान होने के कारण उन्हें इस बार एक कांग्रेसवादी के मुकाबिले में सफलता मिल ही जाएगी क्योंकि सरकार के समर्थक कांग्रेस से अप्रसन्न होने के कारण उन्हें वोट न देंगे। परंतु फजलुलहक साहब की यह आशा पूर्ण नहीं हुई। यही नहीं वरन् उन्हें यह जानकर घोर निराशा हुई कि एक को छोड़कर बाकी सभी यूरोपियनों ने अपना वोट एक कांग्रेसवादी को ही दिया। इस घटना के संबंध में फजलुलहक साहब अपने हृदय की गुबार निकालते हुए दो प्रश्न पूछते हैं और साथ ही उसका उत्तर भी वे स्वयं दे देते हैं।

1. कांग्रेस को लगातार राजद्रोह के कारण क्या हानि उठानी पड़ी? कुछ नहीं।
2. मुसलमानों को दृढ़ राजभक्ति के लिए क्या पुरस्कार मिला? कुछ नहीं।

फजलुलहक साहब राजभक्ति के बल पर कार्पोरेशन के अध्यक्ष होने चले थे, परंतु असफल हुए। हम आशा करते हैं फजलुल साहब एक बार असफल हो जाने से ही निराश न होंगे।

(गुरुवार, 21 अप्रैल 1932)

## व्यावसायिक तत्व का निर्णय

गोलमेज के पिछले अधिवेशन के अवसर पर इस बात पर विशेष जोर डाला गया था कि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारत और बिटेन के बीच कोई समझौता हो तो उसमें इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाए कि व्यापारिक समानता में कोई अंतर न आने पाए। अर्थात् भारत में व्यापार के संबंध में अन्य देशों की अपेक्षा ब्रिटेन को अधिक सुविधा मिलनी चाहिए। यूरोपियन व्यापारियों के प्रतिनिधि मिस्टर बेंथल ने गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर जो भाषण दिए उससे भी यही सिद्ध होता है कि अंग्रेज व्यापारी भारत को शासन सुधार मिलने के पहले अपने व्यापार के संरक्षण का उपाय कर लेना चाहते हैं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आए दिन भारत में अंग्रेज व्यापारियों की जितनी सुविधाएं प्राप्त हैं क्या वे उनके लिए पर्याप्त नहीं हैं? इस संबंध में विचारपूर्वक देखा जाए और व्यापारिक रिपोर्टों का अध्ययन किया जाए तो यह बात सप्रमाण सिद्ध हो जाती है कि भारतवर्ष में अंग्रेज व्यापारियों को जो सुविधाएं प्राप्त हैं और उन्हें व्यापार में सरकार द्वारा जितनी सहूलियतें दी जाती हैं उतनी दूसरे देश के व्यापारियों को नहीं। इतिहास भी यही कहता है कि ब्रिटिश व्यापारियों को प्रारंभ ही से अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं, तथा प्राप्त होती जा रही हैं, और इसी कारण से आज अंग्रेजी व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा है। इसके प्रमाण के लिए व्यापारिक रिपोर्ट मौजूद हैं। बंगाल का व्यापार सूत्र अंग्रेजों के ही हाथ में है। इसी प्रकार एक्सचेंज, बीमा कंपनी आदि में भी अंग्रेजों का ही हाथ है। बड़े-बड़े शहरों में भी बिजली का ठेका भी प्रायः अंग्रेज कंपनियों को ही दिया जाता है। जितने जहाज भारतवर्ष से विदेशों को जाते हैं उनमें भी ब्रिटेन के ही जहाजों की संख्या अधिक है। इसलिए उनके द्वारा अंग्रेज व्यापारियों को जैसी सुविधा मिलती है, वैसी दूसरे को नहीं। इसी प्रकार अन्य व्यवसायों पर भी अंग्रेज कंपनियों और व्यापारियों ने पूर्ण रूप से प्रभुत्व स्थापित कर रखा है। इन सब बातों के कहने का तात्पर्य यही है कि मिस्टर बेंथल आदि पूंजीवादी जो यह जिद करते हैं कि भारत को शासन सुधार के मिलने के पहले अंग्रेजों के व्यापार का संरक्षण का इंतजाम हो जाना चाहिए, वह व्यर्थ-सा है—क्योंकि महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं ने स्पष्ट कहा था कि केवल जाति भेद, रंग या धर्मभेद के कारण ही भारत में रहने वाले किसी नागरिक के साथ वाणिज्य-व्यवसाय में किसी प्रकार का भेद नहीं माना जाएगा।

अब दूसरी ओर जब हम भारतीय व्यवस्था की प्रगति पर दृष्टि डालते हैं तब निराशा अधिक होती है, आशा कम। इसलिए कि भारतीय व्यापारियों को वैसी सुविधाएं नहीं प्राप्त हैं जैसी अंग्रेज व्यापारियों को। किसी दृष्टि से देखा जाए यह स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि भारत में विदेशी व्यापार भारतीय व्यापार के मुकाबले अधिक आगे बढ़ा हुआ है। महात्मा गांधी के शब्दों में दोनों के बीच 'दैत्य और बौने' के समान अंतर है। कहा जाता है कि विदेशी व्यापारियों के साथ अल्प संप्रदाय वालों का-सा व्यवहार किया जाना चाहिए। परंतु क्या यह ठीक है कि विदेशी व्यवसायी अल्पसंख्यक हैं? प्रत्युत कहना तो यों चाहिए कि भारतीय व्यापारियों को अल्प-संप्रदाय वालों कि भांति सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए; क्योंकि उनका व्यापार गिरा हुआ है और उन्हें उतनी सुविधाएं नहीं प्राप्त हैं जितनी विदेशी व्यापारियों को। हां, इधर पिछले दो-तीन वर्षों से समय में परिवर्तन अवश्य हुआ है तब से अवश्य ही कुछ भारतीय व्यापार की उन्नति होनी प्रारंभ हुई है। संभव है, इसी से विदेशी व्यापारियों को अपने भविष्य की चिंता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो रही हो। इसी प्रकार की अड़चन आज भारतीय तत्व के प्राप्त होने में बाधक हो रही है। इसमें संदेह नहीं है कि अंग्रेजों का भारत से आर्थिक संबंध बहुत अधिक है और वे आर्थिक नीति को ऐसा बनाए रखना चाहते हैं जिससे अर्थ-संबंधी हानि का सामना वे न कर सकें। यह ठीक है और अंग्रेज व्यापारियों को ऐसा सोचना अनिवार्य है परंतु भारतीय व्यापारियों के लिए स्वदेशी प्रचार और अपने व्यवसाय की उन्नति के उपाय सोचना भी अनिवार्य है। यह निर्विवाद है कि भारत के नए शासन विधान में विदेशी व्यापार के संरक्षण नीति का निर्धारण किया जाएगा और लार्ड रीडिंग के कथनानुसार 'शक्तिशाली ब्रिटिश कारोबार के विरुद्ध किसी भेद-भाव से युक्त कानून का घोर विरोध किया जाएगा'। इन बातों पर जब हम वास्तविक रूप से दृष्टिपात करते हैं तब व्यापारिक तत्व के इस संघर्ष के लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते। और यही स्वदेशी और विदेशी व्यापारियों के सत्व का निर्णय न होना ही भारत और ब्रिटेन में मनोमालिन्य का कारण बन रहा है। हमारी समझ में इसी व्यापारिक-तत्व के उपयुक्त निर्णय पर ही वास्तविक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन विधान का निर्माण अधिक सफलता प्राप्त करेगा।

## सीमा प्रांत में सुधार

सीमा प्रांत में सरकार शीघ्रता के साथ सुधार देने को तत्पर हुई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सरकार ने वहां की अवस्था का विशेष रूप से अनुभव प्राप्त कर लिया है, और वह उसे अधिक दिनों तक पूर्व अवस्था में रहने देना नहीं चाहती थी। लार्ड विलिंग्डन ने सीमा प्रांत को सुधार देते हुए जो व्याख्यान दिया है, उसमें आपने कहा है कि जहां इच्छा है वहीं सुधार और उपाय दोनों हैं। जबकि ब्रिटिश भारत के अन्य भागों के अनेक सुधार केवल इसलिए रखे गए हैं कि सरकार की आर्थिक अवस्था इस समय अच्छी नहीं, वहां सीमा प्रांत के ऊपर इस आर्थिक कमी को पूरा करने के लिए सरकार अपनी थैली से खर्च करने को राजी हो गई है। यह सरकारी नीति का एक अच्छा नमूना है। सुधार को जारी करते समय जहां अन्य उत्सव और समारोह हुए वहां सरकार ने सहस्रों देशभक्त पठानों को जेल से मुक्त न करके अदूरदर्शिता का परिचय दिया है। सीमा प्रांत के संबंध में यह कहा जाता है कि इस प्रांत का शासन पहले अन्य प्रांतों के समान अच्छा नहीं था। इसी कारण वहां लाल कुर्ती वालों का आंदोलन प्रारंभ हुआ। यदि यही बात है तो भविष्य में आप से आप प्रकट हो जाएगा कि वास्तविक बात क्या थी। यद्यपि भविष्य के संबंध में हम अपनी कोई निश्चित राय नहीं दे सकते तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि जो सुधार सीमा प्रांत को दिए गए हैं वे अपूर्ण और असंतोषप्रद होते हुए भी यदि उदारता के साथ चालू रखे जा सके तो सुधार की भविष्य में थोड़ी-बहुत संभावना की जा सकती है। परंतु भारत में जैसाकि मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार कि दुर्गति करके जनता में उसके प्रति अश्रद्धा फैलाई गई, यदि उसी तरह सीमा प्रांत में भी किया गया तो सुधार का कोई परिणाम न होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## सर लुईस स्टुअर्ट और मुसलमान

जहां अंग्रेजों में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो सांप्रदायिक प्रवृत्ति वालों की निंदा करते हैं वहां सर स्टुअर्ट के समान व्यक्ति भी हैं जो आज सांप्रदायिक मुसलमानों से अपनी मित्रता जोड़ने को उत्सुक हैं। वे मुसलमानी धर्म और भावना का आदर करने वाले बन रहे हैं। हमें इसमें संदेह है कि सर स्टुअर्ट का मुसलमानों के प्रति यह आदर और प्रेम आदि शुद्ध प्रेम पर स्थित है या कि विरोध भाव पैदा करने के लिए यह अस्त्र चलाया जा रहा है। आज यदि मुसलमान अपने हठ को छोड़कर राष्ट्रवादियों के साथ चलने का प्रयत्न करें तो स्टुअर्ट महोदय तब भी उनसे मित्रता करने के लिए हाथ बढ़ावेंगे ? भारत की बात तो अपवादस्वरूप मानी जा सकती है। स्टुअर्ट महोदय को अपनी इस उदारता का परिचय पैलेस्टाईन, मिस्र और अरब में देकर अपनी उदारता का परिचय देना चाहिए।

(रविवार, 24 अप्रैल 1932)

## शांति की आवश्यकता

दिल्ली कांग्रेस के मनोनीत सभापति पूज्य मालवीयजी की गिरफ्तारी और श्रीमती सरोजिनी नायडू की सजा के बाद भारत की राजधानी और सरकारी शासन केंद्र दिल्ली में कांग्रेस वालों का जमाव हो गया। चांदनी चौक का घंटाघर कांग्रेस की कार्रवाइयों का केंद्र बना। विषय निर्धारिणी समिति की बैठक भी, कहा जाता है, हुई जिसमें कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति द्वारा पास किए हुए प्रस्ताव बहुमत से पास किए गए। यही नहीं, वरन् उन प्रस्तावों की तथा कांग्रेस के गिरफ्तार स्वागताध्यक्ष के भाषण की छपी हुई प्रतियां भी जनसाधारण में वितरित की गईं। जिस प्रकार कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने किसी न किसी प्रकार और किसी न किसी रूप में कांग्रेस का अधिवेशन करने में अपनी तत्परता दिखाई उससे किसी प्रकार कम तत्परता उसे रोकने में सरकार ने नहीं दिखाई। बल्कि कहना तो यों चाहिए कि गवर्नमेंट कांग्रेस अधिवेशन होने की चर्चा छिड़ने के समय से ही अपनी कार्रवाई की तत्परता में लग गई थी। ज्यों-ज्यों अधिवेशन का दिन पास आता जाता था त्यों-त्यों उसकी तत्परता और बढ़ती जाती थी। यहां तक की दिल्ली कांग्रेस में शामिल होने वाले प्रतिनिधियों को, जो दूसरे सूबा से आए या आने वाले थे, उन्हें या तो अपने ही शहर में या दिल्ली में गिरफ्तार किया गया या उन्हें कांग्रेस में शामिल न होने की नोटिस दी गई। दिल्ली स्वागतकारिणी समिति को नए आर्डिनेंस के अनुसार सत्याग्रहियों का अड्डा करार देकर गैरकानूनी घोषित किया गया। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार एक सप्ताह में कांग्रेस संबंधी 670 गिरफ्तारियां की गईं। गुजरात के सेठ रणछोड़दास अमृतलाल, जो उस जमाव के सभापति थे तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू द्वारा मनोनीत कांग्रेस के सभापति श्री गंगाधर राव देशपांडे भी गिरफ्तार कर लिये गए। पुलिस ने गैरकानूनी संस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में शामिल होने वाले लोगों की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए लाठी का भी प्रयोग किया। इस प्रकार शक्ति लगाने का खासा परिचय सरकार की ओर से दिया गया।

इन सब बातों को कहने का तात्पर्य यह है कि कांग्रेस वालों ने अपना काम किया और सरकार ने अपना काम करने में बड़ी दिलचस्पी ली। परंतु प्रश्न यह है कि इस प्रकार इन दोनों दलों के संघर्ष का क्या परिणाम हुआ और भविष्य में क्या होगा? हम इस संबंध की कोई आलोचना नहीं करना चाहते और न अपनी राय ही देना उचित समझते हैं क्योंकि जो कुछ हुआ वह कांग्रेस और सरकार के दरम्यान में जो युद्ध चल रहा है उसका अंश है, परंतु कुछ विगत बातों पर ही प्रकाश डालना चाहते हैं। हमने पहले भी एक बार लिखा था कि यदि सरकार कुछ करने के पहले दूरदर्शितापूर्ण विचार कर लिया करे तो उसे सफलता अधिक प्राप्त हो सकती है। हम आज फिर उन्हीं शब्दों को दुहराते हैं। व्यवस्थापिका सभा में एक सदस्य के प्रश्नोत्तर में होम मेंबर ने यह स्पष्ट शब्दों में कहा था कि कांग्रेस गैरकानूनी संस्था नहीं है। हमारा जहां तक विश्वास है शायद इसी समाचार की पुष्टि पर ही श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कांग्रेस के अधिवेशन करने में तत्परता दिखलाई थी और पूज्य मालवीयजी जैसे दूरदर्शी महापुरुष ने कांग्रेस का सभापति होना स्वीकार किया था। किंतु सरकार की ओर से दिल्ली की कांग्रेस स्वागतकारिणी समिति गैरकानूनी घोषित की गई। यद्यपि श्रीमती नायडू ने एक पत्र प्रतिनिधि के पूछने पर यह स्पष्ट कर दिया था कि—'स्वागत-समिति स्थानीय सज्जनों की एक नियमित सामाजिक संस्था है और कांग्रेस के अधिवेशन होने के कार्यों में सहूलियत पहुंचाने की गरज से बनाई गई है। अतः वह इंडियन नेशनल कांग्रेस का न तो कोई अंग है और न तो उसके सदस्यों को कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेना ही जरूरी है।' इन बातों पर यदि विवेचनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो ऐसा जान पड़ता है कि सरकार ने पहले से ही कुछ जल्दबाजी शुरू कर दी थी। संभव है कि सरकार ने कांग्रेस के प्रति अपनी नीति निर्धारण करते समय उसके अधिवेशन का होना खतरनाक समझा हो और इसी से शायद उसने स्वागतकारिणी समिति को गैरकानूनी घोषित किया हो? परंतु विचारणीय बात यह है कि इस प्रकार के संघर्षों का परिणाम क्या होता है? हमें दुःख है कि इस प्रकार अशांत वातावरण से देश की बड़ी हानि हो रही है।

एक ओर गोलमेज कॉन्फ्रेंस की कार्रवाइयों के अनुसार भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने पर विचार किया जा रहा है, दूसरी ओर ब्रिटेन की वर्तमान सरकार भारत की कांग्रेस ऐसी राजनीतिक संस्था को जिस नीति से नष्ट करने के लिए तत्पर है उससे नरम दल वाले ही नहीं बल्कि विलायत के बड़े-बड़े विद्वान और राजनीतिज्ञ भी सहमत नहीं हैं। आर्थिक दृष्टि से इस समय संसार की हालत खराब हो रही है। भारत में आर्थिक स्थिति की जितनी भयंकर दशा है उसका विवरण देने की आवश्यकता नहीं। ऐसी दशा में इस प्रकार आर्डिनेंसों के लगाने तथा पुलिस की तत्परता से आपस का मनोमालिन्य कैसे दूर होगा? यह हम मानते हैं कि कांग्रेस का यह अधिवेशन कथित रूप से असफल हुआ, परंतु कांग्रेस के इस अधिवेशन के संबंध में जो प्रचार कार्य हुआ उसका श्रेय किस पर है? हो सकता है कि सरकार ने जो नीति बरती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है वह देश में शांति कायम रखने तथा अपने शासन की रक्षा के लिए हो। परंतु पता नहीं क्या बात है कि देखने और सुनने वालों तथा समाचार-पत्र पढ़ने वाले जनसाधारण लोगों के हृदय में उसकी नीति पर संदेह बना रह जाता है? कुछ भी हो यह निर्विवाद है कि जब तक देश में यह आपसी संघर्ष दूर न होगा और समझौते के अनुसार कार्य न किया जाएगा तब तक शांति का वातावरण उपस्थित नहीं हो सकता। अशांति किसी भी देश के शासक और प्रजा दोनों के लिए हानिकारक है। सरकार शक्तिशालिनी है, उसे सब प्रकार के देश पर शासन करने का अधिकार है परंतु यदि वह रचनात्मक और विधानात्मक नीति से काम ले तो सफलता की आशा अधिक है और इसीलिए प्रायः सभी ओर से शांति की आवश्यकता की पुकार हो रही है।

## मौलाना का विवाह

अठारह वर्ष तक विधुर रहने के उपरांत मौलाना शौकत अली इस वृद्धावस्था में एक अंग्रेज महिला को जिसका नया नाम आयशा बेगम है अपनी धर्मपत्नी के रूप में वरण (?) करने का सुख सौभाग्य प्राप्त किया है। श्रीमती आयशा बेगम इस विवाह के पहले भी दो-तीन विवाहों का सुख प्राप्त कर चुकी हैं और मौलाना के कथनानुसार वह अब उनसे भी बहुत प्रेम करती हैं। मौलाना स्वयं भी इससे अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं कि उनकी आयशा उन्हें प्राप्त हो गई। यद्यपि मौलना साहब के पुत्र तथा उनके संबंधी इस विवाह के विरोधी हैं परंतु मौलाना साहब अपने हठवाद पर स्थिर रहे जैसाकि वे पहले से भी अपनी हठवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। मुस्लिम समाज के अनेक लोगों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ है कि जीवन का अधिकांश भाग विधुर रूप से बिताने के अनंतर इस वृद्धावस्था में मौलाना को संगिनी की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई? आपने अपने विवाह के संबंध में जो वक्तव्य दिया है उससे मौलाना की बहादुरी का वास्तविक रूप से पता चलता है। आपने बार-बार इस बात की घोषणा की है कि अब वे बड़ी तत्परता के साथ इस्लाम धर्म की रक्षा और प्रचार के लिए लड़ाई में उतरेंगे। यही नहीं, वे अब श्रीमती आयशाजी के साथ अमेरिका में अपने सांप्रदायिक ढिंढोरे को पीटने के लिए प्रस्थान करने वाले हैं। मौलाना साहब ने अपने इस बुढ़ापे के ब्याह को यह सिद्ध करके दिखा दिया है जैसा आपने कहा भी है कि उन्होंने अपने पैगंबर साहब का अनुसरण किया है क्योंकि उन्होंने भी 51 वर्ष की उम्र में अपना विवाह किया था। वास्तव में धर्म का अनुसरण करने वालों में मौलाना का नाम अग्रगण्य है।

## काश्मीर

गत डेढ़ वर्षों से संप्रदायवादी मुसलमानों ने काश्मीर के संबंध में जो-जो अनर्गल और असत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बातें फैलाईं तथा जिनका समर्थन करने में भारत के एंग्लो-इंडियन और ब्रिटेन के कतिपय पत्रों ने उत्साह दिखाया उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि सचमुच काश्मीर के मुसलमानों को काश्मीर दरबार हर तरह से कष्ट दे रहा है। परंतु इस कथन में सत्य का अंश उतना ही कम है जितना कि झूठ का अंश अधिक। मुसलमानों की सबसे बड़ी शिकायत है कि उन्हें राज्य में नौकरियां नहीं मिलतीं। ग्लेसी कमीशन को इस संबंध में दो सूचनाएं दी गई थीं। एक सूचना में लिखा गया था कि इस समय राज्य में 12 बी.ए. और 133 मैट्रिक पास मुस्लिम विद्यार्थी बेकार हैं। दूसरी सूची में दिया गया था कि काश्मीरी पंडितों में से 107 बी.ए. और 931 मैट्रिक बेकार हैं। इन संख्याओं से दो बातों पर प्रकाश पड़ता है। पहला तो यह कि मुसलमानों ने काश्मीर राज में किए गए शिक्षा प्रचार से कुछ भी लाभ नहीं उठाया। दूसरी बात यह है कि बेकारों की संख्या काश्मीरी पंडितों में ही अधिक है। काश्मीर में मुसलमानों को शिक्षा संबंधी अनेक ऐसी सुवधाएं प्राप्त हैं जो हिंदुओं को नहीं है। जैसे कई-एक छात्रवृत्तियां केवल मुसलमानों के लिए ही सुरक्षित रखी गई हैं जबकि गैरमुसलमानों के लिए एक भी नहीं है। संप्रदायवादी मुसलमानों द्वारा इस प्रकार का व्यर्थ दोषारोपण कहां तक तत्व के ऊपर अवलंबित है इसे अब जनता अच्छी तरह समझ गई है।

## जापान और ब्रिटेन

जापान और चीन के गत मनमुटाव और युद्ध के कारण कई बातों पर प्रकाश पड़ा है। इस युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया है कि राष्ट्रसंघ का कितना अधिक मान और सम्मान होता है। गत सप्ताह में इंग्लैंड के कामंस सभा में चीन और जापान के प्रश्न पर खूब विवाद हुआ। उस अवसर पर भाषण करते हुए सर आस्टिन चेंबरलेन ने कहा कि अंतर्राष्ट्रीय मामलों में कड़े शब्दों के व्यवहार से लाभ के बदले हानि पहुंचती है। इधर ब्रिटेन वालों की यह हालत है और उधर जापान ने घोषित किया कि वह किसी भी विरोध की कुछ भी परवाह न करते हुए मंचूरिया की सबसे रक्षा करेगा। जापान ने यह भी घोषित किया है कि वह इस संबंध में किसी की एक भी न सुनेगा। ऐसी दशा में राष्ट्रसंघ की, जो इसी प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय मामलों के सुलझाने के लिए स्थापित किया गया है तथा जिसकी सदस्यता के पद पर ब्रिटेन भी आरूढ़ है, उपयोगिता क्या रह गई। राष्ट्रसंघ आखिरकार ऐसे ही देशों के अधिकारियों का बनाया हुआ संघ है। अतः जब उसके सदस्य ही उसकी मान मर्यादा की रक्षा का प्रयत्न नहीं करेंगे तो और कौन करेगा। परंतु सच बात तो यह है कि ब्रिटेन जापान के विरुद्ध कुछ भी करना नहीं चाहता। अब देखना है कि राष्ट्रसंघ अंतर्राष्ट्रीय शांति स्थापन कार्य में किस रुख से कार्य करता है?

(गुरुवार, 28 अप्रैल 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# ओटावा सम्मेलन

ब्रिटिश साम्राज्यांतर्गत आर्थिक सम्मेलन का एक अधिवेशन ओटावा में शीघ्र होने वाला है। इस सम्मेलन में इस बात पर निर्णय किया जाएगा कि व्यवसाय-वाणिज्य तथा आयात-निर्यात के संबंध में ब्रिटिश साम्राज्यांतर्गत अन्य उपनिवेशों, विशेष रूप से भारत के साथ ब्रिटेन की आर्थिक नीति क्या होनी चाहिए? अनुदारों के नेता श्री बाल्डविन को सम्मेलन में भारत के साम्राज्यांतर्गत संरक्षण पर पुनः विचार किए जाने की अधिक आशा दिखाई दे रही है। इसी समस्या को दृष्टि में रखकर गवर्नमेंट ने इस कॉन्फ्रेंस की घोषणा की है तथा देश के प्रमुख प्रमुख व्यापारियों तथा व्यापारिक सभाओं से इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने को आमंत्रित किया है कि ग्रेट ब्रिटेन और भारत के बीच व्यवसाय के संबंध में एक ऐसी नीति का निर्धारण हो जाना चाहिए जो दोनों देशों के व्यापार के लिए लाभदायक हो।

इसमें संदेह नहीं कि इधर पिछले पांच-छह वर्षों के भीतर ब्रिटेन के व्यापार को बड़ी क्षति हुई, साथ ही, भारत के व्यापार को भी। कहना तो यह चाहिए कि वर्तमान आर्थिक संकट का प्रभाव ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत सभी देशों पर भली भांति पड़ा है। गत फरवरी में पिछले वर्ष के आयात-निर्यात के संबंध में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसे देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि गत दो वर्षों में ब्रिटिश भारत में आने वाले माल अर्थात् भारतीय आयात में 105 करोड़ की और ब्रिटिश भारत से जाने वाले माल अर्थात् निर्यात में 142 करोड़ की कमी हुई है। इस प्रकार कुल मिलाकर समूचे व्यापार में 247 करोड़ की कमी हुई है। इसी प्रकार ब्रिटेन के नए व्यय के मूल धन के नकद मूल्य को देखने से भी यही पता चलता है प्रतिवर्ष वह मूलधन कम ही होता जाता है। सन् 1927 ईस्वी में ब्रिटेन के व्यय के मूलधन का नकद मूल्य 317,000,000 पौंड था और सन् 1931 में घटकर वह 102,000,000 पौंड हो गया। ब्रिटेन के व्यय संबंधी उक्त आंकड़ों के देखने से यह भी स्पष्ट पता चल जाता है कि उसकी भी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। अभी हाल में ब्रिटेन ने कर संबंधी जो नई नीति स्वीकृत की है वह भी इसी आर्थिक कठिनाइयों के ही कारण। इस प्रकार देखने से यह स्पष्ट है कि दोनों देशों की व्यावसायिक दशा अच्छी नहीं है। इस प्रकार भारत और ब्रिटेन के व्यवसायी समाज में इस बात का प्रयत्न भलीभांति हो रहा है कि व्यवसाय की उन्नति किस प्रकार की जाए। भारतीय व्यापारी भारत के बाजारों में अपने माल के खपत कराने का प्रयत्न कर रहे हैं और ब्रिटेन के व्यापारी अपने और इसी प्रकार के व्यापारिक कारणों से ही ब्रिटेन ने ओटावा सम्मेलन अपना पल्ला भारी करने के लिए रचना रची है।

अब प्रश्न यह होता है कि ओटावा कॉन्फ्रेंस में भारतीयों का प्रतिनिधित्व कहां तक सफल होगा। अभी हाल में सरकार ने ओटावा कॉन्फ्रेंस के लिए जो प्रतिनिधि चुने हैं उनके संबंध में भारत के अनेक प्रमुख व्यवसायियों की अच्छी सम्मति नहीं है। बंबई के एक प्रसिद्ध व्यापारी का कहना है कि सरकार ने जिन प्रतिनिधियों को चुना है वे यद्यपि गैर-सरकारी हैं परंतु वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारतीय व्यवसायी मंडल का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। वे वहां इस बात को भलीभांति स्पष्ट नहीं कर सकते कि भारत के व्यापारी समाज की वास्तविक स्थिति क्या है और वे किस प्रकार की नीति निर्धारण करने से ब्रिटेन से सहयोग कर सकते हैं। एक ओर श्री बाल्डविन का कहना है कि ओटावा में यह नई व्यवस्था आर्थिक लाभ ही की भित्ति पर की जाएगी और उभयपक्ष स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सकेंगे। इस प्रकार इस नए आर्थिक संबंध से साम्राज्य से होने वाले लाभों और कर्तव्यों का अधिक ज्ञान होगा। दूसरी ओर भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी बालचंद हीराचंद सरकार कि इस नीति का घोर विरोध करते हैं जिसे वह कॉन्फ्रेंस में बरतने जा रही है। उन्होंने व्यावसायिक आंकड़ों के द्वारा यह सिद्ध करके दिखाया है कि इस कॉन्फ्रेंस से भारत के व्यापार की हानि अधिक है और लाभ बहुत कम। आपने सरकार को इस बात से आगाह किया है कि बिना भारत कि व्यापारिक स्थिति की भलीभांति जांच किए हुए तथा बिना यहां के बड़े-बड़े व्यापारियों से परामर्श लिये यदि सरकार या उसके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि ओटावा कॉन्फ्रेंस में किसी प्रकार का ऐसा समझौता करेंगे जो भारतीय व्यवसाय की दृष्टि से हानिकर होगा या जो भविष्य में भारत को मिलने वाले सुधारों के मार्ग में बाधक होगा तो उसकी जिम्मेदारी सरकार पर स्वयं होगी। बंबई के भारतीय व्यवसायी मंडल ने अपनी त्रैमासिक बैठक में भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। इस मंडल के सभापति श्री कारंजिया और उप सभापति मनु सूबेदार का कहना है कि कॉन्फ्रेंस में अनुचित प्रतितिधित्व के कारण भारतीय व्यवसाय की हानि हो जाने की अधिक संभावना है और लाभ की कम। इस प्रकार भारत के प्रमुख व्यापारियों की धारणा है कि ओटवा कॉन्फ्रेंस ब्रिटेन अपने व्यावसायिक लाभ के लिए कर रहा है।

उक्त विचारों से यह भलीभांति जाना जा सकता है कि भारतीय व्यवसायी अब यह समझ गए हैं कि देशी व्यापार को किस नीति निर्धारण करने से लाभ हो सकता है। वास्तविक रूप से यदि विचार किया जाए तो यह स्पष्ट है कि ओटावा कॉन्फ्रेंस में भारत के प्रसिद्ध व्यापारियों से परामर्श लेकर काम न करना सरकार के लिए अनुचित है। उसे भारत के प्रमुख व्यवसायियों को कॉन्फ्रेंस में प्रतिनिधि रूप में निर्वाचित करना चाहिए था और यदि उसने ऐसा नहीं किया तो अपनी परंपरागत नीति का परिचय दिया है। यह आश्चर्य की बात है कि ब्रिटेन भारत को साम्राज्यांतर्गत-संरक्षण पर पुनः विचार करने के लिए आमंत्रित करता है और उसके प्रमुख आर्थिक व्यवसायी मंडल से सलाह तक नहीं लेता? इस प्रकार के कार्य से यह कैसे आशा की जा सकती है कि ब्रिटेन और भारत की आर्थिक नीति को लाभ की भित्ति पर सफलतापूर्वक स्थापित किया जा सकेगा?

हमारी समझ में ब्रिटेन और भारत का आर्थिक समझौता तभी सफलतापूर्वक हो सकता है जब वे एक-दूसरे का खयाल रखेंगे। यदि ब्रिटेन अपने स्वार्थ की भित्ति पर व्यावसायिक समझौता करना चाहता है तो यह उसकी भूल है। इस प्रकार के काम से उसकी हानि होने की अधिक संभावना है। यदि ओटावा सम्मेलन के संबंध में सरकार की नीति स्पष्ट न हुई और भारतीय व्यवसायियों के परामर्श की ओर ध्यान न दिया गया तो कुछ राजनीतिज्ञों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह कहना है कि 'इस कॉन्फ्रेंस से ब्रिटेन जितना देना चाहता है उससे कहीं अधिक लेना चाहता है' पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाएगा।

## कैदियों का श्रेणी-विभाजन

जेलों में राजनीतिक कैदियों के श्रेणी विभाजन के संबंध में हमारे पास इधर कई शिकायतें आई हैं। लोगों की शिकायतों का आशय यही है कि पिछले सत्याग्रह आंदोलन में जो प्रतिष्ठित लोग जेल गए उन्हें 'ए' क्लास दिया गया था और इस आंदोलन में फिर जब वे ही जेल गए तो उन्हें 'बी' क्लास दिया गया है। अर्थात् पिछली बार राजनीतिक कैदियों के श्रेणी विभाजन उनकी प्रतिष्ठा तथा उनकी योग्यता के अनुसार किया जाता था तथा इसका विशेष ध्यान रखा जाता था परंतु इस वर्ष श्रेणी विभाजन में पिछले साल की तरह उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। अनेक कैदी ऐसे हैं जो प्रतिष्ठित हैं, धनी हैं, आदर वाले हैं और जो पिछले आंदोलन में 'ए' क्लास में थे परंतु वे ही इस आंदोलन में 'बी' क्लास में रखे गए हैं। इसी प्रकार 'बी' और 'सी' क्लास वाले कैदियों का श्रेणी विभाजन भी उचित नहीं किया जाता। इस संबंध में हमारी राय यही है कि अधिकारियों को राजनीतिक कैदियों का श्रेणी विभाजन करते समय उनकी मान प्रतिष्ठा का खयाल अवश्य रखना चाहिए। वे जिस श्रेणी के योग्य हों उनको उसी श्रेणी में रखा जाना चाहिए। नहीं तो श्रेणी विभाजन का महत्व ही क्या रह जाएगा?

(रविवार, 1 मई 1932)

## भारतमंत्री का भाषण

पिछले सप्ताह हाउस ऑफ कामंस में भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने अन्य सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए भारत की वर्तमान परिस्थिति के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं उनपर एकाएक ध्यान आकर्षित होना अनिवार्य है। आपका कहना है कि पिछली गोलमेज कॉन्फ्रेंस में हमने महात्मा गांधी के साथ सहयोग करने की बड़ी चेष्टा की तथा हम भारत के साथ मित्रता स्थापित करने के लिए तैयार थे परंतु कांग्रेस ने हमारी समस्त चेष्टाओं को विफल कर दिया। यदि महात्माजी सहयोग स्थापित करना चाहें तो यह संवाद बिना किसी मध्यस्थ के सरकार के पास पहुंचाया जा सकता है। सर सेमुएल होर ने विचार-परिवर्तन के संबंध में भी यह कहा कि यदि रुख में तबदीली हुई है तो वह कांग्रेस के रुख में। हम लोगों ने सहयोग का पर्दा अभी नहीं गिराया है। इसी प्रकार आपके संपूर्ण भाषण को पढ़ने से यह पता चलता है कि देश की वर्तमान परिस्थिति की जिम्मेदार कांग्रेस है, ब्रिटिश गवर्नमेंट नहीं। आर्डिनेंस तथा आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संकट के संबंध में भी आपको आशा की बड़ी झलक दिखाई पड़ रही है.।

अब यहां पर इस बात का विचार करना है कि भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने जो बातें अपने भाषण में कही हैं वे जायज कहां तक हैं। जो अभियोग उन्होंने कांग्रेस या महात्मा गांधी पर लगाए हैं उसकी जिम्मेदारी पूर्ण रूप से कांग्रेस की है या सरकार की भी? निष्पक्ष भाव से सोचने और विचार करने से यह प्रकट होता है कि देश में वर्तमान परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने की जिम्मेदारी सरकार पर अधिक है। पिछले गोलमेज सम्मेलन से महात्मा गांधी जब लौट कर भारत आए और उन्होंने वाइसराय से मुलाकात करनी चाही, साथ ही, उन्होंने जब यह कहा कि मैं पहले देश की परिस्थिति के संबंध में जांच कर लूंगा तब कोई अपनी निश्चित राय दूंगा तब उन्हें गिरफ्तार करके जेल के अंदर बंद क्यों कर दिया गया? सर सेमुएल होर अनेक बार भारत की वर्तमान समस्या पर बोल चुके हैं परंतु उन्होंने क्या एक बार भी इस संबंध में कोई विचार प्रकट किए? यह असंभव है कि वे अपनी इस गलती को न जानते हों परंतु वास्तव में सरकार की सबसे पहली गलती या कहना यों चाहिए कि कमजोरी थी जिसका उत्तर इस समय उसके पास कुछ नहीं है। सरकार की इस प्रारंभिक गलती के कारण ही वर्तमान सत्याग्रह आंदोलन इतना उग्र रूप धारण कर सका है। इसलिए सर सेमुएल होर का यह कहना कि 'हम लोग भारत से मित्रता करने को तैयार थे परंतु कांग्रेस ने हमारी समस्त चेष्टाओं को विफल कर दिया' एक अंश तक न्याय संगत नहीं जान पड़ता। भारतमंत्री का यह भी कहना है कि कांग्रेस ने अपने रुख में तबदीली की है परंतु सरकार ने नहीं। यह बात भी अस्पष्ट है। सरकार ने अपना रुख जैसा तबदील किया है यह समझने वाले समझते हैं। एक तो सरकार ने महात्मा गांधी को गिरफ्तार करके पहली बार रुख बदला, दूसरे उसने देश में शांति और व्यवस्था की स्थापना के लिए तथा कांग्रेस और सत्याग्रह आंदोलन को दबाने के लिए नए-नए आर्डिनेंसों को निकालकर अपनी रुख की तबदीली का अच्छा परिचय दिया। महात्मा की गैरहाजरी में कांग्रेस की तरफ से लड़ाई की तैयारी हुई यह भी मानना पड़ेगा। इसके परिणामस्वरूप इस समय साठ हजार के लगभग स्त्री-पुरुष जेलों में बंद हैं। ऐसी हालत में महात्मा गांधी को रुख तबदीली का मौका ही कहां मिला? कांग्रेस कर ही क्या सकती है जब कि देश के बड़े-बड़े नेता जेलों में बंद हैं। सेमुएल होर ने देश की आर्थिक स्थिति के संबंध में जो बातें कहीं उससे भी यही प्रकट होता है उनको सचमुच अभी इस संबंध में वास्तविक ज्ञान नहीं है। भारत सरकार को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है, वह प्रत्येक विभाग में काट-छांट कर रही है, रेलवे-विभाग में करोड़ों का घाटा हुआ है, कितने ही लोग बेकार घूम रहे हैं, फिर भी सर सेमुएल होर का बार-बार का यह कहना कि इस समय पहले की अपेक्षा भारत की आर्थिक दशा अच्छी है, बड़ा ही आश्चर्यजनक है। भारत-मंत्री ने बड़ी धीरता और संतोषपूर्वक इस बात का प्रकाश किया है कि भारत में इस समय कोई बड़ा संकट नहीं उपस्थित है वरन् इस समय की स्थिति आशामय जान पड़ती है। यही नहीं बल्कि आप सदस्यों को यह भी आश्वासन देते हैं कि वे यह न समझें कि भारत में क्रांति मची हुई है। इन बातों से जान पड़ता है कि सर सेमुएल होर पर एंग्लो-इंडियन पत्रों का बड़ा प्रभाव है। संभव है, वे शायद इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रचारक पत्रों के आधार पर ही अपने यह विचार प्रकट कर रहे हों। रहा देश में किस प्रकार की क्रांति मची हुई है, उससे परिस्थिति कितनी आशामय जान पड़ती है, इसका निष्पक्ष लोग ही उत्तर दे सकते हैं। नए-नए आर्डिनेंसों द्वारा देश प्रेम के काम में भी कितनी अड़चन पड़ रही हैं तथा पुलिस की कड़ाई के संबंध में जो समाचार प्राप्त हो रहे हैं या हुए हैं उनके संबंध में भी सर सेमुएल होर को कोई चिंता नहीं है और उनकी दृष्टि में पुलिस आर्डिनेंसों का सदुपयोग ही कर रही है। इसी प्रकार भारतमंत्री ने यह स्पष्ट कहा है कि सरकार अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती तथा कानून भंग करने वालों के साथ जिनका कोई भी संबंध है उनके साथ सहयोग करने का अब कोई प्रश्न नहीं है।

सर सेमुएल होर ने अपने भाषण में जिस नीति का उल्लेख किया है वह सहयोग की नीति हमारी समझ में नहीं है। आपका एक ओर यह कहना कि 'हम लोगों ने सहयोग का पर्दा अभी नहीं गिराया है' और दूसरी ओर यह कहना कि वे अपनी उसी नीति पर दृढ़तापूर्वक डटे हैं, दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। आप महात्माजी को यह सलाह देते हैं कि यदि वे गोलमेज से संबंध फिर स्थापित करना चाहें तो यह संवाद बिना मध्यस्थ के सरकार के पास पहुंचाया जा सकता है एवं सरकार भी बड़ी सावधानी के साथ इस विषय पर विचार करेगी। परंतु क्या सर सेमुएल होर ने इस बात पर भी विचार किया है कि महात्माजी स्वयं इस संबंध में कोई निर्णय कैसे दे सकते हैं? वे इस समय जेल में बंद हैं। वे जब तक इस संबंध में भारत के अन्य नेताओं से सलाह नहीं कर लेते या जब तक वे यह नहीं जान लेते कि देश कि क्या हालत है तब तक वे किस उसूल पर, किस जानकारी पर सहयोग का संबंध स्थापित कर सकते हैं? यदि सरकार ने पहली गलती उनको गिरफ्तार करके की है तो उनको छोड़कर सहयोग उत्पन्न कराने का अवसर भी उसे देना चाहिए। इसलिए जब तक सरकार अपनी पुरानी नीति पर दृढ़ है तब तक सहयोग की आशा नहीं दिखाई देती। हमें दुःख है कि भारतमंत्री की समझ में अभी तक वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान नहीं हुआ। भारतमंत्री अपने दल वालों को इन बातों से प्रसन्न रख सकते हैं परंतु विलायत के अनेक उदार नीति वाले लोगों के विचारों में उनकी बातों से परिवर्तन नहीं हो सकता। मजदूर दल के नेता मिस्टर लांसबरी का यह कहना है कि बिना किसी प्रकार के शस्त्रास्त्र के अहिंसात्मक उपायों से आंदोलन करने वाले भारतवासी ही इस बात को तय कर सकते हैं कि भारत का शासन किस रूप में होना चाहिए। हम आशा करते हैं कि जो कुछ हुआ सो हुआ अब आगे दोनों तरफ से वह कोशिश होना चाहिए कि मेल का रास्ता निकाला जाए और पुनः सहयोग द्वारा देश की कल्याण की बातें की जाएं।

## चर्चिल-वचनम्

भारत के संबंध में मिस्टर चर्चिल सर्वदा सतर्क रहते हैं। अभी हाल में भारत सचिव ने कामंस सभा वालों को तसल्ली देते हुए कहा कि भारत की स्थिति आज कल सुधर रही है। इस शुभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समाचार को सुनकर चर्चिल साहब के हृदय में आनंद की लहरें उठने लगी हैं। इस अवसर पर आपने अपने देशवासियों को सलाह दी कि वे जल्दी में आकर भारत को कोई 'वचन' देने की घोषणा न कर दें। इस प्रकार अपने देशवासियों को 'वचन' देने के खतरे से बचा कर आपने सचमुच भारत के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया है। पर शायद मिस्टर चर्चिल को यह नहीं मालूम है कि भारतवासियों के सन्मुख अब उन वचनों का कोई महत्व नहीं रह गया है। ऐसे वचन सुनते-सुनते भारतवासियों के कान पक गए हैं। उन वचनों को पूरा होने की तिथि की राह देखते हुए उनकी आखें भर आई हैं। इससे उनके हृदय में उन वचनों और घोषणाओं के प्रति कुछ भी सहानुभूति नहीं है। मिस्टर चर्चिल को मालूम हो जाना चाहिए कि भारत को जो वचन दिए जा चुके हैं वह उन्हीं की पूर्ति चाहता है।

(गुरुवार, 5 मई 1932)

## आर्डिनेंसों का भविष्य

वर्तमान सत्याग्रह आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने जो आर्डिनेंस निकाले थे उन्हें निकले हुए चार मास हो गए हैं। कहा जाता है कि आर्डिनेंसों के लागू रहने की अवधि छह मास तक रहती है। इसके अंतर आवश्यकतानुसार या तो वे आर्डिनेंस व्यवस्थापिका सभा की राय के अनुसार कानून के रूप में परिवर्तित कर दिए जाते हैं या अवधि समाप्त होने पर उनका महत्व स्वयं नष्ट हो जाता है। क्योंकि आर्डिनेंसों को फिर से जारी करने के लिए वाइसराय को व्यवस्थापिका सभा की भी सम्मति लेनी पड़ती है ऐसी दशा में दो महीने बाद अर्थात् लगभग जून के अंत में वर्तमान आर्डिनेंसों की अवधि समाप्त हो जाएगी। इसी बात को दृष्टि में रखकर पत्रों में इस बात की चर्चा है कि क्या आर्डिनेंस फिर से जारी किए जाएंगे? सरकार का रुख आर्डिनेंसों के संबंध में क्या होगा? ता. 2 मई को एसोसिएटेड प्रेस का इस आशय का एक तार प्रकाशित हुआ था कि ता. 15 मई के लगभग वाइसराय दिल्ली में एक खास सभा करने वाले हैं। उसमें प्रायः सभी प्रांतीय गवर्नरों को आमंत्रित किया गया है और इसी सभा में आर्डिनेंसों के भविष्य के संबंध में भी विचार होगा। *स्टेट्समैन* के शिमला के संवाददाता का भी इसी आशय का एक पत्र प्रकाशित हुआ था। संवाददाता का कहना था कि 'इस सभा में आर्डिनेंसों के संबंध में विचार किया जाएगा। साथ ही जानने योग्य बात यह भी है कि कुछ प्रभावशाली ऊंचे अधिकारी आर्डिनेंसों को प्रांतीय कानून बनाना चाहते हैं।' परंतु ता. 3 मई को एसोसिएटेड प्रेस ने अपने इस समाचार का खंडन प्रकाशित किया और दिल्ली में इस प्रकार की सभा के होने का समाचार असत्य ठहराया जिसमें आर्डिनेंसों और भावी सुधार पर विचार किया जाने को था।

समाचार जो कुछ भी हो, किंतु यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आर्डिनेंसों का भविष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्या होगा? पिछले सप्ताह भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने हाउस ऑफ कामंस में जो भाषण दिया था उसमें उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा था कि यह अभी से नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में आर्डिनेंसों का क्या रूप होगा। यह तो समय की आवश्यकता स्वयं बतलाएगी कि अभी आर्डिनेंस जारी रखे जाएं या उठा लिये जाएं। लंदन के प्रसिद्ध पत्र *टाइम्स* ने भी इसी सिलसिले में संपादकीय टिप्पणी करते हुए लिखा है आर्डिनेंसों के जारी रखने की आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक कि भारत की दशा में कोई तबदीली न हो। आर्डिनेंस स्वयं फैसला नहीं कर सकते। यदि सरकर वर्तमान नीति आगे बढ़ाने का भाव न दिखाए तो वह आर्डिनेंस की स्थिति को मजबूत बना सकती है क्योंकि उस समय वे नरम दल वालों को, जो भावी विधान के परिणाम की बहुत जल्द आशा कर रहे हैं, कांग्रेस के विरोधियों में मिला सकते हैं। वर्तमान भारत में विषम परिस्थिति के सुधारने के लिए उस संदेह को मिटाना है जिसके कारण कांग्रेस का प्रभाव है। आर्डिनेंसों के फिर से जारी करने का सवाल अभी से कुछ कहना बहुत जल्दबाजी है। यदि भारत सरकार को उनकी जरूरत होगी तो उनका कार्यकाल फिर से बढ़ाया जा सकेगा और निस्संदेह इस देश का लोकमत उसके साथ होगा। परंतु क्या ये उन्हीं प्रांतों में नहीं लगाए जा सकते जिनकी इनको जरूरत है?

उपरोक्त बातों से यह पता चलता है कि आर्डिनेंसों के भविष्य के संबंध में अभी भारत सरकार की कोई निश्चित राय नहीं है। *टाइम्स* ने जिस नीति को सामने रखकर उक्त टिप्पणी लिखी है वह स्पष्ट नीति से प्रकट होती है। *टाइम्स* का यह कहना एक प्रकार से ठीक ही है कि सरकार को अपनी वर्तमान नीति को आगे बढ़ाने का भाव न दिखाना चाहिए नहीं तो नरम दल वालों के सहयोग का अवसर भी हाथ से जाता रहेगा। इसमें संदेह नहीं है कि नरम दल के नेता नियम और विधान के अनुसार ही काम करना चाहते हैं परंतु इसके साथ ही साथ वे अन्याय के विरोधी भी हैं। सरकार जिस नीति को सामने रखकर आर्डिनेंसों का प्रयोग कर रही है और जिस सिद्धांत पर कार्य हो रहा है नरम दल के नेता उस नीति के विरोधी हैं। नरम दल के ही नेता नहीं कुछ उदार विचार के अंग्रेज भी सरकार की इस नीति के विरुद्ध आंदोलन कर रहे हैं। सरकार भविष्य में आर्डिनेंसों का क्या रूप रखेगी यह तो भविष्य आप से आप बतलाएगा परंतु यहां हमें दो बातों के संबंध में सरकार का ध्यान आकर्षित करना है। पहली बात यह है कि आज जिस नीति और ढंग से एंग्लो-इंडियन पत्र भारत के विरुद्ध अन्य देशों में प्रचार कार्य कर रहे हैं, तथा लोगों के विचार उल्टे-सीधे और अनुत्तरदायित्व पूर्ण समाचारों द्वारा परिवर्तित कर रहे हैं यह किसी भी समझदार और निष्पक्ष व्यक्ति से छिपा नहीं है। इसलिए सरकार को कोई भी कार्य बिना समझे-बूझे नहीं करना चाहिए। सरकार को जब तक कि परिस्थिति का पूर्ण-रूपेण ज्ञान न हो जाए तब तक उसे कोई निश्चित नीति निर्धारित करने का मौका न आने देना चाहिए। दूसरी बात है शांति और व्यवस्था की। आर्डिनेंसों के प्रयोग से सरकार अपनी चाहे जितनी सफलता समझती हो परंतु यह निश्चित है की शांति और व्यवस्था स्थापित करने का यह ढंग प्रशंसनीय नहीं है। आर्डिनेंसों के प्रयोग से सरकार यदि आज हजारों लोगों को जेल में बंद किए हुए है तो क्या देश में वास्तविक शांति स्थापित हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गई है? यह जरा समझने और सोचने की बात है। हम यह मानते हैं कि गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है उसका लक्ष्य है शासन की मजबूती, देश में आंदोलन को रोकना तथा शांति और व्यवस्था को स्थापित करना। परंतु देखना यह है कि वास्तव में हो क्या रहा है? पिछली बार भी सत्याग्रह आंदोलन में जब आर्डिनेंस निकाले गए थे तब भी नरम दलवालों ने इसका विरोध किया था और शांति से काम लेने की सलाह सरकार को दी थी। इस बार भी वही दशा हुई है और नरम दल वाले फिर विरोध कर रहे हैं। नरम दल के कुछ नेता तो सरकार की इस अनुदार नीति को देखकर नाराजी के कारण चुप हो रहे हैं। इसलिए शांति और व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव सबको हो रहा है और इसी काम में सरकार और देश दोनों का कल्याण है। अभी हाल में लंदन के *टाइम्स* और 4 मई के *स्टेट्समैन* ने भी सरकार को इसी प्रकार की राय दी है कि अब आर्डिनेंसों से काम न चलेगा वरन् भारत की मांगों पर विचार करके उसे संतोष देना ही होगा। वास्तविक रूप से सरकार इन बातों का ध्यान रखेगी तो आर्डिनेंसों का भविष्य आशाजनक होगा, इसमें संदेह नहीं।

## आचार्य द्विवेदीजी की 68वीं वर्षगांठ

पूज्य वयोवृद्ध आचार्य पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी की 68वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में 9 मई को हिंदी संसार में उत्सव मनाया जाएगा, इस सूचना से किस हिंदी साहित्य सेवी का हृदय प्रफुल्लित न हो उठेगा। आचार्य द्विवेदीजी वर्तमान हिंदी के प्रवर्तकों से हैं। आपने हिंदी की जो सेवा की है तथा उसकी उन्नति के लिए जितना महान त्याग और परिश्रम किया है, वह अकथनीय है। आज हिंदी की जो उन्नति दिखाई देती है उसका श्रेय आचार्य द्विवेदीजी को ही प्राप्त है। *सरस्वती* द्वारा आपने हिंदी के प्रचार और प्रसार में जितना हाथ बंटाया तथा हिंदी में अनेक सुकवि और सुलेखक उत्पन्न किए हैं वह किसी से छिपा नहीं है। वर्तमान खड़ीबोली की काव्य रचना तथा परिमार्जित गद्य शैली के जन्मदाता होने का यश भी आप ही को प्रात है। आचार्य के जीवन का अधिकांश भाग हिंदी की ही सेवा करते बीता है। आपकी मार्मिक, निष्पक्ष आलोचनाओं, अध्ययनशील विचारों तथा ओजपूर्ण टिप्पणियों द्वारा हिंदी संसार में जो उथल-पुथल उत्पन्न हुई वह हिंदी साहित्य इतिहास लेखकों तथा पाठकों के पूर्णरूपेण अवगत है। यद्यपि आप वृद्ध हो गए हैं, स्वास्थ्य भी अव्यवस्थित रहता है तो भी गृहस्थी के कार्यों से समय बचाकर हिंदी की सेवा में आप संलग्न रहते हैं। आचार्य द्विवेदीजी साहित्यिक क्षेत्र की उन महान आत्माओं में से हैं जिन्होंने तन और मन से ही नहीं वरन् धन से भी हिंदी की सेवा की है। इसलिए हम आचार्य द्विवेदीजी महाराज की सेवा में उनके जीवन के 68वें वर्ष में पदार्पण करने के लिए बधाई देते हैं तथा ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह चिरायु हों और हिंदी को उनकी सेवाओं का सौभाग्य प्राप्त होता रहे।

(रविवार, 8 मई 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# आर्थिक व्यवस्था का नमूना

भावी संघ शासन विधान में आर्थिक प्रबंध किस प्रकार का होगा, प्रांतीय सरकारों तथा केंद्रीय शासन में आर्थिक संबंध क्या होगा, उसके आय-व्यय के क्या-क्या साधन होंगे तथा किस नीति पर चलकर आर्थिक समस्या सफलतापूर्वक हल की जा सकेगी आदि बातों के संबंध में विचार करने के लिए सरकार ने जो कमेटी नियुक्त की थी उसकी रिपोर्ट गत सप्ताह प्रकाशित हो गई। इस रिपोर्ट में सरकारी कागजातों के आधार पर तथा अधिकांश रूप से सरकारी अफसरों की राय के अनुसार भावी संघ शासन विधान के केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के आय-व्यय के अनुमानित आंकड़े दिए गए हैं। उन्हीं आंकड़ों के आधार पर यह बतलाया गया है कि संघ शासन विधान के प्रारंभ में आर्थिक व्यवस्था का क्या रूप होगा और किस प्रकार आय-व्यय के प्रबंध से संघ की आर्थिक व्यवस्था ठीक होगी।

कमेटी ने भारत-शासन और प्रांतीय शासनों के लिए सन् 1935-36 के आर्थिक प्रबंध के लिए अनुमान लगाया है। कमेटी ने जिस नीति से आर्थिक प्रबंध करने का मार्ग दिखाया है उससे उसका अनुमान है कि संघ सरकार के खजाने में चार करोड़ 50 लाख रुपए की बचत होगी। प्रांतों में केवल संयुक्त प्रांत में 50 लाख और पंजाब में 30 लाख रुपए की बचत होगी। बाकी प्रांतों में कमेटी के अनुमान के अनुसार रुपयों की कमी रहेगी। कमेटी ने आय के संबंध में अनेक करों के लगाने के लिए भी सलाह दी है। कमेटी का कहना है कि संघ सरकार तंबाकू और दियासलाई पर कर बैठा सकती है तथा व्यापारी और कंपनियों के कामों में आने वाले स्टैंपों की आय को भी वह ले सकती है। प्रांतीय सरकारें तंबाकू कर, मृत्यु कर, यात्री कर, माल कर, तथा खेती से होने वाली आय पर भी कर लगाकर अपनी आय बढ़ा सकती हैं। कमेटी की यह खास सिफारिश है कि पहले दियासलाई पर कर लगाकर जल्दी लाभ उठाया जा सकता है। ऐसा करने से सरकारी खजाने में सात करोड़ रुपए की बचत होगी। पेंशन तथा प्रांतों के कर्ज देने के लिए भी कमेटी ने अलग आमदनी करने की सलाह दी है। 80-90 लाख रुपया फौजी कर्मचारियों के अलावा दूसरों को पेंशन देनी पड़ती है उसकी जिम्मेदारी संघ शासन पर होना चाहिए। आय कर से आमदनी जो कुछ हो उसमें—मद्रास को 1 करोड़ 83 लाख, बंबई को 3 करोड़ 43 लाख, बंगाल को 4 करोड़ 5 लाख, संयुक्त प्रांत को 1 करोड़ 23 लाख, पंजाब को 91 लाख, बिहार, उड़ीसा को 1 करोड़ 7 लाख, मध्य प्रांत को 59 लाख, आसाम को 29 लाख, और सीमा प्रांत को 10 लाख—आमदनी का बंटवारा होना चाहिए। इसके सिवा 13 करोड़ 20 लाख रुपया प्रांतीय सरकारों को मिलेगा परंतु कमेटी का कहना है कि प्रांतीय सरकारों को संघ शासन को 8 करोड़ 40 लाख रुपया देना चाहिए। इस प्रकार कमेटी ने आंकड़ों से यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक प्रांत के पास संघ शासन को देने के बाद बचत की काफी रकम बचेगी। हां केवल आसाम में 36 लाख की कमी रहेगी। इसके सिवा ऋण लेने की भी सिफारिश कमेटी ने की है। इस प्रकार आय-व्यय के कच्चे चिट्ठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को देखने से यह साफ प्रकट होता है कि कमेटी ने जितने भी आमदनी के जरिए बताए हैं यदि उसी के अनुसार काम किया जाएगा तब भी प्रांतों की आर्थिक दशा संतोषजनक न होगी। कमेटी ने केवल अनुमान से ही आय के तरीके बतलाए हैं ऐसी दशा में यह पहले से कैसे निश्चय कर लिया जा सकता है कि कोई भी आय पूर्णरूपेण निश्चित ही होगी। जब प्रांतों की आर्थिक हालत असंतोषजनक ही रहेगी तब ऐसी आर्थिक व्यवस्था से देश को क्या लाभ होगा? कमेटी ने आमदनी बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के करों के लगाने की भी सलाह दी है। आए दिन भी भारतवर्ष में करों के द्वारा ही आमदनी की जाती है। इधर भारत में करों की वृद्धि से जितनी आर्थिक दुर्दशा उत्पन्न हो गई है वह किसी से छिपा नहीं है। कहना यों चाहिए कि दिन-ब-दिन करों में वृद्धि ही होती जा रही है। एक जमाना था कि पोस्टकार्ड और लिफाफे एक पैसे और दो पैसे में बिकते थे परंतु एक वह समय आ गया है जब वही तीन पैसे और पांच पैसे में बिक रहे हैं। इसी प्रकार चुंगी, नमक, अफीम, रेलवे तथा बाहर से आने और जाने वाली चीजों पर भी कर लिया जाता है। यहां तक कि सौ रुपया पाने वाले नौकरी पेशावालों पर भी टैक्स लग गया है। यह दशा वर्तमान की है। परंतु कमेटी भावी संघ शासन के लिए जिसकी योजना अभी भविष्य के गर्भ में अंतर्निहित है पहले से ही करों के बढ़ाने की सिफारिश करके आमदनी की बढ़ती की सूरत बतला रही है। ऐसी दशा में भारत की आर्थिक स्थिति पर इन करों के बोझ का क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका अनुमान सहज में हो सकता है। देखा जाता है कि शिक्षा के विस्तार, उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए भी करों की आवश्यकता पड़ती है। और तब भी खर्च पूरा नहीं पड़ता। कमेटी ने जहां करों के द्वारा संघ-शासन के लिए आमदनी के जरिए का अनुमान किया है वहां उसे भारतीय शासन में जो फिजूलखर्ची हो रही है उसे बंद करा कर आमदनी के बढ़ाने के जरिए का भी निर्देश करना चाहिए था। शासन विभाग को जो इतना विस्तृत रूप धारण किए हुए हैं, यदि कुछ संकुचित करने की सलाह दी गई होती तो व्यय में कुछ कमी अवश्य होती। इसी प्रकार व्यय के अनेक मद ऐसे हैं जिनमें कमी की जा सकती थी और आमदनी बढ़ाई जा सकती थी। उच्च कर्मचारियों के वेतन में भी कमेटी यदि चाहती तो कमी करने के लिए सिफारिश कर सकती थी। परंतु इन विषयों के संबंध में कमेटी ने विशेष ध्यान देने की चेष्टा नहीं की। यह तो समझने की बात है कि करों का बोझ भारत वहीं तक सह सकेगा जहां तक उसमें सहने की शक्ति होगी परंतु दुःख है कमेटी ने आमदनी करने की जो नीति संघ शासन को अख्तियार करने की सलाह दी है वह संतोषजनक नहीं है। करों की आमदनी के साथ ऋण लेने की भी सिफारिश कमेटी ने की है और कहा है कि यदि करों से किसी समय प्रांतीय सरकारों का काम न चल सके तो ऋण लेने का हक भी वे रखती हैं परंतु उन्हें संघ सरकार की आज्ञा लेनी पड़ेगी।

कमेटी ने जिस नीति पर आर्थिक व्यवस्था करने का फैसला दिया है वह असंतोषजनक है। असेंबली के एक सदस्य का कहना है कि कमेटी ने आर्थिक व्यवस्था की जो नीति निर्धारण करने के लिए संघ शासन को सलाह दी उसकी नींव बड़ी कमजोर है। इसके सिवा ब्रिटिश भारत पर कमेटी ने करों के बोझ लादने की जो राय दी है उससे कोई भी देशभक्त और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बुद्धिमान व्यक्ति सहमत नहीं हो सकता। बंबई के प्रसिद्ध मिल मालिक श्रीयुत मोदी ने भी कमेटी की रिपोर्ट को असंतोषजनक बतलाते हुए कहा है कि कमेटी की सिफारिश असंतोषजनक हैं। ब्रिटिश भारत कोई भी बोझ अपने सिर लेना नहीं चाहता जिससे देश की आर्थिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। संघ शासन यदि इसी नीति के अनुसार स्थापित होगा जिस नीति के अनुसार कमेटी ने आर्थिक व्यवस्था का मार्ग बतलाया है तो सफलता की विशेष आशा नहीं की जा सकती। यह बात ठीक है कि आर्थिक व्यवस्था का प्रश्न बड़ा जटिल है और इस संबंध में जो कुछ किया जाए वह बड़ी जांच-पड़ताल के साथ। इस संबंध में जनता का अधिक खयाल रखना चाहिए तथा उसकी सम्मति के अनुसार ही कार्य करना उचित है। इसके विपरीत सरकारी कागजातों तथा उच्च अधिकारियों के ही अनुमान पर ही कोई आर्थिक व्यवस्था देश के लिए अनुकूल हो सकती है, यह बात ठीक समझ में नहीं आती। इसीलिए हमारी समझ में कमेटी ने संघ शासन विधान के लिए जो आर्थिक व्यवस्था बतलाई है उससे असंतोष होना स्वाभाविक है और संघ शासन की उससे कहां तक भलाई हो सकती है यह भी विचारणीय है।

## अछूतों की मांग

नागपुर की अछूतों की सभा में स्वागत मंत्री श्रीयुत हरदास ने सभापति का स्वागत करते हुए कहा कि 'पृथक और संयुक्त निर्वाचन का झगड़ा इतना बढ़ गया है कि हम अब किसी भी दशा में संयुक्त निर्वाचन को स्वीकार नहीं कर सकते। इस समय हमारी स्थिति बड़ी भयावह हो गई है। यदि कहीं संयुक्त निर्वाचन ही स्वीकार कर लिया गया तो निश्चय ही हमारी मृत्यु निकट होगी। 'श्रीयुत हरदास के उपरोक्त कथन से यह भली भांति प्रमाणित हो जाता है कि वे संयुक्त निर्वाचन का विरोध इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वह उनकी जाति के लिए हानिकर है वरन् वे उसका विरोध इसलिए कर रहे हैं कि संयुक्त निर्वाचन लागू हो जाने पर उनके दल का अस्तित्व ही नहीं रह जाएगा। ऐसे संकीर्ण विचार रखने वाले व्यक्तियों द्वारा ही आज भारत में सांप्रदायिक चुनाव का समर्थन किया जा रहा है। ऐसे लोगों को सर्वदा यह भय लगा रहता है कि जहां संयुक्त निर्वाचन लागू हुआ नहीं कि हम दूध की मक्खी बन जाएंगे और हमारी पूछ न होगी। क्या यह आशा की जा सकती है कि अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन समर्थन करने वाले श्रीयुत हरदास की बातों को ध्यानपूर्वक पढ़कर कोई निष्कर्ष निकल सकता है? श्री हरदास को अवश्य राजा-मुंजे पैक्ट के कारण घोर निराशा हुई होगी। यही कारण है कि उनके दल वाले आज पृथक् निर्वाचन की आड़ में अपना व्यक्तिगत हित साधन करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न कर रहे हैं। दलित सम्मेलन में संयुक्त निर्वाचन के समर्थकों की जो दुर्दशा की गई है उससे भी वह सिद्ध है कि अंबेडकर दल किस तरह अपनी बात का प्रचार करना चाहता है। परंतु संतोष की बात है कि श्री राजा प्रभृति अछूत नेताओं के कारण अंबेडकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दल का घृणित प्रचार और प्रयत्न बहुत कुछ कम हो गया है। हम आशा करते हैं कि संयुक्त निर्वाचन के समझदार अछूत नेता इस समय बहुत समझ-बूझकर अपनी कार्रवाई करेंगे और अंबेडकर दल की बंदर घुड़की और उनकी बकवास की तनिक भी परवाह न करेंगे।

(गुरुवार, 12 मई 1932)

## प्रचारक-प्रवृत्ति

जब से भारत में सुधार प्राप्ति के लिए आंदोलन होने लगा है तथा पिछले गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भारत की मांग पर विचार करने के लिए सरकार ने आशा दिलाई है तब से कुछ प्रचारक प्रवृत्तिवाही गोरे पत्रों को अधिक चिंता हो गई है। विलायत के गोरे पत्रों को विशेष चिंता तो प्रायः होती ही रहती है परंतु भारतवर्ष से निकलने वाले *स्टेट्समैन* और *इंग्लिशमैन* पत्रों को भी इस समय ऐसी चिंता हो गई है कि मानो ब्रिटिश शासन का सूत्र उन्हीं के हाथों में है। ये प्रचारक पत्र समय-समय पर अपने प्रचार का ऐसा उदाहरण पेश करते रहते हैं कि किसी भी उदार हृदय वाले के हृदय पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। समझ में नहीं आता कि इन पत्रों की नीति क्या है? कभी तो वे पत्र भारतीय सुधारों के विरुद्ध विषवमन करने लगते हैं, कभी महात्मा गांधी तथा नरम दल नेताओं को खरी-खोटी सुनाने लगते हैं और कभी-कभी जनता का रुख देखकर गोल-गोल बातें भी कह डालते हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो इसी प्रकार के प्रचारक पत्रों द्वारा आए दिन सरकार और भारत के बीच गलतफहमियां फैलाई जा रही हैं। भेदभाव का आज जो रूप दिखाई पड़ रहा है उसका श्रेय इन्हीं कुरुचिपूर्ण समाचारों को फैलाने वाले पत्रों को प्राप्त है।

जब से पत्रों में इस बात की चर्चा है कि सरकार भारत को प्रांतीय स्वराज्य देने के लिए सोच रही है और जल्दी से जल्दी इसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए विचार कर रही है, तब से *इंग्लिशमैन* की चिंता अधिक बढ़ गई है। अभी हाल में *लंदन टाइम्स* ने अपने अग्रलेख में भी इसी संबंध में कुछ विचार प्रकट किए थे। *इंग्लिशमैन* ने इस संबंध में अपनी जो राय प्रकट की है, वह पढ़ने योग्य है—'अभी प्रांतीय स्वराज्य देना अंधकार में कूदने के समान है। बंगाल को यदि प्रांतीय स्वराज्य दिया गया तो यह निश्चित है कि सभी नजरबंद छोड़ दिए जाएंगे और उनमें से बहुत से आदमी फिर हत्याकांड शुरू कर देंगे। क्या सर सेमुएल होर ने इस बात पर भी कभी विचार किया है कि बंगाल को प्रांतीय स्वराज्य देने में क्या फल होगा? बंगाल और बंबई तो कतई इस योग्य नहीं हैं कि उन्हें अधिकार दिए जाएं। हां, अन्य प्रांतों को यदि स्वराज्य दिया जाए तो गवर्नर को पूरे अधिकार रहें और नेकनीयती का सबूत देने के लिए प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषद वर्तमान सभी आर्डिनेंसों को कानूनी रूप दे दें।' वास्तव में *इंग्लिशमैन* की चिंता पर किसे न सहानुभूति होगी। परंतु प्रश्न यह है कि *इंग्लिशमैन* सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को जो सलाह दे रहा है उससे ब्रिटेन और भारत के हित का कहां तक संबंध है? क्या प्रांतीय स्वराज्य न दिए जाने पर और यदि दिया जाएगा तो आर्डिनेंसों को कानूनी रूप देने से अशांति का वातावरण जाता रहेगा और पूर्णरूपेण शांति की स्थापना हो जाएगी? जो कुछ भी हो यह सब तो भविष्य की बातें हैं परंतु यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसे ही पत्रों ने इस प्रकार के व्यर्थ के विवादों को उठाकर अशांति के बढ़ाने में हाथ बंटाया है। *इंग्लिशमैन* जिस तर्क के आधार पर सरकार को सलाह दे रहा है उससे यूरोपियन पूंजीपति और मिस्टर चर्चिल के संप्रदाय वाले अवश्य प्रसन्न होंगे। परंतु कोई भी समझदार व्यक्ति, जिनकी इच्छा है कि देश में शांति स्थापित हो तथा ब्रिटेन और भारत में समझौते के सिद्धांत पर आपस में सहानुभूति उत्पन्न हो, इन बातों से कतई सहमत नहीं हो सकते वरन् उनके हृदय में घृणास्पद भाव ही पैदा होंगे। *इंग्लिशमैन* कहता है कि प्रांतीय शासन देने से बंगाल और बंबई में अशांति फैलेगी परंतु इस वक्त इन प्रांतों में क्या हो रहा है? आए दिन जो अशांति चारों ओर दिखाई पड़ रही है क्या उससे शासन की अनुदारता प्रकट नहीं होती? *इंग्लिशमैन* सलाह देता है कि प्रांतीय शासन यदि दिया जाए तो आर्डिनेंसों को कानून का रूप दे दिया जाए। क्या उसे यह नहीं मालूम है और स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा है कि इस समय आर्डिनेंसों का क्या प्रभाव देश पर पड़ रहा है? इसके बाद *इंग्लिशमैन* आगे भी सलाह देता और कहता है कि–'यदि ब्रिटिश गवर्नमेंट बोरिया-बंधना लेकर यहां से रवाना भी हो जाए, कांग्रेस तथा उससे सहानुभूति रखने वाले माडरेटों को अगर वह बड़ा से बड़ा अधिकार भी दे दे तो भी गांधीजी और उनके मित्रों को यही शिकायत रहेगी कि अभी काफी अधिकार नहीं मिले।' इसमें जरा भी संदेह नही है कि *इंग्लिशमैन* वास्तव में भ्रमपूर्ण बातें फैला रहा है। उसे यह मालूम होना चाहिए कि महात्मा गांधी या किसी भी माडरेट नेता की यह राय कदापि नहीं है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट बोरिया-बंधना लेकर हिंदुस्तान से चली जाए। महात्मा गांधी ने गोलमेज सम्मेलन में यह स्पष्ट कहा है कि हमको ब्रिटिश गवर्नमेंट के शासन के भीतर ही रहकर अपनी मांगों को प्राप्त करना है। ब्रिटिश गवर्नमेंट यदि देश की मांगों को पूरा नहीं करेगी तो महात्मा गांधी क्या किसी भी नेता की यह शिकायत न रहेगी कि हमें काफी अधिकार नहीं मिले। *इंग्लिशमैन* की यह कपोल-कल्पना मात्र है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि *इंग्लिशमैन* जो दवा सरकार को शांति स्थापना के लिए बतला रहा है हमें भय है कि कहीं वह जहर के रूप में अपना प्रभाव न प्रकट करे। भारत में होने वाली घटनाओं को देखने के लिए जिनके पास आंखें हैं और भविष्य की बातों को समझने के लिए जिनके पास बुद्धि है वे इस बात से इनकार नहीं कर सकते हैं कि वर्तमान अशांति को दूर करने के लिए वह उपाय ठीक नहीं है जिसे *इंग्लिशमैन* बता रहा है। अमन स्थापना और कानून रक्षा के नाम पर इस प्रकार के उपाय सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। हमें इसी बात का दुःख है कि इस प्रकार की बातों का प्रचार करके भारतीयों और ब्रिटिश सरकार में जो भ्रम फैलाया जाता है उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। संभव है कि अनुदार दल के लोग इस प्रकार की सलाह को उपयोगी समझते हों परंतु उदार विचार वाले इससे सहानुभूति नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकट कर सकते वरन् इसके विपरीत उनके हृदय में घृणा के भाव पैदा होंगे। सरकार और भारत के बीच समझौता होने का एक मात्र उपाय है उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना। ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज कॉन्फ्रेंस के अवसर पर जो वचन भारतीय नेताओं को दिए हैं उसे पालन करके वह शांति की स्थापना कर सकता है। साथ ही, हमारा अनुरोध है कि ब्रिटिश सरकार तथा जनता दोनों इस प्रकार के प्रचारक-प्रवृत्ति वाले तथा भ्रमपूर्ण बातों को फैलाने वाले सिद्धांतहीन एंग्लो-इंडियन पत्रों के विचारों से अपने को दूर रखें। साथ ही, सरकार और भारतवासी अपने-अपने कर्तव्य की रक्षा करते हुए आपस में सहानुभूति तथा समझौते के अनुसार शांति स्थापित करने की व्यवस्था करें।

## भाई परमानंद का भाषण

कराची के द्वितीय हिंदू युवक कॉन्फ्रेंस के सभापति पद से भाई परमानंद ने जो भाषण दिया है उसके दो रूप हो सकते हैं। पहला जिनमें मुसलमानी सांप्रदायिकता की गंध है। दूसरा जिसमें राष्ट्रीय महासभा पर आक्रमण किया गया है। पहले रूप को अधिक व्यक्त करने के लिए यह कहा जा सकता है कि सर इकबाल प्रभृति मुस्लिम नेताओं की सांप्रदायिक प्रगति देखकर ही भाई परमानंद ने अपने भाषण में यह स्वीकार किया है कि सांप्रदायिक प्रश्न का निपटारा होना कठिन है। कांग्रेस के संबंध में आपका कहना है कि कांग्रेस ने हिंदुओं के हित का पूरा खयाल नहीं किया। इधर तो हिंदुओं की ओर से भाई परमानंदजी कांग्रेस को कोस रहे हैं कि वह हिंदुओं का हित नहीं करती, दूसरी ओर मुसलमान कांग्रेस को निरा हिंदू आंदोलन समझते हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न हो सकता है कि आखिर कांग्रेस है किसकी? हिंदू और मुसलमानों के अतिरिक्त ये कांग्रेसवादी कौन हैं? यह सच है कि कांग्रेस किसी संप्रदाय विशेष का हित नहीं करना चाहती तथापि वह हिंदू और मुसलमान दोनों की संस्था है। भाई परमानंद ने कांग्रेस की नीति की निंदा करते हुए उसे हिंदू-विरोधी करार देकर एक भयंकर भूल की है। हमारी समझ में सांप्रदायिक नेताओं को चाहिए कि वे भारत के युवकों में अपनी आदर्श नीति को न फैलाएं तो वे देश का अधिक कल्याण करेंगे।

(रविवार, 15 मई 1932)

## सांप्रदायिकता और अनुदारता

जब हम शांत चित्त से इस बात पर विचार करते हैं कि वे कौन-कौन से कारण हैं जिनके द्वारा आज हमें शासन सुधारों के प्राप्त होने में कठिनाई हो रही है, तब स्पष्ट रूप से यह विदित होता है कि सांप्रदायिकता और अनुदारता केवल ये ही दो कारण प्रधान रूप से ऐसे हैं जो हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सफलता के बाधक बन रहे हैं। भारतवर्ष में संप्रदायवाद तथा संप्रदायवादियों के प्रभुत्व का ऐसा बोलबाला है कि आए दिन हमें लज्जित होना पड़ता है और बार-बार इस बात को सुनने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि भारतीय अभी शासन सुधारों को प्राप्त करने के योग्य नहीं हैं और यदि उन्हें शासन सुधार दिए जाएंगे तो वे उनकी रक्षा न कर सकेंगे। पिछली गोलमेज कॉन्फ्रेंस में इन्हीं संप्रदायवादी लोगों तथा अपने को धर्म के ठेकेदार कहने वाले कट्टरपंथियों के ही कारण कोई निश्चित निर्णय नहीं हो सका। आए दिन भारत में कुछ स्वार्थी लोग चंद लोगों का एक फिरका तथा गिरोह बनाकर और अपने नेतृत्व का झंडा ऊंचा करके अपनी-अपनी मांगों की पुकार मचा रहे हैं। इन लोगों में कुछ मुललमान तथा कुछ अछूत कहलाने वाले लोग हैं। ये मुसलमान आज मुसलमान जाति की ओर से यह घोषणा करते फिरते हैं कि उन्हीं के द्वारा देश का कल्याण होगा तथा मुसलमान समाज की उन्नति होगी। यद्यपि उनकी घोषणाओं की कोई वकत नहीं है तथा वे कुछ कहते हैं उनका कोई मूल्य नहीं है। फिर भी इससे विरोधी लोग अपनी सफलता का अनुभव कर रहे हैं तथा दिन-प्रतिदिन देश की उन्नति में रुकावट पड़ती जा रही है। यद्यपि थोड़े से संप्रदायवादी मुसलमानों की घोषणा भारत के मुस्लिम समाज की पुकार नहीं है—क्योंकि आज मुसलमानों के वास्तविक हितचिंतक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नेता जेलों में पड़े हैं, तो भी विरोधियों को इस बात को कहने का मौका मिल रहा है कि हिंदुस्तान में मुसलमानों का एक बड़ा समूह स्वराज्य का विरोधी है और उसका कहना है कि स्वराज्य से मुसलमानों की हानि है और यदि शासन सुधार सरकार भारत को दे तो वह मुसलमानों के हकूकों का पूर्णरूपेण ध्यान रखे। कुछ सांप्रदायिक मुसलमान आज कांग्रेस को हिंदुओं की सभा बतलाते हैं और यह कहते हैं कि यदि कांग्रेस की मांगों के अनुसार कुछ सुधार मिले तो उससे हिंदुओं का हित होगा और मुसलमानों को हानि। यद्यपि उन लोगों का यह दोषारोपण निर्मूल है क्योंकि कांग्रेस अखिल भारतीय संस्था है, उसमें हिंदू-मुसलमान सभी जाति के लोग शामिल हैं इसलिए वह केवल एक जाति की न होकर समूचे राष्ट्र की संस्था है। इसलिए वह जो कुछ करेगी या कर रही है और उसकी मांगों के अनुसार जो सुधार मिलेंगे उनसे समूचे देश के निवासियों का कल्याण होगा, किसी जाति या संप्रदाय विशेष का नहीं। परंतु इस प्रकार की अनर्गल और बेसिर-पैर की बातें उड़ाने वालों के मुंह कौन लगे। इस प्रकार के कट्टरपंथी दल के नेता मौलाना शौकत अली और डॉक्टर इकबाल प्रभृति मुसलमान हैं। इनके सिवा औरों के नाम भी गिनाए जा सकते हैं जो समय-समय पर धर्म तथा संप्रदाय की दुहाई देकर मुस्लिम समाज की उन्नति तथा मुस्लिम राज्य की स्थापना की कल्पना किया करते हैं। इसी प्रकार अछूतों की ओर से डॉक्टर अंबेडकर ऐसे व्यक्ति अपनी खिचड़ी अलग पका रहे हैं। आज अछूतों के नाम पर और अपने को अछूतों का नेता कहने वाले लोग सांप्रदायिकता का जो राग अलाप रहे हैं वे देश के अछूत समाज के लिए कितना हानिकर है, यह किसी से छिपा नहीं है। यद्यपि महात्मा गांधी तथा अन्य हिंदू नेता अछूतों की मांगों का सदा समर्थन करते आए हैं और गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भी उन्होंने अछूतों के प्रति बड़ी ही सहानुभूति दिखलाई थी परंतु निर्वाचन के पचड़े में पड़कर तथा अपनी-अपनी सीटें प्रांतों में रिजर्व कराने की विवादास्पद प्रणाली के सिद्धांत पर अड़कर कुछ बने हुए नए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अछूत नेता आपस में मतभेद पैदा करने में लगे हैं। इसके साथ ही हम साफतौर से यहां यह भी कह देना चाहते हैं कि निर्वाचन के संबंध में इस प्रकार की दूषित और विवादास्पद प्रणाली के प्रचार का श्रेय विदेशी सरकार को भी प्राप्त है। संयुक्त निर्वाचन और पृथक निर्वाचन के ही झंझट ने आज हिंदुस्तान में हिंदुओं और मुसलमानों में ऐसे दलों का प्रादुर्भाव कर दिया है जो आज वास्तविक मार्ग में कंटक की भांति खटक रहे हैं। सब अलग-अलग अपनी मांग पेश कर रहे हैं। उनमें से संप्रदायवादी मुसलमान और अछूत के अगुआ कहलाने वालों का जोर अधिक है। हम यह मानते हैं कि इन संप्रदायवादियों की कोई सुनवाई भारत में नहीं है परंतु इस प्रकार की हरकत से यह बात अवश्य हो रही है कि विदेशी सरकार को विभिन्न सरकारों के सामने यह कहने का अवसर कम से कम किसी अंश में मिल ही रहा है कि हिंदुस्तान की मांग सम्मिलित मांग नहीं है। सुधार यदि दिया भी जाए तो किसको-किसको दिया जाए। किस-किस संप्रदाय तथा जाति को संतुष्ट किया जाए। इसमें संदेह नहीं है कि हिंदू तथा उनके नेता इस समय अपने सिद्धांत पर अटल हैं और वे देश की सम्मिलित मांग को ही अपनी मांग बतला रहे हैं और एक दृष्टि से फिलहाल ऐसा करने से हिंदुओं को कुछ हानि अवश्य हो रही है—परंतु देश की पुकार के आगे संप्रदायवाद के बहिष्कार करने में उनका त्याग है, और भविष्य में इस त्याग से बड़ी आशा भी है। इसलिए आज भारतीय शासन सुधार में सांप्रदायिकता बड़ी अड़चन डाल रही है।

यह बात तो हुई भारत संबंधी। दूसरी अड़चन है अनुदारता का प्रचार, इसका संबंध ब्रिटेन से है। आज ब्रिटेनों में अनुदारों की कट्टरता के कारण ब्रिटेन और भारत में समझौता होने में कठिनाई हो रही है। जब से ब्रिटेन का शासन सूत्र अनुदारों के हाथ में आया है तब से इसमें संदेह नहीं है कि ब्रिटेन और भारत के बीच ऐसी असहानुभूति उत्पन्न हो गई है कि उदार प्रकृति वाले इसका घोर विरोध कर रहे हैं। पिछली गोलमेज कॉन्फ्रेंस में जहां भारत के कट्टरपंथियों के कारण कुछ निर्णय नहीं हो सका वहां इंग्लैंड के अनुदारों के कारण उससे कुछ कम अड़चन नहीं उत्पन्न हुई। मिस्टर चर्चिल ऐसे व्यक्तियों ने समय-समय पर व्यर्थ का जो जहर उगला है उससे असंतोष बढ़ता ही गया, घटा नहीं। लिबरल दल के नेता लायड को भी आज अनुदार सरकार के प्रति असंतोष प्रकट करना पड़ता है। इसी अनुदारता के कारण ही हिंदुस्तान की आज इतनी भयंकर दशा हो गई है। आर्थिक अवस्था का विषम-परिणाम आज भुगतना पड़ रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदुस्तान में संप्रदायवादियों और ब्रिटेन में अनुदार लोगों के कारण ही आज असंतोष दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। हमारी राय में आज शासन सुधारों के प्राप्त होने तथा आपस में समझौता न होने के मार्गों में यही दो रोड़े अटके हुए हैं। यदि यह दोनों अड़चनें दूर हो जाएं तब शीघ्र ही ऐसे सुव्यस्थित सुधार के दर्शन हों जिसकी आशा सारा संसार कर रहा है। परंतु तो भी हमारा ऐसा विश्वास है वह दिन शीघ्र ही आवेगा और कोई न कोई मार्ग निकलेगा जिनमें इन अटकने वाले रोड़ों का कहीं नाम न होगा और भारत को सुधार निश्चित रूप से प्राप्त होंगे।

(गुरुवार, 19 मई 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# नेक सलाह

इस समय ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारत का भाग्य-विधान सर सेमुएल होर महाशय के हाथ में है। उनकी एक बंधी हुई पॉलिसी है जिसे 'सुधार और प्रहार' की दोहरी पॉलिसी का नाम मिला हुआ है। 'सुधार' का अर्थ वर्तमान शासन नीति में सुधार चाहने वाली भारत की राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस की कार्रवाई का दमन है। उसकी कार्रवाई को गैर कानूनी करार दिया गया है और उसे दवाने के लिए आर्डिनेंसों की सृष्टि की गई है जो पिछले चार-पांच महीनों से लगातार काम कर रहे हैं। इस दोहरी पॉलिसी में पहली दुविधा यह है कि 'सुधार और प्रहार' का मेल ही नहीं मिलता। प्रहार उस पर किया जा रहा है जो सबसे अधिक सुधार चाहता है। जिस पर सुधार का सबसे अधिक दारोमदार होना चाहिए था उस कांग्रेस पर प्रहार करने का नैसर्गिक अर्थ और परिणाम यह है कि सुधार के काम में बाधा पड़ रही है और सुधार का भार उचित और योग्य व्यक्तियों के ऊपर नहीं है। या तो सुधार ही या प्रहार ही हो सकता है। इसी से तो सुधार के काम में बेहद देर हो रही है और जो काम हो भी रहा है वह असंतोषजनक हो रहा है। वर्तमान अवस्था में देशी नरेश, फिरकापरस्त मुसलमान, पृथक निर्वाचन चाहने वाले अछूत और इन सबके ऊपर ब्रिटिश अधिकारी भारतीय विधान में सुधार करने का अधिक अधिकार पा रहे हैं और राष्ट्रीय प्रतिनिधियों का प्रवेश अत्यंत अल्प संख्या में हो रहा है। कांग्रेस के अतिरिक्त भारतीय व्यापारी समाज भी सुधार में योग नहीं दे रहा और अधिकांश माडरेट नेता भी 'सुधार' से उतना संलग्न नहीं हैं जितना प्रहार से उद्विग्न हैं। ऐसी परिस्थिति में स्वभावतः सर सेमुएल होर की 'सुधार और प्रहार' पॉलिसी का सुधार पक्ष विशेष शिथिल और प्रहार-पक्ष विशेष प्रबल है पर सर सेमुएल होर महाशय पार्लियामेंट में भारत की हालत का हवाला देते हुए समय-समय पर जो उद्‌गार प्रकट करते रहते हैं उसमें यह विपरीत आभास दिया करते हैं कि सुधार अधिकाधिक शीघ्रता से और प्रहार अधिकाधिक नर्मी से किया जाता है। पर स्पष्टतः यह असंगत है।

दूसरी विचित्रता यह है कि 'सुधार और प्रहार' की पॉलिसी का उद्‌घाटन करने वाले सर सेमुएल होर महाशय ही पार्लियामेंट में उस पॉलिसी का फलाफल बतलाने वाले हैं। जो आदमी जिस कार्य के लिए जिम्मेदार होता है वह साधारणतः उसके ऐब नहीं देख पाता। अधिकांश में तो वह उसका समर्थन ही करता है। कभी-कभी तो वह अपने समर्थन में अप्रामाणिक बातें भी कह डालता है। बहुतों का स्वभाव ऐसा होता है कि वे अपनी गलती स्वीकार ही नहीं करते और उनकी प्रकृति ऐसी होती है कि एक बार की बंधी हुई लीक पर ही चला करते हैं। सर सेमुएल होर अधिकांश में वर्तमान भारतीय नीति के लिए जिम्मेदार हैं। वे अपनी जिम्मेदारी उचित से अधिक ही समझते हैं इसलिए अपनी पॉलिसी के कायल हैं। उनके भारतीय सलाहकार और संवाददाता मातहत होने के कारण उनके अनुकूल पड़ते हैं। यही कारण है कि भारत से भेजी हुई खबरों के आधार पर सर सेमुएल होर पार्लियामेंट को भरोसा दिलाते रहते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपनी पॉलिसी का समर्थन करते रहते हैं। मिस्टर चर्चिल जैसे महानुभाव भी इन दिनों सर सेमुएल होर के उद्गारों की दाद देते और पॉलिसी का समर्थन करते हैं। इतने ही से सब कुछ समझा जा सकता है। सर सेमुएल के हाथ में इस समय अपार अधिकार हैं। वे ही ब्रिटेन की भारतीय पॉलिसी का नियंत्रण करते और वे ही उसका समर्थन करते हैं। वे ही 'सुधार और प्रहार' के उभयपक्षों का मेल मिलाते और मन मुताबिक उसकी ताईद करने के प्रमाण देते हैं। वर्तमान ब्रिटिश पार्लियामेंट उनसे संतुष्ट जान पड़ती है और शायद दस्तंदाजी नहीं करना चाहती। भारत के लोकमत की परवाह न कर सर सेमुएल होर पार्लियामेंट को यह समझाया करते हैं कि भारत की स्थिति गंभीर नहीं है, उसकी आर्थिक दशा सुधर रही है और उनकी नीति सफल हो रही है, यद्यपि वस्तुस्थिति इसके विपरीत है।

सर सेमुएल होर महाशय को भारत के गैर-सरकारी तौर पर पहुंची हुई खबरें भी मिलती हैं या नहीं और मिलती हैं तो उनकी जांच करने और जांच करने के बाद उनके आधार पर नीति में संशोधन करने की जरूरत वे समझते हैं या नहीं—इस प्रश्न का उत्तर अब तक नकार में ही दिया जा सकता है। पिछले दिन जिनेवा के विश्वविद्यालय के अध्यापक और लीग ऑफ नेशंस के सदस्य डॉक्टर प्राइवाट के भारत-संबंधी विवेचन को सर सेमुएल ने जिस भाव से ग्रहण किया उससे प्रकट होता है कि उन्हें सारग्रहण की इच्छा बहुत कम है। ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य भी भारत का दमन-कांड देख गए हैं पर उन प्रत्यक्षदर्शियों के कथन की भी सर सेमुएल ने कद्र नहीं की। यदि सर सेमुएल होर चाहते तो वे अपने ही देश के सम्मान्य जनों द्वारा भारत की सच्ची परिस्थिति जान सकते थे पर उन्होंने अब तक वैसा नहीं किया। उन्हें ऐसे विशेषज्ञ मिल सकते थे जो उनकी पॉलिसी के 'सुधार और प्रहार' दोनों पक्षों पर यथातथ्य विवरण देते पर सर सेमुएल ने इसकी आवश्यकता नहीं समझी। भारत के आर्डिनेंसी दमन के संबंध में वे ब्रिटिश पार्लियामेंट के उन सदस्यों का आंखों देखा वर्णन सुन सकते थे जो कांग्रेस का प्रोपेगेंडा नहीं करना चाहते। सुधार की कर्मगति का हवाला सर तेजबहादुर सप्रू, श्री श्रीनिवास शास्त्री, श्री तांबे आदि से बढ़कर और कौन दे सकता है? क्या ये नर्म नेता भी उतावले हैं और व्यर्थ ही यह कहते हैं कि सुधार के काम में देर करना अनर्थकारी है? क्या यह कथन असत्य है कि कट्टर से कट्टर माडरेट भी क्षुब्ध होकर सरकार का साथ छोड़ रहे हैं? असत्य कैसे है जब कि पहली बार आर्डिनेंस लगने पर जिन अनेक नर्मदल वालों ने थोड़े-बहुत परिमाण में उनकी आवश्यकता स्वीकार की थी। वे भी अब अत्यंत निश्चित शब्दों में कह रहे हैं कि आर्डिनेंसों का दोहराया जाना उचित नहीं है। क्या कारण है कि जब सर सेमुएल होर पार्लियामेंट को यह सुझाने की कोशिश करते जाते हैं कि भारत की दशा सुधर रही है तब पार्लियामेंट के बाहर—और भीतर भी—ब्रिटिश लोकमत अधिक दमन विरोधी और शांतिकामी हो रहा है? यदि सर सेमुएल होर की ही भारतीय नीति ठीक होती तो ब्रिटेन के धार्मिक नेताओं में उसके प्रति विरक्ति क्यों बढ़ती और वहां के श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ अधिकाधिक संख्या में उसका प्रतिवाद क्यों करते? यदि भारत में दमन का उग्र रूप नहीं है तो सेंसर इतना कड़ा क्यों है? यदि यहां अनुचित कड़ाई नहीं बरती जाती तो स्पष्टतः सब बातें प्रकट क्यों नहीं की जातीं ? पांच-छह महीने का आपत्काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(Emergency) बीत जाने पर भी आर्डिनेंस यदि दोहराए जाएंगे तो इसका अर्थ तो स्पष्ट ही है कि हालत सुधर नहीं सकी। यदि 'सुधार सुधार' का दम भरते हुए वही सुधार किया जाएगा जो किया जा रहा है तो दूरदर्शी राजनीतिज्ञों को सचेत होने का मौका है। अब समय नहीं है कि निष्क्रिय आलस्य के-से वातावरण में 'जो हो रहा है, ठीक हो रहा है' का राग अलापा जाए। यही समय है जब अवसर से लाभ उठाकर संपूर्ण परिस्थिति का पुनरावलोकन किया जाए और रूढ़ि की भावना का त्याग कर नए सिरे से आत्म निरीक्षण किया जाए। इस नेक सलाह पर अमल न करने का बुरा फल होगा।

## साकी बनने की साध

हमारी यू.पी. सरकार को पिछले दिनों से साकी बनने की साध हुई है। उसने मयखानों को आबाद करने का नया नुस्खा निकाला है और चंद दिनों में ही वह नुस्खा कारगर होने का आसार दिखा रहा है। इसके लिए उस विभाग से संबंधित मंत्री महाशय श्री जी.पी. श्रीवास्तव को जितनी बधाइयां दी जाएं और वाहवाहियां की जाएं थोड़ी होंगी—यह कहना बेकार है। अब तो एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक के फारसी, उर्दू और हिंदी के सूफी कवियों की आत्माएं खिल उठेंगी, उनकी आत्माएं स्वर्ग में सुख पावेंगी। इससे साकी को भी किसी तरह की तरद्दुद नहीं होगी बल्कि आमद ही होगी। कवियों की कल्पना को नई प्रेरणा मिलेगी, पैसे वालों के पैसों का नया उपयोग होगा और गरीबों की निर्धनता का नया विस्तार होगा। सब कुछ नया ही नया तो है। किसी को शिकायत ही क्या हो सकती है!

ताज्जुब तो यह है कि दुनिया के नेक दिल कहलाने वाले साधु-संत इसका विरोध क्यों करते हैं और पश्चिमी संसार में भी अब धीरे-धीरे इसके प्रति विरक्ति क्यों बढ़ रही है। क्या कारण है कि स्वयं इंग्लैंड में शराब की खपत कम पड़ती जाती है। क्या कवियों की कल्पना किसी दूसरी मादकता की अपेक्षा रखती है या उसी की जिसके श्री श्रीवास्तव साहब हिमायती हो रहे हैं। क्या उमर खय्याम के 'उठो उठो ऐ मेरे बच्चो पान भरो, न विलंब करो, सूख न जाए जीवन हाला, रह जाए खाली प्याला', की 'जीवन हाला' वही है जिसको कंठगत करने के बाद नालियों में लड़खड़ाकर गिरना पड़ता है, पगडंडियों पर असभ्यता का प्रदर्शन करना पड़ता है और अंत में बेशर्म और बेइज्जत बनकर पैसे-पैसे को तबाह होना पड़ता है? इसके अतिरिक्त इससे और किसको क्या लाभ है यह तो यू.पी. सरकार ही बतला सकती है।

## आचार्य द्विवेदी का 'कृतज्ञता ज्ञापन'

आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी ऐतिहासिक महापुरुष हैं जिनकी कीर्ति ज्योत्स्ना भविष्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अधिकाधिक प्रसन्न होती जाएगी। यह हिंदी की अनुन्नत दशा की ही सूचना है कि ऐसे पुरुष पर अब तक किसी उल्लेखनीय ग्रंथ की रचना नहीं हुई है पर यदि हिंदी में कुछ वास्तविक शक्ति होगी तो अत्यंत शीघ्र अनेक ऐसे ग्रंथों की रचना होगी। यदि हिंदी की रुपए वाली संस्थाएं इस दिशा में कोई ध्यान नहीं दे रहीं तो भी चिंता नहीं क्योंकि हिंदी को अपने पैरों पर खड़ा होना है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा हमारे साधुवाद का पात्र है क्योंकि असंपन्न अवस्था में भी उसने सुंदर *द्विवेदी-स्मृति ग्रंथ* निकालने की योजना की है। हिंदी के विद्वानों और श्रीमानों को इस सदुद्योग में हाथ बंटाना चाहिए। द्विवेदीजी के संबंध में हम आगे बहुत कुछ लिखने का विचार करते हैं। यहां हम अपने प्रति उनकी अनुकंपा का आभार प्रकट करते हैं क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम हमारे पत्र में अपना वह 'कृतज्ञता-ज्ञापन' प्रकाशित होने को भेजा है जो हिंदी के इतिहास में ऐतिहासिक महत्व रखता है। हम उसे इसी अंक में अन्यत्र (पृष्ठ 7 पर) प्रकाशित करते हैं और आशा रखते हैं कि उसका अधिक से अधिक उद्धरण होगा।

## महाकवि गेटे की जयंती

संसार-साहित्य के दीप्तिमान रत्न और जर्मनी के श्रेष्ठ महाकवि और दार्शनिक गेटे की जयंती शताब्दी विगत 22 मार्च को पश्चिमी सभ्य संसार में प्रायः सर्वत्र मनाई गई है। इस अवसर पर गेटे की मातृभूमि जर्मनी में विशेष उत्सव किए गए जिनमें वहां के सर्वोच्च राजपदाधिकारी सम्मिलित हुए, श्रद्धालु साहित्यसेवी और जनता स्वर्गीय महाकवि के प्रिय विचरण स्थलों में गई और उनके स्मृति-चिह्नों के दर्शन किए। ठीक सौ वर्षों के उपरांत गेटे के देहावसान के दिन—ठीक उसी समय—रूमर के राजप्रासाद में गेटे-जयंती का समारोह हुआ, तदुपरांत उनकी जन्मभूति फ्रेंकफोर्ट में गेटे-स्मृति-प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया गया जो महाकवि के सम्मान में जर्मन राष्ट्र का प्रीति-चिह्न बनेगी। इसी अवसर पर गेटे की समकालीन कलाकृतियों का प्रदर्शन किया गया। इतिहास-विभाग की ओर से 'साम्राज्य और प्राचीन कला' का विषय यात्रियों और आगंतुकों को समझाया गया। एक प्रदर्शनी में *गेटे और समालोचना* का संग्रह किया गया और दूसरी में गेटे-काल के 'मिट्टी के बर्तनों' की नुमाइश की गई। इन सब प्रदर्शनों को सजीव और दिलचस्प बनाने के लिए अभिनयों का प्रबंध किया गया जिनमें प्रसिद्ध संगीत विशारदों की तृप्तिकारी गतिध्वनि सुनी गई। जर्मनी की श्रेष्ठ प्रकाशन संस्था गेटे के शताब्दी-जयंती-वर्ष के उपलक्ष्य में उनकी नाटकमाला का नवीन संस्करण प्रकाशित करेगी और वहां की रासमंडलियां उनके सम्मान में विशेष रास रचेंगी। इन उत्सवों में सहस्रों दर्शक जर्मनी के भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा विदेशों से पधारे थे और वर्ष भर तक उनका आवागमन होता रहेगा। इस पीड़ाकारी अर्थकष्ट के समय में भी जर्मन राष्ट्र यह दिखा रहा है कि मनुष्य केवल अन्न खाकर ही नहीं जीता, उसे मानसिक और आध्यात्मिक सामग्री की भी आकांक्षा होती है। अपने प्रतिभाशाली नौरत्न के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए गेटे की जन्मभूमि ऐसा प्रबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कर रही है कि बहिर्देशों से आए हुए जिज्ञासु और श्रद्धापन्न साहित्य-सेवियों के सामने गेटे के संबंध की संपूर्ण संगृहीत सामग्री सजाकर रख दी जाए।

आजकल की पश्चिमी सभ्यता में अपने पूर्व पुरुषों की जयंती मनाने की प्रणाली अधिक प्रचलित है। सभ्य यूरोप के नए देवी-देवता वहां के प्रतिष्ठित साहित्यकार, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि हो रहे हैं जो उनके राष्ट्रोन्नयन में सहायक हुए थे और अब स्वर्ग सिधार गए हैं। वहां तो जीवित महापुरुषों की भी जयंती मनाने का प्रचलन है और जीवन काल में ही 'स्मृति-ग्रंथ' निकालने की परिपाटी चली हुई है। इस समय हमारे देश में भी उस प्रणाली का प्रभाव पड़ रहा है, यद्यपि अधिक परोक्ष-प्रिय होने के कारण इस देश में अब भी प्राचीन देवी-देवताओं का सम्मान अधिक है। यूरोप अपनी पुराण-परंपरा (Mythology) से रूठ कर प्रत्यक्ष वर्तमान की ओर अधिक झुक रहा है, इसलिए वहां आधुनिकता की विशेष प्रतिष्ठा है। संप्रति हम लोगों की प्रकृति वैसी नहीं है इसलिए अब तक हम प्राक्-ऐतिहासिक युग के महापुरुषों को अपनी आदर्श भावना से रंगकर पूजते हैं और नवीनता की विशेष चिंता नहीं करते। यूरोप के बर्नार्ड शा जैसे संत कहलाने वाले व्यक्ति भी संसार के श्रेष्ठ महापुरुषों में अपनी गणना कराने में नहीं चूकते और प्राचीन अनंत विभूतियों का तिरस्कार करते हैं। यह यूरोप का प्रकृति-दोष है, जिसमें वहां की जयंती प्रणाली का कुछ न कुछ भाग तो है ही। परंतु हम यहां उसके फलाफल ही चर्चा नहीं कर रहे। यूरोप को अपनी आधुनिक सभ्यता पर गर्व है। वह अपने ही रास्ते में संसार का मुक्तिमार्ग देखता है। इसलिए उसे अपनी उपयोगिता का उचित से अधिक गर्व है, यह अस्वाभाविक नहीं। यूरोप का प्राचीन इतिहास अंधकाराच्छन्न है इसलिए वह नवीनता पर अधिक जोर देता है। उसने अब तक अपने आदर्शों को स्थिर नहीं किया इसलिए वह पुराण-पुरुषों की कल्पना नहीं कर पाता। हमारे राम, कृष्ण, बुद्ध आदि के साथ अनेक युग-युगांतरों की रसमय भावना सनी हुई है, इसलिए हम तुलसी, तिलक, गांधी आदि को उतना रस देने में समर्थ नहीं हैं। यूरोप में ऐसी बात नहीं है। वहां तत्काल के नेता (Hero of the day) का अधिक सम्मान होता है। परंतु इस विवेचन का संबंध महाकवि गेटे से नहीं है। गेटे केवल एक काल के महापुरुष नहीं हैं, वे केवल जर्मनी के ही अर्हणीय नहीं हैं। उनका विकास देशकाल की सीमा का बहुत कुछ अतिक्रमण कर गया है—वैसे ही जैसे तुलसी का विकास।

समाज के ज्ञानोन्नयन के लिए श्रेष्ठ मनीषियों का स्मृति-उत्सव मनाने की व्यावहारिक उपयोगिता भी होती है और इस विषय में यूरोप की जयंती प्रणाली विशेष महत्व रखती है। ऐसे-ऐसे अवसरों पर स्वर्गगत महात्माओं की साहित्यिक, कलात्मक तथा अन्य कृतियों की चर्चाएं की जाती हैं जिनसे राष्ट्रीय उन्नति पर प्रकाश पड़ता है और ज्ञानचेतना की अभिवृद्धि होती है। साहित्य, गीत और कला की विवेचना से राष्ट्र की संस्कृति का विशेष हित होता है। सभ्यता की सीढ़ियां इसी प्रकार चढ़ी जाती हैं। आधुनिक यूरोप में इस ओर प्रारंभ से ही ध्यान दिया जा रहा है। इसका एक शुभ फल यह भी हुआ है कि वहां साहित्य के विषय में सर्वराष्ट्रीय भावना का प्रसार है। आज फ्रांस और जर्मनी के राजनीतिक संबंध मैत्रीयुक्त न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी हों तो भी साहित्य का सत्कार दोनों ही देशों में समभाव से होगा। गेटे की जयंती मनाने में फ्रांस अन्यमनस्क नहीं रहा, कम से कम राजनीतिक कारणों से उसमें कोई बाधा नहीं पड़ी। ज्ञान के उच्च स्तर पर पहुंचकर साम्यभाव का विकास होता है और राष्ट्रीय संघर्ष का स्थान सार्वदेशिक समता ग्रहण करती है। साहित्य के भीतर से मनुष्य मनुष्य का परिचय प्राप्त करता, सान्निध्य प्राप्त करता और अंत में एकता प्राप्त करता है। इस आदर्श की पूर्ति के लिए जयंतियों की उपयोगिता है और यूरोप इस दिशा में अग्रसर हो रहा है। हमारे देश में भी तुलसी, गांधी, रवींद्र आदि की जयंतियां मनाई जाने लगी हैं पर अभी इनको उचित प्रसार नहीं प्राप्त हुआ। भारत की पराधीनता के कारण उसके ज्ञानोत्कर्ष और साहित्यादर्श का परिचय विदेशों को उतना नहीं प्राप्त हो रहा जितना होना चाहिए। संसार के ज्ञानकांड में भारतीय प्रकरण अब तक यथोचित प्रकाशित नहीं हुए। इसकी आवश्यकता हम सब समझते हैं और इसके लिए तत्पर होने का यही समय है। आज जब हम सर्वराष्ट्रीय विद्वान बनना चाहते हैं और यूरोप के अनेक-अनेक लेखकों का नाम कंठाग्र करने में आनंद मानते हैं तब यहां के साहित्य-सौरभ को विदेशों में संचरित करने का हमने कितना उद्योग किया है?

गेटे अपने जीवन काल में ही सारे यूरोप में ख्याति संपन्न हो गए थे। सन् 1831 के उनके वार्षिकोत्सव के अवसर पर (यही वर्ष उनका अंतिम वर्ष था) इंग्लैंड के पंद्रह व्यक्तियों के द्वारा एक सोने की शॉल भेंट की गई थी जिसके साथ एक पत्र भी भेजा गया था जिसकी प्रतिलिपि पढ़कर हम जान सकते हैं कि यूरोपीय राष्ट्रों में साहित्यिक यातायात का कैसा प्रचलन था और उससे समाज में साहित्यिक चेतना की कितनी दृढ़ आस्था उत्पन्न होती थी। ध्यान देने की बात यह है कि इस पत्र के प्रेषक साधारण व्यक्ति नहीं थे बल्कि इंग्लैंड के सामयिक साहित्य के धुरंधर कवि, औपन्यासिक, अध्यापक आदि थे और इन्हीं में कुछ राजनीतिज्ञ और कुछ राजा-रईस भी थे। पता लगाने से मालूम हुआ है कि वह पत्र प्रेषित करने वाले मि. कार्लाइल और उनके भाई डॉक्टर कार्लाइल, वाल्टर स्कॉट, लौकर्स्ट, वड्र्सवर्थ, सदे, चर्चिल, फ्रेजर, प्रोफेसर विलस्न, जॉर्डन, हेराउ, लार्ड लिमिसन गोअर और प्रोक्टर जैसे व्यक्ति सम्मिलित थे। पत्र की प्रतिलिपि यह थी—

कवि गेटे की सेवा में
28 अगस्त सन् 1831 को प्रेषित

महाशय यह सुंदर वार्षिकोत्सव आपके निकट जिन मित्रों को एकत्र करेगा, उनमें हम अंग्रेज मित्र भी एकत्र होकर अपनी स्नेहमयी बधाई और उस बधाई का संकेत चिह्न यह लघु उपहार सेवा में उपस्थित करते हैं, आशा है, हमारी भावनाओं का सच्चा साक्षी यह प्रीति-उपहार निरा निर्मूल्य न होगा।

यह सदैव परम कर्तव्य और आनंद का विषय है कि श्रद्धास्पद व्यक्ति की श्रद्धा की जाए। हमारा प्रधान और एकमात्र उपकारी वह है जो वचन और कार्य से हमें ज्ञान की शिक्षा देता है। इसलिए हम गवि गेटे की अपना अध्यात्म-गुरु मानकर शिष्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भांति अपना गुरु-ऋण चुकाने को एकत्र हुए हैं। इसी आशय से हम यह लघु ब्रिटिश उपहार भेज रहे हैं जिसमें हम सबका सम भाग है। यह इस आशय से भेजा जाता है कि जीवित अवस्था में भी उस पूज्य व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाए जो हमारा ही नहीं, सारे संसार का कृतज्ञता भाजन है।

इस प्रकार हमारी यह लघु भेंट जो पवित्र होने का दावा रखती है, प्रत्यक्ष आपके पास उपस्थित है और आप से स्वीकृतियाचना करती है। प्रार्थना है कि यह आपके ग्रहण योग्य हो और हमारे स्नेह संबंध का स्थिर साक्षी बनकर रहे, यद्यपि हमारे-आपके देशों के बीच विस्तृत समुद्र का अंतर पड़ा हुआ है।

आपके कीर्तिशाली जीवन को अभी अनेक नवीन वर्ष प्राप्त हों। आप सदैव सुखी रहें और आपको शक्ति मिले जिससे अपने महान कार्य की सिद्धि कर सकें, यही हमारी विनय है।

आपके मित्र और सेवक पंद्रह अंग्रेज

अपने जीवनकाल में सर्वराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करना विशेष कठिन कार्य है, फिर आज से सौ वर्ष पहले गेटे के समय में तो अत्यंत असाधारण कार्य था। यातायात के और विचार-विनियम के साधन आज के जैसे उस समय नहीं थे, तथापि अपनी रचनाओं, विशेषकर अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना *फास्ट* के द्वारा वे अपने जीवनकाल में ही यूरोप के अपने युग के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार समझे जाते थे। इन सौ वर्षों में उनकी मर्यादा निरंतर बढ़ती ही गई है और आज महाकवि गेटे आधुनिक युग के एक श्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं और वाल्मीकि, कालिदास, होमर, दांते और शेक्सपीयर के समकक्ष उनकी गणना होती है। उनके जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति *फास्ट* है जिसमें उन्होंने लगभग चालीस वर्ष लगा दिए, उन्हें यह उत्कर्ष प्रदान करने में समर्थ हुई है। *फास्ट* का दर्शन भारतीय संत-दर्शन से विशेष मिलता-जुलता है, जिसे हम रहस्यवाद कहते हैं। *फास्ट* महाकाव्य का नायक है। वह ज्ञान पिपासु है और प्रकृति के अंतरमन का रहस्य जानना चाहता है। पर वह इंद्रिय सुख में लिप्त होता है, तृष्णा उसे कल नहीं लेने देती। अतृप्त तृष्णा के कारण उसे सुख नहीं मिलता। अंत में महाकाव्य के दूसरे खंड में इस निष्कर्ष पर दृढ़ता आती है कि तृष्णा का क्षेत्र आनंद का क्षेत्र नहीं है। लालसाओं की श्रृंखला न टूटती है, न सुख मिलता है। लालसा का साम्राज्य ज्वलन (Heat) का साम्राज्य है, प्रकाश (Light) का नहीं। वास्तविक आनंद प्रकाश में मिलता है। यह बिलकुल ही भारतीय दर्शन है। महाकवि गेटे जब-जब कल्पना और भावना के ऊंचे स्तरों में प्रवेश करते हैं तब-तब उनकी काव्य सृष्टि भारतीय रहस्यवाद से मिल जाती है। इस बात के प्रमाण भी हैं कि गेटे पर संस्कृत साहित्य की पूरी छाप पड़ी थी। उनके समय में प्राचीन संस्कृत के जर्मन अन्वेषक भारत में पहुंच चुके थे, उनका अध्ययन आरंभ हो चुका था और बहुत से ग्रंथ-रत्न जर्मनी के पुस्तकालयों में भी सज गए थे। स्वयं गेटे ने महाकवि कालिदास के *अभिज्ञानशाकुंतलम्* (शकुंतला नाटक) की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और उसे संसार साहित्य की श्रेष्ठ रचना ठहराया था। गेटे दार्शनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रुचि के व्यक्ति थे इसलिए उन्हें पूर्वीय साहित्य—विशेषकर भारतीय साहित्य—में विशेष अनुराग और श्रद्धा होना स्वाभाविक ही था। जब से गेटे ने कालिदास की स्तुति की तब से हम लोग भी कालिदास को कुछ समझने लगे हैं और अब तो 'जोशी-बंधुओं' की 'मौलिक उद्भावनाएं' भी उस विषय पर देखने को मिलने लगी हैं! धन्य भाग्य!

आधुनिकता की पुकार में एक आकर्षण अवश्य होता है, पर डॉक्टर हेमचंद्र जोशी की तरह के जो आदमी नवीनता के पीछे लोटा-डोर बांधे फिरते हैं वे साहित्य के सत्य-सौरभ का प्रसाद बड़ी मुश्किल से पा सकते हैं। जो व्यक्ति इस बात में आत्म गौरव अनुभव करता है कि वह यूरोप के बढ़ते-उतरते साहित्यिक-बाजार भाव का हवाला हिंदी के पाठकों को दे रहा है वह एक विदेशी संवादपत्र से अधिक महत्व नहीं रखता, जो थोड़े से रुपए खर्च करके आसानी से मंगाया जा सकता है। यदि जोशी महाशय इस बात का गर्व करते हैं कि उन्होंने अनातोले फ्रांज और रोमा रोलां का परिचय हिंदी संसार को सर्व प्रथम कराया तो एक विलायती समाचारपत्र का भारत स्थित एजेंट भी इस बात में उनसे स्पर्धा कर सकता है और यदि उनका यह आरोप है कि हिंदी के लेखक 'जानक्रिस्टोफर' को पढ़े बिना ही उस पर टीका-टिप्पणी करते हैं तो यह भी उस एजेंट की ठेकेदारी की-सी ही मनोवृत्ति हुई। जोशीजी की यह घोषणा कि 'रोमा रोलां' साहित्य-शिखर से बहुत कुछ नीचे गिर गए हैं, यूरोपियन संवाद पत्रों के भारत-विरोधी एक दल की उड़ंत खबर है। सामयिक साहित्य के प्रति जानकारी रखने की इच्छा किस की नहीं होती, पर यह तो एक हल्की अभिरुचि का परिणाम है। विद्वान इसकी विशेष प्रतिष्ठा नहीं करते। अनेक भाषाओं का परिचय एक बहुमूल्य उपलब्धि है पर उसका उपयोग साहित्य के गुरु-गहन तत्वों के अध्ययन में होना चाहिए ताकि स्थायी साहित्य को स्थिरता प्राप्त हो सके और सामयिक साहित्य उससे शिक्षा ग्रहण कर सके। देशकाल-अबाधित साहित्य के सर्व राष्ट्रीय समन्वय का कार्य में बहुभाषाविद अधिक समर्थ हो सकते हैं। पर जोशी महाशय का प्रयास उस दिशा में नहीं हो रहा है। यदि उस दिशा में होता तो वे पारे की तरह चढ़ने-उतरने वाले यूरोपीय साहित्य के प्रतिदिन के नेताओं (Other Days other heroes) का हवाला न देकर गेटे जैसे चिरंजीवी, युगांतरकारी साहित्य मनीषी की महिमा प्रकट करने में शक्ति और समय का अधिक सदुपयोग करते। गेटे की समता का साहित्य महारथी यूरोप ने पिछले दो सौ वर्षों से एक भी नहीं पाया।

महाकवि गेटे ने अपने युग की संपूर्ण शक्ति आत्मसात कर ली थी। याद रखना चाहिए कि वह नेपोलियन जैसे शक्तिशाली का युग था। गेटे नेपोलियन से मिला भी था, बल्कि कहना यह चाहिए कि नेपोलियन उससे मिला था—वाटरलू की लड़ाई में। उस युग की वह सबसे बड़ी लड़ाई थी। ब्रिटेन और जर्मन आदि मित्र राष्ट्रों की जो सेना नेपोलियन से भिड़ी थी और विजयिनी हुई थी गेटे ने उसका दृश्य देखा था। उसने अपने देश के प्राचीन साहित्याचार्यों का अध्ययन किया था और उनसे विशेष लाभान्वित भी हुआ था। उसने सामयिक कलात्मक प्रगति का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया था और जान हेनरिच मर्के कलाविद् उसके मित्र थे। वह स्वयं चित्रकार भी था। संगीत से उसका निसर्गसिद्ध अनुराग था। उसमें उसने दक्षता भी प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की थी। वह अत्यंत सजीव, उत्साही और क्रियाशील व्यक्ति था। वह प्रेमी भी था और आरंभिक जीवन में उसने अपनी प्रेमिका के संबंध-विच्छेद की तीव्र और मर्मस्पर्शी वियोग पीड़ा अनुभव की थी। गेटे का पर्यटन क्षेत्र भी विशाल था। अपने देश का कोना-कोना उसका छाना पड़ा था। राइन नदी के उपकूलों का प्रकृति-सौंदर्य पहले पहल उसने ही देखा और प्रकट किया था। उसके स्वर्गवास के उपरांत जर्मनी ने उस राइन प्रदेश की रम्यता पहचानी थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसने मौलिक अनुभव प्राप्त किए थे और वह अपने को 'संसार की संतान' (World's Child) कहा करता था। विराट प्रकृति की लीला उसने अपनी आंखों से देखी थी—उससे उसने तादात्म्य का अनुभव किया था, उसकी काव्य सृष्टि में यह झलक मिलती है। तात्पर्य यह है कि गेटे अपने युग की संपूर्ण संस्कृति को लेकर विकसित हुआ था और कोई आश्चर्य नहीं यदि उसे अपने युग का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कहा जाए। प्रत्येक प्रकार के नवीन प्रभाव के लिए गेटे का मस्तिष्क सदैव तत्पर रहा, किसी भी रूढ़ि से वह जड़ित नहीं हुआ। दार्शनिक गेटे का दर्शन उसके स्वानुभव का परिणाम है, इसलिए उसमें एक स्वच्छ, निर्मल दृष्टि दीख पड़ती है। सब कुछ ग्रहण करने के बाद स्वच्छ होकर—छनकर जो कुछ गेटे की रचनाओं द्वारा संसार को मिला वह निर्विकार और कल्याणमय है। उसने सब कुछ ग्रहण किया था इसलिए सबके प्रति उसकी श्रद्धा थी (1) जो कुछ अपने ऊपर है उसके प्रति श्रद्धा, (2) जो कुछ अपने चतुर्दिक है उसके प्रति श्रद्धा, (3) जो कुछ अपने नीचे है उसके प्रति श्रद्धा संक्षेप में यही गेटे का दर्शन है—यह विराट दर्शन है, विश्वभर उसकी श्रद्धा का विषय था। तभी तो वह अपने को 'विश्व-पुत्र' कहता था। तभी तो जो कुछ अपने से पतित है उसके प्रति भी श्रद्धा—प्रेम नहीं—ही उसने व्यक्त की। गेटे का हृदय उदारता का साम्राज्य था। यह स्पष्ट है। उसमें भेद-बुद्धि कहीं भी नहीं दीख पड़ती। यही अभेद, अद्वैत, भारतीय ऋषियों का दर्शन है जिसे रहस्यवाद भी कहते हैं।

यहां हमने गेटे की जीवनी पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है, उनकी जीवन-घटनाओं का उल्लेख नहीं किया। उनकी जन्मभूमि फ्रेंकफोर्ट, उनकी निवासभूमि वाइमार, उनका अध्ययन स्थल डाम्सडेट और उनकी बिहारभूमि प्रायः संपूर्ण जर्मनी थी, इनमें से एक-एक स्थान और एक-एक स्थल जर्मन राष्ट्र के हृदय में, इस जयंती-अवसर पर पवित्र स्मृतियां जागृत करेंगे। जर्मन पत्रों ने विशेषांक निकालकर उन स्थानों के चित्र प्रकाशित किए हैं और उनका विस्तृत वर्णन किया है। वर्णन बड़ा ही विशद और आकर्षणपूर्ण है और चित्र बड़े ही रम्य हैं। किसी अन्य लेख में उनका उद्धरण किया जा सकता है। यहां हमने समास रूप से संक्षिप्त परिचय देने की चेष्टा की है। *फास्ट* के अतिरिक्त गेटे के लिखे *अरफास्ट, अरगूज, गूज, क्रेमिगो, एगर्मट, सीरीज ऑफ यंग वर्थर* आदि काव्य ग्रंथ हैं जिनका हमने कोई उल्लेख नहीं किया। गेटे की लिखी समालोचनाओं पर भी जर्मनी में अनेक लेख और पुस्तकें लिखी गई हैं, पर यहां उनके लिए स्थान नहीं। अंग्रेजी में गेटे पर जी.एच. लेविस की लिखी पुस्तक प्रधान थी। अब जर्मन विद्वान डंजर की पुस्तक का अनुवाद भी अंग्रेजी में हो गया है। हिंदी में भी उस पर पुस्तक लिखने का समय आ गया है। गेटे की आत्मा में मानवजीवन के उन गंभीर अनुभवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की छाप पड़ी थी जो भारतीय संतों की विभूति रही है। इसलिए गेटे के संबंध में हमें विशेष जानकारी प्राप्त करनी चाहिए ताकि हम यह देखें और अनुभव करें कि मनुष्य जीवन सर्वत्र एक-सा है और मनुष्य को शुद्ध अनुभूतियां भी एक-सी होती हैं। बयासी वर्ष के दीर्घ जीवन के बाद गेटे का जब देहावसान हो रहा है तब वह 'प्रकाश-प्रकाश' (Light More Light) कहकर पुकार उठा था। उसकी प्रकाश की तृष्णा, ज्ञान की प्राप्ति कामना कभी पूरी नहीं हुई। यह चिरंतन साधनामय जीवन है। साधना ज्ञान की है। गेटे के इन अंतिम शब्दों को आज सौ वर्ष के बाद जब हम दोहराते हैं तब वे हमें चिरसत्य प्रतीत होते हैं, 'प्रकाश प्रकाश' यह गेटे की पुकार थी, यह हमारे की मनीषियों की पुकार थी। प्रकाश-प्रकाश, यही हमारे आज के सभ्य-संसार की पुकार है और यही हमारी चिरदिन की पुकार बनी रहेगी। गेटे के जीवन की यही चरम शिक्षा है जो मनुष्य मात्र के हृदय में 'सत्य-सत्य' के स्वर में प्रतिध्वनित होती है। इसी में मनुष्य-मात्र की एकता है और यही अंत में मानवसमाज का निस्तार करेगी। संसार की मुक्ति-कामना का यही सबसे श्रेष्ठ, आशामय संदेश है जो गेटे के 'प्रकाश-प्रकाश' शब्दों में व्यक्त हुआ था। उनकी जयंती शताब्दी के अवसर पर हम उनके इन अंतिम शब्दों को आज अनेक बार स्मरण करते हैं।

(रविवार, 22 मई 1932)

# आर्डिनेंस राज्य

वर्तमान आर्डिनेंस राज्य पिछले पांच महीनों की कारगुजारी के बाद महीने भर में खत्म होने वाला है, परंतु राजकीय क्षेत्रों में चर्चा चल पड़ी है कि पहली किश्त खत्म होते ही आर्डिनेंसों की दूसरी किश्त जारी की जाएगी। भारत के प्रायः सभी राष्ट्रीय दलों और समाचारपत्रों द्वारा इसका विरोध किया जा रहा है। पिछली मर्तबा गवर्नर जनरल महाशय ने आपत्काल (Emergency) की सूचना देकर उसके नाम पर आर्डिनेंस बना दिए थे। उस समय भी यह सवाल उठाया गया था कि भारतीय व्यवस्था परिषद की राय क्यों नहीं ली गई जब कि लार्ड विलिंग्डन परिषद का अधिवेशन जब चाहते, बुला सकते थे। आखिर व्यवस्था-सभाएं किस मर्ज की दवा हैं? जब नए टैक्स लगाने होते हैं तब तो उनकी जरूरत समझी जाती है, उनके विशेष अधिवेशन किए जाते हैं और जब देशव्यापी कठोर शासन की सृष्टि की जाती है तब उनकी राय तक नहीं ली जाती? सरकार की निश्चित नीति पर हामी भरना ही व्यवस्था-सभाओं का काम नहीं है और न विदेशों में ब्रिटेन की लोकसत्तात्मक अभिरुचि का आभास देने के लिए उनकी रचना की गई है। उनका वर्तमान संघटन जैसा है उसमें भी वे लोकमत का प्रकाशन कर सकती हैं जैसाकि स्वर्गीय पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में स्वराज्यपार्टी ने किया था। पर शायद नौकरशाही को यह अभीष्ट नहीं है। व्यवस्था-सभाओं के प्रति भारतीय जनसमाज की बढ़ती हुई विरक्ति का मुख्य कारण उसका संगठन नहीं है, उसके प्रति सरकार के अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तक के व्यवहार का इतिहास है। कोई आश्चर्य नहीं कि इस समय जब नए सुधारों की आवाज आकाश में गूंज रही है तब भी जनता का विश्वास व्यवस्था-सभाओं पर नहीं के बराबर है। यह बड़ी बुरी परिस्थिति है। यदि जनता में व्यवस्था-सभाओं के प्रति विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता कभी थी तो आज सबसे अधिक है क्योंकि नई व्यवस्था का श्रीगणेश होने वाला है। परंतु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि नौकरशाही इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर ध्यान ही नहीं दे रही। उसकी अब भी वही पुरानी रफ्तार है। छह महीनों का लंबा समय बीत जाने पर अब यह नहीं कहा जा सकता कि आर्डिनेंस आपत्काल के कानून समझकर फिर से दोहराए जा सकते हैं। वे अब आपत्कालीन नहीं रहे और न समयोचित हैं।

आर्डिनेंसों की उपयोगिता क्या है? उनसे किस कार्य की सिद्धि हुई है या हो रही है? सरकारी पक्ष का यह कहना है कि शांति और व्यवस्था की रक्षा हर हालत में की जाएगी। परंतु शांति की रक्षा के लिए शांति ही सबसे बड़ा साधन है, आर्डिनेंस नहीं। व्यवस्था ही कायम रखने के लिए यदि ऐसे उपायों से काम लिया जाए तो उन्नतिशील विचारों के अनुसार स्वयं अव्यवस्था की श्रेणी में समझे जाते हैं तो यह गौरव की बात नहीं है बल्कि हेठी की बात है। राजकीय केंद्रों में यह अनुमान लगाया जा रहा था कि आर्डिनेंसों के द्वारा कांग्रेस का आंदोलन एक पखवारे में अथवा महीने भर में दबा दिया जाएगा और शायद इसी आशय से आर्डिनेंसों के आरंभिक दिनों में बड़ी ही तत्परता और जोश-खरोश से काम किया गया पर वह अनुमान गलत साबित हुआ। कांग्रेस का आंदोलन दमन द्वारा दबा नहीं, उभरता ही गया। ऐसी आशा की जाती थी कि 'गैरकानूनी' दलों को जेल में भेजकर सारे देश में अमन-कानून और राज-भक्ति की धारा बहा दी जाएगी परंतु देखा यह गया कि भारत में असंतोष की मात्रा बढ़ती ही गई और राजभक्ति के नाम पर केवल कुछ ऐसे व्यक्तियों का संगठन हो सका जिनका जनता में कोई विशेष प्रभाव नहीं है। इस आर्डिनेंस राज्य से भारत की आर्थिक स्थिति का सुधार नहीं हुआ और ब्रिटिश व्यापार की हालत बिगड़ती ही गई। यद्यपि सरकारी अफसरों द्वारा यह कहा गया कि आर्डिनेंसों द्वारा व्यापारियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा होगी, पर अधिकांश में भारतीय व्यापारियों को उनसे कोई लाभ नहीं पहुंचा। आर्डिनेंसों के वातावरण में एक ऐसी कटुता की सृष्टि हुई जिसका फल व्यापार पर बुरा पड़ा। सत्याग्रह आंदोलन को दबाने के लिए और राजनीतिक कैदियों का खर्च चलाने के लिए सरकार को आर्थिक व्यय करना पड़ा और अब भी करना पड़ रहा है और यह अर्थ-भार अंत में जनता पर नए टैक्स लगाकर ही वहन किया जा रहा है। इन भिन्न-भिन्न परिणामों के अतिरिक्त सामूहिक रूप से एक ऐसी अनुदार और संदेहात्मक भावना का उदय हुआ है जो ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक संबंध के लिए विशेष बाधाजनक है।

आर्डिनेंस राज्य के पक्ष में एक दलील यह भी थी जो सर सेमुएल होर के मशहूर वाक्य 'कुत्ते भूंका करते हैं पर कारवां चलते जाते हैं' द्वारा प्रकट की गई थी। इस अनाकांक्षित वाक्य का भारत में सर्वत्र विरोध किया गया। इसकी शब्दावली विशेष कटु है, पर इसका अर्थ सर सेमुएल होर ने यह लगाया था कि कांग्रेस का आंदोलन चाहे जितना बाधा डाले पर सुधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का आंदोलन रुक नहीं सकता। सुधार के काम में बाधा न पड़ने देने के उद्देश्य से यदि आर्डिनेंसों की सृष्टि अथवा व्यवहार किया गया तो हमें बाध्य होकर कहना पड़ेगा कि यह उद्देश्य प्रायः बिलकुल विफल सिद्ध हुआ। देश के अनेक नेताओं ने यह संभावना प्रकट की थी कि इस अवसर पर कांग्रेस का दमन करने का लक्ष्य यह भी हो सकता है कि कांग्रेस को दबाकर मनमाने तौर पर थोड़े-बहुत सुधार दे दिए जाएं। यदि सरकार का ऐसा उद्देश्य नहीं था तो भी दमन के परिणामस्वरूप लगभग उस उद्देश्य की पूर्ति हो गई। सुधार संबंधी जो कमेटियां भारत में आईं उन्हें देश के राष्ट्रीय विचारों का पूरा-पूरा पता नहीं लग सका। फलतः जो रिपोर्ट उन कमेटियों ने तैयार की वे एक बड़े अंश तक असंतोषजनक हैं। लार्ड लोथियन की मताधिकार कमेटी को छोड़कर शेष सब कमेटियों की सिफारिशों पर विरोधी टिप्पणियां की जा चुकी हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि वे सिफारिशें राष्ट्रीय भारत को मान्य नहीं हैं। भावी स्वराज्य विधान की जो मुख्य रूपरेखा है—संघ शासन की—वह अब तक खींची नहीं जा सकी। संघ के आर्थिक पहलू का तसफ़िया करने के लिए जो कमेटी बैठी थी उसने भावी भारत-संघ में टैक्सों की मात्रा अब से भी अधिक रखी है जो किसी प्रकार सहन नहीं की जा सकती। फौज का खर्च सीमा का उल्लंघन करता हुआ दिखाई पड़ता है। देशी राज्य केवल शासन का अधिकार स्वयं चाहते हैं पर शासन का खर्च अधिकांश में ब्रिटिश भारत के सिर टालना चाहते हैं। अभी पिछले दिन भारत के नरेंद्र मंडल ने बंबई में एकत्र होकर जो प्रस्ताव किए उनसे यह स्पष्ट है कि वे संघ परिषद में अधिक संख्या में पहुंचकर ब्रिटिश भारत पर स्वत्व रखना चाहते हैं पर अपने स्वामित्व (Sovereignty) का अधिकार लेश मात्र भी नहीं छोड़ना चाहते। अभी भी उनकी यह शर्त लगी ही हुई है कि देशी राज्यों की एक बड़ी संख्या जब तक संघ में प्रवेश करने की हामी न भरे तब तक उसकी स्थापना न की जाए। इस प्रकार व्यावहारिक और विधान संबंधी कठिनाइयां उपस्थित हो रही हैं जिनसे 'कारवां' का चलना तो कठिन, उसका बैठ जाना संभव जान पड़ता है। गोलमेज कॉन्फ्रेंस की घोषणा के विरुद्ध अब यह आवाज भी उठाई जा रही है कि केंद्रीय और प्रांतीय उत्तरदायित्व साथ-साथ न देकर पार्लियामेंट पहले प्रांतीय स्वराज्य का बिल पास करे। 'प्रांतीय स्वराज्य' की असलियत जो लोग जानते हैं वे इस आवाज का अर्थ समझ सकते हैं। डॉक्टर शफात अहमद खां जैसे सांप्रदायिक दल के मुसलमान का इस प्रकार का प्रस्ताव करना स्थिति को और अधिक खुलासा कर देता है। यदि आर्डिनेंसों द्वारा राष्ट्रीय कांग्रेस का दमन करके इन्हीं नतीजों पर पहुंचना है तो आर्डिनेंस राज्य की महिमा समझी जा सकती है।

इधर कुछ दिनों से शाब्दिक लड़ाई लड़ी जाने लगी है जिससे वास्तविक समस्या और भी अंधकार में पड़ती जा रही है। पिछली देहली कांग्रेस के संबंध में एंग्लो-इंडियन पत्रों ने जो बयान छापे हैं उनसे प्रकट होता है कि वे स्थिति की गंभीरता को समझना नहीं चाहते। राजनीतिक कैदियों की संख्या यथार्थ रीति से प्रकट नहीं की जाती पर इससे कोई लाभ नहीं। उचित यह है कि संपूर्ण परिस्थिति का यथावत दिग्दर्शन किया जाए और तदनुसार उसके प्रति अपने विचार प्रकट किए जाएं। पर जब सर सेमुएल होर जैसे उत्तरदायित्व-प्राप्त व्यक्ति भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रतिष्ठित गैर-सरकारी व्यक्तियों की भारत संबंधी विज्ञप्तियों पर अब तक उचित ध्यान नहीं दे रहे तब औरों के विषय में क्या कहा जा सकता है? आर्डिनेंस राज्य के विरुद्ध ब्रिटेन में पहुंचे हुए प्रमाणों की मात्रा भी कम नहीं है पर आवश्यकता है उन प्रमाणों की छान-बीन करने की और छानबीन करने के बाद उनकी कद्र करने की। पूज्य मालवीयजी ने पिछले 4-5 महीनों की परिस्थिति का जो दिग्दर्शन कराया है उससे लाभ उठाया जा सकता है। अनेक अंग्रेज और यूरोपियन यात्री जिनमें ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य भी हैं, प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से आर्डिनेंस राज्य पर अपने अनुभव व्यक्त कर रहे हैं। पर उनका कोई मूल्य नहीं समझा गया। मिस्टर एंड्रूज जैसे न्यायनिष्ठ और आर्थिक व्यक्ति की बातें यदि सत्य नहीं हैं तो और किसकी हैं? स्वयं पार्लियामेंट द्वारा भेजी गई 'मताधिकार कमेटी' के अध्यक्ष लार्ड लोथियन ने भी कांग्रेस से सहयोग की सिफारिश की है और विलायत पहुंचकर भारत की परिस्थिति के संबंध में कुछ बातें कही हैं। भारत की वास्तविक अवस्था का अभिज्ञान और आर्डिनेंस राज्य के फलाफल का परिचय इन्हीं विवेकवान पुरुषों से प्राप्त किया जा सकता है—शाब्दिक लड़ाई लड़ने वाले खबर-कागजों से नहीं। हम कह सकते हैं कि यदि इन विवेकवान पुरुषों से पिछले पांच महीनों के आर्डिनेंस राज्य की चतुर्दिक अवस्था और परिणामों की शिक्षा ली जाए तो आर्डिनेंसों की दूसरी किश्त निरर्थक और अनुचित समझी जाए तथा ऐसी नवीन नीति का उद्घाटन किया जाए जिससे सफल विधान के बनने और व्यवहार होने में सहायता मिले और स्थायी शांति का रास्ता साफ हो।

(गुरुवार, 26 मई 1932)

## शराब से लाभ

शराब पीने से और मादक द्रव्यों का सेवन करने से किस-किस को कौन-कौन से लाभ हैं इसका जवाब कौन देगा? बेचारे धर्मशास्त्र इसका जवाब नहीं दे सकते। हिंदुस्तान में दो प्रधान धर्म हैं—हिंदू और मुस्लिम। हिंदू धर्म में मादक वस्तुओं का निषेध किया गया है और इस्लाम में वे हराम बतलाई गई हैं। धर्मशास्त्र को छोड़कर दूसरी जगह तलाश किया जाए। समाज में मादक वस्तुओं का प्रचलन है पर उसका समर्थन करने वाला एक भी समाज हितैषी नेता नहीं दीख पड़ता। क्या बात है? क्या वह समाज की सुव्यवस्था के लिए बाधाकारी और सभ्यता की प्रगति के लिए अनिष्टकारी है? यदि ऐसा न होता तो भारत के मनीषी नेता क्यों उसका विरोध करते और पश्चिम के प्रौढ़ विचारक क्यों उसके प्रति विरक्ति प्रकट करते? क्या कारण है कि अधिकांश में निम्न श्रेणी की मूर्ख जनता अथवा श्रीसंपन्न विलासी वर्ग ही उसका अधिक प्रयोग करते हैं और विचारवान समाज में उसका सेवन नहीं किया जाता? तो कोई शराब पीता है वह उसे छिपाने की चेष्टा क्यों करता है, क्या इसलिए कि वह कल्याण की वस्तु है? शराब पीकर लोग नालियों में क्यों गिरते-पड़ते हैं और समाज के तरह-तरह के लांछन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्यों सहते हैं? उनमें इतना साहस क्यों नहीं होता कि वे अपने मद्यपान की प्रशंसा करें अथवा उसका समर्थन करें। कहा जाता है कि कवियों की काव्य प्रतिभा को मद्य से उत्तेजना मिलती है पर क्या यही बोतलों में मिलने वाला मद्य कवि जीवन का अवलंब है? क्या कवि के यौवन की सात्विक मादकता, उसकी प्रसन्न कल्पना की मनोरम झलक अंधे घर की शराब से भिन्न नहीं है? क्या कहा गया है 'वे पियें नशा रहे जवानी वह है'? शराब के क्षणिक उत्तेजना और प्रतिघात में आने वाले शिथिल अवसाद क्या कवि की चिर उन्नत, चिर उत्तेजित काव्य-प्रतिभा की साधना कर सकते हैं?

डॉक्टरों से पूछिए, शायद वे शराब से कुछ लाभ बता सकें। उनका कथन है कि ओषधि रूप में, थोड़ी मात्रा में, नियमित रीति से मद्य का सेवन लाभप्रद हो सकता है। पर क्या यह कभी संभव है? एक बार आदत पड़ जाने पर क्या नियमित पान के नियम का पालन किया जा सकता है? वैद्यों का कहना है कि शारीरिक और मानसिक पुष्टि का साधन तो सात्विक भोजन है, मद्य तो कुछ विशेष रोगों की दवा मात्र है। पूरा समाज रोगी नहीं है कि वह मद्य सेवन करे। इसी से धर्मशास्त्र उसका निषेध करते हैं, समाजशास्त्र उसकी निंदा करता है। स्वयं पियक्कड़ों से पूछिए। वे बतावेंगे आरंभ में मद्य उन्हें बड़ा स्वादिष्ट और शांतिप्रद मालूम हुआ। धीरे-धीरे उसकी लत लगती गई। अंत में वह एक मर्ज बन गई जिसका छूटना उसी तरह कठिन हो गया जिस तरह सांघातिक रोगों का छूटना। शराब के पीछे संपत्ति स्वाहा करने वाले अद्‌भुत रसिकों से सवाल करिए वे आपको अपनी दुःखांत कहानी सुना देंगे जिसे सुनकर आप एक नतीजे पर पहुंच सकेंगे। जो शराब के गुणगान करने वाले हैं उनसे भी पूछ देखिए। उनमें से अधिकांश स्वतः उसका व्यवहार करते होंगे पर आपको सदैव उससे अलग रहने का ही उपदेश देंगे। क्या कारण है? जो रेलवे आदि के गंदे वातावरण में रहकर कठिन परिश्रम करने वाले मजदूर हैं उनसे जिज्ञासा कीजिए। वे बेचारे शराब पीकर अपना दुःख भुलाने की चेष्टा करते हैं पर क्या वह भूल जाते हैं? सड़कों पर गिरकर, मार खाकर, उन्हें होश आता है तब की उनकी हालत पूछिए। अथवा वास्तविक हालत उनकी पत्नियों से पूछिए जो अपने मद्यप पतियों के कारण सतत अर्थाभाव से पीड़ित रहतीं और समय-समय पर सतीत्व त्याग करने अथवा मृत्युग्रास बनने को बाध्य की जाती हैं! अब और किससे पूछिएगा?

क्या हमारी सरकार को भी इस सवाल के जवाब में कुछ कहना है? अवश्य वह समाज के भले-बुरे की जिम्मेदार और सभ्यता की उन्नति करने वाली है। उसका दावा है कि हिंदुस्तान को उससे बहुत कुछ शिक्षा मिली है और लाभ पहुंचे हैं। उसका कहना है उसने चीन जैसे विशाल मुल्क की नशोन्मुखी जनता को अफीम के विष से बचाया और इस प्रकार मानव जाति का कल्याण किया। अवश्य उसके इस कथन में कुछ सत्यता है। उसने भारत में भी खुले आम मादक वस्तु व्यवहार वर्जित कर दिया है। उसने वैद्यों को भी एक निश्चित परिमाण से अधिक मद्य रखने और बेचने की इजाजत नहीं दे रखी, जिसका प्रतिवाद भारतीय वैद्य सम्मेलन के पिछले अधिवेशनों में किया जा चुका है। यदि सरकार का उद्देश्य केवल यह है कि मद्य वस्तुओं का व्यवहार कम से कम किया जाए और इसी उद्देश्य से उसने वैद्यों को मुमानियत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की है तो हम उसका विरोध नहीं कर सकते, बल्कि समर्थन ही करेंगे। हमारे ही प्रांत के सरकारी मंत्री श्रीयुत राजेंद्र सिंह ने व्यवस्था-सभा में सरकार की यह स्पष्ट नीति प्रकट की थी कि वह धीरे-धीरे मादक द्रव्य सेवन का पूरा बहिष्कार करने की नीति पर काम कर रही है। उस समय नवाब छतारी जैसे अधिकार प्राप्त व्यक्ति ही नहीं, सरकार के अर्थ मंत्री तक ने मद-त्याग के पक्ष में अपना मत दिया था और समाजसेवियों की कृतज्ञता प्राप्त की थी। प्रांतीय सरकार ही नहीं, भारतीय सरकार भी इस संबंध में उचित नीति का पालन करने की सूचना दे चुकी है। लार्ड इर्विन के शासनकाल में कांग्रेस का एक कार्यक्रम मादक द्रव्यों का निषेध भी था। दुकानों की पिकेटिंग की जाती थी। यद्यपि उस समय राजनीतिक वातावरण विशेष उग्र था और आर्डिनेंस भी लगे थे पर शांतिपूर्ण पिकेटिंग करने वालों को दंड नहीं दिया जाता था। सरकार ने मादक द्रव्य निषेध के समाजहितैषी नैतिक आंदोलन को दबाना उचित नहीं समझा।

पर एक बात है। मादक वस्तुओं की बिक्री से सरकार को आर्थिक लाभ होता है। उससे उसका खर्च चलता है। वह कभी-कभी अपनी मद्य-विक्रय पॉलिसी का समर्थन यह कहकर किया करती है कि उससे मिले हुए रुपए शिक्षा विभाग तथा अन्य लोकोपकारी विभागों में लगाए जाते हैं जिनसे देश का अमित उपकार होता है। परंतु एक उपकार के बदले यदि दूसरा अपकार होता हो तो इसमें सरकार की विशेष वाहवाही नहीं है। हमें यह भी देखना होगा कि अपकार अधिक अनिष्टकर है अथवा उपकार अधिक हितकर है। जब सरकार अपनी आय का अधिकांश भाग फौजी खर्च में लगाती है तब उसे यह कहने का क्या अधिकांर है कि मद्य विक्रय के रुपए वह शिक्षा विभाग में व्यय करती है। बहुतों ने कहा है और हम भी कहते हैं कि यदि फौजी खर्च उचित से अधिक मात्रा में न किया जाए तो बिना मद्य विक्रय के भी शिक्षा विभाग का खर्च चल सकता है। ऐसा क्यों नहीं किया जाता? सरकार ने अब तक इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया। चीन के संबंध की उसकी उदारता भारत में नहीं दीख पड़ती यद्यपि समय-समय पर उसने यह नीति घोषित की है कि मद्य का संपूर्ण वर्जन वह अपना लक्ष्य रखती है।

हमारी यू.पी. में एक बात और है। इस समय श्रीयुत जी.पी. श्रीवास्तव महाशय इस विभाग के अधिकारी मंत्री है। हाल में प्रांतीय सरकार ने मद्य विक्रय का तरीका बदल दिया है और एक नए तरीके का इस्तेमाल किया है जो वास्तव में पुराना तरीका था और सरकार ने उसे अनुचित समझकर छोड़ दिया है। उस पुराने तरीके को फिर से इस्तेमाल करने का कारण यही हो सकता है कि सरकारी नीति बदल गई है अथवा कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाएं घटी हैं। सरकार ने पुराना तरीका इसलिए बदला था कि उससे मद्यविक्रय में कमी होने की आशा थी। वह आशा फलवती भी हुई थी। अब तक सरकार को यह पसंद भी था। पर अचानक उसे अब यह नापसंद हो गया है। इसके लिए उसकी एक मात्र दलील यह है कि छिपे तौर पर शराब बनाई जाने लगी थी जो सरकार को इष्ट नहीं है। यहां दो सवाल हैं। सरकार को शराब की खपत इष्ट नहीं है या छिपे तौर पर उसकी खपत इष्ट नहीं है? यदि पहली बात है तो उसे ऐसा प्रबंध करना चाहिए जिससे उसकी खपत कम हो पर खुली बोतलों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शराब की बिक्री की नई नीति से तो उसकी खपत बढ़ेगी। नीलाम करने वाली प्रणाली भी अधिक बिक्री का ही कारण होगी। यदि सरकार अपनी कथित नीति पर काम करना चाहती है—जो नीति समाज के लिए उपकारी भी है—तो वह सब प्रकार से छिपे-छिपे शराब बनाने के फरेब को रोके और जनता का प्रत्येक व्यक्ति उसे उस कार्य में सहायता दे, पर उसे ऐसा नहीं चाहिए कि वह एक अवगुण को रोकने के लिए स्वयं दूसरा अवगुण करना शुरू कर दे। अभी तो यही किया गया है। इससे किसको क्या लाभ है?

## *साकेत*—1

*साकेत* बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी का नवीन काव्यग्रंथ है। यह अनेक वर्षों के परिश्रम की रचना है। इसमें बारह सर्ग हैं और *रामायण* की कथा आद्यंत संकलित की गई है। यद्यपि रामायणी कथा का विस्तार साकेत तक ही सीमित नहीं था, वरन् भारत के दाक्षिणात्य प्रदेशों तथा लंका तक प्रसरित था तथापि गुप्तजी ने अपना वर्णनक्रम ऐसा रखा है कि वह साकेत में ही केंद्रित हो गई है। इस केंद्रीकरण के फलाफल पर हम आगे विचार करेंगे। *साकेत* में एक सर्ग भरत-मिलाप का भी है जो चित्रकूट की घटना है। *साकेत* में यह घटना सन्निहित की गई है। इसका मार्जन इस प्रकार किया जा सकता है कि गुप्तजी की कवि-भावना भरत-मिलाप के प्रसंग से अतिशय आकृष्ट थी, जो अस्वाभाविक नहीं। यह भी संभव है कि *साकेत* के अंग-संघटन के लिए गुप्तजी ने चित्रकूट कथा को उस रूप में जोड़ना अनिवार्य समझा हो। एक बात यह भी हो सकती है कि साकेत की सीमा में गुप्तजी चित्रकूट को भी सन्निविष्ट करते हों। इस विषय पर ऐतिहासिक प्रमाण देना कोई उचित नहीं समझेगा और न हम समझते हैं। *साकेत* तो प्राक्-ऐतिहासिक नगरी थी जो त्रेता तक इस धरातल में रही, तदुपरांत स्वर्ग चली गई और उसके स्थान पर अयोध्या की सृष्टि हुई। साकेत नगरी के अतिरिक्त किसी साकेत प्रांत की कल्पना काव्यभावना के बाहर है, अतः *साकेत* में चित्रकूट-प्रसंग का समावेश किए जाने के फलाफल पर भी हम आगे ध्यान देंगे। *साकेत* नामकरण के कारण उसमें समाविष्ट संपूर्ण कथा वर्णनप्रधान हो गई है और घटनाएं प्रत्यक्ष के स्थान पर परोक्ष बन गई हैं। साकेत के अंतर्गत घटनाओं की गतिशीलता के स्थान पर अनिवार्य रूप से जिस स्थिरता का प्रवेश हुआ है, उसकी संगति भीं हमको आगे चलकर लगानी होगी।

*साकेत* का आरंभ *रामचरित* के अयोध्याकांड से किया गया है जब विवाह के उपरांत रामचंद्र के अभिषेक की तैयारी की जाने लगी है। बालकांड की कथा का त्याग कर देने की उपयोगिता यह है कि उसके कुछ रसमय अंश वियोगिनी उर्मिला के विरह वर्णन के उद्दीपन बनाए गए हैं। (*साकेत*, सर्ग 10)। दूसरी ओर प्रधान उपयोगिता यह है कि कवि का आशय आरंभ में ही प्रकट हो जाता है कि वह *रामायण* की बाल लीलाओं को छोड़कर काव्य में उर्मिला और लक्ष्मण के चित्रों को प्रमुखता देना चाहता है। आरंभ से ही यह संकेत मिलने लगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कि *साकेत* महाकाव्य के आवरण में प्रेमकाव्य और प्रेमकथा का महाकाव्य बनाना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही *रामचरित* का संपूर्ण बालकांड निकालकर प्रेम कथा का श्रीगणेश किया गया है। बालकांड के अभाव से *साकेत* की प्रेमकथा शिथिल न होकर अधिक संक्षिप्त और प्रभावशालिनी बन गई है। बालकांड के निराकरण से *साकेत* के कवि का यह भाव भी प्रकट होता है कि वह काव्य को घटनाप्रधान नहीं बनाना चाहता, वर्णनप्रधान बनाना चाहता है। संक्षेप में, कवि का आशय वर्णनप्रधान प्रेमकाव्य लिखने का स्पष्ट है परंतु इसके साथ ही वह पूरे *रामचरित* का आनुषंगिक वर्णन भी करना चाहता है। इन दोनों लक्ष्यों का तारतम्य मिलाने में कवि को कितनी सफलता मिली है इसका विचार करने पर *साकेत* का रचना संघटन (structure) प्रकट होगा।

*साकेत* का प्रथम सर्ग लक्ष्मण और उर्मिला के संयोग वर्णन से आरंभ होता है। यहां यह आभास है कि लक्ष्मण काव्य के नायक और उर्मिला नायिका हैं। परंतु परवर्ती सर्गों में लक्ष्मण राम के साथ बनवासी होकर साकेत से निर्वासित हो जाते हैं, इसलिए *साकेत* में नायक लक्ष्मण का चरित्र गौण और नायिका उर्मिला का प्रमुख बन जाता है। ऐसा होना अवश्यंभावी तो था पर कवि की इच्छा होती तो वह लक्ष्मण का कुछ अधिक उत्कर्ष साधन कर सकता था। परंतु कवि के साथ यह कठिनाई दीख पड़ती है कि वह रामभक्त होने के कारण राम को भी छोड़ नहीं सकता। कवि लक्ष्मण के लिए राम का त्याग नहीं कर सका और न रामायणी कथा का त्याग कर सका। यह बहुत कुछ कवि की व्यक्तिगत धार्मिक भावना का परिणाम जान पड़ता है, जिसके फलाफल का वर्णन यथाप्रसंग किया जाएगा। अवश्य ही इससे महाकाव्य के अंग संघटन और चरित्र निर्देश में बाधा पड़ी है। परंतु लक्ष्मण की क्षतिपूर्ति उर्मिला कर देती है—शायद उचित से कुछ अधिक ही कर देती है। उर्मिला *साकेत* की प्रधान नायिका है। राम वनवास के चौदह वर्षों में साकेत का अधिकांश जीवन-स्पंदन उर्मिला की नाड़ी परख कर देखा जा सकता है। उसके विरह वर्णन में *साकेत* के दो सर्ग लगाए गए हैं जो सर्वथा संगत हैं। परंतु दो-एक स्थानों पर उर्मिला का चित्रण अत्यधिक अतिरंजित कर दिया गया है। वह महाकाव्य की नायिका है पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह प्रत्येक अपेक्षित अथवा अनपेक्षित अवसर पर सामने लाकर रखी जाए। कथा का विकास एक पात्र द्वारा ही नहीं, अनेक पात्रों द्वारा होना चाहिए और नायिका को प्रमुख स्थान देते हुए भी संगति का सदैव ध्यान रखना चाहिए। उर्मिला की वियोग दशा की उचित अभिव्यंजना उसके कर्तृत्व पक्ष के कम करने से संभव था। पर दशरथ के मरण पर भी कौशल्या, सुमित्रा आदि विधवा पत्नियों से अधिक उर्मिला ही व्यथित होती और उद्‌गार प्रकट करती है। यह प्रत्यक्ष ही रसाभास है। इससे उसकी विरह-वेदना की तीव्रता बहुत कुछ फीकी पड़ जाती है। एक अन्य अवसर पर जब साकेत की सेना युद्ध के लिए लंका यात्रा करने का निश्चय करती है तब उर्मिला एक विचित्र प्रकार का उपदेश देने को सामने आती है। वह सेना को शिक्षा देने लगती है कि लंका से सोना मत लाना। यह अप्रासंगिक है। उसे उस अवसर पर या तो रण-सज्जा सजाना चाहिए थी अथवा उन्माद की अवस्था में मौन रहना चाहिए था। परंतु कवि ने उर्मिला को अधिक प्रमुखता देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में उसे उचित से कुछ अधिक मुखर बना दिया है। प्रमुखता और मुखरता में भेद है। इसे सब समझ सकते हैं।

साकेत नाम की सार्थकता क्या है? यही कि काव्य की घटनाओं का केंद्र साकेत है। पर साकेत के साथ कवि की कोई विशेष घनिष्ठ प्रीति नहीं लक्षित होती। साकेत के नर-नारियों से कवि को कुछ अधिक मतलब नहीं जान पड़ता अन्यथा राम के वनवास के अवसर पर उन्हें भी अपने मनोभाव व्यक्त करने का कुछ अवसर दिया जाता। यदि इतनी उदारता न भी की जाती तो कम से कम उर्मिला के विरह वर्णन में ही उसके लिए कोई विधि बनाई जाती। परंतु उर्मिला के चौदह वर्ष एक एकांत उपवन में व्यतीत होते हैं अथवा सरयू के किनारे। साकेत के नर-नारियों तक उर्मिला की विरह वेदना नहीं पहुंचती। यह न तो उर्मिला के पक्ष में उचित है, न साकेतवासियों के पक्ष में। मैथिलीशरणजी ने साकेत को केवल एक सूक्ष्म केंद्र-बिंदु माना है और घटनाओं की परिधि उस बिंदु से खींची है। इस प्रकार साकेत केवल काव्य के बाह्य में सहायक है। यदि उससे कवि की किसी अंतर्वृत्ति का संबंध होता तो साकेत का अर्थ केवल दशरथ का राज-परिवार अथवा सरयू की धारा न होता, उसे कवि की कुछ अधिक व्यापक अनुभूतियां प्राप्त होंती।

तथापि *साकेत* काव्य में रामायणी कथा जिस सतर्कता अथवा स्वाभाविकता से सजाई गई है उसके लिए कवि की प्रशंसा की जानी चाहिए। कई स्थानों में कथा के तार बड़ी बारीकी से जोड़े गए हैं। उर्मिला के विरह वर्णन में उद्दीपन बनकर बालकांड की जो कथा आई है वह मैथिलीशरणजी की श्रेष्ठ कला का परिचय देती है। अन्यत्र हनुमान द्वारा राम के वनवास और लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति लगने आदि घटनाओं का जो संकलन किया गया है उसके संबंध में कुछ द्विविधा हो सकती है। हनुमान संजीवनी बूटी लेने आए थे, राम वनवास की कथा कहने नहीं। लक्ष्मण को जो कठिन शक्ति लगी है उससे न हनुमान और न भरत ही विशेष प्रभावित अथवा विचलित जान पड़ते हैं अन्यथा वे उस समय पूरी गाथा सुनने-सुनाने न बैठते। यदि लक्ष्मण को *साकेत* का नायक बनाना इष्ट था तो कवि को उनके प्रति अधिक चिंता और तत्परता दिखानी चाहिए थी। यदि राम वनवास की कथा कहनी इष्ट ही थी तो इससे अधिक उपयुक्त अवसर दूसरा मिल सकता था। यही इस विषय में हमें संदेह ही है। *साकेत* के अवयव संघटन के लिए राम वनवास का उल्लेख किसी न किसी रूप में अपेक्षित था यह तो निश्चय है। अतः कवि के लिए इस कथा का सन्निवेश करना विशेष कठिन कार्य था यह सत्य है।

(रविवार, 29 मई 1932)

## कृषि और उद्योग-धंधा

नवीन स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख संचालक पूज्य पं. मदनमोहन मालवीयजी ने पिछली 29 मई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को अखिल भारतीय स्वदेशी दिवस के उत्सव में स्वदेशी की प्रतिष्ठा और प्रचार के लिए कुछ मार्के के उपाय बतलाए। मूल समस्या पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि हमें देश के किसान और रोजगारी पर एक साथ ध्यान रखना होगा क्योंकि स्वदेश के ये ही आधार स्तंभ हैं। अतः स्वदेश अथवा स्वदेशी की उन्नति करने का अर्थ इन्हीं दोनों की दशा का सुधार करना है। हमें ऐसे उपाय काम में लाने चाहिए जिनसे किसान और व्यवसायी की कृषि और उद्योग-धंधे कंधे से कंधा जोड़कर आगे बढ़ सकें ताकि स्वदेश का विस्तार हो सके। बहुत से देशों में किसान, मजदूर तथा व्यवसायियों के धंधे अलग-अलग समझे गए हैं और उन देशों में ऐसे आंदोलन भी चलाए गए हैं जिससे इन तीनों को समान रूप से लाभ नहीं पहुंचा बल्कि एक के लाभ से दूसरी को क्षति पहुंची है। एक समय था जब यूरोप भी भारत की ही तरह कृषिप्रधान देश था, पर अब अधिकांश यूरोप व्यवसायी बन गया है। उसके अनेक प्रदेश तो ऐसे हैं जो अपना पेट भरने के लिए अपने देश में अन्न नहीं उपजा सकते, दूसरों के मुंहताज रहते हैं। कुछ ऐसे हैं जहां मजदूरों और पूंजीपति व्यवसायियों में कलह और रक्तपात हुए हैं जिनमें कभी एक प्रक्ष कभी दूसरा पक्ष विजयी हुआ है पर जिनसे देश की अमित हानि हुई है। सारांश यह कि किसानों और व्यवसायियों अथवा पूंजीपति तथा मजदूर व्यवसायियों का ऐसा संघटन करने में यूरोप विशेष सफल नहीं हुआ है जिससे वर्ग वैमनस्य न फैलकर सारे देश का समूह रूप में हित हो सकता। कृषि और व्यवसाय में मेल न मिलाने के कारण यूरोप का स्वदेशी आंदोलन पूर्ण मात्रा में अपना उद्देश्य सिद्ध न कर सका। यदि हम यूरोप तथा अन्य देशों की उस भूल से शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं तो हमें किसान और व्यवसायी के धंधों पर समान रूप से ध्यान देना होगा। सच्चा स्वदेशी आंदोलन यही लक्ष्य रखकर चल सकता है।

किसान और व्यवसायी, कृषि और उद्योग-धंधों में किस प्रकार और कब सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है? तभी जब हम दोनों के हितों पर सम दृष्टि से ध्यान दें। भारत में किसानों की संख्या अस्सी प्रतिशत से ऊपर है इसलिए वह कृषिप्रधान देश कहलाता है, पर यहां की खेती की हालत निहायत गई-गुजरी है। देश की दरिद्रता का यही प्रधान कारण है। यहां जमीन के बंटवारे होते-होते ऐसे खंड हो गए हैं कि किसान सुविधा के साथ उनकी देखभाल नहीं कर सकते और न कम खर्च के साथ उनकी जुताई-बोवाई कर सकते हैं। जहां सिंचाई की जरूरत है वहां सिंचाई के काम में और भी बाधाएं हैं। किसान के पास इतना पैसा नहीं कि वह कृषि के उन्नति प्राप्त उपायों का उपयोग कर सके। उसका वही पुराना हल और पुराना फल है। वह अधिकांश में कर्ज लेकर हर साल खेती के लिए नए बैल खरीदता है क्योंकि बैल ज्यादा टिकाऊ नहीं सिद्ध होते। यह प्रति वर्ष का नैमित्तिक खर्च है जो और देशों में नहीं होता। उसके कर्ज का बोझ जब कभी हल्का होता है तब वह यज्ञ करने का-सा सुख अनुभव करता है पर उसे यह सुख बहुत कम नसीब है। इसके ऊपर उस पर लगान का भार है जो उसकी आय देखते हुए बहुत कुछ असाध्य और असह्य है। पर उतना तो उसे प्रतिवर्ष देना ही पड़ता है—यदि नए टैक्स उसके सौभाग्य से उसके ऊपर न लग जाएं। यदि इस कष्ट की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अवस्था से देश की अस्सी प्रतिशत जनता का निस्तार हो सके तो यह स्वदेशी का सबसे सफल आंदोलन हो, पर ऐसा किस प्रकार संभव है?

किसानों की किस्मत का फैसला और बहुत से फैसलों की तरह विदेशी शासन संस्था के अधिकार में है। इसके फैसले में दस्तंदाजी करने का हमें अधिकार नहीं, यही कारण है कि देश के किसान दुर्दशा से छूट नहीं रहे। तथापि किसानों के वर्षभर के जीवन के कुछ महीने ऐसे होते हैं जब उन्हें खेती का काम नहीं रहता। कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है इन महीनों में किसान बेकार बैठे रहते हैं परंतु ऐसा वे ही किसान करते हैं जो इच्छा रखते हुए भी किसी धंधे से नहीं लग सकते। उन्हें लाचारी रहती है। जिनके पास कुछ रुपए होते हैं वे गाड़ी लाद कर व्यवसाय के केंद्रों में जाते अथवा कोई दूसरा उद्योग करते हैं। पर प्रत्येक उद्योग के लिए कुछ पूंजी की आवश्यकता होती है जो सब किसानों के पास नहीं रहती। वे ही बेकारी में समय बिताते हैं। अधिकांश में ऐसे ही निर्धन बेकारों के लिए तथा संपूर्ण स्त्री समाज के लिए चरखा चलाने का धंधा बतलाया जाना चाहिए। चरखे के लिए बड़ी पूंजी की आवश्यकता नहीं होती। स्त्रियां भी आसानी से चरखा चला सकती हैं। उससे जो आय होती है वह समय को देखते हुए कम नहीं है। एक प्रकार से वह बैठे-ठाले की आमदनी है। चरखा घरेलू धंधों में शायद एक मात्र ऐसा धंधा है जिसको समाज की सभी श्रेणी की स्त्रियां कर सकती हैं। उसके लिए किसी विशेष बारीकी या किसी पक्वता की जरूरत नहीं। चरखे का यही असली लाभ है। इसको निर्धन का धन कहा जा सकता है।

अकेली खेती से किसान का काम नहीं चल सकता। वर्तमान परिस्थिति में खेती के धंधे में संतोषजनक सुधारों के उपाय प्राप्त नहीं हैं। वह किसान या तो खेती का काम छोड़कर मजदूर बन जाए या कोई और उपाय सोचे। मजदूरी भी वह कौन सी करे। देहातों में अपनी मजदूरी को छोड़कर दूसरों की मजदूरी की गुंजाइश नहीं है। शहरों में मजदूरी की जगहें हो रही हैं पर वहां के लंबे खर्चे को किसान परिवार बर्दाश्त नहीं कर सकता। नागरिक जीवन उसके अनुकूल नहीं है। वहां के वातावरण में उसके लिए अनेक चिंताएं प्रलोभन और स्खलन हैं। फिर देश में मजदूरों का दृढ़ संघटन न होने के कारण उनकी नौकरी का कोई ठिकाना नहीं। दुर्भाग्यवश नौकरी छूटने पर उन्हें कोई अवलंब नहीं रह जाता। इसलिए वर्तमान स्थिति में मजदूरी के धंधे को कृषि का स्थानापन्न बनाना खतरे से खाली नहीं है। मजदूरी का क्षेत्र भी अभी बहुत छोटा है। बड़ा होने पर संभव है मजदूर और पूंजीपति का द्वंद्व अधिक बड़े पैमाने पर यहां भी सामने आए। इन संकटों से बचने के लिए यदि किसान कृषि कार्य का परित्याग न करें और शहरों की मजदूरी की अपेक्षा घरेलू उद्योग-धंधों की ओर अधिक ध्यान दें तो अधिक उपकार दीख पड़ता है।

उद्योग-धंधों के विस्तार के लिए पूज्य मालवीयजी ने प्रचार के कुछ उपायों पर जोर दिया है। अवश्य ही आरंभिक अवस्था में देश धंधों को उत्साह की प्रेरणा मिलने की आवश्यकता है। जब अन्य देशों में विलायत में भी 'स्वदेशी' की धूम मची हुई है तब हम अपने देश में भी वैसा ही क्यों न करें। प्रत्येक जिले में स्वदेशी प्रदर्शनी की स्थापना होनी चाहिए जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न केवल स्वदेशी वस्त्र बल्कि सभी वस्तुओं की नुमाइश की जाए। इनसे दो प्रकार के लाभ होंगे। एक तो जनता में स्वदेशी के प्रति उत्सुकता बढ़ेगी, दूसरे कारीगरों को अपनी त्रुटियां और दूसरों की बारीकियां मालूम पड़ेंगी। कला की उन्नति इसी प्रकार होती है। इससे स्वदेशी का रोजगार भी बढ़ेगा और स्वदेशी वस्तुओं में सुघरता और सुंदरता भी बढ़ेगी। फिलहाल यह कठिनाई उपस्थित की जाती है कि स्वदेशी वस्तुएं उतनी बढ़िया नहीं होतीं और उनका दाम अधिक होता है। पर प्रोत्साहन मिलने पर अभ्यास बढ़ेगा और चीजें अच्छी तैयार होंगी। दाम भी धीरे-धीरे कम होंगे और अंत में स्वदेशी वस्तुएं बाजार में विदेशी वस्तुओं के मुकाबले प्रतियोगिता में बखूबी रखी जा सकेंगी।

फिलहाल स्वदेशी आंदोलन को उचित प्रकाशन मिलने की बड़ी आवश्यकता है। राष्ट्रीय समाचारपत्र यह कार्य अपने ऊपर ले रहे हैं यह संतोष की बात है। स्वदेशी का थोड़ा बहुत साहित्य है पर अधिकांश में वह अंग्रेजी में है। उसे देशी भाषाओं में होना चाहिए। प्रत्येक प्रदर्शनी के साथ स्वदेशी पर कुछ पुस्तकों और पठन सामग्री का संग्रह रहे। प्लेटफार्म से प्रचार करना भी उपयोगी होगा। पिछले दिन जो अखिल भारतीय स्वदेशी दिवस मनाया गया उसे अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। इस समय जब देश की आर्थिक दशा विषम रीति से बिगड़ी हुई है और कृषि का व्यवसाय अत्यंत निराशा की दृष्टि से देखा जाने लगा है तब यदि उद्योग-धंधों—विशेषकर घरेलू उद्योगों की जागृति नहीं की जाएगी तो देश की क्या अवस्था होगी यह कोई नहीं कह सकता।

## साकेत—2

महाकाव्य की रचना जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह सभ्यता के उद्गम, संगम, प्रलय, किसी महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष अथवा आत्मतत्व के किसी चिर अनुभव रहस्य को प्रदर्शित करने के लिए की जाती है। आर्य सभ्यता के विकास काल में जब देव-दानवों का (अर्थात् देव और आसुर संस्कृतियों का) संघर्ष हो रहा था, तब महर्षि वाल्मीकि ने देवपक्ष का विजयघोष करने वाले *रामायण* महाकाव्य का निर्माण किया। वेदव्यास ने द्वापर के अंत में कुरुक्षेत्र संग्राम का स्मारक *महाभारत* ग्रंथ रचा जो कलियुग का अग्रदूत, अत्यंत दुःखांत सृजन है। *महाभारत* के *गीता* प्रकरण में महाकवि ने आंसू पोंछने की अल्प चेष्टा न की होती तो उसका अध्ययन करने का साहस एक भी व्यक्ति न कर सकता। उसका अंतिम शांतिपर्व तो विकट अशांतिकारी है। उजाड़ भरतखंड के एकमात्र श्मशानदीप जब पंचपांडव भी लुप्त हो जाते हैं, तब अंधकार की विकराल आकृतियां मानों युधिष्ठिर के नरक दर्शन के रूप में प्रकट होकर भीषण भय का संचार करती हैं। विधवा भरतभूमि उस समय शोक के चार आंसू डालने से भी वंचित है—ऐसा नृशंस वह शांतिपर्व है। *रामायण* और *महाभारत* के महाकाव्य हमारे विचार में, जगत्तत्व के दो विपरीत चक्र हैं—विपरीत होते हुए भी समान, तराजू के तुले हुए पलड़ों की भांति। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दोनों चक्र क्रमशः आशा-निराशा, विकास-ह्रास और उत्पत्ति-प्रलय के हैं जो दोनों विपरीत, किंतु सम हैं। सम न होते तो सृष्टिचक्र न चलता। *रामायण* सृष्टि की आशा है, *महाभारत* निराशा। यदि काल चक्र के इन दोनों महान् रूपकों को काल के ही एक लघुरूपक में प्रकट करें तो कहेंगे *रामायण* आधी रात से लेकर दोपहर दिन तक का बारह घंटा है और *महाभारत* दोपहर दिन से लेकर आधी रात तक बारह घंटा। दोनों की अवधि एक है, दोनों का उत्कर्ष एक। एक के नायक राम हैं, दूसरे के कृष्ण। दोनों अवतार। दोनों ही बराबर। 'सम प्रकास तम पाख दुहुं, नाम भेद बिधि कीन्ह।'

*रामायण* सृष्टि का आशाचक्र होने के कारण आधी रात के अंधकार में आरंभ होता है—दैत्यों के उत्पातों के साथ। धीरे-धीरे आशा की ज्योति खुलती जाती है और रावण-वध के साथ नवीन युग का अरुणोदय होता है। रामराज्य की स्थापना पूर्ण प्रकाश में होती है। आर्य सभ्यता का दिन चढ़ता आता है। सीता की सतीत्व परीक्षा के समय मध्याह्न का प्रखर ताप हो आया है। यही विकास की परम अवधि होने के कारण ह्रास के एक परमाणु से संयुक्त है। सीता की अग्नि परीक्षा आर्य संस्कृति के उत्थान का शीर्षबिंदु और पतन का प्रथम लक्षण है। परंतु *महाभारत* आर्य साम्राज्य के सूर्योज्ज्वल प्रकाश में क्षीण तिमिर रेखा के मिश्रण क्षण से आरंभ होता है। दिन का बारह बजकर एक सेकेंड हुआ है। लोकोत्तर महापुरुष कृष्ण के उत्कट उद्योगों को पराङ्मुख कर संध्या आने लगी है। गोधूलि की बेला में कुरुक्षेत्र मचता है। सुदर्शन चक्र क्षण काल के लिए अर्जुन को जयद्रथ पर विजयी बनाता है, पर उसी क्षण संध्या आ पहुंचती है। युद्ध के उपरांत अठारह अक्षौहिणी सेना में केवल पांच पांडव बच रहते हैं। रात बारह बजने में मानो पांच मिनट हैं। व्याध कृष्ण का वध करता है, अर्जुन का गांडीव गिर जाता है; आधी रात आ गई। युधिष्ठिर नरक कुंड का भीषण दृश्य देखते हैं। मानो *महाभारत* का श्मशान दृश्य हो। इसी को व्यास शांतिपर्व कहते हैं। इसमें अर्धरात्रि वाली महाशांति और उसके एक क्षण बाद वाली शांति है। यहीं पटाक्षेप होता है। इस प्रकार *रामायण* और *महाभारत* सृष्टि के दिवा-रात्रि बन गए। एक के बाद दूसरा, एक-दूसरे से मिश्रित चिरंतन सृष्टि चक्र है। क्या ही अद्भुत समन्वय है।

इन दोनों के अतिरिक्त और जो लघु दीर्घ महाकाव्य नामधारी ग्रंथ भारतीय साहित्य में लिखे गए हैं वे भी अपनी-अपनी सीमा में महत आशय लिये हुए हैं। हमारी हिंदी में महाकवि तुलसीदास का *रामचरितमानस* है जो *वाल्मीकि रामायण* से भिन्न, स्वतंत्र साधना संपन्न ग्रंथ है। वाल्मीकि ने संस्कृतियों का संघर्ष प्रदर्शित किया है और दैवी संपत् की विजय-दुदुंभी बजाई है। तुलसीदास ने राम के व्यक्तित्व में सर्वधर्म समन्वय किया है। वाल्मीकि की दृष्टि वातावरण पर थी, तुलसी की व्यक्ति पर। वाल्मीकि के राम और लक्ष्मण में केवल मात्रा भेद है, तुलसीदास के राम से लक्ष्मण की कोई तुलना ही नहीं की जा सकती। वाल्मीकि के पात्रों की स्वतंत्र सत्ता है, तुलसीदास के पात्र 'मनियहि सबहिं राम के नाते' की उक्ति चरितार्थ करते हैं। संक्षेप में वाल्मीकि का उद्देश्य आदर्श समाज की कल्पना और तुलसी का उद्देश्य आदर्श व्यक्ति की कल्पना था। दोनों धाराएं एक ही दिशा में बहती हुई भी मौलिक अंतर लिये हुए हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जनतत्व का आदर्श, दूसरा आत्मतत्व का आदर्श है। इसलिए तुलसीदास का उत्कर्ष वाल्मीकि से कम नहीं और मौलिकता भी कुछ ही कम है।

अनेक महत् उद्देश्य महाकाव्य के विषय बन सकते हैं तब *साकेत* का क्या उद्देश्य है? प्रचलित *रामायणों* में रामचरित का सांगोपांग वर्णन किया गया है पर नव-नवोन्मेषशालिनी कवि प्रतिभा *रामायण* के उन्हीं चित्रणों से संतोष न पाकर ऐसे प्रसंगों की सृष्टि करती है जो *रामायण* में तो नहीं पर कल्पना के अंतिम छोर पर शून्य में धुंधले-से अंकित है। अपनी व्यापक सहानुभूतियों के कारण—जो सर्वथा मानवीय हैं—कवि की दृष्टि वनवासी राम पर ही नहीं, तपस्वी भरत पर भी और वीर लक्ष्मण पर ही नहीं, वियोगिनी उर्मिला पर भी जाती है। जब वाल्मीकि ने और वाल्मीकि से भी अधिक तुलसीदास ने रामचरित का उत्कर्ष दिखाते हुए राक्षसराज रावण को अंधेरे में डाल दिया तब माइकेल मधुसूदन दत्त ने चित्र के दूसरे पहलू को प्रदर्शित किया। जब समाज में आदर्श की रूढ़ियां बंध जाती हैं और वह एक निर्जीव और निष्क्रिय धर्माभास के घेरे में घिरकर अंधवत आचरण करता है तब मस्तिष्क को सचेत करने के लिए कभी-कभी उसे धक्का देने अथवा चोट पहुंचाने की आवश्यकता पड़ती है। माइकेल मधुसूदन ने *मेघनादवध* के द्वारा वही चोट पहुंचाई और चोट पहुंचाकर चेतना उत्पन्न की। कवि का यह स्वभावधर्म है। काव्य की यह भी एक कथा है। *साकेत* भी *रामायण* के दूसरे पक्ष को—वह पक्ष जो राम के वनवास और युद्ध का नहीं, भरत की तपस्या और उर्मिला की विरह व्यथा का है—अंकित करता है। वनवासी राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में साकेत प्रेम और भक्ति की साधनाभूमि था इसमें तो संदेह ही क्या है? अवश्य ही ये प्रेम और भक्ति की साधनाएं महाकाव्य का विषय बनने की क्षमता रखती हैं। *साकेत* के यह ही वर्ण्य विषय हैं। *साकेत* का यही शीर्ष उद्देश्य है।

*साकेत* और *मेघनादवध* में यह साम्य है कि दोनों ही *रामायण* के विस्मृत, त्यक्त अथवा अपमानित प्रसंगों तथा पात्रों पर प्रकाश डालते हैं। *रामायण* में राम के सेना संघटन और समुद्रोल्लंघन का वर्णन है। *मेघनादवध* में राम का सामना करने वाले रावण और इंद्रजीत के देवार्चन तथा सेनासज्जा का वर्णन है। *रामायण* महासती सीता का गुणगान करता है, *मेघनादवध* देवकन्या मंदोदरी की गुणावली गाता है। उसी प्रकार *रामायण* के वनवासी राम और लक्ष्मण के स्थान पर *साकेत* में तपस्वी भरत और विरहिणी उर्मिला की चरित्र सृष्टि होती है। *रामायण* कैकेयी की कुटिलता को क्षमा नहीं करता। तुलसीदास 'कुटिल रानि पछतानि अघाई' कह कर चुप ही रहते हैं, वाल्मीकि तो इतना भी नहीं कहते। किंतु *साकेत* में कैकेयी का पूर्ण परिवर्तन अंकित किया गया है जो सर्वथा स्वाभाविक अथच न्यायोचित है। संक्षेप में *मेघनादवध* और *साकेत* दोनों ही, चित्र के दूसरे पहलू को दिखाने की चेष्टा करते हैं। दोनों में अंतर यह है कि *मेघनादवध* का साहसी कवि निर्भीकभाव से 'रक्षः राजवंश' का उत्कर्ष वर्णन करने में संपूर्ण शक्ति केंद्रित कर देता है पर *साकेत* के भक्तकवि रामाभिषेक, वनगमन, चित्रकूट-प्रसंग को भी साथ-साथ रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बंगाली कवि नवीनचंद्र के *प्रभास* के तीन खंडों की भांति *साकेत* के भी दो खंड हो जाते हैं जिससे महाकाव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के स्थल संकलन तथा काल संकलन में चिंताजनक बाधा पड़ती है। अभिषेक की तैयारी, कैकेयी कोपभवन, रामवनगमन, दशरथ मरण, चित्रकूट-प्रसंग आदि में कवि आठ सर्ग और आधे से अधिक काव्य लिख डालता है—यद्यपि ये सब घटनाएं कुछ ही दिनों में घटित हुईं। सब की सब साकेत में घटित भी नहीं हुईं, जो घटित भी हुईं वे महाकाव्य की भावधारा का अभिन्न अंग न होकर, उसके उपकूलों को ही स्पर्श कर सकीं। शेष संपूर्ण काव्य जिसमें रामवनवास के चौदह विशाल वर्षों की साकेतपुरी का कथानक है—जो *साकेत* का वास्तविक विषय है—चार सर्गों में ही समाप्त हो जाता है। हमें इसमें त्रुटि दीख पड़ती है। आश्चर्य तो यह है कि स्थानीय तिमाही पत्रिका में एक महाशय राय देते हैं कि *साकेत* का नवम् सर्ग ग्रंथ से निकाल देना चाहिए। निश्चय ही उन्होंने महाकाव्य के किसी महत् उद्देश्य की कल्पना नहीं कि बल्कि उसका अर्थ घटनाओं का जमघट समझकर संतोष कर लिया। पर घटनाओं का जमघट महाकाव्य नहीं है।

(गुरुवार, 2 जून 1932)

# मताधिकार रिपोर्ट

प्रसिद्ध कांग्रेस नेता श्री सत्यमूर्ति ने अभी हाल में एक पत्र मद्रास जेल से महात्मा गांधी के पास यरवदा जेल भेजा था जिसकी रिपोर्ट समाचारपत्रों में प्रकाशित हुई थी। वह पत्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि उसमें लार्ड लोथियन की अध्यक्षता में काम करने वाली मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट का हवाला था। वह हवाला प्रशंसात्मक जान पड़ता है। पत्र में महात्मा गांधी को यह सम्मति दी गई थी कि भारतमंत्री सर सेमुएल होर के पार्लियामेंट में दिए गए वक्तव्य के अनुसार गांधीजी यह निर्णय करें कि गोलमेज सम्मेलन के रचनात्मक काम में योग देना कांग्रेस के लिए संप्रति संभव है या नहीं। श्री सत्यमूर्ति का यह कथन था कि भारतमंत्री के वक्तव्य के बाद महात्मा गांधी पर यह भार आता है कि वे नवीन परिस्थिति पर विचार करें और यदि उचित समझें तो कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तन करें। श्री सत्यमूर्ति ने बदली हुई परिस्थिति का हवाला देते हुए एक बात यह भी कही थी कि लार्ड लोथियन की मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट का निष्कर्ष पत्रों में प्रकाशित हो गया है जिसमें यह पता लगता है कि ब्रिटिश भारत में लगभग तीन करोड़ साठ लाख आदमियों को व्यवस्था-सभा के प्रतिनिधियों के चुनाव में मत देने का अधिकार प्राप्त होगा। सत्यमूर्ति महोदय ने महात्माजी को यह सूचना दी थी कि वे इस विषय पर विचार करें कि तीन करोड़ साठ लाख मत देने वालों का संघटन करके व्यवस्था-सभाओं के चुनाव में भाग लेने में कुछ लाभ है या नहीं और लाभ है तो कांग्रेस उस नीति पर चलना चाहेगी या नहीं। अब तक यह संवाद नहीं मिला कि महात्मा गांधी ने उस पत्र का क्या उत्तर श्री सत्यमूर्ति को दिया और न यही निश्चय हुआ कि श्री सत्यमूर्ति ने वास्तव में वह पत्र महात्माजी के पास भेजा था या नहीं। यदि श्री सत्यमूर्ति ने यह पत्र गांधीजी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भेजा तो चाहे वह पत्र महात्माजी को मिला हो या न मिला हो अथवा उन्होंने उसका उत्तर दिया हो या न दिया हो, इतना तो स्पष्ट है कि कांग्रेस के एक प्रसिद्ध नेता मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट से थोड़ा-बहुत अवश्य प्रभावित हुए हैं और उसे इस योग्य समझते हैं कि उसके आधार पर मत देने वाली जनता का संघटन करने और उस संघटन से व्यवस्था-सभाओं में राष्ट्रीय प्रतिनिधि भेजने में लाभ की संभावना है। यदि ऐसी संभावना न होती तो वे पत्र में उसका उल्लेख ही क्यों करते। हम तो यहां तक कह सकते हैं कि श्री सत्यमूर्ति महोदय इस महत्वपूर्ण विषय के और भी संकेत करते हैं कि मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट के फलस्वरूप कांग्रेस की संपूर्ण नीति में ही परिवर्तन किया जा सकता है और कांग्रेस एक बार फिर से विधान के काम में लगाई जा सकती है।

जिस मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट के संक्षिप्त निष्कर्ष के आधार पर श्री सत्यमूर्ति ने इस महत्वपूर्ण पत्र की ये पंक्तियां लिखकर गांधीजी के पास भेजी थीं, वह रिपोर्ट आज पूरी-पूरी प्रकाशित हो गई है। उसका आवश्यक सार हम *भारत* के आज के अंक में उद्धृत कर रहे हैं। रिपोर्ट काफी लंबी-चौड़ी है और काफी उदार भी समझी जाती है। उसमें मताधिकार की सामान्य समस्याओं पर विचार करने के बाद भारत की परिस्थिति के अनुसार मतदाताओं की संख्या तय की गई है। सामान्य विवेचन के सिलसिले में कमेटी व्यापक बालिग मताधिकार के औचित्य को मानती हुई भी व्यवस्था संबंधी तथा दूसरी आम कठिनाइयां दिखाकर इस नतीजे पर पहुंचती है कि फिलहाल तीन करोड़ पुरुषों तथा साठ लाख स्त्रियों से अधिक मताधिकार ब्रिटिश भारत को नहीं दिया जा सकता। इससे अधिक पाने के या तो यह योग्य नहीं हैं या सरकार चुनाव का प्रबंध करने के योग्य नहीं है। अधिक मताधिकार पाने की अयोग्यता का वर्णन करते हुए कमेटी कहती है कि भारत में पढ़े-लिखों की संख्या केवल आठ प्रतिशत है। अशिक्षा के कारण लोग अपने जिले के बाहर की बातों में दिलचस्पी नहीं लेंगे और प्रतिनिधियों तथा पार्टियों का कार्यभार बढ़ जाएगा। पार्टीबंदी के बिना व्यवस्था का कार्य सुचारु रीति से चल ही नहीं सकता। अब तक भारतीय राजनीतिज्ञ स्वराज्य की पुकार ही में लगे रहे, पार्टी सिस्टम में दक्ष नहीं हो सके। दूसरा अवगुण यह है कि भारत में जातीय भेदभाव विशेष बढ़ा हुआ है। इन दोनों विषयों के संबंध में बहुत-कुछ कहा जा सकता है। यह कहना व्यर्थ है कि अशिक्षा और जातीय भेदभाव के लिए शासन-व्यवस्था भी जिम्मेदार है और उसमें परिवर्तन होने पर इनमें भी परिवर्तन होगा। तथापि यह तो कहना ही होगा कि अशिक्षा और जातीय वैमनस्य के कम करने का एक प्रबल उपाय अधिक से अधिक मताधिकार देना है। चुनाव केंद्रों में जनता को जबर्दस्त राजनीतिक शिक्षा मिलती है और जातीय भेद बुद्धि के स्थान पर आर्थिक स्वार्थ के आधार तथा सहयोग की वृद्धि होती है। इससे आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को लेकर भिन्न-भिन्न पार्टियों का उदय होता है जिसे कमेटी व्यवस्था के लिए इतना उपयोगी बतलाती है। यदि मजबूत पार्टी सिस्टम की स्थापना पर कमेटी इतना जोर देती है तो उसे आर्थिक से अधिक मताधिकार देने में ही अधिक लाभ दीख पड़ता है। यदि अन्य कठिनाइयों के कारण वह बालिग मताधिकार की सिफारिश नहीं कर सकी तो कम से कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उसे यह तो विज्ञापित कर देना चाहिए था कि एक निश्चित अवधि के भीतर ही उसकी स्थापना कर देना वह उचित समझती है।

प्रसंगवश पार्टीबंदी के विषय में भी हमें दो शब्द कह देने चाहिए। दृढ़ पार्टीबंदी की उपयोगिता हम स्वीकार करते हैं पर केवल सुचारु कार्य संचालन और प्रदर्शन के लिहाज से। पार्टीबंदी तो स्वतंत्र और संपन्न देशों की एक प्रकार की कला है। इंग्लैंड जैसे देश में भी संटककाल आने पर पार्टियों को तोड़ देना पड़ता है जैसा विगत महायुद्ध के समय किया गया था अथवा आज 'राष्ट्रीय सरकार' के रूप में किया जा रहा है। भारत जब स्वराज्य विधान प्राप्त करेगा तब उसके सामने सबसे महान प्रश्न राष्ट्रोत्थान का उपस्थित होगा। इस महत् कार्य के लिए पार्टीबंदी उतनी उपयोगी नहीं होगी जितना भिन्न-भिन्न पार्टियों का भेदभाव छोड़कर एक में समन्वय। आरंभिक कुछ वर्षों तक भारत को पार्टीबंदी से विशेष लाभ होगा, ऐसी हमारी धारणा नहीं है।

कमेटी ने मताधिकार विस्तार के संबंध में जो व्यवस्था संबंधी कठिनाइयां बतलाई हैं वे भी विचारणीय हैं। कहा जाता है कि सरकारी अफसरों की इतनी संख्या नहीं मिलेगी जो प्रस्तुत से बड़े चुनाव का नियंत्रण कर सकें। यदि चुनाव के अफसर ईमानदार न हुए तो भयानक बाधा उपस्थित हो जाएगी। जिम्मेदार गैर-सरकारी आदमी भी देहातों में जाकर चुनाव की देखभाल नहीं कर सकेंगे। पुलिस की तादाद भी नाकाफी है। यदि औरतों के लिए चुनाव का अलग बंदोबस्त किया गया तो और भी कठिनाई होगी। फिर कमेटी यह भी नहीं चाहती कि चुनाव का काम बहुत दिनों तक चलता रहे। जहां तक हो उसे एक साथ ही एक दिन में ही सर्वत्र समाप्त कर देना चाहिए। जितनी ही देर होगी उतना ही पक्षपात और बेईमानी बढ़ने की आशंका होगी। इन दोनों छोरों को मिलाने के लिए कमेटी केवल तीन करोड़ साठ लाख आदमियों को मताधिकार देती है। यह तो कोई कैसे कह सकता है कि चुनाव के काम का विचार करके सरकार अपने अफसरों की तथा पुलिस की संख्या बढ़ा दे क्योंकि मौजूदा अफसरों और पुलिस का खर्च बर्दाश्त करना ही असाध्य है। कमेटी ने गैर-सरकारी आदमियों की उचित संख्या न मिलने की जो बात कही है वह अवश्य संदेहजनक है। कम से कम शहरों में ऐसे आदमी बड़ी तादाद में मिल जाएंगे। तो शहरों में ही मताधिकार क्यों नहीं बढ़ाया जाता? कमेटी का जवाब यह है कि ग्रामीण और नागरिक जनता में चुनाव के बेशी-कमी का भेद-भाव डालना उसे इष्ट नहीं है। विचार तो बड़ा उदार जान पड़ता है। आशा है, लार्ड लोथियन तथा उनकी कमेटी के अन्य सदस्य, विशेषकर मुसलमान प्रतिनिधि और डॉक्टर अंबेडकर, इस सिद्धांत पर दृढ़ रहेंगे और प्राइवेट तरीके से सदैव यह प्रयत्न करेंगे कि पृथक निर्वाचन का ढर्रा चलाकर वही भेदभाव न बढ़ाया जाए जिसका वे अपनी रिपोर्ट में खंडन कर रहे हैं। पर अभी कल की खबर है कि डॉक्टर अंबेडकर महोदय एकाएक चुपचाप विलायत के लिए रवाना हो गए हैं। शायद मुंजे-राजा पैक्ट के संबंध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री अथवा अन्य अधिकारियों के कानों में कुछ कहेंगे।

स्त्री-समाज, अछूत समाज तथा अन्य अल्प मतों के विषय में मताधिकार कमेटी उदारता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिखाना चाहती है और उन्हें व्यवस्था-सभाओं में कुछ सुरक्षित जगहें दिलाना चाहती है। अछूतों के सवाल पर कमेटी का यह निर्णय है कि भारत में उनकी संख्या साढ़े तीन करोड़ के लगभग है परंतु इस विचार से कमेटी के तीन भारतीय सदस्य श्री चिंतामणि, श्री तांबे तथा श्री बाखले सहमत नहीं हैं। उन्होंने अछूतों की संख्या डेढ़ करोड़ से भी कम मानी है। इसी प्रकार मजदूर दल तथा अन्य विपन्न वर्गों के अधिकार रक्षा के लिए इस त्रिमूर्ति ने कुछ ऐसे उपाय बतलाए हैं जिन्हें कमेटी ने स्वीकार नहीं किया। इस त्रिमूर्ति की सिफारिशों के अनुसार मत देने वालों की संख्या भी काफी बढ़नी चाहिए। यद्यपि यह पार्लियामेंट के अधीन है कि वह मुख्य कमेटी की रिपोर्ट स्वीकार करे अथवा इस त्रिमूर्ति की, पर अवश्य ही भारतीय लोकमत पिछले पक्ष में है।

मताधिकार ही लोकसत्तात्मक प्रणाली की जड़ है। उसी की मजबूत नींव पर स्वराज्य की अट्टालिका खड़ी की जा सकती है। उसी की संकीर्णता अथवा व्यापकता से राज्यचक्र संकीर्ण अथवा उदार बन सकते हैं। यदि मताधिकार की प्रणाली ऐसी है कि राष्ट्र के अनेक वर्ग और अनेक भेद हो जाते हैं तो उससे हानि ही हानि होती है। यदि वह ऐसी है कि संपन्नों को कम तथा विपन्नों को अधिक न देकर प्रत्येक को उचित अधिकार देती है तो वह राष्ट्रीय संघटन के लिए वरदान है। इसके विपरीत होने पर विपरीत। लार्ड लोथियन की कमेटी के अधिकार में यह बात नहीं थी कि वह भारतीय मताधिकार के सबसे प्रमुख प्रश्न पृथक अथवा सम्मिलित निर्वाचन पर अपना निर्णय करते। इस दृष्टि से उसका कार्यक्षेत्र सीमित था। तथापि सीमा के भीतर और परिस्थिति को देखते हुए जो रिपोर्ट पेश की गई है वह निराशाजनक नहीं है—जिसका सबसे बड़ा प्रमाण श्री सत्यमूर्ति का वह पत्र है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

## *साकेत*—3

*साकेत* जैसे अनतिदीर्घ महाकाव्य में यदि घटनाओं का पूर्ण समाहार नहीं होता तो सिद्ध है कि काव्य के क्षीरघट में पानी कम पड़ रहा है। उसके विवादी स्वरों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। *साकेत* का अंतरंग (Internal evidence) भी हमारे आरोप का समर्थन करता है। काव्य के प्रथम आठ सर्गों में जितने चित्र हैं प्रायः सब निकट से खींचे गए हैं। निकट होने के कारण वे छोटे जान पड़ते हैं। मस्तिष्क पर उनका यह प्रभाव पड़ता है कि वे म्रियमाण हैं। महाकाव्य में ऐसे चित्र शोभा नहीं देते, कभी-कभी तो दिखाई तक नहीं पड़ते। 'कैनवस' उन सर्गों में बड़ा न होने के कारण रेखाएं उचित से अधिक स्पष्ट हो गई हैं। काव्य का यह 'यथार्थ' वैसा ही हो गया है जैसे किसी सपाट दिगंतप्रसरित मैदान में छोटे-छोटे झाड़ हों'। चतुर चित्रकार इन्हें अंकित नहीं करता। वह तो आधार के अनुरूप आधेय की सृष्टि करता है। महाकाव्य के चित्र दूरी की व्यंजना करते हैं जैसे गंगा के इस पार से कोई उस पार सुदूर की वृक्षराजि देख रहा हो। ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चित्रों को अंकित करके कवि मानो विराट के संकेत सूत्र को अपने हाथों में कर लेता है। दर्शकों को भी विराट की अनुभूति होती है। परंतु प्रत्येक कलाकार इस मर्म को नहीं समझता। पं. रामचरित उपाध्याय के *रामचरित चिंतामणि* का एक उदाहरण लीजिए। उपाध्यायजी उसमें कौशल्या द्वारा बालक राम को सोते से जगाती हैं। पूरी लोरी गाई जा रही है। पर जरा सोचना चाहिए कि *रामचरित* में लोरी का क्या स्थान है। उस लोरी को कौन स्मरण रखेगा? जिस प्रवाह में दिग्दंती बहे जा रहे हैं उसमें यदि दस-पांच मेमने डाल दिए जाएं तो उन पर किसकी दृष्टि पड़ेगी?

*साकेत* के साथ यह उपमा अधिक लागू नहीं होती और न उसकी तुलना *रामचरित चिंतामणि* से की जा सकती है। *साकेत* में काव्यकला की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर विद्यमान है। *रामचरित चिंतामणि* में उसकी कहीं आभा भी नहीं। यदि प्रसंगप्राप्त एक-एक रसमय स्थल के दर्शन किए जाएं तो *साकेत* में उनकी बड़ी मात्रा मिलेगी पर संपूर्ण काव्य उतना श्रुतिमान नहीं बन सका। कारण हम ऊपर कह चुके हैं। प्रथम सर्ग में लक्ष्मण-उर्मिला की जो मृदु-चंचल यौवन-तरंग तरंगित हुई थी उसकी इतनी उत्कृष्ट परिणति अंतिम सर्ग में हुई है कि संसार के श्रेष्ठ कवि उसके आगे नहीं बढ़ सकते। यदि मैथिलीशरणजी अनाकांक्षित प्रसंगों का विक्षेप न डालकर केवल इसी में अपनी पूरी प्रतिभा सन्निहित करते तो *साकेत* की समीक्षा कुछ दूसरे ही शब्दों में की जाती। परंतु वैसा संभव नहीं हो सका। *साकेत* के प्रथम सर्ग की सर्वथा संगत वर्णन-प्रणाली की आवृत्ति आगे के सर्गों में भी की गई जहां वह असंगति बन गई। प्रथम सर्ग प्रीति के एक लघु मोदमय वातावरण में आरंभ होता है। वहां कवि ने वार्तालाप का जो चमत्कार दिखाया है वह संपूर्ण प्रासंगिक है। पर आगे के सर्गों में उस चमत्कार की आवश्यकता नहीं रही। काव्य सरिता दूसरे उपकूलों से बहने लगी थी। वहां कलकल-छलछल का तरल स्वर नहीं रहा था, पर कवि अपने को परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सका। उसका प्रथम सर्ग वाला वाक्छल और 'सभा चातुरी' नहीं छूटी। दुःख है कि वह लगातार आठ सर्गों तक नहीं छूटी। छंद बदले गए पर छंदों में भी पूरी शक्ति नहीं आई। तूफान में पतंग उड़ाए जा रहे हैं—महाप्रवाह में वहां मेमने बहते चले जाते हैं। महाकाव्य में और 'सभा चातुरी' में तो बहुत बड़ा अंतर है। वन जाते समय जब उद्भ्रांत प्रजाजन राम को घेर लेते हैं तब प्रजा की प्रीति शृंखला तोड़ने के लिए भी राम वाक्चातुरी ही दिखाते हैं। 'तुम लोग भद्र-अवज्ञा मत करो, हम जैसा हुक्म देते हैं वैसा करो।' पर इस भांति कहीं प्रीति-शृंखला टूटती है। परंतु ऐसा पूर्व सर्गों में ही है, सर्वत्र नहीं है।

महाकवि तुलसीदास की चौपाई का रहस्य बहुतों को नहीं मालूम। उस छोटी सी छंदःमूर्ति में अद्भुत शक्ति है। अंतिम दोनों गुरु मात्राओं के पैरों पर खड़ी होकर चौपाई मानो अपने दृढ़ अस्तित्व की घोषणा करती है। प्रत्येक पंक्ति अपने चरणों पर खड़ी है जैसे महाकाल को चुनौती देगी। प्रत्येक स्वतः स्वतंत्र है, चैतन्य आत्मा की भांति। यही चौपाई की स्थिरता है। फिर उसमें प्रवाह भी है। लंबी भावनाओं की धारा में चौपाई अपनी एक गुरु मात्रा समेटकर जैसे फुर्तीली होकर चलती है। भावना के क्षिप्र अथच समन्वित रूप के प्रदर्शनार्थ अद्भुत कलामर्मज्ञ गोसाईंजी ने ऐसी चौपाइयों का प्रचुर व्यवहार किया है। कुछ समीक्षकों ने केशवदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की इसीलिए प्रशंसा की है कि उन्होंने छंदों में बहुलता दिखाई है। परंतु केशवदास की उस बहुतलता की अपेक्षा गोस्वामीजी की चौपाइयों की तरंग-भंगिमा अधिक रमणीय, काम्य और उपयुक्त हुई है। यदि गोस्वामीजी कृत छोटी सी चौपाई के संपूर्ण आवर्त-विवर्तों की गणना की जाए तो बहुलता में भी केशवदास पीछे पड़ जाएं। पर बहुलता का अर्थ तथा आशय भावनुकूलता होने के कारण गोसाईंजी के सामने केशव की कहीं गिनती ही नहीं। भावानुकूलता से हमारा अर्थ केवल भावना की क्षिप्र-दीर्घ गति से नहीं, उस संपूर्ण वातावरण से है जिसे उपस्थित करने में छंद की शक्ति लगनी चाहिए। *साकेत* के छंद हिंदी खड़ीबोली की शक्ति प्रकट करते हैं। मैथिलीशरणजी की विशिष्ट कला छोटे छंदों में खूब प्रकट हुई है। यह कहना शायद विशेष प्रशंसात्मक नहीं कि खड़ीबोली के किसी भी प्रबंध काव्य में अब तक छंदों की ऐसी सुगठित प्रतिमा नहीं दीख पड़ी जैसी *साकेत* में। *साकेत* के कवि ने छंद का मर्म समझ लिया है, ऐसा कहना केवल कवि की योग्यता स्वीकार करना है। पर हम इससे कुछ अधिक कह सकते हैं। गोसाईंजी की तरह गुप्तजी भी छंद का मर्म ही नहीं समझते उसके आवर्त-विवर्त से अभीप्सित भाव प्रतिमाएं भी खड़ी करते हैं। अभिषेक की तैयारी में लगी हुई युवती सीता की प्रसन्न अथच निर्लेप रूपाभिव्यक्ति करने वाली अत्यंत मार्मिक छंदः सृष्टि देखिए। वे कौशल्या के पास खड़ी हैं। इस सान्निध्य में भी पवित्रता की व्यंजना है—

*गोट जड़ाऊ घूंघट की—*  
*बिजली जलदोपम पट की,*  
*परिधि बनी थी विधुमुख की,*  
*सीमा थी सुषमा सुख की।*  
*भाव सुरभि का सदन अहा!*  
*अमल कमल-सा बदन अहा!*  
*अधर छबीले छुवन अहा!*  
*कुंद कली से रदन अहा!*  
*सांप खिलाती थीं अलकें,*  
*मधुप पालती थीं पलकें,*  
*और कपोलों की झलकें,*  
*उठती थी छवि की छलकें*  
*भाग सुहाग पक्ष में थे*  
*अंचल बद्ध कक्ष में थे*  
*थीं कमला सी कल्याणी*  
*वाणी में वीणा पाणी*  
*'मां क्या लाऊं' कह-कह कर*  
*पूछ रही थीं रह-रहकर।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



केवल छंद की चमत्कृत गति तथा अंत्यानुप्रास के आवृत्ति रीति से ही कवि द्युतिमती हो उठी हैं। ऐसी ही उत्कृष्ट छंद रचना अनेक स्थानों पर मिलती है। दशम सर्ग की उर्मिला की विरह-व्यंजना के लिए तो उससे उपयुक्त छंद हो ही नहीं सकता यही जान पड़ता है। उसके अंतिम परिवर्तित छंद की वर्ण ध्वनि भी ध्यान देने योग्य है—

*टप टप गिरते थे अश्रु नीचे निशा में;*
*झड़ झड़ पड़ते थे तुच्छ तारे दिशा में!*
*कर पटक रही थी निम्ना पीट छाती,*
*सन सन करके थी शून्य की सांस आती*
*सखी ने अंक में खींचा, दुःखिनी पड़ सो रही।*
*स्वप्न में हसंती थी हा! सखी थी देख रो रही॥*

भावना का प्रसार अथवा पौरुष प्रदर्शित करने में गुप्तजी ने अधिकांश में कवित्त छंद का प्रयोग किया है जो उनकी अंतर्दृष्टि का परिचय देता है। परंतु कवित्त छंद से भी अधिक प्रलंब वर्ण-संघटन खड़ा करने की चेष्टा उन्होंने क्यों नहीं की, यह नहीं कहा जा सकता। *मेघनादवध* में मुक्त छंद का प्रयोग तो वे अत्यधिक सफलता से कर चुके थे।

एक ही त्रुटि, जो संभवतः खड़ीबोली में अपरिहार्य है, दूरी की अभिव्यक्ति (Long Perspective) करने वाले छंदों का अभाव है। खड़ीबोली के छंदों का 'कैनवस' वैसा करने में समर्थ नहीं हो रहा। यह संभवतः हमसे उस (खड़ीबोली) की निकटता के कारण है। पर इस स्थूल शृंखला को तोड़ने की आवश्यकता है। केवल इस दिशा में *साकेत* के छंदों का विकास पूर्ण नहीं हुआ।

(रविवार, 5 जून 1932)

# सांप्रदायिक रक्तपात

बंबई के मजहबी विद्वेष की लपट दो सौ से ऊपर मनुष्यों की आहुति लेकर अभी ठंडी नहीं हुई, इतने में ही मद्रास, करनाल, अलवर आदि स्थानों से भी सांप्रदायिक रक्तपात के समाचार आ पहुंचे हैं। उन हजारों आदमियों में जो बंबई के अस्पतालों में पड़े कराह रहे हैं, अनेक ऐसे भी होंगे जो बिलकुल निरीह और निर्दोष होने के कारण धर्म को गिन-गिनकर गालियां देते होंगे और अच्छे होने पर ईश्वर पर विश्वास करना छोड़ देंगे। जिन अनेक सुंदर, शुद्ध, सौम्य, प्रतिभाशाली बालकों और युवकों का स्वाहा हो गया, उनकी मानवीय शोभा से समाज आजन्म वंचित रहेगा। कितनों के हृदय में कसक समा जाएगी, मंसूबे टूट जाएंगे। सैकड़ों चिराग बुझ जाएंगे, सैकड़ों घर उजड़ जाएंगे। जब दिन के खुले प्रकाश में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास पर हमला किया गया तब बंबई की नागरिक मर्यादा क्या रह गई? जब बंबई के राजपथ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



घातक अस्त्रों से भरी हुई गाड़ियां निकल सकती हैं तब बर्बरता का कौन-सा दृश्य देखने को नहीं मिल सकता? मजहबी खूनखराबी का राक्षस सैकड़ों को निगल गया—उसके अस्थि कंकालों में अब क्या कहीं हिंदू या मुसलमान का नाम लिखा है? उन्हें देखकर कौन पहचान सकता है कि वे किस महजब के थे, सिवा इसके कि वे मानव-संतान थे। आज उन लाशों के अस्थि अवशेष देखने के लिए यदि वे हत्याचारी श्मशान स्थल पर भेजे जाएं—जहां एक दिन पहुंचकर उनका भी लौटना नहीं हो सकता—तो वे अपनी करनी पर अवश्य पछताएं। वहां जाकर वे देखेंगे कि यहां हिंदू-मुसलमान की फिरकेपरस्ती नहीं है, सिर्फ श्मशान के काल पटल पर शाश्वत लिपि में लिखा है—'यहां सब इकट्ठे होते हैं, फिर जो जैसा करता है वह वैसा पाता है।'

इस समस्त भयानक और नाशकारी दृश्य को देखने के उपरांत तत्काल यह प्रश्न होता है कि कौन-सा ऐसा कारण है जिनसे समाज की सभ्यता का नाश करने वाले ऐसे उपद्रवी संभव बने हुए हैं। जब प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि वह अकेला उत्पन्न हुआ है और अकेला ही मरेगा—जब उसे यह खूब मालूम है कि सबको अपने किए का फल भोगना पड़ेगा तब वह क्यों ऐसे संघटन में अपने को शरीक होने देता है जो उसके हक में अच्छे नहीं हैं। हिंदू हो या मुसलमान, क्रिश्चियन, पारसी, सिख क़ोई हो, सब अपनी-अपनी व्यष्टि के लिए जिम्मेदार हैं। यदि व्यक्ति समाज के घेरे में अपने को डालकर किसी जाति, संप्रदाय या वर्ग को स्वीकार करता है तो केवल इसलिए कि वैसा करना उसके हक में अच्छा है, उसके व्यक्तित्व के लिए हितकर है। इसीलिए धर्म परिवर्तन की स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्ति को मिली हुई है। जब हम किसी जाति, संप्रदाय अथवा श्रेणी में उत्पन्न होकर उसमें रहते हैं तब भी यह आशय छिपा रहता है कि उससे हमारा विकास हो रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो समस्त समाज संस्था का अस्तित्व बेकार हो जाता है। इस सत्य की शिक्षा मनुष्य जाति को श्मशान सबसे अधिक दे सकते हैं।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तित्व को समाज के कोलाहल से निकालकर आत्मनिरीक्षण करे, तो सांप्रदायिकता की यह आग आप से आप बुझ जाए। यदि मनुष्य यह समझने लगे कि आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि से व्यक्ति का महत्व समाज, धर्म आदि सबसे अधिक है तो निरीह निष्कलुष व्यक्तियों की हत्या असंभव हो जाए। इसके लिए आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है और आत्मनिरीक्षण तो शिक्षा का एक उन्नत लक्ष्य है। भारत में शिक्षा की जो हालत है वह कहने लायक नहीं है। फिर शिक्षा का लक्ष्य यहां व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करना नहीं है—और चाहे जो हो। दूसरे यह देश दारिद्र्य का घर है। यहां किराए पर लड़ने वाले मिल सकते हैं—बहुधा मिला करते हैं। तीसरे, स्वतंत्र विचार-शक्ति नेस्तनाबूद हो जाने के कारण यहां नेतागीरी चलती है। नेतागीरी अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। भारत की वर्तमान अवस्था में वह अच्छी कम, बुरी अधिक है। यहां अनेक अवसरों में नेता का स्वार्थ कुछ और, और अनुयायी का स्वार्थ और होने के कारण दिग्भ्रम फैला है। चौथे, यहां धर्म की ठेकेदारी चलती है जिसे ठेकेदारी न कहकर, सेनापतित्व कहना अधिक संगत होगा। धर्म का फौजी कानून यहां लगता है। इसका अर्थ यह है कि यहां धर्म के द्वारा व्यक्ति को अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्यक्तित्व नहीं दिखाया जाता, स्वर्ग और नरक दिखाया जाता है। वर्तमान हिंदू समाज की अपेक्षा मुसलमान समाज में इस रोग का अधिक प्रसार है, फलतः वह झूठे स्वर्ग और नरक के पीछे अपने आपको खोकर लड़ता मरता है। पांचवें, यहां विदेशी शासनचक्र की स्थापना है। आधुनिक शिक्षा का विधान इसके हाथ में है। समाज का अंग-संगठन करने वाले व्यक्ति बहुत कुछ इससे प्रभावित होते हैं।

महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर अभी-अभी मुस्लिम प्रदेशों की यात्रा करके लौटे हैं। उन्होंने कराची आकर यह प्रकट किया है कि बंबई दंगे के समाचार ही उनके मस्तिष्क में चक्कर काटते रहे हैं। ईरान में, जहां गए थे, भारत के प्रति अन्य देशों में आश्चर्य प्रकट किया गया। वहां वाले यह नहीं समझ सकते कि ऐसा क्यों हो जाता है! बात यह है कि यहां के समाज की धारा आवश्यकता से अधिक अपने किनारे को काट रही है। यहां बहुत शीघ्र दरार पड़ जाती हैं और मौका आते ही कगार ढह पड़ते हैं। ये ही सांप्रदायिक दंगे हैं। होता यह है कि कगार ढह पड़ते हैं और धारा या तो द्वीप बनाकर या बांध तोड़कर बहने लगती है। यह बहुत बड़ा अनिष्ट है। इसका प्रमुख कारण यही है कि यहां यंत्र तुल्य सामाजिक नियमों के सामने व्यक्ति अपना सिर नहीं उठा सकता, समाज की धारा बेरोक-टोक मनमानी बहती है। इस प्रमुख कारण के जो सहायक कारण हैं उनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

भूतपूर्व वाइसराय लार्ड इर्विन महोदय ने अभी कनाडा के टोरंटो विश्वविद्यालय में एक निबंध पढ़ते हुए भारत की जातीय भिन्नताओं, भाषा भेद, वर्गभेद, संप्रदाय भेद पर बहुत कुछ कहा है। इन भेदों के कारण भारत के स्वराज्य की समस्या हल होने में कठिनाई पड़ रही है—आपका ऐसा कहना विशेष अनुचित नहीं है। तथापि इन अनेक भेदों के रहते हुए भी यदि भारत में व्यक्ति का समुचित विकास हुआ होता तो वे बंधन विशेष क्षति न पहुंचा सकते थे। अनेकताओं के भीतर से एकता का विकास (Unity in diversity) भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। इस तत्व को हमारे शासकों ने नहीं समझा। तभी तो उनकी शिक्षा और उनकी व्यवस्था से भारत की दशा ऐसी बनी हुई है। विशेषता तो यह है कि हमारे शासकों का ही एक प्रमुख वर्ग यह कहता नहीं थकता कि सांप्रदायिक दंगों का यह विकराल रूप देखते हुए भारत को शासनाधिकार देने में बड़ा खतरा है। इस प्रकार की बात करना ब्रिटेन की डेढ़ सौ वर्ष की शासन परंपरा की विफलता सिद्ध करना है। पर वे लोग अपने ही अनुकूल बात सिद्ध करने की चेष्टा में अपने ही प्रतिकूल प्रमाण देते हैं और अपनी धुन में साधारण बुद्धिविवेक भी खो बैठते हैं।

## चतुर्वेदीजी का भाषण

अखिल भारतीय चतुर्वेदी युवक संघ के सभापति श्री नारायण प्रसाद चतुर्वेदीजी ने उसके वार्षिक सम्मेलन में जो विचारपूर्ण भाषण पढ़ा उसका संकीर्ण जातीयता से कोई संबंध नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



*भारत* के पिछले अंकों में हमने उसके जो उद्धरण दिए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि वह चतुर्वेदी ही नहीं, किसी भी युवक सम्मेलन में इसी रूप में निस्संकोच पढ़ा जा सकता था। फिरकापरस्ती के इस युग में चतुर्वेदीजी की इस वक्तृता को अपवाद ही मानना चाहिए। तभी तो आपकी वक्तृता एक छोटे से सम्मेलन तक ही परिमित न रहकर सामान्य नवयुवक वर्ग में फैलाने के योग्य समझी गई और फैलाई गई। नवयुवकों को, विशेषकर शिक्षित और उन्नत विचारों के नवयुवकों को, ऐसी ही बातों और ऐसे ही विचारों की आवश्यकता है और इन्हें ही वे पसंद भी कर सकते हैं। चतुर्वेदीजी के भाषण से यह स्पष्ट है कि वे मध्य मार्ग से आगे बढ़े हुए सामाजिक विचारों के उत्साही नवयवुकों को चाहे विशेष रुचिकर न हों पर विचारों में प्रौढ़ता आने पर यही मार्ग रचनात्मक अतः स्थायी जान पड़ेगा। दूसरी ओर पिछड़े हुए विचारों के लोगों को—जिनमें चतुर्वेदी समाज के लोगों की संख्या भी कम नहीं सुन पड़ती—चतुर्वेदीजी की वक्तृता में क्रांतिकारी और अग्राह्य विचार दीख पड़ेंगे। परंतु उनका समय अब बीता जा रहा है। अब तो विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदि के प्रश्न समाज में पर्याप्त प्रचलित हो गए है यद्यपि आज से कुछ वर्ष पहले उनका नाम लेना भी अनुचित समझा जाता था। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्री चतुर्वेदीजी ने अपने समाज के एक वृद्ध सज्जन की प्रकाशित सम्मति का खंडन करते हुए अछूतोद्धार की जोरदार हिमायत की है। इससे जनता को चतुर्वेदी समाज की प्रगतिशीलता का परिचय मिलेगा और नवयुवकों को कार्य का महत्व, संयम की शोभा तथा उन्नति का उपाय समझ पड़ेगा। चतुर्वेदीजी का लिखित भाषण एक सुंदर निबंध के रूप में है जिसमें शास्त्रों के उद्धरण, महापुरुषों की प्रभावशालिनी उक्तियां तथा ओजस्वी कथाएं मिलकर विशेष रोचक तथा प्रभावोत्पादक बन गई हैं। निबंध की शैली में भी अच्छा ओज है। साहित्यिक दृष्टि से भी वह विशेषता समन्वित है। इस निबंध के स्थल विशेष हमारे सहयोगी भी, आशा है, उद्धृत करेंगे। हम चतुर्वेदीजी को बधाई देते हैं कि उन्होंने अपने समाज के नवयुवकों को ऐसी शिक्षा दी है जिसे ग्रहण करने में देश के प्रत्येक नवयुवक का हित है।

(गुरुवार, 9 जून 1932)

## जेल में तंगी?

ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य सर चार्ल्स ओमेन ने प्रसिद्ध भारतमंत्री सर सेमुएल होर को सलाह दी कि भारतीय जेलों की कशमकश कम करने के लिए राजनीतिक कैदियों को कालापानी भेज देना चाहिए, जिसके जवाब में सर सेमुएल होर बोले कि हां, कैदियों के कुछ वर्गों को कालापानी भेजने के प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं। जितने ठंडे तरीके से सलाह दी गई उससे भी अधिक ठंडे तरीके से जवाब दिया गया। इस कला की प्रशंसा की जानी चाहिए।

पर ब्रिटेन और भारत के हित-चिंतक संघ इस शीतलता से अतिशय उद्विग्न होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देशनिकाले का सवाल आसान सवाल नहीं है। देशनिकाले के नाम में ही आतंक भरा हुआ है। कैदियों के किसी वर्ग को यह दंड अत्यंत असाधारण अवस्था में दिया जाना चाहिए। वर्तमान भारतीय जेलों के श्रेणी विभाग पर और राजबंदियों को अच्छी श्रेणी में रखने के विषय पर व्यवस्था परिषद में ही नहीं, सारे देश में आंदोलन हो रहा है। सरकार की ओर से व्यवस्था-सभाओं में यह वचन दिया गया है कि सूचना मिलने पर राजनीतिक कैदियों को अच्छी श्रेणी में रखने की कोशिश की जाएगी। सर सेमुएल होर के जवाब से यह स्पष्ट नहीं होता कि वे राजनीतिक कैदी या अन्य वर्ग के कैदी को कालापानी भेजने पर विचार कर रहे हैं। यदि राजनीतिक कैदियों को अंडमान भेजा जाएगा तो यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे देश में अत्यंत असंतोष फैलेगा। यह तो सर सेमुअल होर को शायद मालूम होगा कि अंडमान कैदियों का भेजना कई वर्षों से बंद है।

इस समस्या के और भी कई पहलू हैं। सर चार्ल्स ओमेन अपनी सलाह में यह खबर देते हैं कि भारतीय जेलों में जगह की तंगी हो रही है और भीड़ ज्यादा हो रही है? इसी बुनियाद पर उन्होंने राजबंदियों को देश बाहर करने का मसला पेश किया है। पर यह बुनियाद कहां तक ठीक है? भारत की जेलों में क्या सचमुच जगह की तंगी हो रही है? अभी उस दिन सर सेमुएल होर महोदय ने तो कहा था कि आजकल राजनीतिक कैदियों की संख्या पिछले 1930 के आंदोलन की संख्या से आधी है। भारत में जो सरकारी बयान निकल रहे हैं उनमें भी जेलों में पड़े हुए राजनीतिक कैदियों की संख्या चालीस हजार से कम ही बतलाई जाती है। इधर हाल में सीमा प्रांत से बड़ी तादाद में कैदियों के छोड़े जाने के समाचार सरकार द्वारा भेजे गए थे और अभी कल की ही खबर है कि सात सौ से ऊपर कैदी पेशावर से छूटे हैं। इधर आंदोलन का छठा महीना समाप्त होता आ रहा है और बहुत से बंदियों की मियाद पूरी होने वाली है। अभी उस दिन बंबई सरकार ने दो हजार कैदी छोड़ दिए हैं। राजबंदियों के लिए जगह बनाने के अभिप्राय से दूसरे अपराधी कैदी और भी अनेक स्थानों में मुक्त किए गए हैं। क्या फिर भी राजनीतिक कैदियों की संख्या इतनी अधिक है कि उनके लिए जेलों में जगह नहीं अथवा आसानी से जगह बनवाई नहीं जा सकती? क्या कारण है कि जब पिछले आंदोलन में कैदियों की अधिक संख्या थी तब जेलों में तंगी की शिकायत नहीं हुई और हुई भी तो देशनिकाले का सवाल नहीं उठाया गया?

आंदोलन में भाग न लेने वाला सारा भारत 'शांति शांति' की पुकार मचा रहा है। विलायत में भी भारतीय दमन के प्रति अशांति बढ़ रही है। संसार के प्रायः समस्त शांतिप्रिय निष्पक्ष व्यक्ति भारत की परिस्थिति में परिवर्तन देखना चाहते है। कुछ राजनीतिक विभागों में आशा बंध रही थी कि लार्ड लोथियन जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों की सलाह मानकर ब्रिटिश मंत्रिमंडल भारतीय नीति में ऐसा बदलाव करना चाहता है जिससे द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के समय की-सी परिस्थिति हो जाए। इसका अर्थ यही था कि कांग्रेस के साथ समझौता करने और राजबंदियों को छोड़ने के विषय में सलाह-मशविरा हो रहा था। पर जब सर सेमुएल होर कुछ वर्ग के कैदियों को अंडमान भेजकर जेल की तंगी दूर करना चाहते हैं तो ऐसी कल्पना करना व्यर्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## और यह क्या?

भारतीय पक्षों में जिस दिन सर सेमुएल होर का उपर्युक्त दिव्य संदेश छपा है उसी दिन एक अन्य समाचार भी प्रकाशित हुआ जो ठीक उसके विपरीत है। समाचार यह है–

*डेली एक्सप्रेस* पत्र का कहना है कि 'लंदन और भारत के प्रभावशाली विभागों में यह चेष्टा की जा रही है कि ब्रिटेन और ब्रिटिश भारत के व्यापारी प्रतिनिधियों का सम्मेलन किया जाए जिसका उद्देश्य भारत के विलायती बहिष्कार आंदोलन का अंत कर देना हो।'

जान पड़ता है कि विलायत में कुछ लोगों की समझ में यह आने लगा है कि कड़े से कड़े आर्डिनेंस लगाने से भी भारत में विलायती वस्तुओं का बहिष्कार बंद नहीं हो सकता और अंत में सम्मेलन करने की आवश्यकता महसूस की गई। सम्मेलन का अर्थ है मेल-मिलाप। तो अब भारतीय और ब्रिटिश व्यापारियों में मेल-मिलाप बढ़ाने की चेष्टा की जाने वाली है। भारत के सभी प्रमुख राजनीतिक दल वर्षों से यह घोषणा कर रहे हैं कि शांति की अवस्था में भारत विलायती वस्तुओं का स्वागत कर सकता है। स्वयं महात्मा गांधी ने लंकाशायर के व्यापारियों को आश्वासन देते हुए कहा था कि जब भारत को स्वाधीनता प्राप्त हो जाएगी तब वह अन्य विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा इंग्लैंड की वस्तु खरीदना अधिक पसंद करेगा। परंतु उस समय की वह बात वहीं रह गई और यहां आकर महात्माजी जेल में पहुंचा दिए गए। फिर आर्डिनेंस लग गए, पिकेटिंग बंद करा दी गई ताकि विलायती वस्तुओं की रोक न हो सके। व्यापारियों को भी साम-दाम की नीतियों का परिचय कराया गया। अब अंत में यह समाचार आया है कि सम्मेलन द्वारा यह मसला हल किया जाने वाला है। 'देर आयद दुरुस्त आयद' के अनुसार हम इस अवसर पर ब्रिटिश लोकमत से आग्रह करेंगे कि व्यापारी सम्मेलन को सफल बनाने के लिए दुरुस्त तैयारी कर लेनी चाहिए। एक ब्रिटिश रोजगार ही ऐसी चीज है जिसका भारत की वर्तमान अशांति से घनिष्ठ संबंध है। यदि उसे सुधारना है तो इसे भी सुधारना होगा। बल्कि दोनों साथ-साथ ही सुधर सकते हैं, अन्यथा सुधारना कठिन है। परंतु ब्रिटिश व्यापार में पुनरुद्धार के लिए किए जाने वाले सम्मेलन में और भारतीय बंदियों के कुछ वर्गों के अंडमान भेजने के प्रश्न पर किए जाने वाले विचार में क्या कुछ साम्य है? यदि कुछ है तो यही कि ये एक ही देश में एक ही दिन दो विचारकों के मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हैं। ब्रिटिश राजनीति में इतने वैषम्य की आशा नहीं की जाती थी।

## *साकेत*–4

अब शेषांश में हमें सारांश कहना चाहिए। यह भी संक्षेप में ही कहा जा सकता है। *साकेत* के मुखपृष्ठ पर 'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है' कहकर राम की महिमा सुनाई गई है। दूसरे पृष्ठ के 'समर्पण' में भी राम की स्तुति है। तीसरे पृष्ठ में 'इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्मतम्' रामचरित को सर्वपाप-प्रमोचन कहा गया है। भक्ति की मात्रा बढ़ती ही जा रही है। चौथे पृष्ठ पर 'कल्पभेद हरिचरित सुहाए, भांति अनेक मुनीसन गाए' कहकर कवि स्पष्टतः भक्तों की श्रेणी में नाम लिखा लेता है और इसकी अगली ही पंक्ति में 'हरिअनंत हरिकथा अनंता' आदि के द्वारा मानो हरिकथा की गहन अनुभूति में मग्न हो काव्य कला से उदासीन होने लगता है। 'रामचरित जे सुनत अघाहीं' का उद्धरण देकर वह श्रवण-कीर्तन का पक्ष समर्थन करते हुए मानो काव्य-संघटन पर आक्रमण करता है। इन अर्चना पंक्तियों में *साकेत* का कहीं नाम नहीं है जो बहुत खटकता है। इसके आगे बढ़कर मूल काव्य में भी 'भक्ति बाहुल्य' के कारण ही *साकेत* को चौदह वर्षों की वियोगभारावनता साकेत नगरी तो संभालनी ही पड़ी है, सारे रामचरित का भार भी वहन करना पड़ा है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि *साकेत* में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दोनों पक्षों का बोझ संभाल सके, तथापि उससे ऐसा कराया जा रहा है। *साकेत* के छंद खड़ीबोली की किशोरावस्था के होने के कारण विराट घटनासमूह के भार में दबते दीख पड़ते हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि कवि का भावना भंडार इतना प्रशस्त नहीं कि वह संपूर्ण *साकेत* का अन्न क्षेत्र बन सके। स्वयं वाल्मीकि ने इतना विराट घटनाचक्र नहीं बांधा, न तुलसीदास ने। मैथिलीशरणजी के लिए तो वह साध्य ही नहीं था।

यहां यह कह देने की अत्यंत आवश्यकता है कि भक्ति-भावना पर हम किंचित मात्र आक्षेप नहीं करते, हमारा आशय समझने में भ्रम नहीं करना चाहिए। गोसाईं तुलसीदास की भक्ति-भावना ही उनसे *रामचरितमानस* की सृष्टि करा सकी, जो संसार की श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों में है। अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिए हमें यहां तक कहना होगा कि *साकेत* के कवि में भक्तिभावना का अतिशय नहीं, बल्कि कमी है। *साकेत* में 'राम' का चरित काव्य के द्वितीय श्रेणी के चरित्रों में परिगणित होने योग्य ही बन सका है। इससे अधिक उत्कर्ष उसे नहीं मिल सका। भक्तिभावना की यही कमी है। आधुनिक शैली में कहें तो कहेंगे कि भक्ति वीरपूजा अथवा आदर्शपूजा का ही एक रूप है। राम राम रटने से ही राम की भक्ति नहीं होती। रामचरित के घटनावर्णन में और रामभक्ति में बड़ा भेद है। पद्माकर ने *वाल्मीकि रामायण* का अनुवाद कर डाला, बहुत सी गाथा गा गए पर भगवान उनकी रक्षा करें, वे रामभक्त नहीं थे। *राम रसायन* लिखते समय उनकी तबीयत कहीं और ही रम रही थी। ये सब बातें मैथिलीशरणजी से कहने योग्य नहीं हैं क्योंकि उस कवि ने रामभक्ति का मर्म अवश्य समझा है। वह अपने आदर्श के लिए ईश्वर से क्षमा मांगकर नास्तिक बनने को तैयार हैं। वह कहीं-कहीं ऐसे मार्मिक वाक्य समुच्चय में भक्ति संबंधी अपना विवेक प्रकट करता है कि हमें आश्चर्य होता है कि वह रामवनगमन से लेकर प्रत्यावर्तन तक की घटनाओं का अनिवार्य चित्रण करने में लगकर क्यों अपनी काव्यकला से स्खलित हुआ है। वह अत्यंत सफलता के साथ इस घटना मरीचिका का मोह त्यागकर अलग हो सकता था पर उसने ऐसा नहीं किया। आरंभ की बालकांड की कथा भी *साकेत* की कथा बन सकती थी पर कवि ने उसका नाम तक नहीं लिया। यह कवि की शक्ति है और दुर्बलता का आत्यंतिक निराकरण है। पर आगे के सर्गों में कवि की शक्ति को दुर्बलता वश में कर लेती है और पर्याप्त काल तक किए रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भक्ति और कुछ नहीं भावना का केंद्रीकरण है। भक्त अपने आराध्य के जिस रूप पर मुग्ध हो जाता है, उसी का कीर्तन करने में सुख मानता है। यह भक्तिभावना उत्कृष्ट काव्य की प्रेरक है। सूरदास तो केवल भक्ति से ही महाकवि बन गए। उनका संपूर्ण मानसिक अस्तित्व कृष्ण की रूपमाधुरी में रम गया। उनकी तमाम भावनाएं कृष्ण में केंद्रित हो गईं। कभी-कभी भक्तिजन्य यह केंद्रीकरण काव्य का अपकार भी करता है, जब वह रसमयी कविता की नहीं, केवल पुनरुक्तियों की सृष्टि करने लगता है। वहां कवि की नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा कुंठित हो जाती है। *सूरसागर* में यह अवगुण विशेष मात्रा में मिलता है। *साकेत* की त्रुटि *सूरसागर* की त्रुटि से विपरीत प्रकार की है। *साकेत* में *सूरसागर* की-सी पुनरुक्तियां कहीं नहीं हैं पर उसमें महाकाव्य के अनुरूप भावना संकलन की कमी है। काव्यसमीक्षा का ध्यान रखते हुए हम कहते हैं कि *साकेत* का कवि किसी उदात्त पात्र का उत्कट भक्त नहीं। काव्य की दृष्टि से वह न राम का भक्त है, न लक्ष्मण का और न साकेतवासी भरत का ही। *साकेत* में वह एकमात्र उर्मिला का ही भक्त है। इसलिए *साकेत* के मंदिर में उर्मिला की मूर्ति ही सबसे अधिक सजीव अथच अखंडित हुई है।

काव्य के लिए प्रत्यक्ष वर्णन से अधिक परोक्ष ध्वनि की महिमा शास्त्रों में कही गई है। राम भक्ति की व्यंजना रामचरित्र के प्रत्यक्ष वर्णन में ही नहीं, राम के बिना सूनी साकेत का शुष्क-शून्य चित्र दिखाने में भी सिद्ध हो सकती थी। राम की अनुपस्थिति में साकेत का कण-कण राममय देखा जा सकता था। कवि की एक कठिनाई हमें अवश्य स्वीकार है। राम की अनुपस्थिति में साकेत का प्रसंग वर्णन करने के लिए उसे किसी प्रकार का ऐतिहासिक अथवा शास्त्रीय आधार प्राप्त नहीं था। केवल कुछ रामायणों में यह घटना मिलती है कि हनुमान संजीवनी बूटी अयोध्या से ले गए थे। कवि ने उसका उपयोग कर लिया। इससे अधिक उसने यह किया कि लंका का नाश करने के लिए साकेत की सेना सजवा दी। परंतु शीघ्र ही वाल्मीकि की मंत्रशक्ति के कारण निःशस्त्रीकरण की योजना करा देनी पड़ी।

परंतु हम निवेदन करेंगे कि ये शास्त्रीय और ऐतिहासिक परंपरा पालन *साकेत* के लिए हानिकर ही हो गए। जैसा हम आरंभ में कह चुके हैं कि *साकेत* का कवि 'चित्र के दूसरे पहलू' को दिखाने का उपक्रम करता है। पर 'चित्र के दूसरे पहलू' के लिए उसे शास्त्रीय प्रवचन ढूंढ़ने की अधिक आवश्यकता नहीं थी। *मेघनादवध* के कवि ने भी ऐसा ही किया है। मैथिलीशरणजी को इतिहास-पुराण आदि की अपेक्षा इस अवसर पर अपनी कल्पनाशक्ति से काव्यकला की ज्योति जगानी थी। पर यहां भी उन्होंने रूढ़ि की शृंखलाएं नहीं तोड़ीं। फलतः उन्हें *साकेत* में चित्र के दोनों पहलू दिखाकर महाकाव्य का अंग निर्माण करना पड़ा। कला के नियमों के प्रतिकूल होने के कारण चित्र के दोनों पहलू एक चित्रपट पर पूरे-पूरे तो दिखाए ही नहीं जा सकते। आंशिक रूप में भी दोनों पक्ष दिखाने में विशेष कलामर्मज्ञता की आवश्यकता पड़ती है। मैथिलीशरणजी इस कला में निपुण नहीं सिद्ध होते। आठ सर्गों तक राम के सूत्र में कथा बंधी चलती है। फिर हठात झटके से टूट जाती है। सीताजी के 'मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया' के अत्यंत मनोरम गीत का स्वर डूब जाता है और हम चित्रकूट से साकेत पहुंच जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं। इस कथाक्रम में कवि की भावना कुछ पात्रों (सीता, राम, लक्ष्मण आदि) से हटकर अचानक कुछ अन्य पात्रों (उर्मिला, भरत आदि) में क्यों प्रविष्ट हो जाती है इसका मनोविज्ञान हम समझ नहीं सकते।

बड़ा आश्चर्य है कि जिस कवि ने *साकेत* में स्थान-स्थान पर ऐसी श्रेष्ठ कविता शक्ति का परिचय दिया है, जो सत्कवियों को भी दुर्लभ है, वह अपनी शक्ति की सीमा क्यों नहीं समझ सका। संभवतः आत्म-निरीक्षण की कमी थी। गुप्तजी ने साकेत का घटना चक्र इतना विस्तृत बना दिया है जितना किसी कवि को बनाने का साहस नहीं हो सकता। फलतः भावनाओं को इधर-उधर दौड़कर प्रसंग पूर्ति करने को बाध्य होना पड़ा है। दृढ़ता से केंद्रित होकर वे जीवन की गहनता तक कम पहुंचती है। जब हम पत्रों में खंडशः प्रकाशित होने वाले *साकेत* के भिन्न-भिन्न सर्गों का पाठ कर रहे थे तब पूरे अनुक्रम का पता न होने के कारण उसमें अधिक तृप्ति मिलती थी। इसमें संदेह नहीं कि मैथिलीशरणजी ने एक-एक चित्र में रंग की खूब सफाई दिखाई है। वाक्‌चातुरी का अपूर्व चमत्कार *साकेत* में दिखाया गया है पर यह चमत्कार सर्वत्र महाकाव्य के उपयुक्त नहीं होता। राजनीति और समाजनीति की प्रचलित पद्धति पर गुप्तजी की उक्तियां विशेष आकर्षक शैली में व्यक्त की गई हैं। *साकेत* की शैली प्रायः सर्वत्र आकर्षक है परंतु सब चित्र जब एकत्र कर महाकाव्य की चित्रशाला में रखे जाते हैं तब महाकाव्य का सम्यक् वातावरण पूर्णरीति से नहीं बन पाता।

परंतु जिस सत्कवि ने *साकेत* के शतशः पृष्ठों पर अपनी अंतरतम की अनुभूतियां अंकित की हैं उसकी प्रशंसा में शब्दों का संकोच कोई नहीं कर सकता। खड़ीबोली के इस प्रथम चरण में *साकेत* की सृष्टि एक ऐतिहासिक घटना है। *साकेत* के द्वारा हिंदी का शब्द-सौष्ठव यथाविधि प्रकट हुआ है। खड़ीबोली की कर्कशता का अर्थ हमारी समझ में नहीं आता क्योंकि साकेत का पाठ करते हुए हमें कहीं भी अस्वाभाविक उच्चारण नहीं करना पड़ा। अस्वाभाविक उच्चारण के अतिरिक्त दूसरी कर्कशता की हमें कल्पना नहीं होती। खड़ीबोली का शब्द भंडार भी *साकेत* के द्वारा बृहत्तर अथच शक्तिसंपन्न हुआ है। शक्ति से हमारा आशय वाच्य, लक्ष्य और व्यंजना शक्तियों से है। गुप्तजी ने *साकेत* में शब्दों के प्रति विशेष आत्मीयता दिखाई है जिसे प्रदर्शित करने के लिए एक स्वतंत्र निबंध की आवश्यकता है। अन्य विशेषताओं का उल्लेख हम बीच-बीच में करते आए हैं। यदि हमने *साकेत* की त्रुटियों का उल्लेख करने में अधिक समय नष्ट किया है तो केवल इसलिए कि हम समझते हैं कि गुप्तजी एक श्रेष्ठ सत्कवि हैं। बंगला का आधुनिक काव्य साहित्य विशेष उन्नत समझा जाता है पर माइकेल मधुसूदन दत्त के अतिरिक्त कोई कवि गुप्तजी से प्रबंध काव्य के क्षेत्र में आगे नहीं है। रवि बाबू का क्षेत्र दूसरा है। नवीनचंद्र, हेमचंद्र आदि से मैथिलीशरणजी की समता करने में किसी काव्य मर्मज्ञ को कुछ भी संकोच नहीं होगा। *साकेत* गुप्तजी का महाकाव्य है। उसे महाकाव्य की दृष्टि से ही देखना संगत था जो शताब्दियों में दो-एक लिखे जाते हैं। ऐसी अवस्था में जो त्रुटियां ऊपर दिखाई गई हैं उनका अर्थ समझने में भ्रम नहीं करना चाहिए। संक्षेप में उसका अर्थ यही है कि गुप्तजी में और *रामचरितमानस* आदि के महाकवियों में क्या अंतर है। इस तुलना में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गुप्त जी का गौरव व्यंजित है। आधुनिक हिंदी के प्रबंध काव्यों को *साकेत* की समता में हमने नहीं खड़ा किया। इसकी भी व्यंजना समझ लेनी चाहिए।

(रविवार, 12 जून 1932)

# यूरोप की समस्या

आर्थिक नाश के निकट पहुंचकर यूरोप महाखंड अब आत्मरक्षा की तजबीज कर रहा है। यूरोप की संपूर्ण संस्कृति प्रलय के कगार पर आ अटकी है पर दुःख है, उसको इसका अभिज्ञान नहीं। यूरोप का यह वैज्ञानिक युग चल रहा है। विज्ञान के मारक आविष्कारों का दुष्परिणाम यूरोप के दिमाग में नहीं चढ़ता बल्कि अब भी उसके मस्तिष्क में यह ऐषणा मौजूद है कि विज्ञान की महाकाली उस पर द्रवित हो जाए तो वह अपने अर्थ विस्तार के लिए एक बार और प्रहार करे। आश्चर्य है कि अर्थ विस्तार के प्रश्न को ही यूरोप एकमात्र प्रश्न समझता है और इसीलिए लूसेन सम्मेलन की योजना कर रहा है। जिनेवा के निःशस्त्रीकरण परिषद को अब सफलता के बदले शब्दों का जो मायाजाल हाथ लगा है उसका प्रधान कारण यह है। निःशस्त्रीकरण के प्रश्न को भी यूरोप एक आर्थिक प्रश्न ही समझता है। उसकी व्यावहारिक बुद्धि उसे वहां भी फंसाती है। यूरोप समझता है कि आर्थिक भित्ति डांवाडोल होने के कारण ही उसकी सभ्यता और संस्कृति कुछ समय के लिए पतन की ओर खिसक रही है। उसे यह आशा है कि अर्थ समस्या के सुलझते ही यूरोप की गौरवगरिमा फिर पूर्ववत ही दृढ़ हो जाएगी। विगत विकट महायुद्ध से यूरोप ने कोई सबक नहीं सीखा। यदि सीखा तो इतना ही कि उसके परिणामस्वरूप उसे कर्ज के कुछ रुपए अदा करने हैं। इस कर्ज को भी वह हड़प जाने की चेष्टा करता है। अर्थात् महायुद्ध के एकमात्र स्मृति अवशेष ऋण का भी अस्तित्व मिटाकर वह शायद निश्शंक बन जाने की फिक्र में है। तब वह फिर से अपने आर्थिक संघटन पर ध्यान देगा और जिस किसी दिशा से उसकी पूर्ति हो सकेगी, करने की चेष्टा करेगा। तात्पर्य यह कि यूरोप अपनी अर्थ समस्या के सुधार के लिए ही अनेक-अनेक परिषदों, सम्मेलनों, संरक्षण-प्रणालियों आदि की रचना कर रहा है और यह बिलकुल नहीं समझ रहा है कि यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति के विनाश का प्रश्न आर्थिक सुधार के प्रश्न से नितांत विपरीत नहीं तो विभिन्न अवश्य है। वह इतनी कल्पना नहीं कर सकता कि अर्थवाद ही यूरोप के पतन का प्रमुख कारण है और अर्थ-समस्या को ही एकमात्र समस्या मानकर उसे सुलझाने का अर्थ पतन के रास्ते में कई कदम और आगे बढ़ जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं

यदि आर्थिक अवस्था के सुधार से ही यूरोप की परिस्थिति में परिवर्तन हो सकता तो आज ऐसी विकट अवस्था उत्पन्न ही न होती। यूरोप के बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों ने पिछले कई वर्षों से अनेक उपाय किए पर हालत बिगड़ती ही गई। संरक्षण की नीति बरती गई, सोने से संबंध तोड़ा गया, विनिमय की दर में हेर-फेर किए गए, कर्ज की बड़ी रकमें माफ कराई गईं, शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की लंबी-लंबी मियादें बढ़ाई गईं पर यूरोप की आशा सफल नहीं हुई। मंत्रिमंडलों के टूटने-जुड़ने का भी कोई नतीजा न निकला--यदि कुछ निकला भी तो विपरीत ही। सभी बड़े राष्ट्रों में संकीर्ण राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार हुआ, साम्राज्यवादी देशों ने अधिकाधिक जकड़ने का ही प्रयास किया पर कुछ भी हालत न सुधरी, उल्टा करोड़ों पौंड की व्यापार मंदी बढ़ी और पराधीन देशों में राजनीतिक असंतोष बढ़ा। इसका कारण यदि कुछ हो सकता है तो यही कि यूरोप अपने रोग का ठीक-ठीक निदान नहीं कर सका। मर्ज को पहचान नहीं सका। यूरोपीय संस्कृति में जिस ओर विनाशकारी कीटाणु लग गए हैं उस ओर उसकी दृष्टि ही नहीं है। भारतीय राजनीति में जिस प्रकार रोग की नहीं, रोग के लक्षणों की दवा (Treating the Symptoms) की जा रही है उसी प्रकार सारा यूरोप लक्षण की दवा कर रहा है। यूरोप का अर्थवाद उसके सांस्कृतिक रोग का एक लक्षण मात्र है पर आज सारा यूरोप उसे ही अपने जीवन-मरण का प्रश्न मानकर उसे ही हल करने में जुटा पड़ा है। पर इसे हम दृष्टि का विकार समझते हैं।

यूरोप की प्रमुख समस्या संप्रति आर्थिक नहीं है वह कुछ और ही है। यदि संक्षेप में कहना हो तो उसे मनुष्यता की समस्या कह सकते हैं। यूरोप की मनुष्यता इस समय आत्मविस्मृति की अवस्था में है। यंत्रों के युग में वह बहुत कुछ यांत्रिक हो गई है। उसने अपनी मानवीय सहानुभूति खो दी है। इसलिए उसकी कठोरता की कोई सीमा नहीं। यह कठोरता उसके राजनीतिक अधिकार विस्तार, आर्थिक शोषण और संरक्षण आदि की नीतियों में देखी जा सकती है। यही कठोरता निःशस्त्रीकरण परिषद की सफलता में सबसे बड़ी बाधा है, जिसके दूर होने से ही मनुष्य जाति की व्याधि मिट सकेगी। आज यूरोप ने मनुष्य-मनुष्य की युग-युगांतरों की एकता को भुलाकर एक अपरूप कृत्रिमता को जन्म दिया है। छोटे-छोटे भूमिखंडों के काल्पनिक स्वार्थों के लिए मनुष्य-मनुष्य में दुर्लंघ्य खाइयां खोदी जा रही हैं। बिरादरी का भाव कहीं दीख नहीं पड़ता। निःशस्त्रीकरण जैसी शुद्ध मानवीय तथा आध्यात्मिक समस्या पर भी यूरोप मोल-तोल कर रहा है, यह हद ही है। कृत्रिम जीवन के साथ विलासिता बढ़ी है जिसकी पूर्ति विज्ञान अब तक करता आया है पर अब 'हाल्ट' के नजदीक पहुंच गया है। प्रत्येक मानवीय व्यापार की तरह विलासी जीवन की भी सीमा होती ही है। इसी कृत्रिम जीवन की रक्षा के लिए यूरोप अस्त्र-शस्त्र एकत्र कर युद्ध ठानने को भी तैयार रहता है। यूरोप के इस शस्त्र-संघटन में ही उसकी अधिकांश संपत्ति स्वाहा हो जाती है यह कितनी महान ग्लानि का विषय है। संपत्ति का इससे बड़ा दुरुपयोग और क्या हो सकता है कि वह मनुष्यता के संहार के लिए—और संहारक कृत्रिम मनुष्यता की रक्षा के लिए—व्यवहार में लाई जाए। जब इस प्रकार का अपव्यवहार करके यूरोप कंगाल बन रहा है तो उसकी कंगाली के प्रति किसकी सहानुभूति हो सकती है।

यूरोप के दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन यूरोप का कोई आदर्श नहीं कहा जाएगा वह तो उसके लिए अत्यंत उपयोगी व्यावहारिक समस्या है। उसके बिना उसका संपूर्ण अस्तित्व ही संदेहजनक हो रहा है। बिना परितर्वन के यूरोप अपने पैरों पर खड़ा ही नहीं हो सकता। आज जो वह अमेरिका से 'माफी, माफी' की भीख मांग रहा है उसका क्या यह अर्थ नहीं कि यूरोप की वर्तमान आर्थिक नीति उसे भिक्षावृत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की ओर घसीट रही है। आगामी कुछ वर्षों में इसके और भी बुरे नतीजे दीख पड़ सकते हैं। साम्राज्यवादी यूरोप के विरुद्ध सारे संसार का लोकमत बढ़ता जा रहा है और पराधीन राष्ट्रों में चैतन्यशक्ति उत्पन्न होती जाती है। अब यूरोप की उच्च जातीयता का गर्व सहन करने को कोई तैयार नहीं है। यूरोप की गोरी सभ्यता अब रंगीन सभ्यताओं के सामने मनुष्यता के मंच पर ही खड़ी हो सकती है। इन सबसे निस्तार पाने के लिए यूरोप को मनुष्यता की उन सहृदय वृत्तियों की खोज करनी चाहिए जिसके बिना वहां का वातावरण इतना शुष्क और आतंकपूर्ण हो रहा है। लूसेन ओटावा जैसे सैकड़ों परिषदों की अपेक्षा इस महत् लक्ष्य की ओर ध्यान देना कहीं अधिक हितकर है क्योंकि यूरोप का वास्तविक कल्याण इसी में है।

## हिंदी का विकास

समाचारपत्रों में हिंदी साहित्य के विषय में एक महत्वपूर्ण संदेश प्रकाशित हुआ है। अनिवार्य कारण से वह एक स्थान पर प्रकाशित न होकर यत्र-तत्र खंडित रूप में छपने पाया है। यदि उन खंडों का संग्रह किया जाए तो पूरी मूर्ति ऐसी तैयार होती है—

> पं. इलाचंद्र जोशी ने कुछ साहित्य संबंधी अपने लेख *सुधा* पत्रिका में छपने के लिए दिए। उनमें से कुछ *सुधा* में प्रकाशित किए गए पर कतिपय अन्य अप्रकाशित रहे।
>
> (*माधुरी*, चैत्र)

> *सुधा* कार्यालय में काम करने वाले श्री सुधींद्र वर्मा नाम के एक व्यक्ति, जो एम.ए., एल.एल-बी. की विशेषता से भी समन्वित हैं, उन अप्रकाशित लेखों को लेकर इंदौर पहुंचे और श्री भंवर लालजी सेठी नाम के सज्जन को सुपुर्द कर आए कि वे स्थानीय *वीणा* में उनके नाम से प्रकाशित करने के लिए भेज दिए जाएं। तदनुसार वे *वीणा* संपादक के पास भेज दिए गए। यह अक्तूबर या नवंबर सन् 1931 की बात है।
>
> (*वीणा*, जून 1932)

> इसके उपरांत 1 दिसंबर को *वीणा* संपादक ने श्री सुधींद्र वर्मा को स्वीकृति पत्र लिख भेजा और जनवरी की *वीणा* में उनमें से एक लेख प्रकाशित भी किया। *वीणा* सारे हिंदी संसार में नहीं तो कम से कम *सुधा* कार्यालय और श्री सुधींद्र वर्मा के घर भेजी गई। फिर एक महीना बीता, दो महीने बीते, तीन बीते। अप्रैल की *वीणा* में 'कबीर और रवींद्रनाथ' नाम का दूसरा लेख भी छापा गया। यह प्रति भी दोनों जगहों में भेजी गई। यहां तक मौनावलंबन के रास्ते से चला गया।
>
> (*वीणा*, जून)

> *वीणा* में अपना लेख दूसरे के नाम से छपा देख पं. इलाचंद जोशी ने एक पत्र *माधुरी* को लिखकर अपने लेख के उड़ा लिये जाने पर विषाद और ग्लानि प्रकट की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तब सुधींद्र वर्मा महाशय *त्रिवेणी* के दफ्तर में बैठकर कह आए कि वह लेख न उनका लिखा था, न उन्होंने भेजा था। इस अलिखित वक्तव्य को *त्रिवेणी* के अतिरिक्त *माधुरी* ने भी प्रकाशित किया।

(*त्रिवेणी*, संयुक्तांक)

*त्रिवेणी* में वक्तव्य देते हुए वर्मा महाशय कहते हैं कि बांग्ला नहीं जानते पर श्रीयुत भंवरलाल सेठी कहते हैं कि *वर्मा* महाशय एक पत्र में अपने बांग्ला-ज्ञान का इश्तिहार करते हैं।

(*वीणा*, जून 32)

अब तक तो दूसरे लेखों के रूपांतर को अपने नाम से अपनाने की कला का प्रचार था पर अब समझा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का कैसा सूर्योज्चल विकास हो रहा है।

## *रंगीला*

हिंदी के प्रसिद्ध कवि पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निरालाजी' के संपादकत्व में उक्त साप्ताहिक पत्र अभी हाल में कलकत्ते से प्रकाशित होने लगा है। इसका प्रथम अंक हमारे सामने है। इसमें कहानी, विनोद, आलोचना, कविता का सुंदर संकलन है। साथ ही, सामयिकता का ध्यान रखते हुए मनोरंजक ढंग से समाचार भी प्रकाशित किए गए हैं। पत्र के प्रथम अंक के देखने से 'निरालाजी' की सर्वतोमुखी प्रतिभा का सुंदर परिचय मिलता है। इसके संपादन की शैली सुंदर, सजीव, साहित्यिक और सुरुचिपूर्ण है। विनोद इसमें उच्च कोटि के प्रकाशित किए गए हैं। कलकत्ते से जैसा *मतवाला* प्रारंभिक समय में निकला था और जिसके संपादन में 'निरालाजी' का यथेष्ट हाथ था, वैसा ही रूप इस *रंगीला* का भी है। इसलिए पत्र के संपादन में सफलता प्राप्त होने में संदेह नहीं किया जा सकता। आशा है कि इस पत्र को हिंदी प्रेमी अपनाएंगे और हिंदी में उच्चकोटि के हास्यरस को प्रश्रय देंगे। *रंगीला* को इस प्रकार सुंदर ढंग से संपादन करने के लिए 'निरालाजी' बधाई के पात्र हैं। *रंगीला* वार्षिक मूल्य 3 रुपए (*रंगीला* कार्यालय 57 बांसतल्ला, कलकत्ता से प्राप्त किया जा सकता है।

(गुरुवार, 16 जून 1932)

## यू.पी. मद्य पॉलिसी

हमारे प्रांत के मालिक मुख्तारों ने व्यवस्था-सभा के तथाकथित प्रतिनिधियों की राय लेना व्यर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समझकर, उधर कुछ समय से, प्रांतीय मद्य पॉलिसी में जो परिवर्तन कर रखा है, वह कोई नई बात नहीं है। ऐसा तो हुआ ही करता है। राष्ट्रीय कांग्रेस स्वयं ही कह रही है कि व्यवस्था-सभा के प्रतिनिधि जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं, इसलिए सरकार यदि ऐसे प्रतिनिधियों की राय नहीं लेती तो अपने जान कांग्रेस का आदेश ही मानती है। इसमें क्या कम गौरव है? यदि सरकार अपने द्वारा बनाए गए नियमों को तोड़कर, व्यवस्था-सभाओं का तिरस्कार करती है तो वह अपने व्यवस्था संबंधी सुधारों को चाहे जितना अमान्य करती हो, राष्ट्रीय दृष्टि से विशेष अनुचित कार्य नहीं करती। शायद इस संबंध में सरकार की भलमनसाहत (Good Faith) पर भी शंका नहीं की जा सकती क्योंकि वह जानती है कि व्यवस्था-सभा के वर्तमान प्रतिनिधि अधिकांश में ऐसे हैं जो सरकारी नीति की हां में हां मिलाने वाले हैं, इसलिए उनसे सलाह-मशविरा करना केवल समय का नुकसान करना है। जानी हुई बात को दुबारा जानने में कौन-सी बुद्धिमानी है? जब सरकार यह समझती ही है कि व्यवस्था-सभा का बहुमत उसके पक्ष में है तब वह बात-बात में सभा का मत क्यों लेती फिरे? ऐसा करने में भी यदि व्यवस्था के नियम टूटते हों तो वह टूटना केवल शाब्दिक है, अतः टूटने में कोई हर्ज नहीं। सरकार यदि व्यवस्था-सभा को यह कहकर बर्खास्त कर दे कि जो सरकार की राय वही सभा की राय होती है इसलिए दो के बदले एक (सरकार) से ही काम चलता रहेगा—तो भी इसके विरुद्ध कोई सारवान प्रमाण नहीं दिया जा सकता। यह तो सबको मालूम ही है कि आजकल आर्थिक तंगी के कारण कटाई-छंटाई हो रही है। जब एक से काम चलता है तब दो की जरूरत क्या है, विशेषकर तब जब दोनों एक ही राय रखने वाले और एक ही काम करने वाले समझे जाते हैं! ऐसा करने में यदि कागजी विधान के शब्दों में कुछ गड़बड़ पैदा होती हो तो होती रहे!

परंतु यू.पी. मद्य पॉलिसी का सवाल केवल शाब्दिक हेर-फेर का सवाल नहीं है। व्यवस्था-सभा के और स्वयं सरकारी विभाग के बाहर विस्तृत विशाल क्षेत्र में इस पॉलिसी का प्रभाव पड़ता है, एक प्रकार से यह हमारे राष्ट्रीय सामाजिक जीवन के अंतरंग को स्पर्श करने वाली प्रमुख समस्या है। सरकार के कानून-कायदे के पालन-अपालन से कहीं अधिक इसका महत्व है। पूज्य पं. मदनमोहन मालवीय से लेकर प्रांत के अनेकानेक नेताओं ने अधिकांश में जनता के बीच और कभी-कभी सरकारी क्षेत्रों में भी यह आवाज गुंजा दी है कि यदि देश को मरणासन्न अवस्था से निस्तार पाना है तो वह मद्यसेवन का नितांत बहिष्कार करे। नैनीताल की गवर्नमेंट इमारतों से लेकर छोटे-छोटे देहातों की भट्ठियों तक मद्य निषेध की आवश्यकता भाषणों, समाचारपत्रों, धरना देने वालों आदि के द्वारा पहुंचा दी गई है। शक्तिशाली लोकमत की अवहेलना करना उचित न समझकर प्रांतीय सरकार के अधिकारी अफसरों ने एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक, लगातार कई वर्षों तक यह ऐलान किया कि शराबखोरी बंद करना ही सरकारी मद्य नीति का अंतिम लक्ष्य है। जैसाकि श्री चिंतामणि ने पिछले दिन व्यवस्था-सभा के अपने बहुजन प्रशंसित भाषण में प्रकट किया, अनेक-अनेक मिनिस्टरों और अफसरों ने नीलामी सिस्टम पर शराब का ठेका देने, खुली बोतलों में बेचने आदि को स्पष्ट शब्दों में अपने मद्य निषेध लक्ष्य के प्रतिकूल बतलाया। पर आज अचानक सरकारी मंत्री महाशय की यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आश्चर्यजनक उक्ति सुन पड़ी कि सरकार का अंतिम लक्ष्य मद्य निषेध अब भी पहले ही की तरह है पर उसे यह बात समझ पड़ रही है कि इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए जो तरीका पिछले वर्षों से इस्तेमाल में लाया जा रहा है, वह असफल हुआ है। इसका एकमात्र प्रमाण जो दिया गया वह यह था कि नए तरीके के कारण छिपे तौर पर शराब बनाई जाने लगी है, पर यह प्रमाण स्पष्ट ही अप्रामाणिक है। छिपे तौर पर शराब बनाने की रोक करनी चाहिए, शराब का दाम कम करने से चोरी की रोक नहीं होगी। खुली बोतलों में, कम दाम में शराब बेचने से उसका इस्तेमाल अवश्य ही बढ़ेगा। सरकारी हिसाब-किताब से यह जाहिर है कि इधर कुछ वर्षों में, नए तरीके के व्यवहार से, मद्य विक्रय में विशेष कमी हुई थी। इसी तरीके पर चलकर अंत में शराबखोरी बिलकुल बंद हो सकती थी, ऐसी संभावना थी पर सरकार ने उसको उखाड़-पछाड़ कर दिया।

प्रांतीय व्यवस्था-सभा में श्री चिंतामणि के स्पष्टीकरण के बाद भी सरकार को यह विश्वास नहीं हुआ कि मद्यनीति में हाल में किए गए परिवर्तन से अनेक जिलों में शराब की दुकानों की तायदाद बढ़ जाएगी, कम कीमत और खुली बोतल से उसका प्रचार विशेष बढ़ेगा, जिसका प्रमाण इतने थोड़े समय में भी काफी मिल चुका है। जब अपने ही पुराने पुरखों के अनुसंधानों को सरकारी नए ओहदेदार नहीं मानते तो इसमें दोनों ओर से सरकार की ही बदनामी है। यदि वास्तव में पुराने अनुसंधान करने वालों ने इतने वर्षों में इतनी साधारण समस्या को भी हल न किया तो क्या किया? भविष्य में भी किस पर विश्वास किया जा सकता है? और यदि प्राचीन अनुसंधान ठीक थे—नीलामी प्रथा दोषपूर्ण थी—तब वर्तमान परिवर्तन का क्या मतलब है? हाफिज हिदायत हुसैन साहब ने प्रस्ताव तो कर दिया कि अगले बजट-अधिवेशन तक इस नए कायदे की जांच की जाए, तब प्राप्त सूचना के अनुसार नीति निर्धारित की जाए, पर क्या इस प्रस्ताव से सरकारी-अफसरों पर अकार्यदक्षता का कलंक नहीं लगता? क्या हाफिज साहब ऐसी संभावना देखते हैं कि नई प्रणाली से शराबखोरी के कम होने के आसार हैं? या उन्होंने सरकार की गाढ़े में सहायता करने के महत् उद्देश्य से यह समय टालने वाला प्रस्ताव पेश किया। कुछ महीनों के बाद जब इस मद्यनीति के फलाफल पर विचार होगा तब एक्साइज विभाग के अधिकारी और हाफिज साहब यह भूल जाएंगे कि उन्होंने किस बुनियाद पर इन कुछ महीनों की मुहलत ली है। तब तो सब कुछ नए सिरे से शुरू होगा। पर इस नए सिरे से शुरू होने में दरिद्र पीड़ित जनता का कितना धन व्यय और शारीरिक अपकार होता है! साथ ही, इसमें सरकारी आदमियों की कितनी गैरजिम्मेदारी और अयोग्यता छिपी हुई है, यह कोई नहीं जान सकेगा।

## दो प्राचीनों का देहावसान

इधर हिंदी साहित्य के प्राचीन सेवीगण कुछ जल्दी-जल्दी उठते जा रहे हैं। पं. पद्मसिंह शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के उपरांत बाबू शिवनंदन सहाय और उनके उपरांत पं. किशोरीलाल गोस्वामी के देहावसान से साहित्य के अग्रगण्य नेताओं का प्रस्थान हो गया। बाबू शिवनंदन सहाय बिहार प्रांत में पड़ जाने के कारण यथोचित प्रचार न प्राप्त कर सके, अन्यथा वे भी हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति हो गए होते। सेवा की दृष्टि से बाबू शिवनंदन सहाय की हिंदी सेवा किसी से कम नहीं थी। स्थायित्व की दृष्टि से भी उनकी लिखी भारतेंदु और तुलसीदास की जीवनियां आदरणीय स्थान रखती हैं। बाबू शिवनंदन सहाय हिंदी साहित्य के रगड़ों-झगड़ों से नितांत निर्लिप्त, ऐषणाओं से रहित और पॉलिसी-होल्डरों की श्रेणी के बाहर थे। दूसरा जमाना होता तो इन्हीं गुणों से उनकी ख्याति होती पर जमाना ऐसा है कि इसी के कारण वे एक कोने में ही पड़े रहने को छोड़ दिए गए। यह बाबू शिवनंदन सहायजी के लिए नहीं, हिंदी-संसार के लिए थोड़ी-बहुत ग्लानि का विषय है पर यह उल्लेख करना संप्रति निष्प्रयोजन है। सौ-दो सौ वर्षों के बाद अथवा और आगे जब कभी साहित्य से व्यक्तिगत प्रोपेगेंडा का भाव उठ जाएगा और शुद्ध साहित्यिक भाव का विकास होगा तब बाबू शिवनंदन सहाय अपना प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लेंगे। पं. किशोरीलाल गोस्वामी संस्कृत के विद्वान, हिंदी के लेखक और साहित्य सम्मेलन के इसी वर्ष के सभापति थे। उन्होंने साहित्य के उपन्यास, काव्य आदि विभागों में प्रवेश किया और बहुत दिनों तक उसी दिशा में आगे बढ़ते रहे। गोस्वामीजी के विषय में ही कहा जाता है कि उन्होंने मन भर पुस्तकें लिखी हैं। वजन में वे मन भर न भी हों (क्योंकि कागज आजकल काफी पतला और हल्का होने लगा है) पर मानसिक अर्थ में वे मन भर जरूर हैं। इधर कुछ दिनों से उन्होंने लिखना-पढ़ना बंद कर दिया था क्योंकि वे अस्वस्थ रहते थे। सामयिक साहित्यिक प्रगति को वे बुरी निगाह से नहीं देखते थे, यद्यपि वे उसके साथ-साथ चलने में असमर्थ थे। गोस्वामीजी संप्रदाय के आचार्य भी थे जिससे प्रकट होता है कि साहित्य में ही नहीं, धर्म में भी उनकी गति थी। बल्कि यह कहना चाहिए कि गोस्वामीजी का साहित्यिक उमंग और धार्मिक संयम में आश्चर्यजनक साम्य था। इस समय *विशाल भारत* जैसे 'पद्मसिंह शर्मांक' निकाल रहा है वैसे यदि वह 'शिवनंदन सहायांक' और 'गोस्वामी किशोरीलालांक' भी निकालता तो बड़ा ही अच्छा होता। *विशाल भारत* के लिए ऐसा करना धर्म भी है।

(रविवार, 19 जून 1932)

# लूसेन और ओटावा

प्रत्येक युग की एक सर्वप्रमुख समस्या होती है, अन्य समस्याएं या तो उसकी आनुषंगिक या अंतरंग बनकर उपस्थित होती हैं। विगत महासमर के पूर्व साम्राज्यवाद ही सर्वप्रमुख समस्या थी। पूंजीपति-मजदूर तथा अन्य वर्गभेद उसके भिन्न-भिन्न अंग थे। उसके पूर्व की उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की समस्या शीर्ष थी जिसके निदर्शन यूरोप के अनेक प्रदेशों में खूब देखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गए। उसके भी पूर्व कभी धार्मिक, कभी सामाजिक समस्या प्रधान बनकर यूरोप के रंगमंच पर अपना अभिनय करती रही। यहां उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। महायुद्ध के उपरांत यूरोप के सामने राष्ट्रीय संघटन का प्रश्न एक बार फिर प्रमुख बनकर उपस्थित हुआ क्योंकि वर्सेलिज की संधि में विजेता राष्ट्रों ने अपने विजयगर्व के अंधकार में अनेक राष्ट्रों के ऐसे-ऐसे टुकड़े किए जिनमें छिन्न-भिन्नता के अतिरिक्त दूसरा कोई नियम नहीं दीख पड़ता। राष्ट्रीय पुनर्संघटन के साथ-साथ भविष्य में युद्ध का प्रलय रोकने के लिए राष्ट्रों ने एक आंदोलन चलाया जो बाहर से विशाल पर वास्तव में विशेष शक्तिशाली नहीं है। विज्ञान के अनिष्ट की ओर राष्ट्रों की दृष्टि अवश्य गई पर वह अनिष्ट मनुष्य मात्र का अनिष्ट न समझा जाकर अधिकांश में स्वार्थपूर्ण संकीर्ण राष्ट्रीय दृष्टि से देखा गया जिसके कारण समस्या खूब उलझ गई, जैसाकि जेनेवा के निःशस्त्रीकरण परिषद की कार्रवाई से स्पष्ट ज्ञात होता है। विज्ञान के इस संहारक अस्त्र की भयंकरता से भी बढ़कर दूसरा अस्त्र भीषण आर्थिक दुर्गति करने वाला सिद्ध हुआ है। इस दिशा में यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों ने निःशस्त्रीकरण पर कहीं अधिक ध्यान दिया क्योंकि यह प्रश्न अत्यंत व्यावहारिक और यूरोप पर सामूहिक रूप से असर करने वाला है। प्रायः प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण कष्ट में पड़ा हुआ है। सोने का सिक्का अनेक राष्ट्रों ने छोड़ दिया। राष्ट्रीय व्यवसाय के सुभीते के लिए संरक्षण की दीवालें खड़ी की गई। परंतु अब तक इन उपचारों से व्याधि दूर नहीं हुई है जिसे दूर करने के लिए यूरोप ने लूसेन में जगत्प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आह्वान किया है जिसका अधिवेशन प्रारंभ भी हो गया है।

हमें देखना चाहिए कि लूसेन के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के मूल में जो आर्थिक समस्या है उसका स्वरूप क्या है? जैसाकि सम्मेलन के अध्यक्ष, ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने कहा, 'लूसेन का प्रश्न ब्रिटेन का, फ्रांस का, जर्मनी का अथवा किन्हीं अन्य राष्ट्र समूहों का नहीं है वह संपूर्ण रूप से सारे जगत का प्रश्न है।' यद्यपि लूसेन की तात्कालिक समस्या यह है कि महायुद्ध के समय के भिन्न-भिन्न हारे हुए राष्ट्रों पर किए गए जुर्माने किस प्रकार वसूल किए जाएं और अमेरिका के कर्जदार राष्ट्र उसके कर्ज को हजम कर जाएं या नहीं, तथापि मिस्टर मेकडानल्ड का यह कहना बिलकुल सही है कि सवाल इतना ही नहीं है। संभव है कि इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि मिलकर, उदारतावश अथवा अनिवार्य समझकर, अथवा किसी अन्य स्वार्थ से प्रेरित होकर जर्मनी पर किया गया हर्जाने का जुर्माना माफ कर दें और यह भी संभव है कि यूरोप की सम्मिलित शक्ति के सामने सिर झुकाकर अमेरिका भी ब्रिटेन, फ्रांस, इटली आदि से अपना पावना न मांगे पर क्या समस्या इतनी ही है? हम नहीं कहते कि इन दोनों समस्याओं के सुलझ जाने की संभावना है, हमारा अनुमान है कि इसकी संभावना नहीं है पर यदि असंभव संभव हो जाए और वे दोनों प्रस्ताव तय हो जाएं तो भी क्या पश्चिम की समस्या हल हो जाएगी? जिन राष्ट्रों ने एक बार महायुद्ध का नक्कारा बजाया था क्या वे दूसरी बार नहीं बजा सकते? ऐसी कौन सी घटना घट गई है कि भविष्य में महायुद्ध की संभावना रह ही न गई हो। युद्ध में जो कुछ कठिनाई है, व्यावहारिक है। रुपया नहीं है, साधन नहीं है। साधन होते ही फिर युद्ध हो सकता है। फिर युद्ध के बाद फिर हर्जाना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



फिर वही चक्र चल सकता है। यूरोप जैसा इस बार अमेरिका से माफी की भीख मांग रहा है वैसा ही दुबारा मांगने में उसे कौन-सी ग्लानि हो सकती है? कौन-सा ऐसा परिवर्तन हो गया जिससे ऐसा समझ लिया जाए कि अब वैसा नहीं होगा। राष्ट्रसंघ ने शांति के लिए प्रायः कुछ उद्योग नहीं किया। राष्ट्रों ने प्रायः सर्वत्र शांति के विपरीत ही उद्योग किया।

यदि लूसेन परिषद से यूरोप केवल आपसी जुर्माने और कर्ज के सवाल को हल करना चाहता है तो हम लोगों को उससे विशेष दिलचस्पी नहीं हो सकती। तब तो हम लोग केवल दर्शक की हैसियत से भिन्न-भिन्न पश्चिमीय राष्ट्रों की राजनीतिक चालें देख सकते हैं। परंतु यदि सम्मेलन के अध्यक्ष मिस्टर मेकडानल्ड के कथन के अनुसार लूसेन में समस्त संसार की आर्थिक समस्या या विचार होने वाला है—जैसा होना परम आवश्यक भी है—तो हम उस संबंध में विशेष उत्तरदायित्व का अनुभव कर सकते हैं। इस समय संसार के प्रायः सभी राष्ट्रों पर अर्थकष्ट के क्रूर ग्रह का प्रकोप है। भारत पर उसका प्रभाव अत्यधिक पड़ रहा है। यहां निम्नश्रेणियों की भीषण दरिद्रता, मध्य श्रेणी की बढ़ती हुई बेकारी पर टैक्सों के बड़े-बड़े बोझ लाद दिए जाने के कारण भारत के आयात व्यापार में विशेष कमी पड़ी है। जब तक यह अर्थकष्ट का भार नहीं उठता, भारत के साथ व्यवसाय करने वाले विदेशी राष्ट्रों को ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए कि उनके भारतीय व्यापार में उन्नति हो सकती है। लूसेन परिषद यदि संसार की आर्थिक दुरवस्था की जांच करना चाहता है और मनुष्य जाति की रक्षा का कोई रास्ता निकालना चाहता है तो उसे चाहिए कि लूसेन में संपूर्ण स्थिति पर व्यापक रीति से विचार किया जाए। दुःख है कि अब तक वैसे चिह्न नहीं दीख पड़ते।

लगभग लूसेन के साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों का एक अन्य आर्थिक सम्मेलन ओटावा में हो रहा है। ओटावा सम्मेलन का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के भिन्न-भिन्न उपनिवेशों में आर्थिक संबंध स्थापित करना और साम्राज्य के अंतर्गत व्यापारिक संरक्षण की दीवाल खड़ी करना है। ब्रिटेन की यह अभिलाषा है कि साम्राज्य के सभी प्रदेश एक-दूसरे की मदद करें और अन्य राष्ट्रों की वस्तुओं की अपेक्षा साम्राज्य की वस्तुओं का ही व्यवहार करें। भारत के प्रतिनिधि भी सरकार द्वारा चुने जाकर ओटावा भेजे जा रहे हैं। प्रतिनिधि मंडल के अध्यक्ष सर अतुल चटर्जी ने इस संबंध में मत प्रकट करते हुए कहा है कि ओटावा सम्मेलन में भारत को पहले अपने फिर साम्राज्य के सुभीते का ध्यान रखना उचित होगा। पर ऐसा होना कठिन है। भारत के प्रतिनिधि सरकार द्वारा चुने गए हैं। वे जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। वे भारतीय राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करेंगे ऐसी संभावना नहीं दीख पड़ती। फिर सबसे बड़ा सवाल तो यह है कि राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करने से क्या अंतर्राष्ट्रीय हित हो रहा है। ओटावा और लूसेन दोनों ही यूरोप समर्थक सम्मेलन हैं पर क्या दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं?

यदि लूसेन परिषद अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और अर्थनीति की उन्नति का लक्ष्य रखती है तो ओटावा की साम्राज्य परिषद उद्देश्य में उसके प्रतिकूल पड़ जाती है। लूसेन के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन को यदि सफलता प्राप्त करनी है तो वह अवश्य ही सर्वदेशीय व्यापारिक स्वतंत्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का संदेश सुनावेगा पर ओटावा में एकवर्ग अपने को संघटित कर व्यापारिक दृष्टि से शेष संसार का बहिष्कार करना चाहता है। तब इन दोनों में साम्य कहां है और भारत इनमें से किस पक्ष की सिद्धि की ओर ध्यान दे? उत्तर में हमें संदेह नहीं है। सर्वराष्ट्रीय हित का ध्यान रखना भारत के लिए विशेष गौरवप्रद है। परंतु लूसेन कॉन्फ्रेंस वास्तव में सर्व-राष्ट्रीय हित का उद्देश्य रखता है या केवल यूरोप के थोड़े से आर्थिक मामलों को चलता करता है, यह शीघ्र ही प्रकट होगा। अब तक लूसेन में भारत से या पूर्वीय संसार से विशेष हाथ बंटाने का आग्रह नहीं किया गया। परतंत्र होने के कारण लूसेन की अंतर्राष्ट्रीय परिषद में भारत की पूछ होनी कठिन ही है। परंतु यह तो निश्चय है कि यदि लूसेन को संसार के अर्थकष्ट के निवारण का कोई स्थायी उपाय प्राप्त करना है तो उसे केवल यूरोप के हर्जाने और कर्जदारी पर ही नहीं, इस युग की वैज्ञानिक सभ्यता के संपूर्ण फलाफल, साम्राज्यवाद की अधोगति, राष्ट्रों के अनुचित वर्गीकरण के अनिष्टों आदि उन सभी समस्याओं पर विचार करना पड़ेगा जिनके कारण संसार में अर्थ संकट का शनिश्चर चढ़ा हुआ है और जिनके कारण इस क्रूरग्रह की शांति नहीं हो रही। संसार की आर्थिक समस्या स्थायी रीति से तभी सुधरेगी जब इन व्यापक प्रश्नों पर ध्यान दिया जाएगा। लूसेन सम्मेलन में उसके सुधरने की आशा कम ही है और ओटावा कॉन्फ्रेंस तो प्रत्यक्ष ही संसार का आर्थिक संकट मोचन करने की अपेक्षा संकट बढ़ाने की संभावना लिये हुए है।

## साहित्य और सदाचार—1

महात्मा शंकर अविद्या को संसार का कारण नहीं मानते। उन्होंने शून्यवादियों के इस मत का खंडन किया है कि सत्ता का अस्तित्व ही नहीं है। क्षणभंगुरवादी कहा करते थे कि सब-कुछ क्षणिक है। शंकर ने उनका भी प्रतिवाद किया। हमारी मनोवृत्ति पर ही संसार का अस्तित्व निर्भर नहीं है। हमारे मान लेने मात्र से वह अनस्तित्व में परिणत नहीं हो सकती। संसार 'ज्ञान स्वरूप' है। महात्मा शंकर 'स्वप्न' और 'जाग्रत' में भेद करते हैं। अंत में स्वप्न भी मिथ्या है और जागरण भी मिथ्या है, यह तर्काभास शंकर का कदापि नहीं था। शंकर के सिद्धांत में सृष्टि का आधार ब्रह्म है। यदि 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' का यह अर्थ लगाया जाए कि ब्रह्म और जगत में संपूर्ण विभेद है तो ब्रह्म जगत का कारण नहीं सिद्ध किया जा सकता। पर ब्रह्म अवश्य ही उसका कारण है। जगत के 'मिथ्यात्व' से शंकर का अर्थ यही जान पड़ता है कि जैसा वह दीख पड़ता है या भासता है वैसा वास्तव में नहीं है। वास्तव में वह कुछ और है। पर यह है ही नहीं, ऐसा नहीं है। वह है। हां, वह है पर अयथार्थ है। रज्जु में सर्प का भ्रम होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि न रज्जु है, न सर्प है। है कुछ अवश्य। रज्जु संबंधी-ज्ञान और सर्प-संबंधी ज्ञान की सत्ता तो माननी ही पड़ेगी। संसार मिथ्या है, यह ज्ञान मिथ्या नहीं है। इसका अस्तित्व है। इसका अस्तित्व कहां से है? ब्रह्म से। ब्रह्म से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जगत संबंधी नाना अनुभव प्राप्त होते हैं। जगत ब्रह्म न हो पर जागतिक अनुभव ब्रह्म से उद्यत हैं। हम जो सत्, असत्, स्वप्न, जाग्रत, प्रीति, घृणा, ज्ञान, अज्ञान आदि के ... हैं यह ब्रह्मसंभव ... मुक्ति, कर्ममुक्ति, गुणभेद, ... आदि की भावनाएं और ... सिद्ध करती हैं कि अयथार्थ में भी ... यथार्थ है। संसरण में भी ब्रह्म है यद्यपि संसरण ब्रह्म नहीं है। संसार को मोक्ष की साधना-भूमि कहा गया है। क्यों? वंध्या से तो संतान की उत्पत्ति हो नहीं सकती फिर वह संतान मिथ्या ही क्यों न हो। मरीचिका के लिए भी आधार चाहिए। सृष्टि यदि बंध्या होती तो मोक्ष की संतान उससे संभव नहीं थी—वह मोक्ष भी मिथ्या ही क्यों न हो। पर मोक्ष मिथ्या नहीं है। वह संसार की साधना की चरम सिद्धि है। इसी प्रकार शंकर ने सृष्टि में सत् का निरूपण किया है। जब ब्रह्म में लीन हो जाना जगत की साधना से संभव है तब ब्रह्म और जगत में आत्यंतिक भेद हो ही नहीं सकता। 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' में आत्यंतिक भेद कदापि नहीं है। हम कह सकते हैं केवल दृष्टि-भेद और मात्रा-भेद है। अविद्या यही है कि हम यथार्थ और आभास का विवेक नहीं रखते। विवेक होने पर अद्वैत दार्शनिक नाना रूपों में एक शाश्वत रूप देखता है जिससे नाना रूप भी शाश्वत बन जाते हैं। यही अद्वैत दर्शन का 'अनन्यत्व' है।

संसार मिथ्या नहीं है, वह ब्रह्म की साधना भूमि है। उसके स्वप्न-जागरण में यथार्थ भेद है जिसको 'जगन्मिथ्या' कहकर उड़ाया नहीं जा सकता। यदि जगत स्वप्न भी है तो वह ईश्वरकृत स्वप्न है। ईश्वर ही उस स्वप्न का उपादान कारण भी है, इसलिए स्वप्न को भी अनस्तित्व नहीं कहा जा सकता ... ईश्वर के अस्तित्व ... लगेगा। इस विचार ... आचार को मौलिक ... होता है। संसार के साथ ... अभिन्न संबंध है। मूल में ... हैं। दोनों का मूल अर्थ संसरण अथवा गति है। संसार को गतिशील सभी कहते हैं। साधारण में भी गति की ध्वनि निहित है। संसार हमारे लिए नाना आचरणों का समवाय है। उन आचरणों को हम अपने अनुभव, परंपरा और प्रकृति के अनुसार 'सु' और 'कु' के विभागों में विभक्त करते हैं। 'सु' और 'कु' का यह भेद अत्यंत प्राकृतिक है। बीसवीं सदी के वैज्ञानिक अनुसंधानों के बाद यह सिद्ध हुआ है कि मानव मनोविज्ञान में 'सु' और 'कु' का विभेद निसर्ग-सिद्ध है। नवजात शिशुओं पर चिरकाल तक प्रयोग करने के उपरांत इस तथ्य पर पहुंचा गया है। इसको अकार्य समझना चाहिए।

'आचार' में गति है, पर गति के साथ गौरव भी है। कहा जाता है 'हमारे कुल में यही होता चला आया है।' यहां गति के साथ गौरव की व्यंजना स्पष्ट है। गतिशील संसार में जो कुछ गौरव के साथ चला सके वही आचारी है। आचार और संसार साइकिल के दोनों पहिए हैं। आचार आगे का और संसार पीछे का पहिया है। आगे गौरव अधिक है, पीछे कम। यही भेद आचार और संसार में भी है। संसार की सामान्य गति से आचार की विशेषगति में भेद होना ही चाहिए। इसीलिए आचारियों का संसार अधिक सम्मान भी करता है। आचार्य का

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अर्थ गुरु प्रचलित है। जान पड़ता है, आचरण ही उसे संसार का गुरु अथवा अगुआ बनाता है। 'आहार', 'निद्रा', 'भय', 'मैथुन' ही संसार की प्रकृति नहीं हैं। संसार का आचार उससे एक कदम आगे है। 'सब कुछ मिथ्या है' कहने वाले अद्‌भुत दार्शनिकों की बात हम यहां नहीं कर रहे क्योंकि वे आचार की सत्ता स्वीकार कर कष्ट में क्यों पड़ेंगे? यूरोप के यथार्थवादी भी जब यथार्थ की खोज करते हुए 'आहार', 'निद्रा', 'भय', 'मैथुन'—पर आकर अटकते हैं तब वे भी आचार के वास्तविक रूप को नहीं देख पाते। परंतु यूरोपीय यथार्थवादियों की इस अंतर्दृष्टि के अनेक ऐतिहासिक कारण हैं जिनका उल्लेख करना यहां अप्रासंगिक हो जाएगा। समाज के क्षुधित-पीड़ित आदमी के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति के कारण 'क्षुधा पहली आवश्यकता है' इस सिद्धांत की योजना यथार्थवादियों ने की। यथार्थवादियों की यह सहानुभूति अवश्य ही श्रेष्ठ आचार है। पर 'क्षुधा पहली आवश्यकता है' के कहने वालों ने यह कहीं नहीं कहा कि वही अंतिम तत्व भी है। यदि कोई यथार्थवाद ऐसा कहता है तो वह अपने आचार को विशेष संकुचित बना डालता है।

संसार की आस्था स्वीकार करने पर कोई आचार से उड़कर भागना चाहे तो उड़ नहीं सकता। हमारे देश में ही नहीं, संसार के सभी सभ्य देशों में आचार संबंधी शास्त्रों की रचना की गई है जो विधि-निषेध-दंड-शास्त्रों आदि के द्वारा काफी परिचित हो चुके हैं। संसार के लगभग प्रत्येक महापुरुष ने आचार पर एक-सी शिक्षा दी है जिससे आचार के शाश्वत होने का भी आभास मिल जाता है। महात्मा बुद्ध ने तो आचारशास्त्र की एक संक्षिप्त तालिका ही बना दी थी जिसकी प्रतिष्ठा सम्राट अशोक ने सिद्ध की थी। आजकल आचार के संबंध में हंसी उड़ाने की प्रथा चल निकली है। साहित्यिक टिप्पणी लेखक जीवन और साहित्य में तारतम्य देखना चाहते हैं पर व्यक्तिगत आचार को सदैव अछूत कहकर ही पुकारते हैं। साहित्य को जब से कला की दृष्टि से देखने का शौक बढ़ा है तब से आचार का उचित से अधिक तिरस्कार होने लगा है। साहित्यकार का आचार उसके जीवन संघटन में कुछ स्थान रखता है और उसके जीवन संघटन से उसके साहित्य का कुछ संबंध है, इसकी कल्पना ही नहीं की जाती। साहित्य को सदैव कला की दृष्टि से देखना चाहिए पर कला भी कलाकर की रुचि, अध्ययन, अनुभव और आचार से निर्मित होती है, यह कोई नहीं सुनना चाहता। कुछ लोग तो आचार धर्म को इंद्रिय धर्म बताकर उसे आत्मप्रेरणा के सामने कुछ समझते ही नहीं हैं। परंतु यह वही 'जगन्मिथ्या' वालों का-सा वितंडा है। कुछ अन्य तो आचार को रूढ़ि की श्रेणी में रखते हैं, जैसे दुराचार ही एकमात्र अरूढ़ि हो। यदि आचार रूढ़ि है तो आचारों का निषेध भी रूढ़ि क्यों नहीं है? परंतु ये तार्किक दूसरा पक्ष देखना ही नहीं चाहते। भारतीय संतों ने सूत्र रूप में सब-कुछ कहने की अपनी प्रणाली के अनुसार आचारशास्त्र को संक्षिप्त किया है, इस पर आजकल के समीक्षक उसमें संकीर्णता का आरोप करते हैं। परंतु अब तो बीसवीं सदी के वैज्ञानिकों ने भी सृष्टि चक्र को संक्षिप्त करना शुरू कर दिया है। ये भी अब चेतन-अचेतन के भेद को मिटाकर अद्वैत की ओर बढ़ रहे हैं। अंत में एक ही रह जाएगा। उसे ही कोई परमात्मतत्व कहेगा, कोई ईश्वर कहेगा—कोई यदि चाहेगा तो 'आचार' भी कह लेगा। यदि इस पर कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जाए कि आचार का घेरा छोटा है, उसे बढ़ाना चाहिए, तो यही क्यों नहीं कहते कि ईश्वर का घेरा छोटा है उसे भी बढ़ाना चाहिए। ऋषियों ने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तत्वों को एक श्रेणी में रखा है। यह उनकी दूरदर्शिता थी कि उन्होंने शरीर धर्म को भी आत्मा का धर्म माना है। यह उनकी प्रणाली थी—जो स्थायित्व और प्रचार के लिए आवश्यक भी थी—कि वे संक्षेप में आचार का सार प्रकट करते जैसे संक्षेप में ब्रह्म निरूपण करते थे। पर यदि इस संक्षिप्त प्रणाली का मर्म न समझकर कोई उसमें संकीर्णता ढूंढ़ने लगे तो यही कहा जाएगा कि वह ब्रह्म में भी संकीर्णता ढूंढ़ सकता है।

(गुरुवार, 23 जून 1932)

# हिंदी संपादक-सम्मेलन—1

इंदौर के कुछ पत्रकारों ने, जिनमें *वीणा* के श्रीयुत कालिका प्रसाद दीक्षित मुख्य हैं, एक हिंदी संपादक-सम्मेलन का प्रस्ताव किया है और तदर्थ एक अस्थायी स्वागत समिति भी बना ली है। इस स्वागत समिति की विज्ञप्ति का सारांश *भारत* के पिछले अंक में प्रकाशित किया जा चुका है। संक्षेप में उसका आशय यह है कि हिंदी संपादकों में संघटन न होने के कारण उन्हें अब तक वह प्रतिष्ठा, वैभव और दृढ़ता प्राप्त नहीं है जिसके वे हकदार हैं। ये ऋद्धियां तभी प्राप्त होंगी जब उनका संघटन हो जाएगा। विज्ञप्ति के संबंध में सहयोगी *कर्मवीर* के श्रीयुत माखनलाल चतुर्वेदीजी का यह कथन भी प्रकट हुआ है कि वर्तमान समय में बहुत से संपादकों के जेल-प्रवासी होने के कारण सम्मेलन को अभी स्थगित रखना चाहिए। इंदौर की अस्थायी समिति की विज्ञप्ति से जान पड़ता है कि उसने हिंदी संपादक-सम्मेलन के वास्तविक स्वरूप और महत्व को नहीं समझा और श्रीयुत चतुर्वेदीजी ने भी उसे उसी दृष्टि से देखकर टाल देने की राय दे दी। परंतु हिंदी संपादक सम्मेलन की आवश्यकता आज से वर्षों पूर्व से अत्यंत उत्कट रूप में थी और एक-एक दिन का बीतना हिंदी पत्र संपादन के लिए एक-एक दुर्घटना सिद्ध हुई है। इंदौर की अस्थायी समिति हिंदी संपादकों को जो त्रुटियां प्रदान करने के उद्देश्य से संपादक सम्मेलन करना चाहती है वास्तव में वह उसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए। हिंदी संपादक मंडल के सामने जो अत्यंत व्यावहारिक कठिनाइयां हैं जिनके कारण हमारा पत्र संपादक निम्न कोटि का बना हुआ है, वास्तव में उन कठिनाइयों के निराकरण के लिए संपादक-सम्मेलन की आवश्यकता है। संघटन करके, गुट बनाके, यदि हम प्रतिष्ठा और नौकरी की पुख्तगी प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती और नौकरी की पुख्तगी भी मुश्किल से मिल सकेगी। हिंदी में इस प्रकार के संघटन की और गुटबंदी की कमी नहीं है कि एक अत्यंत साधारण लेख के प्रकाशित होते ही हिंदी के बड़े-बड़े पत्रों में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक उसके उद्धरण दिए जाने लगते हैं। इस कला में कुछ महानुभाव विशेष निपुण हैं। और उन्हें हिंदी संपादन क्षेत्र में स्थानीय (Local) प्रतिष्ठा भी मिल चुकी है। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस प्रकार के संघटन से हिंदी संवाद पत्रों की अपकीर्ति होती है क्योंकि स्टैंडर्ड गिरता है। इस प्रकार की प्रतिष्ठा वैभव आदि तुच्छ ही नहीं, क्षेय भी है क्योंकि उनसे समूह रूप में हिंदी पत्रकार जगत बदनाम होता है और उसका उत्कर्ष घटता है। ऐसी प्रतिष्ठा और वैभव का आयोजन करने वाला संपादक सम्मेलन जब तक संघटित नहीं होता तभी तक ईश्वर की अनुकंपा समझनी चाहिए।

वास्तव में यदि संपादक-सम्मेलन की आवश्यकता है तो इस प्रकार की प्रतिष्ठा और वैभव के अनिष्ट से रक्षा करने के उद्देश्य से। शुद्ध संपादकीय वातावरण तैयार करने के लिए सम्मेलन की योजना की जानी चाहिए। हिंदी संपादक जगत को अपनी वे त्रुटियां समझनी होंगी, जिन्हें आज तक उसने नहीं समझा, जिनके कारण वह अंग्रेजी पत्र-संपादन की तुलना में बहुत पिछड़ा हुआ है। हिंदी में समाचार वितरण करने वाली कोई संस्था (News agency) नहीं है। संप्रति अंग्रेजी के तारों का हिंदी में अनुवाद करना पड़ता है जिसमें समय और शक्ति का विशेष अपव्यय होता है। जब तक देशी भाषाओं में तार भेजने की प्रथा प्रचलित नहीं होती तब तक क्या रोमन लिपि में समाचार प्राप्त करने का प्रबंध हिंदी पत्र नहीं कर सकते? इसके लिए आंदोलन करना सर्वथा संगत होगा। प्रत्येक दैनिक पत्र प्रतिदिन अंग्रेजी में आए हुए तारों को अपने-अपने ढंग पर अनुवाद करता है। इसमें भी शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है और भाषा में अनस्थिरता खूब बढ़ती है। क्या ऐसा प्रबंध नहीं किया जा सकता कि एक केंद्रीय संस्था कायम की जाए जो प्रत्येक पत्र को (जो उससे सहयोग करे) समाचार भेजा करे। क्या जरूरत है कि एक ही समाचार का अनुवाद *भारत* कार्यालय में भी हो और *आज* कार्यालय में भी। क्या इनका संघ स्थापित नहीं किया जा सकता? फिलहाल जब तक ऐसी केंद्रीय संस्था कायम नहीं होती और हिंदी अथवा रोमन में तार भेजने का प्रबंध नहीं होता तब तक निकट के पत्र संघ स्थापित कर सकते हैं। कलकत्ता से यदि चार दैनिक प्रकाशित होते हैं तो वे एक स्थान से अनुवादित समाचारों का वितरण कर सकते हैं।

यह कल्पना करना भ्रम है कि इस प्रकार की संघटित योजना से संपादकीय विभाग के बहुत से आदमियों को नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा क्योंकि थोड़े व्यक्तियों से ही काम चल सकेगा। संपादकीय विभाग के जो व्यक्ति अनुवाद करने के काम से छुट्टी पा जाएंगे वे निकाले नहीं जाएंगे बल्कि ऐसे-ऐसे कामों में लगाए जाएंगे जिनसे हिंदी पत्रों में अधिक रोचकता, विविधता, उपयोगिता और प्रतिष्ठा का समावेश होगा। जो उपसंपादक दिन भर तारों के पीछे पड़े रहते हैं उनमें से कुछ पत्र के स्थानीय रिपोर्टर बन जाएंगे, कुछ देश-विदेश के श्रेष्ठ लेखों का अनुवाद करने लगेंगे और कुछ पत्र के गेट-अप की ओर ध्यान देंगे। कुछ उपसंपादकों को मनोरंजन का सामान जुटाने और पाठकों को हंसाने का काम सौंपा जाएगा। कुछ का काम केवल यह रहेगा कि वे हिंदी के सब पत्रों का प्रतिदिन अध्ययन करें और श्रेष्ठ लेखों के उद्धरण अपने पत्रों में दें। इसमें उद्धरण वाली वर्तमान प्रोपेगेंडिस्ट प्रणाली उठ जाएगी और भिन्न-भिन्न लेखकों तथा संपादकों को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। कुछ अन्य उपसंपादक ग्रामीण जगत का संवाद प्राप्त करने के लिए देहातों में भेजे जाएंगे जहां अब तक अंग्रेजी की न्यूज-एजेंसियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी नहीं पहुंच सकी हैं। चूंकि ग्रामीण जनता ही देश की प्रमुख अंग है इसलिए इस दिशा में विशेष ध्यान देकर हिंदी-संपादक-मंडल अपने को अंग्रेजी संपादकों से कहीं अधिक श्रेयस्कर बना सकेगा और जनता का स्नेहभाजन बन सकेगा। इससे हिंदी पत्रों की ग्राहक संख्या बहुत अधिक बढ़ जाएगी। कुछ ऐसे उपसंपादकों की भी आवश्यकता होगी जो जनता में अपने-अपने पत्रों के लिए प्रचार करेंगे। निश्चय ही यह प्रचार आजकल का-सा जबर्दस्ती ग्राहक बनाने वाला प्रचार न होगा बल्कि जनता के मनोभाव जानने, उससे अपने पत्र की त्रुटियां सुनने और शुद्ध संपादकीय दृष्टि से अपने पत्र की विशेषताएं प्रकट करने का होगा। इस कार्यक्रम से हिंदी संपादकजगत अपने को आसानी से अंग्रेजी पत्रकारों की समता में रख सकेगा और तभी उसे वास्तविक प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। वैसी अवस्था में किसी प्रकाशक को साहस नहीं हो सकता कि वह संपादक मंडल के कार्य में अनुचित दस्तंदाजी करे अथवा बेकसूर उन्हें नौकरी से पृथक करे। यदि कोई प्रकाशक वैसा करेंगे तो संपादक सम्मेलन उसकी दवा करेगा।

जो बातें ऊपर दैनिक, अर्द्ध-साप्ताहिक आदि पत्रों के संबंध में कही गईं वे ही परिवर्तित रूप में साप्ताहिक, मासिक तथा वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी सोची-समझी और व्यवहार में लाई जा सकती हैं। अंतिम लक्ष्य यह होना चाहिए कि पत्र का स्टैंडर्ड ऊंचा हो हिंदी-पत्र संसार भी अन्य भाषाओं के पत्रों के सामने सिर ऊंचा कर खड़े हो सकें। प्रतिष्ठा, वैभव वगैरह सब आप से आप आएंगे, अथवा जरा-सी चेष्टा करते ही आ जाएंगे। मुख्य उद्देश्य को भूलना नहीं होगा। साप्ताहिक और मासिक पत्र संवादपत्र नहीं होते, वे विचार-पत्र होते हैं। हिंदी में अभी साप्ताहिक पत्रों में खबरें भी छपा करती हैं पर जनता में पत्रपठन की अधिक अभिरुचि उत्पन्न होते ही साप्ताहिक पत्रों का संबंध फुटकर समाचारों से बिलकुट छूट जाएगा और वे टिप्पणियों द्वारा विचार व्यक्त करने के साधन बन जाएंगे। मासिक पत्रिकाओं को अपने-अपने विषय के सर्वश्रेष्ठ और अप-टू-डेट विचार-संपन्न लेखकों का संगठन करना होगा। यह संघटन मिथ्यास्तुति आदि प्रोपेगेंडा वृति से नहीं, स्वतः संभूत होना चाहिए। मासिक पत्रिकाओं को विविधता से कहीं अधिक विचार प्रकर्ष पर ध्यान देना होगा तभी वे दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के क्षेत्र से अलग अपना अस्तित्व बना सकेंगी, अन्यथा वे उनके द्वारा हड़प ली जाएंगी। हिंदी में इधर मासिक पत्रिकाओं का प्रचलन कम हो रहा है, इसका एक कारण यह भी है कि वे आधुनिक प्रगतिशील विचारों को प्रकट करने में अक्षम हैं। केवल गेट-अप और विविधता ही उनकी विशेषता हो रही है। यदि यही हालत रही तो हिंदी के दैनिक, अर्द्ध-साप्ताहिक और साप्ताहिक पत्र आगे बढ़कर मासिक पत्रिकाओं का अस्तित्व ही संकटापन्न बना देंगे।

इंदौर हिंदी संपादक सम्मेलन की अस्थायी समिति को यह विचार लेना चाहिए कि वह जैसा उद्देश्य रखकर सामने आवेगी, वैसा ही उसका स्वागत होगा। फिलहाल उसके अध्यक्ष कोई अज्ञात व्यक्ति हैं, केवल मंत्री महोदय योग्य हैं। यदि इंदौर हिंदी संपादक सम्मेलन का केंद्र बनना चाहता है तो उसे अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए, यदि विवेक तत्परता और शुद्धभाव से काम किया गया तो हिंदी संसार के लिए यह सम्मेलन अभूतपूर्व और क्रांतिकारी सिद्ध हो सकता है। हिंदी संपादक सम्मेलन के सामने कितने महत्व के प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं यह ऊपर के दृष्टांत से मालूम होने में सहायता मिलेगी। यह कहना स्थिति के प्रति नासमझी जाहिर करना है कि अभी सम्मेलन के लिए उपयुक्त समय नहीं है। हिंदी संपादकजगत चिरकाल से समय नष्ट कर रहा है जिसका फल उसकी आंखों के सामने है। आगे भी वह जितना समय नष्ट करेगा उतनी ही अपनी नादानी सिद्ध करेगा।

## रत्नाकरजी का स्वर्गवास

खेद है कि इस सप्ताह हिंदी के प्रसिद्ध कवि और व्याख्याकार बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का स्वर्गवास हो गया। 'रत्नाकर' कुछ दिनों से हृदयरोग से पीड़ित थे पर इतने शीघ्र उनके उठ जाने की आशंका किसी को नहीं थी। गर्मियों में वे काशी से हरिद्वार गए थे, वहीं उनके प्राण छूट गए। उनकी बीमारी बढ़ने के कोई समाचार हमें नहीं मिले थे इसलिए अचानक यह मृत्यु संवाद प्राप्त कर हम विशेष विचलित हुए हैं।

रत्नाकरजी सामयिक हिंदी साहित्य के एक स्तंभ थे। उनकी मनोवृत्ति मध्यकालीन थी, और वे बड़ी ही प्रसन्नता के साथ उसी वातावरण में रहते थे। वे संपन्न थे, उनकी संपन्नता में मुगल जमाने का वैभव था। मोटर न रखकर, वे फिटन पर चलते थे। वे बाकायदा शेरवानी पहनकर, सुरमा लगाकर निकलते थे। बराबर अमीराना ढंग से रहे और कभी किसी तोहमत में नहीं फंसे। ब्रज भाषा को अपनाकर भी वे कभी खड़ीबोली के उठान से नहीं चिढ़े और न अनाकांक्षित विवाद में पड़े। निश्चय ही रईसों की तबियत मिली थी और उन्होंने उसे खूब निबाहा।

भारत की मध्ययुगीन हिंदी के विकास वैभव की स्मृति को लेकर रहते थे। वह उनकी धरोहर थी। उसे ही लेकर वे पूर्ण प्रसन्न थे। अधिकांश में सामयिक साहित्यिकों की मनोवृत्ति इतनी सहनशील नहीं और न अंतर्दृष्टि संपन्न है कि वह प्रचलित प्रवाह को छोड़कर दूसरी दिशाओं में देख सके और दूसरों को भी अपना सके। हम लोग निर्लेप होकर व्यक्तित्व के अनेक रूपों और विकास के अनेक आकारों को देख नहीं सकते। देख सकते तो इतना द्वंद्व कदापि न होता। पढ़े-लिखे जब लड़ते हैं तब वह और भी शोचनीय अवस्था होती है, पर रत्नाकरजी कभी किसी से नहीं लड़े। शाही जमाने के रईसों की तरह वे सर्वतोभद्र थे।

साहित्य में श्रृंगार रस के प्रति इन दिनों एक प्रकार का संग्राम चलाया जा रहा है। इस संग्राम का स्वरूप विशेष उचित नहीं कहा जा सकता। आधुनिक कथासाहित्य में जब अप्रत्यक्ष रीति से श्रृंगार की धारा वेगपूर्ण होकर बह रही है और नवीन कविता में भी उसकी मात्रा कम नहीं है तब ब्रजभाषा के आधुनिक सभी कवियों को 'श्रृंगारी' कहकर चिढ़ाने का किसी को क्या अधिकार है। रत्नाकरजी का श्रृंगार रस उनकी अवस्था के साथ अधिकाधिक प्रौढ़ होता जा रहा था और उनके *उद्धव शतक* में तो वह दैव भावना से समन्वित और अधिकांश में पवित्र होकर आया है। रत्नाकरजी दरबारी ढंग पर हिंदी के मुशायरे भी कराया करते थे। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शिष्य मंडली प्रयाग में ब्रजभाषा के प्रति अनुराग बनाए रखने का उपयोगी कार्य कर रही है।

रत्नाकरजी की हिंदी सेवाओं का विशद उल्लेख करने के लिए स्वतंत्र लेखों की आवश्यकता है पर इसके लिए यह उपयुक्त स्थल नहीं। रत्नाकरजी के प्रयाण से हिंदी में जो जगह रिक्त हो गई है उसे बहुत दिनों तक कोई पूरा नहीं कर सकेगा।

(रविवार, 26 जून 1932)

## रंग बदला

सर सेमुएल होर महाशय ने ब्रिटिश सरकार की जिस नई नीति की ताजा घोषणा कल पार्लियामेंट में की उसे जरा बारीकी से देखने की आवश्यकता है क्योंकि घोषणा की शब्दावली में सरकार के उस बदले हुए रंग को छिपाने की कोशिश की गई है और एसोसिएटेड प्रेस की शिमले से भेजी हुई टिप्पणी भी उसी के माकूल बनाई गई है। ब्रिटिश सरकार का यह महत्वपूर्ण नीति-परिवर्तन मौजूदा पार्लियामेंट के रुख का नमूना है और इससे भारत में असंतोष अवश्य बढ़ेगा। सर सेमुएल होर के स्वभाव और उनकी भारत संबंधी नीति से जो अब तक परिचित नहीं हुए हैं उन्हें आर्डिनेंसों के दुबारा जारी करने के विषय की उनकी विज्ञप्ति पढ़नी चाहिए। उसमें आप यह स्वीकार करते हैं कि सत्याग्रह का आंदोलन दबाया जा चुका है और अब आगे का कार्यक्रम सरकार के हाथ में है, न कि कांग्रेस के हाथ में। फिर भी सरकार कोई नया कार्यक्रम नहीं बनाना चाहती। जो लोग यह राय देते रहते हैं कि कांग्रेस और सरकार के इस युद्ध में बीच-बचाव कर दिया जाए, सर सेमुएल होर उन्हें पसंद नहीं करते। वे पूर्ण विजयी बनने का मंसूबा बांधते हैं। उन्हें इस बात की परवाह नहीं कि आर्डिनेंस कितने सख्त हैं और दोहराए जाते हैं, उन्हें तो यह सिद्ध करना है कि राज्य की संघटित शक्ति के सामने भद्रअवज्ञा कदापि सफल नहीं हो सकती। मालूम नहीं यह कितने काल में सिद्ध होगा। सर सेमुएल होर की विज्ञप्ति कहती है कि भारत के दस हजार आदमियों में केवल एक सत्याग्रह में दंडित हुआ है और आर्डिनेंस का वार तो बीस हजार में एक पर ही किया गया है। फिर भी आप ऐसे आर्डिनेंसों की रचना करने में नहीं हिचकते।

विगत मजदूर सरकार ने गोलमेज सम्मेलन की रचना करके भारत और ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों में परस्पर बात करने का अवसर दिया था और सम्मेलन के दो अधिवेशनों में भारत के प्रतिनिधि सम्मानपूर्वक ब्रिटिश प्रतिनिधियों से मिले थे। यद्यपि अनेक कारणों के इकट्ठा हो जाने से उक्त अधिवेशनों को यथोचित सफलता नहीं मिल सकी थी फिर भी विचार विनिमय और सहयोग से अवश्य ही लाभ पहुंचा था। सम्राट की वर्तमान सरकार ने अपनी नई घोषणा में गोलमेज सम्मेलन की इतिश्री कर दी। यद्यपि इस कार्रवाई का कारण यह बतलाया गया है कि इससे विधान के काम में जल्दी होगी और भीड़-भड़ाके का विक्षेप न पड़कर व्यावहारिक रीति से काम होगा। पर ये बातें कहने-सुनने की हैं। सर सेमुएल होर ने यह जाहिर किया कि गोलमेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्मेलन अथवा उसकी संघ विधान कमेटी (Federal Structure Committee) में ऐसे अनेक ब्रिटिश सदस्य हैं जो आजकल पार्लियामेंट में मौजूद नहीं हैं। इसलिए गोलमेज सम्मेलन अथवा संघ विधान कमेटी की अपेक्षा वर्तमान पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के प्रतिनिधियों की कमेटी के साथ भारतीय प्रतिनिधियों का मिलकर सलाह-मशविरा करना अधिक उपयुक्त होगा। इसका दूसरा अर्थ यह है कि मजदूर सरकार ने अपनी नीति के कारण गोलमेज सम्मेलन और उसकी कमेटियों में उस समय पार्लियामेंट के सब दलों के प्रतिनिधि रखे थे, पर वे प्रतिनिधि अब इस योग्य नहीं रह गए कि उनसे बातचीत की जाए। उनमें से अनेक (ये अनेक मजदूर दल के हैं) इस समय पार्लियामेंट में नहीं हैं। इसलिए अब भारत के संबंध में उनके निर्णय का महत्व नहीं माना जाएगा। यह तो पहले से ही कहा जा रहा है कि अब तक की कार्रवाई किसी को किसी प्रस्ताव पर बाध्य नहीं करती इसलिए वर्तमान 'राष्ट्रीय' सरकार को यह अधिकार है कि वह सब किए-कराए पर पानी फेर दे। मजदूर सरकार ने अपनी उदारता के कारण अनुदार दल के सर सेमुएल होर जैसों को भी गोलमेज सम्मेलन में भर्ती कराया था। अब सर सेमुएल होर और उनके सहयोगी अधिकार पद प्राप्त कर मजदूर सदस्यों को बेकार करार देते हैं। कौन कह सकता है कि रंग बदला हुआ नहीं है?

जो नई नीति बरती जाने वाली है उससे विधान का संपूर्ण अधिकार गोलमेज सम्मेलन के हाथ से छूटकर कंसल्टेटिव कमेटी के पास चला जाता है। यह कंसल्टेटिव कमेटी भारत का प्रतिनिधि होने का दावा कदापि नहीं कर सकती। अब जो नया तरीका इस्तेमाल किया जाने वाला है उसके मुताबिक सरकार पहले मजहबी फैसला सुनावेगी जिसमें बहुमत और अल्पमत के अधिकार का निरूपण किया जाएगा। इस वक्त जिस तरह की स्वार्थपूर्ण कार्रवाइयां कुछ मजहबी वर्गों द्वारा की जा रही हैं उसका प्रभाव सरकारी फैसले में नहीं पड़ेगा, ऐसा कहना बहुत कठिन है। सरकार को समझाने के लिए यह कहा जाता है कि क्रांतिकारी दल में हिंदू ही हिंदू हैं। यह भी प्रचार किया जा रहा है कि सत्याग्रह आंदोलन हिंदू आंदोलन है। मुसलमानों की राजभक्ति का प्रमाण देने के लिए बहुत से लोग जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। ऐसे वातावरण में सरकार का सांप्रदायिक निर्णय तभी निष्पक्ष हो सकता है जब प्रत्येक वर्ग की मांगों और प्रस्तावों पर ठंडे दिमाग से विचार किया जाए। जब तक सरकार की यह प्रमुख भावना नहीं बनती कि उसे भारतीयों के हाथ में देश का राज्य सौंपना है तब तक वह सांप्रदायिक प्रश्न पर दूरदर्शिता नहीं दिखा सकती। सरकार के फैसले के बाद कंसल्टेटिव कमेटी और मामलों को तय करने में लग जाएगी। यदि वह कुछ प्रश्नों को तय करने में सफल न होगी तो खंडों में कुछ चुने हुए भारतीयों के साथ बातचीत की जाएगी। पर सवाल यह है कि वह सफल क्यों न होगी? सरकार यदि चाहेगी तो वह सफल हो ही जाएगी। फिर यह निर्णय सरकार के ही हाथ में है कि वह सफल हुई या नहीं हुई। यदि भारतीय जनता की राय में कमेटी की कोई सिफारिश उचित न हो तो भी सरकार की राय में यह उचित हो सकती है और सरकार कमेटी को उस सिफारिश को 'सफल सिफारिश' करार देकर भारतीयों से परामर्श करने का झंझट डाल सकती है। कहने का मतलब यह है कि चुने हुए भारतीयों से विधान संबंधी कुछ थोड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से प्रश्नों पर ही परामर्श किया जाएगा और उन चुने हुए प्रश्नों की तालिका बनाना और उन पर विचार करने के लिए चुने हुए भारतीयों को चुनना यह सब सरकार के हाथ में है। साफ जाहिर है कि विधान के निर्माता का प्रायः संपूर्ण अधिकार गोलमेज से हटकर सीधे सरकार के हाथ में पहुंच गया और कंसल्टेटिव कमेटी केवल सरकार के जादू का मंत्र बन गई।

कंसल्टेटिव कमेटी की सिफारिशें प्रस्ताव बनाकर पार्लियामेंट की संयुक्त कमेटी के सामने रखी जाएंगी। यह पार्लियामेंट की संयुक्त कमेटी अवश्य ही अनुदार दल के प्रतिनिधियों से भरी होगी, तभी वह प्रतिनिधि कमेटी कहला सकेगी। इस संयुक्त कमेटी को यह अधिकार होगा कि वह भारतीय प्रतिनिधियों के साथ 'बराबरी के ओहदे' पर बातचीत कर सके। पर यहां 'बराबरी के ओहदे' का क्या अर्थ है यह कोई नहीं समझ सकता। बराबरी का सवाल ही कहां खड़ा होता है जब सरकार अपने मन के मुताबिक नीति गढ़ रही है? 'बराबरी का ओहदा' भारतीयों का मन समझाने के लिए रख छोड़ा गया है पर इस शिष्टाचार की जरूरत ही क्या है। यह वक्तव्य निकालकर विगत मजदूर सरकार और उसके कुल सम्मानित सदस्यों का अपमान किया गया है। गोलमेज सम्मेलन में अन्य अनेक त्रुटियां थीं, पर उसमें भारतीयों को बहुत कुछ बराबरी का दर्जा दिया गया था और उन्हें प्रत्येक विषय पर सम्मति प्रकट करने का अधिकार प्राप्त हुआ था। यह अधिकार अब छिन गया। अब तो यह सरकार की इच्छा पर निर्भर है कि वह उचित समझे तो कुछ विषयों पर (जिनका चुनाव भी वही करेगी) कुछ भारतीय प्रतिनिधियों की राय ले ले (जिनका चुनाव भी वही करेगी) और न चाहे तो न भी ले। आश्चर्य है कि शिमले से एसोसिएटेड प्रेस यह टिप्पणी करता है कि विज्ञप्ति से राजनीतिक वर्गों में संतोष हुआ है। इसमें संतोष की बात इतनी ही है कि वर्तमान अनुदार सरकार प्रांतीय और केंद्रीय उत्तरदायित्व पर एक साथ निर्णय करेगी। यह एक साथ निर्णय करने का समाचार ही इतना उदार समझा गया कि और सब बातें भुला दी गईं—यहां तक कि यह भी खबर न रही कि निर्णय क्या हो सकता है।

(गुरुवार, 30 जून 1932)

## अब आगे

सम्राट की नई सरकार के नाम से नए भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने भारत संबंधी जिस नई नीति की घोषणा की है उसने भारत का नए सिरे से अपमान करना शुरू किया है—यही नहीं वह तो अपने विलायती पुरखों को भी उल्टे छुरे से मूंड़कर नए गुल खिलाने में लग गई है। मजदूर सरकार और उसके दो स्मरणीय पुरुषों—लार्ड इर्विन और बेजल्डबेन—के स्मरणीय उद्योगों और स्मरणीय वक्तव्यों को स्मृति पटल से मिटाने का यह जो नया उपक्रम किया गया है वह भी स्मरणीय ही है। जिस गोलमेज नीति का उद्घाटन प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने किया था वे आज प्रधानमंत्री के पद पर शुभासीन होकर उसका अंत देख रहे हैं। सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जॉन साइमन के जिस मशहूर सप्तक की स्वरतान भारत के बायकाट के कोलाहल में डुबा दी गई थी, वही सर सेमुएल होर की नई विज्ञप्ति में दुबारा सुनाई जा रही है—सुनना, न सुनना हमारे हाथ में है। पिछली मजदूर सरकार के कार्यकाल में विंस्टन चर्चिल महाशय को जो मानसिक अशांति अनुभव हो रही थी और भारत को स्वराज्य से वंचित रखने के लिए उन्होंने नई-पुरानी दोनों त्रुटियों की खाक छानकर जो कष्ट उठाए थे उसके प्रति सहानुभूति, सम्मान, श्रद्धा सब कुछ सर सेमुएल होर की नई विज्ञप्ति में दिखा दिए गए हैं—जिसे देखने वालों ने ही नहीं, स्वयं चर्चिल साहब ने भी देख लिया है। इस समय ब्रिटिश पार्लियामेंट में सर सेमुएल होर की भारतीय नीति से सुख और संतोष पाने वाले सबसे प्रधान व्यक्ति चर्चिल ही हैं जिन्होंने लार्ड इर्विन के गोलमेज सम्मेलन के आयोजन को और उसके बाद के गांधी-इर्विन समझौते को जो ब्रिटेन के उत्कर्ष को कम करने वाला समझा था, और जो अपनी कार्रवाइयों से गोलमेज को असफल बना देना अथवा भंग कर देना चाहते थे, इस समय ब्रिटिश पार्लियामेंट उन्हीं अनुदार दल वालों के हाथ में है और सर सेमुएल होर की यह नई विज्ञप्ति स्पष्ट ही उसी दल की विज्ञप्ति है।

पिछले दस वर्षों की भारतीय राजनीति का अध्ययन करने वाले सर सेमुएल होर के इस नए ऐलान का अर्थ मजे में समझ सकते हैं। महात्मा गांधी के संरक्षण में जब से असहयोग आंदोलन का श्री गणेश हुआ तब से भारतीय समस्या की ओर ब्रिटेन की दृष्टि विशेष रूप से आकर्षित हुई। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। लार्ड रीडिंग जब यहां के वाइसराय के पद पर थे तब उन्होंने यहां की राष्ट्रीय आंदोलन की शक्ति समझकर समझौते के लिए प्रयत्न किया था और पं. मदन मोहन मालवीय के सहयोग से समझौता-सम्मेलन की तैयारी भी की थी। पर उस बीच में घटनाएं ऐसी घटीं कि सम्मेलन की आवश्यकता नहीं समझी गई और शायद ऐसा समझा गया कि ब्रिटेन के गर्व का झंडा झुकता-झुकता बच गया। इस प्रकार का समझना भी ब्रिटेन के शासन-गर्व का ही प्रमाण था पर उस समय वह गर्व डिगा नहीं बल्कि उसकी रक्षा हो गई। उपरांत सम्राट का शाही कमीशन भेजा गया जिसके प्रधान साइमन साहब थे। यह कमीशन पूर्व में दिए हुए वचन के अनुसार भारत में नए विधान की जांच-पड़ताल करने आया था। उसकी परीक्षा का यह विषय था कि भारत कितना अधिकार प्राप्त करने के योग्य है। परंतु भारत में कमीशन के पैर रखने के पहले ही औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग पेश की जा चुकी थी और राष्ट्रीय भारत की यह भावना दृढ़ हो चुकी थी कि उसे साम्राज्य के अंतर्गत पूर्ण समता और स्वतंत्रता का अधिकार मिलना चाहिए। ऐसी अवस्था में भारत ऐसे किसी कमीशन का स्वागत नहीं कर सकता था जो उसकी योग्यता की जांच करके किश्त-बंदी स्वराज्य की सिफारिश करता और जिसमें कालों को गोरों से निम्न श्रेणी दी जाती। यही कारण है कि शब्दों की बहुत सी माया फैलाकर भी ब्रिटेन भारत का सहयोग न प्राप्त कर सका और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सभी राष्ट्रीय दलों ने साइमन कमीशन का काले झंडों से मातम मनाया और बदले में जो दंड दिया गया उसे झेला।

लार्ड इर्विन उस समय शासन के शीर्ष पर थे। उन्होंने भारतीय वायुमंडल में रहकर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुभव किया कि देश की एकमात्र मांग समता के व्यवहार और समता के अधिकार की है। आश्चर्य नहीं कि वे इस निश्चय पर भी पहुंचे कि इस समय भारत को यदि यह विश्वास हो जाए कि ब्रिटेन उसके साथ समता का संबंध स्थापित करने को तैयार है तो वह स्वराज्य के लिए काफी समय रुका रह सकता है। लार्ड इर्विन की इस अंतर्दृष्टि की प्रशंसा की जानी चाहिए। उन्होंने जो अनुभव किया उसे इतना महत्वपूर्ण समझा कि उसके अनुकूल ही ब्रिटिश सरकार की नीति निर्धारित करने के उद्देश्य से वे विलायत गए और अधिकारियों से बातचीत की। वहीं गोलमेज की कल्पना स्थिर की गई जिसमें अनेक अवगुण हो सकते हैं पर एक गुण अवश्य था उसमें कि भारत और विलायत के प्रतिनिधि बराबरी के आसन पर बैठे। भारत की अशांति की इससे बड़ी दवा उस समय और कुछ नहीं थी। पर लार्ड इर्विन एक समता से दूसरी समता की ओर भी बढ़े और गांधी-इर्विन समझौता किया जो नाम से ही पूर्ण समता की द्योतक है। लार्ड इर्विन की यह सबसे बड़ी सफलता थी। उन्होंने महान ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि होकर समता के जिस उच्च धरातल पर गांधीजी से संधि की वह आध्यात्मिक कोटि की थी। इस अध्यात्म ने ब्रिटिश साम्राज्य का अपार हित किया और ऐसी आशा बंधी कि एक बार फिर से ब्रिटेन और भारत में प्रीति संबंध स्थापित होगा। वास्तव में वैसा हुआ भी। यद्यपि गोलमेज सम्मेलन की रचना और कार्य प्रणाली आदि में कूटनीतिज्ञता, आलस्य, अधिकार, गर्व आदि भाव सन्निहित समझे गए पर सब प्रतिनिधियों की एक साथ एकत्र होकर बैठने और विचार विनिमय की कल्पना ही प्रमुख बनी रही। इसी प्रकार गांधी-इर्विन समझौते के बाद भी यद्यपि दोषारोपण की चार्जशीटें कांग्रेस और सरकार के बीच निकलती रहीं पर गांधी और इर्विन के एक मिलकर संधि करने के शुभ प्रभाव के सामने विग्रह की संपूर्ण भावनाएं दबी रह गईं।

परंतु यह चक्र बहुत दिनों तक न चल सका। समता हृदय की होती है, बातों की नहीं। जब हृदय की समता होती है तब बाहर भी उसके चिह्न दीख पड़ने लगते हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि आप समता का दम भरते रहें और अधिकार का पंजा भी साथ ही मजबूत करते रहे। भारतीयों ने गोलमेज और गांधी-इर्विन पैक्ट में समता के रूप में जो निर्देश देखे थे वे स्थायी न रह सके। लार्ड विलिंग्डन जब वाइसराय बनकर भारत आए तब उन्होंने सबसे पहली बात यह कही कि वे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य का पद प्राप्त करते देखना चाहते हैं और स्वयं नियमित अधिकारों के साथ शासन करना चाहते हैं। लेडी विलिंग्डन ने भी आरंभ से सामाजिक समता का भाव दृढ़ करने और रंग भेद मिटाने के संबंध में कुछ लगाव दिखाया, पर भारतीय राजनीति की प्रगतिशील अवस्था में बातों से ही काम नहीं चल सकता था। ब्रिटिश पार्लियामेंट में अनुदार पंथियों का बोलबाला हुआ और गोलमेज की समस्याएं जटिल होने लगीं। सांप्रदायिक समझौता न हो सका। गोलमेज को भंग करने की चेष्टाएं की गईं। मशहूर 'बेंथल सरकुलर' से बहुत सा रहस्योद्घाटन हुआ। पर उद्घाटन के पहले से ही कार्रवाई शुरू हो चुकी थी। आर्डिनेंसों का राज्य जारी हो चुका था और राष्ट्रीय नेता जेल में डाल दिए गए थे। सारांश यह कि लार्ड इर्विन की समता नीति उलट दी गई और ब्रिटिश सरकार एक बार फिर अपने उन्नत गर्व की प्रतिष्ठा के लिए उत्सुक होने लगी। अंत में उसने अपनी नई नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



घोषित कर दी जिससे विधान संबंधी कार्यक्रम में भारत के प्रतिनिधि, प्रतिनिधि की हैसियत से अपनी सम्मति नहीं दे सकेंगे, केवल निजी तौर पर जरूरी समझा जाएगा तो सलाह-मशविरा ले लिया जाएगा। शब्दों का माया-जाल उसी तरह फिर बिछाया गया है जिस तरह साइमन कमीशन के पधारने के समय बिछाया गया था। पर देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक संयत, विचारशील, अनुभवी, नर्म राष्ट्रीय नेता नई नीति का रहस्य समझ गए हैं। सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर ने मिलकर जो विज्ञप्ति निकाली है वह स्पष्टतः नई नीति का विरोध करती है। श्रीनिवास शास्त्री ने क्षोभ के शब्दों में कहा है कि यह नीति भारत की असहाय अवस्था का सबसे बड़ा प्रमाण है। उन्होंने और श्री चिंतामणि ने शीघ्र ही नई समस्या पर विचार करने और एकत्र होकर अपनी नीति निर्धारित करने का आग्रह किया है। जब यह नई विज्ञप्ति साइमन कमीशन के ही ढंग पर है पर तब उसके साथ वैसा ही बर्ताव क्यों न किया जाए जैसा कमीशन के साथ किया गया था? यही एक प्रश्न इस समय देश के उन समस्त नेताओं और जनता के सामने है जो जेलों के बाहर हैं। जो जेलों में हैं उनके लिए तो आर्डिनेंस आ गया है, जो बाहर हैं उन्हें ही अब आगे का रास्ता तय करना है।

(रविवार, 3 जुलाई 1932)

# दुबारा आर्डिनेंस

पिछली मर्तबा जब सर सेमुएल होर ने बंदियों को कालापानी भेजने के सवाल पर विचार करने का हवाला दिया था तभी समझने वाले यह समझ गए थे कि आर्डिनेंस राज्य का खातमा नहीं होगा, बल्कि दुर्दिन (Emergency) का दौरदौरा कुंभकर्ण के दिन के समान छह महीने ही नहीं उससे भी अधिक काल तक चलता रहेगा। एक बार जब वैध राज्य की जगह इच्छा राज्य का अधिकार मिल गया तब नौकरशाही उसे आसानी से छोड़ नहीं सकती। फौजी कानून को बहुत से विचारक कानून नहीं मानते थे। आर्डिनेंस भी लगभग उसी श्रेणी के कानून हैं। इनके बनाने में भारतीय व्यवस्था-परिषद की कोई राय नहीं ली गई। सन् 1919 के विधान के अनुसार भारत में व्यवस्था-परिषद की स्थापना इस मतलब से की गई थी कि ब्रिटेन भारतीयों को शासन का अधिकार भी न दे और साथ ही जनता के असंतोष को जहां तक संभव हो कम करने के आशय से एक ऐसी संस्था खड़ी कर दे जिससे ऐसा मालूम हो कि देश के राज काज में जनता के प्रतिनिधियों को भी जगह मिलती है। परंतु व्यवस्था परिषद के अधिकारियों के मन मुताबिक ही काम नहीं किया, कभी-कभी अपना स्वतंत्र मत भी प्रकट करने का दुःसाहस दिखाया। फलतः साइमन कमीशन की जांच-पड़ताल करके वह फरमान निकाला जिसमें परिषद का अस्तित्व मेट देने का बंदोबस्त किया गया। यह विस्मयकारी घटना यदि और कुछ नहीं तो इतना तो अवश्य सिद्ध कर सकी कि भारतीयों को स्वराज्य देने के विषय में ब्रिटेन के कम से कम ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के एक प्रमुख वर्ग के कैसे विचार हैं? उसी सन् 1919 के विधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के विधायकों ने यह कल्पना भी कर ली थी कि भारत की व्यवस्था-परिषद सरकारी कारगुजारी में नुक्ताचीनी भी कर सकती है, इसलिए विधान में गवर्नर जनरल को सर्टिफिकेशन के अधिकार समर्पित कर दिए गए ताकि वे वक्त-जरूरत काम आएं। इन अधिकारों में आर्डिनेंस बनाने का अधिकार सबसे विशाल और मार्के का है। दुर्दिन की ही अवस्था में आर्डिनेंस बनाने का अधिकार दिया गया था और कोई आर्डिनेंस छह महीने से अधिक चल भी नहीं सकता था। यदि गवर्नर जनरल यहां तक कहें कि दुर्दिन छह महीने में भी दूर नहीं हुआ तब भी एक बार जारी किए गए आर्डिनेंस छह महीने से अधिक नहीं चल सकते। 1930 में आर्डिनेंस राज्य की स्वयं शक्ति भरपूर व्यवहार में लाई गई और इस वर्ष भी शुरू साल से ही कई आर्डिनेंसों को शासन की बागडोर थमा दी गई। छह महीने बीत गए पर दुर्दिन नहीं बीता। अब पिछली तीन जुलाई से एक भीमकाय आर्डिनेंस छह महीने का समय निगल जाने के लिए मैदान में आ गया है। यह छह महीने तक लगातार जाग्रत रहकर अराजकता का संहार किया करेगा। जब छह महीने बीत जाएंगे तब यह परख की जाएगी कि अभी दुर्दिन समाप्त हुआ या नहीं हुआ। शिमला और लंदन से खुर्दबीन लगाकर, बारीकी से जांच की जाएगी। उस समय यदि कल्पना की गई कि दुर्दिन की कुछ घड़ियां अभी समाप्त होने को बाकी हैं तो मौजूदा आर्डिनेंसों की औलाद पैदा होकर छह महीनों तक फिर दिन-रात एक कर देंगी। इसी प्रकार फिर और शायद फिर ...। यह नहीं मालूम कि इस फिर-फिर में किस तरह दिमाग फिर रहा है।

इस विषय पर सर सेमुएल होर ने पार्लियामेंट में जो बयान दिया उससे वहां के ठोस (अनुदार) दल का विशेष समाधान हुआ है और भारत में भी उसका असर और नाम सरकारी, जीहुजूर क्षेत्रों में कम नहीं पड़ा। सर सेमुएल होर का वचन है कि आर्डिनेंस बहुत ही सफल हुए हैं क्योंकि उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन को दबा रखा है, बल्कि कहीं-कहीं तो आशा से अधिक प्रभाव दिखा दिया है। सर सेमुएल होर के इंडिया ऑफिस के साथियों को यह विश्वास भी हो ही गया होगा कि आर्डिनेंसों के अधिकारों का बेजा उपयोग नहीं किया गया। आर्डिनेंस अवश्य ही लंबे-चौड़े और विशेष शक्तिशाली थे पर राज्य की विराट सत्ता के सामने भद्र अवज्ञा सफल नहीं हो सकती, इसी असाध्य साधन को सिद्ध करने के लिए आर्डिनेंसों की विकट शक्ति आवश्यक थी। ऐसा सर सेमुएल होर का भाष्य है। यही नहीं, आप बड़े मौज और उपेक्षा के-से भाव में कहते हैं कि अभी तक तो दस हजार में एक भारतवासी पर भी मुश्किल से सत्याग्रह करने का दोषारोपण किया गया है और आर्डिनेंस का वार तो बीस हजार में एक पर भी नहीं किया गया। यह हमारे सम्राट के प्रधान भारतमंत्री की उक्ति है। क्या किसी समझदार आदमी को ऐसी इच्छा हो सकती है कि इससे भी अधिक आदमियों को गिरफ्तार किया जाए? सजाएं दी जाएं और लाठियों से खबर ली जाए? ऐसा कौन कह सकता है? होर महाशय ने इस बात पर बड़ी खूबी से जोर दिया है कि व्यवस्थाप्रिय आदमियों की कांग्रेस से रक्षा करने की बड़ी जरूरत है। इस कर्तव्य को बिना डेपूटेशन और प्रार्थना पत्रों के समझ लेने के लिए सर सेमुएल होर की तारीफ की जानी चाहिए पर यह तो सर सेमुएल होर ही कह सकते हैं कि देश के स्थायी कानून जनता के किसी वर्ग की रक्षा करने के लिए पर्याप्त नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं! आपने इस बात पर भी गौर किया कि आर्डिनेंस राज्य के कारण कांग्रेस से संबंध न रखने वाले दलों में भी घोर विरोध छा रहा है, पर गौर कर चुप हो रहे!

सर सेमुएल होर को लड़ाई के मुहाविरे भी मालूम होता है याद हैं और उनके दिमाग में वे चक्कर काटते रहते हैं। उदाहरण के लिए आपने कहा कि जिनका हम मुकाबला कर रहे हैं वे हमारी प्रत्येक कमजोरी पर वार करने से नहीं चूकेंगे। आगे आप बोले कि बहुत से ऐसे हैं जो चाहते हैं कि कांग्रेस और सरकार की लड़ाई में बीच-बचाव हो जाए पर सरकार बराबर की लड़ाई से संतुष्ट नहीं हो सकती। इसके बाद आपने और भी गरम पड़कर कहा कि हम अपनी शक्ति भर प्रत्येक उपाय से काम लेकर अपनी सत्ता के विरुद्ध उठे हुए आंदोलन को दबाएंगे। इस ओजस्वी भाषण में आगे बढ़ते हुए आप यह भी कह उठे कि भारत के बड़े-बड़े वर्ग हमारी नीति का समर्थन ही नहीं करते, यह भी इरशाद करते हैं कि एक बार जो काम (दमन का?) उठाया गया है उसे पूरा ही करके छोड़ना चाहिए, रोज-रोज का झगड़ा लगा रहने देना ठीक नहीं। ठीक ही है, पर कौन जानता है कि वे बड़े-बड़े वर्ग कौन हैं और वे कितने बड़े हैं जो इसी एक शर्त पर सरकार की दोस्ती निर्वहन की प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि कांग्रेस को मटियामेट कर दिया जाए। हम लोगों ने तो सरकारी संरक्षण में निकलने वाले पब्लिसिटी विभाग के अखबारों को छोड़कर और कहीं ऐसे सरकारी 'दोस्त' और बड़े-बड़े वर्गों का नाम नहीं सुना। शायद यह हमारी गलती हो। शायद भारत में ऐसे बहुत से अब भी बाकी हों जो सर सेमुएल होर द्वारा की गई अपमानकारी परिभाषा के अंतर्गत आ जाते हों। विदेश का कोई भी आदमी पूछ सकता है कि दासता से व्याप्त इस देश में औपनिवेशिक स्वराज्य का अधिकार कौन मांगता है? पर सर सेमुएल होर को ऐसे वातावरण में पड़कर अपने को धोखा नहीं देना चाहिए। दमनचक्र के विस्तार से कांग्रेस का आंदोलन मरा नहीं है केवल झुलस-सा गया है। कांग्रेसमैनों का उत्साह भंग नहीं हुआ। अगले छह महीनों में भी इस अवस्था में कोई फरक नहीं पड़ सकता। इस समय यह दुःखी देश क्लेश में पड़ा हुआ है और सर सेमुएल होर मुगल सम्राट की भांति फरमान निकाल रहे हैं। पर इतिहास की आदि से अंत तक यही शिक्षा रही है कि स्वतंत्रता का युद्ध एक बार आरंभ होकर बीच-बीच में पड़ने वाली विघ्न-बाधाओं को पार करता और अंत में सफल होता है।

(गुरुवार, 7 जुलाई 1932)

# यूरोप

यूरोप में इस समय सम्मेलनों का तांता लगा हुआ है। किसी का उद्देश्य निरस्त्रीकरण कहा जाता है, किसी का उद्देश्य अर्थकष्ट-निवारण। ब्रिटेन अपनी तरफ से ब्रिटिश साम्राज्य का सम्मेलन ओटावा में करा रहा है। राजनीति के विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न यूरोपीय राष्ट्रों की कूटनीति देखने में काफी दिमाग खपाना पड़ता है। अमेरिका के प्रेसीडेंट हूबर ने निरस्त्रीकरण के विषय में यह महत्वपूर्ण घोषणा की है कि यूरोप को अपना सैन्य व्यय कम से कम दस प्रतिशत कम कर देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चाहिए। यूरोप के भिन्न-भिन्न राष्ट्र अमेरिका का कर्ज लिये हुए हैं और वे कर्ज में माफी या मुहलत मांगते हैं। अमेरिका यदि मुहलत दे सकता है तो उसके पंहले ऐसा प्रबंध कर लेना चाहता है जिससे यूरोप अब की तरह दिवालिया ही न बना रहे बल्कि कुछ संचय करे और कर्ज चुकाए। इस दृष्टि से प्रेसीडेंट हूबर की घोषणा न केवल उपयोगी है बल्कि अधिकारपूर्ण भी है। उससे यूरोप का हित हो सकता है और अमेरिका को भी उसके रुपए मिल सकते हैं। परंतु यूरोपीय राष्ट्रों की नीति सेना कम करने की नहीं दीख पड़ती। फ्रांस शांति की जमानत मांगता है, गारंटी कराना चाहता है। वह अपना सैन्यबल बढ़ा चुका है और उसकी आर्थिक अवस्था भी यूरोप भर में अच्छी है। वह एक ओर अमेरिका का कर्ज हड़प लेना चाहता है दूसरी ओर, जर्मनी से हरजाने की रकम भी वसूल करना चाहता है। फिर वह सेना घटाने को भी तैयार नहीं। जर्मनी ने अपने को हर्जाना देने में अयोग्य सिद्ध कर दिया है। अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ इस बात के साक्षी हैं। इस पर फ्रांस ने इंग्लैंड से सलाह कर जर्मनी से कुछ समय बाद एकमुश्त एक बड़ी रकम अदा करने को कहा है। जर्मनी अब तक ना ही खींचता जाता है। यदि इस विषय में समझौता हो भी जाएगा तो भी अमेरिका को कर्ज अदा करने का सवाल हल होने की संभावना कम ही है क्योंकि अमेरिका के प्रेसीडेंट हूबर की शस्त्र घटाने की शर्त को मानने के लिए फ्रांस आदि तैयार नहीं दीख पड़ते।

यदि लूसेन सम्मेलन सफल न हुआ तो ब्रिटेन ओटावा में साम्राज्य सम्मेलन करेगा। ओटावा सम्मेलन का उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य के सब देश एक-दूसरे की वस्तुएं खरीदने को प्रेरित किए जाएं और साम्राज्य के बाहर की वस्तुओं में अधिक टैक्स लगाकर उन्हें रोक दिया जाए। इस संबंध में हम *भारत* में कई लेख प्रकाशित कर चुके हैं जिनसे यह स्पष्ट होने में सहायता मिलती है कि ओटावा सम्मेलन अंतर्राष्ट्रीय अर्थकष्ट निवारण के उपाय के विरुद्ध पड़ता है। दूसरी बात यह भी मालूम होती है कि ओटावा सम्मेलन में भारत को फायदे के बनिस्पत हानि ही अधिक है। भारत कुछ ब्रिटेन को ही अपना माल नहीं भेजता। यह एक-चौथाई अन्य देशों में भी भेजता है। इसके विपरीत भारत में आने वाले माल का आधा हिस्सा ब्रिटेन से आता है, सिर्फ आधा अन्य देशों से। आयात और निर्यात के इस अनुपात के कारण, यदि ओटावा में संरक्षण की दीवाल खड़ी कर दी जाएगी तो ब्रिटेन को अधिक लाभ पहुंचेगा और भारत को घाटा उठाना पड़ेगा। भारतीय डेलीगेटों के प्रधान सर अतुल चटर्जी ने यह कहा है कि भारत को ओटावा में पहले अपना हित देखना है, पीछे साम्राज्य का। वे इस काम को कठिन बता चुके हैं। देखना है, अब मुश्किल किस तरह आसानी होती है।

## इंदौर पत्रकार सम्मेलन

इस पत्रकार सम्मेलन की योजना और उद्देश्य के विषय में हमारा अग्रलेख प्रकाशित हो चुका है। प्रसन्नता की बात है कि इंदौर की अस्थायी समिति के सदस्यों ने हमारे विचारों को पसंद किया और तदनुसार कार्य करने की भी इच्छा रखते हैं। यह कार्य बहुत अधिक गुरु गंभीर है और दो-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संपादकों के मान का नहीं है। यह सबको समझ लेना चाहिए। दो-चार संपादक मिलकर जब चाहें सम्मेलन कर लें पर यदि सामूहिक रूप से पत्रकार मंडल को एकत्र होकर किसी कार्य के लिए परामर्श करने की आवश्यकता है तो हिंदी-संपादन-क्षेत्र में उस प्रकार का परिवर्तन करने के लिए तैयार रहना चाहिए जिसकी रूपरेखा हम पिछले लेख में खींच चुके हैं। अस्थायी समिति की विज्ञप्ति में भी इस बात की शिकायत की गई थी कि हमारे हिंदी के संपादक आज तक देश के किसी महत्वपूर्ण समझौते या परामर्श के काम में बुलाए नहीं गए, न उनकी राय ली गई। शिकायत ठीक है पर हमें सोचना चाहिए कि हमारे बीच कौन से ऐसे पत्रकार हैं जो देशव्यापी ख्याति रखते हैं। किनकी प्रतिभा इतनी प्रचंड है जिसके सामने सारा देश नत-मस्तक हो? प्रतिभा तो जाने दीजिए कितने पत्रकार हैं जो सरकारी क्षेत्रों में प्रवेश पा सकते हैं या जनता का नेतृत्व कर सकते हैं। इस समय शक्ति के दो केंद्र बिंदु हैं शासक और शासित, सत्ता और जनता। इन दोनों में हिंदी पत्रकार किसी शक्ति को समेट सके हैं? सरकार की नहीं। सरकार की भाषा उनमें से कम को ही आती है और भाषण की शक्ति तो और भी कम को है। तब क्या जनता की शक्ति उनके पीछे है? वह भी नहीं के बराबर है। उसका कारण यह है कि हिंदी के पत्र अंग्रेजी की नकल उतारकर उनके अनुयायी बनते हैं। उनका कोई स्वतंत्र उद्देश्य नहीं है, कोई अलग क्षेत्र नहीं है। अंग्रेजी के पत्र जो कुछ आज कहते हैं हिंदी वाले वही कल कहते हैं। ऐसी अवस्था में पत्रकारों का सम्मान किस प्रकार हो सकता है। सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी पत्रकार समाज में जो वास्तविक विचारशील और पंडित संपादक हों वे एकत्र होकर इस समस्या पर बातचीत करें। जब तक हिंदी समाचारपत्रों का क्षेत्र अंग्रेजी पत्रों से भिन्न नहीं बनता तब तक सुविधाओं के कारण वे हमसे अवश्य आगे रहेंगे। अगर अंग्रेजी पत्रों ने शहरों पर कब्जा कर रखा है तो क्यों न हिंदी पत्र देहातों पर कब्जा करें। देहातों में तो शहरों से कई गुना आदमी बसते हैं। हम क्यों नहीं उनकी शक्ति को अपनी शक्ति बनाते। क्या हम एक ऐसा व्यावहारिक कार्यक्रम नहीं तैयार कर सकते जिससे अपने स्वतंत्र अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध कर सकें। आज नहीं तो कल हमारा प्रचार बढ़ेगा—क्यों न वह देहातों में ही बढ़ाया जाए? भारत में ऐसा समय आ रहा है जब देहातों को उनका अधिकार प्राप्त होगा। वह समय जरूर आवेगा जब देहात का एक आदमी शहर के एक आदमी के बराबर माना जाएगा—आज की तरह शहरों की तूती बहुत दिन नहीं बोलती रहेगी। हमें चाहिए कि हम उसी दिन की तैयारी में आज से ही लग जाएं। हिंदी पत्रकार मंडल अभी से देहातों को अपनी सेवा के पाश में बांध ले तो यह उसकी दूरदर्शिता है। देश, व्यापार, समझौते और परामर्श में शरीक होने की स्पृहा इसी सेवा भाव से सिद्ध हो सकेगी।

## ग्वालियर लाठी चार्ज

अब तक राजनीतिक क्षेत्रों में ही लाठी चार्ज का प्रचार था अब हिंदी साहित्य सम्मेलन में भी लाठी चार्ज होने लगा। पिछले दिन समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ कि ग्वालियर में कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महानुभावों को साहित्य सम्मेलन संबंधी एक बैठक में लाठी चार्ज का शिकार होना पड़ा। इस संबंध की विस्तृत रिपोर्ट हमारे इसी अंक में जा रही है। ग्वालियर में इसी वर्ष हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन होने वाला है। उसके लिए स्वागत समिति का संघटन करने का झगड़ा महीनों से चल रहा है। जहां तक संवादों से पता चलता है, ग्वालियर के कुछ अधिकारी जिनका हिंदी साहित्य से क्या ताल्लुक है यह हम नहीं जानते, स्वागत समिति के कर्णधार बन गए। इसका जब विरोध किया गया तब कर्णधार लोगों ने भी विरोध किया। खबर प्रयाग के साहित्य सम्मेलन तक पहुंची। सम्मेलन के मंत्री की सिफारिश के मुताबिक ग्वालियर में दुबारा चुनाव का प्रबंध किया गया जिसमें लाठियों द्वारा चार्ज किया गया। हमारे संवाददाता के लिखे अनुसार यह चार्ज किराए पर भर्ती किए गए आदमियों द्वारा किया गया जो पहले ही से साहित्यिकों के विरुद्ध इकट्ठे किए गए थे। इस मौके पर हम प्रयाग साहित्य सम्मेलन से यह दरियाफ्त करना चाहते हैं कि ग्वालियर में सम्मेलन का अधिवेशन करने की स्वीकृति क्यों दी गई? रुपयों के लालच से या किसी प्रयोजन से? किस आदमी ने साहित्य सम्मेलन को ग्वालियर बुलाया था—किसी साहित्यिक ने या सरकारी अहलकार ने? क्या सम्मेलन के स्थायी नियमों में ऐसा कोई नियम नहीं है कि स्वागतकारिणी के प्रधान ओहदेदार साहित्य सेवी ही हो सकते हैं? नहीं है, तो क्यों नहीं? जब सम्मेलन के प्रधानमंत्री को ग्वालियर में होने वाले झगड़ों की खबर समाचारपत्रों द्वारा लगी तब उन्होंने क्या यह नहीं समझा कि साहित्य सेवियों के प्रति अन्याय किया जा रहा है और संभव है, अत्याचार भी किया जाए? सम्मेलन को रुपयों की अधिक फिक्र है या अन्याय और अत्याचार की? जब अंत में सम्मेलन के सामने रोना रोया गया तब सम्मेलन ने यह हुकुम निकाला कि फिर से चुनाव हो। सम्मेलन के अधिकारियों ने क्या इस बात की कल्पना नहीं की कि नए चुनाव होने में इस प्रकार का खतरा है जिस प्रकार लाठी चार्ज द्वारा सामने आया। साहित्य सम्मेलन ने अपने नाम को सार्थक करते हुए किस एक प्वाइंट पर साहित्यिकों से सहानुभति दिखाई? दुःख है कि नए प्रधानमंत्री राष्ट्रीय विचारों के आदमी कहे जाते हैं पर इस बात की कल्पना नहीं कर सके। इस प्रकार के झगड़ों में सत्ताधारी सदैव अत्याचार करते हैं। क्या सम्मेलन उन लोगों की क्षतिपूर्ति का कुछ प्रबंध करेगा जो अपमानित हुए हैं और जिन्होंने चोट खाई है? या पूर्व निश्चय के अनुसार ग्वालियर में ही सम्मेलन होगा और वहां के अधिकारी ही अध्वर्यु बनेंगे और संचालन के लिए जो कुछ लेना है उसे लेकर फिर साल भर के लिए छुट्टी!

## 'प्रसाद' 'निराला' 'पंत' (कुछ विकास रेखाएं)—1

नवीन युग की हिंदी कविता की बृहत्त्रयी के रूप में बाबू जयशंकर प्रसाद, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और पं. सुमित्रानंदन पंत की प्रतिष्ठा मानी जाती है। उनसे पीछे के कवियों में कतिपय ऐसे हैं जो उनकी स्पर्द्धा करते हैं और पूर्ववर्ती कवियों में भी दो-एक अपने रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विषय को उनकी पंक्ति में रखकर खड़े हुए हैं, परंतु परवर्तियों की स्पर्द्धा अब तक सफल नहीं समझी गई और पूर्ववर्तियों का प्रयास भी भाषा और भाव के क्षेत्रों में अधिकतर अनुकरण ही माना गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार की समझ कहां तक ठीक है, पर यह तो निश्चय है कि उपर्युक्त बृहत्त्रयी, ऐतिहासिक दृष्टि से, हिंदी काव्य में युगांतर उपस्थित करने वाली है। यह कविता के अंतरंग और बाह्यांगों की मौखिक सृष्टि करके साहित्य समाज के सामने आई। इनमें भी ऐतिहासिक दृष्टि से बाबू जयशंकर प्रसाद का कार्य सबसे अधिक विशेषता समन्वित है। उन्होंने कविता विषय को सबसे प्रथम रसमय बनाया। उनके पूर्व के हिंदी कवि, प्राचीन शृंगारी कवियों के शृंगार से इतना भयभीत से हो गए थे कि वे उसे स्पर्श करने में ही संकोच मानने लगे थे। काव्य में मधुर भावों का प्रवेश सशंक दृष्टि से देखा जा रहा था, जिसके कारण कविता के प्रति आकर्षण की कमी हो रही थी। समालोचकों ने लिखा है कि आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी पर मराठी भाषा का प्रभाव था और मराठी की पदावली स्वभावतः कर्कश थी। उनका कथन है कि द्विवेदीजी तत्कालीन हिंदी कविता के अध्वर्यु थे इसलिए मराठी की उक्त कर्कश पदावली हिंदी में भी आ गई। परंतु इस प्रकार के आरोप विशेष संगत नहीं समझ पड़ते। आचार्य द्विवेदीजी पर मराठी से कहीं अधिक संस्कृत का प्रभाव था और वे हिंदी के नेता होते हुए भी कविता के डिक्टेटर उस अर्थ में नहीं बने जिस अर्थ में मुसोलिनी इटली का डिक्टेटर है। इसलिए ऐसा कहना कदाचित् भ्रमपूर्ण होगा कि मराठी के प्रभाव और हिंदी में द्विवेदीजी के नेतृत्व के कारण नीरसता का प्रसार हो रहा था। यह कहना भी प्रमाद है कि हिंदी की तत्कालीन कर्कशता खड़ीबोली के व्यवहार के कारण थी। यदि थोड़ा-सा ध्यान देकर देखा जाए तो समझ में आ जाएगा कि खड़ीबोली का व्यवहार, मराठी का प्रभाव आदि हिंदी की तत्कालीन कठोरता के कारण नहीं थे वरन् वे स्वयं लक्षण थे, जिनका कारण तत्कालीन वातावरण में ढूंढ़ना चाहिए।

एक कारण का उल्लेख हम कर चुके हैं कि हिंदी के द्विवेदी युग के साहित्यकों को शृंगार कविता के प्रति स्वभाव सिद्ध शंका रहती थी। उस समय की यत्किंचित शृंगारोन्मुख रचनाएं देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कविगण कितना भयभीत होकर फूंक-फूंक कर कदम रखते थे। अभी उस दिन हम *कविता-कलाप* नाम का आचार्य द्विवेदीजी कृत संग्रह देख रहे थे जिसमें 'महाश्वेता' आदि कितने ही स्त्री-चित्रों पर कविताएं लिखी गई हैं। हमने देखा कि सर्वत्र संकोच के कारण कविताएं त्रुटिपूर्ण हो गई हैं। आश्चर्य तो यह कि कवियों ने शृंगार विषय को काव्यवस्तु बनाने की प्रवृत्ति ही क्यों दिखाई ? शायद वह प्रवृत्ति मनुष्यता की अनिवार्य मांग है। जब वह अनिवार्य है तो शृंगार यदि विष भी हो तो भी उसे शोध कर गुणकारी बनाना चाहिए था। वह गुणकारी किस प्रकार बन सकता है इसकी विधि द्विवेदी काल के साहित्य-सेवियों को निश्चयपूर्वक मालूम न थी। स्मरण रखना चाहिए कि वह ऋषि दयानंद के आर्यसमाज का युग था जिसकी विशेषता संघर्ष बतलाई जाती है। चित्रकला में रवि वर्मा उस काल के प्रतिनिधि थे। उनकी भी रुखाई हम लोगों को मालूम ही है। उस समय लोग घर में लड़ाई करके बाहर देशप्रेम जताने में गौरव का अनुभव करते थे। स्वदेश प्रेम की कविता लिखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी अमनसभा का सदस्य होना कुछ अस्वाभाविक काम नहीं समझा जाता था—ऐसी कृत्रिमता थी। बहुत से कवि जीवन के व्यापक क्षेत्र से हटकर डिप्टी कलेक्टरों और तहसीलदारों को 'जुग-जुग जिलाने' में लगे हुए थे। ऐसी परिस्थिति में जब कभी कविगण अपने हृदय की टोह लगाते होंगे तब अपनी रचनाओं में एक अपूर्णता और अतृप्ति का अनुभव अवश्य करते होंगे। शायद यही अनुभव कर वे प्राचीन रसमय संस्कृत काव्यों का अनुवाद करने को प्रेरित हुए होंगे। पं. श्रीधर पाठक ने इसी समय के लगभग कुछ अंग्रेजी कविताएं पढ़ीं और हिंदी में उन्हें उद्धृत किया। परंतु अनुवाद तो अंत में अनुवाद ही है।

एक और बात भी ध्यान देने लायक है। ब्रजभाषा में उस समय शृंगारिक समस्यापूर्तियां हो रही थीं जिनके विरुद्ध खड़ीबोली में एक आंदोलन ही चल उठा था। उधर उन लोगों ने शृंगार के अतिरिक्त सब कुछ अस्पृश्य समझ लिया था। इधर इन लोगों ने शृंगार को ही अस्पृश्य समझ लिया। वे लोग प्राचीनतावादी हो गए, ये लोग नवीनतावादी। उन लोगों को यह शऊर नहीं था कि शृंगार का संस्कार करते, इन लोगों को शृंगार नाम से ही इतनी चिढ़ हो गई कि उसके संस्कार की कल्पना भी न कर सके। एक प्रकार का द्वंद्व युद्ध चल रहा था जिसमें विवेक का प्रायः दोनों ओर से अभाव था। तथापि नवीन नवीन ही है और प्राचीन प्राचीन ही। सामयिकता की ओर प्रायः सबकी रुचि होती है। द्विवेदीयुग अपनी नवीनता के कारण सम्मानित हुआ। नवीन युग का उत्साह नवीन कविता में अवश्य देखा गया, पर जीवन के अंतरंग को स्पर्श करने वाली व्यापक काव्यसृष्टि कम ही हो सकी।

एक चौथी बात और है। हिंदी में द्विवेदी युग गद्य के अभ्युदय का युग था। विचारों का प्रकाश जितना गद्य में प्रकट होता है उतना पद्य में कठिनाई से हो सकता है। समूह की भाषा गद्य की ही हो सकती है और उस समय समूह की भाषा की आवश्यकता थी। काव्य के द्वारा तर्क नहीं किया जा सकता, पर उस समय लोग तर्क पसंद करते थे। अभ्युदयशील जनतावाद के युग में पद्य की अपेक्षा गद्य का अधिक प्रयोग किया जाना स्वाभाविक ही है, किया भी गया। सिद्धांतों की चर्चा के लिए, साधारण विचार व्यक्त करने के लिए, वक्तृताओं के लिए गद्य का सभी लोग प्रश्रय लेते हैं, उस युग के भी साहित्यिकों ने लिया। आचार्य द्विवेदीजी की अधिकांश प्रतिभा गद्यशैली की स्थापना में ही व्यय हुई। छंद की ओर उतना ध्यान नहीं रहा जितना व्याकरण की ओर। काव्य-संगीत को छोड़कर साहित्यिकों ने गद्य प्रवाह का पल्ला पकड़ा। कोई नहीं कह सकता कि वे अपने कार्य में असफल हुए। कुछ ही वर्षों के प्रयास से उन्होंने हिंदी में गद्यशैली की एक ऐसी दृढ़ स्थापना कर दी जिसका लोहा अब भी माना जाता है। कविता के क्षेत्र में द्विवेदी युग का अतिक्रमण किया जा चुका है। विचारों की दुनिया भी आगे बढ़ चुकी है, पर गद्यशैली तो उसी युग की अब भी चल रही है। आज भी आचार्य द्विवेदीजी गद्य के सबसे बड़े शैलीकार माने जाते हैं। जिस प्रकार काव्य में खड़ीबोली का प्रयोग सामयिक वातावरण का एक लक्षण मात्र था, उसी प्रकार गद्य का विकास भी। उसी वातावरण में रवि वर्मा के चित्रों का सार्वदेशिक सम्मान हो रहा था। उस वातावरण को हम एक प्रकार का सामूहिक पवित्रतावादी, नवोत्साहपूर्ण वातावरण कह सकते हैं, जिसमें कृत्रिमता की छाप भी देखी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सब लोगों को इस प्रकार का वातावरण रुचिकर नहीं होता। यदि कुछ लोग सिद्धांत निरूपण और तर्क पसंद करते हैं तो सब लोग नहीं कर सकते। गद्य का चमत्कार उन्हीं के कानों में संगीत से बढ़कर आनंद उत्पन्न कर सकता है जिनकी वैसी अभिरुचि हो। बहुत से ऐसे आदमी मिलेंगे जो पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी के गद्य सौंदर्य को सुमित्रानंदन पंत के छंदों से अधिक पसंद करें, पर बहुत से नहीं भी मिलेंगे। *कविता-कलाप* की रचनाएं तो आज बहुत ही कम रुचिकर लगेंगी, उसकी शृंगार संबंधी कविताएं तो निम्न कोटि की समझी जाएंगी। उनमें कवियों का हृदय कहीं से खुला ही नहीं जैसे वे गाढ़े धुएं में सांस ले रहे हों। जिन्होंने रवींद्रनाथ की *उर्वशी* पढ़ी है फिर *कविता-कलाप* की 'तिलोत्तमा' आदि का वर्णन पढ़ा है वे यह समझ लेंगे कि द्विवेदीयुग का वातावरण कविता के लिए कितना अनुपयोगी था। यदि काव्य के लिए अनुपयोगी न होता तो शायद इतने अल्प समय में गद्य की इतनी सुंदर प्रतिमा खड़ी न की जा सकती। कविता के लिए अनुपयोगी हो तो भी हिंदी के लिए यह सुयोग ही था।

उस समय की प्रचलित कविता की दिशा बदलने में अग्रणी बाबू जयशंकर प्रसाद ही ठहरते हैं। पं. श्रीधर पाठक की अनुवादित कृतियों के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएं 'प्रसादजी' के पहले की नहीं हैं। पं. रामचंद्र शुक्ल का *बुद्धचरित* भी अनुवाद ही है। इनके अतिरिक्त और कोई कवि उस समय हिंदी के क्षेत्र में नहीं दिखाई देता जो काव्य के व्यापक रहस्य को समझता हो। बाबू जयशंकर प्रसाद ने काव्य के लिए परम आवश्यक माधुर्य भाव की सृष्टि प्राकृतिक वर्णनों द्वारा आरंभ की। *चित्राधार* की उनकी उस काल की कविताएं लोगों को अनोखी लगी होंगी।

(रविवार, 10 जुलाई 1932)

## असहयोग

विश्वास की भी एक हद होती है। कोई आदमी अथवा आदमियों का समाज कितने ही नर्म और ठंडे विचारों का क्यों न हो बिलकुल ही नामर्द नहीं होता। भारत का उदार दल जो स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के मत से अलग होने के कारण, उसी समय से नर्मदल कहला रहा है, आखिर विद्वान राजनीतिज्ञों की ही एक मंडली है। गर्म और नर्म तो तुलनासूचक शब्द हैं। जो एक देश और एक काल के लिए नर्म है वही दूसरे के लिए टेढ़ा होता है। भारत की ठंडक भी अंग्रेजों के लिए गर्म ही साबित होती है और विलायत की गर्मी तो भारत की सर्दी से भी अधिक सर्द है। लोकमान्य तिलक का गर्म दल यदि उतना ही तापमान लिये रहता तो आज की भारतीय राजनीति में गर्म न कहला सकता—ठंडा ही कहा जाता। आजकल तो कांग्रेस के ऐसे नेता जैसे महात्मा गांधी नर्म कहे जाने लगे हैं और विट्ठलभाई पटेल, सुभाषचंद्र बोस जैसे कांग्रेसमैन उनकी तुलना में गर्म कहे जाते हैं। मजदूरों और क्रांतिकारियों के ऐसे दल भी भारत में उत्पन्न हो गए हैं जो यह कहने में संकोच नहीं करते कि पूरी की पूरी कांग्रेस मध्य श्रेणी के लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की संस्था है जो पूंजीपतियों का हितसाधन करती है और अधिकार पाने पर और भी करेगी। कहने का मतलब यह कि न कोई नर्म है, न गर्म है सब समय-समय की बात है। जो कोई यह विश्वास करके आंखें मूंदे रहे कि जो नर्मदल कहा जाता है वह ज्यों का त्यों पूंछ हिलाकर बंदगी बजाता रहेगा और नर्मी साबित करता रहेगा उसे आंखें धो डालनी चाहिए। साबित करने से कुछ सावित नहीं होता। समय सब कुछ कराता है। बातों से कुछ नहीं बनता, काम से बनता है। ये सब बातें ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को उसी समय समझ लेनी चाहिए थी जिस समय लार्ड बर्केन हेड ने साइमन सप्तक का गोरा कमीशन भारत में विधान बख्शीश करने के लिए भेजा था। पर यहां के नर्म से नर्म नेताओं ने उनको गर्म अतिथि सत्कार का परिचय दिया था और बदले में जो कुछ प्रसाद मिला उसे झेल लिया था। साइमन कमीशन का प्रायश्चित ब्रिटिश सरकार को गोलमेज सम्मेलन द्वारा करना पड़ा। अब देखना है कि सर सेमुएल होर की नई घोषणा का प्रायश्चित किस रूप में करना पड़ता है। दुनिया तो आगे ही बढ़ रही है।

भारत के उदारदल के नेताओं की सचमुच यह उदारता ही कही जाएगी कि उन्होंने कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए विधान के काम में योग दिया। यह उदारता उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति दिखाई पर ब्रिटेन इस उदारता का मूल्य न समझ सका। जरा खयाल करने की बात है कि जब महात्मा गांधी दूसरे गोलमेज सम्मेलन से भारत लौटे तब माडरेट नेताओं का प्रबल विरोध करने पर भी वे जेल में डाल दिए गए। क्या इस कार्रवाई से माडरेट प्रसन्न हुए थे अथवा क्या इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी? क्या इससे विधान के काम में मदद मिली थी? माडरेट नेताओं की प्रत्येक सिफारिश अमान्य कर उस समय सरकार ने गांधीजी को जेल भेजने, आर्डिनेंसों का तांता जारी करने, कठोर दमनचक्र का प्रयोग करने आदि की जो-जो कार्रवाई कीं, उसके विरोध में उसी समय माडरेट नेता असहयोग कर देते तो क्या यह उनका कोई नैतिक अपराध होता? परंतु यह उनकी नीति नहीं थी। उन्होंने वैसा नहीं किया। उनमें से बहुतों का यह विश्वास हो गया था और कुछ ने इस विश्वास को प्रकट भी किया था कि महात्माजी की गिरफ्तारी और आर्डिनेंस राज्य का आरंभ ब्रिटिश पार्लियामेंट के बदले हुए रुख को प्रकट करते हैं परंतु उन्होंने यह भी बर्दाश्त किया और अपना रुख नहीं बदला। यह ब्रिटेन के प्रति उनकी उदारता थी कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत विचारों और प्रतिष्ठा तक को ताक में रखकर विधान के काम में मदद पहुंचाई है। जिस समय माडरेट नेताओं के अनेक कांग्रेसी परिचित, मित्र और बंधु लाठियों का प्रहार और जेलों का उपहार पा रहे थे उस समय वे सरकारी कमेटियों में काम कर रहे थे। क्या यह उनकी सहनशीलता नहीं थी? इस सहनशीलता को बहुतों ने नामर्दी और देशद्रोह तक बताया पर ब्रिटेन और भारत के संबंध को स्थायी बनाने की आशा में यह सब अपवाद भी सहन किया गया। पर ब्रिटिश सरकार ने इस उदारभाव का क्या आदर किया? लगातार छह महीनों तक पुकार करते-करते लिबरल थक गए और आज आर्डिनेंस राज्य फिर छह महीने के लिए जारी हो गया है। कांग्रेस के साथ मेलजोल करने के लिए इन उदारदली नेताओं ने तरह-तरह से सिर खपाया पर आज सरकार की ओर से सर सेमुएल होर का यह वचन सुन पड़ा कि कांग्रेस के साथ बराबरी की लड़ाई लड़ने में उन्हें संतोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं है, वे उसे कुचलकर ही संतुष्ट होंगे। कांग्रेस और नर्मदल में विचारों का साम्य एक बड़े हद तक है। दोनों ही राष्ट्रीय दृष्टि से प्रायः एक ही लक्ष्य रखते हैं जिसे माडरेट औपनिवेशिक स्वराज्य कहते हैं और कांग्रेस महात्मा गांधी के शब्दों में 'स्वतंत्रता का सार' कहती है। दोनों ही तत्काल इसकी स्थापना के लिए जोर दे रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि दोनों ही एक देश की संस्थाएं हैं और एक के बंधु-बांधव दूसरे में सम्मिलित हैं। इतना होते हुए भी मारडेट दल अपनी नीति से विचलित न होकर कांग्रेस से अलग ही रहा।

केवल गोलमेज सम्मेलन ही एक ऐसा सूत्र था जिससे बंधकर माडरेट नेता विधान बनाने के काम में सरकार का साथ दे रहे थे पर सर सेमुएल होर की नई घोषणा से वह सूत्र भी टूट गया। अब इस दल को किसका अवलंब है? मान लीजिए यह दल देश के साथ विश्वासघात ही करके सरकार का साथ देता रहा हो और अब भी वैसा ही करना चाहे तो किस प्रकार कर सकता है? आखिर उसकी एक नीति तो है ही। आखिर पिछले अनेक वर्षों में उसने कुछ हाथ-पैर तो हिलाया ही है और जुबान भी खोली ही है। वे सब रिकार्ड में हैं। नर्मदल के नेताओं ने उन दिनों साइमन-कमीशन के विरुद्ध देश भर में सभाएं करके जो भाषण किए थे और जो प्रदर्शन किए थे वे लोगों को याद ही हैं। वे अखबारों में भी छपे हुए हैं। अब उसे कौन मिटा सकता है? इतिहास को तो कोई बदल नहीं सकता। गोलमेज सम्मेलन करने की प्रतिज्ञा करने पर लिबरलों ने सरकार से संधि की थी। जब गोलमेज के प्रतिनिधि नामजद किए गए थे तब माडरेट नेताओं ने अनुचित निर्वाचन का विरोध किया था। जब गोलमेज सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन में एक बार अनुदार दलों के ब्रिटिश लीगेटों ने सम्मेलन का खात्मा करने का षड्यंत्र रचा था तब भी माडरेटों ने खतरे की घंटी बजाई थी। क्या सरकार उसको भूल गई? हाल में जब 'बेंथल सरकुलर' का आविष्कार हुआ था तब माडरेटों ने सरकार को फटकारा था कि वह ऐसी भेद नीति से काम ले रही है जिससे गोलमेज सफल नहीं हो सकता? सरकार को यह फटकार क्या सुन पड़ी? इधर माडरेट नेता बराबर सांप्रदायिक मुस्लिमों की उस प्रपंच नीति का विरोध कर रहे थे जिसका आभास लंदन में सर आगा खां के हस्ताक्षर के निकले हुए *टाइम्स* पत्र में प्रकाशित एक पत्र से मिलता है। अभी उस दिन सर तेजबहादुर सप्रू ने डॉक्टर शफात अहमद खां के इस प्रस्ताव का विरोध *टाइम्स* में छपाया था कि प्रांतीय अधिकार पहले दिए जाएं और समय आने पर केंद्रीय अधिकारों पर विचार किया जाए। सारांश यह कि जब से गोलमेज सम्मेलन का आरंभ हुआ तब से माडरेट नेता स्पष्ट रीति से विधान के काम में तत्परता दिखा रहे हैं और अपने तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य के ध्येय के मुताबिक उन तमाम कपटाचरणों की पोल खोल रहे हैं जो उस ध्येय की प्राप्ति में बाधा डालने वाले हैं। पर सरकार ने उस समय उनके प्रति कुछ ध्यान नहीं दिया और अब तो खुल्लमखुल्ला अपना इरादा प्रकट कर दिया है।

जब सरकार अपने ही प्रतिष्ठित पुरुषों, अधिकारियों और प्रधानमंत्री तक के द्वारा दिए गए वचनों और की गई प्रतिज्ञाओं को तोड़कर फेंक सकती है तब उस पर विश्वास कैसे रह सकता है। उसे क्या जरूरत है कि वह माडरेट दल को अपना मित्र समझकर उसकी बातों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर विचार करे? उसकी यह जिम्मेदारी नहीं है कि वह माडरेटों की उदारता-उपकार का बदला चुकाए और ऐसी परिस्थिति न उत्पन्न होने दे जिससे माडरेट अपनी सहयोग नीति का त्याग कर दें। जब सर सेमुएल होर कांग्रेस को कुचल डालने का इरादा रखते हैं और भारत से पहुंचे हुए सरकारी बयानों के सहारे यह मनगढ़ंत गढ़ते हैं कि कांग्रेस आंदोलन का खात्मा कर दिया गया है तब उन्हें माडरेटों की क्या परवाह हो सकती है? सर सेमुएल होर के दिमाग में यह बात नहीं आ सकती कि भारतीय नर्मदल के असहयोग का कितना व्यापक प्रभाव भारतीय राजनीति पर पड़ेगा। जब तक माडरेट सरकार का साथ देते रहे तब तक उनकी गणना उंगलियों पर की जा सकती थी। तब तक उनके प्रभाव का अनुमान लगाने में सर सेमुएल होर जैसों को सफलता नहीं मिल सकती थी। पर सरकार का साथ देने वाले माडरेट एक चीज हैं और सरकार से असहयोग करने वाले माडरेट बिलकुल ही दूसरी चीज हैं। यह सामूहिक मनोविज्ञान के जानकार अच्छी तरह समझ सकते हैं। बंबई में एकत्र होकर गोलमेजियों और माडरेटों ने असहयोग का जो प्रस्ताव पास किया है वह एक अंतर्राष्ट्रीय घटना है। उससे सबको ब्रिटिश सरकार की प्रतिज्ञाओं का खोखलापन प्रकट हो जाएगा। राष्ट्रीय विचारों के विरोधी पत्रों तक ने यह स्वीकार किया है कि ऐसी अवस्था में माडरेट इसके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते थे। अब आवश्यकता इस बात की है कि भारत के सभी दल एकत्र होकर उदार दल के इस निर्णय की पुष्टि करें और उसकी शक्ति बढ़ाएं। सर सेमुएल को यह समझना भ्रम सिद्ध कर देता है कि वे भारतमंत्री की गद्दी पर बैठकर भारतीय आकांक्षाओं के विरुद्ध मंत्रणा देते रहेंगे और कोई कुछ कह-सुन नहीं सकेगा अथवा कह-सुन सकेगा तो कुछ कर नहीं सकेगा। भारतमंत्री को इस समय इस प्रकार की शिक्षा की जरूरत है ताकि उन्हें यह मालूम हो जाए कि अब तक भारत की ओर से ब्रिटेन के साथ बराबरी का जो आग्रह किया जा रहा है वह हमारी प्रार्थना ही नहीं है, हमारा दावा और अधिकार भी है।

## लूसेन परिषद और आगे

यह आश्चर्य के साथ प्रसन्नता की भी बात है कि यूरोपीय राष्ट्रों के बीच लूसेन में जो समझौता-सम्मेलन हो रहा था वह सफल हो गया और उस पर भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के हस्ताक्षर भी हो गए। लूसेन परिषद का मूल उद्देश्य यह था कि वह जर्मनी के हर्जाने की समस्या हल कर दे। विगत महायुद्ध में जर्मनी के पराजित हो जाने के कारण उस पर इतना बड़ा हर्जाना विजयी राष्ट्रों ने लाद दिया था जिसे देते-देते उसकी कमर टूट गई और उसकी आर्थिक दशा संकटपूर्ण हो गई। अंत में जर्मनी को यह घोषित करना पड़ा कि वह हर्जाना देने में असमर्थ है और इस बात की तसदीक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विशेषज्ञों के कमीशन ने भी की। लेकिन फ्रांस को रुपयों का लोभ इतना जबर्दस्त था कि वह जर्मनी से मिलने वाली अपनी हर्जाने की रकम छोड़ने को तैयार नहीं था। यह बड़ी ही विकट परिस्थिति थी जिसके उचित रीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से निर्णय न होने से भयानक युद्ध की संभावना थी। जर्मनी के पास सैन्यशक्ति और अर्थ शक्ति यद्यपि बहुत ही कम थी पर फ्रांस की जबर्दस्ती और अपनी असमर्थता के कारण उसके पास युद्ध में मर मिटने के सिवा दूसरा चारा नहीं था। संतोष की बात है कि ऐसी नाजुक हालत सुधार ली गई। लूसेन परिषद में यह सुधार का काम करने का अधिकांश श्रेय उसके अध्यक्ष ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड को प्राप्त है। लूसेन परिषद का परिणाम यह निकला कि अब जर्मनी को हर्जाना नहीं देना होगा। उसे कुछ वर्षों की मुहलत में लगभग 15 करोड़ पौंड की थोक रकम देनी होगी जो फ्रांस को नहीं मिलेगी पर जिसका उपयोग कतिपय यूरोपीय देशों को आर्थिक सहायता पहुंचाने में किया जाएगा। फ्रांस इस समय समृद्धिशाली देश है। उसे रुपया की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। उसकी एकमात्र आकांक्षा यह जान पड़ती है कि जर्मनी की टांग सदा के लिए टूट जाए जिससे आगे कभी वह उसका मुकाबला करने के योग्य न रहे। इसलिए जर्मनी से जितना वसूल किया जाए उतना ही फ्रांस अपने लिए हितकर समझता है। उसकी मुराद कुछ अंश तक पूरी हुई। जर्मनी के लिए 15 करोड़ पौंड की रकम अदा करना आसान काम नहीं है। यहां के हिटलर दल के नेता और समाचारपत्र लूसेन परिषद के निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं। फिर भी यदि फ्रांस की इच्छा तृप्ति किसी ऐसे उपाय से हो सकती थी जिससे जर्मनी भी बिलकुल तबाह होने से बच सकता था तो वह उपाय यही लूसेन परिषद में किया गया निर्णय है।

आगे भी यूरोप के सामने कई समस्याएं और सम्मेलन हैं। लूसेन परिषद के सफल हो जाने से आगे का काम कुछ आसान अवश्य हो गया है। पर वह अब भी कठिन है। यूरोप को अमेरिका का वह कर्ज अदा करना है जो उसने युद्ध के समय लिया था। भिन्न-भिन्न यूरोपीय राष्ट्र इस बात की फिक्र में हैं कि अमेरिका उनका कर्ज माफ कर दे। सवाल यह है कि यूरोप ऐसा क्यों चाहता है। क्या उसके पास रुपए नहीं हैं या उसे माफी की भीख मांगना पसंद है? अथवा वह इन रुपयों की माफी कराके अपना सैन्यबल बढ़ाना चाहता है और नए युद्ध का सरअंजाम करना चाहता है? इसी अंतिम शंका के निवारण के लिए अमेरिका के प्रेसीडेंट हूबर ने जेनेवा में होने वाली निरस्त्रीकरण परिषद के सामने प्रस्ताव रखा है कि यूरोपीय राष्ट्र वर्तमान सैन्य व्यय का कम से कम दसवां हिस्सा कम कर दें। ऐसा करने से यह आशंका नहीं रहेगी कि यूरोप युद्ध के विनाशकारी पथ पर चल रहा है। कम से कम अमेरिका को इस बात का इत्मीनान हो जाएगा कि उसे दूसरे महायुद्ध का खर्च बर्दाश्त करने की नौबत नहीं आवेगी। देखना है, यूरोप प्रेसीडेंट हूबर की इस शर्त को किस रूप में ग्रहण करता है।

यदि यूरोप चाहे तो इस समय निरस्त्रीकरण की योजना एक हद तक करके बहुत सा धन व्यर्थ होने से बचा सकता है। इस बचत का उपयोग वह अपनी आर्थिक अवस्था के सुधार में कर सकता है। यूरोप की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि दरिद्र जर्मनी से 15 करोड़ पौंड लेकर यूरोप के पुनर्निर्माण में व्यय करने का निश्चय किया जा चुका है। इस पंद्रह करोड़ के अतिरिक्त और भी काफी रकम निरस्त्रीकरण के द्वारा हासिल हो सकती है। पर मुश्किल तो यह है कि फ्रांस जैसे राष्ट्र उसके लिए तैयार नहीं दीख पड़ते। क्या फ्रांस केवल जर्मनी को तंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और तबाह करना ही आनंद की वस्तु समझता है अथवा उसके सामने यूरोप के कल्याण की अन्य समस्याएं भी हैं। यह प्रश्न जेनेवा के निरस्त्रीकरण सम्मेलन के फ्रांसीसी प्रतिनिधियों से पूछा जाना चाहिए।

यह भी सूचना दी गई है कि यूरोप में शीघ्र ही एक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्मेलन किया जाने वाला है जिसमें अमेरिका भी शरीक होगा। जब तक पूरा विवरण नहीं प्राप्त होता तब तक यह कहना कठिन है कि इस सम्मेलन में संसार भर की आर्थिक अवस्था पर ध्यान दिया जाएगा या केवल यूरोप का? उसमें आर्थिक संस्कृति के मौलिक तत्वों पर भी विचार किया जाएगा या केवल इधर-उधर जोड़-घटाकर मामला चलता किया जाएगा। आधुनिक वैज्ञानिक युग के कारण संसार की आर्थिक अवस्था का जो पतन हो रहा है उससे निस्तार का क्या उपाय है। गृह उद्योग-धंधों के पुनरुज्जीवन से कुछ लाभ है या नहीं, रूस की पद्धति में जो लाभ दीख पड़ते हैं वे कहां तक ठीक हैं? ये और ऐसे ही अन्य प्रश्न उस अंतर्राष्ट्रीय परिषद के सामने आवेंगे या नहीं, यह नहीं मालूम। हमारे विचार से आने चाहिए। हम समझते हैं कि फुटकर तरीके पर आर्थिक उन्नति का उपाय सोचना संसार के लिए उतना लाभकारी नहीं होगा जितना आर्थिक समस्या के मौलिक तत्वों की खोज करने से। पर विज्ञान विशारद यूरोप ऐसा करेगा इसमें बहुत संदेह है।

## सौ श्रेष्ठ पुस्तकें

*विशाल भारत* पत्र में 'हिंदी की सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें' नाम का लेख छपने वाला था, पर उसमें छपने के पूर्व ही यह कलकत्ता के *भारतमित्र* और काशी के *आज* में छप गया है। आशा है कि इस क्रिया से *विशाल भारत* को अच्छी पब्लिसिटी प्राप्त होगी। लेख के लेखक श्रीयुत सूर्यनाथ तकरू एम.ए. अच्छे विनोदी जीव जान पड़ते हैं तभी तो उनका ध्यान वर्षों से इस प्रकार के चुटकुलों पर अटक रहा था। परंतु वर्षों से जिस विषय पर ध्यान दिया जाता है उसकी परिणति ऐसे लेख के रूप में होना और भी विनोद की बात है। इस हास्यरस के लिए श्रीयुत तकरू हिंदी संसार के बधाई के पात्र हैं। *विशाल भारत* के संपादक को भी बधाई का कुछ अंश मिलना ही चाहिए। 'सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों' के शीर्षक से यह नहीं मालूम होता कि पुस्तकें प्राचीन अथवा नवीन साहित्य की हैं। जो प्राचीन पुस्तकें संपादित होकर हिंदी में प्रकाशित हुई हैं उनका भी नाम सूची में मौजूद है। परंतु उनकी संख्या केवल दस है। इसका अर्थ यह होता है कि हिंदी के हजार वर्षों के प्राचीन साहित्य में केवल दस को और इधर पच्चीस वर्षों के नवीन साहित्य में 90 को स्थान दिया गया है। यह बड़े ही विनोद की बात है कि जो लेखक की प्राचीन साहित्य की जानकारी पर मनोरंजक टीका करती है। नवीन साहित्य के आपने जो अनेक खंड किए हैं उनमें इतिहास आदि विषय तो सम्मिलित हैं पर धर्म, दर्शन आदि को स्थान नहीं दिया गया। हिंदुस्तान और हिंदी में जो धर्म-धर्म चिल्लाया जाता है उस रूढ़ि का खंडन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करने के लिए ही शायद धार्मिक पुस्तकों का बहिष्कार सूची से कर दिया गया। अच्छा विचार है। भारत को इस समय दर्शन की आवश्यकता नहीं, काम करने की आवश्यकता है—इस सिद्धांत को स्वीकार कर तकरूजी ने दर्शन संबंधी किसी पुस्तक तक का उल्लेख नहीं किया—तिलक के *गीता भाष्य* का भी नहीं। बात यह है कि तिलक की अपेक्षा जोशी और आप्टे महोदयों की छाप हिंदी पर आपको अधिक जान पड़ी है। रुचि प्रशंसनीय और सच भी है। कोई भी कोषग्रंथ हिंदी में इस योग्य नहीं जो सौ पुस्तकों की श्रेणी में आ सके। श्रीराम शर्मा के *शिकार* से भी *हिंदी शब्द सागर* बदतर है! बात यह है कि *शिकार* के लेखक को श्री तकरूजी शैलीकार मानते हैं और शैलीकार को महत्व देना जरूरी है। कौन सी शैली है यह तकरूजी ने मालूम नहीं कराया। क्या शिकार खेलने की शैली?

जिन पुस्तकों और लेखकों का चुनाव किया गया है उनके बारे में कुछ कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि वहां तो तकरूजी की रुचि का प्रश्न आ जाता है। शायद उनकी घरेलू लाइब्रेरी का भी सवाल आ जाता हो जिससे चुन-चुन कर आपने गिनती गिनाई है। और कोई बात नहीं, केवल छोटी सी बात है कि इस प्रकार की सूची दूसरे भाषा-भाषियों के नजर से भी गुजरती है। हमारा तो ऐसा अनुमान है कि ऐसे विषयों पर लिखे गए लेख अपने साहित्यिकों के उतने काम के नहीं होते जितने दूसरे भाषा के साहित्यिकों के होते हैं। इसलिए ऐसे लेख लिखते हुए अपने साहित्य के पूर्वापर गौरव, प्रमुख प्रवाहों आदि पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। साहित्य यदि जातीय संस्कृति की अभिव्यक्ति है तो हमें साहित्य के भीतर उन ग्रंथों का अन्वेषण करना चाहिए जिनसे उनके निर्माण में सहायता मिली हो। ऐसे तो आप जिसे लिख दीजिए वही हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक हो सकती है।

हिंदी की सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की अपेक्षा 'हिंदी के सौ समझदार आदमी' लेख हमारे विचार से इस समय अधिक उपयोगी होगा। जहां तक हम देखते हैं हिंदी में समझदार आदमी हजारों-लाखों की संख्या में हैं इसलिए उनमें से सौ को चुनने में विशेष अन्वेषण की आवश्यकता है। यदि हमारे पाठक उनका चुनाव करके हमारे पास भेजेंगे तो हम उसे प्रकाशित करेंगे, नहीं तो विवश होकर हमें स्वयं ही लिखना होगा।

(गुरुवार, 14 जुलाई 1932)

## फरक क्या है?

यदि कोई पूछे कि गोलमेज सम्मेलन की पुरानी नीति में और उसे तोड़कर बनाई गई नई नीति में क्या फरक है तो कोई भी आदमी बहुत सी बातें बतला सकता है। देखने वाले तो प्रत्येक बात को देखते और ताड़ते हैं पर राह चलते आदमी भी कुछ न कुछ देख ही लेते हैं। प्रत्येक बात का कुछ न कुछ अर्थ तो होता ही है। जो मिस्टर विंस्टन चर्चिल मजदूर सरकार की गोलमेज सम्मेलन की नीति से बराबर चिढ़े रहते थे, जो आर्डिनेंसों के शासन को भी नर्म शासन कहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



फटकार बतलाते थे, जो गांधी-इर्विन समझौते के लिए सरकार को दुत्कार रहे थे उनसे भारत का कितना उपकार हो सकता है इसके उत्तर में शेषनाग भी मौन ही रहेंगे। जो आदमी भारत के विरुद्ध प्रचार करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय ब्रॉडकास्टिंग एजेंसी की सहायता नहीं पा सका उसकी रूप-रेखा आप अपने दिमाग में खींच सकते हैं। फिर वही आदमी जब अमेरिका जाकर भारत के किरुद्ध विषवमन करता हुआ चोट खाकर मरने से बचा तब उसके उत्कट उत्साह की दोहाई कौन नहीं देगा? आज वह आदमी नई नीति से जी भरकर प्रसन्न है। आज उसने नई नीति के प्रवर्तक सर सेमुएल होर पर आशीर्वादी हाथ फेरकर कह दिया है कि इतने दिनों तक भटकता-भटकता अब कहीं ब्रिटेन ठीक रास्ते पर आया है। अब वह भारत के साथ उचित व्यवहार करने को आमादा हुआ है। यही तो पार्लियामेंट का रिवाज रहा है जिसे अब तक लोग भुला देते रहे हैं। भारत हमारे साथ बराबरी के आसन पर बैठे यह अयोग्य बात अब जाकर दूर हुई है। मिस्टर विंस्टन चर्चिल की इन बातों का अर्थ कौन नहीं समझ सकेगा? पुरानी मजदूर सरकार से चर्चिल साहब क्यों न रुष्ट होते जबकि उसके भारतीय प्रतिनिधि ने राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ बराबरी का समझौता करके महात्मा गांधी को गोलमेज में सम्मिलित कराया था। उसने मौका मिलते ही आर्डिनेंसों का अंत कर दिया था। ये सब अनाचार कहीं महानुभाव चर्चिल को रुच सकते थे। पर अब की सर सेमुएल होर की कार्रवाइयां उन्हें रुच रही हैं। अब ये खूब प्रसन्न हैं।

यह क्या कुछ भी फरक नहीं है? सर सेमुएल होर तो बड़े ही निरीह भाव से कहते हैं, नहीं, कुछ भी फरक नहीं है। तो क्या मिस्टर चर्चिल बदल गए—क्या सिकता से तेल की उत्पत्ति हो गई? होर महाशय के कहने से तो ऐसा ही मालूम पड़ता है। तो इस आश्चर्यजनक अलौकिक घटना पर दुनिया इतनी चुप क्यों है? यह कोई नहीं कह सकता, सर सेमुएल भी नहीं। शायद सर सेमुएल इतनी बड़ी जिम्मेदारी नहीं ले सकते यद्यपि वे यह कहने की जिम्मेदारी ले सकते हैं कि भारतीय नीति जैसी की तैसी बनी है। इस दूसरी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए आपने जो प्रमाण दिए हैं वे बहुत ही सुनने लायक हैं। पहले प्रमाण में तो आप स्वयं भारत को ही साक्षी रख डालते हैं जिसने आपकी नीति के विरुद्ध आंदोलन उठाया है। यह आपका बड़ा ही प्रभावशाली उपाय है। आप कहते हैं कि भारत के नेताओं ने तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक धरती उठा ली थी और चिल्ला रहे थे 'जल्दी करो, शासन विधान में जल्दी करो।' ये ही लोग जमीन-आसमान एक कर रहे थे—कहते थे हम लोगों को अनिश्चय में कब तक डाले रहोगे, हे महा प्रभु! ऐसी हालत में सर सेमुएल होर करते ही क्या सिवा इसके कि भारत की दीन वाणी स्वीकार करते और 'पयादे पांव' दौड़ते। जो सर तेजबहादुर सप्रू केंद्रीय और प्रांतीय अधिकारों के लिए 'एक बिल एक बिल' की सांस साध रहे थे वे ही अब 'एक बिल' मिलने पर भाग निकले। आश्चर्य है, इस प्रकार का अनर्थ स्वयं भारतवर्ष के नेता कर रहे हैं फिर भी सर सेमुएल होर पर दोष मढ़ने से बाज नहीं आते।

सर सेमुएल होर की दूसरी गवाही भी कम प्रामाणिक नहीं है। वह यह है कि अंतिम निर्णय तो ऐसे भी और वैसे भी ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में है। यह कहने का मतलब संभव है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह हो कि भारत यह मूर्ख कल्पना न करने लगे कि गोलमेज सम्मेलन में उसे बराबरी का अधिकार दिया गया है तो वह भारतीय विधान बनाने का भी अधिकारी बन गया। वे हम लोगों को यह विश्वास दिला देना चाहते हैं कि आखिर गोलमेज भी कुछ नहीं है। उसे बराबरी का सम्मान समझना भ्रम है क्योंकि फैसला करने वाली तो ब्रिटिश पार्लियामेंट है। लेकिन यह गवाही देते हुए बीच में जरा बाधा पड़ जाती है। वह बाधा ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड की बातों से पड़ती है जो वर्तमान कैबिनेट में भी सर सेमुएल होर के नेता हैं। अब नेता की बात मानी जाए या अनुयायी की? मिस्टर मेकडानल्ड ने कहा था कि यद्यपि आखिरी फैसला कानूनन पार्लियामेंट ही सुना सकती है पर फैसला वही होना चाहिए जो हम लोग गोलमेज में तय कर रहे हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ तो हम लोग समझेंगे कि सरकार पर अविश्वास प्रकट किया गया। वैसी हालत में हम लोगों का इस्तीफा दे देना ठीक होगा। अब जरा इसकी तुलना सर सेमुएल होर की बातों से कीजिए। यह कौन नहीं जानता कि पार्लियामेंट ही वैध रीति से भारतीय विधान में परिवर्तन कर सकती है। पर यहां तो सहूलियत की बात हो रही थी। पार्लियामेंट तो अंतिम निर्णय करेगी ही। तो क्या इसका अर्थ यह है कि पार्लियामेंट अपने ही द्वारा निर्णीत की गई नीति का त्याग कर देगी और जो चाहे करने लगेगी? यदि पार्लियामेंट अपना विधि-विधान आप ही अमान्य कर देगी तो इसमें उसकी कौन सी नेकनामी होगी? सिद्धांत बतलाने की जरूरत सर सेमुएल होर को नहीं है। वह सबको मालूम है, पार्लियामेंट ही अंतिम निर्णय करेगी। यह एक सिद्धांत मात्र है। ऐसे तो और भी सिद्धांत उपस्थित किए जा सकते हैं। इसलिए सिद्धांत संबंधी चर्चा से क्या लाभ?

अथवा यदि सर सेमुएल होर के कहने के मुताबिक भारत 'जल्दी करो' की रट लगा रहा है और पार्लियामेंट ही अंतिम निर्णय करने वाली है—यह दोनों ही बातें सच हैं—तो क्यों नहीं पार्लियामेंट बिना किसी प्रकार की परामर्श कमेटी और सिलेक्ट कमेटी के निर्णय के लिए भारतीय बिल आज ही बना लेती? विलंब की जरूरत ही क्या है ? इस समय सर सेमुएल होर और ब्रिटिश सरकार और भारत के प्रति विशेष दयालु भी हो रहे हैं क्योंकि उनके कहने के मुताबिक शीघ्रता करने को तत्पर हो गए हैं। तब क्यों नहीं भारत के स्वराज्य के अधिकार को—महात्मा गांधी के स्वतंत्रता के सार को—पार्लियामेंट एक बिल के रूप में उपस्थित करती और उस पर अपना अंतिम निर्णय देकर उसे एक्ट बना देती? आखिर सरकार इतना कष्ट क्यों उठा रही है कि परामर्श कमेटी भी बुलाती है, उससे लोगों के इस्तीफा देने से दुःखी भी होती है, फिर सिलेक्ट कमेटी बनाती है और उसके हिंदुस्तानी सलाहकारों को भी सात समुद्र दौड़ाती है। इस सबसे लाभ क्या है? अंतिम निर्णय तो उसके हाथ में है ही। कर क्यों नहीं डालते? विलंब केहि काज?

असल बात यह है कि इन दिनों सम्राट की सरकार न्याय की तुला बड़ी बारीकी से पकड़े हुए है। सत्य का मार्ग तो तलवार की धार से भी अधिक तेज है। एक बात अगर भारत की मानी जाती है तो एक बात मिस्टर चर्चिल के अनुकूल भी होनी ही चाहिए। किसी की सब बातें मान ली जाएं, किसी की एक भी न मानी जाए यह कहां का न्याय है? यही क्या कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि भारतीय राजर्नीतिज्ञों की पुकार सुन ली गई और एक ही बिल में प्रांतीय और केंद्रीय स्वराज्य डाल दिए गए। अब और क्या चाहिए। और बातें औरों के मन मुताबिक होने दीजिए। कुछ मिस्टर चर्चिल ही तो नहीं हैं, वीभरब्रुक, राथरमियर, लार्ड लायड ब्रिटिश पार्लियामेंट के कई सौ अनुदार दली सदस्य ये भी तो हैं। इनकी भी तो एक-एक बात मानी जानी चाहिए। और सर सेमुएल होर स्वयं भी तो हैं। इन्हीं के हाथ से यह सब हो रहा है और ये ही अपने मन की एक बात न करें। ऐसा कैसे संभव है?

## संपादक सम्मेलन का कार्यक्रम

कलकत्ते के एक अज्ञात नाम पत्र का एक अचिंत्यपूर्व अंक आज अचानक हमारे पास पहुंच गया है जिसमें एक बेनाम आदमी ने एक अज्ञात लक्ष्य लेख लिखा है और उसका नाम रख दिया है 'हिंदी संपादक सम्मेलन।' दुःख है इस अद्भुत वस्तु को हिंदी के पाठक नहीं देख सकेंगे—एक ही अंक आने से हम समझते हैं यह पत्र प्राइवेट सरकुलेशन के लिए, गुमनाम निकाला गया है—नहीं तो उनको कलकत्ते जू देखने का-सा आनंद मिल जाता। आशा है, हमारे पाठक उसकी कल्पना से ही संतोष करेंगे।

'इंदौर संपादक सम्मेलन' की अपनी पिछली टिप्पणी में हमने एक ऐसी स्कीम रखी थी जिससे हिंदी-संपादन क्षेत्र में अत्यंत आवश्यक और श्रेयस्कर परिवर्तन हो सकते हैं। प्रसन्नता की बात है हमारे विचारों से इंदौर की अस्थायी समिति के प्रायः सभी सदस्य सहमत हैं और वे उसका उपयोग भी करने का उद्योग कर रहे हैं। वास्तव में हमने संपादन संबंधी कुछ ऐसे व्यावहारिक उपायों का उल्लेख किया है जिन्हें हिंदी संसार भ्रमवश आज त्याग भी दे तो बहुत दिनों तक नहीं त्याग सकता, अन्यथा वह अपने ही पैरों पर कुठाराघात करेगा। परंतु यह गुमनाम आदमी हांकता है कि यह अव्यावहारिक स्कीम है, मूर्खतापूर्ण है और क्या-क्या नहीं है? जिस आदमी में शब्दों का संयम नहीं है उससे बात करना भी एक प्रकार का नैतिक अपराध है। फिर जो आदमी गुमनामी का बुरका पहनकर सामने आता है उससे तो कोई सभ्य व्यक्ति कुछ कह ही नहीं सकता। हिंदी के पत्रों को अभी यह मालूम नहीं हुआ कि गुमनाम आदमियों के इस प्रकार के लेख छापना राष्ट्र में कायरता और अनैतिकता का प्रसार करना है। अभी वे शीघ्र समझेंगे भी नहीं।

## 'प्रसाद' 'निराला' 'पंत' (कुछ विकास रेखाएं)—2

*चित्राधार* से प्रकृतिप्रेम की जो कविता आरंभ हुई, उसका विश्लेषण करने पर कई बातें मालूम होती हैं। एक तो वह गीत कविता के रूप में है। जहां छोटी-छोटी भावनाएं एक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



केंद्रित होकर गेय हो उठती हैं उसे गीत काव्य कहते हैं। हिंदी के आलोचकों ने गीत काव्य के संबंध में भयानक भ्रम फैला रखा है। अपनी विचित्र व्याख्याओं में वे कहा करते हैं कि जहां अंतःसौंदर्य व्यक्त करना होता है वहां गीत काव्य द्वारा और जहां बाह्यसौंदर्य व्यक्त करना होता है वहां प्रबंध काव्य द्वारा किया जाता है। पर इस प्रकार का बखेड़ा न आकाश में है, न पाताल में। प्रेम मूलक जिन कविताओं में ये समीक्षक अंतःसौंदर्य देखा करते हैं उनमें कहीं-कहीं तो अंतःसौंदर्य यही होता है कि वे उनके रतिप्रिय अंतःकरण की तह तक पहुंचकर प्रज्वलन उत्पन्न करती है। यदि देखा जाए तो इस प्रकार के अंतःसौंदर्य से तो बाह्यसौंदर्य ही अच्छा। सच तो यह है कि जीवन में जिस प्रकार अंतःसौंदर्य और बाह्यसौंदर्य की सत्ताएं एक-दूसरे से मिली हुई वस्तु विशेष का आश्रय लिये हुए दीख पड़ती हैं उसी प्रकार काव्य में भी समझना चाहिए। कविता यदि अंतःसौंदर्य का ही चित्रण करने में लग जाए तो वह शीघ्र ही वैज्ञानिक विश्लेषण की कोटि में फेंक दी जाएगी। यदि वह केवल बाह्यसौंदर्य का वर्णन करने लगे तो उसे कविता नहीं, कविता की छाल कहा जाएगा। दोनों ही सम्यक् जीवन प्रवाह में निमज्जित न होने के कारण मनुष्यता का रस न प्राप्त कर सकेंगी। यदि यह नहीं तो और किस उद्देश्य का अवलंबन करके कविता अपना जीवन सार्थक कर सकेगी? यह सब कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ी है कि उपर्युक्त अद्भुत आलोचकों के कारण हिंदी काव्यजगत में अत्यंत हानिकारिणी विचार परंपरा स्थिर होती जा रही है। जहां कोई सौंदर्य नहीं वहां अंतःसौंदर्य देखा जाता है। जहां सौंदर्य है उसकी अवहेलना की जाती है। जो गीत काव्य केवल सामान्य समालोचकों के काव्य संबंधी बाह्य वर्गीकरण की वस्तु है उसे जीवन के अंतःसौंदर्य का प्रतिनिधि समझा जाता है। यह सब का सब भीषण भ्रम है। कविता की समीक्षा में न कहीं गीत काव्य है, न कहीं अगीत काव्य। न कहीं अंतःसौंदर्य है, न कहीं बाह्यसौंदर्य। सब प्रकार के काव्य में सब प्रकार का सौंदर्य समाहित किया जाने योग्य है। हमें देखना यही चाहिए कि कहां क्या है?

बाबू जयशंकर प्रसाद के *चित्राधार* में उनकी विशिष्ट प्रकार की दार्शनिक अभिरुचि के कारण प्रकृति-प्रेम एक विशिष्ट प्रकार से व्यक्त हुआ है। अंग्रेज कवि वड्र्सवर्थ की भांति प्रकति के प्रति उनका निसर्ग सिद्ध तादात्म्य नहीं दीख पड़ता। प्रत्येक पुष्प में उन्हें वह प्रीति नहीं जो वड्र्सवर्थ की थी। प्रत्येक पर्वत, प्रत्येक घाटी उनकी आत्मीय नहीं। प्रत्येक पक्षी को प्यार नहीं करते। यहां *चित्राधार* की बात कही जा रही है। उसमें उनका प्रेम रमणीयता से है, प्रकृति से नहीं। वे सुंदरता में रमणीयता देखते हैं, सर्वत्र नहीं। इस रमणीयता के संबंध में उनकी भावना रति की भी है और जिज्ञासा की भी। रति उनका हृदयपक्ष है, जिज्ञासा उनका मस्तिष्क पक्ष। कहीं-कहीं वे रमणीय दृश्यों को देखकर मुग्ध होते और कहीं-कहीं प्रश्न पूछते हैं कि यह रमणीयता इसमें कहां से आई। यदि अधिक छान-बीन की जाए तो देखा जाएगा कि मुग्ध होने वाले स्थल कम हैं, जिज्ञासा के स्थल अधिक। जिज्ञासाओं की व्यंजना यह है कि वे प्रत्येक रमणीय वस्तु में चैतन्य ज्योति देखते हैं। अवश्य ही यह चैतन्य-ज्योति कवि के हृदय में चमत्कार उत्पन्न करती है। यह चमत्कार जीवन के किसी गहन-स्तर को स्पर्श करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कम दीख पड़ता है। नवयुवक कवि यद्यपि अनेक बार इस प्रकार की जिज्ञासाएं करके अंतःसौंदर्य का संकेत करता है, पर उसकी सामान्य दृष्टि किसी तात्विक निष्कर्ष तक नहीं पहुंचती। उसकी सौंदर्य भावना का विकास व्यापक नहीं होता। वह प्रकृति के रम्य रूपों तक ही परिमित रहती है। जिस प्रकार ब्रजभाषा के कवि प्रकृति का वर्णन मनुष्यजगत का उद्दीपन बनाकर करते थे, उसी प्रकार अनेक बार जयशंकरजी का प्रकृति वर्णन भी स्वयं उनकी ही भावनाओं का उद्दीपक बन गया है। अवश्य ही प्रसादजी की भावनाएं उन शृंगारी कवियों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और जिज्ञासामय हैं। यह जिज्ञासा ही आगे उनके विकास में सहायक हुई है। यदि *चित्राधार* में वे जिज्ञासाएं न होतीं तो प्रसादजी भी अनेक शृंगारी कवियों की श्रेणी से निकाले ही न जा सकते।

*चित्राधार* से आगे बढ़ने पर भी बाबू जयशंकर प्रसाद के प्रकृति प्रेम को किसी प्रकार की गहराई नहीं प्राप्त होती परंतु उनकी जिज्ञासा वृत्ति का अवश्य विकास होता है। *प्रेम-पथिक* इसका प्रमाण है। इसमें प्राकृतिक वर्णन मनुष्यों की कहानी के वातावरण मात्र बनकर रह गए हैं। कवि का यत्किंचित आकर्षण प्रकृति से था वह खिंचकर मनुष्य जगत में आ गया है। प्रकृति के प्रेम से हटकर उनकी जिज्ञासा मनुष्यों के प्रेम में समाविष्ट हो गई है। देखिए, जिज्ञासा का तार नहीं टूटता। इसी में कवि का विकास देखा जा सकता है। *प्रेम-पथिक* में कवि के मनुष्य-प्रेम संबंधी जिज्ञासा का स्वरूप प्रकट हुआ है। यहां कवि एक तात्विक निष्कर्ष तक पहुंच सका है। प्रेम अनंत है उसका ओर-छोर नहीं है। एक विराट चित्र सम्मुख आता है। इसमें बड़ी स्वच्छता और सात्विकता है। इसे प्रेम का अंतःसौंदर्य कह सकते हैं यद्यपि इसमें बाह्यसौंदर्य भी है। *प्रेम-पथिक* का यह छोटा सा कथानक कवि के स्वच्छ जीवन क्षण में लिखा गया है।

*आंसू* प्रसादजी का विरह काव्य है। यह बड़ी ही मनोरम गीत कविता है। हिंदी में इसकी गणना थोड़ी सी उत्कृष्ट रचनाओं में की जा सकती है। आधुनिक हिंदी में जो थोड़े से प्रथम श्रेणी के विरह काव्य हैं ग्रंथि, उच्छ्वास, यमुना आदि उनमें *आंसू* का भावना-संकलन श्रेष्ठ होने के कारण वही उत्तम गीत है। *आंसू* को अध्यात्म और छायावाद आदि का नाम देकर उसे जटिल बना देने के पहले उसको उसके प्रकृत रूप में देखना चाहिए। विरह का इतना मार्मिक वर्णन करने वाले कवि को किसी वाद की छाया लेने की जरूरत नहीं—उसकी उच्चता स्वतःसिद्ध है। विकास के जो परमाणु खिलकर *आंसू* में निखरे हैं उन्हें वादों के बखेड़े में डाल देने की हम तजवीज नहीं कर सकते। कवि के साथ यह अन्याय हमें पसंद नहीं।

*आंसू* प्रसादजी की पूर्व की रचनाओं से बहुत आगे है। उसमें न तो *चित्राधार* की-सी हल्की, चमत्कार-चंचल-दृष्टि है, न *प्रेम-पथिक* का-सा ऐकांतिक प्रेम और आदर्श का निरूपण है। *आंसू* तो कवि की जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार है। *आंसू* में कवि निस्संकोच भाव से विलासजीवन का वैभव दिखाता, फिर उसके अभाव में आंसू बहाता और अंत में जीवन से समझौता करता है। विलास में जो मद, जो विराट आकर्षण है उसे कवि उतने ही विराट रूपकों और उपमानों से प्रकट करता है। उसके अभाव में जो वेदना है वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तो *आंसू* बनकर निकली है। इसे आप कवि की आत्माभिव्यक्ति (Confession) मान सकते हैं जिससे बढ़कर काव्योपयोगी वस्तु दूसरी है ही नहीं। यह कहने से क्या लाभ कि यह वियोग किसी परोक्ष सत्ता के प्रति है, जब प्रत्यक्ष जीवन का यह वियोग अधिक मार्मिक और अधिक सत्य है? जब कवि किसी अत्यंत आवश्यक सांसारिक समस्या पर अपने अंतरतम की बातें कह रहा है तब उसे उसी रूप में न ग्रहण कर हम न अपने प्रति न्याय करते हैं, न कविता के प्रति। *आंसू* में छायावाद कहां है? उसके वियोग-वर्णन में? नहीं, वह तो साक्षात् मानवीय है। क्या उसकी सम्मिलन-स्मृति में? नहीं वह तो कवि की साहसपूर्ण आत्माभिव्यक्ति है। हिंदी में जब किसी के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वह इस तरह की बातें कहे तब प्रसादजी ने उन्हें कहा! यह साहस स्वयं ही एक अध्यात्म है। दूसरे अध्यात्म का आवरण पहनाने की आवश्यकता नहीं। यदि किसी को ऐसा आभास मिले कि स्वयं कवि ने ही आवरण डालने की चेष्टा की है तो इसे वह कवि की किंचित दुर्बलता समझ ले। वह आवरण कविता-कला का एक उपकरण भी माना जा सकता है। *आंसू* सब प्रकार से एक रसमय विरह काव्य है। तभी उसके अंत में जो तात्विक निष्कर्ष है वह हमारे जीवन के लिए आशाप्रद और उपयोगी सिद्ध हो सकता है। संपूर्ण काव्य को रहस्यवाद मानने से अंतिम पंक्तियों की मार्मिक रहस्यात्मकता का न हम अर्थ समझ सकेंगे, न रसानुभव कर सकेंगे। *आंसू* की अंतिम पंक्तियों की शिक्षा हम पर तभी प्रभाव कर सकेगी जब हम उसे एक मानवीय आत्मकथा मानें। यदि यह छायावाद है तो इसी अर्थ में, नहीं है तो भी इसी अर्थ में। कवि की अनुभूतियों के साथ इसी रीति से न्याय किया जा सकता है।

(रविवार, 17 जुलाई 1932)

# मनोरंजन

आजकल हम अखबारनवीसों की जिंदगी खास तौर पर मनहूस हो रही है। बड़े बंधेज के साथ, नपे-तुले शब्दों में हमको अपना कलेवर सजाना पड़ता है। रोज-रोज लगभग एक ही तरह की बातें लिखते और एक ही किस्म की खबरें छापते-छापते हम लोग ऊब रहे हैं। वही नित्यप्रति की गिरफ्तारियां, सजाएं और उत्पीड़न, फिर सरकार द्वारा उनका खंडन। इधर कुछ नवीनता आई थी कि तब विधान के काम की बधिया बैठ गई थी—जिस विधान के नाम पर अब तक सब-कुछ होता आ रहा था। पर उसमें भी वही बासीपन आ गया। अब उधर सर सेमुएल होर वक्तव्य पर वक्तव्य निकालकर अपनी नीति का समर्थन करते हैं और इधर एक के बाद दूसरे नर्म नेता उसका खंडन करते हुए अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते रहते हैं। यह प्रसंग भी नीरस हो चला। इस व्यापक नीरसता के भीतर अंतःसलिला की तरह कुछ मनोरंजक बातें जब दिखाई दे जाती हैं तब हम लोग क्षण काल के लिए दिल बहला लेते हैं। एसोसिएटेड प्रेस द्वारा भेजी गई खबरों में तो कोई बात नहीं होती पर कभी-कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



खबरों पर जो टिप्पणियां वह करता है—जो करना उसका काम नहीं—उन्हें पढ़कर तबियत फड़क उठती है। उधर सर सेमुएल होर ने नई नीति की घोषणा की जिसमें भारतीयों के बराबरी के ओहदे को पलट दिया गया, इधर शिमला से सुसमाचार आया कि राजनीतिक दल नई घोषणा से प्रसन्न हो गए हैं! सर सेमुएल ने उद्‌गार प्रकट किया कि माडरेटों को छोड़ भी दिया जाए तो भी भारत के बड़े-बड़े दल नई नीति का स्वागत करने को तैयार हैं, बस एसोशिएटेड प्रेस ने भविष्य में होने वाली प्रस्तावों की सूची पेशगी भेजकर अपनी कर्तव्यतत्परता का पालन कर दिखाया। कैसी खुशी की बात है। जहां एक ओर उतावली का परिचय देने वाली यह मनोरंजक घटना है, वहां सुस्ती का सुखद समाचार सुनाने वाली एक दूसरी घटना भी कम सुंदर नहीं है। मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष सर मुहम्मद इकबाल का नाम आप जानते ही होंगे। आप ही वे पुरुष हैं जिन्होंने कॉन्फ्रेंस की पिछली बैठक में सरकार को यह अल्टीमेटम दिया था कि अगर सरकार जून तक मजहबी समस्या का फैसला नहीं करेगी तो कॉन्फ्रेंस उसके विरुद्ध सत्याग्रह करने का प्रोग्राम बनावेगी। लोगों को विस्मय हुआ था कि कहां सर मुहम्मद इकबाल और कहां सत्याग्रह का प्रोग्राम। पर उस समय के विस्मय से इस समय का आनंद कहीं प्रबल है—इसके लिए इकबाल महाशय को लोग बधाई दें—जब जून के साथ-साथ अल्टीमेटम की अवधि बीत जाने पर भी सर मुहम्मद इकबाल बिल्ली बने बैठे हैं। जून बीत गया तो अल्टीमेटम भी बीत ही गया अर्थात् उस पर अमल करने का जमाना भी बीत गया। कैसा कविजनोचित चमत्कार है।

कभी कोई छोटी घटना इतना आनंद पैदा कर देती है जितना बड़ी-बड़ी क्या करेंगी? उसका भी उदाहरण लेना चाहिए। हमारी प्रांतीय सरकार ने मद्यविक्रय की जो नई नीति निकाली है उसका नजारा आम सड़कों पर लड़खड़ाती हुई बहुत-सी टांगें प्रायः रोज ही दिखाती रहती हैं। अभी इसी मर्तबा प्रांतीय कौंसिल की बैठक में कतिपय सरकारी सदस्यों ने उक्त नई नीति का समर्थन इतनी गंभीरता और तत्परता से किया जैसे ईश्वर की सत्ता का समर्थन कर रहे हों। उस ब्रह्मनिरूपण के बाद लोग अब सड़कों पर ब्रह्मदर्शन भी करने लगे हैं। आश्चर्य है सरकार ने इस गंभीर सत्य की घोषणा अपने पब्लिसिटी डिपार्टमेंट के पत्रों में अब तक नहीं की। अभी उस दिन जिस पब्लिसिटी डिपार्टमेंट की उपयोगिता बतलाते हुए श्रीयुत ब्लंट महाशय ने कौंसिल के कई घंटे और *पायोनियर* अखबार के कई कालम खर्च लिये, उसकी नजरों से इस प्रकार की परम आवश्यक, सभ्यतापूर्ण और कीर्तिमयी बातें न गुजरें, यह क्या कुछ कम विस्मय की बात है। आशा है *पायोनियर* का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा क्योंकि गवर्नमेंट के पब्लिसिटी डिपार्टमेंट के बाबुओं को राजनीतिक और सामाजिक शिक्षा देने का भार सबसे अधिक उसके ही बलवान कंधों पर है। जिस प्रकार अंग्रेजी में *पायोनियर* पत्र है उसी प्रकार हमारी हिंदी को भी दर्जनों पत्र ऐसे प्राप्त हो गए हैं जो इधर कुछ समय से सरकार के निजी पब्लिसिटी डिपार्टमेंट के मुख्य पत्र से किसी कदर कम महत्व नहीं रखते। आशा है, इससे राष्ट्रभाषा को उचित गौरव प्राप्त होगा और मिस्टर ब्लंट के बतलाए हुए 'राजनीतिक शिक्षा' के मतलब को पूरी तौर पर समझाने में राष्ट्रभाषा के वे पत्र पूर्ण रीति से समर्थ होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न केवल गद्य में बल्कि पद्य में भी यदि 'राजनीतिक शिक्षा' दी जाए तो क्या बुरा है? इससे हिंदी कविता की भी अच्छी उन्नति होगी और पत्रों के संपादकों का भी काव्य-मर्मज्ञता का विकास होगा। उदाहरण देकर मामूली और साफ कर देना ठीक है। कानपुर से *देहाती* नाम का हिंदी का एक साप्ताहिक पत्र निकलता है। निकलता है ऐसा कहना शायद व्याकरण के अनुसार ठीक न हो क्योंकि आज का अंक ही उसका अंतिम है। दुःख है कि इस पत्र को स्थानीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने बहुत कुछ सहायता पहुंचाई पर यह चार वर्षों में भी अपने पैरों पर खड़ा न हो सका। इसमें कसूर किसका है? समय को ही दोष देना ठीक होगा क्योंकि यही सहज है। इसके संपादक श्रीयुत रामलालजी भट्ट महोदय को कौन नहीं जानता? आप ही हैं जिन्होंने स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीजी के न रहने पर उनके विरुद्ध लेख लिखकर *माधुरी* में प्रकाशित कराया था। हिंदी संसार के इतने परिचित लेखक के संपादकत्व में *देहाती* पत्र निकला, सब प्रकार की सहायता पहुंचाई गई, तथापि काल की निष्ठुरता। वह चल न सका। संतोष इतना ही है कि उक्त पत्र ने अपने जीवन काल में 'राजनीतिक शिक्षा' देने में कुछ उठा नहीं रखा और मरते दम तक अपने को धुन का पक्का साबित करता रहा। सर सेमुएल होर की जिस नई नीति के कारण भारतीय लोकमत इतना विक्षुब्ध हो उठा है उससे विचलित न होना *देहाती* जैसे पत्रों का ही काम है। विचलित होना तो दूर वह तो नई नीति के गुणगान करता है जो परम निर्लिप्त, निस्संग वृत्ति के कारण ही संभव है। *देहाती* ने आखिरी दम तक यही कहते-कहते सांस तोड़ी—'प्रबल, प्रचंड मार्तंड सो प्रताप दिये विभव विशाल बड़े विविध प्रकार का। नव्य नीति नव्य राजकाल की प्रवृद्धि होय अमन अमान रहे प्रजा परिवार का। गौरव ... सजै गवर्नमेंट ज्ञानवान सुमति उदार का। शत्रु समुदाय शीघ्र शमन समस्त होय शासन रहे सदैव हिंद सरकार का।'

स्वीकार करना पड़ता है कि इस कवित्त में काव्यगुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। इतना ही नहीं, इसमें राजनीतिक जानकारी भी बड़ी दूर तक दीख पड़ती है। इसकी टेक तो यह साफ ही है कि हिंद-सरकार (जिसे राजनीति के शब्दों में भारत सरकार कहते हैं) का शासन सदैव रहे। राजनीतिज्ञों के सामने खुलासा किया जाए तो कहना पड़े कि वर्तमान द्वैधशासन, जिसका अंत करने के लिए भारतीय जनता एक स्वर से पुकार रही है, ज्यों का त्यों बना रहे। टेक की तारीफ की जानी चाहिए। पर अभी इससे भी अधिक तारीफ की बात आ रही है। किस प्रकार हिंद-सरकार का शासन (सदैव) स्थायी रह सकता है? शायद इसी का उत्तर देते हुए कवि कहता है—

*नव्य नीति नव्य राजकाल की प्रवृद्धि होय*

'नव्य नीति' से कवि का आशय सर सेमुएल की नई नीति से और 'नव्य राजकाल' से उसका मतलब नए आर्डिनेंस राज्य से मालूम पड़ता है। सर सेमुएल की नई नीति से 'हिंद सरकार' (नौकरशाही) का राज्य यदि सदैव नहीं तो कम से कम दीर्घकाल तक चलता रहेगा इसमें क्या संदेह है? कवि ने क्या ही मार्के की बात काव्य की भाषा में कही है? मार्तंड-वत तपते हुए प्रताप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की उपमा देना कैसा उपयुक्त हुआ है जबकि सरकार सचमुच इस समय दमनचक्र चलाती हुई गर्मशासन का परिचय दे रही है। अंत में यह पंक्ति सबसे अधिक ध्यान देने योग्य है—

*शत्रु समुदाय शीघ्र शमन समस्त होय*

इसमें 'शत्रु समुदाय' का अर्थ है नई नीति और नए राजकाल के समस्त विरोधी। कवि की अभिलाषा है कि इन सबका दमन ही नहीं, शमन भी हो जाए। यह समस्त विरोधी दल अगर भारत का एक बड़ा अंश हो, अथवा लगभग समस्त भारत ही क्यों न हो, तो भी वह शमित हो जाए। अभिलाषा बड़ी ही कोमल है पर कठोरता यह हुई कि उसके पूरा होने के पहले बेचारे *देहाती* का ही शमन हो गया। हम लोग यहां अफसोस मना रहे हैं, *देहाती* उस लोक में मनाता होगा।

## गोलमेज का मर्म

लार्ड इर्विन गोलमेज की कल्पना के सबसे बड़े समर्थक रहे हैं। कहना चाहिए परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उन्होंने ही गोलमेज की सृष्टि की थी। साइमन कमीशन के प्रति देश का व्यापक क्रोध देखकर उसे शांत करने की चेष्टा ही गोलमेज के रूप में प्रकट हुई। लार्ड इर्विन ने अपने दो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भाषणों में यह प्रकट किया था कि गोलमेज सम्मेलन का अर्थ क्या है। गोलमेज का मूलतत्व यह था कि एक मेज के चारों तरफ बैठकर, समता के स्वर में भारतीय और ब्रिटिश सदस्य अपना-अपना मत प्रकट करें। वह ब्रिटिश सरकार और भारत के प्रतिनिधियों के बीच का परामर्श ही नहीं था। वहे तो ब्रिटेन और भारत की समता का संकेत चिह्न था क्योंकि उसमें तत्कालीन पार्लियामेंट के सरकारी दल ही नहीं, सब दल के प्रतिनिधि सम्मिलित किए गए थे। यह तो था उसका आधार। उसका लक्ष्य था भारत के लिए शासन विधान बनाकर पार्लियामेंट के सामने उपस्थित करना। यह उसकी कार्रवाई के बाद तय हुआ कि वह शासन-विधान संघ के रूप में होगा। इसके बाद यह तय हुआ कि जो संरक्षण रखे जाएं वे भारत के फायदे के हों। ये दोनों बातें गोलमेज का आधार नहीं थीं, बल्कि गोलमेज के सिलसिले में तय हुई थीं। परंतु लार्ड इर्विन की अंतिम उक्ति के अनुसार वे ही आधार बनी जा रही हैं। यह बात ठीक नहीं है। संघ शासन और भारत के हित के संरक्षण—ये दो बातें कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हों, गोलमेज उन्हें अब भी त्याग सकता है। गोलमेज का यह अधिकार है। लार्ड रीडिंग कह चुके हैं कि कोई भी प्रतिनिधि किसी विशेष कार्यक्रम का पाबंद नहीं। लार्ड इर्विन के अंतिम उद्‌गार में यह भ्रम आ गया है कि वे गोलमेज के असली आधार को भूलकर उसकी कार्रवाई को ही उसका आधार मानने लगे हैं। क्या वे भी विलायत में रहकर गोलमेज का मर्म भूल गए?

(गुरुवार, 21 जुलाई 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# नई नीति

ब्रिटिश सरकार के पिछले निर्णय से उसकी भारत संबंधी नीति का पता लग गया। यहां के लिबरल दल ने उसका रहस्य बतलाने में कोई कसर नहीं की, फिर भी जो बाकी बचा वह विलायती विद्वानों ने, जिनमें मिस्टर चर्चिल का पहला नंबर है, स्पष्ट कर दिया। अब यह मालूम हो गया कि पार्लियामेंट में संकीर्ण दल की भीड़ लगी है और उस दल की नीयत क्या है। आज ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड क्या वे ही हैं जिन्होंने भारत की दुर्दशा पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में आंसू बहाए थे? उन्हें तो वे बातें तक याद नहीं रहीं जो पिछले दोनों गोलमेज सम्मेलनों में उनके मुंह से निकली थीं और जिनपर भारत ने विश्वास किया था। आज वे इतने मौन क्यों हैं जैसे नई नीति के बारे में कुछ जानते ही नहीं? और हमारे 'धार्मिक लार्ड इर्विन' कैबिनेट के मेंबर हो जाने के बाद उसके सामने भारत को कैसे याद रख सकते हैं, जब कि अपनी पैदा की हुई गोलमेज को ही भूल गए? बात व्यक्तियों तक ही परिमित नहीं है—साफ बात तो यह है कि आज जब भारत के विधान की समस्या—जिसे भारत स्वराज्य प्राप्त करने की समस्या कहता है—सामने आई है तब ब्रिटेन में भारत का एक भी प्रभावशाली मित्र नहीं दीख पड़ता। मित्रों की परीक्षा मौके-मौके पर ही होती है और आज इस मौके पर हम अपने ब्रिटिश मित्रों की परीक्षा कर रहे हैं। आज जब हम बातों के जमाखर्च को एक ओर करके सच्चे मित्रों की तलाश करते हैं तो किसे पाते हैं? क्या मिस्टर मेकडानल्ड को? क्या लार्ड इर्विन को? इनसे बड़ा भारत का मित्र और दूसरा था ही कौन? सर सेमुएल होर? क्या मिस्टर चर्चिल? हम अपने चारों ओर देखते हैं पर एक भी ऐसा उदात्त व्यक्ति नहीं देख पाते जो ब्रिटेन की राजनीतिक साख कायम रख सके, सत्य ही जो इतना शक्तिशाली हो कि ब्रिटेन की भारतीय नीति को अपने हाथ में ले सके। सिर्फ पार्लियामेंट के दो-चार सदस्य और पार्लियामेंट के बाहर दो-चार समाचारपत्र ऐसे हैं जो भारत के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं पर क्या उन्हीं के दुर्बल हाथों में भारत अपना भविष्य सौंप दे?

पार्लियामेंट के मजदूर दल के नेता श्रीयुत लेंसबरी, जो इस समय ब्रिटेन में भारत के सबसे बड़े और शक्तिशाली हितचिंतक कहे जा सकते हैं, साफ-साफ कह चुके हैं कि भारत को हमसे विशेष आशा नहीं रखनी चाहिए। उन्होंने पार्लियामेंट में बढ़ी हुई अनुदार दली भीड़ को देखकर ही अपनी शक्तिहीनता स्वीकार की है। ऐसी अवस्था में हमारे सामने केवल दो रास्ते रह जाते हैं। एक तो यह कि हम चुपचाप, बिना जबान खोले, यह स्वीकार कर लें कि ब्रिटेन हमारा शासक होने के नाते हमसे बड़ा है, हमें उसके नीच शासन से ही संतोष है और वह हमारे लिए जो निर्णय करे, हम उस पर अमल करेंगे। क्या ऐसा करने में हमारे आत्मसम्मान को कुछ भी धक्का नहीं लगेगा? ब्रिटेन हमसे किस बात में बड़ा है? क्या जनशक्ति में, अपनी मनुष्यता में या केवल अनुशासन के कारण हमसे बड़ा है? क्या पिछले गोलमेज सम्मेलन ने यह सिद्ध नहीं कर दिया कि केवल महात्मा गांधी का अध्यात्म बल ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं, अनेक भारतीय प्रतिनिधियों का राजनीतिक ज्ञान भी विलायत वालों के लिए श्रद्धा का विषय बन सकता है? क्या स्वयं सर सेमुएल होर ने अभी-अभी स्वीकार नहीं किया कि भारत के राजकाज के विशेषज्ञ प्रतिनिधियों से विधान के काम में सहायता मिली है और उनका सहयोग वे आगे भी चाहते हैं? जब भारत की यह योग्यता वे स्वीकार करते हैं तब उसे बराबरी के मंच पर बैठकर मंत्रणा करने का अधिकार क्यों नहीं है? क्या इसीलिए कि उससे अनुदार दल की नीति की रक्षा नहीं होती? पर क्या इसी क्षुद्र नीति की रक्षा के आशय से पार्लियामेंट के पवित्र प्रजातंत्र आसन से कही गई बातें अमान्य कर दी जाएंगी? भारत के सात समुद्र पार रहने वाले विलायत के कुछ विद्वेषी व्यक्तियों के कहने से क्या ब्रिटेन के सब राजनीतिज्ञ यह मान लेंगे कि सारा भारत अशिक्षित, उजड्ड, कलह प्रिय, अनेक खंडों में विभक्त, राष्ट्रीय भावना से हीन है और प्रजातंत्र की व्यवस्था यहां की ही नहीं जा सकती। क्या मिस्टर चर्चिल के कथनानुसार भारत का भाग्य निर्णय करने वाली पार्लियामेंट की संयुक्त कमेटी में लार्ड सभा के सदस्य इसीलिए भर्ती किए जाएंगे कि वे सब मिलकर भारत को प्रजातंत्र के क्लेशकारी अधिकारों से वंचित कर दें और उसे चिरकाल तक दासता की सुखद गोद में विश्राम करने के लिए रख छोड़ें? क्या ब्रिटिश राजनीतिज्ञता का तत्वज्ञान इसी चरम सीमा को पहुंचकर निर्वाण प्राप्त करता है? सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या भारत यह सब स्वीकार कर लेगा और इसी प्रकार होते रहने देगा?

इधर हाल के ही कुछ वर्षो का इतिहास बतलाता है कि भारत ने अपने आत्मसम्मान की हानि उठाकर ब्रिटेन को अपनी मनमानी नहीं करने दी। भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस और उदार दल की संस्थाओं ने, जो दोनों ही राष्ट्रीय भारत की प्रतिनिधि हैं, जनता में वह चेतना उत्पन्न की है जो अपनी मर्यादा रक्षा के लिए विशेष तत्पर रहती है। इनमें राष्ट्रीय कांग्रेस अधिक प्रगतिशील होने के कारण भारत के अधिकारों के लिए क्रियात्मक आंदोलन कर रही है। उसने यह समझ लिया है कि दासता ही सबसे अधिक आत्मसम्मान को चोट पहुंचाती है। इसलिए वह इसे ही दूर करने में अपनी प्रणाली के अनुसार लगी हुई है। दूसरी राष्ट्रीय संस्था, उदार दल भारत के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए विशेष रीति से तत्पर रही है। इस प्रकार जहां एक ओर कांग्रेस भारत के आत्मसम्मान को बढ़ाने के उद्योग में रहती है वहां उदार दल उसकी रक्षा में तत्पर है। इस दृष्टि से दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। पिछली बार गोरे साइमन के भारत आने पर दोनों ही ने मिलकर देश में उग्र विरोध प्रदर्शित किया था। इस बार कांग्रेस सत्याग्रह आंदोलन में लगी हुई है। लिबरल दल ने सरकार की नई नीति को भारत के आत्मसम्मान के विरुद्ध बतलाया है। वह पहले ही से कहता आ रहा है कि जब तक सब राष्ट्रीय दल मिलकर विधान के काम में सहायक नहीं होंगे, तब तक विधान बन जाने पर भी कागज के टुकड़े ही तैयार होंगे। अब ब्रिटिश सरकार ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे भारत के सब राष्ट्रीय दलों का एकत्र होना तो दूर, सब सरकार से ही दूर हो गए हैं। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने की जिम्मेदारी सर सेमुएल होर पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# 'सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें' और *सत्यार्थ प्रकाश*

हिंदी की सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में श्रीयुत सूर्यनाथ तकरू ने स्वामी दयानंद की *सत्यार्थ प्रकाश* का नाम नहीं लिया। सौ के अतिरिक्त जो फुटकर नाम आए हैं उनमें भी कहीं उसका उल्लेख नहीं है। इसका मतलब यह है कि हिंदी साहित्य की चहारदीवारी के भीतर तकरूजी उसका कोई स्थान नहीं समझते। क्या कृपा कर तकरूजी यह बतला सकते हैं कि उन्होंने अपने सामने कौन सी कसौटी रखकर परख की थी और चुनाव किया था? उनकी एक मात्र कसौटी जिस पर उन्होंने अपने निबंध में कई मर्तबा जोर दिया है विनोद और मनोरंजन की कसौटी है। जिससे दिल बहलाव हो, जो पढ़ने में मजेदार मालूम दे, वही साहित्य है। लेकिन *सत्यार्थ प्रकाश* में ही दिलबहलाव की मात्रा भी कम नहीं है। क्या आपने उसके वे समुल्लास पढ़े हैं जिनसे उन्होंने मुस्लिम, क्रिश्चियन, अद्वैतवादी आदि मतों का खंडन किया है? उनसे तो काफी मनोरंजन होता है। तकरूजी को यह तो मालूम ही होगा कि *सत्यार्थ प्रकाश* इस युग के सबसे बड़े क्रांतिकारी विचारक की कृति है, जिसकी तुलना संसार की युग परिवर्तनकारी कृतियों में की जा सकती है। यदि हिंदी के इस युग में एक भी ऐसी पुस्तक है जो देश भर में नए प्रकार से विचार करने की शक्ति उत्पन्न कर सकी है तो वह *सत्यार्थ प्रकाश* है। जिस समय यूरोप के इब्सन और बर्नार्ड शा बुद्धिवाद की नींव पर यूरोप में नई विचार परंपरा का आविर्भाव कर रहे थे उससे पहले *सत्यार्थ प्रकाश* लिखा जा चुका था। यदि भारत को स्वाधीनता प्राप्त होती, और वह सभ्य राष्ट्रों के सामने अपना साहित्य और अपने विचार प्रकट कर सकता तो *सत्यार्थ प्रकाश* को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त होती। पर वैसा न होने के कारण तकरूजी उसे 'हिंदी की सौ श्रेष्ठ पुस्तकों' और अनेक फुटकर पुस्तकों में भी स्थान नहीं देना चाहते। उनकी मर्जी।

# 'प्रसाद' 'निराला' 'पंत' (कुछ विशेष रेखाएं)–3

*आंसू* के अनंतर 'प्रसादजी' की कविता का वैसा परिपाक कहीं नहीं दीख पड़ता। *झरना* में कुछ अच्छी रचनाएं बहुत-सी साधारण कृतियों के साथ मिली होने के कारण अच्छा प्रभाव नहीं उत्पन्न करतीं। आधुनिक हिंदी में आदिम छायावादी कहलाने के कारण जयशंकरजी ने अपने बुद्धिवैभव के बल से अनेक बार ऐसे क्षेत्रों में प्रवेश किया है जहां वे प्रवासी के रूप में ही दीख पड़ते हैं। उनकी वाणी वहां प्रकृत नीति से कम ही झंकृत हुई है, उनके स्वर का निसर्ग उच्छ्वास वहां नहीं सुन पड़ता। इसका कारण ढूंढ़ने बहुत दूर नहीं जाना है। यह तो उनके विकास के साथ-साथ स्पष्ट दीख पड़ता है। प्रसादजी मनुष्यों के और मानवीय भावनाओं के कवि हैं। शेष प्रकृति यदि उनके लिए चैतन्य है तो भी मनुष्यसापेक्ष है। यह विकासभूमि यदि संकीर्ण है तो भी मनुष्यता के प्रति तीव्र आकर्षण से भरी हुई है। *आंसू* में प्रसादजी ने यह निश्चित रीति से प्रकट कर दिया है कि मानुषीय विरह-मिलन के इंगितों पर वे विराट प्रकृति को भी साज सजाकर नाच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नचा सकते हैं। यह शेष प्रकृति पर मनुष्यता के विजय का शंखनाद है। कवि जयशंकर प्रसाद का प्रकर्ष यहीं पर है। यहीं प्रसादजी प्रसादजी है। *आंसू* में वे वे हैं, अन्यत्र वे वे नहीं रह जाते। *झरना* में वे कितने ही बार मनुष्यता से असंपर्कित प्रकृति विषयक कविता करने बैठे हैं, कभी नहीं। कुछ गहन स्तरों में प्रवेश कर उसे रहस्यवाद का चोला भी पहना दिया है। पर वहां उनमें 'निरालाजी' का-सा निखार नहीं है, पंतजी का-सा तल्लीन वातावरण नहीं है—जो दोनों ही प्राकृतिक रहस्यवाद के परम अनिवार्य अंग हैं। इसे प्रसादजी की कृत्रिमता समझना चाहिए। *झरना* में 'विषाद' ही एकमात्र श्रेष्ठ कविता है और यह किसी हृदय का विषाद है। प्रकृति विषयक 'किरण' कविता ही अकेली अच्छी कोटि की है, बस नाटकों के गीतों में जहां कहीं नाटकपात्रों के उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर रहस्यमयी भावनाएं आप से आप खिल निकली हैं वहां रचनाएं स्वभाव-सुंदर बन गई हैं। पर जहां कहीं कृत्रिमता है वहां तो कृत्रिमता है ही। इसी कृत्रिमता का एक आनुषंगिक फल यह दीख पड़ता है कि *झरना* में और अन्यत्र भी कहीं-कहीं भावनाएं एकदम अपरिष्कृत हो गई हैं और उनसे अश्लीलता की महक भी निकलने लगी है। आश्चर्य है कि *आंसू* के बाद प्रसादजी ऐसी काव्यरचना में भी प्रवृत्त हुए हैं जो किसी प्रकार उनके उपयुक्त नहीं कहा जा सकती। इतनी उत्कृष्ट के साथ इतनी निकृष्ट रचनाएं बहुत कम कवियों ने की हैं। प्रसादजी के एक ऐसे काव्यसंग्रह की उत्कट आवश्यकता है जो इतर कृतियों से कट-छंटकर उनके अनुकूल बनाया जा सके।

जिस व्यक्ति ने अपने नाटकों में, उपन्यास और कहानियों में भी अनेक-अनेक मनुष्य चरित्रों और मानव भावनाओं का अंकन किया है उसकी विकास दिशा न समझना हिंदी के प्रकांड समीक्षकों की दिव्य अंतर्दृष्टि का ही नमूना है। हमारे विश्वविद्यालयों के गंभीरतावादी महानुभाव, जो सनातन शास्त्रीय पद्धति पर साहित्य सिद्धांतों का संग्रह करने में महाराज दक्ष के लक्षणों का लक्ष्यभेद कर चुके हैं, पर जिनका सामयिक साहित्य की ध्वनि परीक्षा करने का व्यावहारिक ज्ञान कछुए के मुंह के समान सदैव काया प्रवेश ही किए रहता है—उक्त अंतर्दृष्टि के बहुत बड़े हिस्सेदार हैं। अपनी क्षुधातृप्ति के लिए यदा-कदा जब इनकी जीभ खुलती है तो एक ही लपेट में किसी को अभारतीय बनाती हुई अपना काम बना लेती है। बस फिर वही कायाप्रवेश। क्या आश्चर्य है यदि सामयिक साहित्य को इन्हीं के कारण वांछित प्रगति न प्राप्त हो रही हो। यह ही अंतराय बनकर अभ्युदयशील साहित्यिकों में दिग्भ्रम उत्पन्न करते हैं। इनसे सचेत रहना हम सबका काम है। बाबू जयशंकर प्रसाद सूफी नहीं हैं, यद्यपि आचार्यगण उन्हें बनाते रहते हैं। जिस व्यक्ति ने 'चाणक्य' की सृष्टि की है, 'घंटी' और 'यमुना' की सृष्टि की है, अपनी प्रशंसा और स्तुति द्वारा, अपने वर्णन और चित्रण द्वारा, अपने व्यंग्य और उपहास द्वारा भी, जो अपनी कल्पना के अनुकूल सच्ची मनुष्यता की स्थापना की चेष्टा कर रहा है, जिसकी कविता मानवीय संयोग और वियोग से हलकी और बोझिल हुई है वह स्पष्टतः मनुष्यों का कवि है। मनुष्यों के जीवन में जो कुछ रहस्य है, छाया की भांति जो कुछ सूक्ष्म किंतु अनुभवगम्य है—वही जयशंकरजी का प्रकृत रहस्यवाद अथवा छायावाद है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है प्रायः सब मिथ्या है, नकल है। प्रसादजी का अपना छायावाद कहां है? *आंसू* की इन पंक्तियों में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



*मानव जीवन वेदी पर*
*परिणय है विरह मिलन का*
*दुख सुख दोनों नाचेंगे*
*है खेल आंख का मन का।*
*नाचती नियति नटी सी*
*कंदुक क्रीड़ा-सी करती*
*इस व्यथित विश्व आंगन में*
*अपना अतृप्त मन भरती।*
*हो उदासीन दोनों से*
*दुख सुख से मेल कराए*
*ममता की हानि उठाकर*
*दो रूठे हुए मनाएं।*

अथवा अनेक बार उद्धृत इन पंक्तियों में—

*चढ़कर मेरे जीवन रथ पर*
*प्रलय चल रहा अपने पथ पर*
*मैंने निज दुर्बल पद बल पर*
*उससे हारी होड़ लगाई।*

अथवा हाल में प्रकाशित 'जागरण' गान में।

यहां कहीं सूफी रहस्यवाद नहीं। इसे आप मनुष्य जीवन का रहस्य कह सकते हैं। यह जिंदगी के साथ बराबरी का समझौता है—जीवन का औपनिवेशिक स्वराज्य है। प्रसादजी ने जीवन की कठोर व्यावहारिकता स्वीकार की है, पर आशावाद के साथ। यह दृढ़ मनस्विता ही प्रसादजी की विशेषता है। यही उनका रहस्यवाद और छायावाद है। इसे उनकी मानवीय कविता का उपसंहार कहिए या उपहार कहिए। इसके अतिरिक्त हम प्रसादजी के किसी दूसरे छायावाद के भक्त नहीं हैं।

हमने जिस प्रकार 'प्रसादजी' का विकास दिखाया, उसी के अनुरूप देखते हैं कि वे संप्रति एक काव्यग्रंथ लिख रहे हैं जो पूर्णतः मानवकाव्य कहला सकेगा। इसका आख्यान वैदिक है यद्यपि वैदिक साहित्य की भांति बीज रूप में ही है। आदिम पुरुष मनु और उनकी आदिम सहचरी श्रद्धा के नाम वेदों में आए हैं। उनके संबंध की कुछ घटनाएं भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। प्रसादजी ने उनका संग्रह किया है और उसी मेरुदंड पर अपने काव्य का शरीर संघटन कर रहे हैं। इतने ही से समझा जा सकता है कि कितना दृढ़ शरीर संघटन होगा। आशा है कि यह काव्य जयशंकरजी की काव्य साधना का सुमेरु, उनकी कीर्ति को स्थायित्व प्रदान करेगा। अभी तक जितना अंश हमें सुनाया गया है—काव्य के सात सर्ग समाप्त हो चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं—उसमें आदिम पुरुष और स्त्री की—यही क्यों न कहें कि वास्तविक पुरुष और स्त्री की—मूलप्रकृति और मनोवृत्तियों का चित्रण है। यद्यपि काव्य को ऐतिहासिकता का पुट प्राप्त हो जाने से वह अधिक पुष्ट ही होगा, पर वह ऐतिहासिकता ऐसी नहीं होगी जो किसी प्रकार मानव-प्रकृति और मानव-मनोविज्ञान के अनुरूप हो। वैदिक आख्यानों से ऐसी आशा करनी तत्वदर्शी ऋषियों पर आक्षेप कर स्वतः उपहासपात्र बनना है। पूरे काव्य को 'प्रसादजी' किस रूप से समाप्त करेंगे, यह हम नहीं कह सकते। पर हम यह कह सकते हैं कि अब तक शरीर वृत्तियों का चित्रण किया गया है। यदि मनुष्य को अवस्थाओं की दृष्टि से देखें तो अब तक यौवन काल का प्रवेश हुआ है। नारी की लज्जा, पुरुष की वासनाएं इसी अवस्था में विकास पाती हैं। पुरुष के अनेक उद्यम कर्मकांड इसी अवस्था में क्रियमाण होते हैं। ये ही चित्रण अब तक काव्य में किए गए हैं। कार्यवृत्तियों के अतिरिक्त यदि मानव संघटन में कुछ और है तो उसे आगे आना चाहिए। यदि यौवन काल के उपरांत कोई काल है और उसकी कुछ विशेषताएं हैं तो आगे दीख पड़ेंगी। हम पूर्ण मनुष्यता का रूप देखना चाहते हैं। देखें 'प्रसादजी' उसे किस रूप में दिखाते हैं। यदि इस समय हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं तो यही कि जो काव्य वैदिक आख्यान के मेरुदंड पर निर्मित हो रहा है वह मनुष्यता के अध्यात्मपक्ष की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार पश्चातूपद नहीं होगा। काव्य से संभावित नामकरण *जागरण* को देखते हुए हमारा यह अनुमान और भी पुष्ट होता है। *आंसू* के कवि से हमें ऐसी ही आशा भी है। मनुष्य जीवन में शरीर भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है। आधुनिक शब्दावली में जिसे यथार्थवाद कहते हैं और जिसे आदर्शवाद कहते हैं, दोनों ही वास्तविक हैं। दोनों का मणिकांचन योग, यही यथार्थ आदर्श मनुष्यता है। यह देवत्व नहीं, मनुष्यत्व है। यदि प्रसादजी अपने काव्य में इसी का चित्रण कर रहे हैं तो वहां वे अपनी प्रकृत भूमि में हैं। अतः आशा की जाती है कि मनुष्यता का वास्तविक चित्र उपस्थित करने वाला वह काव्य साहित्य की स्थायी संपत्ति होगा। पर दुःख है वह गंभीरतावादी समालोचकों की इस ऐषणा की पूर्ति न कर सकेगा कि प्रसादजी सूफी-काव्य करते हैं। क्या वे अपनी ऐषणा का त्याग कर सकेंगे? आशा नहीं है। जो ऊपर ही ऊपर भारतीयता की खोज-बीन किया करते हैं वे भी कुछ अंतरंग में प्रवेश कर मनुष्यता की झलक देखने की चेष्टा करें तो संभव है, 'प्रसादजी' उन्हें कुछ अधिक सहायता पहुंचा सकें। पर जिनमें न भारतीयता है, न मनुष्यता है वे क्या करें?

(रविवार, 24 जुलाई 1932)

## हिंदी संपादक-सम्मेलन—2

इंदौर के आगामी हिंदी संपादक सम्मेलन में विचार किए जाने के लिए हमने पिछले एक अग्रलेख में कुछ प्रस्ताव रखे थे। कलकत्ता से निकलने वाले *लोकमान्य* नाम के अखबार ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उन पर टिप्पणी करते हुए यह साबित कर दिया कि हिंदी में ऐसे पत्र और पत्रकार भी मौजूद हैं जो किसी नई स्कीम को समझने तक की शक्ति नहीं रखते, नए विचारों की सृष्टि करना तो स्वप्न देखना है। हिंदी की दरिद्रता का प्रत्यक्ष पता ऐसे ही पत्रों से लगता है जो स्वतः कुछ कर नहीं सकते, दूसरों को करते देख नहीं सकते। ये पत्र अपने विषय के अज्ञ होने के कारण कभी-कभी ऐसे स्थानों से विचारों की भीख मांगते देखे जाते हैं जहां जाने में किसी भी विचारवान पत्रकार को आत्मग्लानि का अनुभव होगा। ऐसी ही परिस्थिति में पड़े हुए हिंदी पत्रों की दयनीय दशा हो रही है। तथापि तलब बढ़वाने, बोनस मांगने आदि से ये बाज नहीं आते बल्कि इसी उद्देश्य से पत्रकारों का संघटन करना चाहते हैं। हम यह अंतिम बार कह रहे हैं कि ऐसे उद्देश्यों को लेकर ये पत्रकार जो संघटन करेंगे वह किसी प्रकार संघटन कहलाने योग्य न होगा। वह अधिक से अधिक गुटबंदी कहलाएगी जो जरा से झटके में टूटकर खंड-खंड हो जाएगी। जो बात सबसे पहले और अत्यंत मनोनिवेशपूर्वक विचार करने की है वह यह है कि हिंदी के पत्रकारों की योग्यता क्या है। उनका यह रोना कहां तक ध्यान देने योग्य है कि उनका वेतन कम है, उनकी कोई कद्र नहीं करता, बुढ़ापे में उन्हें नौकरी नहीं मिलती। इस विषय में भावुकता का प्रदर्शन करने से कोई उबार नहीं लेगा। हमारे *लोकमान्य* महाशय जो हमें भावुक बतलाने की कोशिश करते हैं, जरा माथा लड़ाकर देखें कि यह कितना व्यावहारिक सवाल है। यही वह मौलिक प्रश्न है जिसके सामने पत्रकारों के बड़े-बड़े संघटनों की कल्पना नितांत तुच्छ है। हिंदी में सचमुच बहुत थोड़े पत्रकार हैं जिनका मौजूदा वेतन कम समझा जाए। बहुतों को तो योग्यता से अधिक तलब मिल रही है। बोनस वगैरह के लिए अरझना नेगियों की तरह भीख मांगना है। हम जैसे मेहमान हैं वैसा ही हमारा सत्कार किया जाएगा। हम समझ तो नहीं सकते जरा सी बात, बने हुए हैं हिंदी के संपादक और बगुला की तरह ध्यान लगाए बैठे हैं कि हमें यह भी मिले, वह भी मिले और बोनस भी मिले। कुछ भी नहीं मिलेगा।

जरा खयाल करने की बात है कि इस कठिन प्रतियोगिता के जमाने में किसी पत्र-संचालक को क्या जरूरत पड़ी है, उसे कौन सी मजबूरी है कि वह किसी को नौकरी का पट्टा लिख देगा जब कि उसे उससे भी कम वेतन में और अच्छे पत्रकार मिलते हैं। अगर वह ऐसा करे तो उसकी भलमनसाहत भले हो, व्यापारबुद्धि नहीं है। इस भलमनसाहत की नींव पर भावुकता के पुल बांधना अपनी कमजोरी साबित करना है। हम बिना अपने पत्रकारों की योग्यता और अपने पत्रों द्वारा प्रस्तुत सामग्री को देखे यह शोर मचाते फिरते हैं कि हमारी कोई कद्र नहीं करता, हम देश के राजनीतिक उद्योगों में शरीक नहीं किए जाते, वगैरह, वगैरह। इस शोर मचाने से किसी की सहानुभूति नहीं हो सकती। न जनता की, नेताओं की और न पत्र-संचालकों की। सिर चाहे जितना पीटें। सबसे पहले हम इस अत्यंत व्यावहारिक प्रश्न पर क्यों नहीं ध्यान देते कि इस जनतावाद के युग में हमने कितना जनबल अपने पत्रों के पीछे एकत्र किया है। कितनी शक्ति ऐसी है जिसे हम अपनी शक्ति कह सकें। अंग्रेजी अखबारों की कल की खबरों को, उनकी कल की बासी टिप्पणियों को हम आज अपने पत्रों में भरते हैं और आशा करते हैं कि हम राष्ट्र के नेता बनेंगे और देश के महत्वपूर्ण संधि-समझौते में बुलाए जाएंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपनी गलती से, कानून का ज्ञान न होने के कारण, आप कुछ अंट-संट संपादकीय लेख लिख डालते हैं और बदले में जेल का दरवाजा दिखा दिया जाता है तो क्या आप समझते हैं कि आपने कोई बहुत बड़ी देश सेवा कर डाली? कितने ऐसे संपादक हिंदी में हैं जो अपनी कानूनी जिम्मेदारी को समझते हुए, शुद्ध सत्य की रक्षा के लिए लेख लिखते और जेल जाते हैं। रपट पड़े की हरगंगा से मुक्ति नहीं मिल सकती। फिर जो लोग अपनी रक्षा के लिए दूसरों को बलि का बकरा बनाने का नैतिक पाप करते हैं वे जब 'वरुण करुण' का बुर्का पहनकर संपादकों की आयु का लेखा लगाते और उसके आधार पर रिमार्क पास करते हैं, तब अपना अस्तित्व भूल जाते हैं और ईश्वर से भी नहीं डरते।

दो बातें अत्यंत व्यावहारिक रीति से, संपूर्ण भावुकता का बहिष्कार करके, विचारणीय हैं। एक तो यह कि हिंदी के संपादकों की विद्याबुद्धि कितनी निम्नकोटि की है और दूसरी अपनी शक्ति बढ़ाने का क्या उपाय है। पहली बात की जानकारी हो जाने के बाद वेतन, बोनस वगैरह के सवाल अत्यंत गौण हो जाएंगे (हम नहीं कहते कि ये सवाल खड़े ही न किए जाएं) और दूसरी बात की जानकारी हो जाने के बाद हम अत्यंत आवश्यक समझकर वर्तमान हिंदी पत्र-संपादन के अवगुणों का त्याग करेंगे और ऐसे कार्यक्रम पर विचार करेंगे जिससे हमारी उन्नति होगी। फिलहाल आपको इस बात का निश्चय हो जाना चाहिए कि आपकी योग्यता विशेष रीति से परिमित है। साहित्य, विज्ञान आदि तो दूर आप मामूली से मामूली नित्यप्रति की राजनीति से परिचित नहीं हैं। जिस भाषा में ऐसे पत्र निकल रहे हैं जो 'आप छायावाद की निंदा-स्तुति करते रहिए' के वाक्य को व्यंग्य समझते हैं, उसकी भगवान ही रक्षा करें। हमारे पत्रकारों को यह मालूम नहीं है कि देश की प्रत्येक दिशा की प्रगति से परिचित होना संपादक का आदिम कर्तव्य है। चुटकुले सभी लिख लेते हैं। हिंदी पत्रों के 'वरुण करुण' वगैरह कभी पंडित सकलनारायण शर्मा के मिस, कभी स्वयं ही, अपनी तारीफ कर लेने का अवसर हाथ से नहीं जाने देते। पर यह संपादक-धर्म नहीं है। बगैर किसी सिद्धांत के, बिना कानूनी जिम्मेदारी समझे आग उगलते रहने में क्या रखा है जबकि मौका आते ही दूसरे आदमी को कष्ट झेलने के लिए छोड़कर, नए नाम का पत्र निकाल डाला जाता है। इतनी निम्नकोटि की नैतिक वृत्ति रखने वाले आदमी का, हिंदी संपादक-मंडल का उपदेशक बनना विशेष धृष्ट मनोवृत्ति की सूचना है।

आपको यह स्वीकार ही करना होगा कि फिलहाल हिंदी का पत्र-संपादन विशेष निम्नकोटि का है। भावुकता दिखाकर कुछ और न सोचिए। इस कठोर सत्य को कोई टाल नहीं सकता। इसके बाद अब विचार करने की बात यह है कि कौन-कौन से उपाय काम में लाए जाएं, जिससे हिंदी पत्रकारों की शक्ति का विकास हो। जब तक आप अपनी मौजूदा गिरी हुई हालत से संतोष किए रहेंगे और चार-पांच अथवा अधिक से अधिक दस हजार ग्राहकों की कल्पना से सुखी बने रहेंगे तब तक आप प्रत्येक नई स्कीम को भावुकता और अव्यावहारिकता की नजर से जरूर ही देखेंगे। पर आपके देखने से वह भावुक नहीं हो सकती। आपको सब पहलुओं से विचार करना चाहिए। जब तक आप यह मान न लेंगे कि इस समय हमारे हिंदी पत्र जगत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हम अंग्रेजी की नकल न कर स्वतंत्र रीति से अपनी शक्ति का विकास करें, जब तक हमारे पत्रों के ग्राहक ऐसे नहीं हो जाते जो हमें छोड़कर अंग्रेजी पत्रों का मुंह देखने की स्पृहा न करें, तब तक हमारा पत्र संपादन केवल अनुकरण है। चाहे किसी भी क्षेत्र की हों, आप कुछ नई बातें बतलाइए, आप कुछ नए तथ्यों पर प्रकाश डालिए। *भारत* यदि और कुछ नहीं करता, केवल सामयिक साहित्य पर अधिकारपूर्ण सम्मति देता है तो भी वह औरों से अधिक करता है। *प्रताप* यदि और कुछ नहीं करता केवल ग्रामीण जनता के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानकर प्रकट करता है तो औरों से बहुत अधिक करता है। आपको यह पता ही नहीं है कि राष्ट्र की कितनी विकास-दिशाएं हैं। एक-एक मनुष्य में कितनी-कितनी अभिरुचियां हैं, कितने उद्योग हैं, कितने स्वार्थ हैं। आप इन सबको समष्टि रूप से जितना ही अधिक तृप्त कर सकेंगे आपका पत्र उतना ही शक्तिशाली बनेगा। गर्म हेडिंग लगाना बहुत थोड़े समय के लिए काम दे सकता है, यदि सारा देश का देश ही 'सनसनीपसंद' बन जाए तो बात दूसरी है। पर पत्रकारों को तो यह भी सोचना है कि यह कहां तक उचित है।

यह तो आप जानते हैं कि अंग्रेजी की खबरों का अनुवाद हिंदी के सभी दैनिक पत्र अलग-अलग करते हैं। मान लीजिए आप और कोई परिवर्तन नहीं करना चाहते तो भी क्या आपकी समझ में यह रोजमर्रा की बात नहीं आती कि प्रत्येक दफ्तर में इस काम के लिए अलग-अलग आदमी लगे हुए हैं जिससे अधिक व्यय होता है। यह भाषा की एकरूपता का सवाल नहीं है और न रोमन लिपि में तार भेजने का सवाल है—यह सवाल है पैसे का। कलकत्ता से चार हिंदी दैनिक निकलते हैं। ऐसा प्रबंध किया जाए तो क्या हानि है कि एक ही दैनिक का अनुवाद विभाग काम करता रहे और बाकी तोड़ दिए जाएं? इसमें नए सिरे से दफ्तर खोलने का सवाल कहां है? यह तो कोरा मितव्ययिता का सवाल है। उस एक दफ्तर में जिन तारों का अनुवाद होता जाए उनकी नकल चारों दफ्तरों में भेजी जाती रहे। नकल के लिए अधिक से अधिक दो आदमी और रख लीजिए। फिर भी शेष तीनों पत्रों का पूरा-पूरा अनुवाद-विभाग तो काम से छुट्टी पा गया। पा गया या नहीं? अब आप इन व्यक्तियों का उपयोग अन्य दिशाओं में कीजिए जिससे आप नई, सत्य, प्रभावशाली सामग्री चारों पत्रों में दे सकें जिससे उनकी शक्ति बढ़े और अंग्रेजी-अखबारों के पुराने संस्करण बने रहने से उनका पिंड छूटे।

आशा है इस क, ख, ग, को हमारे 'वरुण' देव अब समझ गए होंगे। रुपयों-पैसों के लिए रोज-रोज भटकते रहने से उनका जो कटु अनुभव हुआ है उसे हम काफी तौर पर समझते हैं, पर हमने तो ऐसी कोई बात नहीं कही जिससे उन्हें यह भय हो कि अब और अधिक भटकना होगा। हम तो स्वयं बहुत-सी फिजूलखर्ची कम कर रहे हैं और बचे हुए रुपयों का उपयोग हिंदी पत्रों और पत्रकारों की समृद्धि के लिए करना चाहते हैं। ऊपर हमने एक केंद्र कलकत्ता को लेकर जो प्रस्ताव किए, हमें देखना है कि उनका और अधिक विस्तार हो सकता है या नहीं। प्रयाग, काशी, कानपुर और लखनऊ आदि के पत्रों में भी ऐसा ही संघ स्थापित किया जा सकता है या नहीं जिससे अलग-अलग एक ही काम न होकर एक जगह हो। काशी से प्रयाग का किराया लगभग डेढ़ रुपया है। महीने भर में 45 रु. हुए। एक चपरासी का वेतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



15 रुपया रखिए। साठ रुपए का खर्च है। रोज शाम को काशी ट्रेन जाती है। यदि प्रयाग से शाम तक तारों का अनुवाद करके उनकी नकल ट्रेन से चपरासी द्वारा काशी भेज दी जाए तो दूसरे दिन *आज* अखबार सुबह आसानी से निकल सकता है। अथवा सुबह भेजी जाए तो *आज* शाम को निकले, खर्च साठ रुपये का है। और अभी कितना खर्च है? हम समझते हैं उसका कम से कम दूना-तिगुना। क्या यह कुछ भी लाभ नहीं है?

जब निकट के केंद्रों से निकलने वाले संवाद पत्रों का संघ इस प्रकार स्थापित हो जाए तो हमें सोचना होगा कि कोई व्यापक देशव्यापी योजना भी की जा सकती है या नहीं। इस योजना की कल्पना भी हमारे मस्तिष्क में है और हमने उसकी रूपरेखा पिछले लेख में खींची भी थी। संभव है, हिंदी पत्रों में संघटन के अभाव के कारण अथवा देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति के कारण वैसी योजना फिलहाल कार्यान्वित न की जा सके पर इसमें हमें कुछ भी संदेह नहीं दीख पड़ता कि शीघ्र ही एक ऐसी व्यावहारिक योजना के बिना हिंदी पत्रों की उन्नति नहीं हो सकती। संभव है, सरकार के वर्तमान रुख के कारण हिंदी पत्रों को अभी रोमन में तार भेजने के सुभीते न दिए जाएं पर कभी न कभी उन्हें प्राप्त करना ही होगा। हम यह नहीं समझ सके कि इनमें भावुकता क्या है जब कि हम देख रहे हैं कि ये बातें सुचिंतित उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर कही जा रही हैं।

'वरुणजी' को सबसे बड़ी चिंता यह दीख पड़ती है कि मद्रास, सीमा प्रांत आदि की खबरें कौन भेजेगा और कहां भेजेगा? पूरी रामायण हो जाने पर अब आपको यह शंका उत्पन्न हुई है। उत्तर में निवेदन है कि अभी कौन भेजता है और कहां भेजता है? एसोसिएटेड प्रेस, फ्री-प्रेस, विशेष संवाददाता, संवाददाता, ये ही न? ये ही भविष्य में भी भेजते रहेंगे। अंतर यही होगा कि ये कलकत्ते के चारों पत्रों में न भेजे जाकर एक पत्र में भेजे जाएंगे जहां से इनका अनुवाद शेष तीनों को पहुंचाया जाएगा। इस सहयोग से यह सुभीता होगा कि एक केंद्रीय संस्था हो जाने से, उतने ही खर्च में, अधिक तार लिये जा सकेंगे। आप अब रूटर भी ले सकेंगे। हम समझते हैं इससे न्यूज एजेंसियों को कुछ ऐतराज न होगा, पर यदि कुछ होगा तो कानूनी विशेषज्ञों की सलाह से उनके साथ समझौता किया जाएगा।

अनुवाद विभाग के जो कर्मचारी अपने काम से छुट्टी पर जाएं उनका उपयोग आप जिस तरह चाहिए कीजिए। आपका कलकत्ते का पत्र है तो आप बंगाल के देहातों में उन्हें भेजिए कि वे नित्यप्रति के नारी निर्यातन, अकालमृत्यु, रोग-विभीषिका, रास, कीर्तन, मेघोदय के उत्सव, बंगीय समाज का संपूर्ण सजीव चित्र अंकित कर आपके पास भेजा करें। आपको यह मालूम नहीं है कि स्थानीय और आसपास की घटनाओं से पाठकों की जितनी दिलचस्पी होती है उतनी दूर के वृत्तांतों से नहीं होती। तभी तो आप मद्रास, सीमा प्रांत आदि के लिए काफी से ज्यादा लालायित हैं। अभी आपको यह पता नहीं है कि एक-एक जिले के पत्र एक-एक लाख की संख्या में बिकते हैं और हिंदी में भी समय आते ही बिकने लगेंगे। आप अपने पड़ोसियों के सुख-दुःख, उद्योग-बेकारी में उनका साथ नहीं देंगे तो मद्रास से दूर की कौड़ी लाना किसी काम का नहीं होगा। जरूर यह सच है कि इस समय देश में एकराष्ट्रीयता का प्रचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करने की भी आवश्यकता है पर इसका यह उपाय नहीं कि आप अपने आसपास के जीवन में हाथ न बंटाकर मद्रास मद्रास चिल्लाते रहें। मद्रास के लिए एसोसिएटेड प्रेस काफी है, आप अपने देहातों में अपने आदमी भेजिए।

इस संपूर्ण कार्यक्रम का इतना स्पष्ट चित्र हमारे सामने है कि हम इसे अव्यावहारिक कही नहीं सकते। हां, एक कठिनाई जरूर है जिससे हम मुंह नहीं मोड़ सकते। वह कठिनाई यह है कि संपादकीय विभाग के जो व्यक्ति शहरों में रह रहे हैं उनमें से अनेक देहातों में घूमना पसंद नहीं करेंगे। शायद यह कहने से उन्हें कुछ संतोष मिले कि उनका हेडक्वार्टर किसी आसपास के शहर या कस्बे में रहेगा और वहीं से वे देहातों की हरीतिमा में प्रवेश करेंगे। पत्रों की दशा में नई स्कीम से जैसे-जैसे सुधार होता जाएगा, वैसे ही उनके वेतन भी बढ़ाए जाएंगे और उनके लिए यात्रा की सुविधा, बीमारी की दवा, परिचर्या आदि का भी प्रबंध किया जाएगा। यदि इसे वे स्वीकार न करें तो हमें विवश होकर नए, उपयुक्त आदमी रखने होंगे। एक दूसरी कठिनाई भी हमें दिखाई देती है, वह है ग्रामीण-समाज की आर्थिक दुर्दशा और अशिक्षा। अभी कुछ दिनों यह आशा करना ठीक न होगा कि देहातों में हमारे पत्र का प्रवेश बड़ी तादाद में होगा। पर धीरे-धीरे यह अवश्य होगा। नागरिक जनता भी देहात के समाचारों को पाकर अधिक प्रसन्न होगी और नगरों में भी पत्र की ग्राहक संख्या बढ़ेगी।

केवल एक जगह 'रोमन लिपि' शब्द आ जाने से ही और दूसरी जगह 'भाषा में एकरूपता बढ़ेगी' की बात सुनकर ही 'वरुणजी' को नाराज न होना चाहिए। यह सब तो आनुषंगिक बातें हैं। मुख्य समस्या तो यह है कि आप कितने पिछड़े हुए हैं। यदि सरकार आपकी बात मान ले और किसी प्रकार हिंदी में तार भेजे जाने लगे तब 'रोमन' की जरूरत किसको है? आप भाषा की एकरूपता नहीं चाहते, न चाहिए। हम भी उस उद्देश्य से प्रस्ताव नहीं कर रहे। वह तो सिलसिले की बात थी। मुख्य प्रश्न और गौण प्रश्न में भेद करने की हममें बुद्धि होनी चाहिए। आप अधिक व्यय की कल्पना से डरकर चुपचाप हाथ-पैर ढीले कर देना चाहते हैं। मैं सोच रहा हूं कि उतने ही खर्च में किस प्रकार अधिक से अधिक उन्नति की जा सकती है, शक्ति संचय की जा सकती है। हमारा-आपका यही दृष्टि भेद है। आशा है, इसे समझकर 'वरुण' महाराज अब प्रसन्न होंगे और पानी बरसेगा। इधर हमारे प्रांत में वर्षा की बड़ी कोताही हो रही है—जरूरत भी है।

## पं. जवाहरलाल नेहरू से भेंट

पिछले कुछ दिनों में पं. जवाहरलाल नेहरू से उनके परिवार की भेंट न होने देने से बाबत जो खबरें फैली हुई हैं वे बतौर अफवाह होते हुए भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। पहले-पहल *लीडर* में और अफवाहों के साथ यह अफवाह भी प्रकाशित हुई कि पिछली बार श्री रणजीत पंडित से भेंट करने के सिलसिले में श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने जेलर को दुर्वचन कहे जिसके फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पं. जवाहरलाल नेहरू से भी एक महीने तक भेंट बंद कर दी गई। यह अफवाह अंग्रेजी और हिंदी के भिन्न-भिन्न अखबरों में छपी और इसकी तसदीक जेलों के इंस्पेक्टर जनरल के उस पत्र से भी हुई जो उन्होंने जवाहरलालजी के पत्र के उत्तर में उन्हें लिखा था। पं. जवाहरलालजी ने इस पत्र का सर्वथा उचित उत्तर दिया है कि वे अपनी माता के विरुद्ध इस प्रकार का इल्जाम अनुचित समझते हैं और यदि सरकार सत्य बात की जांच नहीं करती तो वे अपनी सब इंटरव्यू बंद कर देंगे। जवाहरलाल नेहरूजी जैसे स्वाभिमानी व्यक्ति इसके सिवा और कर ही क्या सकते हैं। नेहरूजी की पत्नी श्रीमती कमलाजी ने भी अपने प्रति किए गए आरोप को असत्य बतलाया है और स्पष्ट कहा है कि सरकार को मामले की जांच कर अपना भ्रम दूर कर डालना चाहिए। पूज्य स्वरूप रानीजी ने उस विषय की जो विज्ञप्ति दी है वह *भारत* के पिछले अंक में प्रकाशित हो चुकी है। उसके अनुसार श्रीयुत रणजीत पंडितजी से भेंट करने के समय उन्होंने जेलर के व्यवहार के प्रतिवाद में जो कुछ कहा वह दुर्वचन नहीं कहा जा सकता—गाली तो उसे कोई कही नहीं सकता। श्री इंदिरा नेहरू ने जो चिट श्री पंडित को दिखाई उसमें उनके छोटे-छोटे बच्चों का स्वास्थ्य संबंधी विवरण था। यदि यह जेल के नियमों के प्रतिकूल भी हो तो भी मनुष्यता के नाते संगत है। जेलों में कितने नियमों का उल्लंघन नहीं होता? श्रीमती मोतीलाल नेहरू देश की एक परम पूज्य महिला हैं। वे स्वर्गीय पं. मोतीलालजी की धर्मपत्नी हैं जो अपनी सभ्यता और भद्र पुरुषोचित गुणों के लिए देश-विदेशों में भी ख्यात थे। उनकी पत्नी जेल के नियमों का उल्लंघन करेंगी और जेलर को दुर्वचन कहेंगी—गाली देंगी, इस पर विश्वास नहीं होता। पत्रों में जो अफवाह फैली थी वह कहां से उड़ी? इसकी जांच की जानी चाहिए। यहां यह सवाल पीछे पड़ जाता है कि पं. जवाहरलालजी की भेंट रुक गई, मुख्य सवाल यह सामने आता है कि श्रीमती मोतीलाल नेहरू के संबंध में ऐसी बात फैलाने का नतीजा क्या हुआ। हम समझते हैं इससे भारतीय महिला समाज की मर्यादा को चोट पहुंच सकती है। चूंकि अन्य पत्रों के संपादकों के साथ-साथ हमने भी वह अफवाह *भारत* में प्रकाशित की थी इसलिए पूज्य स्वरूप रानीजी के खंडन के बाद हम दुःख प्रकट करते हैं कि ऐसी अफवाह फैलाने में योग देकर हमने उन्हें व्यक्तिगत तौर पर दुःखी किया। श्रीमती नेहरू की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को इस अफवाह से धक्का पहुंचा हो तो हम विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थी हैं। आशा है, सरकार भी इस विषय में जांच करके अपनी विज्ञप्ति प्रकाशित कर देगी।

(गुरुवार, 28 जुलाई 1932)

## सांप्रदायिक फैसला

कहा नहीं जा सकता कि सरकार भारत के सांप्रदायिक विषय का जो फैसला शीघ्र ही सुनाने वाली है वह वही है जो *बांबे क्रॉनिकल* की भविष्यवाणी से लेकर हमने अपने पिछले अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में उद्धृत किया है, या कुछ दूसरा है। स्वयं *क्रॉनिकल* के ज्योतिषी ने अपने लिए यह गुंजाइश रख छोड़ी है कि ओटावा सम्मेलन की गतिविधि देखकर सरकार इस सांप्रदायिक निर्णय में रद्दोबदल भी कर सकती है, इसलिए अभी बहुत कुछ अनुमान लड़ाने की जगह बाकी है। पर मान लीजिए वह भविष्यवाणी सच ही है तब उसका क्या प्रभाव भारत के लोकमत पर पड़ेगा? जो प्रभाव पड़ सकता है उसके लक्षण थोड़े-बहुत दीख भी पड़ने लगे हैं। पंजाब के सर्वदल सिख संप्रदाय ने एकत्र होकर सरकार से आग्रह किया है कि वह पंजाब में स्थायी अटल मुस्लिम राज्य न स्थापित करे, नहीं तो सिखों को यह सहन न होगा। ध्यान देने की बात है कि सिखों में अब तक कई दल रहे हैं जिनका विचारविभेद के कारण एकत्र होना प्रायः असंभव समझा जाता रहा है। पर वे पंजाब की व्यवस्था-सभा में मुसलमानों का 51 प्रतिशत का स्थायी प्रतिनिधित्व देखकर विशेष शंकित और क्षुब्ध हुए हैं और अपना भेदभाव भुला दिया है। राष्ट्रीय मुस्लिम दल के डॉक्टर महमूद ने निर्णय पर टिप्पणी की ् कि कांग्रेस तो मुसलमानों को इससे अधिक दे रही थी। इससे अधिक का क्या मतलब है यह साफ नहीं हुआ, पर राष्ट्रीय मुसलमानों के प्रमुख नेता डॉक्टर अंसारी की अंतिम विज्ञप्ति यह है कि उन्होंने पृथक निर्वाचन का कभी समर्थन नहीं किया और वे सदैव बालिग मताधिकार के आधार पर सम्मिलित निर्वाचन के पक्षपाती रहे हैं। इससे यदि कुछ अनुमान किया जा सकता है तो यही कि मुसलमानों का प्रगतिशील दल पृथक निर्वाचन की घोषणा से किसी प्रकार सहमत नहीं है। राष्ट्रीय कांग्रेस, उदारदल, हिंदू महासभा, अधिकांश अछूत, मजदूर आदि आदि प्रायः सभी बड़े वर्ग सम्मिलित निर्वाचन के लिए आग्रह कर रहे हैं इसलिए इनके संतुष्ट होने का तो सवाल ही नहीं है।

इस कथित निर्णय का सबसे महत्वपूर्ण अंश यह है जिसके अनुसार सात वर्षों तक पृथक निर्वाचन की विधि स्वीकार कर ली गई है। सात वर्षों के बाद क्या होगा यह मालूम नहीं कराया गया पर मालूम कर लिया जा सकता है। पिछली बार लंदन गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर मौलाना शौकत अली एक निश्चित अवधि तक पृथक निर्वाचन और उसके बाद नए सिरे से जांच करने की शर्त पेश कर रहे थे। जब एक बार पृथक निर्वाचन स्वीकार कर लिया गया, वह सात या दस या पांच ही वर्ष के लिए क्यों न हो तो उसी वक्त से दोनों जातियों के अलग-अलग कठघरे बन गए और तमाम राजनीति इसी मजहबी कठघरे के भीतर घुस गई। एक-दूसरे को समझने की कोशिश तो दूर एक-दूसरे से प्रत्येक विषय में अलग रहने की लत पड़ जाएगी तो बाद को न सात वर्षों में छूटेगी, न सत्तर में! जिस राष्ट्रोद्धार के लिए स्वराज्य की हलचल मची हुई है वह प्रायः स्वप्न हो जाएगा और देखने वाले देखेंगे कि नए विधान से देश की दशा सुधरी नहीं बल्कि बिगड़ती ही गई। यदि नया विधान वास्तव में ऐसा होने वाला है कि उसे नया और सारपूर्ण कहा जा सके तो सबसे बड़ी आवश्यकता तो यह होगी कि उस नए शिशु का पालन किया जाए, राष्ट्र परिवार के सब लोग उसकी परिचर्या करें। मान लिया जाए कि नया विधान बन जाने के बाद राष्ट्र की प्रमुख संस्थाएं कांग्रेस और लिबरल दल भी विधान के काम में सहयोग देने को तैयार हो जाएं—फिलहाल इसकी कोई आशा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है—तो भी कांग्रेस क्या कर सकती है? जब पहले ही से ऐसा बंदोबस्त कर लिया जाएगा कि हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे से अलग रहकर निर्वाचन में भाग लें और विधान को सफल बनाएं तो यह ऐसी ही बात हुई जैसे कोई यह कहे कि पुरुष अपनी स्त्री को तलाक दे दे फिर भी दोनों मिलकर बच्चे को पाले-पोसे!

पृथक-निर्वाचन और पंजाब में मुसलमानों का स्थायी बहुमत ये दोनों ही सांप्रदायिक निर्णय के इतने अनुचित पहलू हैं जिनके सामने और बातों पर ध्यान भी नहीं जाता। सिंध को अलग प्रांत बनाने की मांग भी मंजूर की गई है जिससे देश का आर्थिक दृष्टि से घाटा होगा और मजहबी मुसमलानों की इच्छापूर्ति होगी। कट्टर मुसलमानों की जो मांगें नामंजूर कर दी गई हैं उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि विशेषाधिकार प्रांतों को न दिए जाकर केंद्र में ही सन्निहित रहेंगे। प्रधान प्रधान मांगें स्वीकार हो जाने के बाद ऐसी आशा नहीं है कि डॉक्टर इकबाल अथवा उनका मजहबी दल इसके विरोध में आवाज उठाएगा। फिलहाल डॉक्टर साहब और उनके दल वाले सिखों के रुख की निंदा करने और तरह-तरह के तर्क भिड़ाने में लगे हुए हैं। कलकत्ते का नया *मुसलमान* लिखता है कि सिखों के रोष का यही कारण है कि दैवयोग से पंजाब में मुसलमानों की संख्या आधे से अधिक है। इसमें बेचारे मुसलमानों का क्या दोष। पत्र यह भी लिखता है कि यदि सिख पंजाब में मुसलमानों की बहुमत नहीं देख सकते तो क्या भारत के अन्य प्रांतों में अल्पसंख्यक मुसलमान भी हिंदू-बहुमत के विरुद्ध आंदोलन प्रारंभ करें। लेकिन यह तर्क करता हुआ *मुसलमान* यह भूल गया कि स्वतः प्राप्त बहुमत एक बात है और विधान बनाकर सुरक्षित किया गया स्थायी बहुमत बिलकुल ही दूसरी बात। यदि *मुसलमान* को अपनी बात का कुछ भी खयाल है तो क्या वह प्रत्येक प्रांत में प्रत्येक वर्ग को सम्मिलित निर्वाचन द्वारा बहुमत प्राप्त करने का आंदोलन करने का समर्थन कर सकता है? क्या वह शुद्ध बालिग मताधिकार की बुनियाद पर निर्वाचन होने देने को राजी है? या केवल उसकी दलील वाग्जाल में डालकर मुसलमानों की अन्यायपूर्ण और हानिकारी मांगों की सिफारिश करना है?

कलकत्ता के हिंदू नागरिकों की एक प्रतिनिधि सभा में नए संभावित निर्णय का प्रतिवाद किया गया है और यह स्पष्ट ही है कि देश की अत्यधिक हिंदू जनता जिसके सामने राष्ट्र का प्रश्न ही प्रमुख प्रश्न है संघटित होकर निर्णय का विरोध करेगी। हिंदू महासभा की ओर से भी विरोध की आवाज उठाई जाएगी। पर प्रश्न तो यह है कि क्या सरकार इनके विरोध से अपना निर्णय बदल देगी? यदि उसने अंतर्राष्ट्रीय विधान में निर्धारित नियमों का पालन कर भारत के संप्रदायों को पृथक-निर्वाचन का पुरस्कार देना ही तय किया है तो वह भारत के विरोध को कहां तक सुन सकती है? प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड स्वयं ही कई बार अत्यंत निश्चित शब्दों में कह चुके हैं कि पृथक निर्वाचन से किसी प्रकार राष्ट्रीय संस्थाएं विकास नहीं कर सकतीं। शुद्ध राजनीतिक जीवन की प्रतिष्ठा हो ही नहीं सकती। यदि वे अपने ही विचारों के प्रतिकूल जाने का निश्चय कर चुके होंगे तो किसी के कहने का प्रभाव पड़ना असंभव ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# अनावृष्टि

16 जुलाई को समाप्त होने वाले सप्ताह की खेती-पानी की सरकारी रिपोर्ट यह थी कि 'प्रांत के अधिकांश भाग में पानी की सख्त जरूरत है। खड़ी फसल की हालत साधारण अच्छी है और आगे की उम्मीद भी अच्छी की जाती है।' 16 जुलाई से आज 30 जुलाई हो रही है। वर्षा अब तक बहुत थोड़ी हो रही है। जो बीज बोए गए थे वे अधिकांश में बेकार हुए जा रहे हैं। बादल इधर-उधर से घिर आते हैं पर फिर निकल जाते हैं। वे भी उपहास और व्यंग्य करना जान गए हैं। प्रयाग में जहां अब तक लगभग बीस इंच पानी बरस जाना चाहिए था केवल चार इंच वर्षा हुई है। करीब-करीब यही हाल काशी, कानपुर, लखनऊ और दिल्ली तक है। पटना और बिहार के अन्य अनेक जिलों में भी पानी की तंगी है। इस संपूर्ण प्रदेश में अकाल पड़ने के लक्षण हैं। यद्यपि सरकारी आबहवा विभाग की ओर से भविष्यवाणी की जा रही है कि पानी बरसने वाला है पर यह भविष्यवाणी भी राजनीतिक ज्योतिषियों के उस अटकल से अधिक प्रामाणिक नहीं सिद्ध हुई जो कहा करते थे कि गांधीजी 4 जून को छूटेंगे और यह होगा और वह होगा। न वह सब हुआ, न पानी बरसा। पिछले अग्रलेख में हमने 'वरुण' महाराज का नाम लेकर प्रार्थना की थी कि पानी बरसाओ पर 'हराम' कहने से भी रीझने वाले 'राम' अब उसकी पुनरावृत्ति नहीं करते दीख पड़ते। इधर ख्वाहिशमंदों से यह अफवाह उड़ाई थी कि कटरा के किसी व्यापारी ने अनाज महंगा करने के मतलब से पानी को जमीन खोदकर गाड़ दिया था। जनता का रोष इतना बढ़ा कि उसने, कहा जाता है, बनिए पर मुकदमा भी चला दिया। किस अदालत में मुकदमा पेश है यह न मालूम किया जा सका। शायद आकाश की अदालत में! क्या सुनवाई होगी?

# *कुमार*

*कुमार* नाम बालक-बालिकाओं के लिए उपयोगी, मासिक पत्र राजा साहब कालाकांकर की संरक्षता में अभी हाल ही में प्रकाशित होना आरंभ हुआ है। इसका जुलाई का प्रथम अंक हमारे सामने है। इसके संपादक राजा साहब के अनुज कुंवर सुरेश सिंह है। इस अंक में भिन्न-भिन्न अच्छे लेखकों के द्वारा लिखी हुई पाठकों के लिए तीन प्रकार की सामग्री एकत्रित की गई है। बड़े बालकों के लिए, कन्याओं के लिए तथा छोटे बालकों के लिए। कहानी, कविता, यात्रा वर्णन, प्रकृति निरीक्षण, पहेली, संबंधी अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। इनसे बालक-बालिकाओं में ज्ञान वर्द्धन के साथ-साथ उनमें उत्साह और देश प्रेम के भाव भी जाग्रत होंगे। प्रथम अंक सुंदर निकला है। चित्रों की संख्या भी काफी है। साइज डिमाई, पृष्ठ संख्या 48, वार्षिक मूल्य 3 रुपए। *कुमार* कार्यालय कालाकांकर (अवध) से प्राप्त हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# निराला

यदि सामयिक हिंदी में कोई ऐसा विषय है जो अन्य सब विषयों की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट और दुरूह समझा जा सके तो वह पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का विकास है। इस कवि के व्यक्तित्व और काव्य के निर्माण में ऐसे परमाणुओं का सन्निवेश हुआ है जिनका विश्लेषण हिंदी की वर्तमान धारणाभूमि में विशेष कठिन क्रिया है। हिंदीभाषी जनता के साहित्यिक ज्योतिषियों ने, कहानी वाले सात अंधे भाइयों की भांति, भांति-भांति से हाथी की हास्य-विस्मय-भरी रूप-रेखाएं बखान कीं जिनसे 'निरालाजी' की अपेक्षा समीक्षकों की निराली सामुद्रिक बुद्धि का ही परिचय मिला। जहां तक हमारी जानकारी और अध्ययन है, हम निरालाजी के विकास के मूल में भावना की अपेक्षा बुद्धितत्व की प्रमुखता पाते हैं। यह उनके दार्शनिक अध्ययन का परिणाम है या उनके मानसिक संगठन का नैसर्गिक स्वरूप, यह हम नहीं कह सकते। बाबू जयशंकर प्रसाद की कविता में भी यह बौद्धिक विशेषता पाई जाती है परंतु 'निरालाजी' के साहित्य में तो यह स्पष्टतः एक बड़ी मात्रा में है। प्रसादजी की जिन जिज्ञासाओं का उल्लेख हम *चित्राधार, प्रेम-पथिक* आदि की समीक्षा के प्रसंग में कर चुके हैं उनमें केवल बुद्धिधर्म ही नहीं, कल्पना आदि भी उपस्थित हैं, पर 'निरालाजी' की अनेक कविताओं में केवल बौद्धिक उत्कर्ष अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ मिलता है। पं. रामचंद्र शुक्ल को 'प्रसादजी' के सूफी काव्य कहने का भ्रम हमारे विचार में इसी कारण हुआ कि 'प्रसादजी' के *आंसू* में भी कहीं-कहीं बुद्धिविशिष्ट पद आए हैं जिन्हें रसवादी होने के कारण शुक्लजी उचित अर्थ में ग्रहण नहीं कर सके। 'निरालाजी' का कुछ रचनाओं में तो संपूर्ण वर्णन और वातावरण ऐसा है जो शुक्लजी जैसे रसवादी की आस्वादसीमा के बाहर है। यह शुक्लजी की त्रुटि है या रसवाद की अपूर्णता है या निरालाजी की ये रचनाएं साहित्य की परिभाषा में ही नहीं आतीं, यह सब निर्णय कौन करेगा?

यदि हमें निर्णय करना हो तो हम साहित्यकला का विस्तार कदापि संकुचित करने को सहमत न होंगे। काव्य में बुद्धितत्व के लिए भी स्थान है, भावना के लिए भी, कल्पना के लिए भी। जिस किसी कृति में कलात्मक पूर्णता हो, जिसके चित्र हमारे मस्तिष्क पर अंकित हों, जिसका प्रभाव हम पर पड़े, उसमें काव्य की प्रतिष्ठा मानी ही जाएगी। शुक्लजी का रसवाद इतना व्यापक नहीं है तो उसे बनाना चाहिए। आधुनिक युग प्रत्येक दिशा में नई काव्यसामग्री का संग्रह करने को कटिबद्ध है। मनोविज्ञानशास्त्र ने चित्तवृत्तियों की शतशः विभिन्नताएं बतलाई हैं। ऐसी अवस्था में काव्य का मापदंड शुक्लजी से जरूर ही बड़ा होना चाहिए। 'निरालाजी' का एक अत्यंत बुद्धिविशिष्ट काव्य चित्र देखा जाए—

*प्रथम विजय थी वह—*
*भेदकर मायावरण*
*दुस्तर तिमिर घोर-जड़ावर्त—*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



*अगणित तरंग-भंग—*
*वासनाएं समल निर्मल*
*कर्दममय राशि-राशि*
*स्पृहाहत जंगमता—*
*नश्वर संसार—*
*सृष्टि-पालन-प्रलय भूमि*
*दुर्दम अज्ञात-राज्य—*
*मायावृत 'मैं' का परिवार*
*पारावार केलि-कौतूहल*
*हास्य-प्रेम-क्रोध-भय—*
*परिवर्तित समय का*
*बहु रूप रसास्वाद—*
*घोर उन्मादग्रस्त*
*इंद्रियों का बारंबार बहिरागमन*
*स्खलन, पतन, उत्थान-एक*
*अस्तित्व जीवन का—*
*महामोह*
*प्रतिपद पराजित भी अप्रतिहत*
*बढ़ता रहा*
*पहुंचा मैं लक्ष्य पर।*

इस रचना में शुष्कता चाहे जितनी हो पर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि एक विशेष उदात्त चित्र हमारे सामने आता है जिसमें हम संसार के सुख-दुःख से छुट्टी पा जाने का दृश्य देखते हैं। यह बहस नहीं की जा सकती कि इस तरह छुट्टी भी पाई जा सकती है या नहीं, उचित है या अनुचित, हमें केवल यह स्वीकार करना है कि हम एक वासना-विरहित रूप देख रहे हैं। संभव है, रूप मिथ्या हो पर काव्य में तो यह सर्वथा सत्य है! जितने भी दार्शनिक विचार हैं सब रूप-चित्र बनकर काव्य में लाए जा सकते हैं—उनके लिए वहां जगह तो है ही। उनके उच्छ्वसित करने, उन्हें सजीव बनाने का काव्य ही प्रमुख स्थल है। लोक में यदि अलौकिकता की झांकी काव्य से नहीं देखी जा सकती तो और किससे देखी जा सकती है? निरालाजी ने अद्वैत दर्शन की विराट कल्पनाओं को अपने काव्य में स्थान दिया है और हम उन्हें अवश्य काव्य मानेंगे क्योंकि उनका चित्र हमारे मस्तिष्क में अंकित होता है। हम उनसे प्रभावित होते हैं। हां, उनमें रसवादियों को 'रस-चर्वण' की सुविधा न मिले यह बात दूसरी है।

प्राचीन काव्यसमीक्षा के शब्दों में 'निरालाजी' की उक्त कविता ध्वनि-विशिष्ट नहीं है वरन् अभिधाविशिष्ट है। इसमें रस व्यंग्य नहीं है बल्कि वाच्य है। प्राचीन शास्त्र कहते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ध्वनिमूलक काव्य ही श्रेष्ठ है पर इसे तो हम केवल शैलीभेद मान सकते हैं। यह ध्वनि और अभिधा काव्य वस्तु के भेद नहीं हैं, केवल व्यक्त करने की प्रणाली के भेद हैं। हमें प्रत्येक प्रणाली को प्रश्रय देना चाहिए, न किसी एक को। अभिधा की प्रणाली इस स्पष्टवादी युग की मनोवृत्ति के विशेष अनुकूल है। जहां तक हम समझ सके हैं व्यंजना की प्रणाली में यदि कुछ विशेषता है तो यही कि उसमें काव्य का मूल आधार अधिक प्राप्त होता है। व्यंजना का अर्थ ही है संकेत, प्रतीक आदि। परंतु अभिधा में स्पष्टता अधिक है। व्यंजना के अतिशय से मूर्तिलिप्सा बढ़ती है, जो प्रत्येक अवसर पर अभीष्ट नहीं कही जा सकती। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये अभिव्यक्ति की प्रणालियां मात्र हैं, जो काव्यवस्तु को देखते हुए छोटी बात है। 'निरालाजी' ने अपनी बुद्धिविशिष्ट रचनाओं को अभिधा-शैली में और स्वच्छंद छंद में अंकित किया है। चित्र-सृष्टि के लिए इन रचनाओं में लाक्षणिक प्रयोग भी किए गए हैं। कुल मिलाकर इनका प्रभाव एक प्रकार का उत्साहपूर्ण वातावरण उपस्थित करता है। व्यापक-विराट चित्र सामने आते हैं जिनसे जीवन में शांति और साहस प्राप्त होते हैं।

यद्यपि 'निरालाजी' ने अपने मुक्त काव्य के संबंध में लिखा है कि वह नाटकोपयोगी है पर हम देखते हैं कि उसका अधिकांश उपयोग निरालाजी की बौद्धिक अनुभूतियों के प्रकाशन में किया गया है। यह विशेष स्वाभाविक प्रणाली सिद्ध हुई है कि दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने के लिए छंद रहित काव्य किया गया है। प्रायः बौद्धिक उड़ानें प्रसारकामी किंतु क्षण-स्थायी होती हैं। उनकी अभिव्यक्ति के लिए स्वच्छंद प्रवहमान छंद ही यथायोग्य होता है। विराट दार्शनिक विचारों का पौरुष जितना उपयुक्त इस प्रकार व्यक्त होता है उतना संभवतः दूसरे प्रकार में न हो सके।

ऐतिहासिक प्रसंग को भी हमें भूलना नहीं चाहिए। जिस समय निरालाजी के स्वच्छंद छंद का विकास हुआ उसके पहले पं. सुमित्रानंदन पंत की कोमल रचनाएं हिंदी जनता का आकर्षण प्राप्त कर रही थीं। 'प्रसादजी' का *आंसू* तब तक प्रकाशित नहीं हुआ था। गुप्तजी माइकेल मधुसूदन का अनुवाद कर रहे थे। पं. रामचंद्र शुक्ल अपनी रसात्मक प्रणाली से तुलसी, जायसी आदि का काव्य-सौष्ठव परख रहे थे। हिंदी में सत्काव्य की अनुभूति का समय आ रहा था। वह हिंदी के नवीन विकास की किशोरावस्था थी। यह आज से सात-आठ वर्ष पहले की बात है। इस अवस्था में यौवन की दृढ़ता अथवा शक्ति का परिचय थोड़ी ही मात्रा में था। पं. रामचंद्र शुक्ल अधिक से अधिक द्विजेंद्रलाल की सहायता लेकर रवींद्रनाथ के संबंध में दो-एक आक्षेप कर सकते थे। इस परिस्थिति में निरालाजी के स्वच्छंद छंदों से जिसमें पूरी परंपरा का तिरोभाव कर दिया गया था—एक नया आत्मविश्वास बढ़ा। स्वच्छंद-छंद के मूल में ही यह मनोवृत्ति थी। इस आत्मविश्वास को और भी दृढ़ करने में 'निरालाजी' की ये कविताएं समर्थ हुईं जिनमें बुद्धि तत्व की प्रधानता थी, जिन्हें हम दार्शनिक कविता भी कह सकते हैं।

यह 'निरालाजी' का प्रथम विकास था। इसके अनंतर उन्होंने अपने मस्तिष्क के बौद्धिक परमाणुओं को गद्य के माध्यम में लगाया और पद्य में अपनी भावना वृत्ति का विकास किया। यह दूसरा चरण है। *परिमल* की छंदोबद्ध अधिकांश रचनाएं इसी समय की हैं और *पंतजी*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



*और पल्लव* की समीक्षा भी इसी के आसपास प्रकाशित हुई। कविता में भावना की प्रमुखता हो चली, पर 'निरालाजी' की बौद्धिक प्रक्रिया भी उसके साथ-साथ रही। निरालाजी द्वारा पेटेंट किया हुआ 'काव्य-निर्वाह' शब्द इसी बुद्धितत्व का संकेत है। इसका निरालाजी ने सदैव आग्रह किया। पंतजी की रचनाओं में उन्हें इसी के अभाव की सबसे अधिक शिकायत रही है। यहां यह विवाद नहीं है कि यह 'अभाव' अभाव ही है या नहीं तो यह केवल 'निरालाजी' की मनोवृत्ति का चित्रण है। बुद्धि और भावना के इस संयोगकाल का स्वरूप संक्षेप में उनकी इस 'अधिवास' कविता में देखिए—

*उसकी अश्रु भरी आंखों पर*
*मेरे करुणांचल का स्पर्श*
*करता मेरी प्रगति अनंत*
*किंतु तो भी है नहीं विमर्ष*
*छूटता है यद्यपि अधिवास*
*किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।*

यही स्वरूप उनकी *पंतजी और पल्लव* समीक्षा में भी देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने 'विश्ववाद' के बौद्धिक तत्व से श्रृंगारी कवियों के लघु चित्रों का प्रतिपादन किया है, पर भावना भूमि में आकर नवीन भाषा और व्यापक भावों के लिए पंतजी की प्रशंसा की है।

इस द्वितीय चरण में जहां कहीं निरालाजी बुद्धि और भावना का रमणीय योग करने में समर्थ हुए हैं, कविताएं विशेष उज्ज्वल और निखरी हुई हैं। अनेक छोटी रचनाओं में ही नहीं 'यमुना' 'स्मृति' 'वासंती' 'बसंत' 'समीर' 'बादलराग' आदि लंबी कृतियों में भी यह सुयोग सफलतापूर्वक सिद्ध हुआ है। इनमें बुद्धितत्व भावना के साथ सन्निविष्ट होकर, अधिकांश में अपना स्वतंत्र अस्तित्व छोड़कर मिल गया है जिससे तल्लीन वातावरण बनकर काव्य-वैभव का विशेष विकास हो सका है।

(रविवार, 31 जुलाई 1932)

# ओटावा सम्मेलन

ओटावा सम्मेलन को शुरू हुए दस-बारह दिन हो गए। आरंभ में भिन्न-भिन्न उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने जो भूमिकाएं बांधी वे इतनी कोमल-सुंदर हैं कि सिर्फ देखने की चीज हैं, स्पर्श करने की नहीं। हमारे पाठकों को देखना चाहिए कि भूमिका उसे कहते हैं, जो चारों तरफ से फिसलती हो। कम से कम राजनीति के विद्यार्थियों को इस पर जरूर गौर करना चाहिए। लेकिन भूमिका के समाप्त होने पर ब्रिटिश प्रतिनिधियों के प्रमुख श्रीयुत बाल्डविन ने प्रस्तावना रूप में जो कुछ कहा वह पकड़ में आ जाता है। संक्षेप में उनके कहने का मतलब यह था कि ब्रिटेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सदैव उपनिवेशों का आर्थिक हित साधन करता रहा है और अब समय आ गया है कि यह बात उपनिवेशों पर प्रकट कर दी जाए ताकि उपनिवेश कृतज्ञता का आभार स्वीकार करें और इस ऋण से उऋण होने के नैतिक पहलू पर ध्यान दें। लेकिन मिस्टर बाल्डविन के लिए इतना ही स्पष्टीकरण न तो उचित होता, न पर्याप्त। इसलिए उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि ब्रिटेन का खयाल करते हुए भी उपनिवेशों को अपने घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति तो करनी ही चाहिए। इस व्यवहार बुद्धि के लिए मिस्टर बाल्डविन की प्रसिद्धि ही है। कहने का मतलब यह है कि मिस्टर बालडविन ने उपनिवेशों की हितकामना का उदारभाव इस दूसरे प्रस्ताव में व्यक्त किया। अब पूरी समस्या इस रूप में सामने आती है। ब्रिटेन चाहता है कि उसके उपनिवेश कुछ ऐसा प्रबंध करें, जिससे विदेशों की अपेक्षा ब्रिटेन को व्यापार में सुविधा मिले। साथ ही वह यह भी गुंजाइश देना चाहता है कि सभी उपनिवेश अपने घरेलू उद्योग-धंधों और व्यवसाय का विकास कुंठित न होने दें। इसका मतलब यह हुआ कि उपनिवेश संरक्षण की ऐसी मर्यादा बांध दें जिससे अमेरिकन, जापानी, फ्रेंच, जर्मन आदि की अपेक्षा ब्रिटिश वस्तुओं का प्रवेश उपनिवेशों में आसानी से हो सके, साथ ही जिससे ब्रिटिश वस्तुओं को इतना अधिक सुभीता भी न मिल जाए कि वे उपनिवेशों की स्वदेशी वस्तुओं का बाजार हड़प लें। ये दोनों छोर किस तरह मिलाए जाते हैं यही देखना है।

उपनिवेशों की मनोवृत्ति भी हमें समझ लेनी चाहिए जैसाकि ओटावा सम्मेलन के आइरिश प्रतिनिधि ने अपने रूखे शब्दों में प्रकट किया। यह रुखाई इंग्लैंड और आयरलैंड के वर्तमान मनोमालिन्य का प्रतिबिंब है। तथापि इस रुखाई के मिस सच्ची समस्या प्रकट हो गई है कि ओटावा सम्मेलन की संपूर्ण समस्या एक हाथ से देने और दूसरे हाथ से लेने की है। यूनाइटेड किंगडम देने के लिए जितना हाथ बढ़ावेगा उतना ही उसे प्राप्त भी होगा। कनाडा के प्रतिनिधि ने भी लगभग इसी आशय की बात कही है। मिस्टर बाल्डविन ने यह सुझाने की कोशिश की कि यूनाइटेड किंगडम (विलायत) अपने यहां उपनिवेशों की वस्तुओं को उन्मुक्त-प्रवेश की सुविधा देता है, लेकिन उपनिवेश वाले इस विलायत के उपकार के रूप में ग्रहण करने को तैयार हो जाएंगे, इसमें संदेह ही है। विलायत अधिकांश में उपनिवेशों का कच्चा माल ही खरीदता है जो या तो खाने-पीने के काम आता है या जिसका उपयोग पक्का माल तैयार करने में किया जाता है। मान लिया जाए कि विलायत उपनिवेशों के इस माल को फ्री-पास न दे बल्कि इसके विरुद्ध संरक्षण की दीवाल खड़ी करे तो क्या इससे उपनिवेशों का ही नुकसान होगा, यूनाइटेड किंगडम का नुकसान नहीं होगा? अनाज का भाव चढ़ने से विलायत को भी नुकसान हैं। माल यदि संरक्षण द्वारा महंगा करके वहां प्रवेश पावेगा तो उससे बना हुआ पक्का माल भी उतने ही परिमाण में महंगा होगा। जब अभी ही विलायती वस्तुएं अन्य विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता में नहीं ठहर पातीं तब और मंहगी हो जाने पर उन्हें बिक्री का बाजार कहां मिलेगा? यदि उपनिवेशों के कच्चे माल को विलायत अपने यहां फ्री-पास़ न दे तो क्या अन्य व्यवसायी देशों में उनकी खपत न हो सकेगी? यदि खपत न भी हो तो भी क्या उपनिवेशों में यह प्रेरणा उत्पन्न न होगी कि ये स्वयं ही अपने उद्योग-धंधों और व्यवसाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की उन्नति करके अपने कच्चे माल की खपत अपने ही देश में करें?

उपनिवेश हर हालत में यह तो जानना ही चाहेंगे कि विलायत यदि उनके कच्चे माल को बिना अतिरिक्त कर लगाए नहीं प्रवेश करने देगा तो इससे उपनिवेशों को चाहे जो क्षति हो, विलायत को क्या लाभ है? इस प्रणाली से यूनाइटेड किंगडम का स्वार्थ किस रूप में और किस सीमा तक सध सकेगा?

फिर उपनिवेशों को यह भी ध्यान में रखना है कि अकेले यूनाइटेड किंगडम से ही उनका व्यापार-संबंध नहीं है। फिलहाल तो वह संसार के अन्य देशों में भी फैला हुआ है। देखना यह होगा कि यदि ब्रिटिश वस्तुओं के साथ पक्षपात करके उन्हें उपनिवेशों में इस प्रकार प्रवेश कराया जाएगा जिससे अन्य विदेशों को घाटा पहुंचेगा तो उन विदेशों का रुख उपनिवेशों के प्रति क्या होगा? यह कैसे संभव समझा जा सकता है कि वे इस प्रकार के व्यवहार का बदला नहीं चुकाएंगे? वैसी अवस्था में उपनिवेशों को यह सोचना होगा कि उनके रुष्ट हो जाने से उनका क्या हानि-लाभ है। उन्हें यह निर्णय करना होगा कि सारे संसार को त्याग कर ब्रिटिश-साम्राज्य के घेरे में घिरने में अधिक लाभ है अथवा हानि। भारत का ही प्रश्न लीजिए। उसके निर्यात व्यापार का केवल एक-चौथाई ब्रिटेन से संबंध रखता है। शेष तीन-चौथाई अन्य विदेशों में जाता है। लेकिन आयात व्यापार में आधे से अधिक परिमाण ब्रिटेन का है। अर्थात् भारत विलायत की चीजें खरीदता है और ब्रिटेन भारत की चीजें उसके मुकाबले कम खरीदता है। अब मान लिया जाए कि भारत ओटावा सम्मेलन में ऐसी अर्थनीति स्वीकार कर ले जिससे ब्रिटेन को छोड़कर शेष देशों से भारत का व्यावसायिक संबंध टूट जाए। वैसी अवस्था में भारत के तीन-चौथाई व्यापार की क्या दशा होगी? क्या बाजार न मिलने के कारण भारत की वस्तुएं विलायत में (यदि वह खरीदना स्वीकार भी करे) निहायत सस्ते दामों पर नहीं बिकने लगेंगी? इस प्रणाली से भारत का नुकसान ही नुकसान होगा।

अंतिम बात जो शायद सबसे अधिक ध्यान देने की है वह यह है कि सभी उपनिवेश अपने स्वदेशी उद्योग-धंधों की वृद्धि करना चाहते हैं और जहां तक बन पड़े विदेशी वस्तुएं न खरीदने का इरादा रखते हैं। प्रायः सर्वत्र राष्ट्रीय भावना का प्रसार हो रहा है। जिससे सब यही चेष्टा कर रहे हैं कि अपने देश में अपनी वस्तु का व्यवहार किया जाए। जो वस्तुएं देश की भौगोलिक अवस्था के कारण उत्पन्न ही नहीं होती पर जिनकी आवश्यकता अनुभव की जाती है वे ही बाहर से मंगाई जाएं—यह एक व्यापक सिद्धांत हो रहा है। स्वयं ब्रिटेन में 'बाई ब्रिटिश' (ब्रिटिश खरीदो) की धूम मची हुई है। कच्चा माल बाहर भेजने में कोई भी लाभ नहीं है, केवल अशक्यता के कारण वह भेजा जाता है। प्रत्येक देश में ऐसी चेष्टा की जा रही है जिससे वहां का कच्चा माल वहीं खप जाए। इस पर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के सभी उपनिवेश एक देश के रूप में ही क्यों न समझे जाएं? यह बहुत कुछ ठीक है पर प्रश्न यह है कि सम्राट की सरकार क्या वास्तव में ऐसा व्यवहार करती है जिससे सभी उपनिवेश अपने को एक ही महादेश का अंग समझ सकें? यदि ऐसा होता तो ब्रिटेन में ब्रिटिश खरीदो के लिए इतना आंदोलन क्यों किया जाता? यदि ऐसा होता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारत के प्रवासियों को उपनिवेशों में प्रवेश करने और बसने की यथोचित सुविधाएं क्यों न प्राप्त होतीं? यदि ऐसा होता तो आइरिश प्रतिनिधि ओटावा में ऐसी खरी बात क्यों कहता है कि एक हाथ से दो, दूसरे हाथ से लो? ऐसा नहीं है। अभी तो उपनिवेशों में एकता, समता और संतोष के बदले अविश्वास, संदेह और असंतोष फैला हुआ है। सभी उपनिवेश साम्राज्य के इस पहलू पर भी विचार करेंगे ही।

## मिस्टर गजनबी और मुहम्मद गजनी

ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की कौंसिल में बोलते हुए मौलाना गजनबी के मुंह से ये शब्द निकले कि यदि सिख लोग यह कहते हैं कि मुसलमानों को पंजाब में स्थायी बहुमत दिया जाएगा तो सिख गृहयुद्ध करेंगे तो मुहम्मद गजनी की औलाद भी अभी जिंदा हैं और यदि उन्हें लड़ाई की धमकी दी जाएगी तो वे उसे कबूल करेंगे। इसके उपरांत आपने यह भी कह सुनाया कि यदि बंगाल के मुसलमानों की मांगें पूरी न की गईं तो मुसलमान बलवा करेंगे। इस तरह की बातें करते हुए मिस्टर गजनबी न्याय और औचित्य को ताक पर रखकर भारत विरोधी कट्टर अंग्रेजों को खुश करने में लग गए। उन्होंने यह देखने की जरा भी कोशिश नहीं की कि सिख यदि पंजाब में मुसलमानों का स्थायी बहुमत स्वीकार नहीं करना चाहते तो किसी बुनियाद पर। सिख जब पंजाब के लगान का चालीस फीसदी अदा करते हैं तो उनके लिए विशेष अधिकार क्यों न दिए जाएं, क्यों सम्मिलित निर्वाचन की उनकी मांग नामंजूर कर दी जाए? मुसलमान अल्प संख्या में होकर जो संरक्षण हिंदुओं के मुकाबले प्राप्त करना चाहते हैं उसे पंजाब की अपनी-सी ही अल्प संख्या के सिखों को देने को वे तैयार नहीं हैं—उल्टा मुहम्मद गजनी को याद करते हैं। क्या यही शांति और व्यवस्था की हिफाजत है जिसके लिए मिस्टर गजनबी सरीखे कुछ मुसलमानों को खास फख्र है। सांप्रदायिक समस्या इस प्रकार कदापि नहीं, केवल राष्ट्रीय दल द्वारा प्रस्ताविक उपायों से हल हो सकती है।

## 'निराला' और 'पंत'

द्वितीय चरण के उपरांत निरालाजी का तृतीय चरण गीत-रचना का है। गीतों में कुछ तो दार्शनिक हैं पर अधिकांश प्रेम और शृंगार विषयक हैं। इनमें मधुरभावों की व्यंजना हुई है। विराट बौद्धिक चित्रों के स्थान पर उज्ज्वल रम्य आकृतियां अधिक है। शायद इसे अधिक मानवीय कहा जाए। यह परिवर्तन 'निरालाजी' द्वारा बुद्धितत्व के कलात्मक परिपाक की दिशा में एक सीढ़ी और आगे हैं। जहां *परिमल* की अनेक कविताओं में बुद्धिजन्य प्रक्रिया काव्य के साथ दूध-मिश्री के-से मिश्रण में नहीं मिल सकी, वहां गीतों में ऐसा प्रायः कहीं नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उदाहरण के लिए *परिमल* की 'पारस' कविता ली जाए जो गीतों के समान ही छोटी है। इसके प्रथम दो बंदों में ही कविता समाप्त हो जाती है—उत्कृष्ट कोटि की वास्तविक कविता पर निरालाजी ने उसमें एक बंद और ऊपर से जोड़ दिया है—

*प्रतिपल तुम ढाल रहे सुधा मधुर ज्योति धार*
*मेरे जीवन पर प्रिय यौवन बन के बहार*
*बह बह कुछ कह कह आपस में,*
*रह रह जाती है रस-बस में,*
*कितनी ही तरुण-अरुण किरण,*
*देख रहा हूं अजान दूर ज्योति-यान-द्वार,*
*मेरे जीवन पर प्रिय यौवन बन के बहार॥1॥*
*मार पलक, परिमल के शीतल,*
*छन-छन कर पुलकित धरणीतल,*
*बहती है वायु मुक्त-कुंतल,*
*अर्पित है चरणों पर मेरा यह हृदय हार,*
*मेरे जीवन पर, प्रिय यौवन बन के बहार॥2॥*

यहां की कविता पूरी हो गई और इसके बाद 'निरालाजी' ने जो बुद्धि व्यय की वह व्यर्थ से भी कुछ अधिक हो गई है। हम इस तीसरे बंद की ओर संकेत कर रहे हैं—

*जीवन की विजय सब पराजय*
*चिर-अतीत-आशा, सुख-सब भय,*
*सब में तुम तुम में सब तन्मय,*
*कर-स्पर्श-रहित और क्या है?*
*अपलक असार!*
*मेरे जीवन पर प्रिय यौवन बन के बहार!॥3॥*

इधर के गीतों में इस प्रकार का 'जोड़' हमें कहीं नहीं दीख पड़ा।

निरालाजी का वास्तविक उत्कर्ष बुद्धितत्व को काव्य का स्वरूप प्रदान करने में है। आधुनिक कवियों में इस विशेषता को लिये हुए निरालाजी क्षेत्र में एक ही हैं। इस दिशा में काम करते हुए उन्होंने पहले-पहल मुक्त-छंद की सृष्टि की जो उक्त उद्देश्य के विशेष अनुकूल सिद्ध हुआ। मुक्त-छंद के अतिरिक्त उन्होंने हिंदी पद-विन्यास को भी अधिक प्रौढ़ तथा अधिक लचीला बनाने का सफल प्रयास किया। 'प्रभा-पल', 'उन्मोचन-बंधन' (बंधन-उन्मोचक के अर्थ के) की तरह की कितनी ही अत्यंत सार्थक शब्दसृष्टि द्वारा निरालाजी ने हिंदी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है। संगीतज्ञ होने के कारण शब्द-संगीत परखने और व्यवहार में लाने में वे आधुनिक हिंदी के दिशा-नायक हैं। अनुप्रास के वे अद्वितीय आचार्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यदि बौद्धिक विशेषता और दार्शनिक ज्ञान एकत्र होकर काव्यकला की श्रीवृद्धि में सहायक हो सकते हैं, क्यों नहीं हो सकते! तो वे निरालाजी की कविता की श्रीवृद्धि में भी सहायक हुए हैं। समाधि तो भक्ति से भी लगती सुनी जाती है, पर मुक्ति ज्ञान से ही कही गई है। भावनाएं केंद्रित होकर अनेक बार प्रसंग को रसमय बना देती हैं पर जब ज्ञान के योग से प्रसंग रसमय होता है तब की बात कुछ और ही होती है। छोटी सी काव्यवस्तु 'शेफाली' पुष्प है। क्या कोई कल्पना कर सकता है कि इसे देखकर इतनी विराट भावना उत्पन्न होगी, जो रतिभाव के चुंबन जैसी वस्तु को भी पवित्रतम बना देगी? निरालाजी उत्पन्न करते हैं—

*पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके*
*मूल-आह्वान भरे लालसी कपोलों के*
*व्याकुल विकास पर,*
*झरते हैं शिशिर से चुंबन गगन के,*

यह रूपक एक दार्शनिक कवि ही बांध सकता था। इसी प्रकार पति-प्रिया कामिनी को रात्रि-जागरण के उपलक्ष्य में यह उपहार कौन दे सकता था—

*वासना की मुक्ति-मुक्ता त्याग में तागी*

'निरालाजी' ने अपनी दार्शनिकता के द्वारा अनेकशः ऐसी पंक्तियों की सृष्टि की है और कर रहे हैं जो आधुनिक हिंदी में अप्रतिम हैं। यह उद्धरण के लिए उपयुक्त स्थल नहीं है।

'निरालाजी' छायावादी कवि कहे जाते हैं। उनका छायावाद कहां है? मुक्त छंदों में उनका दार्शनिक छायावाद 'विराट सत्ता' और 'शाश्वत ज्योति' के रूप में व्यक्त हुआ है। कितने ही स्थानों पर 'निरालाजी' इसे 'अमर विराम' जागरण, 'माता' पंचवटी प्रसंग, 'श्यामा' एक बार बस और नाच तू श्यामा आदि पदों में व्यक्त करते हैं। 'यमुना' में उसे वे कहीं 'श्यामा' और कहीं 'अतीत' कहते हैं। ये सब रूपक हैं, जो कविता को रसमय बनाने के लिए प्रयोग में लाए गए हैं। इनके द्वारा कवि उसी 'शाश्वत ज्योति' की व्यंजना करता है। यह उनके छायावाद का एक पहलू है। दूसरा पहलू है 'जड़' जीवन-जगत में सर्वत्र उसी शाश्वत ज्योति का प्रकाश देखना। यदि वह दार्शनिक छायावाद है तो इसे उसका प्रयोग समझना चाहिए। उसमें एक ज्योति है इसमें अनेक खंड-चित्र उसी एक ज्योति से ज्योतित दिखाए गए हैं। यही निरालाजी का 'निर्वाह' है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक दृश्यवस्तु का पर्यवसान एक ही 'अदृश्य' 'अनंत' में होता है। छोटी-बड़ी मानवीय वासनाएं भी 'बुद्धं शरणं गच्छ' के उपरांत शुद्ध स्वरूप प्राप्त करती हैं। 'वासना की मुक्ति-मुक्ता' के पद में वासना की भी परिष्कार द्वारा मुक्ति में परिणति की गई है। यही परिष्कार (निखार) निरालाजी के छायावाद की विशेषता है। बाबू जयशंकर प्रसाद मानवीय माध्यम द्वारा रहस्यात्मक अनुभूतियां प्राप्त करते और व्यक्त करते हैं, वे मनुष्यता से (अर्थात् मानवीय-वृत्तियों से) इतना आकर्षित हैं कि मनुष्य ही उनके चैतन्य की इकाई (Unit) बन गया है, पर निरालाजी के लिए यह जीव-जगत मिथ्या है। उनकी इकाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वही 'शाश्वत ज्योति' है जो उनकी कविता और उनके दार्शनिक, सामाजिक, कलात्मक विचारों के मूल में है। यह Metaphysical दृष्टिकोण निरालाजी के छायावाद का आधार है। संभव है, इसे कुछ पश्चिमी आलोचक काव्य के लिए अनुपयोगी समझते हों और संभव है, हिंदी के रसवादी आलोचक भी इससे संतोष रस न पाते हों पर निरालाजी का विकास तो इसी दिशा में हुआ है। यदि केवल एक वाक्य में निरालाजी के काव्य की व्याख्या करनी हो तो इस तरह की जाएगी—'उनके काव्य में 'रस' की अपेक्षा 'ज्योति' अधिक है।' परंतु इन दिनों जब सब तत्वों की एकता सिद्ध की जा रही है तब 'ज्योति' भी 'रस' क्यों नहीं है?

कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अथच अस्खलित व्यक्तित्व 'निरालाजी' का है उतना न 'प्रसादजी' का है, न पंतजी का। यह निरालाजी की समुन्नत काव्य साधना का प्रमाण है। निरालाजी के 'कवि' में जड़त्व का अंकुश कहीं नहीं मिलता जब कि 'प्रसादजी' की भावनाएं कहीं-कहीं अश्लीलता की कोटि तक पहुंच गई हैं और पंतजी का शृंगार यत्र-तत्र ऐंद्रियता (levily) की दिशा तक पहुंच गया है और उनकी कविता यदा-कदा 'अपनी तारीफ' तक करने लगी है। निरालाजी की 'यमुना' की तुलना यदि पंतजी की 'उच्छ्वास', 'आंसू' अथवा 'ग्रंथि' से की जाए—इन सबमें विषय साम्य है—तो निरालाजी का निर्लेप व्यक्तित्व देखकर मुग्ध होना पड़ता है। पंतजी के व्यक्तित्व में इतना परिष्कार नहीं है। यहां हम वर्णित विषय की नहीं, वर्णित विषय के भीतर से रचयिता के व्यक्तित्व की बात कर रहे हैं। अवश्य ही निरालाजी के दर्शन का यह चमत्कार विशेष रीति से उल्लेखनीय है। काव्य में प्रत्येक प्रकार का शृंगार-वर्णन करते हुए भी निरालाजी का व्यक्तित्व कहीं भी शारीरिक अथवा मानसिक कलुष से आक्रांत नहीं दीख पड़ता। 'प्रसादजी', 'पंतजी' अथवा आधुनिक हिंदी के किसी भी कवि के संबंध में यही बात नहीं कही जा सकती। यह हिंदी के लिए बहुत बड़ी आशा है।

* * *

ये पंक्तियां समाप्त करते-करते हमें निरालाजी का यह पत्र प्राप्त हुआ है जिसका उद्धरण अप्रासंगिक न होगा—

> प्रिय वाजपेयी जी,
>
> आज आपकी 'निराला' आलोचना पढ़ी। विचारों के लिए तो मैं कुछ कह ही नहीं सकता। कारण वे आपके हैं। पर इतिहास के लिए अवश्य कहूंगा कि सुमित्रानंदनजी को प्यार करने के आठ महीने पहले मैं हिंदी जनता की आंख की किरकिरी हो चुका था। उनको अच्छी तरह लोगों ने तभी जाना जब *मौन निमंत्रण* से, शायद 1924 की *सरस्वती* के फरवरी वाले अंक से लगातार उनकी रचनाएं निकलने लगीं। मैं आठ महीने और पहले से *मतवाला* के मुख पृष्ठ पर आ रहा था। जिसका आपने उद्धरण दिया है—'छूटता है यद्यपि अधिवास'—और बाद की रचना कहकर भावना-संवलित बतलाया है, *मतवाला* के निकलने से भी पहले *माधुरी* के पहले साल निकल चुकी है, और मेरे पास 1916 की लिखी हुई पड़ी थी। शिवपूजनजी ने *माधुरी* में भेज दी थी। *समन्वय* में इससे पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और रचनाएं निकल चुकी हैं। पंतजी का 'उच्छ्वास' सिर्फ छपा था। पर वह हिंदी जनता के पास, 6-7 पृष्ठों का आठ आना कीमत पर पहुंच चुका था, मैं नहीं कह सकता। गुप्तजी का 'ब्लेंक बर्स' वीरांगना काव्य भी पंतजी की सृष्टियों से पहले *सरस्वती* में निकला। आपका शायद मतलब है, पंतजी ने भावना का प्रसार किया और तभी से जब वे 'मुसक्यानों से उछल उछल' लिखते थे।

आपका 'निराला'

इसके संबंध में हमें यही कहना है कि यह तो हमारे 'प्रसाद', 'निराला', 'पंत' शीर्षक से ही प्रकट है कि हम हिंदी के क्षेत्र में, निरालाजी का प्रवेश पंतजी से पहले मानते हैं। दो-एक रचनाओं के आगे-पीछे निकलने की बात दूसरी है। जहां हमने ऐतिहासिक प्रसंग का उल्लेख किया है वहां हमारा आशय उस वातावरण का चित्रण करना है जिसमें निरालाजी का मुक्तकाव्य प्रकट होकर हिंदी में आत्मविश्वास की उमंग उत्पन्न कर सका। निरालाजी के बुद्धि और भावना-तत्वों के विकास पर लिखते हुए हम सन्-संवत् की चर्चा नहीं कर रहे थे वरन् काव्य-कला की दृष्टि से विकास देख रहे थे। ऊपर उनके 'गीतों' की चर्चा करते हुए हमने यह बात स्पष्ट भी कर दी है। यह तो हमने कहीं नहीं लिखा कि पंतजी ने हिंदी में भावना का प्रसार किया अथवा निरालाजी पर उसका प्रभाव पड़ा—वरन् हम तो दार्शनिक काव्य के भीतर से निखरे हुए निरालाजी के व्यक्तित्व को हिंदी के लिए अप्रतिम मानते और साहित्य के शास्त्रीय विचारकों से आग्रह करते हैं कि वे अपने रसवाद में निरालाजी की अभिधाप्रधान दार्शनिक कविताओं के लिए योग्य स्थान बनाएं। हमारे विचार में यह 'निरालाजी' की दार्शनिक कविता की स्वतंत्र सत्ता की सबसे बड़ी स्वीकृति है।

(गुरुवार, 4 अगस्त 1932)

# तिलक-जयंती

गत अगस्त को देश के प्रायः सभी भागों में तिलक-जयंती मनाकर स्वर्गीय लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का स्मरण किया गया। महात्मा तिलक के स्वर्गारोहण को बारह वर्ष हो गए। एक युग बीत गया। पर देश में उनकी स्मृति अब भी नवीन उत्साह उत्पन्न करती है, अब भी उनके नाम का जादू काम कर रहा है। उत्कट देशभक्ति और निर्भय प्रकृति के साथ-साथ प्रकांड पांडित्य, तिलक की ये तीन विशेषताएं बहुत थोड़े आदमियों में एक साथ दीख पड़ती हैं। सन् 1880 ईस्वी में बालगंगाधर तिलक सार्वजनिक सेवा में तत्पर हुए तब से अंतिम क्षण तक की उनकी जीवनी निरामय देशप्रेम का एक अजस्र प्रवाह है। इसी की तरंगें उनके विविध उद्योगों में देखी जाती हैं। सन् 1881 में उन्होंने *केसरी* और *महाराष्ट्र* पत्रों द्वारा अपने विचारों का प्रकाशन आरंभ किया। वे स्वयं *महाराष्ट्र* के संपादक बने। उस समय से ही उनकी गर्जना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारतीय जनता के लिए खूब उत्साहप्रद सिद्ध हुई। तिलक ने जातीय शिक्षा और सामाजिक जागृति का मर्म अच्छी तरह समझा था, इसलिए वे पहले-पहल इसी क्षेत्र में लग गए। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध गणेशोत्सव का श्रीगणेश करके उन्होंने सारे प्रांत में अद्‌भुत उमंग उत्पन्न कर दी। शिवाजी के वीर-चरित का गुणगान करने के लिए उन्होंने व्यापक रूप से आयोजन किया और स्थान-स्थान पर उनकी जयंती का संघटन किया। तिलक सच्चे ब्राह्मण थे और हिंदू संस्कृति का मूल समझते थे। आज जब तिलक नहीं हैं तब उनके संबंध में अनेक प्रकार के अनुमान लड़ाए जाते हैं। भाई परमानंद ने लिखा है कि तिलकजी आज होते तो हिंदू महासभा के अध्यक्ष की हैसियत से हिंदू संघटन का कार्य करते होते। श्री नरसिंह चिंतामणि केलकर वगैरह जिस प्रतियोगी-सहयोग के रास्ते पर चल रहे हैं, वे समझते हैं, वही उनके गुरु तिलक का भी रास्ता होता। डॉक्टर मुंजेजी अब तक परामर्श कमेटी से अलग नहीं हुए, ये भी तिलक की ही राजनीतिक परंपरा के अनुयायी कहे जाते हैं। इस प्रकार इस युग के बहुत से गणमान्य व्यक्ति अपने को तिलक का वंशज समझने में गौरव अनुभव करते हैं, यह स्वर्गीय तिलक के व्यापक प्रभाव और नेतृत्व का प्रमाण है। यह बात कोई नहीं कह सकता कि वे जीवित होते तो आज उनकी नीति क्या होती।

यह तो निश्चय है कि महात्मा तिलक की उत्कट देशभक्ति जातीयता के बंधन तोड़ चुकी थी। उन्होंने हिंदू शक्ति का जागरण केवल राष्ट्रीय शक्ति का जागरण समझकर किया। यदि इस बात के लिए प्रमाण की जरूरत हो तो 1882 ईस्वी से ही आरंभ होने वाली उनकी कारावास कहानी जान लेनी चाहिए। सन् 1882 में कोल्हापुर रियासत के श्रीयुत बरवे की आलोचना करते हुए उन्हें जेल-दंड मिला। लेकिन तिलक के विचलित होने की गुंजाइश नहीं थी। वे बराबर निधड़क लिखते रहे। जहां कहीं अनाचार-अत्याचार समझा प्रत्येक बार प्रतिवाद किया। उस समय गोरों के आचरण से पूना की जनता भयभीत थी। तिलक निर्भीक टिप्पणियां करते रहे। उसके कुछ समय बाद 1897 में शिवाजी-जयंती उत्सव के संबंध में 'अफजल खां का बध' शीर्षक लेख प्रकाशित करने, उस पर टिप्पणी करने आदि के अपराधों में उन्हें अठारह महीने की कड़ी कैद दी गई। इसके बाद वे राजनीतिक क्षेत्र में दुगुने उत्साह से भाग लेने लगे। बंगाल के स्वदेशी आंदोलन के सबसे बड़े पुरस्कर्ताओं में लोकमान्य तिलक भी थे। सन् 1907 की सूरत कांग्रेस में सर सुरेंद्र बनर्जी वगैरह से अलग होकर लोकमान्य तिलक ने गर्म दल की स्थापना की। उस समय दोनों दलों में अंतर यह था कि नर्म दल सरकार के रोष से बचता, कड़ी टिप्पणी करने से हिचकता और सरकार के आश्वासन पर विश्वास करता था। तिलक का गर्म दल इससे अलग हो गया। तभी से भारतीय राजनीति में एक नए युग का प्रवेश माना जाता है। तिलक इस युग के सबसे बड़े नेता थे और मरणकाल तक बने रहे। सन् 1916 में उन्होंने लखनऊ समझौते में भाग लिया। लेकिन मांटफोर्ड सुधारों के द्वारा जब देश को संतोषजनक विधान न प्राप्त हुआ तब 1920 के लगभग डॉक्टर एनी बेसेंट से मिलकर लोकमान्य ने होमरूल लीग की स्थापना की। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—इसी युग का, तिलक का, संदेश है। इस संदेश ने भारतीय जनता के हृदय में घर कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लोकमान्य तिलक बड़े ही व्यावहारिक राजनीतिज्ञ थे। यूरोप का महायुद्ध जारी था। भारत से सहायता मांगने में ब्रिटेन तत्पर था। उस समय लोकमान्य ने सरकार की मदद की। लेकिन उन्होंने यह भी पूछा कि इस उपकार के बदले में सरकार भारत को क्या देगी? यह एक बड़ा ही दूरदर्शी प्रश्न था। ब्रिटेन को इस अवसर पर यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत महायुद्ध में उसकी जो सहायता कर रहा है उसका ऋण जरूर चुकाया जाएगा। इसी अवसर पर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा भारत के औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने का अधिकार स्वीकार किया गया—जो भारतीय राजनीति की एक विशेष महत्वपूर्ण घटना है। इसमें तिलक का विवेक स्पष्टतः देखा जा सकता है। लोकमान्य के अंतिम दिनों में जब गांधीजी ने असहयोग का कार्यक्रम बनाया तब महात्मा तिलक उससे सहमत नहीं थे। तथापि अपने *केसरी* पत्र में 'राजनीतिक शिष्टाचार' कहकर उन्होंने उसका समर्थन किया। तिलक की यह उदारता भारत के राजनीतिक इतिहास का एक स्मरणीय प्रसंग है। आज तो थोड़े-थोड़े मतभेद में दलबंदियां हो जाती हैं पर लोकमान्य तिलक ने देश के स्वार्थ को ध्यान में रखकर महात्मा गांधी के रास्ते में विरोध नहीं खड़ा किया। लोकमान्य की यह मनोवृत्ति उन्हें देश के वर्तमान अनेक नेताओं से बहुत ऊंचे स्थान पर स्थापित करती है। आज जब अनेक दल वाले लोकमान्य तिलक को अपनी पार्टी में खींचने की कोशिश करते हैं तब लोकमान्य की यह उदारता भूल जाते हैं, जो संकीर्ण दलबंदी के घेरे में घिर ही नहीं सकती थी। आज यदि तिलक होते तो वे देशभक्ति के नाम पर संपूर्ण संकीर्णता दूर कर देते और अधिक से अधिक आत्मत्याग और कष्टसहन का परिचय देते। तिलक की स्वर्गीय आत्मा के प्रति न्याय की दृष्टि से ऐसा अनुमान सभी विचारशील व्यक्ति लगाएंगे।

केवल पांडित्य की दृष्टि से भी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक इस युग के अग्रणी विद्वान थे। संस्कृत की प्रायः प्रत्येक शाखा, विशेषकर ज्योतिष और दर्शन के वे पारंगत आचार्य थे। ज्योतिष के तथ्यों के अन्वेषण से आपने भारतीय इतिहास के वैदिक काल को खीष्ट से कम से कम चार हजार वर्ष पुराना प्रमाणित किया। विद्वानों का मत है कि उनके इस अनुसंधान से भारतीय इतिहास की प्रचलित पद्धतियों की उखाड़-पछाड़ हो गई। इधर हाल में मोहनजोदड़ो आदि के अनुसंधानों से भी वैदिक काल के प्राचीनत्व की पुष्टि होती है। अब तक यह धारणा थी कि वैदिक काल खीष्ट से लगभग 1,500 वर्ष पहले का है। विद्वान तिलक की इस कृति से प्राचीन भारत को विशेष गौरव प्राप्त हुआ। परंतु संभवतः इससे भी अधिक गौरवप्रद और स्थायी वस्तु जो तिलक से भारतीय जनता को प्राप्त हुई वह *गीता का तिलक भाष्य* अथवा कर्मयोग है। लोकमान्य तिलक जैसे कर्मयोगी से जैसी आशा की जाती थी उन्होंने उसी के अनुकूल *गीता* में निष्काम कर्मयोग सिद्ध किया। यह *गीता* का एक स्थायी भाष्य तो बना ही देश की असंख्य जनता को क्रियाशील बनाने का मंत्र भी बन गया। आज महाराष्ट्र में घर-घर और सारे देश में प्रायः सभी चैतन्य व्यक्तियों के यहां तिलक के *गीताभाष्य* की एक-एक प्रति रख ली गई है। इस युग की प्रभावशालिनी पुस्तकों में यह भाष्य शायद ही किसी से कम हो। ध्यान देने की बात है कि ये दोनों ग्रंथ जेलखाने के भीतर लिखे गए। क्या अध्यवसाय है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महात्मा तिलक के विकास की अनेक दिशाएं थीं। हिंदू उन्हें अपने उद्धारक के रूप में, देश उन्हें निर्भीक सेवक के रूप में, सरकार उन्हें व्यावहारिक राजनीतिज्ञ के रूप में और विद्वान उन्हें एक अद्वितीय पंडित, अन्वेषक और दार्शनिक के रूप में चिरकाल तक स्मरण करेंगे। आधुनिक भारत के इतिहास में लोकमान्य तिलक का अमर स्थान है। इस अवसर पर उस स्वर्गीय महापुरुष को हम अपनी विनीत अंकिचन श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं।

## साहित्यिकों के आदर्श का निर्णय

डॉक्टर हेमचंद्र जोशी ने पिछली बार के *विश्वमित्र* में साहित्यिकों के आदर्श का निर्णय सुना दिया। वह यह है कि साहित्यिकों का कोई आदर्श नहीं होना चाहिए—आदर्श हो ही नहीं सकता। शुरू से ही जिस नकारवाद को लेकर जोशीजी हिंदी में आए हैं उसी की झलक यहां भी दिखा दी। इस बार हिंदी पर ही नहीं, साहित्यमात्र पर आपने जो प्रकाश डाला है वह विकासवाद के सिद्धांत के अनुकूल ही हुआ है। हिंदी के क्षुद्रातिक्षुद्र लेखकों और संपादकों से लेकर आप बड़े से बड़े की जहां तक कल्पना कर सकते हों—सब पर डॉक्टर साहब की विशाल दृष्टि पड़ी हुई है। और सबका सारांश जो निकालकर रखा गया है वह यह है कि चरित्र-वरित्र कोई चीज नहीं है, हिंदी के लेखक लोग और संपादक लोग छोटे मुंह बड़ी बात करने में शर्म नहीं महसूस करते और दुनिया के बड़े-बड़े साहित्यकार प्रायः सब चरित्रहीन, झूठे और फरेबी रह चुके हैं।

दुनिया में 'नहीं' के बराबर सुगम मुक्तिप्रद पदार्थ तो है ही नहीं, इसीलिए भावुकजन और पंडित जन इसे अकसर अपनाए रहते हैं, परंतु यदि जोशीजी जरा देर के लिए उसे छोड़ने की कृपा करें तो हम दो-एक प्रश्न उपस्थित करना चाहते हैं। गेटे और टॉल्सटॉय चरित्रवान नहीं थे पर क्या वे आपकी ही भांति चरित्र की आस्था भी नहीं मानते थे? क्या उनके ग्रंथों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं? शारीरिक स्खलन एक बात है और उसका समर्थन बिलकुल ही दूसरी बात है। डॉक्टर साहब पहली की अपेक्षा दूसरी की तरफदारी करते हैं। यह ठीक गेटे और टॉल्सटॉय के विपरीत है। व्यक्ति का चरित्र बहुत कुछ परिस्थितियों पर अवलंबित रहता है पर उसका मस्तिष्क और उसकी लेखनी तो उसके वश में रहती है। इन दोनों का उपयोग संसार के किसी बड़े लेखक ने दुश्चरित्रता के समर्थन में नहीं किया। क्या इसका कुछ अर्थ नहीं है?

जोशीजी साहित्यिक को कुछ ऐसी नव्य भावुकतापूर्ण दृष्टि से देखते हैं कि किसी तरफ से उसकी परीक्षा आपको सहन नहीं है। एक ही सांस में कृष्ण द्वारा महाभारत रचे जाने, गांधीजी द्वारा गौहत्या किए जाने आदि के प्रसंगों को लेकर आप 'लोकोत्तराणाम् चेतांसि को नु विज्ञातु महंति' के अचल-अटल तथ्य तक पहुंच जाते हैं। इसके आगे अब रास्ता ही कहां है। पर जोशीजी यदि 'नास्ति नास्ति' की आवाज बंद करें तो रास्ता मिल सकता है। लोकोत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चरित्रों का रहस्य भी ढूंढ़ा गया है। *गीता रहस्य* इसी युग की पुस्तक है। महात्मा गांधी ने भी अपनी दृष्टि से कृष्ण चरित्र पर प्रकाश डाला है। लोकमान्य तिलक का यह सिद्धांत था कि साध्य यदि सत है तो साधन जैसा भी हो, निंद्य नहीं है। गांधीजी का मत है कि साध्य भी सत हो और साधन भी सत। इन्हीं दोनों दृष्टियों से कृष्ण चरित्र की सार्थकता देखी गई। इनमें गांधीजी का मत अधिक आध्यात्मिक है। इसलिए हिंदी के 'टुटपुंजिए' संपादक ही नहीं, यदि जोशीजी देखें तो बड़े लोग भी वैसी ही बेतुकी हांक रहे हैं। साहित्य साध्य है, साहित्यकार साधन है। साहित्य को सत होना चाहिए, साहित्यकार को भी। यह गांधीजी कहते हैं। पर जोशीजी नहीं मानते।

विलक्षण दार्शनिक फ्रायड ने स्वप्नों के विषय में एक आविष्कार किया जिसका प्रसार पश्चिमी देशों में एक विशिष्ट साहित्य सिद्धांत के रूप में भी हो गया है। फ्रायड का कहना है कि स्वप्न में मनुष्य वही देखता है जिसकी कल्पना वह मस्तिष्क में करता है पर जो कल्पना सामाजिक प्रतिबंधों तथा अन्य परिस्थितियों के कारण जाग्रतावस्था में चरितार्थ नहीं हो पाती। इस प्रकार स्वप्न अधिकांश में अतृप्त वासनाओं की तृप्ति किया करते हैं। इस सिद्धांत को लेकर साहित्य में प्रवेश कराया गया—क्योंकि साहित्य भी स्वप्न की तरह कल्पना विशिष्ट समझा गया और साहित्य-समालोचकों का एक दल ही खड़ा हो गया जो मनोविश्लेषक (Psycho-Analyst) के नाम से ख्यात हो गया। यूरोप में इस दल का अब भी प्रसार है। इसने संपूर्ण साहित्य को फ्रायड के स्वप्न की भांति अतृप्त वासनाओं का तृप्तियोग मान लिया है। इस प्रकार साहित्य रचना ऐसे आदमियों का पेशा समझा गया जिनसे चरित्र का कोई मतलब ही नहीं। और अब डॉक्टर हेमचंद्र जोशी भी भारत-भूमि में फ्रायड के उत्तराधिकारी बनना चाहते हैं। यहां के लिए नया मत है।

साहित्य और कलाओं का कुछ सामाजिक पक्ष है या कुछ भी नहीं? क्या सारे संसार का साहित्य ताड़ के झाड़ से ही गिरा हुआ है अथवा उसकी रचना करने वाले कभी अस्थि-चर्म विशिष्ट मनुष्य भी थे? डॉक्टर जोशी ने साहित्यसृष्टि करने वाले जिस (Platonic) प्रकृति के पुरुषों की कल्पना की है वह उनकी भावुक और भयभीत मनोवृत्ति की सूचना है। एक गालिब और एक जौक को लेकर आकाश-पाताल छान डालना ठीक नहीं। दुनिया इतनी छोटी नहीं कि वह गालिब से बड़ी न हो। संसार के अधिकांश महापुरुष जगततत्व को आत्मतत्व से भिन्न नहीं मानते। पर जोशीजी की नजर में तो इन दोनों का हाथी-घोड़े का बैर है। इस मनोवृत्ति को हम अधिक नहीं तो मजहबपरस्त मुसलमानों की पृथक-निर्वाचन की मांग की-सी मनोवृति अवश्य कहेंगे।

जोशीजी ने साहित्यदर्पणकार के 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्' का उद्धरण दिया है। आप कहते हैं वह वाक्य जो रस में सराबोर हो, काव्य है। ऐसा वाक्य जिसकी आत्मा से झरने (?) लगे वह कवि या साहित्यिक है। जोशीजी ने आत्मा को अच्छा सस्ता बनाया है। सस्ती का जमाना ही है। लेकिन जरा गौर करना चाहिए। 'रस' कोई मामूली रसायन ने नहीं बना करता डॉक्टर साहब! वह बड़ा ही कष्टसाध्य, साधनासाध्य है। आपके कहने के मुताबिक यह किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रसपूर्ण हृदय से (जिसकी कल्पना आपने एक बड़े घड़े के समान कर रखी है) टपाटप गिरा करता तब तो कहना ही क्या था! पश्चिमी मनोविज्ञान द्वारा भारतीय 'रसों' के विश्लेषण की चेष्टा की गई है। इसकी बहुत ही संश्लिष्ट योजना है। उसकी निष्पत्ति के लिए कोरी भावना ही नहीं कल्पना और बुद्धितत्वों की भी आवश्यकता रहती है। हमारे पंडितों ने प्रतिभा के अतिरिक्त व्युत्पत्ति तथा व्यावहारिक ज्ञान को कवि के लिए अनिवार्य बतलाया है। सोचना चाहिए कि कवि अपने रसपूर्ण हृदय से जगत को नया जीवनदान करने वाले अमृतमय साहित्य का सृजन, आप से आप कैसे करने लगेगा और इतना शीघ्र उसे ब्रह्मा की पदवी जोशीजी के सिवा और कौन दे देगा? यदि भावुकता का किला खड़ा करना छोड़ दिया जाए तो मालूम होगा कि प्रत्येक साहित्यकार का क्रम-क्रम से विकास होता है। समाज में रहकर वह समाज के विधि-निषेध का पालन करता है। उससे प्रमोद और स्खलन भी होते हैं—जैसा सबसे से होते हैं। द्विजेंद्र लाल ही शराब नहीं पीते थे, बहुत से कमीने भी पिया करते हैं। वे सबके सब द्विजेंद्र क्यों नहीं हो गए। क्या पता कि द्विजेंद्र लाल शराब छोड़ देते तो और अधिक सुंदर, सात्विक साहित्य का निर्माण न करते? क्या आप गारंटी कर सकते हैं?

इस जमाने में साहित्यकार को समाज का नेता और अग्रणी समझा जाता है। समाज उससे आशा रखता है कि वह अपनी कलम द्वारा जो शिक्षा देता है अपने आचरण द्वारा उसका उदाहरण भी बनेगा। 'मुंह में राम बगल में छुरी' कविजनों का यह आदर्श जोशीजी ही ठहरा सकते हैं। यह नहीं कि प्रतिभाशाली कवि और साहित्यिक आचार की जड़-परंपरा का ही पालन करता रहेगा। वह अपनी सूझ और प्रतिभा के बल से प्रचलित आचार के दोष भी दिखा सकता है। पर यह नहीं कि वह आचार की सत्ता ही न स्वीकार करे। अंतिम विश्लेषण में उसके साहित्य का सार कुछ विशेष आचरण ही तो ठहरता है। तो क्या वह साहित्य की जड़ ही काटकर फेंक दे?

इसके पहले *भारत* में साहित्यसेवी के आदर्श के संबंध में कई लेख निकल चुके हैं। उनमें आचार के मौलिक तत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। यहां पुनरुक्ति से कोई मतलब नहीं। जितेंद्रियता का अर्थ केवल वेश्यागमन का निषेध नहीं है। टॉल्सटॉय ने घरेलू वेश्यावृत्ति (Indoor prostitution) का भी जिक्र किया है। दुनिया में साधु बना रहना कठिन होते हुए भी बहुत कठिन नहीं है। घर के भीतर का आचरण कौन देखता है? मानसिक आचार पर किसकी दृष्टि पहुंचती है? पर आचार को तो व्यापक अर्थ में लेना चाहिए। आचार जब स्वभाव बनकर जीवन और साहित्य को स्वच्छता प्रदान करे तब उसका परिपाक समझा जाए। कृत्रिम आचार के लिए 'शिष्टाचार' शब्द हिंदी में काफी प्रचलित है। हम शिष्टाचार की नहीं, सत्य आचार की प्रसन्न आभा हिंदी साहित्य में देखना चाहते हैं।

जोशी बंधुओं की व्यंग्यशैली, इधर कुछ समय से हिंदी में अच्छा काट करने लगी है। जो समझते हैं वे यह स्वीकार करेंगे कि नकार (Negative) के तरफ से जोशी बंधु कभी-कभी बड़ी ही मार्मिक बातें कहते हैं जिनसे हिंदी अवश्य ही लाभान्वित होगी। उनकी समझदारी में संदेह नहीं है पर उनकी भावुकता रचनात्मक दिशा में उन्हें बुद्धि लड़ाने नहीं देती। वे लंबे-चौड़े रिमार्क पास करने की अपेक्षा यदि छोटे-छोटे तथ्यों का विश्लेषण करने में समय लगाएं तो हिंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को अधिक लाभ हो। पर यह जोशी बंधुओं की विद्यापरिधि के बाहर है या भीतर यह हम नहीं कह सकते। 'संसार में बहुधा एक मनुष्य एक विषय का ही पंडित होता है।'

(रविवार, 7 अगस्त 1932)

## सांप्रदायिक विवाद

पिछली गोलमेज कॉन्फ्रेंस की असफलता का मुख्य कारण है संप्रदायवादियों का समझौते के मार्ग में रुकावट डालना, इस बात को ऐसा कौन विवेकशील व्यक्ति है जो नहीं जानता। यद्यपि महात्मा गांधी ऐसे सार्वजनिक हित चाहने वाले महान आत्मा ने इस बात की पूर्ण चेष्टा की कि आपस का मतभेद दूर हो जाए, और इस गौण समस्या के कारण देश की वास्तविक मांग को न खोया जाए परंतु डॉक्टर अंबेडकर ऐसे अछूत दल के नेता की झिड़कियां भी महात्माजी को सहनी पड़ीं तथा उन्हें भी इन लोगों द्वारा संप्रदायवादी तथा पक्षपाती सिद्ध करने की पूर्ण चेष्टा की गई। मुसलमान संप्रदाय के कई नेताओं ने भी इसी प्रकार की चेष्टाएं कीं। बेंथल तथा गजनवी आदि महाशयों ने हिंदुओं का जैसा विरोध किया था, वह भी किसी से छिपा नहीं है। अंत में प्रधानमंत्री को गोलमेज कॉन्फ्रेंस समाप्त करते हुए यह स्पष्ट शब्दों में कहने का सुअवसर प्राप्त हुआ कि भारतीय समस्या को हल करने के पहले यह बहुत जरूरी है कि सांप्रदायिक तथा अल्पमत वालों की समस्याएं हल हो जाएं। इसके अनंतर इस 'वाद' की बीमारी दिन पर दिन बढ़ती ही गई। मुसलमानों और अछूतों के दल की एक ओर यह दशा है परंतु इसके विपरीत आए दिन हिंदू संप्रदाय वाले इस कुनीति से एकदम अपने को पृथक रखे हुए हैं। हिंदुओं के बड़े-बड़े नेता संपूर्ण राष्ट्र के हित को ही अपना हित समझते हैं। मुसलमान संप्रदाय में भी राष्ट्रवादियों की कमी नहीं है परंतु धार्मिक रूढ़ियों के द्वारा जकड़े हुए लोगों की बुद्धि को सन्मार्ग पर लाने के लिए किसकी योग्यता है? इसके लिए योग्यता तथा कर्तव्यपरायणता की आवश्यकता नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ थोड़े से सांप्रदायिक व्यक्तियों के कारण आए दिन देश में आपसी विवाद का अवसर आ ही गया।

भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने जब अपनी नीति की घोषणा भारत के संबंध में प्रकट की और उसका देश के राजनीतिक क्षेत्र में कितना भीषण प्रभाव पड़ा तथा उसके विरुद्ध नर्म दल के नेताओं ने विरोधस्वरूप कैसी नीति अख्तियार की वह भी सब लोगों पर भली-भांति प्रकट है। भारतमंत्री ने अपनी घोषणा में यह भी कहा था कि सांप्रदायिक समस्या पर वे विचार करके अपनी नीति फिर घोषित करेंगे। जब से सर सेमुएल होर ने यह बात कही है तब से देश में संप्रदायवादियों के विवाद का प्रकोप और भी जोर बांधने लगा। अब ऐसा निश्चय हुआ है कि अगस्त के अंतिम सप्ताह तक प्रधानमंत्री सांप्रदायिक समझौते के संबंध में अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नीति प्रकट कर देंगे। इसके लिए वे लार्ड सैंके, लार्ड इर्विन आदि से सलाह-मशविरा अभी से करने भी लगे हैं। वहां अभी सलाह-मशविरा ही हो रहा है परंतु यहां की वर्तमान सांप्रदायिक प्रगति को देखकर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि प्रधानमंत्री की घोषणा के पहले ही प्रत्येक संप्रदायवादी अपनी मांग पेश कर लेना चाहता है। इस समय सबसे प्रधान समस्या पंजाब, बंगाल के हिंदुओं और मुसलमानों की है। सिखों ने जब से इस बात की घोषणा कर दी है कि यदि सरकार मुसलमानों को अधिक अधिकार देती है तो पंजाब में मुस्लिम राज्य स्थापित हो जाएगा तब से मुसलमानों में एक प्रकार से आतंक छा गया है। अनेक मुसलमान नेताओं ने सिखों की घोषणा का तीव्र प्रतिवाद किया है और कहा है कि यदि सरकार ने मुसलमानों का हक पंजाब में नहीं दिया तब हर्गिज समझौता नहीं हो सकता। लाहौर के प्रसिद्ध संप्रदायवादी सर बरकत अली ने सिख़ों की घोषणा के प्रतिवाद में जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उससे यह साफ प्रकट होता है कि मुसलमान हर्गिज समझौता करने को राजी नहीं होंगे अगर उनकी मांगों को स्वीकार न किया गया। यहां पर इसका भी स्मरण दिला देना आवश्यक है कि पिछली गोलमेज कॉन्फ्रेंस में गजनवी, अंबेडकर आदि महाशयों ने जो पैक्ट अल्पसंख्यक मतवालों के संबंध में तैयार किया था उसमें सिख शामिल नहीं हुए थे। इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि सिख इन लोगों की हां में हां मिलाकर देश के हित में घातक नहीं बनना चाहते थे, उन्होंने उस समय जो त्याग किया वह प्रसंशनीय था परंतु मुसलमानों तथा अछूतों के हितचिंतना की ढोल पीटने वालों ने अपने ही मन की की और अंत में गोलमेज होने का परिणाम कुछ न निकला। परंतु अब सिखों ने भी अपनी नीति प्रकट कर दी है। इससे इस समय आपस के मतभेद की जो समस्या उपस्थित हो गई है उससे देश में एक हलचल सी मच गई है तथा सरकार भी चिंता में पड़ गई है, इस प्रकार समस्या दिन ब दिन जटिल होती जा रही है। यदि हम सच्चे हृदय से इस संबंध में विचार करते हैं तो हमारी समझ में यह आता है कि जहां जिसका जितना बहुमत हो वहां उनको उतनी ही 'सीटें' मिलनी चाहिए। पंजाब में मुसलमान जितनी 'सीटें' चाहते हैं वे उतने के हकदार नहीं हैं। और यदि उनके कथनानुसार उन्हें उतना हक मिलना ही चाहिए तब वे संयुक्त निर्वाचन क्यों नहीं स्वीकार कर लेते? क्यों पृथक निर्वाचन के लिए वे जी-जान एक किए देते हैं? यदि संयुक्त निर्वाचन होगा तब यह आप से आप फैसला हो जाएगा कि किसका कहां बहुमत है, खासकर पंजाब में। इस कार्य के लिए सिख एक प्रकार से राजी ही हैं तब मुसलमान क्यों नहीं राजी होते? इसलिए इससे यह साफ प्रकट होता है कि जो विवाद इस समय हो रहा है, वह व्यर्थ है और जो ज्यादती हो रही है और राष्ट्र के हित में जो धक्का पहुंच रहा है वह संप्रदायवादी मुसलमान और अल्पसंख्यक मत के नेताओं की ओर से देश के लिए बड़ा घातक सिद्ध हो रहा है। नए समाचार से यह भी प्रकट है कि शिमले में सिख और मुसलमान प्रतिनिधियों की जो सभा हो रही थी उससे भी समझौते की आशा नहीं है।

यहां पर हम एक बात और कह दें तो कोई अनुचित न होगा। आज जो सांप्रदायिक अनुत्तरदायित्वपूर्ण विवाद इस समय भारत में उपस्थित है जहां उसके अन्य कारण हैं वहां एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कारण सरकार की नीति भी है। गवर्नमेंट ने पृथक निर्वाचन और संयुक्त निर्वाचन का जो रूप खड़ा किया है वही इस विवाद के कारण हैं। सरकार ने मां-बाप की हैसियत से सबके साथ बराबर तथा न्यायोचित व्यवहार करने की जो नीति स्थिर की है वह वाह्यतः न्याय संगत दिखलाई देती है जरूर, परंतु आंतरिक रूप से वह हानिकारक सिद्ध हो रही है। यह बात ठीक है जो संप्रदायी आज देश के हित में घातक सिद्ध हो रहे हैं उनके कार्य का भविष्य बिलकुल खोखला है, उसका नतीजा कुछ भी न होगा परंतु इसके साथ ही यह भी कहावत प्रसिद्ध है कि 'एक मछली तालाब को गंदा कर देती है।' इसलिए आपस में विवाद का जो विष बोया जा रहा है वह अहितकर और भीषण है। इससे लाभ के बदले हानि ही है तथा विरोधी दल को इस बात को कहने का अवसर मिल रहा है कि भारतीय अभी इस योग्य नहीं हैं कि उनकी मांगों को पूर्ण किया जाए। सरकार कहती है कि जहां एकमत वाले नहीं हैं, प्रत्येक संप्रदाय की अलग-अलग मांगें हैं, वहां कैसे सारे देश के निवासियों तथा संप्रदाय वालों को संतुष्ट किया जा सकता है। इसलिए हमारी यह राय है कि जितना ही शीघ्र आपस में समझौता हो जाए उतना ही अच्छा है। हम यहां सरकार की नीति के संबंध में भी एक बात कह देना चाहते हैं कि जो संप्रदायवादी अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पका रहे हैं और देश के भिन्न-भिन्न मतों का अपने को नेता बतलाते हैं, वह एकदम निर्मूल है। मुसलमानों के तथा हिंदुओं के आज कितने ही नेता जेलों में बंद हैं, और वास्तविक रूप से विचार किया जाए तो वे सार्वजनिक रूप से देश का कल्याण चाहते हैं—उनकी राय के बिना कोई समझौता नहीं हो सकता। खासकर के सांप्रदायिक विवाद। इसलिए सरकार की ऐसी कोई भी नीति अल्पसंख्यक मत तथा सांप्रदायिकता के संबंध में देश को अमान्य होगी जो सार्वजनिक नेताओं की सलाह के बिना निर्णीत की जाएगी। अंबेडकर, गजनवी, सर बरकत अली आदि अल्पमत वालों तथा मुसलमानों के सर्वेसर्वा नहीं हैं। बिना महात्मा गांधी, पूज्य मालवीय जी, डॉक्टर अंसारी तथा लिबरल दल के नेताओं की राय के किसी प्रकार का भी सांप्रदायिक फैसला हमारी समझ में देश को मान्य न होगा। इसलिए इस आपसी विवाद को दूर करने के लिए सरकार का परम कर्तव्य है कि वह भेद भाव को दूर करने की पूर्ण चेष्टा करे और भारत का दुर्भाग्य भी तभी दूर होगा।

(गुरुवार, 11 अगस्त 1932)

## खींचतान

जिस दिन सर सेमुएल होर ने भारत संबंधी नई नीति का लग्गा लगाया, उसी दिन से भारत के लिबरलों और विलायत के विद्वान पुरुषों में एक अजीब खींचतान शुरू हो गई है। भारत में सर तेजबहादुर सप्रू, श्री जयकर और जोशी के परामर्श कमेटी से इस्तीफा देने के बाद लगातार यहां के प्रायः सभी नर्मदली इकट्ठा होकर विरोध ही आवाज उठाने लगे हैं और इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आवाज के जवाब में लार्ड इर्विन से लेकर बड़े-बड़े भारत हितैषी कहलाने वाले विलायती महानुभाव यह धीरज धराने में लग गए हैं कि सर सेमुएल ने सचमुच जल्दी के विचार से यह सब परिवर्तन किया है और इसका कोई दूसरा मतलब नहीं है। लेकिन लिबरल लोग अपनी शब्दज्ञान-चातुरी के कारण उन लोगों की बातों में नहीं आ रहे बल्कि यह जोर देकर कह रहे हैं कि नई नीति शीघ्रता के लिए आविष्कृत नहीं की गई, वह तो गोलमेज सम्मेलन को दफनाने के लिए निकाली गई है। कल ही भारत-सेवक-समिति की ओर से जो विरोधपत्र प्रकाशित हुआ है, वह सर सेमुएल होर को अचंभे में डाल देगा क्योंकि उसमें भारत के अनेक प्रांतों के सभी बड़े-बड़े लिबरलों के हस्ताक्षर हैं जिनसे असहयोग की आशा नहीं की जाती थी। देश के बड़े-बड़े केंद्रों में विरोधी सभाएं की गई हैं जिनका संदेश विलायत तक पहुंच चुका है। इधर यह हो रहा है और उधर सर सेमुएल होर की नीति के ऐसे-ऐसे समर्थक विलायत में प्राप्त हो रहे हैं, जो हमारे लिए रहस्यजनक है। लार्ड इर्विन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इन्होंने ही गोलमेज सम्मेलन के लिए सबसे अधिक उद्योग किया था। इनके अलावा और भी बहुत से पंडित गण अपनी-अपनी अक्ल लड़ा रहे हैं। आज के ही पत्रों में सर गिलबर्ड मरे, सर फेंसिस यंगहस्वड आदि भारत के प्राचीन हितैषियों ने एक पत्र में लिबरल नेताओं को यह सूचना भेजी है कि छह हजार मील दूर रहने वाले आप लोग सर सेमुएल होर का उद्देश्य उतना ठीक-ठीक नहीं समझ सकते जितना स्थानीय स्थिति के जानकार लार्ड इर्विन वगैरह समझ सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि जहां एक ओर विलायत के बड़े-बड़े भारत-हितैषी लोग भी लिबरलों को ही भ्रम में साबित करना चाहते हैं वहां लिबरल दल के नेता गण इसे भ्रम नहीं मानते बल्कि विलायत के ऊपर वचन भंग करने वगैरह का इल्जाम लगाते हैं। भारत की राजनीति की आज कल यही सबसे सिरे की बात हो रही है।

इस खींचतान का आखिरी नतीजा क्या निकलेगा यह कौन कह सकता है। थोड़े दिनों के लिए इसके कारण भारत में हलचल मच गई और विलायत में भी लोग चौकन्ने हो गए। ब्रिटिश सरकार और विलायत वालों को यह समझने का मौका मिला होगा कि भारत के 'जीहुजूरों' में और माडरेटों में कुछ फर्क भी है। दोनों बिलकुल ही एक जाति के जीव नहीं हैं। जिन माडरेटों ने सरकार से इस अवसर पर असहयोग किया है उनमें से कुछ प्रमुख मारडेट एक सर्वदल सम्मेलन करने का विचार रखते हैं। यह सम्मेलन साइमन-कमीशन के विरोधी भारतीय सम्मेलन की ही तरह का होगा और आशा की जाती है कि इससे कांग्रेस को भी सहानुभूति होगी। जिन माडरेट नेताओं ने असहयोग की घोषणा की है वे इस बात से भी नाराज दीख पड़ते हैं कि व्यापारी दल के सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास आदि ने लिबरलों के असहयोग-विधान में हस्ताक्षर क्यों नहीं किया। साथ ही, माडरेट लोगों ने यह सवाल भी खड़ा किया है कि डॉक्टर मुंजे जैसे नेताओं ने सरकारी कमेटियों से अब तक इस्तीफा क्यों नहीं दिया।

देश की राजनीति में माडरेट लोग तो व्यापारीदल और हिंदू महासभा से भी नर्म समझे जाते हैं क्योंकि आर्डिनेंसों का विरोध करते हुए भी इन लोगों ने अब तक सरकारी कमेटियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में काम किया और महात्मा गांधी आदि की रिहाई का आग्रह करते हुए भी उन्होंने इसे अपने सहयोग की शर्त नहीं बनाया। लेकिन इस मौके पर लिबरल लोग एक साथ मिलकर काम करने का विशेष आग्रह कर रहे हैं जैसाकि सर पुरुषोत्तमदास और डॉक्टर मुंजे के संबंध की इनकी टिप्पणियों से जाहिर होता है। यद्यपि एक साथ मिलकर काम करना प्रभावशाली होता है पर जब तक भिन्न-भिन्न दलों के बीच कार्यक्रम की एकता नहीं होगी तब तक सर्वदल सम्मेलन कैसे हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि पहले आर्डिनेंस हटाए जाएं और महात्मा गांधी तथा कांग्रेस दल जेलों से छोड़ा जाए तब हम लोग सहयोग करेंगे। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि पहले सांप्रदायिक फैसला सुना दिया जाए तब हम लोग तय करेंगे कि सहयोग करें या असहयोग। लिबरल लोग सिर्फ यही कहते हैं कि गोलमेज सम्मेलन का तरीका व्यवहार में लाया जाए, बस हम लोग सहयोग करने लगें। इस मतभेद के रहते सर्वदल सम्मेलन को किस बुनियाद पर सफलता मिल सकती है? साइमन कमीशन का प्रतिकार करने के लिए जिस सर्वदल सम्मेलन का संघटन किया गया था उसकी ठोस बुनियाद और दृढ़ भित्ति थी। उस प्रकार की दृढ़ता अभी प्राप्त नहीं है और बिना समझौते के प्राप्त नहीं हो सकेगी।

जिस नई नीति का गुणगान करने वाले मिस्टर चर्चिल जैसे सर्वश्रेष्ठ स्पष्टवक्ता हैं उसके साथ भारत की पटरी कभी बैठ ही नहीं सकती। ऐसी अवस्था में केवल दो बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि सर सेमुएल होर और सम्राट की सरकार अपनी नई घोषणा को वापस ले और लिबरलों की मांग के मुताबिक तीसरे गोलमेज सम्मेलन का इंतिजाम करे। ऐसा करने से संभव है, विलायत को माडरेटों का सहयोग प्राप्त हो सकेगा। लेकिन तब भी प्रमुख राष्ट्रीय व्यापारी उसका साथ देंगे—ऐसी संभावना नहीं है। वे तो आर्डिनेंस-राज्य को हटाने और कांग्रेस नेताओं को छोड़ने की शर्त पूरी होने पर ही सहयोग करेंगे। यह तो सत्य ही है कि नए विधान के बनाने में यदि कांग्रेस की मदद नहीं ली जाती तो भारतीय लोकमत का निरादर किया जाता है। ऐसी हालत में विधान बन जाने पर भी यदि उसको व्यवहार में सफलता नहीं मिल सकेगी तो इसकी पूरी जिम्मेदारी सरकार पर होगी। इस जिम्मेदारी का महत्व भुलाने लायक नहीं है। यदि इस महत्व को समझकर काम किया जाए तो न केवल गोलमेज संबंधी बदली हुई नीति बल्कि वर्तमान आर्डिनेंसी शासन चक्र को ही उठा देने की जरूरत आसानी से महसूस की जा सकती है लेकिन सर सेमुएल होर से ऐसी आशा कौन कर सकता है?

यदि विलायती सरकार अपनी नई नीति पर ही चलती रही तो भारत के प्रभावशाली राष्ट्रीयदल विधान के काम से अलग होकर चुपचाप बैठे रहना पसंद नहीं करेंगे। राजनीति में चुप्पी साधने की गुंजाइश नहीं है। यह तो सतत क्रियाशील क्षेत्र है। माडरेट दल अभी से संगठित रीति से काम करने पर जोर देने लगा है। जब माडरेट दल के ऐसे विचार हैं तब और दलों के विचार भी समझे जा सकते हैं। डॉक्टर किचलू ने लिबरलों को उनके साहस आदि के लिए बधाई दी हैं। इन बातों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लगभग उसी प्रकार की परिस्थिति तैयार की जा रही है जैसी साइमन साहब के शुभागमन के समय तैयार की गई थी। विधान के काम से अलग होकर देश के भिन्न-भिन्न दल हाथ पर हाथ रखे कितने समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तक बैठे रह सकते हैं? ये अपनी राजनीतिक मृत्यु अपने हाथ ही कैसे मोल लें लेंगे? अवश्य ही उन्हें कुछ करना होगा। 'जीहुजूरी' उनसे नहीं हो सकेगी। ऐसी अवस्था में कुछ लिबरल दल वालों ने सर्वदल सम्मेलन करने और एकत्र होकर काम करने का जो विचार प्रकट किया है वह एक प्रकार से अनिवार्य हो गया है।

## किसकी बात मानी जाए ?

ब्रिटेन जैसे संपन्न शासक देश के सम्राट पंचम जॉर्ज महाराज अपने देशवासियों को यह खबर कर रहे हैं कि आप लोग विदेशी टाइपराइटर खरीदकर देश का उपहास करते हैं। महाराज के ज्येष्ठ पुत्र युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स महोदय तो अदनी से अदनी वस्तु भी स्वदेशी ही खरीदने का देशव्यापी आंदोलन ही उठाए हुए हैं। लेकिन हमारे पराधीन दरिद्र देश में कुछ ऐसे 'महाराज' हैं जो सम्राट पंचम जॉर्ज महाराज से इस विषय में मतभेद रखते हैं और ऐसा करते हुए अपनी स्वतंत्र वृत्ति की विशेषता प्रकट करते हैं। भारतवासियों को अपनी मृत्यून्मुख परिस्थिति से उबार पाने के लिए स्वदेशी की शरण लेनी चाहिए, यह एक बिलकुल सीधा-सादा सत्य है लेकिन भारत के महाराज नवनगर ने लिवरपूल (विलायत) के एक भोज में व्याख्यान देते हुए कहा—

> ब्रिटेन को यह मालूम नहीं है कि हिंदुस्तान दो हैं। एक तो जिस पर ब्रिटेन शासन करता है और दूसरा वह जिस पर हिंदुस्तानी राजे शासन करते हैं। ब्रिटेन को चाहिए कि वे देशी राज्यों की तरफ ज्यादा गौर करे क्योंकि देशी राज्य ब्रिटेन से व्यापार संबंध करना चाहते हैं। ... हम लोग एक साम्राज्य के हैं। आशा है कि ओटावा सम्मेलन कुछ अच्छा नतीजा निकालेगा पर यदि न निकाले तो हम बैठे नहीं रह सकते। हमको कोशिश करनी होगी। जो कुछ हम लोग जिनका भारत में महान स्वार्थ है आप (विलायितों) से कहेंगे कि आप लोग हमारी मदद करें और बदले में हम भी आपकी मदद करेंगे। पिछले दो या तीन वर्षों में हमने अपने यहां मैनचेस्टर की वस्तुओं को तिगुने-चौगुने परिमाण में मंगाया है। बंबई की मूर्खता से हम लाभ उठाना चाहते हैं।

महाराज नवनगर ने बंबई की यह मूर्खता साबित की कि वह विदेशी वस्तुओं को कम मात्रा में खरीदने लगा है। लेकिन महाराज साहब ने इस बात पर विचार नहीं किया कि यदि बंबई की तरह विलायत भी सम्राट स्वयं जॉर्ज और युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स का आदेश मान ले—जैसाकि उसने मान लिया है—तो यह विलायत की मूर्खता होगी या बुद्धिमानी? उन्हें यह भी बतलाना चाहिए कि सम्राट पंचम जॉर्ज का उक्त उपदेश स्वयं महाराज नवनगर के उपदेश से भिन्न होने के कारण बुद्धिमानी की श्रेणी में समझा जाए या उसकी विपरीत श्रेणी में? हम लोग किसकी बात मानें?

(रविवार, 14 अगस्त 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# अमेरिका-जापान का संघर्ष

*कंटेंपरेरी रिव्यू* के अगस्त के अंक में 'अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति' शीर्षक लेख लिखते हुए मिस्टर विलेम स्टीड ने निकट भविष्य में ही भीषण महायुद्ध छिड़ने की भविष्यवाणी की है। इस विनाशकारी युद्ध के टालने का एकमात्र उपाय यदि कुछ है तो वह लीग ऑफ नेशंस की शक्ति संघटित कर उसे प्रभावशाली बनाना है। इस भविष्य युद्ध का मुख्य क्षेत्र कहां होगा, इस पर मिस्टर स्टीड लिखते हैं :

> मैं इस समय एक प्रदेश ऐसा देखता हूं जहां की परिस्थिति युद्धोन्मुख होती जा रही है और जहां युद्ध छिड़ना अनिवार्य-सा हो गया है। यह प्रदेश प्रशांत महासागर का है जहां संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान की पॉलिसी, उद्देश्य और हितों में संघर्ष हो रहा है और यदि ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस युद्ध को रोकने का प्रयत्न शीघ्रता से नहीं करेंगे तो वह बिना छिड़े न रहेगा। अमेरिका और जापान की ही भांति चीन और रूस में लड़ाई के आसार दीख पड़ते हैं पर यहां उसका उल्लेख नहीं किया जा रहा।

जापान के फौजी उन्माद के कारण शांति खतरे में पड़ गई है। मिस्टर स्टीड के शब्दों में जापान ने पिछले दिसंबर से ही बिना खौफ खतरे के न केवल 'नौ शक्तियों की संधि' और 'केलाग-पैक्ट' को भंग किया है बल्कि लीग-कवनेंट को भी तोड़ डाला है। यदि लीग के प्रमुख सदस्य ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस मुस्तैदी से काम लेते और जापान को अंतर्राष्ट्रीय विधान तोड़ने की मनमानी न करने देते तो संसार में शांति को कुछ अधिक आधार मिलता। जो ब्रिटिश और फ्रेंच पत्र साम्राज्यवादी नीति के कारण जापान की ज्यादती का समर्थन करते रहे वे यह नहीं समझ सके कि वे संसार की शांति में कितना बड़ा विक्षेप डाल रहे हैं। मिस्टर स्टीड ने भावी महायुद्ध के विषय में जो मत प्रकट किया है उसे भयावहता कहकर टाला नहीं जा सकता। मिस्टर स्टीड वे ही हैं जिन्होंने सन् 1909 में यह भविष्यवाणी की थी कि 1915 के पहले यूरोप में महाभारत छिड़ेगा और वह छिड़ा भी। मिस्टर स्टीड अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बड़े ही दक्ष और विचारवान जानकार हैं। 1909 की भविष्यवाणी करते समय उनके मन में जो शंकाएं उठ रही थीं वे ही आज फिर उठ रही हैं। उस समय का यूरोप जिस भयावह दिशा में बढ़ रहा था उसी में आज अमेरिका और जापान बढ़ रहे हैं।

मिस्टर स्टीड का कथन है कि एशिया और यूरोप में विकट उथल-पुथल मचाने वाले इस भावी युद्ध को रोकने का एकमात्र उपाय यह है कि ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका अब भी एक हो जाएं और जापान को यह सुझा दें कि राष्ट्रीय हित के लिए युद्ध की घोषणा करना अथवा बिना युद्ध घोषणा किए संघर्ष करना ठीक नहीं होगा। जापान को यह भी बतला दिया जाए कि यदि वह लीग-कवनेंट और केलाग-पैक्ट को मानने को तैयार नहीं होगा तो वह मित्रराष्ट्रों द्वारा दबाया जाएगा। यदि इस प्रकार की धमकी जापान को दी जाएगी तो या तो जापान दब जाएगा या युद्ध करने को तैयार होगा। अधिक संभावना युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की ही है। इसलिए जापान को अल्टीमेटम देने वाले राष्ट्र—ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका को जापान के साथ जबर्दस्त युद्ध के लिए तैयार रहना होगा। अभी उन दिनों जब मंचूरिया में चीन-जापान युद्ध हो रहा था तब ब्रिटेन और फ्रांस आदि ने जो ढिलाई दिखाई उससे तो जान पड़ता है कि जापान के विरुद्ध अस्त्र उठाने को ये राष्ट्र तैयार नहीं हैं। वैसी अवस्था में अमेरिका का संयुक्त राज्य अभी जापान से लोहा लेने को तैयार नहीं होगा चाहे उसको व्यापारिक दृष्टि से जापान अधिक से अधिक क्षति ही पहुंचाए। निरस्त्रीकरण सम्मेलन के फेल होने का एक कारण सुदूर पूर्व की स्थिति भी रहा है। संभव है, उसके फेल हो जाने के बाद एक बार अस्त्रसज्जा की जाए और युद्धटंकार आरंभ हो। यह कितना शीघ्र होगा यह अभी निश्चय नहीं है, पर यह निश्चय है कि दुनिया में अभी शांति स्थापना के लक्षण नहीं दीख पड़ते।

## महामंडल की डाइरेक्टरी

भारत महामंडल, काशी की जो सालाना डाइरेक्टरी निकला करती है वह इस साल भी निकलकर हमारे पास समालोचना के लिए आई है। यद्यपि यह डाइरेक्टरी एक साधन-संपन्न संस्था से निकलने के कारण चाहे तो सामयिक और उपयोगी बन सकती है पर हम देखते हैं कि इसके अधिकांश में महामंडल तथा उसके अधिपति की ही प्रशंसात्मक चर्चा भरी गई है। आज से कई वर्ष पहले आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने महामंडल की इस आत्मस्तुति की निंदा की थी परंतु हम देखते हैं उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसा समझ पड़ता है कि महामंडल जैसी संस्थाओं के नेतागण यह धारणा बना चुके हैं कि हम जो मन में होगा, वह करेंगे और कोई हमें कुछ कह नहीं सकेगा। हिंदी के समाचार-पत्रों को ऐसी संस्थाएं इतना लघु समझती हैं कि जैसे उनकी सम्मतियों से उनका कुछ भी बन-बिगड़ नहीं सकेगा। परंतु उन्हें यह भी समझना चाहिए कि लोकमत एक दिन में नहीं बनता। वह जब कभी बनते-बनते बनेगा—आशा है, उसके बनने में अब बहुत दिन नहीं लगेंगे—तब इतनी आसानी से उसकी अवहेलना कोई नहीं कर सकेगा। डाइरेक्टरी के कई सौ पृष्ठ अपने विज्ञापन में व्यय कर जो कुछ पन्ने हिंदी साहित्य के विषय में लिखे गए हैं वे भी विशेष अज्ञातपूर्ण हैं। यद्यपि डाइरेक्टरी प्रचलित वर्ष की है पर वह लेख कई वर्षों पहले का लिखा हुआ है, यह उसके पढ़ने से सबको मालूम हो जाएगा। ऐसी हालत में सालाना डाइरेक्टरी निकालने का क्या अर्थ है? इस लेख में लेखक हिंदी साहित्य से नितांत असंपर्कित व्यक्ति है जिनका नाम पाठकों के सामने पहले-पहल इसी डाइरेक्टरी से प्रकट होगा। दुःख है कि देश की दरिद्रता के कारण बहुत से सदनुष्ठान हो नहीं पाते और संपन्न संस्थाएं जो करती हैं, वह ऐसे विकृत रूप में करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# *हिंदुस्तानी* और बाबू शिवपूजन सहाय

प्रयाग की तिमाही पत्रिका *हिंदुस्तानी* जो कि 'हिंदुस्तानी एकेडमी' की ओर से निकाली जाती है, इस बार भी निकली है। नवीन अंक में अन्य महत्वपूर्ण लेखों के अतिरिक्त दो लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। एक तो है श्रीयुत रामाज्ञा द्विवेदी का वह लेख जिसका शीर्षक है 'अवधी भाषा की कुछ पहेलियां' और दूसरा स्वयं संपादकीय लेख है। श्री रामाज्ञा द्विवेदी का उपर्युक्त लेख देखकर पहले ऐसी धारणा होती है कि यह भाषा-विज्ञान संबंधी कोई लेख है। तीन महीने में एक बार जो पत्र निकलता है और जिसके पीछे प्रांतीय सरकार जनता के हजारों रुपए खर्च करती है, उसमें यह लेख देखकर ऐसा अनुमान होना स्वाभाविक ही है कि इसमें 'अवधी' भाषा संबंधी कुछ ग्रंथियां सुलझाई गई हैं। परंतु लेख के साथ आगे बढ़ने पर यह भ्रम दूर हो जाता है और देहातों के 'बुझौवल' आपके सामने आते हैं। इन 'बुझौवलों' में 'अवधी' भाषा के कुछ विशेष पहलू प्रदर्शित किए गए हों और उनका विवेचन किया गया हो ऐसा भी नहीं है। लेख के शीर्षक के साथ 'अवधी' का धोखा क्यों दिया गया, यह समझ में नहीं आता। बुझौवलों में भी ऐसी कौन सी विशेषता है जिससे वे 'तिमाही' पत्रिका में स्थान पा सकें, हम नहीं कह सकते। दूसरे लेख के महत्वपूर्ण अंश में, जो संपादकीय है (इस पत्रिका के संपादक प्रयाग विश्वविद्यालय के कितने ही अध्यापक पुंगव आदि आदि हैं) लिखा गया है कि बाबू शिवपूजन सहाय का शरीरपात हो गया है जिससे *हिंदुस्तानी* के संपादक समाज को क्लेश मिला है। क्या सचमुच बाबू शिवपूजन सहाय का शरीरपात हो गया है? यह समाचार *हिंदुस्तानी* को किसी विशेष संवाददाता द्वारा प्राप्त हुआ होगा, हिंदी समाज को तो इसका पता नहीं। कल शिवपूजनजी का जो पत्र काशी से हमें मिला है उससे वे भले-चंगे जान पड़ते हैं और हमारे पत्र के लिए कुछ लिखने की तैयारी भी कर रहे हैं। मालूम नहीं *हिंदुस्तानी* को इस समाचार के लिए बाबू शिवपूजन सहाय ने बधाई दी या नहीं और *हिंदुस्तानी* के संपादक-गणों के 'शोकप्रकाश' के लिए उन्होंने अपनी 'सहानुभूति' प्रकट की या नहीं!

# ग्वालियर सम्मेलन

ग्वालियर हिंदी साहित्य सम्मेलन के संबंध में जो किमाकार चर्चा समाचार-पत्रों में छेड़ी गई है उसे हम किसी भी प्रकार सार्थक नहीं समझते। यदि उससे सच-झूठ का पता लगाना होता तो अब से बहुत पहले लग गया होता। लेकिन उससे तो आपस के वैमनस्य और व्यक्तिगत बुराइयों का प्रदर्शन होना है, वह हो रहा है। हमारे सामने सवाल यह है कि हम कब तक इस प्रकार की उलझन में पड़े हुए अपने पाठकों के पैसों और समय का दुरुपयोग करते रहेंगे। हमारे ग्राहकों को यह कैसे सहन होगा कि हम हिंदी साहित्य सम्मेलन के पचड़े को लेकर पत्र के कालम भरते रहें, जबकि वे हमसे दूसरी आवश्यक बातों की प्रतीक्षा करते हैं। *भारत* के पाठकों को हिंदी साहित्य सम्मेलन की वास्तविक स्थिति का पता देने में हमने पिछले दो वर्षों से जो प्रयास किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है, उसके बाद उस पर अधिक टीका-टिप्पणी भी पुनरुक्ति हो जाती है। इसलिए इस संबंध में अंतिम पंक्तियां लिख देने का समय आ गया है। प्रत्येक सूत्र से जो समाचार मिले हैं उनका संग्रह इस प्रकार किया जा सकता है। पिछले झांसी सम्मेलन में देहली और ग्वालियर दो जगहों से निमंत्रण दिए गए। ग्वालियर का निमंत्रण स्वीकार किया गया। इस स्वीकृति में रुपयों की ऐषणा अवश्य थी। ऐसी आशा की गई है कि देशी राज्य होने के कारण, कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के प्रभाव से आर्थिक सहायता अच्छी मात्रा में मिल सकेगी। बस इस आशा के उदय होने के आवेश में ग्वालियर का निमंत्रण स्वीकार कर लिया गया और यह बात स्पष्ट नहीं की गई कि निमंत्रण ग्वालियर के जनसाधारण की ओर से है, राज्य की ओर से है, साहित्यिक समाज की ओर से है अथवा केवल एक सभा की ओर से है। यह स्पष्ट न होने के कारण ही प्रयाग के साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों को अतिथि-धर्म की अवहेलना करनी पड़ी और यह लिखना पड़ा कि यदि ऐसा मालूम होता तो सम्मेलन ग्वालियर का आतिथ्य स्वीकार न करता।

जिस हिंदी सभा ने सम्मेलन को ग्वालियर बुलाया है वह एक पुरानी सभा है। राज्य के अधिकारियों से उसका प्रीति संबंध रहा है। वह राज्य की नीति के विशेष अनुकूल बनकर चलना चाहती है। ऐसा करने के लिए कहा जाता है, वह वचनबद्ध भी है। यह परिस्थिति सभा को सार्वजनिक सभा बनाने में एक बड़े हद तक बाधक हो सकती हैं। हिंदी साहित्य सम्मेलन अपने को सार्वज़निक संस्था कहता है। अनेक बार इसके अध्यक्ष ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो साहित्यिक नहीं हैं केवल राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार करने का लक्ष्य सम्मेलन के साथ लगा हुआ है और इस कार्य में उसे राष्ट्रीय कांग्रेस से सहायता मिलती रहती है। सम्मेलन के अधिवेशनों के साथ हिंदी के पत्रकारों का सम्मेलन भी हुआ करता है अतः सम्मेलन के प्लेटफार्म से कभी-कभी ऐसी आवाजें भी सुन पड़ती हैं जो देशी राज्यों को विशेष रुचिकर नहीं प्रतीत हो सकतीं। हम यहां यह नहीं कहना चाहते कि सम्मेलन की यह कार्य प्रणाली कैसी है। हमारा ध्यान इस बात पर जा रहा है कि सम्मेलन के इस रूप को ग्वालियर के अधिकारी और अधिकारियों की प्रीतिपात्र हिंदी-सभा किस प्रकार ग्रहण करेगी। हम यह जानना चाहते हैं कि हिंदी-सभा की ओर से जो स्वागतकारिणी समिति बनाई गई है वह सम्मेलन का उसके प्रकृत रूप में स्वागत करेगी अथवा यहां भी, रुपयों के लिए, सम्मेलन को झुकना पड़ेगा और स्वागतकारिणी से समझौता करना पड़ेगा। यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसका उत्तर मिलने से बहुत सा वाद-विवाद बंद हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि सम्मेलन अपनी अब तक की नीति के अनुसार इस बार देशभक्त बाबू राजेंद्रप्रसाद को अपने संपादक-परिषद का अध्यक्ष बनावे और इसी प्रकार अन्य परिषदों के अध्यक्ष भी निर्वाचित किए जाएं तो यह वर्तमान स्वागतकारिणी को कहां तक पसंद होगा?

हम झगड़े के अंतरंग को देखना चाहते हैं। हमें यह जानना है कि राजनीति की किसी मौलिक समस्या को लेकर दलबंदी हुई है अथवा यह केवल एक प्रासंगिक या व्यक्तिगत झगड़ा है। यदि पहली बात है तब तो सम्मेलन की अपनी संपूर्ण परंपरा पर विचार करके ग्वालियर की ओर नजर दौड़ानी चाहिए। और यदि दूसरी बात है तब तो ऐसा प्रबंध करने की चेष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की जानी चाहिए जिससे गलतफहमी दूर कर दी जाए, व्यक्तिगत झगड़े मिटा दिए जाएं और ग्वालियर की ओर से सार्थक प्रतिनिधि स्वागतसमिति का निर्वाचन किया जाए। प्रयाग के सम्मेलन के अधिकारियों ने शायद यही दूसरी बात समझी थी और इसलिए उन्होंने इस आशा से प्रयत्न किया कि दोनों दलों में समझौता हो जाएगा और सम्मेलन ग्वालियर में करके आकांक्षाओं की पूर्ति की जाएगी। यह प्रयत्न सम्मेलन ने एक से अधिक बार किया—यद्यपि साधारणतः एक बार करना ही पर्याप्त था—और अपने प्रतिनिधि बनाकर ग्वालियर भेजे। इन प्रतिनिधियों ने जो रिपोर्ट तैयार की है वह सम्मेलन की स्थायी समिति के सामने शीघ्र ही उपस्थित की जाएगी। प्रतिनिधियों की रिपोर्ट क्या है यह विस्तार के साथ तो नहीं पर संक्षेप में इंटरव्यू के रूप में हमारे इसी अंक में प्रकाशित की जा रही है। इससे यदि कुछ निष्कर्ष निकलता है तो यही कि वर्तमान स्वागतकारिणी संतोषपूर्ण नहीं है और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। विरोधी दल की भी यही मांग रही है। इस प्रकार विरोधी दल का ही समर्थन ये प्रतिनिधि भी करते हैं। क्या प्रतिनिधियों के इस अन्वेषण को मौजूदा स्वागतकारिणी स्वीकार करेगी? हम तो यह जानना चाहते हैं कि क्या वह स्वीकार कर सकेगी? क्या स्वागतकारिणी के सदस्य राज्य की ओर से अपनी जिम्मेदारी का ध्यान रखते हुए विद्रोही दल से मेल कर सकेंगे? यदि नहीं तो प्रयाग की स्थायी समिति को अपना स्पष्ट निर्णय सुनाना ही होगा। वह निर्णय सम्मेलन के सार्वजनिक स्वरूप का ध्यान रखते हुए, प्रतिनिधियों की रिपोर्ट और सम्मतियों के अनुकूल ही होने की आशा की जाती है।

यदि ग्वालियर में जो दस-बीस साहित्यिक निवास करते हैं वे आपस में वैमनस्य रखते हैं और अपने घर में अतिथि का स्वागत करते हुए भी इस वैमनस्य की सूचना समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराते हैं तो यह उनका स्खलन है। हम देखते हैं कि ग्वालियर जैसे छोटे से केंद्र में द्वेष की मात्रा औचित्य की सीमा के भी कुछ परे पहुंच गई है। यह बात भी प्रकट हो रही है कि इस अवसर से लाभ उठाकर अनेक व्यक्तियों को एक-दूसरे के चरित्र संबंधी रहस्य भी प्रकट करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया है—यह और भी दुर्भाग्य की बात है। पर इससे न तो सम्मेलन को और न सार्वजनिक समाचारपत्रों को दिलचस्पी हो सकती है। हम तो इस अवसर पर उठाए गए ऐसे प्रसंगों को निंद्य समझते हैं। ऐसे आक्षेपों से अपने ही पक्ष की दुर्बलता और अपना ही उद्वेग प्रकट होता है। जो मुख्य प्रश्न है वे यह हैं कि हिंदी-सभा का स्वरूप क्या है? वह कितनी मात्रा में राजनीति के अनुकूल चलती हुई कितने अंश तक सार्वजनिक बन सकती है? वह कितने हद तक व्यक्तिगत झगड़ों से ऊपर उठकर अभ्यागत का स्वागत कर सकती है? अब तक उसके संबंध में जो जानकारी हमें प्राप्त हुई है उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पुरानी संस्था होने के कारण वह कई प्रकार के बंधनों से जकड़ी हुई है और उसमे कुछ उदारबुद्धि सदस्यों के रहते हुए भी बहुमत ऐसा नहीं है कि हिंदी साहित्य सम्मेलन, अपने नाम को सार्थक करते हुए अबोध रीति से अपना कार्य संचालन कर सके। रुपया मिलने, न मिलने के संबंध में हम कुछ नहीं कहना चाहते।

(गुरुवार 18 अगस्त 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# ऊधो आ गए

स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए भारतवासियों में वैसी ही विकलता छा रही है जैसी श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए ब्रजमंडल की गोपियों में छाई हुई थी। वहां कृष्ण के वियोग में उन्हें तन-बदन की खबर नहीं रह गई थी, यहां भी लाखों भूखे-अधनंगे हजारों यातनाओं में फंसे दीख पड़ते हैं। लेकिन साथ ही साथ यहां कुछ ऐसे सुखी-संपन्न 'वियोगियों' की भी कमी नहीं है जिन्हें स्वराज्य का वियोग ऊपर ही ऊपर सताता है, बहुत गहरे नहीं पैठता। इन लोगों को भिन्न-भिन्न कमेटियों, डेपूटेशनों आदि के रूप में अपना हंसदूत, मेघदूत, पवनदूत आदि भेजते देखा जाता है जिनमें सबसे आखिरी गोलमेज सम्मेलन का दूत था। यह दूत न ही एक प्रकार का दूत मंडल था जो विलायत को 'मथुरा नगरी सबसे न्यारी' पहुंचकर अपने में ही झगड़ बैठा। सच्चे वियोगियों की पुकार सुनकर तो श्री कृष्ण ने उद्धव से जो निराशाप्रद संदेश भेजा था वह सबको मालूम ही है, फिर आपस में लड़ने वाले दूतों की तू-तू मैं-मैं के बाद कैसा संदेश मिल सकता है यह समझने में दिक्कत की जरूरत नहीं है। वैसा ही संदेश 'सांप्रदायिक निर्णय' के रूप में यहां भेजा गया है, इसलिए उसे देखकर हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। श्री कृष्ण ने गोपियों को उद्धव से कहलाया था कि 'हमारी लालसा छोड़कर निरामय बन जाओ। निर्गुण रूप में हमें प्राप्त करो। साधना करती चलो। और साधना और साधना।' कल जो ऊधो स्वराज्य का संदेश लेकर यहां आए हैं वे भी कहते हैं, 'तुम लोग या तो जो हम भेज रहे हैं उसे ही लेकर रहो या सब मिलकर जो कुछ मांगो उस पर विचार किया जाएगा।' यदि भारतवासी इस संदेश को समझ सकते हैं तो वे इसके लिए कृतज्ञता ही प्रकट करेंगे। और अधिक राष्ट्रीयता और अधिक एकता—राष्ट्र की और अधिक आंतरिक पुकार—के बिना स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। 'सांप्रदायिक निर्णय' में कहा गया है कि दस वर्षों में दुबारा जांच की जाएगी और यदि योग्य समझा जाएगा तो उसी के अनुसार कार्रवाई की जाएगी। जितनी हमारी योग्यता होगी उतनी हमें प्राप्ति होगी। बड़े ही तत्व की बात ऊधो कहते हैं।

'सांप्रदायिक निर्णय' का संदेश भेजते हुए यह कहा गया है कि ब्रिटिश सरकार इसके बारे में किसी प्रकार की बातचीत में शरीक न होगी और न वह भारतीयों के भिन्न-भिन्न दलों के डेपूटेशनों और प्रार्थनापत्रों आदि पर गौर करेगी। साफ-साफ बात करना ठीक ही होता है। ब्रिटिश सरकार ने क्या इतना ही कम किया कि भारत के झगड़े का फैसला सुनाने का कष्ट उठाया और आगे का रास्ता सुगम बना दिया। भारत के स्वराज्य की गाड़ी जिस मजहबी खंड में आकर अटक गई थी यदि ब्रिटिश सरकार न होती तो कौन अपना कंधा लगाकर पहिया ऊपर उठा देता? भारतवासियों को अभी बहुत दिनों तक इस ऋण से उऋण होना सीखना होगा। एक ही नहीं, अनेक प्रकार से ब्रिटिश सरकार भारत का उपकार करने के लिए आमादा है। भारतीयों की अभिलाषाओं के अनुसार उन्हें 'प्रांतीय-स्वराज्य' भी दिया जाएगा और साथ ही साथ ब्रिटिश सरकार अपने गवर्नर नियुक्त कर प्रांतों में 'शांति और व्यवस्था की निगरानी' ही नहीं, व्यवस्था और अर्थ संबंधी मामलों, की भी लगाम थामे रहेंगे, जिससे किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का अनर्थ न हो सके। ब्रिटिश सरकार यह भी अनुभव करती जान पड़ती है कि केवल एक व्यवस्था-सभा से प्रांतों का काम न चलेगा, बल्कि अनेक प्रांतों में दो-दो सभाओं की जरूरत होगी। तदनुसार ही वह प्रबंध भी करना चाहती है। 'एकहिं साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' के प्रसिद्ध मसले को सरकार अपनी बुद्धिमानी के कारण गलत समझती है इसलिए वह प्रांतीय व्यवस्था-सभाओं के लिए एक सम्मिलित राष्ट्रीय चुनाव क्षेत्र न रखकर मुसलमान, यूरोपियन, एंग्लो-इंडियन, क्रिश्चियन, जमादार, मजदूर आदि आदि सबके लिए अलग-अलग प्रबंध कर रही है। इससे सबकी समझ में यह आवेगा कि ब्रिटिश सरकार हमारी ही है और हमारे हित का ध्यान कभी भूलती ही नहीं। अलग-अलग बहुतों की कृतज्ञता प्राप्त होगी। राष्ट्रीयता एकता इस 'बहुजन हिताय' के सामने क्या चीज है? ऊधो परमज्ञानी हैं।

इस संबंध में एक बड़ी ही विकट समस्या भारतवासियों के सामने आई हुई थी जिसको ऊधोजी ने अपनी ज्ञानज्योति से सुलझा ही डाला। बात यह थी कि मजहबी मुसलमान तो यह पुकार मचाए हुए थे कि हम पृथक चुनाव पसंद करते हैं पर देश भर की स्त्रियां इस बात पर डटी हुई थीं कि हम पृथक चुनाव के लिए किसी तरह तैयार ही नहीं होंगी। स्त्रियां जिस बात पर अड़ जाती हैं उसे पूरा ही कराके छोड़ती हैं। उन्होंने देश भर में आंदोलन करके अपनी यह आवाज उठाई कि हमें पृथक निर्वाचन नहीं चाहिए। मजहबी मुसलमानों के लिए यह बड़े संकट की बात होती कि वे तो अलग चुनाव क्षेत्रों में वोट मांगते फिरते और उनकी स्त्रियां सम्मिलित चुनावों में देश भर के स्त्री-पुरुषों, हिंदू-मुसलमान-पारसी-ईसाई सब भाई-बहनों की भांति एक-दूसरे की प्रतियोगिता करतीं। ब्रिटिश सरकार के सामने यह समस्या इसी रूप में पेश हुई। अंत में बहुत-कुछ सोच-विचार करने के बाद उसने यह फैसला सुनाया कि स्त्रियों को पुरुष की वशवर्तिनी होकर ही रहना चाहिए और पुरुषों की तरह ही उनको भी देश की मुक्तभूमि का त्यागकर हिंदू-मुसलमान आदि के कठघरों में बंद हो जाना चाहिए। ब्रिटिश सरकार ने स्त्रियों की इच्छापूर्ति करने का स्त्री-सम्मान न दिखाकर इस अवसर पर 'ढोल गँवार सूद्र पसु नारी' के मसल के अनुसार ही उनके साथ व्यवहार किया। स्त्रियों को हिंदुस्तान में मायामूर्ति कहा जाता है। ब्रिटिश सरकार जब ऊधो का संत रूप धारण करके सांप्रदायिक-निर्णय सुना रही है तब उसके लिए इस स्त्री-माया का त्याग करना स्वाभाविक ही कहा जाना चाहिए।

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मजहबपरस्त मुसलमान दल को छोड़कर और भी किसी ने पृथक निर्वाचन के लिए आकाश-पाताल एक किया था? क्या सरकार इस बात को सप्रमाण सिद्ध कर सकती है कि देश भर में ऐसे आदमियों की संख्या अधिक है जो पृथक चुनाव मांगते थे अथवा सम्मिलित निर्वाचन चाहने वाले सारे राष्ट्रवादी हिंदू-मुसलमान स्त्री-पुरुष करोड़ों सभ्य नागरिकों और दीन-दुःखी किसानों की संख्या अधिक है। पृथक निर्वाचन मांगने वाले स्पष्टतः थोड़े हैं। इसके जवाब में ब्रिटिश सरकार की तरफ से यह दलील पेश की गई है कि भारत में पृथक निर्वाचन की प्रथा पहले से चली आती है इसलिए उसे वह भंग नहीं कर सकता। मालूम नहीं ब्रिटिश सरकार यह विनयभाव दिखाकर किसे प्रभावित करना चाहती है। जैसे आज तक उसने भारत की किसी प्रथा का उल्लंघन किया ही नहीं, इतना आदरभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रखती है। लेकिन यह पृथक निर्वाचन की प्रथा तो स्वयं उसकी ही चलाई हुई है। जनता की इच्छा के अनुसार इसे बदल देने में कोई भी नैतिक स्खलन नहीं—बल्कि न बदलने में अवश्य है। क्या लीग ऑफ नेशंस के विधान के अनुसार अल्पसंख्यकों के लिए सुभीते नहीं दिए जा सकते थे। क्या नेहरू कमेटी के मतानुसार अथवा स्वयं सरकारी साइमन कमीशन के मतानुसार पंजाब के मुसलमानों को स्थायी बहुमत न देने की सिफारिश सरकार के लिए बिलकुल ही अग्राह्य थी। कट्टर मजहबपरस्त मुसलमानों की कुछ अदूरदर्शी मांगों को स्वीकार कर लेने से राष्ट्रीय एकता प्रायः बहुत कठिन हो गई है। भिन्न-भिन्न वर्गों में द्वेष और कलह बढ़ने का भय है और सरकार के प्रांतीय गवर्नर को अपने अधिकारों का उपयोग करने की शायद आवश्यकता होगी। अधिक संख्यक होने के कारण हिंदुओं को ही सर्वत्र घाटा उठाना पड़ा है। पंजाब और बंगाल में जहां वे अल्प संख्या में हैं—उनकी और भी दुर्गति दीख पड़ती है।

परंतु यह सब होते हुए भी हमें ऊधोजी का यह संदेश बहुत भाया कि 'तुम लोग एकमत होकर यदि कुछ निर्णय कर सकोगे तो उस पर विचार किया जाएगा।' सांप्रदायिक निर्णय के एक पक्ष की ओर अधिक सरकारी झुकाव के कारण ऐसी आशा नहीं है कि निकट भविष्य में भारतीय राष्ट्र कोई राष्ट्रोपयोगी समझौता कर सकेगा और उसे ब्रिटिश सरकार के सामने विचार के लिए उपस्थित कर सकेगा। तथापि आशा का द्वार कभी बंद नहीं होता और कालचक्र तराजू के पलड़ों की तरह नीचे-ऊपर हुआ करता है। पृथक निर्वाचन होते हुए भी भारत में राष्ट्रीयता की वृद्धि हुई। और भविष्य में भी राष्ट्रीय एकता के भावों की वृद्धि होगी। जो कुछ हो, जितनी तुम्हारी योग्यता होगी उतनी प्राप्ति होगी—ऊधोजी का यह ज्ञान तो शाश्वत है और हमारे लिए परम उपयोगी भी है।

## द्विवेदी-मेला

आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्मान में हिंदी साहित्य सेवियों के मेले के प्रस्ताव को हम इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। यूरोप में इस प्रकार के मेले हुआ करते हैं। अभी मार्च में महाकवि गेटे की जयंती मनाते हुए हीडेनबर्ग में मेला किया गया। शेक्सपीयर की जन्मभूमि में भी मेला लगता है। इसी मेले के अवसर पर इस वर्ष मिस्टर बाल्डविन ने यह घोषणा की कि 'मैंने 'कालिदास' का लिखा हुआ *उत्तररामचरित* पढ़ा है और उस पर तुकाराम का भाष्य देखा है।' सच यह है कि बाल्डविन साहब न कालिदास को जानते हैं, न *उत्तररामचरित* को, न तुकाराम को। यह सब मेला ही मेला है। ऐसा मेला द्विवेदीजी के सम्मान में किया जा सके इसके लिए बड़ी गहरी नींव की आवश्यकता है। मेला तो जनता करती है। साहित्य सेवी मेला जरा कम करते हैं। जब तक ऐसी दृढ़ साहित्यिक संस्कृति नहीं उत्पन्न होती जैसी हिंदी में तुलसीदास के नाम पर उत्पन्न हो रही है तब तक मेला एक-दो साल चाहे हो जाए, आगे झमेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही है। द्विवेदीजी के सम्मान में इस प्रकार का मेला किया जाना शायद अभी बहुत वर्षों तक संभव न हो सके।

(रविवार, 21 अगस्त 1932)

# श्रीकृष्ण जन्म

आज समस्त देश की हिंदू-जनता श्री कृष्ण जन्म का उत्सव मनावेगी। अनेक परिवारों में भगवान कृष्ण की झांकी सजाई जाएगी और पूजा-अर्चना तो प्रायः सभी आबालवृद्ध करेंगे। इस अवसर पर समाचारपत्रों के अग्रलेखों के बिना भी सभी हिंदू घर कृष्णजन्म के उपलक्ष्य में सुहावने हो उठेंगे और गायन-कीर्तन की चहल-पहल से जीवन संपन्न बनेंगे। सहस्रों वर्षों के निकल जाने के बाद आज कृष्ण जैसे अधिक मोदमय होकर हमारे बीच में विराज रहे हैं। वे जैसे अधिक व्यापक बनकर देश के घर-घर में प्रत्येक हिंदू शिशु के हाथों में प्रसाद रखेंगे और इस काम्य उपहार की कृतज्ञता भी उनसे प्राप्त करेंगे। सहस्रों वर्षों से कृष्ण के नाम पर जिस सरस भावनामय साहित्य का सृजन होता रहा है, आज वह और भी सरल बनकर जन-जन के हृदय-कुंज को सींच देगा और बदले में अपनी ही जड़ दृढ़ बना लेगा। आज कृष्ण चरित्र के भिन्न-भिन्न स्वरूप अपनी-अपनी रुचि के अनुसार स्मरण किए जाएंगे और जो जिस रूप में उन्हें प्राप्त करना चाहेगा, प्राप्त करेगा। आज एक-एक हृदय का मधुसंचय श्रीकृष्ण के चरणामृतरस से सिंचित होकर लहलहा उठेगा और मनुष्य-समाज का बहुमुखी जीवन, अपनी-अपनी दिशा में, चैतन्य हो उठेगा। इस व्यापक आप्लावन का ध्यान करके ही हम 'कृष्ण की राजनीति' 'कृष्ण का चरित्रबल' आदि फुटकर प्रसंगों को नहीं उठाना चाहते वरन् समष्टिवत कृष्ण का स्मरण करते हैं। जिन कृष्ण से आज चंचल बालक लूट-लूट कर प्रसाद खाएंगे, नवयुवकों का समारोह जिनके जीवन-प्रसंग को सुनकर हर्ष-विस्मय आदि का अनुभव करेगा, पंडितों में आज जिनकी चर्चा चलेगी, संगीत-मंडलियों में आज जिनकी तान छिड़ेगी, स्त्रियां जिनके लिए वेशभूषा सजेंगी, वृद्धाएं उपवास करेंगी—उन्हीं श्री कृष्ण को हम भी स्मरण कर लें। आज वे 'यथा मां प्रपद्यते' का सुअवसर प्राप्त कर हम उससे लाभ उठा लें—किसी विशेष 'दृष्टिकोण' से उन्हें देखने की धृष्टता न करें।

श्री कृष्ण परमपुरुष थे या नहीं, उन्होंने क्यों अवतार लिया, क्यों नहीं—ये प्रश्न किसी दूसरे समय के लिए धराऊं रख आज हम यह अनुभव करते हैं कि देश के विराट जीवन में श्री कृष्ण कैसी प्रसन्न आकृति धारण किए व्याप रहे हैं। शिशुओं के मुखों का उत्साह, तरुणियों की सौभाग्य साधन, वयस्कों की श्रद्धा-भक्ति आज जन-जन की चित्तवृत्ति कृष्ण के ही प्रकाश में खिल उठी-सी दीख पड़ती है। अपने रूखे युग में ये दृश्य हमारे लिए क्या कम आत्मप्रसाद हैं। शताब्दियों से देश भर के साहित्य, कलाकौशल और विविध सामाजिक जीवन में श्रीकृष्ण को भावनाओं की जो अंजलि अर्पण की जाती रही है, आज प्रत्यक्ष ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उसका प्रसाद हमें प्राप्त हो। हमारे क्षण-क्षण के स्पंदन में आज कृष्ण का ही स्पंदन हो।

महात्मा गांधी ने कृष्ण के इसी स्वरूप का ध्यान करके लिखा है कि *महाभारत* आजकल के अर्थ में ऐतिहासिक पुस्तक नहीं है। वे उसे धर्म पुस्तक कहते हैं अर्थात् *महाभारत* को वे असीम महासागर के रूप में देखते हैं, देश और काल के एक लघु बिंदु के रूप में उसका चित्र उनके मस्तिष्क पर नहीं जमता। सचमुच कृष्ण के चरित्र की आज कौन सी सीमा—कौन सी ऐतिहासिकता है? आज हिंदुओं के मानसदेश में कौन सा सन्-संवत कृष्ण के व्यापक अस्तित्व को सीमित कर रहा है? कोई भी नहीं। कृष्ण परमपुरुष के रूप में ही सारी हिंदू जाति की चितृशक्ति को प्रभावित कर रहे हैं—उसे हस्तामलक किए हुए हैं। कृष्ण के इसी सार्वभौमिक स्वरूप के सम्मुख, देश की असंख्य नर-नारियों के साथ हम भी प्रणत हो रहे हैं।

## सुनवाई नहीं होगी

सहयोगी *लीडर* की प्रार्थना पर डॉक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर महोदय ने सरकार के मजहबी फैसले पर जो विज्ञप्ति भेजी है उसमें महाकवि की राजनीतिक निराशा का प्रतिबिंब स्पष्ट झलक रहा है। इस निराशा का कारण ढूंढ़ने बहुत दूर नहीं जाना है। महाकवि रवींद्रनाथ अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के महापुरुष हैं और वे प्रत्येक विषय पर हर समय 'विज्ञप्तियां' नहीं निकाला करते। उन्होंने अब तक ब्रिटिश सरकार की उच्च राजनीतिक परंपरा पर विश्वास किया है और पिछले मर्तबा जब गोलमेज से लौटने पर महात्मा गांधी आदि जेल भेज दिए गए तब रविबाबू ने इसी विश्वास के आधार पर समझौते के लिए विज्ञप्ति निकाली थी। परंतु उसका परिणाम क्या निकला? क्या ब्रिटिश सरकार ने उस विज्ञप्ति के संबंध में कोई उत्तर देने तक का शिष्टाचार दिखाया? हां, सर सेमुएल होर के साप्ताहिक और मासिक आश्वासन अवश्य निकलते रहे कि अब भारत की स्थिति सुधर रही है, जब जेल जाने वालों की संख्या कम पड़ रही है—इत्यादि इत्यादि। क्या इस प्रकार की बातों से रवि बाबू जैसे व्यक्ति को संतोष मिल सकता था। संतोष नहीं, उनका क्षोभ बढ़ता गया यद्यपि क्षोभ को दबाकर उन्होंने उसके उपरांत भी कई बार शांति स्थापित कराने का आग्रह किया। लेकिन शांति स्थापना तो दूर, भारतमंत्री ने कई विज्ञप्ति निकालकर गोलमेज सम्मेलन की प्रणाली भी तोड़ डाली और ब्रिटिश पार्लियामेंट के एकछत्र अधिकार की घोषणा की और अब इसके बाद यह सांप्रदायिक निर्णय सुनाया गया है जिससे भारत की राष्ट्रीयता खंड-खंड हो जाती और टूटकर जुड़ने की बहुत-थोड़ी आशा रह जाती है। यही निराशा रवि बाबू को भी हुई है और वे लिखते हैं—'अपने शासन का पक्का मनसूबा जान लेने के बाद अब मैं उनकी नीति की शिकायत करना भी घृणा की बात मानता हूं। हमारी स्थिति आशाहीन हो गई है। ... आप जोरदार विरोध करने में विश्वास रखते हैं पर मैं नहीं रखता।' स्मरण रखना चाहिए कि ये कवि रवींद्रनाथ के शब्द हैं जो पश्चिमी सभ्यता के प्रशंसक रह चुके हैं और जो राजनीतिक विषयों में एक-एक शब्द तौल-तौल कर निकालते हैं। जब स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रधानमंत्री ने अपने फैसले की भूमिका में यह सुना दिया है कि ब्रिटिश सरकार इस संबंध की बातचीत में कोई भाग नहीं लेगी और न भिन्न-भिन्न वर्गों के डेपूटेशनों और प्रार्थनापत्रों की सुनवाई करेगी तब कवींद्र रवींद्र का निराश होकर आगे के कार्यक्रम का संपूर्ण फैसला भारत के राजनीतिक नेताओं पर छोड़ देना उनकी क्षुब्ध मनोवृत्ति की ही सूचना है। वास्तव में आज दिन भारत की दशा ऐसी ही दयनीय, क्षुब्ध और निराश हो रही है।

## क्या यहीं अटक जाएं?

लेकिन सवाल तो यह है कि हम लोगों को क्या करना चाहिए? रवि बाबू कहते हैं कि देश के राजनीतिक नेता जो निर्णय करें उसी के अनुसार काम होना चाहिए पर राजनीतिक नेता कौन है और उनका निर्णय क्या है। जहां एक ओर विरोध की आवाज से आकाश गूंज रहा है वहां यह कोई नहीं सुना रहा कि हम लोग यहीं अटके रहें या इसके आगे भी कहीं बढ़ें। सर तेजबहादुर सप्रू और सीतलवाड महाशय ने और साथ ही साथ श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री ने देश को यह सलाह दी है कि इस मजहबी फैसले को स्वीकार कर इससे जो कुछ लाभ हम उठा सकें, उठा लेना चाहिए। ठीक उनके विपरीत बहुत से नेता लोग फैसले को 'जहर का घूंट' बतलाते और उसे किसी प्रकार गले से न उतारने की सलाह देते हैं। लेकिन सवाल यह है कि किया क्या जाए। मान लीजिए हम सर तेजबहादुर सप्रू आदि के कहने के अनुसार फैसले को स्वीकार कर लेते हैं तो फिर हम उससे लाभ कैसे उठाएं? क्या हम सरकार को ही अंतिम घड़ी तक मनमाने तौर पर अपने भाग्य का निर्णय करने की अनुमति दे दें और अंत में जो विधान बनाकर हमें दिया जाए उस पर हम अमल करने लग जाएं। और किस प्रकार हम उससे लाभ उठाएं? अथवा यदि हम ऐसा नहीं करते तो क्या कर सकते हैं? यदि हम सांप्रदायिक फैसले के विरुद्ध लोकमत का अंदाज लगाएं तो देखेंगे कि देशभर की संपूर्ण राष्ट्रीय जनता उसके खिलाफ है। क्या इस बुनियाद पर संघटित होकर राष्ट्र अपनी आवाज ऊंची नहीं कर सकता? क्या इसी आधार पर देशव्यापी रचनात्मक कार्यक्रम का आयोजन नहीं किया जा सकता जिसका सबसे प्रमुख आंदोलन राष्ट्रीय एकता की नींव मजबूत करना हो।

## श्री सुमित्रानंदन पंत–1

नवीन हिंदी कविता में सबसे श्रेष्ठ सृष्टि-प्रतिभा लेकर पं. सुमित्रानंदन पंतजी का विकास हुआ है। हिंदी के क्षेत्र में पंतजी की कल्पना की शक्ति अजेय, उसका नवनवोन्मेष अप्रतिम है। कल्पना ही पंतजी की कविता की विशेषता, उसके आकर्षण का रहस्य है। यही उनकी विविध बहुमुखी रचनाओं की आधार है। उनमें रमणीयता का विस्तार करती है। 'उपमा कालिदासस्य'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में कल्पना की ही कीर्ति-प्रशस्ति हुई है, यह अर्थ समझकर, पंतजी के काव्य में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि कल्पना-अलंकरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, यह कहा जाए तो प्राचीन समीक्षा की शब्दावली का निर्वाह भी हो जाएगा और पंतजी की विकास दिशा भी इंगित हो जाएगी। कल्पना केवल शैली में ही नहीं, काव्यविषय में भी कल्पना। यह दूसरी कल्पना पंतजी की प्रारंभिक रचनाओं में कोरी कल्पना का आतिशय्य कर देने वाली अतः काव्यालोचना में विशेष प्रशंसाज्ञापिका नहीं, परंतु यहां पंतजी का विकास दिखाने में उसका उल्लेख करना ही पड़ा। कल्पना ही पंतजी की कविता की मेरुदंड, उनकी काव्यसृष्टि की मापदंड है। कोरी काल्पनिक उड़ानों से लेकर अत्यंत तल्लीन कल्पना-अनुभूतियों के चित्रण में पंतजी का विकास-क्रम देखा जा सकता है।

प्रेम और सौंदर्य के मधुर शरीर पक्ष से लेकर सूक्ष्म मानसिक वृत्ति तक में पंतजी की कल्पना समर्थ हुई है और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान भी लेती चली है। इसे ही प्रचलित शब्दावली में छायावाद कहा जाता है। प्रेम के संयोग पक्ष को भी और वियोग पक्ष को भी समान सौंदर्य से प्रकट करने में उनकी कल्पना कुंठित नहीं होती, कहीं हल्की मोदमय, कहीं मधुर रसमय भावाभिव्यक्ति करने में वह योग देती और कहीं गूढ़ रहस्यमयी सृष्टि भी करती है। कल्पना के प्रकर्ष में जड़ व्यक्तित्व छूट जाता है और कवि स्वच्छंद होकर व्यापक, निर्लेप सृष्टि करने में प्रवृत्त होता है। एक ओर जहां यह लाभ है वहां दूसरी ओर यह हानि भी साथ ही लगी है कि कल्पना के उल्कापात काव्य जगत में अनिष्ट के केतु बन सकते हैं। कल्पना के जुगनू जल-जल बुझ-बुझ कर दिग्भ्रम ही नहीं, भूमिभ्रम भी उत्पन्न कर सकते हैं, और करते हैं। किंतु यह निरा संशय कहा जा सकता है कि पंतजी की कल्पना अनेक बार दिव्य ज्योति दिखाती, यदा-कदा विद्युत-चकाचौंध उत्पन्न करती पर गड्ढे में प्रायः कभी नहीं गिराती है।

कल्पना की इस 'ओलिंपिक' प्रतियोगिता में पंतजी ने अपने लिए प्रेम और सौंदर्य के 'हिट्स' चुन लिये हैं और शृंगारवर्णन का उनका 'रेस' विशेष चमत्कारपूर्ण हुआ है। पंतजी की यही रुचि-दिशा है। उनकी रुचि कोमल अथच मार्जित है। उसे हम नागरिक रुचि भी कह सकते हैं और इस विशेषण से उनके वर्णित विषय पर ही नहीं उनके शब्द-संगीत, छंद-चयन और भाषा-शैली पर भी प्रकाश डाल सकते हैं। उनकी कल्पना के साथ उनकी यह रुचि मिलकर उनकी कविता को रमणीय आकर्षक वेशभूषा से सज्जित करती—यह साज-सज्जा आधुनिक हिंदी में और कहीं नहीं दीख पड़ती। पंतजी की इस रुचि से हिंदी खड़ीबोली को ईप्सित फल प्राप्त हुए हैं—सरस, सार्थक शब्दसृष्टि, सुगेय छंद और सुंदर प्रशस्त-भाषा। शब्द-साधना में पंतजी ने संस्कृत की सहायता ली है यद्यपि शब्द प्रतिमाएं अंग्रेजी कला कौशल से खड़ी की गई हैं। भाषा, छंद और शब्दालंकरण का महत्व समीक्षकगण यह कहकर अपहरण कर लेते हैं कि उनसे भावतन्मयता को क्षति पहुंचती है, और इस प्रकार बहिरंग को सजाकर अंतरंग रुग्ण ही बना रहने दिया जाता है पर ऐसे आरोपों पर अब ध्यान नहीं देना चाहिए। काव्य में बहिरंग और अंतरंग का ऐसा कहीं भेद नहीं है। सार्थक, सुप्रयुक्त शब्द, यथायोग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



छंद—ये सब भावों के अभिन्न अंग हैं। बाह्य और अंतरंग यहां कुछ नहीं। भावों को स्वरूप देने वाले शब्द ही काव्य में सबकुछ हैं अन्यथा भावों की सत्ता ही कहां रहती? 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' को काव्य कहते हुए संस्कृत आचार्य ने इसी तत्व को प्रकट किया था जिसे हम आज बहिरंग और अंतरंग के भ्रम में भुलाना चाहते हैं। पंतजी ने अपने समय की खड़ीबोली को संस्कृत की शब्दयष्टि देकर दृढ़ किया, हिंदी के अनुरूप अनेक प्रयोग आविष्कृत किए और भाषा में एक नई ही छटा छा दी। उन्होंने खड़ीबोली की भावाभिव्यक्ति को विशेष शक्ति प्रदान की। यहां इस उल्लेख का आशय यही है कि समीक्षकगण भाषा और भावों का चाहे जो संबंध स्थापित करें परंतु पंतजी ने अपनी खड़ीबोली को स्वस्थ्य स्वरूप देकर उसे भाव-प्रसूति के अधिक उपयुक्त बनाया और उनके इस प्रयास में भाषा और भाव अलग-अलग नहीं—बाह्य और अंतरंग नहीं—वरन् काव्य का सर्वांगीण विकास करते दीख पड़ते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि खड़ीबोली को उस समय अपने अवयव-संघटन की परम आवश्यकता थी, अन्यथा स्वयं हिंदी कविता ही उसी पुरानी दुर्बलदशा में पड़ी रहती। भाव और भाषा का यह अभिन्न संबंध समझने में पंतजी को प्रारंभ से ही द्विविधा नहीं थी यह भी, समय को देखते हुए, उनकी प्रतिभा का ही प्रमाण है।

इस प्रसंग-प्राप्त स्थल में हम एक आवश्यक उल्लेख कर देना चाहते हैं, उपरांत पंतजी की कृतियों की थोड़ी-बहुत चर्चा करना चाहते हैं। यह उल्लेख स्पष्ट शब्दों में करने में भी कोई हानि नहीं है। पंतजी पर यह आक्षेप सबसे अधिक किया गया है—यह भी उनकी ओर लोकदृष्टि के आकर्षण की ही सूचना है—कि वे न केवल बांग्ला के शब्द-प्रयोगों को हिंदी में अपनाते हैं, वे तो अंग्रेजी के कवियों और बांग्ला के रवींद्रनाथ आदि से भावापहरण भी करते हैं। इस प्रकार के आक्षेपों के संबंध में हम केवल दो बातें कह सकते हैं। एक तो यह कि यदि हिंदी में लाकर भिन्न भाषा के प्रयोगों को हिंदीवत बना दिया गया है (इस हिंदीवत का अर्थ हिंदी के जानकार खूब समझ सकते हैं) जिससे हिंदी की अभिव्यक्ति-शक्ति बढ़ने के लाभ के अतिरिक्त कोई हानि नहीं हुई—तो उसे अपहरण न कहकर अलंकरण कहना चाहिए। '*मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।। नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल शोभा अधिकाई।।*' दूसरी बात यह कि हमें उन अपहरणों के भीतर से कवि का विकास देखना चाहिए। हमको यह जान लेना चाहिए कि कवि केवल अनुवादक के रूप में बना रहता है अथवा वह कुछ आगे भी बढ़ता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने '*उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं*' की अपनी सूक्ति को अपने काव्य में पूरी मात्रा में चरितार्थ कर दिखाया है। हम देखते है। कि पंतजी के अपहरणों में भी उनकी प्रतिभा और रुचि का सम्यक् प्रदर्शन है। तथापि यदि कहा जाए कि पंतजी ने रवींद्रनाथ से बहुत कुछ प्राप्त किया है तो क्या रवि बाबू ने दूसरे कवियों से और भी अधिक प्राप्त नहीं किया? केवल दो-एक उदाहरण देख लेना चाहिए—

*Spirit of Beauty that dost consecrate*
*With thy own hues all thou dost, shine upon*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



*Of human thought or from–where art thou gone?*

—शेली

*Spirit of Beauty, how could you,*
*Whose radiance overbrims the sky,*
*Stand hidden behind a candle's tiny flame?*
*How could a few vain words from*
*a book rise like a mist and veil*
*Her whose voice has hushed the*
*heart of earth into ineffable calm?*

—रवींद्रनाथ

*Suspended in the solitary dome*
*Of some mysterious and deserted fane*
*I wait thy breath, Great Parent, that my strain*
*May modulate with murmurs of the air,*
*And motions of the forest and the sea,*
*And voice of living beings and woven hymns*
*Of night and day and the deep heart of man.*

—शेली

*Let thy love play upon my voice and rest on my silence. Let it pass through my heart into all my movements. Let me carry thy love in my life as a harp does its music and give it back to thee at last with my life.*

—रवींद्रनाथ

*सजनि श्याम की बंशी ही से*
*कर दे मेरे सरस वचन*
*जैसा जैसा मुझको छेड़े,*
*बोलूं अधिक मधुर मोहन*
*जो अकर्ण अहि को भी सहसा*
*कर दे मंत्रमुग्ध नतफन*
*रोम-रोम के छिद्रों से मां*
*फूटे तेरा राग गहन.*

—पंत जी

(गुरुवार, 25 अगस्त 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# ओटावा का निर्णय

ओटावा सम्मेलन में भारत संबंधी जो निर्णय हुआ है उसके अनुसार ब्रिटिश वस्तुओं के आयात में भारत को दस प्रतिशत की रियायत करनी पड़ेगी और ब्रिटेन भी दस प्रतिशत की रियायत भारतीय वस्तुओं के लिए करेगा। इस निर्णय के संबंध में भारतीय अर्थशास्त्र के राष्ट्रीय विचारक—सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्री घनश्याम दास बिड़ला आदि—ने जो सम्मतियां दी हैं वे इस बात में संदेह प्रकट करती हैं कि ओटावा के निर्णय से भारत की हानि नहीं होगी। सर पुरुषोत्तमदास ने इस संबंध में जो आंकड़े प्रकाशित किए हैं उनसे यह पता लगा है कि भारत में ब्रिटेन को जाने वाले केवल चौदह करोड़ की वस्तुओं में रियायत की और भारत को लगभग पैंतीस करोड़ की वस्तुओं पर उसी हिसाब से रियायत करनी पड़ेगी। मोटे तौर पर इससे ब्रिटेन को भारत की अपेक्षा ढाई गुणा अधिक लाभ होगा। भारतीय चाय का कारोबार इस समय प्रायः सबका सब यूरोपियनों के हाथ में है इसलिए उनमें दी गई सुविधा से भारतवासियों को लाभ नहीं होगा, यूरोपियनों को ही होगा।

भारत को इस बात पर भी ध्यान रखना है कि भारतीय वस्तुओं का बाजार ब्रिटेन ही में नहीं है वह संसार के भिन्न-भिन्न देशों में फैला हुआ है। ब्रिटेन तो भारतीय वस्तुओं को एक-चौथाई की मात्रा में ही खरीदता है। शेष दूसरे-दूसरे देशों में बिकती हैं। उन देशों को भारत रुष्ट न कर दे इसका प्रबंध क्या किया? ओटावा में ब्रिटेन ने भारत से जो व्यावसायिक संधि की उससे अवश्य ही जापान, जर्मनी, अमेरिका आदि अन्य देशों को भारत में अपना माल पहुंचाने में कठिनाई आ जाएगी। क्या इस कठिनाई का बदला वे देश नहीं चुकाएंगे और क्या वे भारत की वस्तुओं की अपेक्षा दूसरे देशों को सुविधा नहीं देने लगेंगे? यदि उनकी ऐसी नीति हो जाए तो भारत को बहुत बड़ी मात्रा में क्षति उठानी पड़ेगी और ब्रिटेन उस हालत में उसे क्या सहारा देगा जबकि ओटावा सम्मेलन में इस विषय की कोई गारंटी नहीं की गई है।

इन दिनों संसार के भिन्न-भिन्न देश क्षुद्र राष्ट्रीयता के घेरे में ही अपनी आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए तत्पर दीख पड़ते हैं—उन्हें व्यापक अंतर्राष्ट्रीय हित का कोई ध्यान नहीं है। जो साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं वे इस बात का भी प्रयत्न कर रहे हैं कि उनके साम्राज्य से उन्हें ही व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त हों और दूसरे झींखा करें। इस प्रकार की नीति मनुष्य समाज के व्यापक हितों के अनुकूल नहीं है। इससे देश में वैमनस्य की वृद्धि होगी। आर्थिक दृष्टि से यह एकांगी नीति कहां तक लाभप्रद हो सकेगी यह कहा नहीं जा सकता। अब तक तो इस संकीर्ण नीति का परिणाम यह हुआ कि संसार की अभूतपूर्व आर्थिक मंदी ज्यों की त्यों बनी हुई है और उसके दूर होने के कोई लक्षण नहीं दीख पड़ते। स्वयं ब्रिटेन को अपने सोने का सिक्का छोड़ देना पड़ा और उसके पीछे भारत को असाधारण परिमाण में सोना बाहर भेजना पड़ा। भविष्य में ऐसी नीति से कुछ लाभ होगा ऐसी आशा करना हमें उचित नहीं जान पड़ता। जब छोटे-छोटे भूमिखंड कृत्रिम घेरों में घिरकर मनुष्य मनुष्य की आत्मीयता का अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न करेंगे—अलग-अलग राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक घेरों के अतिरिक्त व्यवसाय का भी अलग ही पिंजड़ा बना लेंगे तो इससे संसार को अंतिम हानि ही होगी और इस हानि से न ब्रिटेन बच सकेगा, न भारत।

ओटावा सम्मेलन के निर्णय से भारत को आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ेगी, साथ ही, संसार की व्यापक सुख शांति में बाधक भी बनना पड़ेगा। भारतवासी यदि आर्थिक हानि उठा भी लें तो क्या वे मनुष्य समाज के विकास में बाधक बनना भी पसंद करेंगे? भारत की संस्कृति के यह बिलकुल विपरीत होगा। ब्रिटिश सरकार और भारत के सरकारी निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच जो निर्णय ओटावा में किया गया उसे 'राष्ट्रीय' निर्णय की संज्ञा दिखाने के लिए भारत की व्यवस्था-परिषद में स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जाएगा। व्यवस्था-परिषद का स्वरूप कितना राष्ट्रीय है यह हम लोगों को मालूम ही है। मालूम नहीं कि इस निर्णय के पक्ष-विपक्ष में व्यवस्था-सभा के सरकारी सदस्य भी वोट देंगे या नहीं। यदि वे भी वोट देंगे तब तो व्यवस्था-परिषद के फैसले को भारत का 'राष्ट्रीय फैसला' कहना और भी मनोरंजक होगा।

## *विशाल भारत* का पद्मसिंह अंक

*विशाल भारत* के संपादक ने दो-एक और सज्जनों के साथ जब 'पद्मसिंह अंक' निकालने का विचार प्रकट किया था तब हिंदी के कई महारथी—श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', पं. किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू शिवनंदन सहाय आदि—इस असार संसार में देह धारण किए थे, पर शीघ्र ही वे भी स्वर्ग सिधार गए। 'पद्मसिंह अंक' के निकलते-निकलते कविवर पं. नाथूराम शंकर शर्मा भी कूचकर गए। शायद अब पंचक पूरा हो गया। इन हिंदी के महारथियों में 'को बड़ छोट कहत अपराधू' की ही उक्ति खरी उतरती है, इसलिए इनके स्वर्गारोहण के समय टिप्पणी लिखते हुए हमने यह विचार प्रकट किया था कि क्या ही अच्छा हो यदि *विशाल भारत* अपने 'पद्मसिंह अंक' को 'अंत्येष्टि-अंक' के नाम से निकाले और उसमें सभी लोग शामिल कर लिये जाएं। यदि वैसा कर लिया जाता तो स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा के साथ इनकी भी स्मृति हिंदी जनता में प्रसार पाती और उसे इनकी महत्ता का थोड़ा बहुत बोध हो जाता। परंतु वैसा नहीं किया गया। 'पद्मसिंह अंक' ही निकाला गया। इस अंक में पुनरुक्तियों की भरमार अच्छी मात्रा में है। कोई लेख ऐसा नहीं जिसमें शर्माजी के चाय पीने का उल्लेख न किया गया हो। सब लेखों में उनकी सरलता, सीधे स्वभाव, अध्ययनशील अभिरुचि आदि का उल्लेख किया गया है। यह बाह्य साक्ष्य (External evidence) हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी पुस्तकों के अध्ययन से उनके साहित्यिक उत्कर्ष और उनके स्वभाव पर क्या प्रकाश पड़ता है, इसपर किसी ने चर्चा नहीं की। शर्माजी हिंदी के अपने युग के सबसे कटु आलोचक थे, उनके *सतसई संहार* के शब्द-शब्द में इसका प्रमाण है। तो क्या शर्माजी ने *सतसई संहार* की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संपूर्ण कटुता अपने नित्यप्रति के जीवन से निकाल फेंकी थी? पाठकगण इससे क्या निष्कर्ष निकालें? आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्यामसुंदर दास से शर्माजी का कैसा व्यवहार रहा? पं. रामचंद्र शुक्ल से उनका संबंध कितना प्रिय था? इस पर कुछ भी नहीं लिखा गया। भक्तों की गाथा छोड़ दी जाए और प्रतिस्पर्द्धियों की चर्चा की जाए तो पं. पद्मसिंह शर्मा के जीवन पर दूसरे तरह से भी प्रकाश डाला जा सकता है। पं. पद्मसिंह बड़े ही भावुक और सहृदय विद्वान थे, *पद्मपराग* की जीवनियां इसका प्रमाण हैं। पर यह भी सत्य है कि *सतसई संहार* की उग्रता की छाप भी उनमें मौजूद थी। श्रीयुत कृष्णानंद गुप्त ने एक ऐसे पत्र का उल्लेख किया है जो स्वर्गीय शर्माजी द्वारा एक अत्यंत निंद्य टिप्पणी की प्रशंसा में लिखा गया था। यदि वह पत्र और वह टिप्पणी हिंदी-जनता के सामने आवे तो संभव है, शर्माजी की अभिरुचि का कुछ दिग्दर्शन हो। 'पद्मसिंह अंक' में तो जैसी प्रथा है, शर्माजी की स्तुति ही सर्वत्र देखी जाती है। पर यदि उनके संबंध में कुछ अधिक विवेचनापूर्ण लेख प्रकाशित किए जाते तो बहुत सी पुनरुक्तियों से पाठकों का उबार हो सकता था।

## स्वर्गीय पं. नाथूराम शंकर शर्मा

हिंदी के प्राचीन कविरत्न पं. नाथूराम शंकर शर्मा के देहावसान से हमें क्षोभ हुआ। यद्यपि शर्माजी वर्षों से हिंदी के लिए कुछ भी नहीं कर रहे थे और उसके पहले भी उन्होंने अपनी शृंगार रस की कविताओं को चूल्हे के हवाले करके हिंदी को क्षति पहुंचाई थी, परंतु अपने कविता-काल में उन्होंने अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया था और वे अपने समय के हिंदी के अग्रणी कवि थे। शर्माजी के शब्द-प्रयोग अनोखे किंतु सर्वत्र सार्थक होते थे जिससे उनकी ओर हठात् पाठकों का ध्यान आकर्षित हो जाता था। पिछले कुछ वर्षों से उन्हें शारीरिक, मानसिक और कौटुंबिक कष्ट भी मिल रहे थे जिसका करुण चित्र उनकी इधर-उधर प्रकाशित होने वाली कविताओं में दीख पड़ता है। जब हम सब नए लोग स्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थी थे तब शंकरजी की कविताओं में विशेष रस लेते थे और उनके अक्खड़ प्रयोगों को कंठाग्र करते थे। वियोगिनी की आह के साथ सृष्टि में प्रलय करा देने वाले उनके प्रसिद्ध कवित्तों को हम लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। उन कवित्तों में कल्पना की ऊंची उड़ान के अतिरिक्त कहीं भी मानसिक कलुष छू तक नहीं गया। उनके भीतर से एक बाल-चपल पवित्र भाव झांकता दीख पड़ता है जैसे वे वियोगिनी के विरह वर्णन के कवित्त हास्य-रस के हों।

शंकरजी का जो रूप हम अपने साहित्य के भीतर से देखते हैं वह हमारी श्रद्धा का विषय है। हिंदी में उन दिनों जब पारस्परिक कलह की आंच साहित्य जगत को ताप-तप्त कर रही थी तब शंकरजी उससे निर्लिप्त थे। कीर्ति की प्रतियोगिता में दौड़ने का प्रलोभन शंकरजी को कभी नहीं हुआ, नहीं तो हिंदी में वे भी अपनी गद्दी बना लेते। शंकरजी किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी 'स्कूल' में सम्मिलित नहीं हुए और अंत समय तक अलग रहे। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि शंकरजी का आत्मा को शांति प्राप्त हो और उनके जैसे उदात्त साहित्यसेवी हमें और भी प्राप्त हों।

# श्री सुमित्रानंदन पंत–2

'उच्छ्वास', 'आंसू', 'ग्रंथि' और 'परिवर्तन' ये पंतजी की वियोग-वर्णन की लंबी कविताएं हैं। 'उच्छ्वास' और 'आंसू' दोनों एक में मिलाकर एक ही कविता बना दी जा सकती है। एक ही भावना एक में ही संकलित न होकर दूसरी में भी प्रसार पा रही है। संकलन की दृष्टि से यह बाधा लग गई है। परंतु इस बाधा से भी अधिक 'उच्छ्वास' और 'आंसू' की अस्पष्टता खटकती है। यह अस्पष्टता रहस्यवाद की किसी ऊंची आध्यात्मिक उड़ान के कारण नहीं है—यह हम स्पष्टतः कह सकते हैं। पंतजी की कल्पना जहां कहीं आध्यात्मिक भावना में परिणत होती है वे आध्यात्मिक-रहस्यात्मक स्थल कहीं दुरूह नहीं हुए हैं, परंतु 'उच्छ्वास' और 'आंसू' मानवीय वियोग का वर्णन करते हुए जान पड़ते हैं किंतु क्लिष्टता के कारण नहीं जान पड़ते हैं। 'उच्छ्वास' में जहां पंतजी प्राकृतिक शोभा-वर्णन करके 'इस तरह मेरे चितेरे-हृदय की, बाह्य प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी' कहते हैं वहां अनुमान दृढ़ हो जाता है कि हृदय के ही किसी प्रसंग का वर्णन है, जिस प्रसंग में 'बाह्य प्रकृति' को 'चित्र' मात्र बनकर संतोष करना पड़ा है। पंतजी की रहस्यात्मक कविताओं में प्रकृति को कहीं 'बाह्य-प्रकृति' कहलाने का कुअवसर प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए यह दूसरा अनुमान भी दृढ़ होता है कि 'उच्छ्वास' में पंतजी की कोई गहन अनुभूति नहीं है। फिर उसमें क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में 'उच्छ्वास' की बालिका के प्रति जो 'स्मृति' पंतजी ने लिखी है वह भी विशेष सहायता नहीं पहुंचाती। बालिका के प्रति वियोग की बात तो 'उच्छ्वास' और 'आंसू' दोनों से ज्ञात होती है और यह भी ज्ञात होता है कि 'संदेह' के कारण बालिका का परिणय संबंध उसके उस मित्र (?) से न होने पाया जो 'मद-हास-सा उसके मृदु-अधरों पर मंडराया' और 'उसकी सुखद सुरभि से प्रतिदिन समीप खिंच आया' था। इस परिणय-संबंध में चरितार्थ न होने, बीच में ही टूट जाने के कारण 'उच्छ्वास' और 'आंसू' की सृष्टि हुई दीख पड़ती है। यह 'बालिका' कवि की बाल्य-जीवन की प्रतिमूर्ति भी हो सकती है अथवा इसका स्वतंत्र अस्तित्व भी हो सकता है। पंतजी इसे 'कल्पनाओं की कल कल्पलता' कहकर अपनाते हैं, इसलिए 'बालिका' का शारीरिक अस्तित्व कल्पना में विलीन होता जान पड़ता है पर साथ ही 'अदेह सदेह' के कारण 'जुड़े स्वभाव छुड़ाने' आदि की घटनाएं फिर बीच में विक्षेप डालती हैं। यह अस्पष्टता कविता के लिए काम्य नहीं हुई। निष्कर्ष तो केवल दो ही निकल सकते हैं। कवि 'बालिकावत' अपने बाल्यजीवन के वियोग में दुःख प्रकाश कर रहा, अथवा वह अपनी किसी बालसहचरी का विरह वर्णन कर रहा है। किंतु दोनों निष्कर्षों में द्विविधा लगी हुई है। पहले निष्कर्ष के अनुसार अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही 'बालिकामूर्ति' के प्रति कवि का वियोग विशेष भावनासंवलित नहीं हुआ। इससे कहीं अधिक सरस, श्रेष्ठ पंतजी की 'बालापन' कविता तो 'उच्छ्वास', 'आंसू' आदि से दो वर्ष पहले लिखी जा चुकी थी–

*अहो कल्पनामय फिर रच दो*
*वह मेर निर्भय अज्ञान*
*मेरे अधरों पर वह मां के*
*दूध से धुली मृदु-मुस्कान*
*मेरा चिंतारहित अनलसित*
*वारि बिंब सा विमल हृदय*
*इंद्र चाप सा वह बचपन के*
*मृदुल अनुभवों का समुदय।*

इत्यादि, इत्यादि।

इस 'बालापन' कविता के सामने 'उच्छ्वास' का 'बालिका विरह' आदि हमें प्रभावित नहीं करते। यदि दूसरे निष्कर्ष के अनुसार देखें तो उच्छ्वास की 'बालिका' यौवनागमन के द्वार पर खड़ी अपने प्रिय के परिणयपाश में बंधने से वंचित, अवश्य ही करुण है, और उसके निराश प्रेमी के 'आंसू' भी अवस्थाजन्य ही हैं। परंतु यह सब वर्णन–संभवतः पंतजी के उस समय के संकोच के कारण–स्पष्टता नहीं प्राप्त कर सका। यदि प्राप्त भी कर पाता तो कविता किसी उच्च घरातल पर न पहुंच पाती क्योंकि 'उच्छ्वास' और 'आंसू' में पंतजी की कल्पना कहीं भी ऊंची उड़ाने नहीं भरती।

'उच्छ्वास' और 'आंसू' के पढ़ने पर एक तीसरी धारणा यह भी उत्पन्न होती है कि इनमें कवि 'प्रेम' का मुक्त निर्बंध रूप दिखा रहा है। यह धारणा इन पंक्तियों से और भी दृढ़ होती है–

*देखता हूं जब उपवन*
*प्रिये! भर भर अपना यौवन, पियालों में फूलों के*
*पिलाता है मधुकर को नवोढ़ा-बाल-लहर*
*अचानक उपकूलों के*
*प्रसूनों के ढिग रुक कर*
*सरकती है सत्वर*
*अकेली आकुलता-सी प्राण!*
*कहीं तब करती मृदु आघात*
*सिहर उठता कृश-गात*
*ठहर जाते हैं पग अज्ञात!*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकृति के इस निर्मल मिलन को ही 'सार' समझ कर, कवि उच्छ्वास की 'बालिका' के प्रसंग में उसका अभाव देखकर कहता है—

*है सभी तो ओर दुर्बलता यही*
*समझता कोई नहीं क्या सार है*
*निरपराधों के लिए भी तो अहा!*
*हो गया संसार कारागार है!*

अवश्य ही 'उच्छ्वास' की 'बालिका' ने कवि के हृदय में प्रेम के रहस्य के संबंध में जिज्ञासा उत्पन्न कर दी है और वह जिज्ञासा 'निरपराधों के लिए भी तो अहा, हो गया संसार कारागार है' कहकर ही समाप्त नहीं हो जाती। उसका समाधान 'मुक्त प्रकृति के निर्बंध विहार' में ही नहीं होता। वह जिज्ञासा तो उच्छ्वास से ऊपर उठकर 'ग्रंथि' में प्रसार पाती है और हम देखते हैं कि उसका पूर्ण परिहार 'परिवर्तन' में पहुंचकर हो पाता है।

'ग्रंथि' पंतजी की विशेष मार्मिक विरह कविता है। यह 'उच्छ्वास' और 'आंसू' की भांति द्विविधा से नहीं, अत्यंत स्पष्ट रीति से मानवीय विरह का शोक-संताप प्रकट करती और विशेष करुण वातावरण उपस्थित करती है। 'उच्छ्वास' की उपर्युक्त प्रेम संबंधी जिज्ञासा ही मानो 'ग्रंथि' बन गई है पर ग्रंथि का उसमें निवारण नहीं है। कवि यहां वियोग व्यथा में इतना तल्लीन हो गया है कि क्षणकाल के लिए वही ग्रंथि ही कवि की मुक्ति, वही समस्या, वही समाधान बन गई है। 'आज मैं सब भांति सुख संपन्न हूं, वेदना के इस मनोरम विपिन में' कवि की यह बड़ी ही करुण अनुभूति उसे कल्पना के साथ आगे नहीं बढ़ने देती, नियत समय के लिए रोक रखती है। किंतु यह स्थिरता भी काव्य ही एक उत्कृष्ट विभूति है।

'परिवर्तन' में पहुंचकर पंतजी की कल्पना सचेत होकर अपनी शक्ति का परिचय देती है। 'उच्छ्वास', 'आंसू', 'ग्रंथि' आदि के अनुभवसंग्रहों के उपरांत 'परिवर्तन' में कवि की निर्लेप कल्पना प्रस्फुटित हो उठी है और यहां वह जीवन के संबंध में कुछ निर्णयात्मक विचार प्रकट करती है। यदि यह कथन ठीक है कि कविता-शरीर की रीढ़ दर्शन (Philosophy) है तो 'परिवर्तन' में कविता को यह रीढ़—दृढ़ रीढ़—मिल गई है। 'परिवर्तन' को हम विरह काव्य समझते हैं और पंतजी की विरह-कविता का इसे ही सुमेरु मानते हैं। यहां पहुंचकर 'उच्छ्वास' का 'निरपराधों के लिए भी तो अहा, हो गया संसार कारागार है' की भांति का उपालंभ दूर हो जाता है और वस्तु-स्थिति को समझकर चुप हो रहना पड़ता है। तथापि 'परिवर्तन' में कवि का निराशावाद ही प्रमुख रीति से झलकता है। अवश्यंभावी 'परिवर्तन' के चिरचक्र में पड़ा हुआ क्षुद्र मनुष्य अपने सुख-दुःख पर क्या आस्था करे?—'परिवर्तन' में मानवीय सुख-दुःख का यही निराकरण, जीवन का यही आश्वासन-साधन हमें प्राप्त होता है।

(रविवार, 28 अगस्त 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# भविष्य की गतिविधि

इस देश की राजनीति इस समय विशेष रूप से जटिल हो गई है। एक उलझन सुलझ नहीं पाती तब तक दूसरी ओर लग जाती है। पुराने झगड़े निपट नहीं पाते तब तक नए खड़े होकर दूसरी ओर ध्यान खींच लेते हैं। झगड़े की जड़ तक पहुंच ही नहीं हो पाती। अभी बहुत दिन नहीं हुए जब सारा देश पुकार रहा था कि महात्मा गांधी को वाइसराय से मिलने दिया जाए, अब भी समझौता हो जाएगा। पर बदले में गांधीजी यरवदा जेल में बंद कर दिए गए। कांग्रेस गोलमेज से टूटकर अलग हो गई, राष्ट्रीय मुसलमान, व्यवसायी आदि भी सरकारी कमेटियों में शामिल नहीं हुए। लिबरल दल अपनी आशा के कारण यह जोरदार आग्रह करता रहा कि कांग्रेस से समझौता किया जाए, महात्माजी आदि शीघ्र जेल से बाहर किए जाएं और गोलमेज-कमेटियों में शरीक कर लिये जाएं। यह आवाज उठाते हुए भी वे लोग सरकारी कमेटियों का साथ देते रहे। यह जब तक होता रहा तब तक आर्डिनेंसों की जिंदगी खत्म होने को आ गई। इस छह महीने के काल में पहले तो आर्डिनेंसों के लगाने, गांधीजी आदि को जेल भेजने आदि का विरोध किया जाता रहा, फिर केवल इतना कहा जाने लगा कि आर्डिनेंसों की कुछ धाराएं निकाल दी जाएं जिससे उनका प्रयोग बहुत बड़ी स्वतंत्रता के साथ बहुत बड़े दायरे में न किया जा सके। उसके भी बाद केवल 'ए', 'बी', 'सी' क्लास के कैदियों का झगड़ा कौंसिलों में चलता रहा जिसमें इतनी ही शिकायत की गई कि अमुक व्यक्तियों को नीची श्रेणी क्यों दी गई, इसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया गया आदि आदि। इस प्रकार स्पष्टतः दीख पड़ने की वस्तु यह है कि विरोध की अपील धीमी पड़ती गई। सरकार का पक्का इरादा देखकर संभव है ऐसी नीति व्यवहार में लाना उचित समझा गया हो पर इससे राष्ट्रीय आकांक्षा ठीक-ठीक प्रकट नहीं की जा सकी। आर्डिनेंसों के अंतकाल में फिर यह आवाज दोहराई गई कि जो हो गया, वह हो गया, अब आगे आर्डिनेंस न लगाए जाएं, यदि वैसा ही जरूरी हो तो व्यवस्था परिषद से उन्हें पास कराया जाए। पर इस आवाज की भनक पड़ना तो दरकिनार, विलायत से सीधा वह ऐलान आया जिससे आर्डिनेंस तो दोहरा ही दिया गया, साथ ही, गोलमेज का खातमा कर दिया गया।

गोलमेज के टूटने और आर्डिनेंस के जारी किए जाने की घोषणा एक साथ ही विलायत से भारत पहुंची जिसका असर यह पड़ा कि आर्डिनेंस को तो लोग भूलने लगे और गोलमेज के टूटने की ही चर्चा छिड़ गई। गोलमेज का टूटना यह एक ऐसी अकल्पित और नई घटना थी कि न केवल लिबरल दल बल्कि देश का अधिकांश भाग इस नए अचंभे में पड़कर और बात ही भूल गया। ब्रिटिश राजनीतिज्ञता का यह नमूना ध्यान देने योग्य है। जेलों के बाहर लिबरल दल ही प्रमुख होने के कारण गोलमेज का किस्सा ही यहां सबसे अधिक जोर-शोर से छिड़ गया। सर तेजबहादुर सप्रू, श्री जयकर, जोशी आदि से सरकारी-सहयोग से इस्तीफा दे दिया और बंबई में इकट्ठे होकर लिबरलों के दस्तखत से असहयोग की खबर प्रकाशित की गई। सरकार की शायद इतनी गहरी पहुंच नहीं थी अथवा संभव है, उसकी यह नीति रही हो। लिबरलों का असहयोग दूर करने के लिए सर सेमुएल होर, वाइसराय वगैरह वगैरह ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कई-कई विज्ञप्तियां निकालीं और प्रामाणिक ब्रिटिश पत्र *टाइम्स* के कथन से जान पड़ता है कि गोलमेज का कोई तीसरा अधिवेशन भी कर दिया जाएगा। यद्यपि *लीडर* लिखता है कि पूरे तौर से गोलमेज का तीसरा अधिवेशन किया जाएगा तभी लिबरल लोग उससे सहयोग करेंगे पर अंत में क्या होने वाला है यह कोई नहीं कह सकता। हां, इस बीच में आर्डिनेंस का दुबारा जारी किया जाना एक मामूली घटना ही के बराबर समझ लिया गया और इन दिनों उसके बारे में कोई चर्चा चलाने की जरूरत नहीं समझी जा रही।

इसी बीच में ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने 'सांप्रदायिक निर्णय' भी हम लोगों को सुना दिया है जिसको लेकर देश भर में कोलाहल मच गया है। कांग्रेस के नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने स्थिति को सुझाते हुए कह दिया है कि यह मजहबी फैसला सरकारी कार्यक्रम का एक अंग मात्र है जो मुख्य समस्या से हमारा ध्यान हटाने के लिए इस समय सुना दिया गया है। कांग्रेसी राजगोपालाचारी ही नहीं, लिबरल चिंतामणिजी भी यह कह चुके हैं कि यह किसी पंच का फैसला नहीं, केवल सरकारी निर्णय है। लेकिन इस फैसले ने देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक को आतंकित कर रखा है। पंजाब के हिंदू और सिख नेताओं ने असहयोग की घोषणा कर दी है और बहुत से दूसरे लोग भी अपना मंसूबा बांध रहे हैं। यह सब घटनाएं आज इस दिन से घट रही हैं। एक ओर ये घट रही हैं, दूसरी ओर यह ताजा खबर आई है कि वाइसराय महोदय सर तेजबहादुर सप्रू को बुलाकर देहरादून में सलाह-मशविरा कर रहे हैं। लेकिन यह सलाह-मशविरा न तो आर्डिनेंसों के दुबारा जारी किए जाने के संबंध में हो रहा है और न यह मजहबी निर्णय पर हो रहा है। जैसाकि सरकारी सदस्य सर रामस्वामी अय्यर ने स्पष्ट की कहा, 'यह बात तो तय समझिए कि हम न तो यरवदा जाएंगे, न महात्मा गांधी से भेंट ही करेंगे। वे तो केवल श्रीयुत जयकर से मिले हैं और उनसे मिलना उसी संबंध में हो सकता है जिस संबंध में वाइसराय का सर तेजबहादुर सप्रू से मिलना।' यहां तक कि गोलमेज-कमेटियों से अलग रहने वाले व्यापारी दल से भी यदि सर रामस्वामी मिलेंगे तो केवल शुद्ध व्यावसायिक बातों पर बातचीत करने के लिए। इसका अर्थ यह हैं कि सरकार लिबरल दल का सहयोग प्राप्त कर गोलमेज की तीसरी किश्त समाप्त कर डालना चाहती है। वह न तो कांग्रेस से किसी प्रकार की बातचीत करना चाहती है, न आर्डिनेंसों पर लोगों का प्रस्ताव सुनना चाहती है। (प्रस्ताव सुनना तो दूर, वह तो व्यवस्था परिषद में आर्डिनेंस को पास कर एक बना लेने का मंसूबा भी रखती है, ताकि कुछ वर्षो के लिए छुट्टी मिल जाए)। यह तो वह पहले ही कह चुकी है कि सांप्रदायिक फैसले पर वह किसी प्रकार की प्रार्थना नहीं सुनेगी, न बात करेगी जब तक सब दल एकमत होकर उससे ऐसा करने को न कहें। बस इस समय वह लिबरल दल से समझौता करने का प्रयास कर रही है।

इस प्रकार गत सात-आठ महीनों की सरकारी कार्रवाई से देश के कई खंड हो चुके हैं। कांग्रेसी जेल में हैं। व्यापारी गोलमेज के बाहर है। वे आर्डिनेंस राज्य रहने तक सहयोग नहीं करेंगे। मजहबी फैसले से न केवल हिंदू और सिख बल्कि राष्ट्रीय लिबरल नेता भी असंतुष्ट हैं। केवल मजहबी मुसलमान नेताओं को लेकर सरकार गोलमेज का काम करने में शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संकोच करती है। इसलिए वह लिबरल दल को साथ लगाना चाहती है। और दलों से यह पहले से ही निराश हो चुकी है। लिबरलों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ही वह तीसरी गोलमेज का अस्थिपंजर खड़ा करना चाहती है। इस गोलमेज के प्रति बहुत कम लोगों को विश्वास रह गया है। पंजाब के सिख और हिंदू अलग हो गए हैं। हिंदू महासभा भी अपना निर्णय शीघ्र ही सुनाने वाली है। लिबरल फैडरेशन के अध्यक्ष श्री चिंतामणि ने कहा है कि जो विधान इस प्रकार के मजहबी बंटवारे की नींव पर खड़ा किया जाएगा उससे उन्हें विशेष आशा नहीं है। परंतु लिबरल दल का कुल मिलाकर क्या रुख होगा यह अब तक निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। सरकार तीसरी गोलमेज का प्रलोभन दिखाना चाहती है, पर अब तो सब ओर से विचार करने की आवश्यकता हो गई है।

सारांश यह कि 'प्रगतिशील राजनीति' के चक्र में पड़कर भिन्न-भिन्न विचार-सरणियों में चलते हुए आज भारत को कोई ऐसा दृढ़ आधार नहीं मिल रहा जिसके चतुर्दिक सर्वदल एकत्र होकर खड़े हो जाएं। सरकार हमारी इस विश्रृंखलता से लाभ उठाने की चेष्टा करे तो यह अस्वाभाविक नहीं। हमारे नेताओं ने आज आठ महीनों से जो-जो मांगें पेश कीं और जो-जो प्रस्ताव उपस्थित किए उनमें से किसी पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। वह अपने रास्ते पर चलती जा रही है। देश के राष्ट्रीय दलों के लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि वे सरकार को अपने किसी प्रस्ताव पर राजी नहीं कर सके और न बाध्य कर सके। अब इस मजहबी फैसले के बाद भी यदि सब दल इकट्ठे होकर 'कम से कम मांग' की एक तालिका बनाकर सरकार के सामने पेश करें तो बड़ा उपयोगी सिद्ध हो। इस समय देश को एक सर्व-दल-सम्मेलन की उत्कट आवश्यकता है।

## श्री सुमित्रानंदन पंत—3

*पल्लव* में वियोग-पक्ष प्रमुख होने के कारण करुण निराशा की एक अश्रुपूर्ण झलक ही मूर्तिमती होती है। उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त 'छाया', 'स्वप्न', 'नक्षत्र', 'बालापन' आदि का स्वर तार करुण ध्वनि निक्षेप करता, विविध वर्णनों और जिज्ञासाओं में एक निराशा ही फैली हुई मिलती है। *गुंजन* में इसके विपरीत, कवि अधिक आस्तिक बनने की संभावना प्रकट करता है। 1931-32 की प्रायः सभी रचनाएं संयोग-पक्ष की हैं जिनमें पंतजी की कल्पना अपना चमत्कार दिखा रही है। 'भावी पत्नी के प्रति', 'मधुबन' आदि लंबी रचनाओं से भी अधिक छोटे-छोटे गीतों में वह प्रदर्शित हुई है, जैसे 'लाई हूं फूलों का हार, लोगी मोल, लोगी मोल', 'मैं पलकन पग चूमूं पिया के' आदि। हिंदी के शृंगारी कवि विरह-वर्णन के कारण अधिक लांछित नहीं किए गए पर जब वे संयोगवर्णन करने में सन्नद्ध हुए तब उनमें से अधिकांश ने कल्पना को ताख पर रखकर अत्यंत स्थूल, फोटोग्राफ खींचना आरंभ किया। विरह वर्णन करने में उन कवियों ने जहां कल्पना के आकाश-पाताल एक कर ऊहा की विपथगति दिखा दी वहां संयोग-शृंगार के प्रसंग में संभोग की ही कथा कहने लगे। एक तरफ कल्पना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इंद्रजाल दूसरी तरफ कल्पना छूमंतर। यह विशृंखलता शृंगारी कवियों के विकास में घातक सिद्ध हुई। पंतजी भी इस युग के शृंगारी कवि हैं, इनके विकास में भी कल्पना ही प्रमुख बनकर उपस्थित हुई है। पंतजी, वियोग वर्णन में कल्पना का पल्ला भावातिरेक के समय कहीं-कहीं छोड़ भी देते हैं, पर संयोग वर्णन में वे प्रायः कभी ऐसा नहीं करते। मध्यकाल के शृंगारी कवियों के विकास से पंतजी के विकास में यही मुख्य अंतर है। उनका संयोगपक्ष सर्वत्र कल्पना प्रसूत होने के कारण अधिक संयमित, शुद्ध और अनुभूतिप्रद हुआ है। पंतजी की इन आस्तिक रचनाओं की मधुरिमा विकास पाकर स्थान-स्थान पर व्यापक आध्यात्मिक भावजगत तक पहुंच गई है। वियोग की कल्पना-अनुभूति जिस प्रकार 'परिवर्तन' में, उसी प्रकार संयोग की कल्पना अनुभूति अनेक लघु-दीर्घ रचनाओं में व्यापक सौंदर्य की सृष्टि करती है—

*आज उन्मद मधु-प्रात*
*गगन के इंदीवर से नील*
*झर रही स्वर्ण-मरंद समान,*
*तुम्हारे शयन-शिथिल सरसिज उन्मील*
*छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण*
... ... ...
*मुकुल-मधुपों का मृदु मधुमास*
*स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार*
*मनोभावों का मधुर-विलास*
*विश्व-सुषमा ही का संसार*
*दृगों में छा जाता सोल्लास*
*व्योम बाला का शरदाकाश,*
*तुम्हारा आता जब प्रिय-ध्यान,*
*प्रिये प्राणों की प्राण!*

इस प्रकार की अनुभूतियां पंतजी के विकास में विशेष रूप से सहायक हुई हैं। ध्यान देने की बात है कि ऊपर मानवीय संयोग-वियोग की ही चर्चा की गई है। इसी संयोग-वियोग के उतार-चढ़ाव की सहायता से पंतजी उस शाश्वत 'समतल' के भी दर्शन कर सके हैं जिसका अवतरण 'परिवर्तन' की चर्चा करते हुए दिया गया है। यदि 'परिवर्तन' पंतजी की वियोग अनुभूति का निष्कर्ष है तो उनकी संयोगभावना भी 'अप्सरी', 'अनंग' आदि रचनाओं में परिणति प्राप्त करती हैं। 'अप्सरी' और 'अनंग' दोनों ही कृतियां सौंदर्य की चेतना (Spirit of Beauty) का प्रकाश करती हैं। जिस प्रकार वियोग के 'इंतहाए नशा' में होश आने के बाद, 'परिवर्तन' लिखा गया उसी प्रकार संयोग का शुद्ध स्वरूप-दर्शन करने के उपरांत शाश्वत सौंदर्य की प्रतिमूर्ति देखने—उसका रहस्य जानने की उत्कंठा भी स्वभावतः हुई। यदि 'मधुबन', 'भावी पत्नी के प्रति' आदि में सौंदर्य का संसार-पक्ष है तो 'अप्सरी', 'अनंग', 'प्रथम रश्मि'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आदि उसी का आत्म पक्ष है। अवश्य ही पंतजी को इस गहन क्षेत्र में पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त हुई है पर उनकी कल्पना उस ओर अवश्य ही आकर्षित है। 'एक तारा' में भी उन्होंने इसी गहन आत्मदर्शन की अभिव्यक्ति की चेष्टा की है। इन रचनाओं में पंतजी का समृद्ध छायावाद देखा जा सकता है।

*तुहिन-बिंदु में इंदु-रश्मि-सी*
*सोई तुम चुपचाप,*
*मुकुल-शयन में स्वप्न देखती*
*निज निरुपम छवि आप।*

—'अप्सरी'

*चिर अविचल पर तारक अमंद*
*जानता नहीं वह छंद-बंध*
*बह रे अनंत का मुक्त-मीन*
*अपने असंग सुख में विलीन—*
*स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन*

—'एकतारा'

इस प्रकार की गूढ़ उज्ज्वल सृष्टि करने में पंतजी के समकक्ष हिंदी में एकमात्र 'निरालाजी' ही हैं। परंतु बलशाली कल्पनाशक्ति के कारण पंतजी निरालाजी की अपेक्षा विविधिता का अधिक आकर्षण विकीर्ण कर सके हैं।

पंतजी के संयोग-शृंगार की एक शाखा जहां 'अप्सरी', 'एकतारा' आदि के रूप में फूट निकली है वहां दूसरी शाखा उनके प्रकृति प्रेम की रचनाओं के रूप में दीख पड़ती है। प्रकृति का चैतन्य चित्र तो आधुनिक हिंदी के कतिपय कवियों की अनुभूति में आया है पर उन्होंने उसे केवल मानुषीय अनुभूतियों का आनुषंगिक बना रखा है। विराट प्रकृति भी विराट मनुष्यता के सामने छोटी बना दी गई है। यह प्रकृति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण सजीव भावना नहीं कही जा सकती। उसे उसके ही क्षेत्र में उसके अपने साम्राज्य में साम्राज्ञी की भांति देखने की उदारता आधुनिक हिंदी के कवियों ने नहीं दिखाई। पंतजी इस दिशा में अग्रसर होने वाले पहले व्यक्ति हैं। उनकी 'वीचि विलास', 'मौन निमंत्रण', 'बादल' आदि कविताओं में वैसी सहानुभूति झलकती है। परंतु प्रकृति को प्रकृति की ओर से देखने की कल्पना अब तक पंतजी में भी निर्लेप रूप से विकसित नहीं हुई है। प्रकृति के प्रति पंतजी का आकर्षण, प्रचलित हिंदी में सबसे अधिक, तथापि अब तक क्षीण ही है। 'मौन निमंत्रण' में प्रकृति की प्रभावशाली प्रेरणा से जो भावनाएं उत्पन्न हुई हैं, उसे भी पंतजी के छायावाद का एक हल्का रूप कह सकते हैं। इस प्राकृतिक छायावाद के अधिक विकास की आवश्यकता है।

इधर कुछ दिनों से हिंदी के समीक्षकों ने 'जीवन-जीवन' की आवाज ऊंची कर रखी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इनमें से कुछ तो यह भी नहीं समझते कि जीवन किसे कहते हैं और कविता में यह किस रूप में आ सकता है। 'कविता 'जीवन' की व्याख्या है'—अंग्रेजी का यह वाक्य सुनकर वे लोग इसे मुहावरे के तौर पर व्यवहार में लाते और कहते हैं कि आधुनिक कविता में 'जीवन' नहीं मिलता। संभव है, इन्हीं समीक्षकों की तृप्ति के लिए पंतजी ने *गुंजन* के कुछ पद्यों में 'जीवन' शब्द का प्रयोग प्रचुर परिमाण में कर दिया है (पंतजी इन विषयों में भी काफी व्यवहारकुशल दीख पड़ते हैं)। इसका परिणाम भी यथोचित मात्रा में निकल गया है—*विशाल भारत* में पंतजी के एक समीक्षक की उक्तियों से ऐसा ही समझ में आता है। बहुत संभव है पंतजी के 'जीवन' शब्द के कारण ही ये लेखक महाशय यह लिखने को उत्साहित हुए हों कि अब पंतजी की कविता में जीवन आने लगा है। परंतु पंतजी की कविता की वास्तविक जीवन-व्याख्या लेखक की बुद्धि परिधि के बाहर की बात दीख पड़ती है। ऐसे समीक्षकों से पंतजी को ही नहीं, हिंदी को भी सावधान रहने की आवश्यकता पड़ेगी।

'एकतारा' और 'नौकाविहार' पंतजी की इन नवीन रचनाओं में वर्णन का एक नया रूप दीख पड़ता है जिसमें कल्पना का आकर्षण नहीं, स्वयं वर्णन का ही आकर्षण है। शायद इसे अधिक प्राकृतिक कविता कहा जाए। कल्पना की अराजकता यहां विक्षेप ही डाल सकेगी, इसलिए उसके परिहार की चेष्टा की जाना चाहिए। 'एकतारा' में कल्पना प्रासंगिक हुई है पर 'नौका विहार' में यह कुछ अनिष्टकर बन गई है। 'नौका विहार' के वर्णन के उपरांत कल्पना का यह दार्शनिक निष्कर्ष इतना बोझीला हो गया है कि कविता उसका भार नहीं संभाल सकती—

*इस धारा सा हो जग का क्रम*
*शाश्वत इस जीवन का उद्गम*
*शाश्वत है गति शाश्वत संगम*

इत्यादि, इत्यादि।

बिना इस निष्कर्ष के कविता अधिक उपयुक्त होती। इस नवीन दिशा में कल्पना को अधिक संयमित करके अभीष्ट सिद्धि की जा सकती है।

(गुरुवार, 1 सितंबर 1932)

# हिंदू महासभा का कार्य

हिंदू महासभा यदि देश की हिंदू जनता का प्रतिनिधि बनने का दावा रखती है तो उसके सामने विशेष महत्वपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिसका सामना उसे करना ही पड़ेगा। ब्रिटिश सरकार के मजहबी फैसले से पंजाब और बंगाल के हिंदुओं में गंभीर क्षोभ और सारे देश की हिंदू जनता में असंतोष उत्पन्न हुआ है। कांग्रेस और लिबरल दल के जो नेता हिंदू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महासभा से संपर्क नहीं रखते और केवल राष्ट्रीय दृष्टि से ही सब विषयों पर विचार करते हैं उनमें भी कितने ही यह खुले आम कह रहे हैं कि सरकारी फैसले से हिंदुओं पर अन्याय किया गया है। कट्टर मुसलमानों के प्रोपेगेंडा से सरकारी क्षेत्रों में यह धारणा बंधाई गई है कि हिंदू जनता, बहैसियत हिंदू जाति के, सरकार के विरुद्ध आंदोलन कर रही है और मुसलमान जाति आंदोलन से बिलकुल अलग है। बंगाल के क्रांतिकारियों की हत्या-चेष्टाओं में भी हिंदू जातीयता का आभास देखा जाने लगा है। मिदनापुर में अतिरिक्त पुलिस रखी गई है और उसका खर्च वहां के हिंदुओं से ही वसूल किया जाएगा। इसका कारण बतलाते हुए बंगाल कौंसिल के गृहसदस्य ने कहा कि क्रांतिकारी आंदोलन से विशेष रीति से हिंदू आदमी संबंध रखते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि सरकार के पास इस बात के कुछ प्रमाण हैं जिनसे यह मालूम पड़ता है कि मिदनापुर की आम हिंदू जनता क्रांतिकारी आंदोलन से संबंधित है। इस प्रकार की धारणा बंध जाने से देश भर के हिंदुओं के विरुद्ध वातावरण सरकारी क्षेत्रों में बन सकता है और बहुत अंशों में बन गया है। हिंदू महासभा को इस समस्या पर विचार करना चाहिए कि सरकार के विरोधी रुख से हिंदुओं की कितनी हानि हो सकती है और यह भी पता लगाना चाहिए कि यदि राष्ट्रीय आंदोलन का हिंदू आंदोलन कहकर प्रचार किया जाता है तो इससे हिंदू जाति और भारतीय राष्ट्र पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है और अब तक कैसा पड़ा है? उसे यह भी निश्चय करना चाहिए कि इस प्रकार का प्रचार कार्य यदि झूठा है तो इसे किस तरह दबाया जा सकता है।

पंजाब के कट्टर हिंदू नेताओं का मत है कि हिंदुओं की सरकार की गुलामी जैसी अब है, वैसी आगे भी मंजूर रहेगी लेकिन वे अन्यायपूर्ण सांप्रदायिक आधिपत्य कभी स्वीकार नहीं करेंगे। ठीक इसके विपरीत कुछ अतिशय उदार 'राष्ट्रीय' खयालात रखने वाले व्यक्तियों की यह सलाह है कि हिंदुओं को मजहबी फैसले के विरुद्ध चूं तक नहीं करना चाहिए, नहीं तो उनकी राष्ट्रीयता पर धब्बा लग जाएगा। कहने वाले कहेंगे कि हिंदू केवल कहने के लिए राष्ट्रीय विचार रखते हैं, उनके विचारों में कोई सार नहीं है। विपक्षियों को यह रिमार्क पास करने का मौका मिल जाएगा कि हिंदू राष्ट्रीय दृष्टि नहीं रखते। हिंदू महासभा को इन दोनों विरोधी दलों से पाला पड़ेगा और उसे यह जटिल समस्या हल करनी पड़ेगी। एक ओर तो उसे ऐसे हिंदुओं से समझना होगा जो गोलमेज सम्मेलन के टूट जाने के बाद भी सरकारी-कमेटियों से अलग नहीं हुए, शायद इस आशा में कि इससे ब्रिटिश सरकार पर कुछ प्रभाव पड़े। दूसरी ओर उसे ऐसे व्यक्तियों से भी बातें करनी होंगी जो अपनी राष्ट्रीयता की कल्पना पर ही सारी इमारत खड़ी किए हुए हैं। जहां एक पक्ष में पंजाब और बंगाल के कुछ हिंदू यह आवाज उठाएंगे कि वे अपने प्रांतों में मुसलमान राज्य की अपेक्षा ब्रिटिश राज्य ही पसंद करते हैं वहां दूसरे पक्ष में ऐसे लोगों का कोलाहल भी सुन पड़ेगा जो 'राष्ट्रीयता' को धक्का लगने के डर से चुपचुप की पुकार मचाएंगे। हिंदू महासभा को सच्ची राष्ट्रीयता के आधार पर इस द्विविध हलचल को शांत करना होगा। सच्ची राष्ट्रीयता इस बात में नहीं है कि हम साहस और शक्ति को भूलकर दब्बू बन जाएं और आगे बढ़ने का नाम ही न लें और न यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमारा राष्ट्रीय विवेक कहलाएगा कि इस कट्टर अराष्ट्रीय मुसलमानों की नीति को फलते-फूलते देखें और उसके विरुद्ध खड़े होने को अराष्ट्रीयता समझें। वास्तव में हिंदू महासभा को कोई ऐसा रास्ता पकड़ना होगा जो राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति करता हुआ, हिंदू-हित के विरुद्ध न पड़े।

ऐसे अवसर पर हिंदू महासभा अपना अधिवेशन कर रही है। यह बड़ा ही महत्वपूर्ण अवसर है। हिंदू महासभा का भविष्य बहुत कुछ इसी अधिवेशन से निर्णीत हो जाएगा। यदि इस मौके पर उसने दूरदर्शिता से काम लिया तो एक बार फिर वह प्रमुख संस्था बनकर देश की राजनीति में अपना प्रभाव स्थापित कर लेगी। अन्यथा संभव है, वह कट्टरता के शिकंजे में पड़ जाए। यह बड़ी प्रसन्नता और दूरदर्शिता की बात है कि इस अधिवेशन के सभापतित्व के लिए प्रसिद्ध माडरेट नेता श्रीयुत जयकर का नाम लिया जा रहा है। श्रीयुत जयकर पिछले कुछ वर्षों से देश की राजनीति में विशेष मार्के का काम कर रहे हैं। सर तेजबहादुर सप्रू के साथ श्री जयकर ने सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता करने का सफल प्रयास किया था। इस समय भी वे सरकार की निगाह में विशेष महत्व रखते हैं जैसाकि अभी उस दिन वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्य सर रामस्वामी अय्यर के बंबई जाकर उनसे मिलने से मालूम पड़ता है। यदि श्रीयुत जयकर हिंदू महासभा का सभापतित्व ग्रहण करेंगे तो आशा की जाती है कि उसकी कार्रवाई व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर की जाएगी, साथ ही सरकारी क्षेत्र में हिंदुओं के विरुद्ध जो मिथ्या-प्रचार किया जा रहा है उसकी भी पोल खुलेगी। श्री ज़यकर के सभापतित्व से हिंदू महासभा और माडरेट दल की राजनीति में भी एकता स्थापित होने की संभावना है। इस एकता से देश की राष्ट्रीय शक्ति बढ़ेगी। यह तो हम हर हालत में कहेंगे कि इस समय हिंदू महासभा में सभापतित्व के लिए श्री जयकर से बढ़कर दूसरा उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिल सकता। श्री जयकर के सभापति होने से हिंदू महासभा का भविष्य और भी महत्वपूर्ण हो जाएगा और देश की राजनीति में वह अधिक शक्ति के साथ भाग ले सकेगी।

## नया आर्डिनेंस बिल

करीब-करीब तय है कि केंद्रीय व्यवस्था-सभा के आगामी अधिवेशन में, जो शीघ्र ही शुरू होने वाला है, सरकार अपना आर्डिनेंस बिल पेश करेगी जिससे उसे आर्डिनेंसों के वे अधिकार प्राप्त हो जाएं जिनकी उनको जरूरत है। आठ महीनों तक देश पर आर्डिनेंसों का शासन जमा कर अब उसे कानून का रूप देना सरकार को किसी प्रकार की नैतिक प्रतिष्ठा नहीं दे सकता। इससे तो यही सिद्ध होता है कि सरकारी अनुमान सब गलत निकल गए, परिस्थिति पूरी काबू में नहीं आई और अब सरकार ऐसा करने में संकोच का अनुभव करती है यदि वह एक बार के बाद दूसरी बार और दूसरी बार के बाद तीसरी बार भी आर्डिनेंस लगावे और इस बुनियाद पर उन्हें लगाए कि आपातकाल अभी दूर नहीं हुआ। जो आपातकाल (emergency) साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भर के बाद भी नहीं खत्म होता उसको आपातकाल का नाम देना वाणी पर अत्याचार करना है। फिर भारतमंत्री को अपनी साप्ताहिक और मासिक विज्ञप्तियों का भी तो थोड़ा-बहुत खयाल करना ही है जिनमें भारत की स्थिति सुधरते जाने का ही निरंतर आलाप रहता है। स्थिति सुधर गई है इस बात को सिद्ध करने के लिए आर्डिनेंसों को आर्डिनेंस का नाम देना ठीक नहीं होगा, उसे कानून बना देना अधिक युक्ति संगत होगा। लेकिन उसको आप कानून कहिए या 'आर्डिनेंस' उसमें नाम भेद के अतिरिक्त और फर्क ही क्या है। वस्तु तो वही है, उसका लक्ष्य तो वही है। यदि भारत की स्थिति सचमुच सुधर गई होती तो आर्डिनेंस बिल के पेश करने की जरूरत ही न होती। इससे यह भी पता लगता है कि एक बार अधिकार हथिया लेने के बाद सरकारी कर्मचारी उसे छोड़ने के लिए मुश्किल से तैयार किए जा सकते हैं। आश्चर्य है कि जब साल भर के भीतर ही सरकार भारत को 'स्वराज्य विधान' देने का प्रचार कर रही है तब आज यह आर्डिनेंस विधान ही हमारे सामने आ रहा है। स्वराज्य विधान का रूप देखने के पहले इस आर्डिनेंस विधान के दर्शन करने का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त हो रहा है। इसके लिए हम लोग क्या सरकार को धन्यवाद दें?

# व्याकरण का भविष्य

व्याकरण का भविष्य सदैव अंधकारमय रहा है और आगे भी रहेगा। चींटे के पर की तरह जिस किसी भाषा के साथ व्याकरण का पर लगा, उसके-दिन बुरे आए। सौभाग्य कहना चाहिए कि हमारी हिंदी को अभी व्याकरण के पर नहीं लगे हैं इसलिए दुश्चिंता की बात नहीं है। प्रयाग एक प्रकार से हिंदीभाषी प्रदेश का केंद्र है पर वहां की खड़ीबोली में अभी परिवर्तन जारी है। उदाहरण के लिए यहां के शिक्षित स्त्री-समाज में क्रिया के साथ स्त्रीलिंग-पुल्लिंग का भेद मिटा देने की प्रवृत्ति स्पष्ट दीख पड़ने लगी है। जिस प्रकार पुरुष कहते हैं हम गए, हम आए, उसी प्रकार स्त्रियां भी कहती हैं हम गए, हम आए। अंग्रेजी ही नहीं, भारत की भी अनेक प्रांतीय भाषाओं में क्रिया भेद नहीं है। स्त्रियों की क्रियाओं में कोमलता का चित्र हम खड़ीबोली वालों को अब तक देखने को मिलता था, संभव है, आगे न मिले। शायद स्त्रियां भाषा के क्षेत्र में भी अपने अधिकार प्रदर्शित कर रही हैं और कोमलता की पुतली नहीं बनना चाहतीं पर हिंदी-व्याकरण का क्या होगा?

(रविवार, 4 सितंबर 1932)

# वाइसराय के भाषण का सार

कल असेंबली के भाषण में वाइसराय महोदय ने देश की राजनीतिक परिस्थिति पर जो उद्गार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकट किए उनका सार नीचे लिखे तौर पर जाहिर किया जा सकता है। सरकार की नीति विधान की रीति से भारत को स्वराज्य की ओर से चलना है। गोलमेज सम्मेलन का यही मतलब था कि वह भारत की व्यवस्था-सभाओं को यथासंभव अधिक से अधिक अधिकार दिलावे और तर्क और बुद्धि के द्वारा नियम के अनुसार भारतीय जनता की इच्छाओं को प्रकट करे। इसी मतलब से गोलमेज के बाद भी सरकारी कमेटियां नियुक्त की गईं जो गोलमेज की शेष कार्रवाई को पूरा करने में दत्तचित्त हुईं। सरकार की इस नीति के ठीक विपरीत कांग्रेस की नीति है जो समझाने-बुझाने के बदले जोर-जबर्दस्ती करने का कार्यक्रम रखती है। कांग्रेस की फिलासफी बल प्रयोग करने की फिलासफी है। वह बलात् अपना मतलब पूरा करने की कार्रवाई करती है और एकतरफ सरकार को, दूसरी तरफ जनता को, ऐसे काम करने को लाचार करना चाहती है जिन्हें वह ठीक समझती है। इसी जोर-जबर्दस्ती की नीति का एक दूसरा और अधिक अनिष्टकर पहलू बंगाल के क्रांतिकारियों का उत्पात है। ये लोग शारीरिक बल प्रयोग का अस्त्र काम में लाते और हत्याएं करके भय संचार करना चाहते हैं। यही नहीं ये लोग बड़ी तादाद में डाके भी डालते हैं। अभी तो इनकी कार्रवाई सरकारी अफसरों के ही विरुद्ध हो रही है लेकिन यदि ये सफल हो जाएं तो ऐसे लोगों के हाथ में अधिकार आ जाएगा जो अपने प्रत्येक विरोधी पर इस नृशंस नीति का प्रयोग करने लगेंगे। इस प्रकार कांग्रेस और बंगाल का क्रांतिकारी दल दोनों ही एक ही सिद्धांत के दो छोटे-बड़े स्वरूप हैं और सरकार अपनी पूरी शक्ति से इन दोनों को दबाकर भविष्य का मार्ग निष्कंटक करना चाहती है। चूंकि सरकार विधान सम्मत उपायों पर ही विश्वास रखती है, इसलिए वह कांग्रेस की मौजूदा नीति में उससे किसी प्रकार समझौता नहीं कर सकती, बल्कि वह देश के वर्तमान कानून को और अधिक कड़ा बनाकर उसका मुकाबला करने और उसे दबा देने में कुछ उठा नहीं रखेगी। ऐसा करने में उसे किसी प्रकार की नैतिक अटक नहीं है बल्कि इसे तो वह अपना उदार कर्तव्य समझती है।

वाइसराय महोदय के इन उद्‌गारों पर गौर करने की जरूरत है। हम स्वयं ही कानून के हामी हैं और विधान के उपाय से ही अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति करने की चेष्टा करते हैं। लेकिन वाइसराय महोदय के इस कथन का हम पर प्रभाव नहीं पड़ा कि सरकार विधान की रीति से भारत को स्वराज्य की ओर ले चलना चाहती है। आज से बीस वर्ष पहले इस तरह के उद्‌गार कुछ असर डाल सकते थे। महारानी विक्टोरिया की प्रसिद्ध घोषणा को यदि आज दोहराया जाए तो दोहराने वाला दकियानूसी ही कहा जाएगा। स्वराज्य की ओर चलने का सवाल अब नहीं रहा। अब तो भारत स्वराज्य को अपने हाथों में लेकर उसकी रूपरेखा देखना चाहता है। हमारा देश अब इस बात में कुछ भी दिलचस्पी नहीं लेता कि ब्रिटिश सरकार किन-किन तर्जो से, कैसे-कैसे सम्मेलन करके हमारा उपकार करना चाहती है। हम तो अब यह निश्चय करने के अभिलाषी हैं कि सरकार की तरफ से जो कुछ देने की तजबीज की जा रही है, हम जिसकी उम्मीद में मुब्तिला हैं—वह उत्तरदायित्वपूर्ण स्वराज्य है या कुछ और ही है। यदि वह कुछ और है तो हम उसे नहीं लेना चाहते, चाहे सरकार की तरफ से उसे स्वर्ग की निसेनी ही क्यों न ठहराया जाए। गोलमेज सम्मेलन के भी पहले की गई महत्वपूर्ण सरकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



घोषणाओं के बल पर हम यह कहने का अधिकार रखते हैं कि स्वराज्य हमारी तत्काल प्राप्य वस्तु है और यदि हमें इस बात के लक्षण दिखाई देते हैं कि ब्रिटिश सरकार अपने सरकारी निर्णयों द्वारा हमारे स्वराज्य को लंगड़ा बना देना चाहती है तो हम उस पर यह अभियोग लगा सकते हैं कि वह अपने वचन को भंग करना चाहती है।

कांग्रेस पर वाइसराय महोदय का आक्षेप सिद्धांत की दृष्टि से बहुत ही गंभीर है। यदि वे अपने भाषण में यह विश्वास दिलाने की चेष्टा करते कि सरकार अपनी प्रतिज्ञाएं नहीं तोड़ रही बल्कि वह उन्हें शीघ्र से शीघ्र पूरा करना चाहती है तो वह अधिक फलप्रद हो सकता था। उससे यह नतीजा निकलता कि कुछ लोग यह समझते कि कांग्रेस का कार्य सचमुच असामयिक हुआ है और उसे अब भी पुरानी गलती दूर कर सहयोग के कार्य में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। स्वयं कांग्रेस के नेता भी, संभव है, वाइसराय के आश्वासन की कुछ कद्र करते। पर वाइसराय महोदय ने कांग्रेस की फिलासफी की जो चर्चा छेड़ी और क्रांतिकारी कार्रवाइयों से उसका जो तारतम्य मिलाया वह चर्चा असामयिक और वह निष्कर्ष अनुचित जान पड़ता है। अभी बहुत दिन नहीं हुए जब सरकार की तरफ से यह उम्मीद जाहिर की गई थी कि महात्मा गांधी बंगाल जाकर शांति स्थापित करने की चेष्टा करेंगे। पर घटनाएं ऐसी घटीं कि उनका वहां जाना न हो सका और वे जेल के भीतर पहुंचा दिए गए। जब सत्याग्रह आंदोलन के स्रष्टा और कांग्रेस-संस्था के शिरोमणि महात्मा गांधी के बंगाल जाने से सरकार यह आशा कर रही थी कि उससे क्रांतिकारी आंदोलन शांत होगा, तब आज वाइसराय महोदय का यह कहना कहां तक उचित है कि कांग्रेस और क्रांतिकारी दल का सिद्धांत एक है, केवल मात्रा में भेद है? यदि कांग्रेस के कुछ व्यक्तियों ने कभी किसी सरकारी अफसर अथवा जनता के कुछ आदमियों को डराया-धमकाया हो तो क्या यह कांग्रेस की फिलासफी हो गई? कांग्रेस के उद्देश्यों और सिद्धांतों को महात्मा गांधी ने अनेक बार प्रकट किया है और उन्होंने कष्ट सहन द्वारा सरकार का हृदय पिघला देना यही सत्याग्रह का अंतिम लक्ष्य माना है। आज जब देश के अनेक गण्यमान्य नेता केवल अपने राजनीतिक विचारों के लिए जेलों के कष्ट भोग रहे हैं तब वाइसराय महोदय का यह कहना कि कांग्रेस जोर-जबर्दस्ती के सिद्धांत पर चल रही है और क्रांतिकारियों के सिद्धांत से भिन्नता नहीं रखती न तो ऐतिहासिक सत्य परिस्थिति है, न वस्तुस्थिति के अनुकूल है।

बल प्रयोग (Force) के सिद्धांत का तात्विक विवेचन उतना सरल नहीं है। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया में शक्ति के परमाणु निहित रहते हैं। जब हम अपने भाषण से, तर्क से अथवा बुद्धि से दूसरों पर प्रभाव डालते हैं तब भी हम बल प्रयोग करते हैं। जब हम अपने कष्ट-सहन द्वारा प्रभाव डालते हैं तब भी बल प्रयोग करते हैं। बल प्रयोग कहां नहीं है? यह ठीक है कि नियमानुसार वह प्रयोग करना एक बात है और अनियमित रीति से वैसा करना दूसरी बात है। गोलमेज सम्मेलन के लिए भरती किए गए प्रतिनिधियों के पक्षपातपूर्ण चुनाव के विरुद्ध क्या 'तर्क, बुद्धि और प्रमाण' का प्रदर्शन नहीं किया गया, पर सरकार—क्या अपने निर्णय से पीछे हटी? तब से लेकर अब तक सरकार को मनाने में कितने ही तर्क, कितने ही प्रमाण और कितनी ही बुद्धि व्यय की गई पर सरकार पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पड़ा। अंतिम उदाहरण सरकार द्वारा किया गया मजहबी फैसला है जिसके विरोध में देश की अधिकांश तर्क और बुद्धि दिखाई जा चुकी है पर क्या निर्णय में कोई परिवर्तन हो जाएगा? तर्क, बुद्धि और प्रमाण को वाइसराय विशेष रीति से पसंद करते हैं और सरकार की यही नीति बतलाते हैं पर तर्क और बुद्धि आदि तो दूसरे पक्ष से भी समझदारी और उदारता की अपेक्षा रखते हैं। क्या सरकार ने इन दोनों का परिचय उचित मात्रा में दिया है?

यह संतोष की बात है कि वाइसराय महोदय ने नेस्तनाबूद हो गए गोलमेज सम्मेलन को एक नवीन शिशु प्रदान कर निर्वंश हो जाने से उसकी रक्षा कर ली है। इससे भी अधिक संतोष उनकी उस व्यक्तिगत अपील से हुआ जिसमें वे प्रत्येक नागरिक से आग्रह करते हैं कि वह भेदभाव भूलकर आगामी कार्य में सहायता दे। यह प्रसन्नता की बात है कि वाइसराय महोदय कांग्रेस को एक शक्तिशाली संस्था स्वीकार करते हैं, साथ ही, यह भी स्वीकार करते हैं कि 'केवल ब्रिटिश सरकार या भारत सरकार द्वारा विधान बना दिए जाने से ही वे सफल नहीं हो जाएंगे, सच्ची सफलता तो तब प्राप्त होगी जब भारत के देशी नरेश और संपूर्ण जनता सहयोग करेगी।' इस अंतिम उद्‌गार के आधार पर यदि कुछ क्रियात्मक उद्योग किया जाए तो 'भारत के देशी नरेश और संपूर्ण जनता' का देश की आगामी राजनीति में सहयोग प्राप्त करना कोई असंभव बात नहीं है। उदारता, ईमानदारी और व्यवहार बुद्धि की आवश्यकता है। क्या आशा की जाए कि देश के इस दुर्भाग्यकाल में ये तीनों सद्‌गुण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकेंगे?

(गुरुवार, 8 सितंबर 1932)

## कांग्रेस के बिना कठिनाई

जिस बात को वाइसराय महोदय ने सिद्धांत के रूप में कहा उसी को सर तेजबहादुर सप्रू ने तफसील के तौर पर प्रकट किया है। वाइसराय के उस सिद्धांत में जो अस्पष्टता थी वह डॉक्टर सप्रू ने दूर कर दी। वाइसराय के शब्द ये थे—

> आज मैं अपने संपूर्ण अंतःकरण से भारत के प्रत्येक नागरिक से अपील करता हूं कि वह हमारे आगामी कार्य में सहयोग करे। प्रत्येक समझदार आदमी यह खूब जानता है कि विधान का काम केवल ब्रिटिश सरकार या भारत के करने से तय नहीं हो सकता। सच्ची सफलता तो भारत के देशी नरेशों और भारतीय जनता के समूह रूप में सम्मिलित होने से ही प्राप्त हो सकती है।

सर तेजबहादुर सप्रू के ये शब्द हैं—

> भारत के कांग्रेसमैनों और गैर-कांग्रेसियों में चाहे जो मतभेद हो, इस बात को अस्वीकार करना अथवा छिपाना बेकार है कि विधान निर्माण के इस आखिरी समय में कांग्रेस का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शरीक न होना वर्तमान और भविष्य की कठिनाइयों को बढ़ाने ही वाला सिद्ध होगा। भारत के चरम लाभ की दृष्टि से सरकार और कांग्रेस दोनों का अपने मौजूदा रास्ते पर चलना हितकर नहीं है बल्कि उस रास्ते से लौट आना ही लाभप्रद है। तभी तो सम्मिलित रूप से काम हो सकेगा और प्रत्येक विचार के प्रतिनिधि वर्ग कार्य में योग दे सकेंगे।

सवाल यह है कि वाइसराय महोदय जिस सिद्धांत को प्रकट कर रहे हैं और जिस सहयोग की बात कह रहे हैं, साथ ही, सर तेजबहादुर सप्रू कांग्रेस का नाम लेकर जिसकी स्पष्टता दे रहे हैं, वह कैसे पूरा किया जा सकता है। देश भर का प्रत्येक समझदार व्यक्ति उस सिद्धांत से पूर्ण सहमत है पर उनमें से प्रायः सभी यह भी अवश्य ही कहेंगे कि वाइसराय महोदय का उपाय ठीक नहीं है बल्कि उनका उपाय उनके सिद्धांत के विपरीत भी है। कांग्रेस के आंदोलन को दवाने में यदि राज्य की संपूर्ण शक्ति लगाई जाएगी तो इससे न केवल कांग्रेस और देश की जनता विधान के काम से सहयोग और दिलचस्पी छोड़ देगी बल्कि स्वयं सरकार का ध्यान भी कांग्रेस के कुचलने में लगकर विधान की ओर उचित रूप में नहीं खिंच सकेगा। देश की जनता में यह संदेह भी उत्पन्न हुआ था कि कांग्रेस को दबाकर सरकार नवीन विधान को अपने मन-मुताबिक गढ़ना चाहती है। तब से अब तक सरकार की तरफ से जो राजनीतिक घोषणाएं की गई हैं—जिनमें सबसे अंतिम उसका मजहबी निर्णय है—उन्हें देखते हुए उक्त संदेह कम नहीं हुआ बल्कि और भी बढ़ गया है। जो काफी राजभक्त थे वे भी विद्रोही बनकर असहयोग कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में अपने प्रति विश्वास और सद्भाव उत्पन्न करने के लिए क्या यह अत्यंत आवश्यक नहीं कि कांग्रेस के दमन से सरकार अपना हाथ खींच ले और मेलजोल का रुख दिखाए। उसके ऐसा करते ही देश में ऐसा अनुकूल वातावरण बन जाने की आशा है जिसकी कल्पना भी आज नहीं की जा सकती।

वाइसराय महोदय ने अपने पिछले भाषण में इतना तो स्वीकार ही किया है कि महात्मा गांधी ने लड़ाई नहीं छेड़ी। युक्त-प्रांत और सीमा प्रांत की कांग्रेस कार्रवाइयों का हवाला देते हुए वाइसराय महोदय अप्रत्यक्ष रूप में यह भी मानते हैं कि सारे देश में नहीं बल्कि इन्हीं दोनों प्रांतों में कांग्रेस के नेता, महात्मा गांधी की गैर-हाजिरी में संघटन कर रहे और सत्याग्रह की परिस्थिति तैयार कर शासन का काम कठिन बना रहे थे। वाइसराय के तर्क को सच मान लेने पर यू.पी. और सीमा प्रांत के कुछ कांग्रेस नेताओं को ही सरकार-विरोधी आंदोलन का जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। लेकिन अब इन दोनों प्रांतों की क्या अवस्था है? स्वयं वाइसराय कहते हैं कि यू.पी. के लगानबंदी आंदोलन का अंत हो गया और सीमा प्रांत में भी शांति हो रही हैं। इसका मतलब यह है कि जिस बुनियाद पर सरकार की तरफ से पहले-पहल कांग्रेस पर वार किया गया और महात्मा गांधी के निवेदन को भी अस्वीकार कर उन्हें जेल भेज दिया गया, वह बुनियाद अब नहीं रही। यदि वाइसराय महोदय का कथन स्वीकार कर लिया जाए तो यह जिम्मेदारी सरकार के ऊपर पहुंच जाती है कि दो प्रांतों की कार्रवाई के कारण सारे देश को अभूतपूर्व कष्ट सहन के आठ-नौ महीने गुजारने पड़े हैं। क्या अब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता जबकि उन दोनों प्रांतों में भी वह समस्या नहीं रह गई और न वहां का शासन खतरे में रह गया है? लोगों ने तो विश्वस्त सूत्र से पता लगाकर यहां तक कहा था कि ब्रिटेन की अनुदार सरकार ने महात्मा गांधी के लंदन में रहते ही भारत के लिए आर्डिनेंस तैयार कर लिये थे, पर इन कटु प्रसंगों को उखाड़ने से कोई मतलब नहीं। सीधी बात यह है कि वाइसराय महोदय के साथ देश का अधिकांश समाज इस सिद्धांत को स्वीकार करता है कि विधान के काम में सब दलों का सहयोग अपेक्षित है। इतने दिनों के कटु संघर्ष के बाद अब इसे अधिक विस्तृत करना इष्ट नहीं है। केवल एक ऐसा सुगम मार्ग निकालने की आवश्यकता है जिससे वाइसराय का उक्त सिद्धांत भी व्यवहार में लाया जा सके और देश की विशाल जनता संतोष की सांस ले सके। यह कोई कठिन काम नहीं है यद्यपि अपार उपकारी है। इसके लिए लार्ड विलिंग्डन में लार्ड इर्विन की-सी धर्मबुद्धि और व्यवहार-कुशलता की आवश्यकता है। क्या आशा की जाए कि लार्ड विलिंग्डन किसी ऐसे उपाय का अवलंबन करेंगे और व्हाइट-हॉल (विलायत) भी अपना रुख बदलेगा?

## जर्मनी का क्रांतिकारी प्रस्ताव

इधर कुछ समय से समाचारपत्रों के कॉलम जर्मनी के अंतःकलह की खबरों से भरे रहते हैं। वृद्ध पितामह प्रेसीडेंट हिडेनवर्ग को सारे जर्मनी ने किसी आग्रह के साथ राष्ट्र का अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिए बुलाया था। यह अभी कुछ ही महीनों की बात है। पर हिडेनवर्ग को हर हिटलर के रूप में एक ऐसा प्रतिद्वंद्वी प्राप्त हुआ है जो तब से अब तक अपना दल-बल बढ़ाने का उत्कट उद्योग कर रहा है। पिछले जर्मन चुनाव में हिटलर का नाजी दल सबसे अधिक संख्या में चुना गया पर वह संख्या इतनी अधिक नहीं थी कि अन्य सब दलों की जुड़ी हुई संख्या से भी अधिक हो। इसलिए हिटलर को शासनाधिकार न मिल सका। पर जर्मन मंत्रिमंडल में हिटलर दल के नाजियों को कितने ही स्थान दिए गए। इतने से भी संतुष्ट न हो हिटलर ने, कहा जाता है, इटली के मुसोलिनी की तरह शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने की मांग पेश की। परंतु इस मांग को न केवल प्रेसीडेंट हिडेनवर्ग ने अस्वीकार कर दिया बल्कि जर्मन राष्ट्र पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ा, जिससे, कहा जाता है कि हिटलर की लोकप्रियता भी कम पड़ गई है। इस बीच में जर्मनी के प्रधानमंत्री चांसलर वान पेपेन की नवीन आर्थिक योजना को लेकर भी जर्मनी में काफी चख-चख मच गई है। सारांश यह कि जर्मनी की राजनीति में गृह-कलह का रूप उग्र होने की खबर है। परंतु यह होते हुए भी जर्मन राष्ट्र ने अभी उस दिन जो अत्यंत महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय नीति की घोषणा की है उससे तो यह अनुमान होता है कि घरेलू कलह का स्थान जर्मन राजनीति में बहुत मामूली है। जब हम जर्मनी के उस नवीन प्रस्ताव पर दृष्टि डालते हैं जो उसने फ्रांस, ब्रिटेन आदि के सामने उपस्थित किया है तब एक अद्भुत रहस्य-सा ज्ञात होता है। जर्मनी का प्रस्ताव है कि अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह यूरोप के मध्यश्रेणी के (2nd rate) राष्ट्र के रूप में नहीं रहना चाहता। वह यह विज्ञापित करता है कि जो प्रथम श्रेणी के राष्ट्र कहलाते हैं वे अपना अस्त्र-शस्त्र घटाकर जर्मनी के बराबर कर दें (ताकि जर्मन राष्ट्र उनके साथ बराबरी का दावा कर सके) नहीं तो जर्मनी अगले निरस्त्रीकरण-सम्मेलन में शरीक नहीं होगा। यह एक ऐसा जोरदार प्रस्ताव है जो यूरोप के राष्ट्रों में खलबली मचा देगा। इससे तो अनुमान होता है कि जर्मनी का गृह-कलह कोई चीज नहीं है और इस प्रस्ताव के पीछे सारे जर्मन राष्ट्र की संपूर्ण शक्ति एकत्र हो गई है। यह जर्मनी के आत्म-सम्मान की सूचना है कि वे पिछड़ा हुआ दर्जा स्वीकार नहीं करना चाहते। जर्मनी के इस प्रस्ताव को सुनकर प्रसिद्ध फ्रेंच पत्र *ला लिबर्तो* (लिबर्टी) लिखता है कि 'जर्मनी यद्यपि पिछले महासमर में हार गया था पर वह यह समझता है कि उसे जीतना चाहिए था।' इससे स्पष्ट है कि जर्मनी की यह महत्वाकांक्षा उक्त फ्रेंच पत्र को पसंद नहीं है। मालूम नहीं यूरोप के राष्ट्रों का जर्मनी के इस नए प्रस्ताव पर क्या रुख होगा। प्रचलित राजनीति को देखते हुए अनुमान है कि इटली जर्मनी का समर्थन करेगा और ब्रिटेन भी सहानुभूति दिखावेगा। पर फ्रांस अवश्य ही इसके विपक्ष में जाएगा। जो कुछ हो, जर्मनी का यह क्रांतिकारी प्रस्ताव यूरोप पर दो ही प्रभाव डाल सकता है। एक तो यह कि इसे स्वीकार कर यूरोपीय राष्ट्र अपना सैन्यबल घटाएं और जर्मनी के बराबर बन जाएं और दूसरा यह कि उसे अस्वीकार कर वे छिपे-छिपे अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने में लग जाएं ताकि जर्मनी का मुकाबला कर सकें। इनमें पहले की तो बहुत कम संभावना है। यदि दूसरा तरीका इस्तेमाल किया गया तो निरस्त्रीकरण सम्मेलन का प्राणांत हो जाएगा और उसकी अरथी के साथ चलने की भी किसी को फुर्सत नहीं रहेगी। तब तो केवल अस्त्र सज्जा का ही गंभीर रहस्यमय वातावरण यूरोप को घेर लेगा और यदि इसके परिणाम में कहीं युद्ध छिड़ गया तो संभव है यूरोप का विनाश ही हो जाए।

## द्वितीय पंचवार्षिक कार्यक्रम

रूस का प्रथम पंचवार्षिक कार्यक्रम इसी वर्ष के अंत तक समाप्त हो जाएगा और अगले वर्ष से द्वितीय पंचवार्षिक कार्यक्रम आरंभ होगा। राजनीतिक क्रांति के उपरांत रूस में औद्योगिक क्रांति की जा रही है जिसका उद्देश्य यह है कि वह भी यूरोप के संपन्न राष्ट्रों के दर्जे तक पहुंच जाए। रूस का यह प्रोग्राम उसकी राजनीतिक धारणाओं के अनुसार स्वयं राज्य की तरफ से चलाया जा रहा है। सामूहिक रूप से सारा देश इसमें भाग ले रहा है। व्यवसाय की दिशा में रूस में अधिक से अधिक पैदावार का प्रयास किया गया है और आधुनिक विज्ञान की सहायता से काम लेने की चेष्टा की गई है। कृषि के क्षेत्र में भी सामूहिक उद्योग और जमीन के एकीकरण से उत्पत्ति बढ़ाई जा रही है। जो पंचवार्षिक कार्यक्रम शीघ्र ही समाप्त होने वाला है उसका क्षेत्र अनेक अंशों में सीमित था। वह अधिकांश में पश्चिमी रूस में ही प्रयोग में लाया गया। पूर्व के दूरवर्ती प्रदेशों में अब तक वह सफलता के साथ नहीं पहुंचाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जा सका। अब द्वितीय पंचवार्षिक कार्यक्रम पूर्व रूस की ओर अधिक ध्यान देगा। इसके अतिरिक्त प्रथम पंचवार्षिक प्रोग्राम में जो त्रुटियां रह गई हैं उनकी पूर्ति करेगा। पिछली त्रुटियों में तीन प्रधान हैं। एक तो यह कि औद्योगिक कार्य के लायक रूस को पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक प्रणालियों और साधनों से अब तक पूरा-पूरा फायदा वह नहीं उठा सका। उसके मजदूर अभी अपने विषय की शिक्षा प्राप्त न होने के कारण कम काम कर पाते हैं। दूसरी बात यह कि कृषि की उपज भी उतनी नहीं हुई जितनी कूती गई थी। इसको पूरा करने के लिए अगले कार्यक्रम में जर्मनी का और अधिक एकीकरण किया जाएगा। तीसरी बात यह कि रूस में अभी रेलों और यातायात (Transport) के अन्य साधनों में भी कमी है। विस्तृत और जंगली होने के कारण देश के कोने-कोने में आवागमन के सुभीते अब तक प्राप्त नहीं किए जा सके हैं। आगामी कार्यक्रम में इस ओर भी अधिक ध्यान दिया जाएगा। कोयला, लोहा आदि की अधिक उत्पत्ति करके रूस अपने को पश्चिमी मशीनरी से सज्जित कर लेना चाहता है जिससे वह भी औद्योगिक (Industrial) देश कहलाने लगे। आगामी पंचवार्षिक आयोजन की यही मुख्य-मुख्य क्रियाएं होंगी। इसके संचालकों का कहना है कि जैसे-जैसे रूस की यह औद्योगिक उन्नति होती जाएगी वैसे ही वैसे राज्य की ओर से मजदूरों की दशा भी सुधारी जाएगी और उनके रहने का स्थान स्वच्छ सुंदर और उनका जीवन सुखमय बनाया जाएगा। रूस में अब भी वर्गवाद (class-element) का जो अवशेष रहा हुआ है उसे दूर करने का इरादा है। सोवियत रूस के इस द्वितीय पंचवार्षिक कार्यक्रम का खाका वर्डिन के विलविंकलर महाशय ने जेनेवा के प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय पत्र *ऐनल्स ऑफ कलेक्टिव इकनामी* में खींचा है, जिसका सार ऊपर दिया है। प्रथम पंचवार्षिक आयोजन जैसे विशाल कार्यक्रम को रूस ने लगभग चार वर्षों में ही समाप्त कर दिया है यद्यपि कुछ विभागों में उसकी पूर्ति साधनाभाव के कारण नहीं हो सकी है। पुराने अनुभव से लाभ उठाकर आगामी कार्यक्रम बनाया गया है और उसकी पूर्ति के उपाय भी विशेषज्ञों के अनेक सम्मेलनों द्वारा सोचे और तय किए गए हैं। दुःसाध्य को भी साध्य करने वाला रूस अब इस कार्यक्रम को अपने हाथ में ले रहा है।

## जापान और भारत

जापान और भारत का व्यावसायिक संबंध काफी बड़ा और घनिष्ठ है। भारत अपना कच्चा माल, विशेषकर रूई, जापान को भेजता है और वहां की तैयार चीजों को खरीदता है। दुःख की बात है कि डेढ़ सौ वर्षों से ब्रिटिश शासन रहते हुए भी भारत इस योग्य नहीं बनाया जा सका कि वह मामूली दामों पर अपना कच्चा माल बाहर न भेजे और अधिक दामों पर बाहर की बनी चीजों को न खरीदे। उसे ऐसा करने को लाचार होना पड़ता है क्योंकि देश में स्वदेशी व्यवसाय और उद्योग के सुभीते नहीं हैं। जो जापान अभी साठ-सत्तर वर्ष पहले संसार के नक्शे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर दिखाई भी नहीं देता था वह आज उस पर अपना सिक्का जमाए हुए है। स्वतंत्रता का यह उपहार जापान को प्राप्त हुआ है। इस समय जापान पश्चिम के बड़े से बड़े व्यवसायी राष्ट्र को मात करने की शक्ति रखता है और उसने भारत के बाजार से ब्रिटिश वस्तुओं को एक बड़े परिमाण में हटाकर अपना कब्जा कर लिया है। संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यवसायी-ब्रिटेन को व्यवसाय की प्रतियोगिता में हरा देना कोई मामूली बात नहीं है पर जापान जैसे अभ्युदयशील नवीन राष्ट्र के लिए आज यह मामूली बात हो गई है। इधर जापान आश्चर्यजनक जादू की-सी शक्ति से अपना व्यवसाय बढ़ा रहा है और भारत में जापानी वस्तुएं इतनी सस्ती पड़ रही हैं जितनी कल्पना में भी नहीं आतीं। कच्चे माल को जितनी खूबी से जितनी कम मजदूरी में जापान तैयार कर बाहर भेजता है, ब्रिटेन के लिए वह असंभव हो गया है। यातायात (Transport) के मामले में भी जापान विशेष रूप से दक्ष है और यदि जापानी वस्तुओं पर अतिरिक्त चुंगी न लगाई जाए तो विदेशी व्यवसायी भारत में जापान का मुकाबला शायद ही कर सकें। इधर हाल में जापान ने ब्रिटेन की ही तरह सोने का सिक्का त्याग दिया है जिससे जापानी वस्तुएं और भी सस्ती हो गई हैं। जापान की इस प्रतियोगिता के कारण भारत को तो लाभ ही है क्योंकि इससे उसे कम दाम खर्चना पड़ता है। चीजें सस्ती मिलती हैं। केवल एक ही हानि, जो जापानी वस्तुओं की इस चमत्कारी मंदी से हमें हो सकती है, यह है कि भारत के स्वदेशी रोजगार जापानी प्रतियोगिता का मुकाबला न कर सकें और फेल हो जाएं। भारत के स्वदेशी व्यवसाय के लिए यह आवश्यक है कि भारत के उन उद्योग-धंधों को जो यहां पनपने लगे हैं, विकास की सुविधा दी जाए। ऐसे भारतीय धंधों को जापानी प्रतियोगिता—जापानी ही क्यों संपूर्ण विदेशी प्रतियोगिता—से बचाने के लिए भारत सरकार को कार्रवाई करनी चाहिए, परंतु उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल उन्हीं विदेशी वस्तुओं पर अतिरिक्त चुंगी लगाई जाए जो हमारे देश में भी तैयार की जाने लगी हैं और जिनकी उन्नति के लिए ऐसे संरक्षण की आवश्यकता है। इसके विपरीत यदि भारत में आने वाली वाली सारी जापानी वस्तुओं पर अतिरिक्त कर लगाया जाएगा तो इससे स्पष्टतः भारत की खरीदार जनता को हानि होगी और ब्रिटिश, यूरोपियन तथा अमेरिकन व्यापारियों को संरक्षण मिलेगा। हम अपने देश में जो चीजें नहीं बना सकते उन्हें हम सस्ते दामों में जहां कहीं से मिले, खरीदेंगे, तभी हम आर्थिक दृष्टि से मुनाफे में रहेंगे। यदि भारत आने वाली प्रत्येक जापानी वस्तु पर अतिरिक्त कर लगा दिया जाएगा तो इससे न केवल जापान को बल्कि भारत को भी नुकसान होगा। अभी ओटावा से भारत इसी प्रकार का नुकसान उठाकर लौटा है। अब कुछ लोग यह प्रचार कर रहे हैं कि जापानी वस्तुओं पर और चुंगी लगाई जाए। हमारी निष्पक्ष राय यह है कि जापान की उन्हीं वस्तुओं पर चुंगी लगाई जाए जिनसे भारतीय उद्योग-धंधों के नष्ट होने की संभावना हो। इसके अतिरिक्त अन्य जापानी वस्तुओं पर अतिरिक्त कर लगाना, भारत के लिए हानिकर है, चाहे वह ब्रिटेन और यूरोप के लिए लाभप्रद ही क्यों न हो।

(रविवार, 11 सितंबर 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## महात्माजी का निर्वाण-व्रत

यह हमारा देश इतना अज्ञेय और रहस्यमय है कि इसका एक-एक कौतुक देखकर साधारण जन की आंखें उलटने लगती हैं। यहीं का एक राजा था जिसने स्वप्न में किसी को राज्य सौंप दिया था। तो जागकर उसे बुलाया, संपूर्ण राज्य अर्पण किया और दक्षिणा में स्त्री-पुत्र समेत स्वयं बिक गया। एक दूसरे ने अपना यौवन अपने वृद्ध कामी पिता को भेंट कर दिया। एक तीसरे की कहानी यहीं का एक कवि इस तरह कहता है—

*वंदौं अवध भुवाल, सत्य सनेह जेहिं राम प्रति।*
*बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृण इव परिहरेऊ।*

इसी तरह चौथे, पांचवें, छठे से सहस्रवें तक की गाथा गाने का यहां अवसर ही किसे है? प्रसंग आ गया इसलिए दो-तीन उल्लेख कर दिए गए। यह नवीन प्रसंग आया है यरवदा जेल के उस तपस्वी महात्मा का जो भारतीयों का हृदय-सम्राट कहलाता है और जिसे जानकार विदेशी भी भारत की संस्कृति का प्रतिनिधि कहते हैं। भारतीय संस्कृति क्या है, क्या नहीं इसकी चर्चा तार्किकों द्वारा अब भी होती ही रहती है पर यदि किसी को यह जानना हो कि वह वास्तव में क्या है तो वह यरवदा के उस महात्मा का यह आत्मनिर्णय—उपवास करते-करते प्राणविसर्जन करने का निर्णय सुन लें। इस निर्णय को भयंकर, कठोर आदि न कहकर केवल आत्मनिर्णय कहना भारतीय संस्कृति का पहला तकाजा है। इस तकाजे को वह तपस्वी ही निर्वाह सकता था जिससे पिछले 11 मार्च से ही इस निर्वाण-व्रत का अनुष्ठान किया था पर तब से अब तक किसी के कान में भनक नहीं पड़ने दी। 11 मार्च से 11 सितंबर तक छह महीने होते हैं। इस छह महीने में प्राण विसर्जन की कल्पना लिये हुए भी महात्माजी मानो उससे जड़ित नहीं हुए। इस बीच में वे न केवल अपना नित्य-नैमित्तिक कार्य करते रहे, वरन् मधुर, मोदमय और मीठे पत्र भी अपने मित्रों को लिखते रहे जिनमें कहीं भी आगामी घटना की परछाईं नहीं छू गई। केवल राजनीतिक रुग्ण नेताओं और उनके संबंधियों के प्रति जो पत्र आदि महात्मा गांधी ने लिखे हैं उनमें से कुछ प्रकाशित हो पाए हैं। इनके अतिरिक्त गांधीजी ने साहित्यिक पत्र भी लिखे हैं जिनमें काव्यचर्चा तक की है। और वह सब इस छह महीने के भीतर की बातें हैं। किसी के सिर पर यमराज का शूल लटक रहा हो, तब कौन निरामय रहकर काव्यचर्चा कर सकता है? पर महात्मा गांधी ने तो की। इसके प्रमाण की आवश्यकता होगी तो बहुत मिलेंगे। संदेह करने से कहीं ध्रुव सत्य पर बाल बराबर बल पड़ सकता है? महात्मा गांधी ने यह सब किया यह अटल सत्य आज नहीं तो कल प्रकट हो जाएगा। तब सब जान जाएंगे कि महात्मा गांधी के 'महात्मा' शब्द का अर्थ क्या होता है। इसलिए हम महात्मा के निर्णय को कठोर, भयंकर आदि उपाधियां न देकर केवल 'आत्मनिर्णय' कहते हैं।

महात्माजी का यह निर्वाण-व्रत है कि यदि सरकार अछूतों के संबंध में बनाए हुए अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चुनाव-नियम में परिवर्तन करके उन्हें सम्मिलित हिंदू जनता के साथ नहीं रखेगी तो महात्माजी निराहार प्राण त्याग करेंगे। इस संबंध में जो कुछ तर्कशास्त्र सर सेमुएल होर और प्रधानमंत्री मिस्टर मेकडानल्ड ने उपस्थित किया है वैसा, अथवा लगभग वैसा ही, हम लोग काफी सुन चुके हैं। देश के राष्ट्रीय प्रेस द्वारा सरकारी निर्णय के अनौचित्य पर जितनी कहा-सुनी हो चुकी है उसके बाद अब अधिक की जरूरत नहीं। पृथक निर्वाचन से सरकार ने राष्ट्रीय हित की हत्या करके उसे इस बहाने छिपाने की कोशिश की कि मुसलमानों को पहले ही से पृथक-निर्वाचन प्राप्त था इसलिए उसे बदलना ठीक न होता। अछूतों के प्रतिनिधि कम संख्या में पहुंचते इसलिए उन्हें कुछ अलग चुनाव-क्षेत्र देने पड़े। इसी तरह अनेक प्रकार के प्रवाद खड़े कर सरकार अपने निर्णय का मार्जन करती है। लेकिन इन मार्जनों के उपरांत भी देश का व्यापक असंतोष छिप नहीं सका। वह इतने दिनों से प्रेस और प्लेटफार्म से निरंतर प्रकट किया जा रहा था यद्यपि आज महात्माजी के निर्वाण-व्रत के आगे वह सब फीका पड़ गया।

अब सवाल यह नहीं है कि हम भी प्रमाण दें और तुम भी प्रमाण दो और समय नष्ट करते रहना। महात्मा के हृदय में अछूतों के प्रति जो अगाध अनुराग उमड़ता रहता है उसी का यह अन्यतम प्रतीक आज मृत्यु के आहृत के रूप में प्रकट किया गया। सवाल यह है कि गोलमेज में अछूतों के प्रतिनिधि बनकर जो महाशय वहां गए थे वे अब भी महात्माजी की भावना को समझेंगे या नहीं। हमें याद है कि गोलमेज की भरी सभा में डॉक्टर अंबेडकर ने महात्माजी को अछूतों के हित का विरोधी ठहराया था। उस समय महात्माजी ने उन्हें इसके लिए धन्यवाद दिया था। परंतु वहीं महात्माजी ने यह दृढ़ निश्चय भी प्रकट किया था यदि देश भर के अछूतों का मत लिया जाए तो वे (महात्माजी) ही अछूतों के प्रतिनिधि बनाए जाएं। उस समय इस चुनौती को सुनकर डॉक्टर अंबेडकर कन्नी काट गए और सरकार ने भी सुनी-अनसुनी कर दी। पर वह तो महात्माजी के आत्मा की ध्वनि थी। उन्होंने पिछले पच्चीसों वर्षों से अछूतों की सेवा की है और भांति-भांति से उन्हें कुलीन हिंदू जनता के समीप लाए हैं। देश के कोने-कोने में दरिद्र जनता के कंधा से कंधा लगाने का संदेश महात्मा गांधी ने पहुंचाया है या डॉक्टर अंबेडकर ने? देश की जातीयता का अर्थ भी न समझने वाले कुछ बहके हुए अछूतों को अपना पिछलग्गू बनाकर डॉक्टर अंबेडकर अछूतों के प्रतिनिधि बन जाएं और ब्रिटिश सरकार उन्हें उनका प्रतिनिधि मान ले, क्या यही महात्माजी की सेवाओं का पुरस्कार दिया गया? पर पुरस्कार की बात व्यर्थ ही हमारे मुंह से निकली।

हमारे देश को महात्मा गांधी का जीवन प्राणप्रिय है और उनका निर्वाण भारत की आत्महत्या से कम नहीं है, इसलिए इस संबंध में शीघ्र से शीघ्र देशव्यापी आयोजन करना ही होगा। सरकार अपना फैसला परिवर्तन नहीं करेगी। अब केवल एक उपाय है, देश भर की अछूत जनता और उसके नेता एक स्वर से सरकार पर जोर डालें कि वह अपना निर्णय लौटा लें। सरकार की शर्त यह है कि निर्णय के जिस अंश को बदलना हो उससे संबंध रखने वाला पूरा समुदाय अपील करे। पूरे समुदाय का क्या अर्थ है और सरकार को कैसे इत्मीनान होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कि यह पूरा समुदाय है—इन प्रश्नों का उत्तर सरकार को अविलंब प्रकाशित करना चाहिए। क्या डॉक्टर अंबेडकर से यह आशा की जाए कि वे राष्ट्र के इस आपात्काल में उसका साथ देंगे और अपने दल वालों के साथ अछूतों के पृथक चुनाव क्षेत्रों को अस्वीकार कर देंगे? आशा है कि वे इस अवसर पर अपना उत्तरदायित्व समझकर शीघ्र निर्णय करेंगे। यदि विपरीत निर्णय भी करना हो तो भी शीघ्र से शीघ्र करें क्योंकि 20 सितंबर को अब बहुत दिन नहीं हैं। उनके निर्णय के बाद देश की अछूत जनता को अपने कर्तव्य का निर्णय करना पड़ेगा और आवश्यकता पड़ी तो देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के करोड़ों अछूत भाइयों को अपनी इकट्ठी राय देनी होगी और उसे विलायत तक पहुंचाना पड़ेगा। महात्मा गांधी ने अछूतों को अछूतवत सारे देश को स्पृश्य बताकर नवीन जीवन दान दे दिया है, आज सारे देश का कर्तव्य है कि वह महात्माजी को नवीन जीवन दान देकर अपने को शतशः-सहस्रशः उपकृत करे और यह कार्य आज से, अभी से, आरंभ हो जाना चाहिए।

## बर्नार्ड शा का प्रवचन

बर्नार्ड शा संसार के क्रांतिकारी विचारक हैं। वस्तुओं और व्यक्तियों के संबंध में उनकी टीका-टिप्पणियां अद्‌भुत होती हैं। कहा जाता है कि महायुद्ध के उपरांत यूरोप को ऐसा अंतर्दृष्टि संपन्न विचारक नहीं प्राप्त हुआ। यूरोप की संपूर्ण परंपरा शा महोदय की टिप्पणियों से आक्रांत हुई है और होती जा रही है। साम्राज्यवाद की जड़ हिलाने में शा महाशय का कम हाथ नहीं है। भारत के संबंध में वे बहुत कम बोलते हैं पर पिछली मर्तबा महात्मा गांधी के विलायती गोलमेज में जाने के मौके पर वे महात्माजी से मिले थे और सहृदयतापूर्ण बातचीत की थी। उसके बाद फिर शा महोदय की कोई उल्लेखनीय सम्मति नहीं सुन पड़ी। इधर हाल में सहयोगी *लिबर्टी* के लंदन-संवाददाता के प्रश्न करने पर महाशय ने भारतीय स्थिति पर जो सूत्र रूप में प्रवचन किया वह यही था—'भारत की स्थिति उस अवस्था से बहुत आगे निकल गई है जब विदेशों से विज्ञप्तियां भेजने की बेवकूफी की जा सकती थी।' बाहरी देशों और महान प्रभावशाली व्यक्तियों की विज्ञप्तियां और संदेश किसी देश की नवीन राष्ट्रीय जागृति में सहायक हो सकते हैं, पर आगे चलकर एक ऐसा भी समय आ जाता है जब बाहरी संदेशों का कुछ मूल्य नहीं रह जाता और राष्ट्र अपने ही भीतर से अपनी शक्ति का उन्मेष करने लगता है। शा महाशय का प्रवचन है कि भारत अब उस स्थिति में पहुंच गया है। डॉक्टर एनी बेसेंट की होमरूल-लीग का एक मुख्य कार्यक्रम था विलायत में भारत का प्रचार करना, पर पिछली मर्तबा जब श्रीमती बेसेंट विलायत से भारत लौटीं तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारत को अपने ही देश में आंदोलन करना होगा—यद्यपि अब भी भारत के बहुत से नेता विलायती राय की कद्र करते हैं। उनमें स्वयं महात्मा गांधी भी एक हैं और अब भी ब्रिटिश अधिकारियों से पत्र व्यवहार आदि होते रहते हैं पर बर्नार्ड शा महोदय के प्रवचन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जान पड़ता है कि अब इन सबका समय बीत गया। अब भारत को अगर किसी का मुंह ताकना चाहिए तो केवल अपना।

## राजनीतिक कैदियों की स्थिति

सहयोगी *लीडर* ने अपने 13 अगस्त के नोट में प्रांतीय सरकार का ध्यान श्रीमती विद्यावती राठौर को आगरा जेल में 'सी' क्लास में रखने के अन्याय की ओर आकर्षित किया था। तब से अब तक उनके साथ व्यवहार में अंतर पड़ने का संवाद नहीं मिला, केवल वे आगरे से फतेहगढ़ जेल भेज दी गई हैं। शिकायतें आ रही हैं कि उनको यहां भी 'सी' श्रेणी में ही रखा गया है। यू.पी. कौंसिल में सरकारी तौर पर कहा गया था कि यदि सरकार को सूचना मिलेगी तो वह जांच-पड़ताल करके राजनीतिक कैदियों को उनकी सामाजिक स्थिति के अनुकूल स्थान देगी। क्या सरकार ने 13 अगस्त से अब तक जांच-पड़ताल नहीं की या उसे सूचना ही नहीं मिली। यदि सूचना ही नहीं मिली तो हमें यह जानने की उत्कंठा है कि सूचना मिलने का कौन सा जरिया काम में लाया जाए। क्या सरकारी पब्लिसिटी डिपार्टमेंट इस कार्यभार को अपने ऊपर लेगा और लेते-लेते कयामत का दिन आ पहुंचेगा?

## जर्मनी का राष्ट्रीय जागरण

जर्मनी हिंदुस्तान नहीं है। सौ वर्षों के राष्ट्रीय शासन के कारण जर्मन अपने पितृ देश पर मरना जान गए हैं। यूरोप के पिछले महासमर में उन्होंने अपूर्व जौहर दिखाकर संसार के दांत खट्टे कर दिए थे। चार-पांच वर्ष वीरतापूर्वक युद्ध करने के उपरांत एक दिन हठात जब जर्मनी ने शस्त्र-समर्पण कर दिया उस दिन युद्ध से भी अधिक तहलका मच गया था। हम हिंदुस्तानी लोग तो इसी कल्पना में मग्न हो गए कि जर्मनी के शस्त्र-समर्पण में भी कोई रहस्य है। बात यह है कि हम कल्पना करने में संसार के परे हैं। हममें इतना साहस कहां है जो हम सत्य का रुद्र रूप देख पाएं, इसीलिए तो हम कल्पना की मंजुल जाली बुना करते और समय-कुसमय उसमें फंसते रहते हैं। हममें से बहुत थोड़ों ने यह देखा कि जैसे-जैसे जर्मनी का अंतिम पैसा युद्ध में फुंकने के निकट आता जाता था वैसे-वैसे आग उमड़ती जाती थी। अंत में प्रदीप निर्वाण की भांति जर्मन-युद्ध की दीप-शिखा तेज होकर सहसा बुझ गई और संसार ने यह दृश्य परम विस्मय में पड़कर देखा। स्वप्न में भी जिसका गुमान न था उसे सामने आया देख लोग यह समझ ही न सके कि यह जर्मनी की जीत है या हार है। यद्यपि उस समय वह हार ही थी पर उसके भीतर भी जर्मन-राष्ट्रीयता का प्रवाह उमड़ रहा था। वह जर्मनी की व्यवहार बुद्धि थी कि उसने उसी क्षण युद्ध समाप्त कर दिया जिस क्षण उसके पास महासमर के योग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साधन नहीं रह गया। भावुकता का प्रदर्शन करके उसने अयोग्य साधनों से लड़ना पसंद नहीं किया, नहीं तो बहुत संभव था जर्मन सैनिक बुरी तरह मारे जाते और देश पर विदेशियों का शासन स्थापित हो जाता। देखने वाले देख सकते हैं कि जर्मनी की पराजय में भी उसकी देशभक्ति उसके साथ रही। जब मरणकाल में भी जर्मनों की बुद्धि ने अपने पितृ देश का साथ दिया तब यह समझना चाहिए कि देशभक्ति उनकी प्रकृति का ही एक अंग है।

इधर कुछ समय से जर्मन राजनीति में दलबंदियों का दौर-दौरा देखकर हम हिंदुस्तानी लोग यह समझने का भ्रम कर सकते हैं कि यह भी वही दलदल है जिसमें हम स्वयं फंसे हुए हैं। लेकिन यह समझना स्वप्न की तरह निस्सार है। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। हिटलर और वान पेपेन के नायकत्व में जो दो प्रमुख दल जर्मनी में संघटित हो गए हैं वे हिंदू और मुसलमानों की तरह मस्जिद के सामने बाजा बजाने के सवाल पर जूझ मरने वाले मूर्ख नहीं हैं, क्योंकि उनके अंतर में देशानुराग तरंगित हो रहा है। प्रत्येक दल यह चाहता है कि राष्ट्र का कल्याण वह सबसे अधिक करे। इसी प्रतियोगिता के कारण दलबंदी हो गई है। इस समय जर्मनी के सामने कई प्रश्न हैं। महासमर में शस्त्र समर्पण करने के कारण उसे बर्सेलिज के संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े जिससे उसे अपना सैन्यबल बहुत कम कर देना पड़ा और ऊपर से उस पर हर्जाने की रकम भी बांध दी गई। इससे न केवल उसकी आर्थिक दशा और सैन्य शक्ति क्षीण पड़ी बल्कि उसकी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को चोट पहुंची। जो जर्मनी युद्ध करता हुआ सम्मिलित यूरोपीय राष्ट्रों के छक्के छुड़ा रहा था वह आज यूरोप का द्वितीय श्रेणी का राष्ट्र समझा जाए, यह उसको सहन नहीं है। यह उसके राष्ट्रीय सम्मान का अपहरण करता है, इसलिए इसे वह स्वीकार नहीं करना चाहता। वह चाहता है कि युद्ध का हर्जाना न दे क्योंकि एक तो हर्जाना शब्द उसके राष्ट्रीय गौरव के प्रतिकूल है और दूसरे उससे देश की आर्थिक दुर्दशा बढ़ती है। वह यह भी चाहता है कि वह द्वितीय श्रेणी का राष्ट्र न कहलाए और इसके लिए दो ही उपाय हैं। एक तो यह कि वह अपना सैन्य बल बढ़ाना शुरू करे और बढ़ाकर प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों की बराबरी पर पहुंच जाए। दूसरा यह कि प्रथम श्रेणी के राष्ट्र अपना सैन्यबल घटाकर जर्मनी के बराबर बन जाएं। इस दूसरे का इकरार भी युद्धकाल के मित्रराष्ट्रों (फ्रांस, ब्रिटेन आदि) ने बर्सेलिज संधि में किया था। इसलिए जर्मनी सरकार ने लूसेन परिषद में उनसे हर्जाने की रकम मंसूख करा ली है और अब उसने यह दूसरा दावा पेश किया है कि वह प्रथम श्रेणी के राष्ट्र का अपना पद नहीं छोड़ेगा। सारांश यह कि जर्मनी महायुद्ध के पूर्व की अपनी प्रतिष्ठा, अपना प्रभाव और अपनी प्रगति प्राप्त करने का इरादा कर चुका है। बस इसी इरादे को पूरा करने के लिए हिटलर और पेपेन के नाजी और राष्ट्रीय दलों की स्पर्द्धा है। क्या हिंदू-मुस्लिम दलबंदी के मूल में भी ऐसा ही पवित्र भाव है? वह दिन सोने का होगा जिस दिन देशहित की समस्या पर भारत में इस प्रकार की दलबंदी खड़ी होगी।

इटली में मुसोलिनी एक आदमी का नाम है। वह आदमी अकेला सारे राष्ट्र पर शासन कर रहा है। तो क्या इसका इसका अर्थ यह है कि इटली की समस्त जनता ही सिर नवा कर मुसोलिनी की गुलाम बनी हुई है, जैसे बहुत से हिंदुस्तानी कट्टर मुल्ला लोगों के गुलाम बने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हुए हैं? नहीं, कदापि नहीं। हिंदू-मुस्लिम भेदभाव तो जग जाहिर है। सभ्य संसार में उसकी मिसाल दी जाती है। रूस में अभी-अभी कहा गया है कि दक्षिण अफ्रीका में कहीं-कहीं भारत के हिंदू-मुसलमानों का-सा वैमनस्य फैला हुआ है। इस कारण यहां सोवियत के सिद्धांतों का प्रचार होने में दिक्कत पड़ रही है। यह मिसाल हमारे लिए लानत है। पर यहां तो हम सिर्फ यही कह रहे हैं कि जर्मनी की घरेलू राजनीति में जो फूट दिखाई देती है यह हिंदू-मुस्लिम फूट नहीं है बल्कि जर्मनी के राष्ट्रीय जागरण के भिन्न-भिन्न स्वरूप मात्र हैं। ध्यान देने की बात यह है कि राष्ट्रपति हिडेनवर्ग जर्मनी के राजवंश (कैसर) के प्रेमी और सखा हैं। उन्होंने वान पेपेन के संरक्षण में जो सरकार स्थापित की है उसे एक प्रकार से कैसर-भक्त सरकार कहना चाहिए। इसके विरुद्ध हर हिटलर का नाजी दल कुछ विपरीत ही मंतव्य रखता है। इसके अतिरिक्त जो अन्यान्य दल हैं, वे भी बाहर से देखने पर बहुत ही विभिन्न दीख पड़ते हैं। पर जर्मनी का सौभाग्य है कि इस बाह्य विभेद के होते हुए भी उसके प्रत्येक दल नहीं, प्रत्येक नागरिक के हृदय में देशभक्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा है। जर्मनों का यह राष्ट्रीय जागरण उनके पितृ देश को सब प्रकार की प्रतिष्ठा और गौरव ही प्रदान करेगा। यही तो स्वतंत्र देश का उत्कर्ष है। जर्मन राजनीति का यही वह पाठ है जिसका क, ख, ग भी भारत अब तक नहीं पढ़ पाया।

यह प्रश्न भी उठ सकता है कि जर्मनी के राष्ट्रीय जागरण का यह संवाद, उसका यह दावा कहां तक उचित है कि वह फ्रांस और ब्रिटेन की बराबरी का पद प्राप्त करेगा। लेकिन यह उचित-अनुचित का प्रश्न नितांत व्यर्थ है क्योंकि जर्मनी का दावा हमारे डॉक्टर इकबाल का अल्टीमेटम नहीं है जिसकी कोई जड़-बुनियाद नहीं होती। महायुद्ध के समय से लेकर अब तक जो बात जर्मनी के पेट में रही है—आत्मगौरव की रक्षा की बात—वही आज इस दावे के रूप में सामने आई है। जर्मनी इतना मूर्ख नहीं हो सकता कि बिना अपनी शक्ति का अंदाज लगाए दावा पेश करता फिरे। निरस्त्रीकरण सम्मेलन के प्रेसीडेंट मिस्टर हेंडरसन ने कहा है कि जर्मनी के इस नए दावे से शांति का मार्ग और कठिन हो जाएगा। परंतु जर्मनी ने तो वर्सेलिज की संधि के अनुसार की 'प्रथम श्रेणी' के राष्ट्रों को सूचना दी है कि वे अपनी सैन्यशक्ति घटाएं। वर्सेलिज में यह कहा गया था कि जर्मनी से इस समय जो शस्त्र त्याग कराया जा रहा है वह सारे यूरोप के शस्त्र त्याग की पहली सीढ़ी और अग्रसूचना है। तो क्या यूरोप अब अपने इस वादे को पूरा नहीं करना चाहता? यही नहीं जर्मनी का यह भी कहना है कि पिछले लूसेन परिषद में भी उसे यह वचन दिया गया था कि अगस्त (1932) के बाद 'प्रथम श्रेणी' के राष्ट्र अपनी-अपनी सेना कम करने के संबंध में कार्यक्रम बनाएंगे। इससे तो मालूम होता है कि जर्मनी का नवीन प्रस्ताव न केवल उसके राष्ट्रीय सम्मान के अनुकूल है, वह विधान-विहित भी है। फ्रांस को जर्मनी का भेजा हुआ 'स्मरण-पत्र' (Aide-meiair) वास्तव में पूर्व प्रतिज्ञाओं की याद दिलाने वाला स्मरण-पत्र ही है। प्रसन्नता की बात है भारत के प्रायः सभी पत्रों ने जर्मनी के इस दावे का समर्थन किया है। इनमें वे पत्र भी शामिल हैं जो भारत के स्वराज्य के विरोधी हैं। सवाल यह है कि ये पत्र भारत के अधिकारों का विरोध करतें हुए जर्मनी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अधिकार का समर्थन क्यों कर रहे हैं। उत्तर यह है कि भारत और जर्मनी में फर्क है। जर्मनी का राष्ट्रीय जागरण लाजवंती की पत्ती नहीं है कि समाचार-पत्रों की सम्मतियों के स्पर्श से ही मुरझा पड़ेगी। वह तो पत्थर की चट्टान है जिसमें अपने ही देशवासियों का आत्मबल केंद्रित होकर अटूट बन गया है। बाहर की अनुकूल-प्रतिकूल लहरों का उस पर कुछ असर नहीं पड़ सकता। ईश्वर भी उसकी सहायता करता है जो आप अपनी सहायता करता है। 'हिम्मते मर्दा, मददे खुदा' कहा ही है।

(गुरुवार, 15 सितंबर 1932)

# क्या यह आत्महत्या है?

महात्मा गांधी का दुर्धर्ष व्रत क्या अधगोरे पत्रों और डॉक्टर अंबेडकर सरीखे लोगों के कहने के मुताबिक, 'अप्राकृतिक मृत्यु' और 'आत्महत्या' की चेष्टा कहा जा सकता है? क्या तर्क, मनोविज्ञान, धर्म, संस्कृति किसी आधार पर इस आरोप का समर्थन कोई कर सकता है? आत्महत्या क्या है—इसे वे लोग क्या समझेंगे जो यही नहीं समझते कि आत्मा क्या है जिसकी हत्या करना आत्महत्या करना है। आत्महत्या कौन करता है, कब करता है, भारत में आत्महत्या को किस दृष्टि से देखा जाता है, आदि साधारण आधार पर किए गए तर्कों का भी उत्तर देने वाला कोई नहीं है। अप्राकृतिक मृत्यु कैसी होती है, मृत्यु मात्र प्राकृतिक है या अप्राकृतिक आदि बातों तक डॉक्टर अंबेडकर की पहुंच होना बहुत दुस्तर है यद्यपि मुंह से निकाल देना सहज है। इस समय देश में शब्दों का इतना दुर्व्यवहार हो रहा है जितना शायद शासनाधिकार का भी नहीं होता होगा। प्रत्येक प्रकार के शब्द प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध प्रयोग कर दिए जाते हैं और किसी प्रकार के संकोच की कल्पना भी नहीं की जाती। एक आदमी है—थोड़ी देर के लिए भुला दिया जाए कि वह संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गांधी है—उसने प्रतिज्ञा की कि वह एक निश्चित सिद्धांत के लिए अपने प्राण दे देगा। वह सिद्धांत है हिंदू जाति की एकता स्थापित रखने का। वह स्वयं अपने को अछूत कहकर पुकारता है और अछूतों को अपनी हिंदूभावना में आबद्ध रखता है। वह वही आदमी है जिसने देश भर के अछूतों को अपना अंग समझकर अपनाया है और उनके आंसू पोछे हैं। उसने भरी सभाओं में सत्याग्रह किया है कि अछूतों को सबके साथ बैठने दो नहीं तो मैं उनके साथ बैठूंगा। उसने अपने आश्रम में छुआछूत का भूत भगा दिया है और दिन-दिन रात-रात भर जागकर अछूतों की तीमारदारी की है और ऐसे समय में बड़े से बड़े आदमी से मिलना अस्वीकार कर दिया है (देखिए प्रसिद्ध पत्रकार सर जॉर्ज स्लोकोंब के संस्मरण)। इस बात में रत्ती भर संदेह की गुंजाइश नहीं है कि वह व्यक्ति अपने को अछूत समझता है क्योंकि वह अछूतों के सब काम—जूता गांठना, मैला उठाना तक—अपने आप करता है (देखिए रवींद्रनाथ ठाकुर की गांधी को श्रद्धांजलि)। इतना ही नहीं, वह व्यक्ति ऐसा है जिसने अछूतों के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है (देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गांधी के *सत्य के प्रयोग*)। ऐसा एक व्यक्ति कह रहा है कि विदेशी ब्रिटिश शासन के अधिकारी ने जो निर्णय सुनाया है वह हिंदू जाति को काट-काटकर खंड-खंड कर देगा। उसने गोलमेज की पंचायत में प्रतिज्ञा की थी कि प्राण रहते ऐसा कभी नहीं होने देगा। अछूतों का हित उसे इतना प्रिय है कि वह उन्हें बहुल-प्रतिनिधित्व भी देने को तैयार है। ऐसी अवस्था में जब वह व्यक्ति अपने सिद्धांत पर मिटने की दृढ़ता दिखाकर संसार में एक नया आदर्श उपस्थित कर रहा है तब डॉक्टर अंबेडकर कहते हैं कि यह उसकी अप्राकृतिक मृत्यु है। भारत के विलायती एजेंट कहें तो कह सकते हैं पर प्रत्येक हिंदुस्तानी को पृथ्वी से लेकर आकाश तक वह आवाज गुंजा देने की आवश्यकता है कि इसको आत्महत्या नहीं कहा जाता। यह भारतीय ऋषियों का आत्मबलिदान है। यह शरीर निर्वाण-प्राप्ति है और यह संसार को भारत की सबसे बड़ी देन है जिसे वह इस महात्मा द्वारा दे रहा है।

विलायत और विदेशों में इन दिनों बात-बात पर आत्महत्या का बाजार गर्म है पर भारत में आत्महत्या पाप समझा जाता है। विलायती लोग इतना तो समझते ही होंगे कि उत्तेजनाशील, सिद्धांतहीन दुःखी व्यक्ति ही आवेश में आकर आत्महत्या करते हैं। महात्मा गांधी जैसे संयमी पुरुष के लिए उत्तेजना संभव ही नहीं है। उनके निश्चित सिद्धांतों ने उनको संसार में विश्रुत सिद्धांतवादी सिद्ध कर दिया है। गांधीजी को दुख किस बात का हो सकता है, उनकी मुसकान तो समुद्र पार तक ख्यात हो चुकी है। संसार के श्रेष्ठ साहित्यकार रोमा रोलां, धर्मगुरु एंड्रूज और होम्स गांधी-प्रकृति का परिचय संसार को करा चुके हैं और अब यदि उसी प्रकृति का एक सर्वोत्कृष्ट स्वरूप संसार के सामने आ रहा है तो उसे डॉक्टर अंबेडकर ही आत्महत्या कह सकते हैं, कोई दूसरा समझ वाला आदमी नहीं कह सकता। क्या डॉक्टर अंबेडकर भारतवासी हैं और उन्होंने अब तक भारत में रहकर उसकी आत्मा का यही परिचय प्राप्त किया है? न भारतवासी सही डॉक्टर अंबेडकर क्या इतना भी नहीं जानते कि आत्महत्या दुःख से छुटकारा पाने के लिए शीघ्रातिशीघ्र जीवनसंवरण करने के साधनों से की जाती है। आमरण उपवास कर घुलते-घुलते प्राणत्याग करने में एक ऐसी शक्ति निहित है जो आत्महत्या करने में है ही नहीं। क्या उस शक्ति का अनुभव करने में भी वे समर्थ नहीं हैं। अथवा वे अनुभव ही नहीं करना चाहते?

यदि सच पूछा जाए तो महात्माजी का यह व्रत भारतवासियों में भारतीयता के प्रति एक नवीन श्रद्धा और विदेशियों में भारत के प्रति एक नवीन जिज्ञासा उत्पन्न करेगा। जो कभी नहीं देखा गया वह आज देखा जा रहा है। वे गांधी ही हैं जिन्होंने पिछले छह महीनों से यह प्रतिज्ञा कर रखी है और जिनके मुख का स्मित लेशमात्र विकृत नहीं हुआ। यह महात्मा ही हैं जिन्होंने इस बीच में कितनों ही से पूछा तुम कैसे हो, तुम कैसे हो और यह किसी को नहीं बताया कि हम कैसे हैं, हमने क्या किया है? निर्लेप आत्मा की झलक यहीं देख ली जा सकती है। इसी आत्मा में, परमात्मा में अभेद है। गांधीजी आज अद्वैत के साकार उदाहरण बनकर हमारे बीच में विराज रहे हैं—हम क्यों न कृत-कृत्य हों।

आत्मा का हनन आत्महत्या है। जो अपने को भूल कर, दूसरों के फंदे में पड़ा हुआ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह आत्महत्या करता है। जो ऊपर की दुनिया के मोहक आवरण को भेदकर भीतर के स्वरूप को नहीं देखता वह आत्महत्या करता है। शब्दों का प्रयोग करते हुए यह नहीं समझना कि शब्द ब्रह्म है और उसके साथ बलात्कार करता है, वह आत्महत्या करता है। जिसने संसार का रहस्य समझ लिया है, जो जीवन का कार्यक्रम प्रत्येक क्षण पूरा किए मुसकराता रहता है वह क्या आत्महत्या करेगा। वह तो *गीता* के अनासक्ति योग का स्वयं ही व्याख्याता, स्वयं ही व्याख्यान है। बौद्ध और हिंदू धर्मों का तार्किक संप्रदाय बहुत दिनों से यह उलझन खड़ा किए हुए है कि सशरीर निर्वाण प्राप्ति संभव है या नहीं। आज गांधी ने इस उलझन को सुलझा देने का उपक्रम किया है। आत्मा को शरीर से अलग निरामय, निर्द्वंद्व जिसे देखना हो वह गांधीजी के छह महीना पहले से लेकर अब तक के क्रिया-कलाप को देख ले। संसार ही आज उन्हें देख रहा है, डॉक्टर अंबेडकर तो अदने आदमी हैं। गांधीजी आत्महत्या नहीं कर रहे, अपने व्रत द्वारा सारे देश की आत्मरक्षा कर रहे हैं। समझने वाले सब समझते हैं।

## हिंदू पूजा पद्धति

बंगाल के मासिक *प्रवासी* के बैसाख अंक में डॉक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर का 'पत्र धारा' शीर्षक प्रबंध प्रकाशित हुआ है जिसमें एक स्थान पर आप लिखते हैं कि हिंदू लोग देवता को कपड़ा पहनाते हैं, स्नान कराते हैं, यह सब व्यर्थ है। व्यर्थ ही नहीं, अनिष्टकर भी है। देव प्रतिमा के निकट बकरे की बलि बोलते हैं, यह अज्ञान को प्रश्रय देता है। इसी सब पाप का फल है कि हम लोग विदेशियों के हाथ से मार खा रहे हैं। हिंदू लोग जिस भाव से पूजा करते हैं उस भाव से पूजा करने की अपेक्षा नास्तिक होकर विश्वमानव की सेवा करना अच्छा है। इस तरह के नास्तिक यथार्थ भक्त हैं। रवींद्रनाथ के इन विचारों का खंडन करते हुए श्रावण के *भारतवर्ष* में श्रीयुत बसंत कुमार चट्टोपाध्याय महोदय ने एक लेख की अवतारणा की है जो युक्तियुक्त हुआ है। बसंत बाबू के तर्क की रीढ़ यह है—ईश्वर को प्राप्त करना और 'विश्वमानव की सेवा' करना दो भिन्न उद्देश्य हैं। देवता को वस्त्र पहनाना, स्नान कराना पहले उद्देश्य की सिद्धि करते हैं और अस्पताल चलाना, स्कूल चलाना दूसरे उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। देवता को जो वस्त्र पहनाया जाता है क्या वह पुरोहित की धर्मप्राण पत्नी की लज्जा ढंकने के काम नहीं आता। जो जल प्रतिमा पर चढ़ाया जाता है वही असंख्य छोटे-छोटे जीवों को प्राप्त होता है। तब ऐसा कहना कि यह नहीं, यह उपाय ईश्वर पूजा का है, केवल सांप्रदायिक संकीर्णता है—

*ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।*
*मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥*

(गीता 4/11)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विश्वमानव की सेवा का उद्देश्य रखकर ही जो सेवा की जाएगी एक तो उसका क्षेत्र जीव जगत की सेवा के समान विस्तृत न होगा और दूसरे उसमें अहंकार के प्रवेश को अवसर मिलेगा। इस अहंकार को दूर करने के लिए ही प्रत्येक, सेवा को ईश्वर के चरणों में अर्पण करने, ईश्वर में तल्लीन होकर अपने को भुला देने की आवश्यकता है और इसीलिए ईश्वर पूजा का विधान है। संसार की सभी जातियां—ईसाई, मुसलमान, ब्रह्मसमाजी आदि अपने-अपने देवालय बनाकर पूजा करती हैं। क्या देवालय में रुपए खर्च करने से 'विश्व मानव' की सेवा में विक्षेप नहीं पड़ता। यदि ऐसा हो तब तो सोवियत रूस के नास्तिकवाद को ही सबसे उत्तम मानव सेवा समझा जाएगा जो देवालयों को तुड़ा-तुड़ा कर सिनेमा और थिएटर बना रहा है। ईश्वराराधन का उद्देश्य 'विश्वमानव सेवा' से कहीं अधिक व्यापक है। इसके साक्षी परमहंस रामकृष्ण हैं, जिन्होंने जीवों के शारीरिक दुःखमोचन का व्रत नहीं लिया था परंतु उनकी साधना के फल से भारत का परोपकार व्रत विशेष रूप से विस्तृत हुआ है। यह भारत की ही पूजापद्धति है कि देवालयों के पास भिखारियों की भीड़ लगी रहती है। यदि भिखारी यह समझते कि हिंदू केवल देवताओं को कपड़े पहनाते और स्नान कराते फिरते हैं तो वे तीर्थों और देवालयों में इतनी बड़ी संख्या में किस आशा से एकत्र होते? भारतीयों की अतिथि-परायणता को विदेशी यात्रियों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। रह गई देव प्रतिमा के सामने बलि चढ़ाने की बात। यह शास्त्रकारों की एक मनोवैज्ञानिक दक्षता है। वे जानते थे कि मनुष्य प्रकृति ऐसी है कि वह मांस, मद्य आदि को पूर्णतः छोड़ नहीं सकेगी। अतः उन्होंने विधि बना दी कि जो कुछ खाओ देवार्पण करने के बाद। इसका फल यह हुआ है कि भारत में मांसाहार अन्य देशों की अपेक्षा कम है। यहां का वैष्णव संप्रदाय तो बिलकुल ही निरामिषभोजी बन गया है। निरपेक्ष भाव से विचार करने पर यह समझा जाएगा कि हिंदू धर्म तथा हिंदुओं का अधःपतन विदेशियों द्वारा मांस खिलाने के कारण नहीं है। इसके अन्य कारण हैं।

इन दोनों के पक्ष-विपक्ष में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। किसी आगामी लेख में इस पर हम भी विचार करेंगे। यहां हमने केवल बांग्ला साहित्य में होने वाले एक मनोरंजक विवाद की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

## विरोधियों का भ्रम

### *भारत की प्रकृति नहीं पहचानते—मनुष्य की प्रकृति भी नहीं पहचानते*

'महात्माजी जीवित हैं तो हम सब भी जीवित हैं, उनके उठ जाने पर श्मशान में रहेगा ही कौन?' मर्माहत राष्ट्र की इस वाणी पर फिकराकशी करते हुए कितने ही यह सिद्ध करने लगे हैं कि श्मशान में रहने योग्य जीव भी निकल ही आएंगे, उनमें से अनेक तो अधिक सुख और सुविधा के साथ रहने का स्वप्न देख रहे हैं। कोई मरे, कोई मौज करे, का व्यंग्य इनके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अक्षरशः सत्य होता हुआ भी पूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि इससे उनकी वृत्ति का यथार्थ परिचय नहीं मिलता। महात्माजी के मरण-व्रत से बज्राहत होकर जब सारा देश सन्न पड़ा हुआ है तब ये जीव भांति-भांति के व्यंग्य करते हुए सन्नाटा तोड़ रहे हैं। 'यह झांसेबाजी है, लाका है, धमकी है, आत्महत्या की चेष्टा है, अप्राकृतिक मृत्यु है' जितने जीव हैं उतने ही स्वर निकाल रहे हैं। इनको धर्म, मनुष्य स्वभाव, मनोविज्ञान आदि का तो क्या पता होगा, समय-कुसमय भी वे नहीं पहचानते। भारत में रहते हुए, भारत का खाते हुए भी जो विदेशी-वातावरण में पल रहे और वहीं के गीत गा रहे हैं, वे उतने आश्चर्य के विषय नहीं हैं जितने आश्चर्य के विषय स्वयं भारत की पैदाइश, यहीं की धार्मिक सभ्यता में पले हुए, हमारे ही पवन में प्राण, भूमि में जीवन पाने वाले देशवासी हैं, जिनकी वृत्ति देखकर हैरत में पड़ना पड़ता है। यदि किसी इतर व्यक्ति के लिए कहा जाए कि यह बेईमान आदमी अपने हठ पर अड़ा हुआ मरने को तैयार है, तब भी तत्काल ये प्रश्न उठ पड़ते हैं कि ऐसा कौन बेईमान आदमी है जो हठी भी है और वह भी इतना कि मरने को तैयार। जब कोई आदमी मरने की तैयारी कर रहा है तब वह और चाहे जो हो बेईमान नहीं हो सकता, छली-कपटी तो क्या होगा? किसी का सिद्धांत भ्रमपूर्ण हो, पर उस सिद्धांत के लिए मर मिटना विरलों ही से हो सकता है। मनोविज्ञान के इस क, ख ग को भी जो नहीं समझते वे या तो असाध्य मूर्ख हैं या उनकी ईमानदारी में फर्क है।

भारत के गोरे और अधगोरे आज इतने दिनों से हमारे देश में पल रहे हैं पर यहां की रुचिर वायु, पौष्टिक भोजन और कमनीय पुष्पवाटिकाओं का ही स्वाद लेते हुए ही ये जीवन व्यतीत कर देते हैं, यहां के जीवन की आंतरिक चेतना तक इनकी पहुंच नहीं होती। यहां की संस्कृति की नस पहचानना उनके लिए, मौजूदा हालत में, संभव नहीं है। इन लोगों को यहां जो भोग-विलास प्राप्त है वह इन्हें ऊपर ही ऊपर बहला रखता है। वे यह नहीं जान सकते कि एक भारतवासी कब किस प्रसंग पर किस प्रकार अनुभव करता है और किस रूप में आचरण करने को तैयार हो सकता है। यद्यपि ये गोरे लोग इस बात का ढिंढोरा पीटते आ रहे हैं कि भारत की सुप्त चेतना को जगाकर साहित्य, कला, धर्म, विज्ञान की ओर आकृष्ट करने का श्रेय उन्हें प्राप्त है परंतु दुःख है कि दो-चार उन्नतमना पुरुषों को छोड़कर सामूहिक रूप में गोरी जाति भारत से बिलकुल अलहदा है। तभी तो आज जब महात्मा गांधी ने निर्वाण-व्रत का उद्यापन किया है तब गोरे पत्रों के मुखपृष्ठ 'गांधी ने आत्महत्या करने की धमकी दी' आदि बड़े-बड़े कज्जल अक्षरों से काले किए जा रहे हैं। भारत की धार्मिक भावना को न समझकर चुप हो रहना एक बात है पर इन गोरे पत्रों को उस पर चोट करने में भी आनंद आता है और यह सब वैसी अवस्था में हो रहा है जब ब्रिटिश शासन के आरंभ से ही प्रतिज्ञाएं और घोषणाएं की जाती आ रही हैं कि किसी भी व्यक्ति को धार्मिक परतंत्रता में नहीं रखा जाएगा और न उसकी धर्म भावना पर हमला किया जाएगा।

डॉक्टर अंबेडकर यह नहीं कह सकते कि वे भी इसी गोरी जाति के हैं। परंतु इस शासनचक्र ने भारत में अवश्य ही एक ऐसा दल—हम तो कहेंगे एक ऐसी जाति—तैयार कर दी है जो केवल रक्त-मांस में ही गोरी नहीं है पर जिसका शेष संपूर्ण जीवन-चक्र उसी सांचे में ढल गया है। देश के लिए यह अनिष्ट का केतु उदय हुआ है इससे त्राण पाना विशेष रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से कठिन है। आज जो ब्रिटिश प्रधानमंत्री जरूरत से ज्यादा यह रट लगाए हुए हैं कि जब भारतवासी स्वयं किसी निश्चय पर नहीं पहुंच सके तब लाचार होकर, दुःखपूर्वक हिचकते हुए अनिच्छा से यह दुस्तर भारत अपने निर्बल कंधों पर लिया, तब हम अच्छी तरह से समझते हैं कि भारत में पैदा हुए उसी अभारतीय दल की बदौलत ब्रिटिश अधिकारी यह सब उदात्त उपकार करने को प्रस्तुत हो सके हैं। इस भारतीय दल में अधिकांश ऊंचे ओहदों वाले पुरुष वर्ग होते हैं जो देश का प्राण-स्पंदन न पहचानकर अपने अधिकारियों के इशारों पर नाचते रहते हैं। वे भारत की पतित निर्धन जनता के बीच साधन संपन्न होने के कारण उन्नत-मस्तक जीवन व्यतीत करते हैं और यहां की धारणा भूमि को पहचानते ही नहीं। ग्लानि का विषय तो यह है कि ये ही शासकों के भारतीय प्रतिनिधि भारतीय जनता के प्रतिनिधि भी कहलाते हैं और राजनीतिक जीवन में उनके अगुआ बनने का सेहरा पहने फिरते हैं।

कुमार शिवशेखरेश्वर राय हिंदुओं के नेता कहलाते हैं। आपने यह विज्ञप्ति निकाली है कि आप महात्माजी के प्रशंसक हैं। आप कहते हैं कि 'महात्माजी ने यह जो व्रत किया है वह उनकी हरैली नीति है।' इसका अर्थ जहां तक हम समझ सकते हैं, यही है कि जब महात्माजी ने समझ लिया कि उनका आंदोलन दबा जा रहा है और वे जेल में पड़े हुए उसे उत्तेजना नहीं दे सकते तब यह नया तरीका निकाला है। यदि यह अर्थ ठीक है तो हम समझ गए कि राय महोदय सचमुच गांधीजी के 'प्रशंसक' हैं। प्रशंसा का यही तो अर्थ ही है कि 'प्रशंसक' बनकर अपने निंदात्मक वक्तव्य को पुष्ट बनाया जाए। पर जो व्यक्ति ज्ञानतः किसी दूसरे व्यक्ति के विकास-रहस्य को नहीं समझ सकता वह हमारे हिंदुस्तानी अर्थ में उसका प्रशंसक कहलाने का अधिकारी नहीं। भेड़ियाधसान में वह 'प्रशंसक' भले ही बन गया हो। गांधीजी पर 'हरैली नीति' व्यवहार में लाने का आरोप करने के पहले, यह जान लेने की जरूरत थी कि महात्माजी की प्रतिज्ञा आज की नहीं है जब वे जेल में बिना अदालती फैसले के नजरबंद करके आठ महीने से रख छोड़े गए हैं। यह प्रतिज्ञा ऐन गोलमेज सम्मेलन के समय की है जब गांधीजी ने कहा था कि अछूतों को पृथक निर्वाचन दिया जाएगा तो मुझे जीवन देकर उसका विरोध करना पड़ेगा। यही प्रतिज्ञा फिर तारीख 11 मार्च को सर सेमुएल होर को पत्र लिखते हुए दोहराई गई। 11 मार्च वह समय था जब कांग्रेस का आंदोलन अपने शीर्ष पर था। उस समय महात्माजी को तो क्या, कांग्रेस के किसी भी नेता को 'हरैली नीति' पर चलने का कोई कारण नहीं था। उस समय की महात्माजी की प्रतिज्ञा उनके महत्व का ही प्रमाण है। यह उनकी विजयिनी नीति की साक्षी है, न कि हरैली नीति की। राय महाशय यदि इन तारीखों का हवाला समझ लेते तो इस प्रकार की विज्ञप्ति प्रकाशित करने में उन्हें अवश्य हिचक होती, विशेषकर जब वे अपने को गांधीजी का प्रशंसक समझते हैं।

सार यह कि यदि कोई भारत की और भारतीय महात्मा की प्रकृति नहीं पहचानता तो उसे कम से कम मनुष्य के नाते मनुष्य की प्रकृति तो समझनी ही चाहिए। पर विरोधियों ने इतना भी नहीं समझा।

(रविवार, 18 सितंबर 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# गांधी की अमृत वाणी

पिछले तीन-चार दिनों की महात्मा गांधी की अमृतवाणी का पेय पान करके अपूर्व तृप्ति मिली। अब प्रज्वलन दूर हो गया और चित्त प्रशांत है। इस बात की चिंता नहीं कि आगे क्या होगा, अभी तो अंतःकरण से उठी, दूध की धुली-सी मुसकान छिपाए नहीं छिपती। शिशु ने आज बहुत दिनों के उपरांत माता का स्तनपान किया है और इसी मोद में बिना मुंह पोंछे किलक रहा है। हम भारतीयों ने वर्षों के राजनीतिक पचड़ों के बाद आज वह स्वर सुना है जो कभी का सुना था किंतु बहुत दिनों से अनसुना बना रहा है। अपनी ही खोई वस्तु-सी, विरह की अपनी ही पूर्व स्मृति-सी प्रत्यक्ष होकर महात्मा की दिव्यवाणी एक विलक्षण चेतना उत्पन्न कर रही है जिसे केवल सुखमय चेतना कहने से जी नहीं भरता। वह क्या है यह हम नहीं कह सकते। पर हम देखते हैं कि उसे सुनकर जैसे हम अछूतों के राजनीतिक प्रश्न को भूल गए हैं, महात्माजी के व्रत और उस संबंध की अनेक दुश्चिंताओं से छुट्टी पा गए हैं और जैसे स्वयं महात्माजी भी हमें दीख नहीं पड़ते। हम अनुभव करते हैं जैसे महात्माजी की वाणी असंख्य अदृश्य विद्युत कणों में परिणत होकर चारों ओर दूर-दूर छा रही है और हम अपने को उससे अलग नहीं कर पाते। इसके पहले हम अपना ध्यान कई समस्याओं की ओर लगाना चाहते थे। हम सोचते थे पश्चिम के राजनीतिक क्रांतिकारियों के उद्‍गारों में कितना ज्वलित वेग, समाज सुधारकों में कितना विकट ओज और राष्ट्रीय नेताओं में कितना प्रकांड उत्साह होता है पर हमारे इस महात्मा में वह सब कुछ नहीं। यह बहुत छोटे-छोटे और नर्म-नर्म वाक्य कहना जानता है, उनसे क्या होगा। इसके पास विरोधियों का विरोध करने के लिए न दल-बल है, न बुद्धि-बल, न तर्क-बल। हम इच्छा करते थे कि इस प्रकार की अन्य धाराणाओं को धारण करके हम महात्माजी के व्रत से निरपेक्ष हो जाएं और अपना मानसिक बोझ हल्का करें। पर उस प्रकार से जो संभव नहीं हुआ वह गांधीजी की वाणी सुनने से तत्क्षण सिद्ध हो गया और इस समय हम अपने को महात्माजी की स्वरसरिता में स्नान कर स्वच्छ शांत पा रहे हैं।

# ईश्वर से लड़ाई

सबसे प्रथम शांतिप्रद बात जो महात्माजी के कंठ से निकली है यह है कि उनका यह व्रत 'ईश्वर से लड़ाई' है। यह इतनी तत्व तक पहुंची हुई वार्ता है जो एक भारतीय संत के ही मुख से निकल सकती थी। यह इस आसानी से, इस अत्यंत अचिंतित भाव से—महात्माजी के मुख से निकल गई है कि हम इसे उनकी आध्यात्मिक-साधना का स्वयंसिद्ध प्रमाण मानते हैं। 'यह लड़ाई ईश्वर से है।' इसका अर्थ पश्चिम के विचारक लोग बड़ी कठिंनाई से समझ सकेंगे। महात्माजी ने अपने व्रत को जिस ऊंचे धरातल पर पहुंचा दिया है वह भारत का अपना धरातल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। इसलिए आज भारतवासी अपनी संस्कृति का अपना रूप देखकर कृतकृत्य हो रहे हैं। पश्चिम में 'ईश्वर से लड़ाई' करने का अर्थ कुछ और ही लगाया जाता है क्योंकि वहां ईश्वर से शैतान की लड़ाई हुआ करती है। पर हमारे यहां वैसा नहीं होता। भारतवासी अपने आदर्श को समझता हुआ ईश्वर से लड़ता है, ईश्वर के ही आदेश से। यह शब्दजाल नहीं है, अनुभूति की बात है। मानवीय समस्याएं भारतीय दृष्टि से केवल रूपक हैं, वे केवल बहाने हैं, इसीलिए वे मिथ्या समझी गई हैं और भारतीय महात्मा उस मिथ्या को लेकर तूल-तकरार नहीं कर सकता। आज इतने दिनों से अछूत-समस्या महात्मा गांधी की आंखों को खटक रही थी पर उन्होंने उसके लिए कभी ऐसा व्रत नहीं लिया। बात यह है कि चिंतन के ऊंचे स्तर पर पहुंचकर, जो कुछ करते धरते हो, देते-लेते हो सब मेरे लिए करो-धरो, दो-लो, यह *गीता* वाक्य आपसे आप चरितार्थ होने लगता है, उसके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। तब तो ईश्वर के ही आदेश से ईश्वर से ही लड़ाई होती और उसी के कहने से उसी से मेल होता है। यह बड़ी विचित्र बात है, पर तब तक जब तक अहंकार का लय नहीं हो जाता। उसके लय होने पर फिर जीव-जगत जीव-जगत के रूप में नहीं रह जाता, भगवान की एक अखंड शाश्वत लीला भर रह जाती है। तब मनुष्य अपनी मनुष्यता और मानवीय समस्याओं की व्याख्या 'मनुष्यता' और 'मानवीय समस्या' की शब्दावली में नहीं कर सकता क्योंकि उसके लिए इनका कोई पृथक अस्तित्व नहीं रह जाता। सब-कुछ उसकी ही लीला के रूप में होता रहता है। महात्माजी का व्रत 'ईश्वर से लड़ाई है' यह भी उसी लीला का एक दृश्य है। जब उनकी लड़ाई ईश्वर से है तब हम लोगों को दुःखित होने, निराशा प्रकट करने अथवा सहमत-असहमत होने का कहीं अवसर नहीं है। हमारा मोह व्यर्थ है क्योंकि मिथ्या है। इसी को समझाने के लिए कहा गया कि लड़ाई ईश्वर से है। इसे समझ लेने पर हमारी दुश्चिंता दूर हो गई।

## विरोधियों को नहीं, मित्रों को प्रभावित करना है

दूसरी बात जो प्रारंभ में बड़ी विस्मयजनक पर अंत में महात्माजी के अत्यंत अनुकूल है, यह है कि उनका यह व्रत विरोधियों पर प्रभाव डालने के लिए नहीं बल्कि मित्रों को प्रभावित करने के लिए है। इस पर पहले तो शंका होती है कि यदि व्रत का उद्देश्य मित्रों को ही प्रभावित करना है तो इसकी आवश्यकता ही क्या थी? मित्र तो पहले से ही प्रभावित हैं। आवश्यकता तो है विपक्षियों को अपने पक्ष में लाने की और एकमत होकर सरकार पर प्रभाव डालने की। परंतु महात्माजी को इसकी आवश्यकता नहीं है। वे यह नहीं चाहते कि डॉक्टर अंबेडकर अपनी भूल स्वीकार कर लें बल्कि वे चाहते हैं कि जो ऊंचे वर्ण के कहे जाने वाले हिंदू हैं और जिन्हें उनपर विश्वास है वे तत्काल उनकी इच्छा की पूर्ति करने में जुट जाएं। महात्माजी के इस कथन के साधारण अर्थ दो हैं। एक तो यह कि वे अछूतों के राजनीतिक पृथक्करण को उनके सामाजिक पृथक्करण की एक उपशाखा मात्र मानते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और इस बात की लेशमात्र चिंता नहीं करते कि यदि राजनीति के सूत्रधार अपने निर्णय पर अड़े रहे तो महात्माजी को अपने प्राण अर्पित कर देने होंगे। वे देश की उस निष्क्रियता का नाश करना चाहते हैं। इसी के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बलि बद दी है—जो समझती हुई भी नहीं समझती और अपने कर्तव्य का ज्ञान रखती हुई भी आलस्यनिद्रा में पड़ी हुई है। महात्माजी का यह व्रत समाज सुधारकों की चेतना को उन्मिषित करने-जगाने, उन्हें कार्यक्षेत्र में लाने का है, न कि हठवादियों के हठ को दूर करने का। यह सवाल दूसरा है कि हठवादी अपना हठ नहीं छोड़ेंगे तो महात्माजी की हत्या हो जाएगी। पर यदि महात्माजी को इसकी चिंता होती तो वे ऐसे व्रत का अनुष्ठान ही क्यों करते? तात्विक दृष्टि से इसका अर्थ यह है कि महात्माजी सात्विक कर्मकांड की ज्योति जगाना चाहते हैं, चाहे ऐसा करते हुए स्वयं उनका प्रदीप निर्वाण ही क्यों न हो जाए। उनका सिद्धांत है कि जो सत्कर्म है वह करणीय है। उसमें आलस्य करना इतना बड़ा अधर्म है कि उसके विरुद्ध उन्हें जीवन अर्पण करने की प्रेरणा तक हुई है। भारत में इस समय सद्विचारों की कमी नहीं पर सुक्रिया की बहुत बड़ी कमी है। इसी की पूर्ति करना व्रत का अर्हणीय उद्देश्य है।

## न्याय की तुला पर

महात्माजी की यह अंतिम उक्ति हृदय को उत्फुल्ल कर देती है—'मैंने अपने प्राणों को न्याय की तुला पर तुलने के लिए फेंक दिया है।' वह न्याय की कौन सी तुला है? क्या ब्रिटिश न्याय की या किसी भी मानवीय न्याय की तुला? नहीं, जब उनकी लड़ाई ईश्वर से है तब न्याय की तुला भी अलौकिक ही होगी। वह तुला वही है जिसके सहारे संसार टिका हुआ है—यह सुख-दुःख, न्याय-अन्याय का मिथ्या संसार जिसके सामने तुच्छातितुच्छ है। संसार के सत-असत के ऊपर जो कोई तात्विक सत् की तुला है तो उसी पर महात्माजी ने अपने प्राणों को फेंक दिया है। महात्माजी के पहले भी जगत के कई स्मरणीय साधु इस सत् की तुला पर अपने प्राणों को फेंक चुके हैं पर यह हमारा परमभाग्य है कि एक बार फिर एक भारतीय संत इस तुला पर अपने आपको फेंक रहा है। यह हमारे लिए चिंता और मोह का विषय नहीं है बल्कि अंतर की आंखों से देखने का विषय है कि तुला किस ओर झुक रही है। वह अवश्य-अवश्य सत् की ही ओर झुकेगी, इसमें किसी भी भारतवासी को अंशमात्र संदेह नहीं हो सकता और न हमें ही है।

## प्रेरणा

गांधीजी की अमृतवाणी सुन और समझ लेने के बाद एकमात्र प्रेरणा यही होगी कि हम उस सत्क्रिया को, उसी संदर्भ में अपनावें जिसे हमने जड़ता और आलस्य में पड़कर छोड़ रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमने जिसको समझते हुए भी नहीं समझा उसी नासमझी का तत्काल त्याग करें यही गांधी की पुकार है। संभवतः यही उसकी एकमात्र पुकार है। इसी के लिए प्रमुखतः वह अपने को अर्पण कर रहा है। उसके इस बलिदान का क्या प्रभाव उसके देशवासियों पर पड़ा यही वह यरवदा के बंदीगृह से बार-बार देख रहा है और अंत समय तक देखता रहेगा।

(रविवार, 25 सितंबर 1932)

# सफल व्रत

पूना के समझौते को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने स्वीकार कर लिया और महात्माजी ने अपने व्रत का पारण किया। महात्माजी की क्षीण होती हुई प्राणशक्ति का भयावह समाचार उनके डॉक्टरों की विज्ञप्ति से सारे देश को कंपित कर चुका था। चक्रवती राजगोपालाचारी महोदय ने व्रत करते हुए गांधीजी की जीवन-अवधि दस ही दिन ठहराई थी जिनमें छह दिन समाप्त हो चुके थे। ईश्वर को धन्यवाद है जिसने राष्ट्र की ग्रह टाल दी और महात्माजी को हमारे बीच बना रखा। जिसको वह रखना चाहता है उसे कोई मार नहीं सकता। संसार भर बैरी बनकर भी उसका बाल बांका नहीं कर सकता। उसी की इच्छा से महात्माजी की रक्षा हुई है। व्रत के आरंभ में स्वयं महात्मा ने ही कहा था कि यदि ईश्वर को मंजूर है कि मेरे शरीर से देश की सेवा हो तो मेरे अखंड व्रत की प्रतिज्ञा भी मेरा जीवन नहीं हर सकेगी। यह सत्य है कि जिसके अनुशासन से यह दुःसाध्य कार्य इतना शीघ्र संपन्न हो सका है उसे अभी महात्माजी को उपादान बनाकर अपनी इच्छा की और भी पूर्ति करनी है। व्रत की दृष्टि से इतना सफल व्रत देखा-सुना नहीं गया। कहा जाता है कि जिसमें जितना सत होता है उसके व्रत का उतना ही माहात्म्य होता है। तब महात्माजी के व्रत के व्यापक प्रभाव को देखकर उसके महान् सत का अनुमान लगा लिया जा सकता है। कौन कल्पना कर सकता था कि पलक मारते ही इतना बड़ा उलट-फेर कर डाला ... विशेषकर ऐसे अवसर पर जब एक दूसरे ही आंदोलन में लटके हों और स्वयं महात्मा गांधी भी भीतर बंद हों। जिन्होंने उसे जाग्रति साध्य होते देखा है वे भी इसमें रहेगा। को देखकर अचंभे में पड़े कि ... जिनको यह शंका होती ... सामाजिक उथल-पुथल ... वाले कांग्रेस ... उन्हें आंख धोकर देश के प्राचीन प्रसिद्ध मंदिरों की तालिका देख लेनी चाहिए जो शताब्दियों के बाद अछूतों के लिए निर्वार कर दिए गए हैं और जिनके संचालकों ने शुद्ध धार्मिक भावना से प्रेरित होकर पुण्य कार्य किया है।

जिन लोगों को यह दिनौंधी हुई थी कि महात्माजी का यह व्रत केवल एक राजनीतिक झांसा है उनमें डॉक्टर अंबेडकर का ही पहला नंबर था। पर उन्होंने केवल तीन-चार दिन

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गांधीजी के सहवास में रहकर उनका वास्तविक स्वरूप समझ लिया और उनकी अंतिम घोषणा में ये शब्द आए हैं। 'गांधीजी भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं, उन्हें अछूतों का हित उतना ही प्रिय है जितना स्वयं मुझे।' हिंदू महासभा ने जो हिंदुओं की विशाल प्रतिनिधि सभा है, अपने देहली के अधिवेशन में पूना-समझौते को स्वीकार कर लिया है जिसका अर्थ यह है कि उच्चवर्ण की हिंदू जनता एक संस्था के रूप में, अछूतों को पूरे-पूरे अधिकार देने को तैयार हैं। परंतु इन संस्थाओं, नेताओं आदि की घोषणाओं से कहीं अधिक महत्व दूर देहातों की छोटी-छोटी सभाओं का है जहां अधिकांश मंदिरों पर अछूत हिंदू और छूत हिंदू एक होकर मिले हैं और अपने चिरकालिक भाईचारे का परिचय दिया है। देहातों में, कट्टर ब्राह्मण प्रदेश के देहातों में भी अछूत नाम की कोई अलग जाति या फिरका नहीं है बल्कि आपस में सब एक-दूसरे के बड़े-बूढ़ों को चाचा-बाबा कहकर पुकारते हैं और उसी के अनुरूप प्रेम और आदर के भावों का भी प्रदर्शन करते हैं। यदि इस संबंध में कुछ शिथिलता किन्हीं कारणों से आ गई थी तो वह गांधीजी के व्रत से दूर हो गई और सब पूर्ववत एक-दूसरे से सांगोपांग मिल गए।

इसी बीच में यह अफवाह उड़ी थी कि सम्राट की सरकार भारत के प्रत्येक प्रांत की सरकार से सलाह-मशविरा करके यह जानना चाहेगी कि देश के 'सवर्ण' हिंदू पूजा-समझौते के पक्ष में हैं या नहीं, और जब तक इसका निर्णय नहीं हो जाएगा तब तक सरकारी निर्णय में परिवर्तन नहीं किया जाएगा। परंतु जान पड़ता है कि हमारे देश की आवाज इतने अलग रूप में विलायत में गूंजी कि वहां उसकी सुनी-अनसुनी न करके स्थानीय सरकार भी जनता के प्रदर्शनों को आंखों से देखकर उनको अपने ध्यान से ओझल नहीं कर सकती। इस अवसर पर केवल आज उसी ख्यातनाम संस्था ... ने उपाधिकारी अज्ञात ... किया अपना दर्शनीय ... की है। हमारे प्रांत निवासी है तो परम तुलना यदि अन्य ... स्थूली कृत वेदज्ञ, शाख मौलाना शौकत अली शरीर, बड़े ... हैं। काशी के प्रकांड के वचनों से जिस मंडली के श्वासों कर्मकांडी वेदना-विमिश्रित आतच्छवासों ... हमारे परिव्राजकाचार्य ... मौजूद है। यह मौजूदी अपने इस स्वरूप में अवश्य अजीवी होगी।

काशी के पवित्र पत्रों ने गांधीजी की-सी उत्पन्न परिस्थिति पर अपने जो विचार प्रकट किए हैं वे उन्हीं के अनुकूल हैं। हम उनके विलक्षण दृष्टिकोण को अब केवल एक सांप्रदायिक विश्वास कह सकते हैं। देश के अंतरंग में अब काशी के पंडित-मंडल का प्रभाव प्रायः नगण्य है, यह हम नित्यप्रति के जीवन में देखा करते हैं और गांधीजी के व्रत के इन पांच-सात दिनों में और भी निश्चय के साथ देख चुके हैं। वे दिन अब नहीं रहे जब काशी की विद्वन्मंडली अपने आदेश निकालकर सारे उत्तरापथ से मान्य कराती थी। इसका कारण हमें उसके विचारों की अदार्शनिकता ही प्रमुखतः दीख पड़ती है। काशी का एक 'पंडित मंडल' वहीं के एक पत्र में कुछ इस तरह लिखता है कि 'गांधीजी अछूतों को हिंदुओं के समकक्ष रखकर धर्म को संपूर्ण

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मानव समाज के बराबर विस्तार देते हैं पर 'वर्णाश्रम' धर्म उतना विस्तृत नहीं है।' यह नितांत बुद्धिहीन प्रसंग है। यदि वर्णाश्रम हिंदू धर्म मानवधर्म नहीं है तो संसार का कौन दूसरा धर्म मानवधर्म कहा जाएगा? क्या 'सनातन धर्म' का यही सनातनत्व है कि वह मनुष्य समाज के बराबर भी विस्तृत नहीं? जिस धर्म को उदार मानवधर्म कहके बड़े-बड़े विदेशी शरण में आते हैं, जिसकी सीमा में न केवल मानवसमाज बल्कि संपूर्ण जीव-जगत प्रविष्ट है, उसे सीमाबद्ध कहकर घोषित करना किस कोटि का दर्शन है? इस प्रकार की निम्न कोटि की विचार परंपरा काशी के 'विद्वत्समाज' के लिए गौरव की वस्तु नहीं इस अवसर पर हम इतना ही कहेंगे। साथ ही हम इस समय इस ओर भी उनका ध्यान आकर्षित करते हैं कि उनका प्रभाव हिंदू जनता के ऊपर से जा रहा है जिसका कारण हिंदू की संकीर्णता या त्रुटि नहीं बल्कि उनके पंडितों का ही विचार ... मूल में मिथ्या दर्शन ही के प्रभाव में जा रहा है। गांधीजी कोई कितनी ही के संबंध में तो इस तरह कोई विक्षेप पंडित मंडलियों मिला मौलाना लोग नहीं उत्पन्न कर सकती। जब तक अपना रोना रोते रहेंगे तब तक ... शुद्ध दृढ़ हिंदू समाज अपने कर आगामी युग के अधिक उपयुक्त

## श्री केलकर का भाषण

हिंदू महासभा के अध्यक्ष श्री नरसिंह चिंतामणि केलकर के भाषण को हम सार रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। कारण वह हिंदुओं की दृष्टि से वर्तमान परिस्थिति का बड़ा ही स्पष्ट और सर्वांगपूर्ण चित्र है। उसमे ऐतिहासिक दृष्टिकोण रखकर यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि इधर लगातार हिंदुओं के प्रति सरकार की तरफ से अन्याय ही किया जाता रहा है। सब प्रकार के सिद्धांतों को छोड़कर सरकार द्वारा वह मजहबी निर्णय सुनाया गया है जिसमें मुसलमानों का सरासर पक्षपात किया गया है। मुसलमानों को अब असंतोष की कोई गुंजाइश नहीं है कि वे नाक टेढ़ी कर अब भी असंतोष दिखा रहे हैं। यह केवल कट्टर मुसलमानों का संगठन है। श्री केलकर ने यह भी दिखाया है कि श्रीयुत जिन्ना की मशहूर चौदह शर्तों की आमद कहां से हुई और किस प्रकार वे पहले संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में थे। श्री केलकर ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि मुसलमान कांग्रेस के ऊपर भी हिंदू पक्षपात का इल्जाम लगाने से नहीं चूकते जिसके महात्मा गांधी और स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू सरीखे नेता न्याय के लिए सब कुछ करने को तैयार रहे हैं। श्री केलकर अपने अनुसंधानों के उपरांत इस मत पर पहुंचे हैं कि हिंदुओं को संपूर्ण भेदभाव भुलाकर अपनी सारी शक्ति एकत्र कर लेनी चाहिए। इस दृष्टि से महात्माजी के व्रत ने भी बड़ी मदद पहुंचाई है। मुसलमान अब हिंदुओं से समझौता करने को तैयार नहीं हो सकते क्योंकि उन्हें उसकी गरज नहीं है। यदि हिंदू लोग मुसमलानों से समझौते के लिए

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हाथ पसारेंगे तो इससे मुसलमान और भी तनेंगे और अधिक अधिकार हड़पने की कोशिश करेंगे। इसलिए हिंदुओं को समझौते की भीख नहीं मांगनी चाहिए। व्यवस्था-सभाओं के बहिष्कार से भी आपकी राय में कोई मतलब सिद्ध न होगा क्योंकि आखिर सीटें तो भरेंगी ही। फिर वे योग्य राष्ट्रीय हिंदुओं द्वारा ही क्यों न भरी जाएं? इस मत में श्री केलकर अपने गुरु लोकमान्य तिलक के ही पथ पर चले हैं।

## महात्माजी का मत

ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने पूना के समझौते को स्वीकार करते हुए जो वक्तव्य में प्रकाशित कराया है उस पर गांधीजी ने अपना यह मत प्रकट किया है कि इसमें अभी बहुत-सी त्रुटियां हैं जिन्हें दूर करने के लिए आपस की बातचीत जारी रखना वांछनीय होगा। इसके एक दिन ही पहले महात्माजी ने यह कहा था कि यदि ब्रिटिश प्रधानमंत्री समझौते को स्वीकार करेंगे तो असली काम उसके बाद ही आरंभ होगा। इन दोनों से यदि कुछ प्रकट होता है तो यही कि महात्माजी अधिकारियों से परामर्श करते रहने और हिंदू समाज द्वारा अछूतोद्धार का देशव्यापी आंदोलन चलाने का मंतव्य रखते हैं। सरकार से बातचीत करने का अवसर सम्यक रीति से तभी मिल सकता है जब महात्माजी जेल से छोड़ दिए जाएं। इस समय यदि वे जेल से मुक्त किए जाएं तो अवश्य ही हिंदुओं की सामाजिक ... के प्रभाव से बड़ा ही ... परिवर्तन हो जाए। अवसर ... आज के एक दिन काम ... वर्ष भर में भी नहीं हो सकेगा। महात्माजी का स्वास्थ्य भी एक लंबी मियाद तक, कठिन उपवास के कारण, जेल में रहने के उपयुक्त न होगा। क्या इन सब बातों का विचार कर सरकार उन्हें नजरबंदी से बरी नहीं कर सकती और अपने उदार संकेत का शुभफल नहीं प्राप्त करना चाहती?

(गुरुवार, 29 सितंबर 1932)

## अनमोल अवसर

मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए हमारे देश की राजनीतिक अवस्था इधर कुछ दिनों से विशेष मनोरंजक अध्ययन की वस्तु हो रही है। इसके अनेक पहलुओं पर विचार करने के उपरांत हम कह सकते हैं कि आज राजनीतिक बुद्धिमानी दिखाने का एक अनमोल अवसर आया हुआ है। इस अवसर का सदुपयोग न करना अभी तो जड़ता ही होगी पर भविष्य में और भी कुफल हो सकते हैं। अपने पाठकों को भी हम इसका परिचय करा देना चाहते हैं। अभी कुछ दिन हुए कांग्रेस के विरुद्ध सरकार एक विशेष पॉलिसी का व्यवहार कर रही थी। वह

[...] पांडुलिपि अपठनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चुन-चुन कर लोगों को पकड़ती और शेष को छोड़ देती थी। इसके अतिरिक्त उसने कांग्रेस-विरोधी प्रचार कार्य भी संघटित रूप से आरंभ कर दिया था। सर सेमुएल होर विलायत में जमा-खर्च बतलाते हुए कह रहे थे कि प्रति महीने गिरफ्तारियों और सजाओं की संख्या कम हो रही है। वास्तव में इस दृष्टि से कांग्रेस आंदोलन शिथिल हो रहा था। *स्टेट्समैन* उसे मरता हुआ आंदोलन (Dying Movement) कहकर विज्ञापित कर रहा था। जो आंदोलन इतने दीर्घकाल तक चलता है वह स्वभावतः ढीला हो ही जाता है। भारत में आंदोलन की यह गति थी, उधर विलायत में सरकारी चेष्टाएं अंत तक दमन करने की ही हो रही थीं। विलायत में अनेक भारतहितैषी व्यक्तियों के रहते हुए भी अधिकारियों पर उनका विशेष प्रभाव न दीख पड़ा और विलायत का लोकमत भी गोलमेज के बाद भारत के प्रति उदासीन ही होता गया। भारतीय विजयी खिलाड़ियों की जितनी चर्चा विलायती प्रेस में हुई उतनी भी भारत के प्रेसों में राजनीतिक परिस्थिति की हुई, इसमें संदेह ही है। भारतीय जेलों में पड़े हुए हजारों राजनीतिक कैदियों के प्रति कोई विशेष सहानुभूति नहीं दीख पड़ी, मानो ब्रिटिश जनता ने अपनी पार्लियामेंट के प्रतिनिधियों के इस कानूनी कथन को ही पक्का मान लिया कि कांग्रेस के अराजक आंदोलन को दमन द्वारा दबा देना ही सबसे बड़ा आदर्श है। न जनता ही, न शासक लोग ही भारत की जनता के कष्ट सहन से कुछ विशेष प्रभावित होते देखे गए।

इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक निष्पक्ष दर्शक को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यावहारिक विचार से सत्याग्रह आंदोलन सफल नहीं हुआ, वह न शासकों का, न ब्रिटिश जनता का हृदय द्रवित कर सका। सरकारी तौर पर प्रतिदिन जिन कड़े शब्दों में कांग्रेस आंदोलन की टीका की जाती है उससे मालूम होता है कि सरकार उसके नैतिक पक्ष को स्वीकार ही नहीं करती, उससे प्रभावित होना तो दूर की बात है। इस प्रकार जब सत्याग्रह-आंदोलन के संचालकों और उसका दमन करने वालों के दृष्टिकोण में मौलिक अंतर है तब यह कैसे आशा की जाए कि आगे भी कभी सत्याग्रह से सरकार पसीज जाएगी। ऐसी अवस्था में सामूहिक सत्याग्रह आंदोलन का व्यावहारिक मूल्य बहुत कम रह जाता है उसका आत्मिक और आध्यात्मिक मूल्य जो कुछ हो, उससे जनता में अहिंसा, 'कष्टसहन', स्वदेश प्रेम आदि की जो भी भावनाएं भरें। उनका प्रभाव समाज अपने ही भीतर देख सकता है, शासन सत्ता से प्रत्यक्ष में उसका कोई संबंध नहीं—यदि कोई संबंध है तो कानूनी विरोध का। इसी बात को हम इस रूप में भी कह सकते हैं कि सत्याग्रह आंदोलन का सरकार के विरोध में सफल होने का प्रश्न ही नहीं रह गया, वह केवल जनता में स्वराज्य के उपयोगी जिन किन्हीं भावों को भरता रहे। इस दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि कांग्रेस आंदोलन के वे कार्यक्रम जो सरकारी कानून भंग कर जेल भरने के विषय के हैं, सरकार के रुख को देखते हुए अब असामयिक और अनुपयोगी हो गए हैं। उनका एकमात्र उपयोग प्रदर्शन द्वारा जनता को खींचना अथवा विदेशों का ध्यान प्राप्त करना ही थोड़ा-बहुत रह जाता है। इस प्रदर्शन की अपेक्षा रचनात्मक कार्य का अधिक महत्व महात्मा गांधी ही नहीं, कांग्रेस के और नेता भी स्वीकार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दो बहुत बड़े रचनात्मक कार्य सौभाग्यवश देश के सामने उपस्थित हो गए। एक तो स्वदेशी का कार्य जिसका संचालन करने वाले प्रमुख व्यक्ति पं. मदन मोहन मालवीय हैं और दूसरा समाज सेवा का एक नवीन कल्याणमय कार्य जिसका श्रीगणेश महात्मा गांधीजी के पिछले स्मरणीय व्रत से आरंभ हुआ है और जिसे देशव्यापी बनाने के लिए महात्माजी उत्कंठा प्रकट कर चुके हैं। यह वही देश के मस्तक से अछूत-समस्या का कलंक मिटाने का कार्य है जिसकी पूर्ति के लिए देश की बड़ी से बड़ी शक्ति लगा देनी होगी। महात्माजी के पुत्र श्रीयुत देवदास गांधी ने अपनी विज्ञप्ति में कहा है कि अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों ने महात्माजी को आमंत्रित किया है कि वे स्वयं उपस्थित होकर उनकी जटिल ग्रंथि सुलझा दें। महात्माजी के लिए यह कार्य प्राणों से भी प्रिय है परंतु वे जेल में बंद होने के कारण विवश हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि यदि छह महीने के अवसर में सवर्ण हिंदू अछूतों को उचित रूप से नहीं अपना लेते तो फिर अखंड निराहार व्रत धारण करेंगे। सबको समझ लेना चाहिए कि महात्माजी के शब्द आलंकारिक नहीं हैं, अक्षर अक्षर सत्य है। सरकार की तरफ से ही नहीं ब्रिटिश लोकमत के पत्रों द्वारा भी यह विचार प्रकट किया गया है कि अछूतों के संबंध में उनकी सहानुभूति है और महात्मा गांधी ने उनका प्रश्न उठाकर हिंदू समाज का विशेष हित किया है। अनेक नीम सरकारी पत्र भी यह स्वीकार करने की उदारता दिखा रहे हैं कि जनता के शासन की प्रतिष्ठा के पहले महात्मा गांधी ने यह आंदोलन उठाकर विशेष सामयिक कार्य किया है। जो पत्र कांग्रेस की निंदा करने में ही अपने संपादकीय पृष्ठ के कॉलम रंग रहे थे वे भी आज गांधीजी के कार्यक्रम की प्रशंसा कर रहे हैं। *ईवनिंग न्यूज* नामक पत्र जो *टाइम्स ऑफ इंडिया* के संचालकों द्वारा निकाला जाता है, इस अवसर पर सरकार और कांग्रेस में समझौता हो जाने के कार्य को आवश्यक ही नहीं, देश के व्यापक हित को बढ़ाने वाला और सबकी कृतज्ञता प्राप्त करने योग्य मानता है। सारांश यह कि देश में सर्वत्र एक बदली हुई मनोवृत्ति का परिचय मिल रहा है। सब वर्तमान स्थिति में परिवर्तन और नवीनता पसंद कर रहे हैं। यही सामयिक वातावरण है।

यदि सरकार लोकमत की ओर ध्यान देती होती तो उसे देश की इस बदली हुई वृत्ति का अवश्य पता लगता। यदि उसमें कल्पना की कमी न होती तो वह यह अवश्य समझती कि उसके सामने आगामी विधान का एक बड़ा रचनात्मक कार्य उपस्थित है जिसको सफल बनाने को पूरी जिम्मेदारी उसके ही ऊपर है। उसने ही इस कार्य का अब तक मनमाने तौर पर इंतिजाम किया है और अब तो उसे यह स्वीकार करना होगा कि इस विधान की नौका को पार लगाने का भार उसी का है। यदि कलंक की कालिमा लगेगी तो उसी के सिर और यश की प्राप्ति होगी तो उसे ही। अतः इसे अपना ही स्वार्थ समझकर तत्परता के साथ काम करने की प्रेरणा सरकार की होनी चाहिए। कहा तो यह जाता है कि सरकार लोकमत का संग्रह करती और उसका आदर करती है। इस समय उसने जो लोकमत संग्रह किया है क्या वह शांति स्थापना के पक्ष में अत्यधिक बहुमत नहीं रखता?

इस समय सरकारी नीति और कांग्रेस की नीति दोनों ही धाराएं संगम की ओर बढ़नी चाहिए। दोनों ही सामयिक परिस्थिति की आवश्यकताओं का ध्यान करते हुए, राष्ट्र के व्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हित के लिए मेल करने के निकट पहुंच रही हैं। इतना ही नहीं, इसी में दोनों का स्वार्थ भी है। शांति स्थापना का यह अनमोल अवसर है, यह राजनीति के प्रत्येक दर्शक को दीख पड़ता है। प्रत्येक क्षण का निर्णय अब नई-नई कल्पनाएं उत्पन्न कर रहा है। यदि किसी पक्ष में हठवादिता, विजय की झूठी ऐषणा अथवा और कोई विक्षेप डालने वाली वस्तु नहीं है तो अविलंब इस अनमोल अवसर से लाभ उठाया जाना चाहिए।

## सस्ता सौदा

मौलाना शौकत अली अपनी आदत से लाचार हैं। जिसको जो चस्का पड़ जाता है वह छूट ही कैसे सकता है? आपने हिंदू-मुसलमानों का सम्मिलित निर्वाचन न होने देने में जो विजय हासिल की है वह बहुत दिनों तक स्मरण की जाएगी। पर अभी आपने उस दिन कुछ ऐसी बातें कह डालीं जिनसे जान पड़ता है कि आप सम्मिलित निर्वाचन या पृथक निर्वाचन किसी भी सिद्धांत को नहीं मानते, सिर्फ सौदा पटाते रहते हैं। बहुत लोगों ने बहुत प्रकार से पृथक निर्वाचन का समर्थन किया है। स्वयं मौलाना शौकत अली ने गोलमेज के अवसर पर यह दलील दी थी कि मुसलमानों को मजबूत बनाने के लिए कुछ वर्ष पृथक निर्वाचन मिलना ही चाहिए। ब्रिटिश सरकार ने भी इस मुख्य बुनियाद पर पृथक निर्वाचन मुसमलानों को दिया है कि वैसा ही पुराने जमाने से (?) होता आया है। लेकिन इन संब तर्कों से भी मौलाना शौकत का यह सौदा ज्यादा सस्ता पटा। आपने फरमाया है कि यदि हिंदू जात-पांत तोड़ दें और राष्ट्रीय ऋण (जो करोड़ों रुपए का है) मुसलमानों के ऊपर से उठा लिया जाए तो वे सम्मिलित निर्वाचन स्वीकृत कर लें। इससे तो मालूम हुआ कि बड़े मियां निर्वाचन के मामले में रुपयों का ही स्वप्न देखा करते हैं।

## वर्तमान धर्म

अपने पाठकों के लिए हमने पिछले अंक में इसी स्तंभ में 'प्रेमचंदजी का साहित्य' शीर्षक एक छोटी सी लेखमाला आरंभ की थी, इसलिए इस अंक में भी वे स्वभावतः उसी की प्रतीक्षा कर रहे होंगे, परंतु एक अप्रत्याशित विक्षेप पड़ जाने के कारण हमें इस बार उन्हें निराश करना पड़ रहा है। यह विक्षेप डालने वाले महाशय एक मासिक पत्र के संपादक हैं जिनका संबंध साहित्य से कम अफ्रीका से अधिक है। इन्होंने अपने पक्ष में 'साहित्यिक सन्निपात' लिखकर हमारा ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की है क्योंकि ये साहित्य विषय पर जब कभी लिखते हैं तब वह इतना मनोरंजक होता है कि उसका पाठ किए बिना कार्य के भार में दबे हुए हम जैसे नीरस साहित्यिकों की दिन की पाली मिलती ही नहीं। इसलिए जब कभी सौभाग्य से इनके ऐसे लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमारी दृष्टि में पड़ जाते हैं तब हम डॉक्टर हेमचंद्र जोशी की तरह उन्हें 'बुद्धिहीन प्रसंग' आदि विशेषण देकर उनका मजा किरकिरा नहीं कर देते और न उनकी चर्चा पत्रों में करके अपने मनोरंजन की एक विशेष सामग्री खो डालते हैं। केवल उन अवसरों पर जब वे ऐसी सामग्री प्रस्तुत करते हैं जो मनोरंजन की सीमा का उल्लंघन कर हिंदी के व्यापक हित का सक्रिय विरोध करने लगती है तब हमें विवश होकर अपनी टिप्पणी लिखनी पड़ती है। ऐसे अवसर हमारे सामने नियमित रूप में नहीं, अपवाद रूप में ही उपस्थित होते हैं परंतु संपादक महोदय इनका भी रिकार्ड रखते हैं और अपने पत्र में इनके भी 'बुलेटिन' निकालते हैं। इसका आभार हम किन शब्दों में प्रकट करें! संपादक महाशय ने इस बार यह 'साहित्यिक सन्निपात' लिखा है जिसमें आपने आठ-दस महीने पहले *भारत* में प्रकाशित पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निरालाजी' के 'वर्तमान धर्म' शीर्षक एक लेख की चर्चा छेड़ी है। इस लेख को इतने दिनों बाद याद करना कदापि सन्निपात नहीं है, न आपका उसे न समझ सकना, न आपके दफ्तर के आदमियों का एक प्रतिष्ठित विद्वान का लेख सुनकर 'खिलखिला कर हंसना'। लेख को समझाने के लिए आपने उसके लेखक अथवा संपादक को तीन पैसे का कार्ड न लिखकर जो पच्चीस रुपए की घोषणा कर दी यह भी किसी सन्निपात का लक्षण नहीं कहा जा सकता। आपने *भारत* में प्रकाशित उक्त लेख को 'हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों और पत्रकारों को सुनाया' (ब्राडकास्टिंग के अभाव से आपने एक-एक के घर जाकर लेख को आद्यंत सुनाया होगा) यह केवल आपकी प्रोपेगेंडा वृत्ति का प्रसाद है, कोई सन्निपात नहीं। परंतु जब कहीं भी परितोष न मिला तब आप अपने लेख का शीर्षक 'साहित्यिक सन्निपात' रखकर 'हिंदी जनता के सम्मुख' उपस्थित हो गए हैं। शायद इसी प्रकार कुछ फायदा हो। 'निरालाजी' का 'वर्तमान धर्म' लेख प्रकाशित करने के कारण सबसे पहले यह हमारी ही जिम्मेदारी है कि हम इसके संबंध में उठने वाली शंका का समाधान करें। लेखक को यदि कुछ लिखना अभीष्ट होगा तो वह अन्यत्र लिखेगा। संपादक महाशय का मासिक पत्र हमें आज ही मिला है, इसलिए 'निराला' से हम इस संबंध में कोई पत्र-व्यवहार नहीं कर सके। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। निरालाजी के 'वर्तमान धर्म' की एक-एक पंक्ति बुद्धिग्राह्य है और आवश्यकता हो तो उस पर पूरा भाष्य ही लिखा जा सकता है। पर हमारे पास न उतना समय है, न हमारे पत्र में उतना स्थल। अपने पाठकों से यह इतना ही स्थान संकोच के साथ मांग सके हैं। 'वर्तमान धर्म' लेख के साथ एक छोटा सा इतिहास लगा हुआ है। मुख्य लेख के लिए यह इतिहास प्रासंगिक नहीं है तथापि उक्त मासिक पत्र के संपादक महाशय की जानकारी संभव है इससे बढ़े और तब उनकी ग्राहिका शक्ति भी कुछ विकसित हो। डॉक्टर हेमचंद्र जोशी महोदय ने उन्हीं दिनों *माधुरी* में एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने हिंदी जगत के प्रति घृणा की दृष्टि दिखाई थी और छायावाद के कवियों को बहुत कड़े शब्दों में याद किया था। आपने हिंदी के साहित्य संसार की उपमा दूर से दुर्गंध देने वाली पोखर से की थी और उस पोखर के जीव-जंतुओं के 'टर्र टर्र' स्वर का उल्लेख किया था। उस लेख में जोशीजी का आवेश उनके विवेक को ग्रस बैठा था। इसका उत्तर देने की आवश्यकता थी पर हिंदी वाले सो रहे थे। यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि निरालाजी हिंदी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आत्मसम्मान के सबसे बड़े रक्षक हैं। जहां हिंदी का सवाल आता है वहां वे डॉक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर का भी मुकाबला करने को तैयार हो जाते हैं। डॉक्टर हेमचंद्र तो अपनी ही पंगत के हैं। जब जोशीजी को जवाब देने के लिए कोई न सनका तब निरालाजी ने अपना बल संभाला। वे चाहते तो जोशीजी को उन्हीं के शब्दों में जवाब दे देते। ऐसा वे कई बार कर भी चुके थे पर इस बार उन्हें जोशी को जो यह उत्तर देना था कि उन्होंने एक सांस में ही छायावाद, मायावाद, किरायावाद आदि उगलकर जो व्यंग्य आधुनिक कविता का किया है वह उनकी नासमझी है। उनकी नासमझी को निरालाजी ने रहस्यवाद की समझदारी (दार्शनिकता) दिखाकर प्रकट किया और मानो संक्षेप में यह कहा 'देखो तुम हम लोगों को मेंढक कहते हो पर रहस्यवाद में मेंढक कोई कटु शब्द नहीं। तुम किसी को सुर, किसी को असुर कहते हो पर यह सुरासुर केवल शब्दों की माया है। इसे समझ लोगे तो शब्दों का प्रयोग करने में संयम रखोगे अथवा नहीं रखोगे तो भी हमारा क्या बिगड़ता है। यही 'वर्तमान धर्म' है।

संपूर्ण लेख में पौराणिक आख्यानों का संकेतात्मक अर्थ बतलाते हुए अथवा आधुनिक घटनाओं की रुचिर बुद्धिग्राह्य व्याख्या करते हुए निरालाजी ने सर्वत्र यही प्रदर्शित किया है कि सृष्टि के नाना नामरूपों में जो एक अजस्र अखंड धारा प्रवाहित है—आत्मधारा—बस उसी को प्राप्त कर लो और दुनिया का तमाशा हंसी-खुशी देखते रहो। कोई गाली देगा, कोई स्तुति करेगा, कोई देवता कहेगा, कोई राक्षस पर तुम्हारे लिए यह सब मिथ्या है। तुमसे इनसे मतलब ही क्या? यह जान लो कि चूहे की सवारी करने वाले भी गणपति हो गए हैं। असुर कन्या शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु ने अपना यौवन पिता को अर्पण कर दिया जब कि उसके देवता भाई किनारा कर गए थे। इसलिए छोटे-बड़े, नीच-ऊंच के बाह्य भेद को मायावी मानकर तत्व को ग्रहण करो। अंतर्मुखी आत्ममुखी दृष्टि से ही कल्याण होगा। वर्तमान समाज में जो विकट संघर्ष मच रहे हैं, उनका अंत करने के लिए यह निर्लेप, निरंजन आत्मधर्म ही 'वर्तमान धर्म' बनकर सृष्टि का कल्याण कर सकेगा। यही निरालाजी के 'वर्तमान धर्म' लेख का सार अर्थ है। अब इसे जानकर संपादकजी एक पंक्ति समझने की चेष्टा करें। उनकी दश शंकाओं का समाधान भी अपने पाठकों से क्षमा मांगकर, हम अत्यंत संक्षेप में कर दें ताकि उनका मार्ग और सुगम हो जाए—

1. चूहे की आत्मा के भीतर होने का यह अर्थ है कि चूहा शरीर है। शरीर पर गणेशजी की सवारी है। अर्थात् शासन है। गणेशजी आत्मा हैं जो शरीर के आवरण में अंतर्निहित हैं। शरीर-भाव जितना ही सूक्ष्म होगा आत्मा उतनी ही परिष्कृत होगी। चूहे का शरीर (संकेत अर्थ में) सूक्ष्म होता ही है।
2. कार्तिकजी का उदाहरण बाह्य रूप में गणेशजी का विरोधी होता हुआ भी आंतरिक साम्य दिखाता है। गणेशजी के कद्रूप शरीर से स्वामी कार्तिका के स्वरूपवान शरीर की तुलना कीजिए। बड़ा अंतर है। तथापि दोनों भाई ही हैं। दोनों अद्वैतवादी। संपूर्ण क्रियाओं से निर्लिप्त।
3. इलाचंद्रजी और हेमचंद्रजी को नसीहत दी गई है कि यदि वे इला पिंगला (वर्णानुसार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गंगा, यमुना की भांति श्वेत-श्याम (झगड़ालू अर्थात् द्वैतवादी) बने रहेंगे तो ज्ञान सरिता सरस्वती के दर्शन उन्हें दुर्लभ हैं।

4. नाग-फांस अर्थात् 'काल ब्याल कराल भूषण धर' शंकर जो गंगाधर भी हैं उसी गंगाधर का बालस्वरूप बालगंगाधर। महात्मा गांधी को आप ही घसीटते हैं। निरालाजी तो उन्हें अवतार-संकेत देते हैं।
5. कबूतार (बांग्ला में) = कभी उसका। कविता (बांग्ला में) = कवि उसका। तत्वमसि का संकेत। रवींद्रनाथ के उत्कर्ष का हेतु।
6. अनेक स्त्रियों के मियां अर्थात् मायापति जो सृष्टि का रहस्य समझ गया है। वह रिया चियां नहीं अर्थात् साधारण जन नहीं। अत्यंत सार्थक प्रयोग है।
7. इसको आप दाल-भात में मूसरचंद कहते हैं। पर इसका अर्थ अल्पबुद्धि के लिए भी स्पष्ट है। आत्मतोष आंतरिक वस्तु है, उसे भाषा का स्वरूप मिले, न मिले।
8. यह गधा वह है जो अज्ञानी है केवल ज्ञानी गधा नहीं है।
9. यह दिल्लगी नहीं है। दर्शन की उच्च उपलब्धि है। 'दिल्ली के भाड़ झोंकने' का अर्थ मुहावरेबाजी में अज्ञान होता है पर तात्विक अर्थ में दिल्ली का भाड़ झोंकने वाला भी परम ज्ञानी हो सकता है।
10. हिंदी के विद्वानों ने इसका निर्णय कर लिया है और अब इस लेख के बाद हिंदी की जनता भी कर लेगी।

बीसों ही क्या अभी पच्चीसों, सैकड़ों प्रश्न संपादकजी के दिमाग में उठेंगे। आशा है, वे सब हिंदी के विद्वानों का मनोरंजन ही करेंगे।

(गुरुवार, 6 अक्तूबर 1932)

## विजयादशमी

आज विजयादशमी का पर्व है। अपने देश के पर्वों और उत्सवों के संबंध में जो जानकारी देशी भाषा और अंग्रेजी के पत्रों-पुस्तकों आदि से प्राप्त होती है वह अनेक बार भ्रामक, त्रुटिपूर्ण अथवा अपूर्ण भी हुआ करती है। विजयादशमी के ही संबंध में एक से अधिक व्याख्याएं की जाती हैं तथापि हम नहीं समझते कि उनसे पर्व का पूर्ण परिचय मिल जाता है। बंगाल में यह पर्व सबसे प्रचलित है और वहां यह जनश्रुति फैली हुई है कि शुंभ-निशुंभ राक्षस के वध के लिए देवता शक्ति एकत्र हुई और उनसे राक्षस वध करके भूलोक और देवता लोक का त्राण किया गया। बंगाल में इसी पौराणिक कथा का प्रचार है। पुराणों का दर्शन जितना गहन और सूक्ष्म है उतनी हम लोगों की समझ नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि संस्कृति के बड़े-बड़े आचार्य जो शास्त्रों के मर्मज्ञ कहलाते हैं पुराणों का संकेत-अर्थ नहीं समझते। बहुत से पश्चिमी विद्वान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जो वेदों, उपनिषदों आदि के परम भक्त हैं, पुराणों के प्रति उदासीन ही नहीं, उनके निंदक तक बन गए हैं। इन विद्वानों ने जिस साधारण बुद्धिवादी धरातल से पुराणों की परीक्षा की और उन्हें कपोल-कल्पित बताया है उन्हें कम से कम इतनी कल्पना तो करनी ही चाहिए थी कि पुराणों की रचना उसी देश ने की है जिसने वेदों, उपनिषदों की रचना की है। पुराण परिवर्तित कृति होने के कारण उनमें बस देश की विद्या-बुद्धि का विकसित रूप ही मिलना चाहिए पर यदि विकसित रूप नहीं है तो वह क्या इतना निंद्य है जितना पश्चिमी विद्वान और उनके शिष्य, हम लोग समझते हैं। पुराणों में इतिवृत्त अथवा इतिहास यदि पश्चिमी परंपरा के अनुसार कम लिखा गया तो उसके मुख्य उद्देश्य को बिसार देना कहां तक न्यायसंगत होगा? यदि पुराणों के आख्यान घटना रूप में यथाघटित न होते हुए भी संकेत-धर्म द्वारा ज्ञान वृद्धि करते हैं तो क्या इसे पाप समझा जाए? पश्चिम में भी संकेतात्मक साहित्य की कमी नहीं है, बल्कि आधुनिक युग में तो उसमें नए सिरे से विकास भी हुआ है। यूरोप में संकेतवादी (Symbolic) लेखकों की एक परंपरा ही चल निकली है। जब दृष्टि अत्यंत गहन और व्यापक हो उठती है वह शब्दों द्वारा व्याख्या करने की अपेक्षा मूर्त-संकेत द्वारा व्याख्या करने में अधिक सरलता का अनुभव करती है। संकेतवादी विद्वानों को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि शब्द-चित्र की अपेक्षा जनता मूर्त चित्र अधिक पसंद करती है और उसके लिए वह बुद्धिग्राह्य भी अधिक होता है। इसलिए वे विद्वान शाब्दिक व्याख्या न करके घटनाओं की अवतारणा करते हैं। यही हमारे पौराणिकों ने भी किया है। दुःख है कि इनको इस रूप में ग्रहण करने की समझ हममें नहीं है, नहीं तो हम इनके प्रति इतने अन्यायी कभी न बनते। पुराण ग्रंथों के साथ मूर्खों और विद्वेषियों ने बहुत से मिथ्या कथानक जोड़कर जो अनर्थ किया है वह भी पुराणों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में बहुत कुछ बाधक बन गया है, पर उस बाधा को भी दूर करने की ही आवश्यकता है।

विजयादशमी की कथा में इतिवृत्त (कहानी) की अपेक्षा संकेत की प्रधानता है, यह तो केवल इतने से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस पर्व के संबंध में एक नहीं, अनेक कथाएं प्रचलित हैं। यदि कथा ही प्रधान होती तो ऐसी बात नहीं हो सकती थी। परंतु कथा प्रधान नहीं है, वह तो केवल रूपक है। इसका यह अर्थ लगाना उचित नहीं होगा कि कथाएं सब असत्य हैं अथवा वैसी घटनाएं घटी ही नहीं। इसका अर्थ केवल इतना है कि पुराणों में घटनाएं जिस रूप में दी गई हैं उससे पुराणकार का मुख्य आशय घटना वर्णन करना नहीं वरन् घटना वर्णन द्वारा तथ्य को समझाना है। शुंभ-निशुंभ के वध की कथा तो बंगाल में सबसे अधिक प्रचलित है, उत्तर भारत में यह कथा है कि विजयादशमी के दिन भगवान रामचंद्र ने बानरी सेना सजाकर राक्षसराज रावण पर चढ़ाई की यात्रा की थी। एक अन्य जनश्रुति यह भी है कि इस दिन रावणवध करके राम युद्ध में विजयी हुए थे। इन्हीं आख्यानों को आधार मानकर बंगाल में देवीपूजा, काली पूजा और उत्तर भारत में रामलीला आदि के उत्सव होते हैं। इन अनेक उदाहरणों में यदि कुछ साम्य है तो इतना ही कि यह पर्व शक्ति-संचय का है और शक्ति-संचय के साथ ही विजय भी लगी हुई है। जिस प्रकार देवता गण असुर भय से भयभीत हो विष्णु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की शरण में गए थे और उन देवता पति ने यह सम्मति दी थी कि सब देव अपनी-अपनी शक्ति अर्पण करें तो वे स्वयं भी अपनी शक्ति दें जिससे शक्तिमूर्ति बनकर भगवती सिंहवाहिनी चोंटका (काली, दुर्गा आदि इनके विभिन्न नामकरण हैं) असुर विध्वंस करके भवभयनाशिनी कहलाएं। ठीक यही रूपक भगवान रामचंद्र के वानरसेना बटोरने में भी है। केवल थोड़ा अंतर यह है कि वहां भिन्न-भिन्न देवताओं ने अपनी-अपनी शक्ति प्रदान कर महाशक्ति का निर्माण किया था, यहां महाशक्तिशाली राम को भी वानरों की स्वल्पशक्ति बटोरने की आवश्यकता समझ पड़ी। नर-वानर की इस संगति का मूल्य हम सभी समझ सकते हैं। विजय के लिए संपूर्ण शक्ति को एकत्र कर लेना चाहिए—शक्ति छोटी से छोटी ही क्यों न हो उसका भी महत्व है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट ही है कि ऊपर की दोनों आख्यायिकाओं में शक्ति-संचय का संकेत है। तीसरी आख्यायिका राम के रावण पर विजयी होने की है। शक्ति-संचय की परिणति विजय में ही होती है। अवश्य वह शक्ति देवताओं की शक्ति की भांति दिव्य और राम की शक्ति की भांति सर्वसंग्रही होनी चाहिए।

पुराणों का मंतव्य घटना से नहीं वरन् घटना के अर्थ से है, इसका एक और प्रमाण भी यहीं मिल जाता है। प्रश्न होता है कि दुर्गा की राक्षस पर विजय, राम की रावण पर विजय आदि दोनों घटनाएं विजयादशमी के ही दिन कैसे घटित हुईं। क्या इसमें भी कुछ संकेत नहीं है? हम तो समझते हैं कि विजयादशमी राम की ही साधना (सेना संग्रह) और सिद्धि (रावण विजय) का मिलन योग नहीं है, वह केवल महाकाली का विजय दिवस नहीं है वरन् जन-जन की साधना और सिद्धि का मिलन योग है। इस पर्व का लोकपक्ष भी कितना अभिनंदनीय है। विजयादशमी कितने उपयुक्त अवसर पर मनाई जाती है। मनुष्य इन दिनों अपने को प्रसन्न प्रकृति के अंचल में पाता है। यह शरदागम का समय है। अनतिउष्ण दिवस अनतिशीत रात्रि होती है। भूमि न कर्दममय है, न धूलिपूरित, मानो वह भी निर्लेप भाव में स्थित मनोहारिणी हो रही है। प्रजा की शारीरिक शक्ति हरित शस्यराशि के रूप में संगृहीत हो गई है और वह आशा की दृष्टि से आगामी कृषिफल की प्रतीक्षा में है। पश्चिमी विद्वानों की व्याख्या के अनुसार वैदिक पूजा प्रकृतिपूजा है। वे कहते हैं कि उपनिषदों में आत्मभाव की प्रतिष्ठा अधिक है किंतु वेदों में तो प्रकृति की पूजा प्रधान है। भ्रम हो सकता है कि वेदों की प्रकृति पूजा और उपनिषदों के आत्मदर्शन में कोई तात्विक मतभेद नहीं है। इस भ्रम को दूर कर डालने में देखिए यह विजयादशमी का पर्व कितना अधिक समर्थ है। यह इस सत्य की घोषणा करता है कि राम की जो शक्ति रावण को पराजित करके विजयिनी हुई, वह केवल राम के पक्ष में ही नहीं जगत के पक्ष में भी उसी रूप में सत्य है। विजयादशमी के दिन राम रावण पर विजयी हुए मानो संपूर्ण प्रकृति ही अपनी निष्क्रिय निद्रा को पराजित कर विजयिनी हुई। अवसर ही विजय का है। पुराण लेखक पंडित ने यह विजया की तिथि ही ऐसी रखी है जिससे उनके अपूर्व पांडित्य का परिचय मिलता है। भारत में सर्वत्र यह ऋतु चैतन्य का संचार करने वाली और जड़ता को दूर भगाने वाली है। इस दृष्टि से पौराणिक लेखक ने न केवल शक्तिसंचय का रहस्य बतलाया है बल्कि वैदिक प्रकृतिपूजा की भी मनोरम व्याख्या की है। अंतरात्मा में भी और बाह्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकृति में भी चैतन्य का संचार करने वाली आज की विजयादशमी, शक्ति-संचय और विजय प्राप्ति की अद्वितीय तिथि है।

## संपादकजी की 'हरिगीतिका'

कार्तिक के *विशाल भारत* में संपादकजी ने श्रीयुत मुंसिफसिंह यादव नाम के किन्हीं सज्जन की *भाग्यचक्र* नामं की छोटी सी पुस्तक की आलोचना लिखी है। आरंभ में ही संपादकजी लिखते हैं कि 'इस पुस्तिका में यादवजी ने हरिगीतिका छंद में अपने जीवन का करुण इतिहास पाठकों के सम्मुख रखा है।' *विशाल भारत* के पाठकों का सौभाग्य है कि हरिगीतिका छंद के उदाहरण भी संपादकजी ने यादवजी की पुस्तक से दे दिए हैं। नमूना देखिए—

*आये हम भौगांव जो*
*कि था अतिसय सुंदर*
*प्रकृति देवि का जहां*
*नृत्य होता था मनहर*
*हरियाली छविमयी*
*छटा सुखकर छाई थी*
*स्वर्ग-लोक की नदी*
*उमड़ मानो आई थी।*

यह 'हरिगीतिका' छंद संपादकजी की प्रशंसनीय उपज है। इस दृष्टि से हिंदी छंदशास्त्र में क्रांतिकारी परिवर्तन करने वाले संपादकजी की अभिनव उद्भावना शक्ति दर्शनीय हुई है। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने आपको अपने मंगलाप्रसाद पारितोषिक की निर्णायक उपसमिति का सदस्य इसी आधार पर चुना होगा। इसके पूर्व संस्कृत के श्लोकों को छापने में अपने मौलिक विवेक का परिचय दे चुकने के बाद अवश्य की संपादकजी ने हिंदी छंदों के इस नवीन क्षेत्र में यह सफलता प्राप्त की है। वे साधुवाद के पात्र हैं।

(रविवार, 9 अक्तूबर 1932)

## हिंदू-मुस्लिम उद्योग

पूना के प्रभावशाली समझौते के साथ ही साथ बंबई में मालवीयजी और मौलाना शौकत अली के बीच जो हिंदू-मुस्लिम-संधि चर्चा चल पड़ी है और जिसके उपलक्ष्य में लखनऊ का मुस्लिम नेता सम्मेलन किया जा रहा है उसका स्वागत बहुत से राष्ट्रवादी व्यक्ति करेंगे। हिंदू महासभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के पिछले देहली अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीयुत नरसिंह चिंतामणि केलकर ने यह मत प्रकट किया था कि हिंदुओं को इस समय समझौते के लिए मुसलमानों के पास अर्जी नहीं भेजनी चाहिए, नहीं तो मुसलमानों को हिंदुओं की मेल करने की उत्कंठा मालूम होगी तो वे और अधिक लालची बनकर और अधिक सुभीते प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। श्रीयुत केलकर की यह आशंका मुस्लिम दल को उचित से अधिक स्वार्थी समझकर उत्पन्न हुई थी। जो कुछ हो इस बार हिंदुओं को अर्जी भेजने की नौबत नहीं आई और समझौते की बातचीत चल पड़ी है। पूना समझौते की छाया में उसी की प्रेरणा से, हिंदू-मुस्लिम संधि का यह प्रस्ताव उठा है। मौलाना शौकत अली ने वाइसराय महोदय से महात्मा गांधी को छोड़ने का आग्रह किया था और उनसे जवाब मिलने पर दूसरे तार में यह उल्लेख किया है कि यह देश अब अधिक समय तक कलह-कांड का अड्डा नहीं बना रह सकता। क्या इसको मौलाना साहब के हृदय परिवर्तन की सूचना समझा जाए? हो या न हो, वाइसराय महोदय ने गांधीजी को छोड़ना अस्वीकार कर दिया। वाइसराय को लखनऊ सम्मेलन के सफल होने में संदेह और अविश्वास मालूम पड़ता है। आपने यह उल्लेख कर दिया है कि चूंकि सर मुहम्मद इकबाल और उनके कुछ हमराह लेखकगण सम्मेलन का निमंत्रण अस्वीकार कर चुके हैं इसलिए मौलाना शौकत अली को इस पर गौर करना चाहिए। बहुत से मुस्लिम नेता जो राष्ट्रीय हित का विचार कर अपनी कट्टरता को राई-रत्ती कम करने को तैयार नहीं होते वे वाइसराय महोदय के वक्तव्य से और अधिक कट्टरता धारण कर सकते हैं। जिस तरह लार्ड विलिंग्डन ने सर मुहम्मद इकबाल के विरोध का जिक्र किया है उसी तरह असाध्य कट्टर दल के मौलाना गजनवी ने इस अवसर पर सर आगा खां को मुसलमानों का एकमात्र नेता स्वीकार करके लखनऊ सम्मेलन को व्यर्थ बताया है। सर आगा खां इस समय देश में नहीं हैं इसलिए उनको एकमात्र नेता बना देने में बहुत-कुछ मतलब हल हो जाता है। इस अवसर पर वाइसराय महोदय से अधिक उदारता की आशा की जाती थी।

मौलाना शौकत अली और खिलाफत कमेटी के अध्यक्ष मौलाना अब्दुल मजीद ने संयुक्त वक्तव्य निकालकर देश भर के मुसलमान नेताओं को लखनऊ आमंत्रित किया है। नेताओं की संख्या पच्चीस-तीस से अधिक नहीं रखी गई है और मौलाना शौकत अली ने वाइसराय को जवाब देते हुए लिखा है कि पांच को छोड़कर शेष सबने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। मुस्लिम संस्थाओं ने भी अधिकांश रूप में सम्मेलन का स्वागत किया है और उसके संयोजकों को बधाई दी है। नेताओं की सूची देखने से यह मालूम पड़ता है कि कट्टर मजहबी दल की ही अधिक संख्या है और राष्ट्रीय मुसलमान नेता अथवा उलेमादल के दो ही चार व्यक्ति बुलाए गए हैं। फिर भी यदि अधिकांश ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है तो इसका अर्थ यह है कि कट्टरदल भी समझौते में शरीक होने के खिलाफ नहीं हैं। लिबरल नेता सर शिवस्वामी अय्यर को भी वाइसराय का जवाब मिल गया है। उन्होंने भी मौलाना शौकत अली की भांति गांधीजी को छोड़ने का आग्रह किया था। उत्तर में वाइसराय कहते हैं कि अप्रैल 29 सन् 1932 के दिन पार्लियामेंट में भारतमंत्री ने सरकारी नीति बतलाते हुए जो कुछ कहा था वही नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अब भी जारी है। जब मिस्टर गांधी स्पष्ट रीति से अपने को सत्याग्रह से अलग कर लेंगे तभी उन्हें छोड़ा जा सकता है। यह सब लोगों पर प्रकट हो जाना चाहिए। क्या वाइसराय महोदय की इस नीति से समझौते का समय निकट आ सकता है?

हम यह नहीं कह सकते कि लखनऊ सम्मेलन में सर्वदल के मुसलमान मिलकर समझौता कर ही लेंगे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि महात्मा गांधी के छूटने से समझौता हो ही जाएगा। परंतु यह अवश्य कहा जाएगा कि यह प्रयास एक बड़ी ही शुभ दिशा में हो रहा है और बड़े ही प्रभावशाली अवसर पर आरंभ हुआ है। महात्माजी के जेल से बाहर रहने से अवश्य ही बहुत बड़ी मात्रा में सहायता मिलती और उनकी सच्ची संधि-कामना और उनके व्यापक प्रभाव से अच्छे फल फलते।

## निरस्त्रीकरण क्यों नहीं?

*मेनचेस्टर गार्जियन* पत्र में प्रोफेसर गिलबर्ट स्लेटर ने एक पत्र प्रकाशित कराया है जिसमें आप प्रोफसेर गिलबर्ट मरे के इस कथन का अनुमोदन करते हैं कि जेनेवा के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की सफलता में महान बाधा ब्रिटेन के प्रतिनिधियों ने उपस्थिति की। आप आगे कहते हैं, 'यदि हम यह पूछें कि हमारी सरकार ने क्यों वैसा रुख दिखाया, क्यों वह यह घोषणा करती है कि जहां तक संभव था वहां तक शस्त्र त्याग किया जा चुका है, वह किस कारण नए और भयानक बम चलाने वाले हवाई जहाजों की धुन में रहती है तो इनका उत्तर है 'इंडिया'। 'भारतीय व्यवस्था परिषद इस बात का आग्रह करती ही रह गई कि राष्ट्रसंघ सभा अन्य राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत के ही प्रतिनिधि मुखिया बनाए जाएं। यदि आज आगा खां की जगह सर शिवस्वामी अय्यर जैसे व्यक्ति को भारत का प्रतिनिधित्व सौंपा होता तो भारत निरस्त्रीकरण में कुछ दूसरे ही रूप में भाग लेता। आगा खां ने केवल मौखिक रीति से निरस्त्र होने की आवश्यकता का समर्थन किया पर भारत के संबंध में यह मत जाहिर किया कि यहां की सेना-शक्ति उतनी ही है जितनी देश की रक्षा के लिए अनिवार्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि यहां उसमें काट-छांट नहीं की जा सकती। यदि अपनी औकात से इतना अधिक खर्च करना भारत की आत्मरक्षा के लिए अनिवार्य है तो हमें भय है कहीं इस 'आत्मरक्षा' शब्द का अर्थ कोष ग्रंथों से शीघ्र ही उलट देने की नौबत आ जाएगी।

## श्री जयकर का बयान

महात्मा गांधी से यरवदा जेल में मिलने की मुमानियत कर दिए जाने से देश भर में क्षोभ उत्पन्न हुआ है। सर शिवस्वामी अय्यर को वाइसराय ने जो पुराना राग सुनाया है वह बिलकुल बेसुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। सरकार की तरफ से जो बेशऊरी दिखाई जा रही है उसपर भारत के प्रसिद्ध शांतिदूत श्री जयकर की सम्मति पढ़ने योग्य है—

> मेरी राय में सरकार ने बेशऊरी दिखाई है जैसाकि वह नाजुक मौकों पर अकसर दिखाया करती है। यदि सरकार समझदार होती तो वह पूना समझौते से उत्पन्न हुई सद्भावना से लाभ उठाती और ऐसे ही ऐसे दूसरे तरीकों की तलाश करती जिससे आजकल की कटुता दूर हो जाती। परंतु अभाग्यवश नौकरशाही में इतनी कल्पनाशक्ति ही नहीं है। मैं समझता हूं कि यदि हमारी बातचीत बंद न की जाती तो अच्छे नतीजे निकल आते। हममें से बहुत से यह भावना लेकर पूना के बाहर निकले कि अगर सरकार भयंकर भूल न करती तो देश में आखिरकार सम्मानपूर्ण शांति स्थापित हो जाती।

सवाल यह उठता है कि श्री जयकर जैसे व्यक्ति जो पिछले वर्षों से सरकार के आशय के सबसे बड़े जानकारों में समझे जाते थे और सरकारी विभाग में सम्माननीय रहे हैं, उनका परामर्श जब सरकारी कानों में नहीं प्रवेश करता तब और किसका प्रवेश करेगा?

## प्रेमचंदजी का साहित्य—1

आज आप सामयिक पत्रों में जो चर्चा पढ़ चुके हैं कल प्रेमचंदजी की कहानियों में उसे दुबारा पढ़िए। उपस्थित प्रसंगों पर जो भावमय निबंध लिखे जाते हैं अथवा जो संपादकीय लेख छपते रहते हैं, प्रेमचंदजी की कहानियां उन्हीं का दूसरा रूप है। यह दूसरा रूप प्रदान करने में कहानी की तकनीक खड़ी करने में प्रेमचंदजी को कमाल हासिल है। यह मुक्तकंठ से प्रत्येक समीक्षक स्वीकार करेगा। हमारा तो अनुमान है कि इतने सीमित क्षेत्र में इतना अधिक साहित्य निर्माण करना प्रेमचंदजी के कला-कौशल का निश्चित प्रमाण है और हम तो यह नहीं जानते कि संसार के किस दूसरे उपन्यासकार ने इतनी थोड़ी सामग्री से इतना विशाल साहित्यसृजन किया है। सामग्री थोड़ी नहीं तो और क्या है? सामयिक वातावरण कितना घिरा हुआ है क्या यह आप नहीं देखते? यदि संक्षेप में सुनना चाहिए तो सुन लीजिए कि देश में संप्रति एक आंधी-सी चल रही है। सामूहिक आंदोलन आंधी नहीं तो और क्या है? जो एक अर्द्धजाग्रत अर्द्धनिद्रित सामूहिक चेतना कभी धूम्रवत, कभी अग्नि शिखा-सी दिखाई दे जाती है, यह उस आंधी की ही प्रज्वलित की हुई है। कुछ परंपराएं पेड़ों-सी उखड़ी जातीं, कुछ पत्तों-सी उड़ी जाती हैं। सागर में भी हिल्लोल हो उठा है जिससे कुछ बहुमूल्य मणिरत्न भी तट पर आ अटके हैं। तथापि है यह आंधी ही, इसलिए वे रत्नादिक न जाने किस दूसरे झोंके में विलीन हो जाएं। यह ऐसा अवसर आया हुआ है कि सामयिक विचार-प्रवाह समूहमुखी, धुंधला, अनिर्दिष्ट और स्थूल बन रहा है। कुछ थोडी-सी ज्योतिष्मती उपयोगिनी भावनाएं जाग्रत हुई हैं जिन्हें दीवाली के रुपयों की भांति 'जगाने' में ही सामयिक साहित्य की अधिकांश शक्ति लग रही है। हमारे पत्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में नवीन उद्‌भावना के लिए स्थान नहीं है, समाज में भी संप्रति व्यक्ति की शतशः-सहस्रशः अमूल्य कृतियों के विकास का अवसर नहीं है। जो थोड़ी सी आग बन पाई है, वह बुझ न जाए यही दुश्चिंता सर्वोपरि हमारे मस्तिष्क में वास करती है। ऐसी परिस्थिति में यदि हमारा अधिकांश साहित्य छिछला और अल्पप्राण है तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं। प्रेमचंदजी ने पिछले *जागरण* में जो लिखा है कि साहित्य का संबंध बुद्धि की अपेक्षा भावों से अधिक है। उसका अर्थ हम समझ गए। उसका अर्थ यही है कि स्त्रियों के अधिकार, यथायोग्य विवाह, अछूत, किसान, सेवासंस्था, सामान्य पारिवारिक जीवन आदि से संबंधित सौ-पचास सामूहिक भावों को उद्दीपित करते रहिए और तर्क-वितर्क मत करिए। किंतु प्रेमचंदजी को यह विचार करने का अवसर ही नहीं मिला है कि आज जो सौ-पचास भाव समाज के सतह पर आ गए हैं वे भी बुद्धिमान व्यक्तियों की बुद्धिजन्य क्रिया के ही फल हैं। क्या कहानी लेखक इन्हीं सतह पर आए हुए सौ-पचास भावों को लेकर बैठा रहे, उनके अंतरंग में प्रवेश करने, उनका रहस्य जानने का प्रयत्न न करे? क्या वह इतने ही इन-गिने भावों के बीच चक्कर काटा करे, अपनी बुद्धि-विवेक से नई भूमि न तैयार करे? क्या आंधी से ऊपर उठकर स्वच्छ वातावरण में वह जीव-जगत की असंख्य मनोरम परिस्थितियों का दर्शन नहीं कर सकता? रसमय साहित्य की रचना करने का क्या अब यही उपाय शेष रहा है कि समूह के कुछ भावों को (जो बिना साहित्यकला के योग के भी रसोन्मुख हैं) शब्द शक्ति से चमत्कृत कर दिया जाए? क्या इस नानाविधि सृष्टि के नव-नव प्राणधारियों के हृदयों की बंडी खोल देने में कम रस है? क्या नारी की स्वतः संभूत लज्जा और स्वेच्छाकृत आत्मसमर्पण अधिकार लालसा से कम रसमय है? समाज राजनीति आदि के घेरे में बाहर जो विराट मनुष्यता हमें चिर दिन में प्लावित कर रही है क्या वह हठात हमारी बुद्धि आकर्षित नहीं करती? एक ही प्रश्न और, क्या प्रेमचंदजी की इस अल्प परभाव-तृप्ति से उनकी नित्य नवीन जिज्ञासा कहीं अधिक रसमयी न होती? फिर किस अर्थ में बुद्धि साहित्य से संबंध नहीं रखती?

साहित्य का संबंध बुद्धि से नहीं, यह उक्ति प्रत्येक दृष्टि से असिद्ध है। बुद्धि केवल दर्शन, विज्ञान, नीति के लिए है, यह और भी अनोखी बात है। बुद्धि, दर्शन, विज्ञान, नीति सब साहित्य के लिए हैं, यदि साहित्य मनुष्य के लिए है। केवल साहित्य की प्रणाली यह है कि वह बुद्धि, दर्शन, नीति विज्ञान सबको रसमय बनाकर उपस्थित करता है। कला की पहली आवश्यकता यह है कि जो कुछ अभिव्यक्त किया जाए उसकी आकृति कलाकार के मस्तिष्क में स्पष्ट खिंच जानी चाहिए। कलाकृति का प्रत्येक अंग—उपन्यास का प्रत्येक वाक्य—उसके रचयिता के सामने मुकुरवत दिखाई देना चाहिए। चिकने, रुखड़े, धुंधले, साफ, सुंदर-असुंदर भांति-भांति के रूप जैसे भी व्यक्त किए जाएं, लेखक को प्रत्यक्ष होने की चाहिए। उपन्यासकार अथवा कहानी लेखक यदि अपने पात्रों की रुचि का, विकास का, प्रत्येक गति का अध्ययन नहीं करता रहेगा तो क्या वह अंध साहित्य की सृष्टि करेगा? साहित्य का रसमय होना साहित्यकार की इसी अंतर्दृष्टि पर अवलंबित है। अभिव्यक्ति मात्र के लिए यह प्रारंभिक आवश्यकता है कि कलाकार के मानसपटल पर उसका स्वरूप प्रकट हो, बाह्य जगत को दिखाने के पहले स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही वह उसके दर्शन करे। यह दर्शन कल्पना, बुद्धि, विवेक की साधनाशक्तियों की कृपा से ही यथावत प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक कलावस्तु को बाहर से चाहे जितना रसमय बनाने का परिश्रम किया जाए जब तक उसके अंतर में कृतिकार की चैतन्य आत्मा नहीं झलकती, जब तक विवेक-प्रसूत एक दर्शन रक्तप्रवाह की भांति इस कला-शरीर को सजीवता नहीं प्रदान करता, तब तक क्या हम उसे सम्यक् अर्थ में कलाकृति कह सकते हैं?

प्रेमचंदजी की दृष्टि व्यक्ति पर न ठहरकर उसके भावों पर ठहरती है। व्यक्ति पर ठहरने के लिए जो बुद्धि चाहिए उस बुद्धि की वे साहित्य के लिए आवश्यकता नहीं समझते। परंतु उसकी आवश्यकता के विषय में हमें संदेह नहीं है। उस बुद्धि के अभाव में प्रेमचंदजी व्यक्ति के अन्य अवयवों के साथ अन्याय करके भावों के साथ अतिन्याय करते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व में भाव ही तो सब कुछ नहीं हैं। उसके संस्कार, उसकी परिस्थिति, उसकी रुचि, उसका शारीरिक संघटन यह सब भी तो हैं। पर प्रेमचंदजी केवल भावों से अपना मतलब बतलाते हैं और बहुत अंशों में रखते भी हैं। दूसरे शब्दों में प्रेमचंदजी मनुष्य की विविधता, उसके व्यक्तित्व के असंख्य यथार्थ रूपों से प्रीति नहीं रखते, केवल सामूहिक भावों को प्रोत्साहित करते हैं। अतएव प्रेमचंदजी के उपन्यास-पात्रों में व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की अपेक्षा कथानक का प्रवाह अधिक है, वर्णन द्वारा वे प्रसंगों को रसमय बनाते हैं, चित्रण द्वारा कम। भावों की आंधी में वे पाठकों को उड़ाना चाहते हैं पर योगस्थ पाठक यह देखते हैं कि उनके पात्र ही आंधी में उड़ रहे हैं। यह प्रेमचंदजी की भावुकता का दृश्य है। बहुत कम रचनाओं में प्रेमचंदजी स्थिरबुद्धि होकर पात्रों, घटनाओं और भावों के बीच निसर्गसिद्ध साम्य (Harmony) स्थापित कर सके हैं। बहुत कम कहानियां स्वतःप्रसूत, स्वतःविकसित और स्वतःसमाप्त हो सकी हैं जैसे फूल आप से आप खिलता और आप ही मुरझाकर गिर पड़ता है। पुष्प के विकास के समय जैसे उसके सब दल खुल पड़ते हैं, जैसे उसके अंग-अंग सब समान रूपमाधुरी से कमनीय हो उठते हैं, उस रूप में साहित्य के दर्शन प्रेमचंदजी ने कम ही किए हैं क्योंकि वे दर्शन का साहित्य से संबंध ही नहीं मानते। हमारे शास्त्रों में मुक्ति का अधिकारी व्यक्ति ही माना गया है, समूह नहीं। भावों का विकास व्यक्ति का ही आश्रय लेकर होता है, अतः यहां भी व्यक्ति ही प्रमुख है। किंतु प्रेमचंदजी साहित्य के लिए भाव को ही प्रमुख मानते और उसे रमसय बनाने के प्रयास में व्यक्ति को भावों का भारवाही भी बना देते हैं। परंतु इस पर अधिक सम्मति देने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि यहां हम प्रेमचंदजी के साहित्य का केवल दिग्दर्शन कर रहे हैं।

(रविवार, 16 अक्तूबर 1932)

## राष्ट्रसंघ की खरी बातें

इस बार राष्ट्रसंघ की असेंबली का उद्घाटन करते हुए उसके अध्यक्ष मिस्टर डी. विलेरा ने संघ को जो खरी खरी सुनाई, उसे सुनकर असेंबली में सन्नाटा छा जाने की खबर कई दिन हुए छप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चुकी है। सन्नाटे के भंग होने के बाद रूटर ने यह समाचार भेजा कि जापानी प्रतिनिधि अवसर आने पर चीन-जापान संबंधी अध्यक्ष की बातों का उत्तर देंगे। जापान के प्रति अवश्य ही कुछ नागवार बातें जापानी प्रतिनिधि को सुननी पड़ीं जिनका उत्तर देने के लिए वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राष्ट्र के महत्वशाली सदस्य ब्रिटेन और फ्रांस आदि के लिए भी मिस्टर डी. विलेरा ने कुछ कटु संदेश सुनाया जिसका रूटर के तार के मुताबिक उक्त राष्ट्रों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। राष्ट्रसंघ का समर्थन करते हुए इस संबंध में जो दलीलें उपस्थित की गईं उनमें एक मार्के की दलील रूटर की कृपा से हम लोगों को मालूम हो सकी है। दलील यह है कि राष्ट्रसंघ का कुल सालाना व्यय उतना भी नहीं है जितना एक लड़ाका जहाज तैयार करने में लगता है। तो क्या इस थोड़े व्यय से जो संस्था चल रही है उसकी उपयोगिता उसके खर्च को देखकर ही आंकी जाए? यदि संघ के ब्रिटिश समर्थक का यही आशय था तब तो राष्ट्रसंघ की उपयोगिता संभव है उसके खर्च को देखते हुए बहुत कम न पड़े, पर राष्ट्रसंघ का विज्ञापन अब तक उसके पीछे होने वाले खर्च की बुनियाद पर नहीं किया गया। उसे संसार में शांति और सद्भाव का नवीन युग उपस्थित करने वाली संस्था बताया गया है और देश-विदेश में उसके इसी आशय के कारण उसका सम्मान हुआ था। बड़े-बड़े शक्तिशाली और छोटे-छोटे निःशक्त राष्ट्र समभाव से उसमें प्रवेश हुए थे। और बड़ी आशा लेकर प्रवेश हुए थे। उस समय उन्हें यह गुमान न था कि लीग का मूल्य उसके व्यय के अनुसार कूता जाएगा क्योंकि वे तो उसे मनुष्य जगत का उबार करने वाली एक अमूल्य संस्था समझ रहे थे। संघ के नियमों और फर्मानों में जो वचन कहे गए हैं क्या वे सब निर्मल हैं?

मिस्टर डी. विलेरा के भाषण की जो विस्तृत रिपोर्ट हमें अब प्राप्त हुई है उसमें वे कहते हैं कि राष्ट्रसंघ के चारों ओर जन-समाज में अपने प्रति अविश्वास उत्पन्न कर दिया है और यदि वह अब की तरह मौलिक शब्दशास्त्र का ही कोष तैयार करता रहेगा तो संघ के बड़े-बड़े साम्राज्यवादी राष्ट्र उसके पक्ष में चाहे जितने ऊंचे आदर्श उपस्थित करें वह सब भ्रमजाल ही सिद्ध होगा। समय आ गया है जब एक ओर या दूसरी ओर फैसला हो जाएगा। शीघ्र ही जनता जान लेगी कि राष्ट्रसंघ अपनी दुर्बलता के साथ स्वयं ही समाप्त हो जाएगा अथवा वह शक्ति के साथ नया उत्साहप्रद और प्रगतिशील रूप धारण करेगा। संघ के विरुद्ध आज व्यापक लोकमत यह आवाज उठा रहा है कि संघ साधारण मामलों को तूल देता है और वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर या तो ध्यान ही नहीं देता या उन्हें थोड़े में ही चलता करता है। संघ में यद्यपि सब राष्ट्र बराबरी के आधार पर सम्मिलित होते हैं पर यह बराबरी केवल नाम भर की है। छोटे-छोटे राष्ट्र बोलने का अधिकार तो रखते हैं पर उनकी सुनवाई नहीं होती। लोग तो अब यह जानने के लिए अधीर हो रहे हैं कि क्या संघ से उनका उतना मतलब भी हल होता है जितना वे उसके बजट में व्यय करते हैं। मिस्टर डी. विलेरा इसी प्रवाह में भाषण देते गए और उदाहरण रूप में चीन-जापान समस्या में जापान की ज्यादती आदि का उल्लेख करते गए। पिछले छह महीनों से निरस्त्रीकरण सम्मेलन का जलसा हो रहा है पर इस बीच में उसमें उल्लेख करने लायक क्या काम किया गया? छोटे-छोटे राष्ट्र तहेदिल से अस्त्र कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करने को तैयार हैं पर उनकी तैयारी से किसके कानों में जूं रेंगे?

यदि राष्ट्रसंघ अपने फरमानों पर गौर करे और अपने मूल सिद्धांतों के अनुसार काम करने को तैयार हो तो अभी ही हालत सुधरने की गुंजाइश है। पर नहीं, वह उस प्रकार काम करने के कोई लक्षण नहीं दिखा रहा। संघ ने अपने को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (Free Trade) के पक्ष में घोषित किया है पर आज संघ के बड़े-बड़े राष्ट्र उसके विरुद्ध ही आचरण कर रहे हैं और अतिरिक्त कर लगाकर विदेशों का माल अपने यहां प्रवेश करने से रोक रहे हैं। इसकी क्या कोई दवा संघ की तरफ से की गई है, अथवा की जा सकती है? इसी तरह के एक नहीं अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को अछूत समझकर संघ अपनी बैठकें करता जा रहा है। मिस्टर डी. विलेरा की खरी बातों का संघ पर असर पड़ना कठिन ही है क्योंकि वे स्वयं भी एक छोटे राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं यद्यपि इस बार अध्यक्ष चुने गए हैं। मिस्टर डी. विलेरा की वक्तृता सुनकर साधुवाद द्वारा नहीं बल्कि सन्नाटे द्वारा उसका जो स्वागत किया गया उससे ही संघ के भावों का पर्याप्त पता लग जाता है।

## कमाल पाशा का कमाल

टर्की के अध्यक्ष मुस्तफा कमाल पाशा के विषय में अनेक ऐसी बातें प्रकाशित हो चुकी हैं कि जिन पर सहसा विश्वास की जगह आश्चर्य होता है। अभी हाल ही में कलकत्ते के *हिंद जहीर* पत्र के कॉस्टेंटीनोपल के संवाददाता ने अपने पत्र के लिए सारे यूरोप खंड को चकित कर देने वाले टर्की के इस महापुरुष संबंधी अनेक समाचार भेजे हैं। संवाददाता का कहना है कि कमाल पाशा के सदृश व्यवसायी मनुष्य आज इस (टर्की) देश में दूसरा नहीं है। यह महापुरुष सुबह, शाम, दोपहर, हर समय कार्य में निमग्न रहता है। रोजमर्रा कार्यों का भार वहन करते हुए भी अपने राष्ट्रीय सुधार संबंधी अनेक विषयों की ओर ध्यान देना और उसका प्रयत्न करना भी आवश्यक समझकर उसके लिए समय निकालता है। अन्य पूर्वी देशों और मुस्लिम राष्ट्रों के लोगों की भांति तुर्क लोग भी समय के मूल्य को भूल गए थे। निरर्थक बातों में घंटों का समय नष्ट करने वाली प्रवृत्ति के कारण ही राजकीय तथा तपस्वी के कार्यों में हानि पहुंचने लगी थी। कमाल पाशा जैसे महाप्रयासी दीर्घोद्योगी महापुरुष को निठल्ले बैठने से चिढ़ है। यह उससे होने वाली हानि को बरदाश्त नहीं कर सकते, इसलिए उसको दूर करने का निरंतर प्रयत्न करते हैं। निठल्ले बेकार बैठकर समय नष्ट करने वाले आदमी से कमालपाशा को घृणा है। ऐसे आदमियों को देखकर वे रुष्ट होते हैं। आलसियों को देखकर आप कहते हैं कि ये अपने राष्ट्र के द्रोही और अन्य लोगों में आलस्य का प्रचार करने वाले तथा समय से अपव्यय द्वारा उनको अपार हानि पहुंचाने वाले मनुष्य हैं। आप आलसियों को सजा देने का कानून भी जारी करने का विचार रखते हैं। कमाल पाशा उपरोक्त विषय को केवल कहकर ही नहीं व्यक्त करते वरन् अपना राष्ट्र कैसे आलस्य को त्याग कर कार्यार्थी बने इसकी चिंता में रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं और भरसक प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी सड़कों पर पैदल घूम-घूम कर इधर-उधर टहलते हुए, धीरे चलते हुए मनुष्यों को देखकर उनसे उनके घूमने का कारण पूछते हैं। उपरोक्त श्रेणी के आदमियों से आप प्रायः निम्नलिखित प्रश्न करते हैं–

क्यों भाई इतने धीरे-धीरे क्यों चल रहे हो? बीमार तो नहीं हो? यदि ऐसा हो तो अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था कर दें? इस पर यदि यह उत्तर मिला कि 'नहीं, बीमार तो नहीं हैं, वैसे ही घूम रहे हैं।' तो फिर वे पूछते हैं कि धीरे-धीरे क्यों चलते हो और बेकार क्यों घूम रहे हो? आप भी बेकार और अन्यों के लिए भी प्रदर्शन कर रहे हो, यह कहकर उसका प्रेमपूर्वक हाथ पकड़कर उससे कहते हैं कि जोर से चलो, उत्साह रखो, काम करो। ऐसी शिक्षा दे-देकर अपने राष्ट्र की आलस्य समस्या को हल करने का उद्योग किया करते हैं।

यह केवल टर्की के ही लिए नहीं, सर्वराष्ट्रों के आदर्श के पात्र हैं, और विशेषतः भारत को तो अविलंब ही इसके अनुकरण की आवश्यकता है।

## *कल्याण* का ईश्वरांक

हिंदी के प्रसिद्ध धार्मिक पत्र *कल्याण* का 'ईश्वरांक' प्रकाशित हुए कुछ दिन हो गए। उसके अध्ययन के उपरांत अब हम उसका सत्कार कर रहे हैं। *कल्याण* के इस वृहत् विशेषांक में देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विचारकों और भक्तों के लेख प्रकाशित हुए हैं। इसके कुछ लेखक विद्वान विदेशी भी हैं। हिंदी के पाठकों की यह संपूर्ण सामग्री सुलभ करने के उपलक्ष्य में *कल्याण* के संपादक हम सबके कृतज्ञता के पात्र हैं। अपने विषय का इतना विद्वतापूर्ण अंक हमने देशी पत्रों का नहीं देखा। 'ईश्वरांक' में ईश्वर संबंधी भावनामय लेख उतने नहीं, जितने दार्शनिक और तात्विक लेख हैं। इससे हम प्रसन्न हुए। इन लेखों में से कुछ तो विचार-प्रमुख होते हुए भी कविता की भांति पूर्ण कलाकृति के समान सुंदर हैं। आचार्य आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव का लेख ऐसा ही है। अन्य अनेक लेखों की विचारधारा बड़ी ही जमी हुई और अटूट हुई है। पढ़कर विशेष तृप्ति मिली। भावनामय लेखों में आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी का लेख बड़ा ही करुण शांतिप्रद है। जगदगुरु शंकराचार्य के प्रतिनिधियों तथा अन्य मठाधीशों से भी अधिक मार्मिक लेख गृहीजनों के लिखे हुए हैं। यह कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है कि *कल्याण* का यह अंक अपने विषय का अद्वितीय और हिंदी में ऐतिहासिक महत्व रखता है। विद्वान और प्रयासी संपादक को बधाई।

## प्रेमचंदजी का साहित्य–2

ख्वाजा हसस निजामी साहब ने दिल्ली की एक सभा में प्रेमचंदजी का सत्कार करते हुए कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



था कि जिस जमाने में हिंदू और मुसलमान गुमराह होकर कट-मर रहे थे और हिंदू-मुस्लिम नेता वैमनस्य की आग भड़का रहे थे, उस जमाने में प्रेमचंदजी दर्दभरी कहानियां लिखकर राष्ट्रीय प्रीति का संदेश सुना रहे थे। परंतु ख्वाजा साहब ने प्रेमचंदजी का *कायाकल्प* उपन्यास नहीं पढ़ा होगा। राष्ट्रीय आंदोलन के शिथिल पड़ने पर सन् '24-25-26 में प्रेमचंदजी हिंदू संघटन के नेता का रूप भी धारण कर चुके हैं। उस समय का वही रवैया था। प्रेमचंदजी भी समय के साथ थे। किसी प्रकार की कृत्रिमता लेकर नहीं, पूरी ईमानदारी के साथ उन्होंने समय का साथ दिया। यह ईमानदारी प्रेमचंदजी की बहुत बड़ी विशेषता है और यही उनके गौरव का मुख्य हेतु है। वे भीतर-बाहर एक हैं। उनकी रचनाधारा उनकी मनोधारा के सर्वत्र समानांतर बहती है। जो कुछ वे सत्य समझते हैं, सुंदर समझते हैं, लिखते हैं। यह अतिशय प्रशंसनीय प्राकृतिक रुचि है। प्रेमचंदर्जा को अपने सत्य पर इतना विशेष विश्वास है कि उसके संबंध में उन्हें शंका उत्पन्न नहीं होती। अभी उस दिन श्रीयुत इलाचंद्र जोशीजी ने नारी की प्रकृति का उल्लेख करके उसे पुरुष की वशवर्तिनी बताया था। उन्होंने किन्हीं देवीजी के किसी लेख के उत्तर में उसे लिखा था। प्रेमचंदजी ने लेख का पाठ किया। वे नारी की स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं। स्त्रियों के उत्थान का जो आंदोलन मच रहा है प्रेमचंदजी उसके साथ हैं। अतः उन्होंने इलाचंद्रजी के विरोध में लेख लिखाने की इच्छा की। लखनऊ के श्रीयुत गयाप्रसाद शास्त्री ने उनकी इच्छानुसार लेख लिखा और प्रेमचंदजी ने उसे *हंस* में प्रकाशित किया। शास्त्री महाशय का वह लेख इतना विचारशिथिल था कि उसे पढ़कर यह कोई नहीं कह सकता कि उसमें इलाचंद्रजी को सम्यक् उत्तर दिया जा सका परंतु प्रेमचंदजी ने अपने विश्वास के अनुसार उसे प्रकाशित किया। कोरी भावुकता का असंबद्ध प्रदर्शन भी एक विचारपूर्ण लेख के उत्तर में किया जाना चाहिए या नहीं, यह प्रश्न वह लेख प्रकाशित करते हुए प्रेमचंदजी के मस्तिष्क में नहीं उठा। इस प्रसंग से प्रेमचंदजी के अत्यंत सरल स्वभाव और भावमय मनोवृत्ति का परिचय मिल जाता है।

सामयिक आंदोलन को ही वे राष्ट्रीयता का नाम देते हैं। जो इस आंदोलन के जितना ही साथ है वह उतना ही राष्ट्रीय है। इस राष्ट्रीयता के प्रेमचंदजी बहुत बड़े प्रशंसक हैं और इसमें किसी प्रकार का अवगुण अथवा अस्थायित्व वे कम देखते हैं। राष्ट्रीयता की इस धारा को वे सामान्य मनुष्यधारा मानकर—पूरे विश्वास के साथ—राष्ट्रधर्म को मनुष्य धर्म के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। इस राष्ट्रीयता के रंग में सराबोर होकर प्रेमचंदजी की साहित्यकला रंजित हुई है। प्रेमचंदजी की आत्मा में भी इसी का प्रकाश है। इस राष्ट्रीय वातावरण से प्रेमचंदजी ने जीवनदायक उत्साह संचय किया है और उनका यह उत्साह कभी क्षीण नहीं होता। उनके उपन्यासों और कहानियों में जो उत्कट आशावाद दिखाई देता है वह इस युग की वरेण्य विभूति है। नवयुवक रचनाकारों की निराशा और रुदन के सामने प्रेमचंदजी की प्रौढ़ आशा शोभाशालिनी अथच प्राणप्रद हो रही है। जान पड़ता है प्रेमचंदजी का व्यक्तित्व उत्साह और उत्कट उद्योग की आधारशिला पर स्थापित हुआ है। सामयिक परिस्थिति में आशा के लिए कम ही स्थान है यद्यपि एक आशाप्रद राष्ट्रीय हलचल मची हुई है। परंतु प्रेमचंदजी में यह पक्ष इतना प्रबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। हमें उनके साहित्य में आशा और उत्साह का संदेश मिलता है और हिंदी राष्ट्र को भी पर्याप्त मात्रा में मिला है। प्रेमचंदजी की चेतना इन्हीं दोनों के सम्मिलन से उद्दीप्त हुई है और वही प्रकाश उनकी रचनाओं में प्रसार पा रहा है। शक्ति का इतना बड़ा उपासक हमारे साहित्य में कोई दूसरा नहीं है।

शक्ति के साथ यदि संयम हो तो उसकी उपयोगिता स्पष्ट ही है। प्रेमचंदजी की रचनाएं विशेष रूप से संयमित हैं। *लिबर्टी* ने यह ठीक ही लिखा है कि प्रेमचंदजी में अतिवाद नहीं है, वे मध्यवर्ती साहित्यकार हैं। यह उनके संयम का ही परिचय है। वे तीव्र व्यंग्य न करके मीठी चुटकियों का प्रयोग करते हैं। अपनी धारणाओं पर उनकी आस्था बड़े ही प्रसन्न रूप में दीख पड़ती है, नहीं तो वे मीठी चुटकियां न ले पाते। यह प्रेमचंदजी की प्रशंसनीय वृत्ति है कि वे जिस विषय अथवा भावना को अपनाए हुए हैं और जिसके संबंध में उनके मन में कोई तर्क-वितर्क नहीं है उसे भी वे अधिकतर तीव्र बनाकर, कटु बनाकर प्रभाव नहीं डालते। इसे उनकी उदारता की सूचना समझनी चाहिए। इसी उदारता की ओर हम उनके उन समीक्षकों का ध्यान आकर्षित करते हैं जो उन्हें ब्राह्मण-द्रोही समझने की मिथ्या धारणा रखते हैं।

भावों का उद्रेक करने में प्रेमचंदजी ने अवश्य मनुष्यता की ओर से दृष्टि खींची है। यदि इसकी त्रुटिपूर्ति किसी प्रकार हो सकती है तो प्रेमचंदजी ने भावों को सुचारु, सद्भावना बनाकर की है। प्रेमचंदजी ने एक अनिर्दिष्ट राष्ट्रीयता का निर्देश किए बिना ही उसका पल्ला पकड़ा है, यदि इसकी त्रुटि-पूर्ति किसी प्रकार हो सकती है तो प्रेमचंदजी ने राष्ट्रीयता में उदारता की अच्छी मात्रा रहने दी है और उसमें आशा की कांति झलका दी है। यदि कल्पना की उच्च परिधि तक प्रेमचंदजी की पहुंच नहीं है तो उनकी ईमानदारी के संबंध में कोई दो बातें नहीं कही जा सकतीं। साहित्य के लिए बहुत सी साधारण बातों की अपेक्षा इस ईमानदारी का महत्व अधिक है। प्रेमचंदजी के साहित्य को उनके व्यक्तित्व की पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हुए हैं। इस युग में यह भी एक बड़ी बात है। कहा जाता है कि खुदा को आंखों से नहीं देखा तो क्या अक्ल से भी नहीं पहचानते। प्रेमचंदजी ने अपनी काम्य वस्तुओं को यदि अक्ल से नहीं पहचाना तो कम से कम आंखों से जरूर देखा है। इस दृष्टिशक्ति का अधिक से अधिक उपयोग प्रेमचंदजी के साहित्य में किया गया है।

हमारे चारों तरफ जो दुःखपूर्ण परिस्थिति छाई हुई है उसी के भीतर से आशा की झलक दिखाना प्रेमचंदजी की मुख्य कला है। समाज की जो वेदना उसकी भिन्न-भिन्न संस्थाओं से ऊपर सिर उठाकर दिखाई दे रही है प्रेमचंदजी ने उसका विलाप सुना है। अपने साहित्य में उन्होंने उसके परितोष का प्रयत्न किया है। इस मनुष्यधर्म के पालन करने में प्रेमचंद ही समर्थ और सफल हुए हैं। उनका अधिकांश साहित्य समाज के सच्चे-झूठे कष्टों में डूबा हुआ है और प्रेमचंदजी अधिकांश में उसके निवारण करने में लगे हुए हैं। रोगी को चिकित्सा से भी अधिक जिस तसल्ली की संप्रति आवश्यकता है वह उसे प्रेमचंदजी के साहित्य में मिल रही है। यह प्रशंसनीय उद्योग है।

(गुरुवार, 20 अक्तूबर 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# राजनीतिक अवस्था

देश की राजनीतिक अवस्था उतनी अच्छी नहीं है जितनी वह सतह पर से दिखने लगी है। महात्मा गांधी के व्रत समाप्त होने के तीन दिन के भीतर यरवदा जेल का द्वार बंद कर दिया गया और गांधीजी से मिलने आए हुए पं. मदन मोहन मालवीय और श्री जयकर जैसे शांतिकामी नेता लौटा दिए गए। इस सरकारी कार्रवाई का विरोध सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर तक ने किया जिनसे बढ़कर मान्य नेता सरकार की निगाह में कौन है, यह हमें मालूम नहीं। पर विरोध का नतीजा अब तक कुछ भी नहीं निकला। लंदन की इंडिया लीग के चेयरमैन बर्ट्रेंड रसेल और प्रोफेसर लास्की ने सप्रू, जयकर और शास्त्री को तार भेजा है कि वे मेकडानल्ड महाशय से इस बात के पूरे सुभीते मांगें कि गांधीजी से मेल-मिलाप के उद्योग में बातचीत की जा सके। यह भी सलाह दी है कि प्रधानमंत्री के अस्वीकार करने पर बदले में उन्हें भी गोलमेज सम्मेलन का निमंत्रण अस्वीकार कर देना चाहिए। अब तक यह मामला यहीं अटका हुआ है पर दूसरी ओर हिंदू-मुस्लिम-सिख समझौता करके सरकारी निर्णय को बदलने की कोशिश की जा रही है। लखनऊ में मुस्लिम नेता सम्मेलन हो गया और एकमत होकर एक कमेटी भी बना ली गई है जो हिंदू और सिख प्रतिनिधियों से बातचीत करेगी। इससे भी आगे का रास्ता सोचा जा चुका है और हिंदुस्तान के क्रिश्चियन, पारसी, एंग्लो-इंडियन, और यूरोपियनों को भी शरीक करके एक सर्वदल सम्मेलन बुलाया जाने वाला है। इस कार्यक्रम के विधायक मौलाना शौकत अली और पं. मदन मोहन मालवीय हैं और आप दोनों ने इस कार्य के सफल होने के लिए गांधीजी का छोड़ा जाना परम आवश्यक अनुभव किया है। परंतु वाइसराय महोदय ने पिछले दिन मौलाना शौकत अली को जो उत्तर दिया था उसे पाठक सुन ही चुके हैं। गांधीजी को छोड़ना तो दूर, उन्होंने सर मुहम्मद इकबाल आदि के विरोधी उदाहरण देकर मौलाना शौकत अली को एक-दूसरे की तरह की चेतावनी दी। यदि अफवाहें सच हैं तो अगले गोलमेज के लिए मुसलमानों में सर आगा खां, डॉक्टर सर इकबाल, मिस्टर गजनवी आदि अधिकांश में वे ही प्रतिनिधि बनाए जा रहे हैं जो लखनऊ की पिछली कॉन्फ्रेंस में शरीक नहीं हुए।

इस समय हिंदू-मुस्लिम स्नेह भाव जो ऊपर से दीख पड़ता है और मौलाना शौकत अली जैसे व्यक्ति भी जिस उदार धरातल से विचार कर रहे हैं इसका एक कारण, संभव है, चारों ओर व्यापी हुई निराशा ही है। पं. मालवीय, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे कोमलचित्त नेता सरकारी रुख से क्षुब्ध हैं। महात्मा गांधी सत्याग्रह से अपना हाथ खींचकर अलग हो जाएं और सरकार को इस बात की खबर की जाए तब सरकार गांधीजी को छोड़ेगी, यह सरकारी शर्त है। क्या यह पूरी हो सकती है? तब दूसरा उपाय क्या है, सिवा इसके कि राष्ट्र को एकमत करके सरकार पर प्रभाव डाला जाए और आगामी विधान में इस एकमत की शक्ति से जहां तक हो सके अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त किए जाएं। यदि संभव हो तो इसी के द्वारा प्रभाव डालकर कांग्रेस के नेताओं को छुड़ाया जाए और देश को उनके सहयोग से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से अधिक उपकार पहुंचाया जाए। यही जब एकमात्र रास्ता रह गया है तब क्यों न उदारतापूर्वक सब जातियां और सर्वदल एक होकर अपनी मांग सरकार के सामने रखें। जब विलायत में भारतीय प्रश्न पर सर्वदल एकमत होना पसंद करते हैं तब क्यों न हम भारतीय भी अपने अधिकार के लिए इकट्ठे हो जाएं। सरकार जब देश की इच्छा पूरी करने में आनाकानी कर रही है तो क्या हम अपना झूठा झगड़ा तय कर उन अधिकारों को भी नहीं प्राप्त कर सकते जिनके देने के लिए सरकार वचनबद्ध है, केवल हमारे एक होने का विलंब है। सेंट जेम्स पैलेस के राजसी वातावरण में जो आपसी एकता नहीं स्थापित हो सकी, वह भारत की परिस्थिति में हम स्थापित कर लें। दो-दो गोलमेजों में बहस मुबाहसा करने में जो समय और शक्ति खर्च की गई, इस अंतिम घड़ी में वह अपने राष्ट्र की वाणी सुन लेने में और अंतिम बार कुछ भलाई कर लेने में लगाई जाए तो क्या अपना ही उपकार न हो? ऐसी ही भावनाओं से प्रेरित होकर संभवः हिंदू-मुस्लिम-सिख एकता का कार्य आरंभ किया गया है और आश्चर्य नहीं यदि लखनऊ सम्मेलन के उपरांत हमारे प्रयाग में होने वाले आगामी सम्मेलन को सफलता प्राप्त हो।

सरकार को उदार और समझदार बनने की जरूरत है। देश में इस समय जो शांति और एकता का आंदोलन उठाया गया है यह कांग्रेस का आंदोलन नहीं है। इस बार तो देश एक व्यवस्थित मार्ग से चलकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता है। इसके संबंध में कोई दो बातें नहीं कही जा सकतीं। सरकार को न केवल एक सभ्य सरकार के नाते वरन् अपने ही वचनों का ध्यान करके हमारे आपसी मेल में सहायक बनना चाहिए। विलायत के अनुदारदलियों के प्रभाव से अथवा देहली के ही विकारयुक्त वातावरण के कारण इस न्यायोचित कार्य में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से यदि सहायता नहीं पहुंचाई जाएगी तो कम से कम अनुचित बाधा भी नहीं डाली जाएगी, इतनी आशा करना भी क्या अधिक होगा?

## डॉक्टर इकबाल का रुख

गोलमेज के लिए विदा होते वक्त डॉक्टर सर मुहम्मद इकबाल ने प्रेस प्रतिनिधि को जो बयान दिया वह स्पष्टतः हमारे समझ में नहीं आया। एक तरफ तो आपने यह कहा कि मुस्लिम भारत फिलहाल पृथक निर्वाचन नहीं छोड़ेगा। फिर पृथक निर्वाचन के विरुद्ध जो कहा जाता है कि वह राष्ट्रीयता के विरुद्ध है इसपर डॉक्टर साहब को विश्वास नहीं है। अर्थात् पृथक निर्वाचन आपकी राय में फायदेमंद है। यदि फायदेमंद है तो फिलहाल ही क्यों सदैव के लिए ही मुस्लिम भारत उसे न छोड़े तो अच्छा हो। तब फिलहाल न छोड़ने की बात का क्या अर्थ है?

महात्मा गांधी की तरह डॉक्टर साहब भी यह मौलिक विचार रखते हैं कि पश्चिमी जनतावाद का स्वरूप भारत के लिए हितकर न होगा, पर किस मानी में हितकर न होगा? गांधीजी ने तो अनेक बार कहा है कि पश्चिमी जनतावाद वास्तविक जनतावाद नहीं है। वास्तविक अधिकार कुछ ही आदमियों के हाथ में पहुंच जाता है। परंतु डॉक्टर इकबाल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पश्चिमी जनतावाद से क्या शिकायत है? क्या यह कि पश्चिमी मुल्कों में जो संयुक्त निर्वाचन की प्रथा प्रचलित है वह भारत में नहीं रखनी चाहिए?

आप कहते हैं कि भारत में राष्ट्रीयता का विकास एक-दूसरे को स्वीकार करने से ही होगा। अर्थात् हिंदू मुसलमानों को स्वीकार करें और हिंदू मुसलमानों से अलग रहकर उन्हें स्वीकार करें। पर यह कृत्रिम स्वीकार-प्रथा कब तक टिक सकती है? क्या इस स्वीकृति से वह स्वीकृति अधिक स्थायी न होगी जो एक विस्तृत समाज के संयुक्त जीवन में समान रूप से भाग लेकर उत्पन्न होगी जो एक कुटुंब के दो व्यक्तियों में आप से आप उत्पन्न हो जाती है?

अपने छोटे से वक्तव्य में एक जगह आप कहते हैं कि मैं समझता हूं, ऑल इंडिया मुस्लिम कॉन्फ्रेंस की पृथक-निर्वाचन की नीति पर ही मुसलमान दृढ़ रहेंगे। फिर आप कहते हैं कि अभी हिंदू और मुसलमानों में समझौते का समय आया है। फिर यह भी कहते हैं कि देखें लखनऊ कॉन्फ्रेंस पर हिंदू नेता क्या रुख दिखाते हैं। इस गड़बड़-सड़बड़ में आपका रुख कौन पइचान सकता है।?

## जागरण

इस नाम का एक साप्ताहिक पत्र सरस्वती प्रेस, काशी से निकल रहा है। इसके पिछले कई अंकों को देखकर हम पत्र को सर्वथा प्रोत्साहन के योग्य समझने लगे हैं। इसके संपादक प्रेमचंदजी हैं परंतु इसमें कथा-कहानी कम ही रहती है। सामयिक और उपयोगी लेख रहते हैं। मुखपृष्ठ पर एक कविता और एक चित्र रहता है। साहित्यिक लेख भी छपते हैं जिनकी विशेषता व्यक्त करने के लिए हम उन्हें जोशीले कह सकते हैं। कुछ विचारपूर्ण साहित्य भी छपना चाहिए। चरित्र-रेखा शीर्षक से हिंदी के वृद्धजनों पर कई लेख निकले हैं जिनमें बहुत नजदीक से चित्र लिये गए हैं। भाषा बीहड़ है। मनोरंजन अधिकांश में स्थानीय और कभी-कभी भद्दा भी होता है। सुधारना चाहिए। पुस्तकों की आलोचना निष्पक्ष और विद्वतापूर्ण कम होती है। प्रेमचंदजी के संपादकत्व में निकलने के कारण इस पत्र को जैसे ऊंचे दर्जे के लेखकों का सहयोग मिलना चाहिए था अब तक नहीं मिला दीख पड़ता। पर ये अभी पहले के अंक हैं। आगे और उन्नति होगी।

(रविवार, 23 अक्तूबर 1932)

## भारत के प्रतिनिधि

शायद वे 'भारत के प्रतिनिधि' ही कहे जाएं जिन्हें सरकारी तौर से गोलमेज जमात के तीसरे संक्षिप्त संस्करण के लिए भरती किया गया है। लार्ड इर्विन जो गोलमेज सम्मेलन के विधाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कहे जा सकते हैं, यह कह गए थे कि नवीन भारतीय विधान बनाने के काम में भारत के प्रतिनिधि, विलायती प्रतिनिधियों के साथ, बराबरी के आधार पर खुले दिल से बातें करेंगे। विधाता के इस वाक्य के अनुसार, 'भारत के प्रतिनिधि' किस रूप में चुने गए, उन्होंने किन विलायती प्रतिनिधियों से किस अवसर पर, कैसी बराबरी के आधार पर, कितने खुले दिल से बातें कीं, इसकी बड़ी लंबी कहानी है पर बेवक्त की शहनाई बजाने की यहां जगह नहीं है। हां, इस सब घटनाचक्र के भीतर जो सत्य है वह स्वीकार किया जाना चाहिए कि गत मजदूर सरकार ने पहले गोलमेज सम्मेलन के लिए कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा की, न मिलने पर उसने अन्य दल वालों को भारत का प्रतिनिधि बनाकर विलायत भेजा और विलायत के तीनों प्रमुख दलों ने उन प्रतिनिधियों के साथ यथासंभव उदारभाव से बातचीत की। पहले सम्मेलन के भारतीय प्रतिनिधियों के विषय में यद्यपि यह शिकायत जरूर थी कि ये शासकवर्ग द्वारा चुने गए थे उनमें कट्टरदल वालों की भरमार थी और प्रतिनिधियों की संख्या उचित से अधिक थी परंतु इन शिकायतों के रहते हुए भी ब्रिटेन की सदिच्छा के संबंध में किसी को विशेष संदेह करने की गुंजाइश नहीं रखी गई थी। इस पहले सम्मेलन में एक भारतीय संघ की जो कल्पना की गई और भारत के लिए केंद्र और प्रांतों में अधिक से अधिक व्यावहारिक अधिकार देने का जो प्रस्ताव स्वीकार हुआ वह उसकी नेकदिली का प्रमाण है। इसी बीच में लार्ड इर्विन कांग्रेस के साथ संधि-प्रस्ताव करते रहे और उन्हें इस कार्य में जो सफलता मिली वह न केवल उनकी व्यक्तिगत विजय थी बल्कि भारत और ब्रिटेन के पारस्परिक व्यवहार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। ब्रिटिश और भारतीय हृदय शुद्ध रूप में एक-दूसरे से मिले दीख पड़े। महात्मा गांधी को गोलमेज के दूसरे अधिवेशन में जाने के योग्य परिस्थिति उत्पन्न करने के आशय से यह अतिशय महत्वपूर्ण घोषणा भी की गई कि केंद्र और प्रांतों में भारत को उत्तरदायित्व शासन देते हुए केवल वे ही संरक्षण रखे जाएंगे जो भारत के हित में सिद्ध किए जाएंगे। महात्माजी विलायत जाने को राजी हुए। यह ब्रिटेन की भारतीय नीति की सफलता का शीर्षबिंदु था।

यहीं से रुख बदला हुआ दीख पड़ता है। लार्ड इर्विन अपना कार्यकाल समाप्त करके घर गए। विलायत में आर्थिक हलचल मची जिसके कारण सोने का सिक्का त्याग दिया गया और आपातकाल के लिए एक 'नेशनल' सरकार की स्थापना की गई। यह 'नेशनल' और कोई नहीं, अनुदार सरकार ही थी। जिस समय भारतीय प्रतिनिधि विलायत की राह में थे, विलायत में वे घटनाएं घट रही थीं। शीघ्र ही नए चुनाव किए गए जिसमें 'नेशनल' सरकार का नाम धारण कर कट्टर अनुदार दल ने ब्रिटिश पार्लियामेंट पर कब्जा कर लिया। सम्मेलन हुआ। भारतीय राष्ट्रीय मत के विरोधियों का एक गुट 'माइनॉरिटी पैक्ट' के नाम से निर्माण किया गया। बेंथल सरकुलर की कथा मालूम ही है। सारांश यह कि इस दूसरे सम्मेलन में, महात्मा गांधी के उपस्थित होने पर भी, राष्ट्रीय दृष्टि से विधान का वास्तविक कार्य बहुत थोड़ा हो सका जिसका अधिकांश कारण नई सरकार का बदला हुआ रुख ही प्रधान रूप में जान पड़ता है। सम्मेलन से लौटने के हफ्ते भर के अंदर महात्मा गांधी यरवदा जेल के भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दीख पड़े और देश में एक दूसरी ही स्थिति आरंभ हुई।

तब से अब तक का अटूट दमनचक्र हमारे देश के लिए एक याद करने की बात बन गई है क्योंकि लोकमत का कथन है कि सन् सत्तावन के गदर के ज़माने से दूसरा ऐसा दृश्य दिखाई नहीं दिया। ध्यान देने की बात है कि इस दमनचक्र की भारतमंत्री सर सेमुएल होर ने अपनी दुतरफा नीति का एक अंग बताया है। इसी हैसियत से आप पिछली मर्तबा यह घोषणा भी कर चुके हैं, 'काफिला चले बाजार कुत्ता भूंके हजार'। मतलब यह कि आपने विधान के काम को इतना अधिक महत्व दिया कि उसकी झोंक में हमारे कुछ देशवासियों के लिए अपमानजनक शब्द इस्तेमाल कर देना भी अनुचित नहीं समझा। अब हम सवाल कर सकते हैं कि सर सेमुएल होर का वह काफला किस रूप में प्रकट हुआ। वाइसराय की कंसल्टेटिव कमेटी अद्धड़ से ही टूट गई। लार्ड लोथियन की कमेटी ने जो काम किया उसका मजाक उड़ाने में ब्रिटिश अनुदार दल के नेता लोग संकोच नहीं करते। संघ-व्यवस्था-जांच-कमेटी ब्रिटिश भारत पर एक करोड़ का भारवहन करने की घोषणा करके रवाना हो गई और अब तीसरे गोलमेज सम्मेलन के भारतीय प्रतिनिधियों की नामावली पाठकों के सामने हाजिर है। क्या यही वह काफिला है जिस पर इतना नाज था?

कौन नहीं जानता कि यह भारतीय विधान निपटारे के लिए अंतिम मौका है। इस बार के ही प्रतिनिधियों का काम आखिरी काम होगा। तो क्या इस अधिवेशन के महत्व के अनुसार ही इसके प्रतिनिधि चुने गए हैं? क्या ये ही वे भारत के प्रतिनिधि हैं जिनकी तलाश में भारत सरकार पिछले दो महीनों से अविश्रांत परिश्रम कर रही थी। इस बार देश की प्रमुख शक्तिशाली संस्था कांग्रेस के प्रतिनिधियों को शामिल करने का क्या प्रयत्न किया गया? कांग्रेस के बाद राष्ट्र की सबसे अधिक राष्ट्रीय संस्था लिबरल फैडरेशन के कितने सदस्य 'भारत के प्रतिनिधि' बनने के योग्य हैं—क्या केवल एक? श्रीयुत शास्त्री, श्री चिंतामणि, सेठना, सीतलवाड, जोशी आदि के स्थान पर जिन महाशयों की भरती की गई है क्या बहुत अनुसंधान के बाद वे ही 'भारत के प्रतिनिधि' नियुक्त करने लायक समझे गए हैं? क्या उनके जौहर सरकार को मालूम हैं जो भारतीय जनता को अब तक मालूम नहीं हो सके? भारतीय जनता के आधे हिस्से का—स्त्रियों का—एक भी प्रतिनिधि नहीं है। किसानों और श्रमजीवियों का एक भी प्रतिनिधि नहीं है। राष्ट्रीय मुस्लिम दल का एक भी प्रतिनिधि नहीं है। लखनऊ की पिछली सर्वदल मुस्लिम जमात का भी कोई व्यक्ति नहीं है! सरकार की निगाह में उसकी इतनी वकत नहीं कि उसका एक भी प्रतिनिधि भारत का प्रतिनिधि बन सके। कांग्रेस की तो बात ही नहीं, लिबरल दल का भी सिर्फ एक सदस्य चुना गया है।

## प्रयाग की स्वदेशी प्रदर्शनी

हम उस स्वदेशी प्रदर्शनी का स्वागत करते हैं जो स्थानीय असोथर कोठी में आरंभ हो रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। इसका उद्घाटन समारोह सर तेजबहादुर सप्रू के द्वारा संपन्न किया जा रहा है, यह और भी प्रसन्नता और उत्साह की बात है। देश में प्रत्येक प्रकार के स्वदेशी उद्योग के लिए जितना ही प्रोत्साहन मिल सके अच्छा है। बृहत प्रदर्शनी से यह लाभ होता है कि लोगों को परिचय मिलता है कि देश के किन-किन स्थानों पर किस प्रकार की कैसी वस्तुएं तैयार की जा रही हैं और भविष्य में उसकी उन्नति का कैसा उद्योग किया जाना उचित होगा। परिचय के अतिरिक्त कारीगरों को भी एक-दूसरे के संपर्क में आने, एक-दूसरे की खूबियां और त्रुटियां देखने और समझने का सुयोग मिलता है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं के क्रय-विक्रय के बाद रोजगारी यह अनुमान भी लगा सकते हैं कि कैसी चीजों की कैसी खपत हो सकती है और यदि बड़े पैमाने पर किया जाए तो कौन धंधा कहां तक सफल हो सकता है। अभी तो बहुतों को यही पता नहीं है कि हमारे यहां कौन-कौन वस्तुएं बनने लगी हैं और वे कैसी बनती हैं। फिर स्वदेशी व्यापार का रुख देखकर उसपर पूंजी लगाने का ध्यान तो अभी बहुत कम लोगों को है। जिन थोड़ों को है वे भी हिचकिचाहट में पड़े हुए हैं। प्रदर्शनी से ये सब त्रुटियां दूर हो सकती हैं और स्वदेशी व्यापार को प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है। हमें आशा है कि प्रयाग की स्वदेशी प्रदर्शनी भी स्वदेशी के अनुकूल बनाकर देश में स्वदेशी वस्तुओं को बड़े पैमाने पर और अच्छे ढंग से तैयार करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करेगी। लोगों को यह मालूम हो जाएगा कि केवल खुदरा खद्दर ही नहीं, बहुत सी अच्छी चीजें भी देश में बनने लगी हैं और प्रोत्साहन मिलने से और भी बनेंगी।

(गुरुवार, 27 अक्तूबर 1932)

## दीवाली

कार्तिक की अमावस्या के दिन--दीवाली की रात में--आकाश प्रायः अपने प्रकृत रूप में रहता है। बादल भी नहीं होते, चंद्रमा भी नहीं। नक्षत्रों की संख्याहीन पक्तियां अपनी संपूर्ण ज्योतिशक्ति से आलोक बिखेरने में लीन रहती हैं। आकाशगंगा में नक्षत्रों की दीपावली टिमटिमाती-सी, तैरती दीख पड़ती है। उसकी गति में एक लय-सी, अस्थिरता में एक स्थिर शांति-सी मिलती है। यह एक परम आकर्षक प्रकृति लीला है। शरत्काल के आकाश की स्वच्छता में जो चमत्कार है वही मानो हममें स्वच्छता के अंकुर उत्पन्न करता था, हम उत्साह के साथ अपनी गृहस्थी का साज-संवार करने में लगते थे। शक्ति के साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों की तैयारी करते थे। अब भी ये प्रथाएं वैसी प्रचलित हैं यद्यपि इनकी स्वाभाविकता अब विलीन होती जा रही है। इस प्राकृतिक चेतना का अब बोध नहीं रह गया। प्रकृति धर्म का लोप होकर एक शुष्क वातावरण हमें घेरता जा रहा है। छायापथ की मनोहारिणी सुषमा से ही प्रेरणा पाकर हम लोगों की पहली दीपावली जली होगी पर आज यह यंत्रतुल्य जलने लगी है। प्रकृति में विकृति आ गई है। अशांति और उद्विग्नता की अवस्था में पड़कर हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कृत्रिम जीवन व्यतीत करने लगे हैं जो अतिशय अप्राकृतिक है। दीपावली में हमारी कलात्मक अनुभूति के लिए इतनी अधिक सामग्री है, हमारे मनःसंस्कार के लिए उसमें इतना अधिक आलोक है, हमारी प्रकृति से उसकी इतनी अधिक समता है कि हम उसे बिना अनुभव किए नहीं रहते। तथापि एक अवसाद हम सबको घेर लेता है और अनुभव दृढ़ नहीं हो पाता।

आकाश के श्यामल चित्रपट में हमारी दीपावली किसी अतीव दिव्य रचना की भांति खिल उठती है। यह कला की अत्यंत मनोरम सृष्टि सी, बाह्यविरोध के अंतर्गत आत्मिक समता का परिचय देती है। रात में दीपावली की आभा देखकर आकाश का अंधकार देखिए—एक विराट चलचित्र-सा दीख पड़ता है। टिमटिमाते दीपकों की शिखाएं गिरती उठती-सी, हमारी आंखों को मूंदकर, क्षणकाल के लिए हमें मनोरम कल्पनालोक में पहुंचा देती हैं। तिमिर और प्रकाश के मणिकांचन योग को कौन भूल सकता है? हमारे बालकों का कितना मनोविकास होता है। झिलमिलाती दीवालियों के बुझते हुए दीपकों को देखकर उसके मन बुझने-से लगते हैं और जब तक़ घर में तेल रहता है वे उन्हें स्नेहसिक्त किए बिना मानते ही नहीं। वे प्रत्येक वायु के झोंके को अपनी प्यारी दीपावली के लिए बड़ी आशंका से देखते हैं और प्रत्येक दीप की दशा देखकर उनकी चित्तवृत्ति नाचती-सी रहती है। उनकी सूक्ष्मनिरीक्षण, सतर्कता, दूरदर्शिता, स्नेह, करुणा आदि सात्विक वृत्तियों को जगाकर मानो दीपावली ही प्रज्वलित करती है। कितना उपकार।

इसी दिन महालक्ष्मी की पूजा होती है पर आज इसका एक अटूट अंग जुआ खेलना भी बन गया है। यह विशेष रूप से अस्वाभाविक और अनुचित है। संपन्न भारत की यह रूढ़ि हमारे समाज में अपनी जड़ जमाना चाहती है। जुए के द्वारा हम भाग्य की परीक्षा करते हैं पर भाग्य क्या हमारी परीक्षा की वस्तु है? वह तो दैवी देन है उसका मूल्य हम जुए की हार-जीत में आंकने लगे हैं। यह अतिशय विकृत क्रिया है। वर्ष भर निठल्ले बैठकर हम एक दिन सतत सक्रिय विधि-विधान की परीक्षा लेते हैं मानो अपने ही अज्ञान की परीक्षा देते हैं। देश में महालक्ष्मी की पूजा नित्य-प्रति होनी चाहिए। दीवाली के दिन तो और भी अधिक। लक्ष्मी हमारी लौकिक सुख-समृद्धि का संकेत है। उससे हमारे शरीर धर्म का पालन होता है। फिर 'शरीरमेव खलु धर्म साधनम्' शास्त्रकार की उक्ति है।

## ब्रिटिश भारत का व्यापार

दीवाली के दिन हमारा वैश्य समाज अपने आय-व्यय का वार्षिक लेखा लगाया करता है। इस बार अवश्य ही अधिकांश व्यापारी हिसाब संभालते हुए देखेंगे कि कारबार बहुत मंदा है। उन्हें यदि किसी तरह संतोष दिलाया जा सकता है तो केवल यह कहकर कि उन्हीं की नहीं देश भर की, देश भर ही नहीं, संसार के प्रायः सभी देशों की व्यापारिक दशा खराब हो रही है। सन् 1931-32 का ब्रिटिश भारत का व्यापार इस अवस्था में था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



> ब्रिटिश भारत में इस साल 126 करोड़ का माल बाहर से आया। परसाल इससे 38 करोड़ अधिक का आया था। महायुद्ध (1919) के बाद का व्यापार का औसत लगाया जाए तो इस साल उस औसत से 127 करोड़ कम का माल आया। यहां से बाहर जाने वाला माल इस वर्ष 161 करोड़ का था। गत वर्ष से यह रकम 65 करोड़ कम है। महायुद्ध के बाद प्रतिवर्ष की औसत लगाने पर यह 140 करोड़ कम पड़ता है। इतने से उस विशाल मंदी का पता लग सकता है जिससे व्यापार ढीला हो रहा है। जो माल बाहर से यहां आया उसमें सबसे कम आमद विदेशी कपड़ों और रूई के माल की हुई। इस वर्ष केवल 19 करोड़ का रूई का माल आया जबकि गत वर्ष पचीस करोड़ से ऊपर का आया था और सन् 1929-30 में साढ़े उनसठ करोड़ का। सरकारी व्यापारी विभाग का कहना है कि विदेशी वस्त्रों का विशेष रूप से जो बायकाट किया गया उसी का यह परिणाम जान पड़ता है। परंतु इसके साथ ही जनता इतनी गरीब हो गई है कि उसमें खरीदने की शक्ति बहुत कम पड़ गई है। इस वर्ष केवल साढ़े चौदह करोड़ का कपड़ा यहां बाहर से आया। इसमें लगभग आठ करोड़ का ब्रिटेन से और छह करोड़ का जापान से पहुंचा।

विदेशी कपड़ों का आयात कम होने से भारत की देशी मिलों ने कुछ फायदा अवश्य उठाया। जबकि बाहर से केवल 77 करोड़ गज कपड़ा आया, भारतीय मिल ने तीस करोड़ गज तैयार किया। बंबई और अहमदाबाद की मिलों ने खास तौर पर तरक्की की।

बाहर जाने वाले कच्चे माल में रूई में विशेष कमी हुई। पाट भी बारह करोड़ के करीब कम गया। खाद्य अन्न करीब नौ करोड़ का कम गया। हां, भारत का सोना इस वर्ष बहुत अधिक परिमाण में विलायत गया। 1931-32 का तलपट बनाते हुए सरकारी व्यापारी विभाग लिखता है कि लगभग साठ करोड़ का सोना यहां से बाहर भेजा गया।

## प्रेस-जगत का विस्मय

*हिंदुस्तानी* पत्रिका के पिछले 'तिमाही' अंक में हिंदी के जिन अनेक विद्वानों के स्वर्गवास परलोक-संताप और सहानुभूति प्रकट की गई थी उनमें एक बाबू शिवपूजन सहायजी भी थे। परंतु चूंकि बाबू शिवपूजन सहाय इस लोक में ही विराजमान थे—और अब भी हैं—इसलिए *हिंदुस्तानी* संपादकों की जानकारी के लिए *भारत* में हमने एक छोटी टिप्पणी लिखी थी। अब उस 'तिमाही' के बाद इस 'तिमाही' की जो *हिंदुस्तानी* पत्रिका निकली है उसमें भूल सुधार इस रूप में किया गया है जिससे यह आभास मिले कि छपने की गलती से 'नंद' के स्थान पर 'पूज' छप गया है। यह भी स्वीकार करने का कष्ट उठाया गया है कि एक जगह नहीं दो जगह यही गलती छप गई है। सलाह दी गई है कि 'पूज' की जगह 'नंद' पढ़ा जाए। दोनों जगह। दोनों स्थानों पर पं. शिवनंदन सहाय पढ़ना चाहिए। पर यह मालूम न हो सका कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह छपने की गलती थी या लिखने की? शोक-संताप और सहानुभूति एक जीवित व्यक्ति के प्रति प्रकट की गई थी या मृतात्मा के प्रति? या केवल शब्दाडंबर था? या तो पत्रिका के मुद्रक महाशय या अगली तिमाही में संपादक महाशय ही इसका उत्तर दे सकते हैं। यह 'नंद' के स्थान पर 'पूज' छपने की समस्या प्रेस-जगत में विस्मय उत्पन्न कर रही है।

## *प्रसादजी के दो नाटक*

इस नाम की एक पुस्तक श्रीयुत कृष्णानंद गुप्तजी ने गंगा-पुस्तक माला, लखनऊ से प्रकाशित कराई है, जो वास्तव में लिखे हुए उनके दो लेखों का संग्रह हैं। वे लेख बाबू जयशंकर 'प्रसादजी' के *स्कंदगुप्त* और *चंद्रगुप्त* नाटकों की समीक्षा के रूप में लिखे गए थे और अब ये पुस्तकाकार में हमारे सामने उपस्थित हैं। हम देखते हैं कि *स्कंदगुप्त* की समीक्षा छोटी है, शिथिल भी है और अनुभव करते हैं कि पुस्तक का मूल्य (1 रुपया रखने के आशय से) जोड़ दी गई है। पर वास्तव में उससे पुस्तक का मूल्य घटता है, बढ़ता नहीं। *चंद्रगुप्त* की समीक्षा लगभग सवा सौ पृष्ठों में समाप्त हुई है और उसके पहले लगभग पंद्रह पृष्ठों की भूमिका दी गई है जो अधिकांश में बेकार है। *चंद्रगुप्त* समीक्षा में कृष्णानंदजी के बुद्धिवैभव का चमत्कार दर्शनीय हुआ है। पाठकों को धाराप्रवाह बहा ले जाने वाली यह समीक्षा स्वयं ही एक कलाकृति बन गई है।

यह वैसी ही चीज है जैसी बर्नार्ड शा की लिखी नाटक-समीक्षाएं अथवा स्वयं बर्नार्ड शा पर लिखी गई मिस्टर जी.के. चेस्टरटन की *जॉर्ज बर्नार्ड शॉ* नाम की आलोचनात्मक जीवनी। वैसी ही चीज का यह अर्थ नहीं कि यह वही चीज है अथवा उतनी ही अच्छी चीज है, अर्थ है कि वह अपने रूप में उतनी ही पूर्ण वस्तु है। शा महाशय ने अपनी नाटक-समीक्षाओं की संग्रह पुस्तक में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि उन्होंने वे समीक्षाएं इतनी तीव्र इसलिए लिखीं हैं कि उन्हें स्वयं ही उस (नाटकों के) क्षेत्र में आकर काम करना था और जीविका अर्जित करनी थी। फिर उन्होंने चेस्टरटन की लिखी अपनी जीवनी पढ़कर यह सम्मति दी कि यही सबसे श्रेष्ठ पुस्तक है जो मुझपर लिखी गई है। अंग्रेजी के पाठक जानते हैं कि मिस्टर चेस्टरटन श्रीयुत शा की नाट्यकला के प्रशंसक नहीं हैं और उन्होंने 'शा की जीवनी' में उनकी ऐकांगिकता का बड़ा ही मार्मिक उद्घाटन किया है। तथापि बर्नार्ड शा सत्य से विचलित नहीं हुए और यथार्थ को स्वीकार किया। श्रीयुत कृष्णानंदजी की भूमिका में जो वैमनस्य का भाव झलकता है वह उनकी *चंद्रगुप्त*-समीक्षा के योग्य नहीं हुआ। यदि इस वैमनस्य को वैमनस्य कहकर वे स्वीकार करते, जैसाकि कुछ विद्वान पाठक स्वीकार ही करेंगे तो पुस्तक को अधिक यथार्थ पद प्राप्त होता। तथापि हम यह स्वीकार करते हैं कि *चंद्रगुप्त* समीक्षा, प्रसादजी के संबंध में लिखे गए संपूर्ण साहित्य से अधिक सुगठित और शक्तिशाली हुई है।

किंतु समीक्षा का आधार बहुत अधिक भ्रामक है। मूल में ही जो अशुद्धि है उसी से संपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पिंड की उत्पत्ति हुई है। जब गुप्तजी ने *सुधा* में क्रमशः प्रकाशित होने वाली *चंद्रगुप्त* समीक्षा का प्रथम खंड हमारे देखने के लिए भेजने का कष्ट किया था तभी हमने संकेत रूप में दो-चार पंक्तियां लिखकर भेजी थीं जिन्हें उन्होंने अपनी भूमिका में उद्धृत किया है—'मैं समझ रहा हूं आपको डी.एल. राय बहुत अच्छे लगते होंगे क्योंकि वे आदि से अंत तक पात्रों को एक-रस रखते हैं' यद्यपि भूमिका में गुप्तजी हमारे इस आरोप को स्वीकार नहीं करते तथापि उनकी समीक्षा के मूल में ही वह विद्यमान है। समीक्षा की प्राथमिक पंक्तियों में ही वे लिखते हैं, 'आधुनिक नाट्यकार जिस प्रकार मनुष्यचरित्र को अनावश्यक दृश्यावलि से विलग करके देखने में आनंद मानते हैं, मेरे लिए उसी प्रकार समस्त नाटक एक ही दृश्यपट पर खेला जा रहा है।' इस एक ही पंक्ति में गुप्तजी ने अपनी संपूर्ण समीक्षा की दिशा दिखा दी है, हमने इसी पंक्ति का सार समझकर गुप्तजी को उपर्युक्त पंक्तियां लिखी थीं और अब नीचे उसी पर फिर लिखने की आवश्यकता है।

'आधुनिक नाट्यकार मनुष्य चरित्र की अनावश्यक दृश्यावली से विलग देखने में आनंद मानते हैं।' ये कौन से आधुनिक नाट्यकार हैं और क्या ये नाट्यकार नाट्य-समीक्षक भी हैं? आश्चर्य की बात है कि जब हम यूरोपीय साहित्य में सबसे आधुनिक और प्रतिष्ठित नाट्य-समीक्षकों को एक स्वर में यह कहते सुन रहे हैं कि नाटक की समीक्षा से बिलकुल भिन्न, अभिनय के संपूर्ण साज-बाज और वातावरण को ध्यान में रखके करनी चाहिए तब श्रीयुत गुप्त इस मनुष्य चरित्र को अनावश्यक दृश्यावली से विलग करके देखने में आनंद मानने वाले हैं। वे अद्भुत नाट्यकारों की उद्भावना कर रहे हैं। नाटक सचमुच ललितकला नहीं है। हमारे भारतीय नाट्यशास्त्र में भी जिस विस्तार के साथ इस पद्धति पर विचार किया गया है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नाटक का प्रभाव उसकी संपूर्ण दृश्यावली के भीतर पात्रों की रूपरेखा, अंग संचालन से लेकर सीन-सीनरी के समुचित चमत्कार तक के द्वारा पड़ता है। आधुनिक नाट्य-समीक्षक तो यहां तक कहने लगे हैं कि नाटक की समीक्षा करते हुए दर्शकों के कार्य शिथिल, बुद्धि शिथिल भाव का भी विचार रखना चाहिए। ये जो नाटकों के विजयी प्रतिद्वंद्वी सिनेमा आविर्भूत हो गए हैं, इनका कारण एक बड़े अंश में दर्शकों की रूप लालसा ही है। परंतु कृष्णानंदजी के जिस काल्पनिक प्रक्रिया से *चंद्रगुप्त* का अभिनय देखा है वह नाट्य-समीक्षा के साथ न्याय करने की दृष्टि के बहुत अधिक अवास्तविक है।

'मेरे लिए समस्त नाटक एक ही दृश्यपट पर खेला जा रहा है'—यह तो प्राचीन अविकसित ग्रीक अभिनयों और भारतीय रासमंडलियों को आधुनिक शोभाशाली नाट्यगृहों पर कब्जा करने देने का उपक्रम हुआ। आधुनिक नाट्य-समीक्षकों की यह शैली तो नहीं हुई। परंतु गुप्तजी इसी शैली को लेकर चले हैं। इस शैली का अर्थ ही यह होता है कि आप नाट्य-समीक्षा के साथ अन्याय करेंगे। आप एक-एक पात्र की एक-एक बात को इतना अधिक तूल क्यों न दें जबकि वे बातें ही एकमात्र आपके सामने हैं। इसी तूल देने के कारण तो समीक्षा उस रूप में ढल गई है जिस रूप में ढलने के कारण पात्रों को 'एकरस' देखने की शिकायत की गई थी। 'एकरस' देखने के लिए गुप्तजी अपनी समीक्षा शैली के कारण बाध्य हो गए हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनिच्छापूर्वक ही सही। इसके साथ ही अज्ञातरूप में गुप्तजी की भावुकता भी अपनी करामात दिखाती, पात्रों को और अधिक जकड़कर (Stereotyped) मूर्तिवत बना देना चाहती है। नाटककार स्पष्ट रीति से यह वार्ता स्वयं नंद के मुख से कहला रहा है कि एक दिन के लिए राजधानी के नागरिकों के साथ वह समारोह में सम्मिलित हो रहा है। अन्यत्र उसे यह संकेत भी कराया है कि नंद बड़ा ही कठोर प्रकृति का शासक है। परंतु इन दोनों कथनों का गुप्तजी ने अपने मस्तिष्क में संग्रह किए बिना ही नंद की विलास-चेष्टाओं का एक दृश्य देखकर मानो उन चेष्टाओं को ही मूर्तिमान नंद समझ लिया। आगे का उद्‌गार इसका साक्षी है—

> विलासिता का वह नग्न रूप जिस दिन प्रजा देख लेती है, उस दिन छत्रधारी नरेशों के राजमुकुट अपने आप ही स्खलित होकर धूलि में लौटने लगते हैं। उसके लिए फिर चाणक्य और उसकी भीम शक्ति की जरूरत नहीं रहती।
>
> यह कोरी भावुकता समीक्षा में नाटककार के हल्के-चित्रांकन की प्रशंसा करने में असमर्थ और चित्र में मोटी-मोटी गहरी रेखाएं देखने का आग्रह करती है। हिंदी में यह भावुकता अपनी अतिशयता में व्याप्त है—यह भिन्न-भिन्न रचनाकारों के प्रकृति-भेद के साथ कभी न्याय कर ही नहीं सकती। इस भावुकता के बहुत से उदाहरण गुप्तजी की समीक्षा में देखने को मिलते हैं। आरंभ का ही एक नमूना—नंद (चाणक्य से) 'ब्राह्मण तुम बोलना नहीं जानते हो तो चुप रहना सीखो।'
>
> चाणक्य—'महाराज उसे सीखने के लिए मैं तक्षशिला गया था ... इसलिए मेरा हृदय यह नहीं मान सकता कि मैं मूर्ख हूं'।
>
> इसमें स्पष्ट ही चाणक्य के उत्तर में नंद के प्रति एक मीठी चुटकी है कि तुम्हारे राज्य में इस बात की शिक्षा नहीं है, जानकारी नहीं है कि किस अवसर पर चुप रहना चाहिए। मुझे उसे सीखने के लिए तक्षशिला जाना पड़ा। अतः मैं मूर्ख तो नहीं हूं, हां ...'

राजसभा की शिष्टता की रक्षा करते हुए यही सबसे श्लाघनीय उत्तर चाणक्य दे सकता था किंतु गुप्तजी लिखते हैं, 'राजसभा में उसकी (चाणक्य की) यह दुर्बलता स्वाभाविक हो सकती है किंतु श्लाघनीय नहीं।' इसी तरह के अनेक हल्के चित्रण गुप्तजी की आस्वाद-सीमा के बाहर हैं। और प्रसादजी की नाटकीय कला में ऐसे ही चित्रणों के बाहुल्य हैं। तो फिर मेल कैसे मिले?

समीक्षा में एक और विक्षेप इस कारण उपस्थित हुआ है कि गुप्तजी इतिहास की पुस्तक लेकर, नाटक देखने बैठे हैं। ऐसा कोई नहीं करता। फिर गुप्तजी की यह धारणा भी प्रकट हो रही है कि इतिहास के वर्णन से नाटक का चित्रण अधिक प्रभावशाली होना ही चाहिए। पर इसका क्या अर्थ है? इतिहास का रंगमंच अपार विस्तृत, उसके पाठक की कल्पना भी उतनी ही विस्तृत, सदैव उसके साथ रहती है। नाटक की छोटी रंगशाला से उसका क्या मुकाबला? नाटक का दर्शक तो एक नया कल्पनालोक बनाकर संक्षेप में ही विराट का दर्शन करता है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया से ही संभव है। किंतु गुप्तजी चूंकि अपनी इतिहास की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पुस्तक पढ़ते जा रहे हैं इसलिए उनकी कल्पना तद्वत होती चली गई है और नाटक की रंगशाला के उपयुक्त वह स्वभावतः बन नहीं सकी है।

किंतु बेमेल अतः अनधिकृत होने पर भी, प्रसादजी के संबंध में इतनी सुगठित समीक्षा प्रकाशित नहीं हुई और हमें विश्वास है कि यह समीक्षा यदि और किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगी तो अपनी कलात्मक पूर्णता में वह चिरदिन तक स्मरण की जाएगी।

(रविवार, 30 अक्तूबर 1932)

# प्रयाग सम्मेलन

यदि सत्य को स्वीकार करना अनुचित नहीं है तो हम यह स्वीकार करते हैं कि हमारे प्रयाग सम्मेलन का कार्य जितना उपयोगी है उससे अधिक कठिन है। हिंदू-मुस्लिम-सिख एकता का उद्देश्य अधिक से अधिक प्रशंसनीय है यदि महात्मा गांधी के शब्दों में वह कागजी एकता न होकर, हृदयों का मिलन हो। किंतु हृदयों का मिलन तो केवल आंशिक रूप में ही प्रयाग सम्मेलन के हाथ की बात है। उसके लिए तो बहुत-सी अन्य शक्तियां जिम्मेदार हैं जिनपर प्रयाग सम्मेलन का पूरा-पूरा अधिकार नहीं हो सकता। प्रयाग में तो यदि कागजी एकता की बुनियाद भी डाली जा सके तो वह भी एक प्रशंसनीय उद्योग कहा जाएगा। लखनऊ सम्मेलन के बाद प्रयाग सम्मेलन यह चेष्टा करने के लिए बुलाया गया है कि हिंदू-मुस्लिम-सिख नेता इकट्ठा होकर किसी ऐसे समझौते पर पहुंच सकें जिससे सरकारी मजहबी फैसला बदला जा सके और उसके स्थान पर देशी नेताओं का फैसला मंजूर किया जा सके। सरकारी फैसला स्पष्ट रीति से राष्ट्रीय हित का विरोधी समझा गया है जिसके आधार पर नवीन विधान बनाया जाएगा तो अवश्य ही एक बड़ी हद तक शासन के अधिकार वर्तमान शासकों के हाथ में ही सुरक्षित रहेंगे, जिससे राष्ट्रीय नेताओं को कभी संतोष न होगा। इसलिए उद्योग यह किया जा रहा है कि गोलमेज सम्मेलन के समाप्त होने और पार्लियामेंट में इंडिया बिल पेश होने के पहले भारत से एक राष्ट्रीय समझौता पेश किया जा सके जो ब्रिटिश सरकार को मान्य हो। श्रीयुत जिन्ना ने तो चेतावनी दी है कि बिना आपसी समझौते के गोलमेज में आना ही बेकार होगा। इस परिस्थिति का विचार करने से मालूम होगा कि प्रयाग सम्मेलन एक व्यावहारिक समस्या को लेकर किया जा रहा है। हिंदू-मस्लिम-सिख नेताओं का एकमत निर्णय शीघ्र विलायत भेजा जाना चाहिए ताकि वह आवश्यकता की पूर्ति कर सके। इसलिए इस समय कागजी एकता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वह भी एक बड़ी मात्रा में हृदय की सफाई पर ही अवलंबित है।

परंतु यह कार्य भी बहुत अधिक कठिन है। प्रयाग सम्मेलन का ताल्लुक न केवल हिंदू-मुसलमान और सिखों की नेकदिली से है बल्कि यह सरकारी नीति से भी संबंध रखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। चूंकि मुख्य आशय प्रधानमंत्री के मजहबी फैसले के स्थान पर भारत का सर्वदल फैसला उपस्थित करना है और इस फैसले पर सरकारी मंजूरी भी मिलनी है इसलिए प्रत्यक्ष ही यह बहुत कुछ सरकारी रुख और ख्वाहिश पर भी मुनस्सर है। मौलाना शौकत अली जो इस अवसर पर मुख्य रूप से काम कर रहे हैं, कई बार वाइसराय महोदय से महात्मा गांधी को छोड़ने की आरजू कर चुके हैं। पहले तो वाइसराय महोदय ने लखनऊ कॉन्फ्रेंस के सफल होने में ही अड़चनें दिखाईं पर जब कॉन्फ्रेंस ने आशाजनक सफलता प्राप्त की ली तब आपने सत्याग्रह आंदोलन से अलग होने पर ही महात्माजी को छोड़ने की पुरानी शर्त पेश की। यही नहीं, आपने मौलाना शौकत अली को गांधीजी से जेल में मिलने की भी इजाजत नहीं दी जो स्पष्टतः एक खेदजनक घटना है। देश के एक अत्यावश्यक प्रश्न पर एक महत्वपूर्ण परिस्थिति में दो श्रेष्ठ नेताओं को जेल में भी एकत्र होकर बातचीत न करने देना किस मनोवृत्ति की सूचना दे रहा है? यह भी एक निराशाजनक बात है कि गोलमेज सम्मेलन के लिए मुस्लिम दल के वे ही नेता भरती किए गए हैं जिन्होंने लखनऊ के मुस्लिम सम्मेलन से असहयोग किया था और जिनमें सर मुहम्मद इकबाल को छोड़कर कोई भी मुसलमानों का विश्वासपात्र नेता नहीं है—यह मौलाना शौकत अली बतला चुके हैं। ऐसी अवस्था में यह कौन कह सकता है कि प्रयाग सम्मेलन के निर्णय को सरकारी तौर पर मंजूर कर लिया जाएगा और गोलमेजी विवादों में अथवा उसके बाद इंडिया बिल के उपस्थित होने पर इसी सर्वजातीय निर्णय को ही (यदि वह हो सका) आधार ग्रहण किया जाएगा?

और यह सर्वजातीय निर्णय भी हो सकेगा यह भी द्विविधा से खाली नहीं है। यह नई-नई संस्थाओं और नए-नए नेताओं का युग है। कौन कब उठ खड़ा होकर क्या कह चलेगा यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जो मौजूदा संस्थाएं हैं उनमें भी लखनऊ समझौते को स्वीकार करने में आनाकानी हो ही रही है। ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के मौलाना मुहम्मद याकूब और मौलाना शफी दाऊदी के उद्‌गारों से क्या प्रकट होता है? यही कि वे अभी आसरा देख रहे हैं कि लखनऊ में क्या हुआ और प्रयाग में क्या होगा। अभी वे बाहर ही रहकर सम्मेलन पर अपनी सहमति रिजर्व रख रहे हैं और इसके बाद किसी अन्य सम्मेलन में अपने विचार प्रकट करने का मनसूबा रखते हैं अर्थात् देश के हिंदू-मुस्लिम-सिख नेता यदि प्रयाग में किसी निर्णय पर पहुंच सके तो उस निर्णय की जांच सर मुहम्मद याकूब और मौलाना शफी वगैरह करेंगे। सर मुहम्मद इकबाल भी ऐसा ही कुछ रुख जाहिर कर विलायत रवाना हो गए हैं। ऐसे मुसलमान भी निकल आएंगे जो प्रयाग में एकत्रित मुस्लिम नेताओं को केवल 'राष्ट्रीय दल' के मुसलमान कहते हैं। यह बहुत ही वाहियात हालत है। यह याकूब-दाऊदी-इकबाल दल कब एक जगह इकट्ठा होगा, कब प्रयाग सम्मेलन पर रायजनी करेगा, यदि सहमत न होगा तब क्या एक-एक विषय को लेकर फिर से तमाम नेता कहीं सम्मेलन करेंगे? यह सब बड़ी ही दुःखजनक परिस्थिति है। फिर सवाल तो यह है कि हिंदू-मुस्लिम-सिख निर्णय शीघ्र ही सरकारी मंजूरी के लिए पेश किया जाना चाहिए। पर इस शीघ्रता के मार्ग में सौ-सौ आपदाएं खड़ी हो रही हैं। प्रयाग सम्मेलन के सामने एक कठिनाई यह भी है कि वह लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्मेलन की मुस्लिम कमेटी से उक्त सम्मेलन की शर्तों के आधार पर बातचीत करेगा अथवा संपूर्ण हिंदू-मुस्लिम-सिख समस्या पर नए तौर पर विचार करेगा। लखनऊ में मिस्टर जिन्ना की प्रसिद्ध तेरह शर्तें स्वीकार की जा चुकी हैं और केवल पृथक या संयुक्त निर्वाचन के प्रश्न पर ही हिंदू-सिख मत प्राप्त करने की बात कही जा रही है। दूसरी ओर हिंदू महासभा की अखिल भारतीय और बंगाल प्रांतीय शाखाओं ने जो विज्ञप्तियां प्रकाशित कराई हैं वे सिंध के पृथक्करण आदि कुछ पन्नों को मजहबी निर्णय से अलग रखने की शर्त पेश करती हैं। सुना गया है कि इन विवादास्पद विषयों पर मालवीयजी और मौलाना शौकत अली की आपसी बातचीत हो चुकी है और मौलाना साहब ने परिस्थिति को नाजुक बतलाते हुए भी आशाजनक कहा है। परंतु इसी सिलसिले में आपने हिंदुओं को यह आगाही भी की है कि प्रयाग सम्मेलन की सफलता से अधिक लाभ हिंदुओं को ही होगा क्योंकि यदि वह असफल हो गया तो मुसलमानों के लिए प्रधानमंत्री का निर्णय तो बना ही रहेगा। मौलाना की इस उक्ति से यह सच्चाई भले ही प्रकट हो कि प्रधानमंत्री का निर्णय मुसलमानों के लिए हितकर है पर उसकी ध्वनि अच्छी नहीं है। अधिक लाभ और कम लाभ का सवाल इस समय नहीं उठाना चाहिए जबकि राष्ट्रीय लाभ के लिए यत्न किया जा रहा है। शायद ऐसी ही मनोवृत्ति को रोकने के लिए गांधीजी ने कागजी-एकता के स्थान पर हार्दिक एकता का आग्रह किया है। राष्ट्र का दुर्भाग्य दूर करने का आशय लेकर उदारता के साथ यदि हिंदू, मुसलमान और सिख नेता किसी निर्णय पर पहुंचेगे तो वह अवश्य ही स्थायी और कल्याणप्रद होगा। फिर इस बात की भी चिंता नहीं कि वह सरकार को अथवा उसके हमराहों को मंजूर होता है या नहीं क्योंकि मौलाना शौकत अली के शब्दों में 'ईमानदारी और निस्वार्थ भाव से किए गए कार्य का पुरस्कार स्वयं वह कार्य ही है।'

## सर अली इमाम का स्वर्गवास

बिहार प्रांत के प्रमुख नेता और राष्ट्रवादी सर अली इमाम के स्वर्गवास से देश का एक बहुमूल्य रत्न खो गया। यह घटना अचानक घटित हुई है इसलिए यह और भी कष्टजनक है। इस समय जब देश में हिंदू-मुस्लिम एकता की चेष्टाएं की जा रही हैं, सर अली इमाम की सारी हितकामना और सहयोग पर विश्वास किया जा सकता था। पिछले वर्ष लखनऊ के राष्ट्रीय मुस्लिम सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से आपने जो विद्वतापूर्ण भाषण दिया था वह आज भी स्मरण किया जा रहा है। देश को अपने प्रौढ़ राष्ट्रीय विचारों से उपकृत करने के अतिरिक्त सर अली इमाम अपने प्रांत के सार्वजनिक जीवन के अन्यतम उन्नायक माने जाते हैं। उनकी सेवाएं उनके प्रांत को ही विशेष रूप से समर्पित हुईं। सर अली इमाम का परिवार बिहार के सामाजिक जीवन में प्रमुख, प्रगतिशील और उदार है। पिछले वर्षों उनके परिवार ने स्वदेशी आंदोलन का अपने प्रांत में संचालन किया था। परदा प्रथा को हटाने में इमाम परिवार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उद्योग सराहनीय रहा है।

सर अली इमाम जिले की कचहरी से उन्नति करते-करते सरकार की लॉ-मेयरी के पद तक पहुंच गए, यह स्वयं ही उनकी प्रतिभा और अध्यवसाय को प्रकाश में ला देता है। परिस्थितियों का चक्र यदि बाधक न होता तो सर इमाम अपने प्रांत के चीफ-जस्टिस हो गए होते तथापि प्रांत में उनकी मर्यादा और उनका सम्मान किसी चीफ जस्टिस से कम नहीं। यह उनके राष्ट्रवादी विचारों और उदार सामाजिक भावनाओं के ही फलस्वरूप समझना चाहिए। यद्यपि रांची के एक नीरव मुहल्ले में सर अली इमाम की अंत्येष्टि की गई है पर आज प्रधानतः बिहार प्रांत और सामान्य रूप में सारा भारत उनके न रहने का शोक अनुभव कर रहा है। हम स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धा और उनके परिवार के इस दुःख में सहानुभूति प्रकट करते हैं।

# साहित्य में सरल का अर्थ

अब समय आ गया है कि अंग्रेजी की स्कूली किताबों के आधार पर रायजनी करने की लत छोड़कर वास्तव रूप में साहित्य के क, ख, ग से परिचय प्राप्त कर लिया जाए। साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन यदि संभव नहीं है तो कम से कम उसकी बारहखड़ी अब सीख लेना चाहिए। साहित्य समीक्षा जब विज्ञान का रूप ग्रहण करने की तैयारी कर रही है, तब हमारी चेष्टाएं हास्यास्पद हों, यह अच्छा नहीं। हंसी से हिंदी को बचाना होगा। यह कार्य कठिन नहीं है, यदि हम यहां भी सरलता न ढूंढ़ने लगें। साहित्य का मूल यदि पकड़ा जा सके तो शास्त्रों में भटकने की नौबत न आए। साहित्य को ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए, सरल होना चाहिए, गूढ़ न होना चाहिए वगैरह-वगैरह के चक्कर में न पड़कर पहले यह समझने की जरूरत है कि साहित्य साहित्य है। उसे होना-हवाना कुछ नहीं है वह बस जो है, वह है। वह साहित्य है जैसे वह गुलाब है, जैसे वह जीवन है, जैसे वह मृत्यु है। उसे उसी की प्रकृति में न पहचानकर उसके साथ अपनी इच्छाओं और कामनाओं को जोड़ते फिरना समझदारी की बात नहीं है। साहित्य को ऐसा होना चाहिए, इसका तो मतलब यह हुआ कि गुलाब के इतने दल होने चाहिए, इतनी बड़ी पंखुड़ियां। पर न ऐसा कभी हुआ है, न होगा, इसलिए इसका कोई बयाना भी नहीं बांधा करता। पर हिंदी में लोग साहित्य का बयाना बांधते हैं, कानून बनाकर पाबंदी कराना चाहते हैं और यदि संभव हो तो उसके स्वाधीन विकास को जकड़कर उसे चीनी स्त्रियों का पैर बना देना चाहते हैं। आश्चर्य है कि देश की स्वाधीनता के पिष्टपोषक पत्र भी साहित्य को यह बेड़ी पहनाने में योग दे रहे हैं, किंतु संतोष है कि यह सब अज्ञात अवस्था में हो रहा है और ज्ञान होने पर स्वयं दूर हो जाएगा।

साहित्य केवल साहित्य है, वह न सरल है न कुटिल। उसकी प्रकृति पहचानने के लिए कृपाकर ये अपने विशेषण वापस लीजिए। साहित्य का स्रष्टा मनुष्य है। मनुष्य को आप सरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समझते हैं या कुटिल? उदार या संकीर्ण? मनुष्य की व्याख्या इन दो शब्दों में या ऐसे ही शब्दों में करना क्या मूर्खता नहीं है तो क्या साहित्य की व्याख्या इस रूप में करना भी बुद्धिमानी है? कौन कह सकता है। मनुष्य मनुष्य है। भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न मनुष्य हैं। ऐसे ही साहित्य भी साहित्य है। कविता कविता है। दर्शन दर्शन। यहां रायजनी के लिए गुंजाइश ही कहां है? आप कैसे सीमा बांधेंगे?

मनुष्य प्रकृति ही साहित्य की प्रकृति है। आप इतना कर सकते हैं कि मनुष्य प्रकृति में साहित्य का संस्थान ढूंढ़िए। मनुष्य की मनःक्रिया पाश्चात्य शास्त्र के अनुसार द्विमुखी बताई जाती है। एक तो सिद्धांत निरूपण की कोरी बौद्धिक क्रिया और दूसरी वह क्रिया जो व्यापक रूप में साहित्य कहलाती है। पहली को पश्चिम में विज्ञान कहते हैं। दो और दो चार होते हैं। यह कोरी गणना एक बौद्धिक क्रिया है, विज्ञान है। हिसाब लगाते समय आप साहित्यसृष्टि नहीं कर रहे होते। रसायन की प्रयोगशाला में आपके अनुसंधान साहित्य नहीं हैं। तर्कशास्त्र की सैद्धांतिक चर्चा साहित्य नहीं है। किंतु इसके अतिरिक्त मानव-मन की संपूर्ण अभिव्यक्ति साहित्य है। ऐतिहासिक घटना का वर्णन साहित्य है। दार्शनिक तथ्य का स्पष्टीकरण साहित्य है। वेद, शास्त्र, पुराण की चर्चा साहित्य है। तर्कशास्त्र के केवल सिद्धांत के अंशों को छोड़कर शेष समस्त वर्णन साहित्य है। बल्कि गणित विषय पर भी आप साहित्य की रचना कर सकते हैं और करते हैं। न्याय का साहित्य हमारे यहां है, नीति और व्यवस्था संबंधी स्मृतिसाहित्य मौजूद है और इस देश में तो वैद्यक को भी साहित्य की कोटि में परिणत कर देने के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। इस विशाल साहित्य वस्तु के अंतराल में इसके एक-एक विभाग की लक्ष-लक्ष विविधताओं की कल्पना करके देखिए। कितने प्रकार की कितनी असंख्य लघु-दीर्घ भावनाएं, कितने विषयों के कितने अगणित प्रवचन साहित्य के महासागर में प्रवाहित हो रहे हैं और आप इस विराट प्रवाह के क्षण-क्षण के हाहाकार का ध्यान करके भावस्थ होइए। उसके बाद यदि आपकी जबान बहुत चलती हो तो कहिए कि साहित्य को सरल होना चाहिए। निरर्थक उद्‌गार ही सही।

कोई नहीं कह सकेगा। साहित्य के सरल होने का कुछ अर्थ नहीं है। हां, आप यह कह सकते हैं कि एक-एक साहित्यिक कृति को लेकर उसकी विशेषताएं देखिए। तब भी आप देखेंगे कि साहित्य के सरलपने की अपेक्षा आप साहित्य के प्रकार से और अधिक आकृष्ट होंगे। साहित्यकार के बुद्धिवैभव से सत्य और सुंदर की अभिव्यक्ति प्रकाश के-से रूप में होती है जिसे देखकर आप चकित हुए बिना नहीं रह सकेंगे। साहित्य के स्रष्टा ने अपने हृदय की ईमानदारी का प्रकाश यदि अपने साहित्य को समर्पित किया है तो आप सरल-कुटिल की चिंता न कर उस प्रकाश-धारा में स्नान कीजिए। वह आनंद मिलेगा जो न 'सरल' में है, न 'कुटिल' में।

ऐसा संभव है कि कोई व्यक्ति अपने किन्हीं संस्कारों के कारण किसी वस्तु को एक निर्दिष्ट रूप में ही देखने का प्रयासी हो। यदि वह साहित्य का अर्थ समझता है तो उसे यह प्रयास अपने मन के भीतर करना चाहिए। छापे के पृष्ठों में इस व्यक्तिगत रुचि का परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देना साहित्यधर्म का उल्लंघन करना तो है ही, शायद आजकल के युगधर्म का अपालन भी है। और जब यह व्यक्तिगत रुचि साहित्य का सिद्धांत बनाकर उपस्थित की जाती है तब जो देखता है, वही हंसता है।

यह तो हुई साहित्य की बात। फुटकर तौर पर आप यह कह सकते हैं कि साहित्य में सरलता एक गुण है। कौन नहीं कहता—कौन नहीं जानता? पर बात भी मौके-मौके की अच्छी लगती है। सरलता का अर्थ यदि स्पष्ट अभिव्यक्ति है तो यह साहित्य का एक भूषण भी है। पर हमारी हिंदी में सरलता का अर्थ यह लगाया जाता है कि जिसके भाव आसान हों। उदाहरण के लिए यदि महात्माजी के व्रत पर विलायत से श्रीयुत पटेल ने यह संदेश भेजा कि आपको अपने प्राण देने का कोई अधिकार नहीं है, उसे तो आप पहले ही उत्सर्ग कर चुके हैं तो इस भाव को लेकर आप एक कविता बना डालिए वही आदर्श, सरल होगी। अभी हिंदी वाले इस निम्न कोटि की सरलता में इतना लिप्त हो रहे हैं कि वे 'सरलता' को सापेक्षिक अर्थ में नहीं ले सकते। वे नहीं जानते कि इस समय में जो 'सरल' है, दूसरे समय में वह सरलता तुच्छ समझी जा सकती है। जो व्यक्ति यह कहता है कि वह दर्शन से अनुराग नहीं रखता उसका 'सरल' उसके अनुराग के अनुसार होगा। उसके लिए वही सरल है जो अदार्शनिक है। इसी प्रकार दूसरे की रुचि, तीसरे की रुचि और चौथे की रुचि। इन्हीं रुचियों के बीच में वास्तविक 'सरल' विलीन हो रहा है। साहित्य का सत्य, निश्छल अभिव्यक्ति।

हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि हिंदी में विचार-विरहितभावुकता ही 'सरलता' की एकमात्र प्रतीक हो रही है। संप्रति इसकी अतिमात्रा हो चुकी है और अब अधिक सरलता हमारे साहित्य को केवल नुकसान पहुंचा सकती है। हमारे हिंदी समाज की भावुकता इतनी बढ़ गई है कि अब और अधिक बढ़ना आपदजनक होगा। यह साहित्यिक मंदाग्नि जीर्ण ज्वर उत्पन्न कर विषम व्याधि न बन जाए। अब तो कुछ मानसिक व्यायाम करना ही उपादेय होगा। विविध प्रकार के व्यायाम हैं। सामाजिक, राजनीतिक ग्रंथियों की तह तक पहुंचने की चेष्टा कीजिए, कविता में दर्शन का रस लीजिए, मनोवैज्ञानिक उपन्यास पढ़िए। वह अपना ही देश है जहां वेदों के कई-कई अर्थ लगे हैं। एक *गीता* को ही देखिए कितने भिन्न-भिन्न भाष्य हुए हैं। पुराणों का अर्थ अब भी नया-नया लगता जा रहा है। एक बार स्विच दबाकर रोशनी से जगमग कर देने की आराम-तलबी नई सभ्यता की देन है। जरा पुराना प्रकाश देखिए! बाबू भगवान दास का *समन्वय* ग्रंथ आपकी हिंदी में अभी कल ही निकला है। यह सब साहित्य में बुद्धि विनियोग का प्रतिफल है, 'सरल' ढूंढ़ने का नतीजा नहीं। 'सरल' बहुत हो गया अब कुछ 'कठिन' भी हो। पर यह कठिन भी वास्तव में कठिन नहीं है यदि हम थोड़ी सी फालतू भावुकता बेचकर थोड़ी सी उपयोगी बुद्धि एकत्र कर लें।

(गुरुवार 3 नवंबर 1932)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# सेकेंड चेंबर

यू.पी. कौंसिल में यह प्रस्ताव पास हो गया कि व्यवस्था के कार्य के लिए जनसभा के अतिरिक्त एक सेकेंड चेंबर की भी जरूरत है, इसलिए आगामी विधान के साथ उसका भी निर्माण किया जाए। इस प्रस्ताव के पास करने में सरकारी वीटो की मदद नहीं लेनी पड़ी, इससे मौजूदा कौंसिल के सदस्यों के रुख का और अधिक स्पष्टता से परिचय मिल जाता है और हम कह सकते हैं कि यह रुख जनता के वास्तविक हितों के विरुद्ध और अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए अख्तियार किया गया है, जिसका प्रमाण स्वयं उन सदस्यों की वक्तृताओं में पाया जाता है। अभी जब हम लोगों को ही नहीं मालूम हो पाया है कि आगामी विधान कैसा होगा, उसमें प्रांतों को केंद्रीय सरकार के मुकाबले कितने और कौन-कौन से अधिकार दिए जाएंगे उसके पहले ही हमारी यू.पी. कौंसिल के सदस्यों का सेकेंड चेंबर के लिए प्रस्ताव रखना और मुख्य प्रांतीय जनसभा के अधिकारों में बंटवारा करना उनकी बढ़ी हुई अधिकार-तृष्णा का परिचय देता है। जब सरकारी मजहबी फैसले के मुताबिक प्रांतीय व्यवस्था-सभाओं को अनेक-अनेक हितों और संप्रदायों का अड्डा बनाने का बंदोबस्त किया गया है तब हमारी कौंसिल सदस्य इन अड्डों को मिटाने की चेष्टा न कर एक ऐसे 'सेकेंड चेंबर' का प्रस्ताव पास कर रहे हैं जिसमें एक फिरकापरस्ती के सिर पर दूसरी फिरकापरस्ती के सवार हो जाने की ही संभावना है। प्रांतीय व्यवस्था-सभा (जन सभा) में जनता के वास्तविक अधिकारों को घटाकर गवर्नर के विशेषाधिकारों को बढ़ाने की जो सिफारिश की जा चुकी है उसके बाद अब इस दोहरी सभा की सिफारिश करना स्वराज्य को लगभग शून्य के बराबर ही बना देना है। यदि इस प्रकार की कार्रवाई करके यह समझा जाता हो कि जमींदारों, तालुकदारों और अन्य सत्ताधारियों (Vested interests) को कुछ विशेष लाभ होगा तो वह लाभ भी नहीं कि बराबर होगा, क्योंकि वास्तविक अधिकार तो और भी दुष्प्राप्य हो जाएंगे और दलबंदियों के दलदल में फंसे रहना ही मुख्य रूप में हाथ लगेगा।

सेकेंड चेंबर का समर्थन करते हुए कौंसिल में उसको निर्दोष बताया गया। कहा गया कि उससे यह उपकार होगा कि जनसभा जो कानून बनावेगी उसमें जल्दबाजी न हो पाएगी, किसी प्रकार का अनौचित्य न रह सकेगा इसके लिए एक दूसरी सभा (सेकेंड चेंबर) की जरूरत है। इस दूसरी सभा में विशेषज्ञों, अनुभवी और सोच-समझकर काम करने वाले व्यक्तियों के पहुंचने से सब काम अक्लमंदी से किया जाएगा और किसी तरह की गड़बड़ी न होगी। गवर्नर महोदय जो बहुत विशेष दस्तंदाजी करते हैं, वह कम पड़ जाएगी। इस तरह के बहुत से लंबे-चौड़े फायदे दिखाए गए जिनमें तत्व बहुत थोड़ा है और प्रमाद बहुत अधिक। प्रांतीय जनसभा कानून बनाने में जल्दबाजी न कर सके, इस दलील का क्या अर्थ है? अब तक क्या भारत की जनसभा जनता के उपकार के लिए जल्दबाजी तो दूर बहुत सुस्ती से काम करने को बाध्य नहीं रही है? और क्या अब नए विधान के अनुसार उनके इस काम में फुर्ती आने देने की सुविधा नहीं मिली चाहिए? भारतीय व्यवस्था-सभाएं आज दिन इसी मुख्य बीमारी से पीड़ित है कि वे जनसाधारण के हित का काम करने में पंगु बनी हुई हैं जिनकी कि वे प्रतिनिधि हैं। क्या इसी मर्ज को दूर करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिए सेकेंड चेंबर की बेड़ी का आविष्कार किया जाएगा? सेकेंड चेंबर में विशेषज्ञ, अनुभवी और समझदार आदमी पहुंचेंगे यह कहना तो एक प्रकार से मुख्य जनसभा का अपमान करना है। हम तो इसका यही अर्थ समझते हैं कि विशेषज्ञ और अनुभवी तो कम, फूंक-फूंककर कदम रखने वाले, लोकहित के कार्य में देर करने वाले व्यक्तियों को ही विशेषकर सेकेंड चेंबरों में पहुंच होगी। सेकेंड चेंबर के समर्थकों ने फरमाया कि लोथियन कमेटी की सिफारिश के अनुसार अगले विधान में बहुत अधिक जनता को मत देने का अधिकार हो जाएगा, जो जनता अधिकांश में अशिक्षित है। इसलिए विशेषज्ञों और अनुभवी पुरुषों को जनसभा में पहुंचने में कठिनाई पड़ेगी। सेकेंड चेंबर में पहुंचना उनके लिए आसान होगा। प्रश्न यह है कि लोथियन कमेटी की सिफारिश से जनता की बड़ी संख्या को वोट का अधिकार मिलना, जनसभा में योग्य व्यक्तियों के विरुद्ध कैसे है? जनता क्या इतनी अधिक अशिक्षित है कि वह अपना हित-अनहित भी नहीं पहचानती? अथवा यह कहना चाहिए कि जनता के हितों से उन 'विशेषज्ञ' और 'अनुभवी' महापुरुषों का रुख ही भिन्न है जिसके कारण उन्हें जनता का प्रतिनिधि बन सकने की आशा ही नहीं?

गवर्नर के विशेषाधिकारों के कम इस्तेमाल की बात तो एक ही रही। हाफिज गजनफरुल्ला ने कहा कि एक ही जनसभा के रहने से सभा और गवर्नर के बीच अकसर जो मतभेद उत्पन्न हो जाया करेगा वह सेकेंड चेंबर से बहुत कुछ कम हो जाएगा। यह बिलकुल ही सच है और शायद सेकेंड चेंबर की असलियत भी यही है। वे कौन से प्रसंग होते हैं जिनमें जनसभा और गवर्नर के बीच मतभेद हुआ करता है? उन प्रसंगों पर यदि 'सेकेंड चेंबर' बीच-बचाव करने का काम करेगा तो वह उपयोगी भले ही हो पर उससे 'सेकेंड चेंबर' के लोकमत के अनुकूल होने का आभास नहीं मिलता, बल्कि उससे विपरीत ही का मिलता है।

सरकार की तरफ से इस अवसर पर जो भाव प्रदर्शित किया गया वह बहुत ही भोलाभाला है। होम मेंबर ने कहा कि इस मामले में सरकारी प्रतिनिधि वोट नहीं देंगे। यह तो अनायास ही एक उदारता सरकार के हाथ लगी। पर होम मेंबर महाशय ने यह भी जिक्र कर दिया कि प्रांतीय सरकार की तरफ से दो-दो खरीते भेजे गए हैं कि जिनमें स्पष्ट तौर से लिखा है कि यू.पी. में दो व्यवस्था-सभाएं बनाने के पक्ष में सरकार एकमत है। प्रांत की हितैषिता की दृष्टि से सेकेंड चेंबर का होना आवश्यक है। प्रश्न यही है कि प्रांत की हितैषिता की दृष्टि से, जब सरकार सेकेंड चेंबर का होना आवश्यक समझती है तब उसने इस प्रस्ताव के पक्ष में वोट देना अनावश्यक क्यों समझा? क्या 'प्रांत की हितैषिता की दृष्टि से' यह आवश्यक न था अथवा यह भी कोई अदा थी?

## मजदूर दल का बायकाट

पार्लियामेंट के मजदूर दल ने गोलमेज सम्मेलन का बायकाट करने का निर्णय किया है, यह एक महत्वपूर्ण घटना है। इसे एक विधि विडंबना ही समझना चाहिए कि जिस मजदूर दल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के द्वारा गोलमेज की सृष्टि की गई और जिससे अपनी इच्छा के अनुसार अन्य दलों को भी उसमें भरती करना आवश्यक समझा वही अब उससे अलग हो गया है। मजदूर दल ने ही भारत के प्रश्न को सर्वदल प्रश्न बनाया था और अब उसी ने उसका यह रूप बदल दिया। गोलमेज के बायकाट का समर्थन करते हुए लेबर पार्टी ने कांग्रेस का उसमें न शरीक होना ही मुख्य हेतु बताया है। इधर कुछ दिनों से मजदूर दल के कुछ नेताओं और सर सेमुएल होर जैसे कट्टर अनुदारों में जो चखचख चल रही थी वह विलायत के पिछले मजदूर सम्मेलन और अनुदारदलियों की ब्लेकपूल कॉन्फ्रेंस में प्रकट हो गई थी। भूतपूर्व भारतमंत्री मिस्टर विजेल्ड बेन ने तो प्रधानमंत्री रेमसे मेकडानल्ड की भी भर्त्सना की थी और ब्रिटिश सरकार की भारतीय नीति को अनिष्टकर बतलाया था। पार्लियामेंट के भीतर भी मजदूर नेता श्रीयुत लैंसबरी अपने दल के विचारों को स्पष्ट रीति से प्रकट करते आ रहे हैं जिसका कोई असर नहीं पड़ सका। इसके विपरीत जान पड़ता है भारतमंत्री सर सेमुएल होर को उनकी बहुत-सी बातें नागवार मालूम पड़ी हैं। पिछले जून में होर महाशय ने गोलमेज का जो नया कार्यक्रम निकाला था वह शायद मजदूर दल के तत्संबंधी कार्यक्रम को चुनौती थी, पर अंत में उन्हें उसे वापस लेना पड़ा। उसके बाद सर सेमुएल ने श्रीयुत बेन आदि मजदूर दल के गोलमेजी प्रतिनिधियों को अलग रखने का जो मंसूबा बांधा था शायद उसी का यह जवाब दिया गया है कि सारा का सारा मजदूर दल ही गोलमेज से अलग होता है। अब सर सेमुएल होर नहीं कह सकेंगे कि गोलमेज सब दलों की सम्मिलित कार्रवाई है। यदि सच पूछा जाए तो गोलमेज की आरंभिक कल्पना और नीति में तब से अब तक यों ही इतने परिवर्तन हो गए हैं कि वह अब अपने पूर्वरूप में पहचानी नहीं जाती। पर अब पार्लियामेंट के मजदूर दल के बायकाट से तो वह और भी अंग भंग हो जाएगी।

## वास्तविक 'रत्नाकर'

स्वर्गीय कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकरजी' के निधन के अवसर पर हमने अपनी श्रद्धांजलि में निवेदन किया था कि रत्नाकरजी की मनोवृत्ति मध्ययुग की-सी थी, वे मध्ययुग के ही वातावरण में रहते थे और अंग्रेजी पढ़कर भी उन्हें आधुनिकता से कोई विशेष रुचि न थी। मध्ययुग हिंदी साहित्य का सुवर्णयुग था और रत्नाकरजी उसी की रम्य विभूति में रम गए थे। उनकी भाषा, उनके साहित्यिक विषय सब तत्कालीन ही थे। यहां तक कि उनके आचार-व्यवहार में भी उसी समय की मुद्रा थी। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकरजी पूरे प्रसन्न भाव से रहते थे और उन्होंने हमारे इस युग की भाव-भाषा की कोई विशेष चिंता नहीं की। अंग्रेजी में ऐसे लेखकों और कवियों को 'क्लासिक' नाम देने की चाल है जो स्वभावतः अपने भावों, पात्रों और भाषा आदि को प्राचीन यूनान आदि की साहित्य शैली में डालते हैं और वहीं से अपनी साहित्यिक प्रेरणा प्राप्त करते हैं। धीरे-धीरे ऐसे 'क्लासिक' साहित्यकारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की एक परंपरा बन गई है जिनकी विशेषताओं को श्रेणीबद्ध करते हुए वहां के समीक्षक कहते हैं कि ये साहित्यकार प्राचीन वातावरण को पसंद करते, पुरानी ग्रीक, लैटिन अथवा अंग्रेजी के काव्यग्रंथों का अध्ययन करते और उन्हीं की शैली को अपनाते हैं। पौराणिक, धार्मिक ग्रंथों के पात्रों का ही चित्रण करने की इनकी प्रवृत्ति होती है और ये भाषा ही नहीं, उपमा, रूपक आदि साहित्यालंकारों को भी प्राचीन परिपाटी में ही चलाने का प्रयास करते हैं। मिल्टन से लेकर अब तक अंग्रेजी में इस प्रकार के अनेक क्लासिक रचनाकार हो गए हैं जिनमें मेथ्यू आर्नल्ड अंतिम प्रसिद्ध क्लासिक समझा जाता है जिसके होमरिक 'रूपकों' की अच्छी ख्याति है। यह साहित्यिक वर्ग भाषा में प्रौढ़ता, भावों में संचय और गंभीरता का आग्रह करता है। किंतु परंपरा के रूप में प्रचलित हो जाने पर इस वर्ग के लेखकों के विरुद्ध नवीन साहित्यिक उन्मेष की आवश्यकता समझी गई और यूरोप के साथ-साथ इंग्लैंड में भी नवीनतावादी लेखकों ने क्रांति की। भावों में अस्वाभाविकता, भाषा में व्यर्थ का भार, पात्रों का रूढ़िगत चित्रण आदि के आरोप लगाकर नवीन क्रांतिकारियों ने इन 'क्लासिकों' का तख्त उलट देने का आंदोलन किया था और उसमें वे सफल भी हुए थे। परंतु इससे 'क्लासिक' शैली का ही अंत नहीं हो गया, बल्कि परंपरा टूट जाने पर अब तो इस शैली के साहित्यकारों में एक अनोखा आकर्षण मिलने लगा है और यूरोप के कुछ नए साहित्य-समीक्षक इन प्राचीनतावादियों के पक्ष में जोरदार उत्तेजना उत्पन्न कर रहे हैं।

हमारी हिंदी में इस प्रकार के साहित्यिक आंदोलन हुए हैं पर अभी इस विषय में अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है। हिंदी का विकास कुछ अधिक जटिल भी है। यदि 'क्लासिक' का रूपांतर हमारे यहां देखा जाए तो क्या है? शास्त्रीय संस्कृत की शैली हिंदी में आई अवश्य है पर वह आलंकारिक और रीतिविशिष्ट शैली ही क्या शास्त्रीय अथवा 'क्लासिक' मानी जाए? हमको यह स्वीकार करने में बड़ा संकोच है, यद्यपि काशी के शुद्ध संस्कृतज्ञ गोस्वामी किशोरीलाल अथवा महामहोपाध्याय 'कविचक्रवर्ती' देवीप्रसाद आदि की हिंदी कविताओं को संस्कृत का प्रतीक मानकर विचार किया जाए तो महाकवि केशवदास से आरंभ होकर उनकी ही परंपरा 'शास्त्रीय' या 'क्लासिक' कहलाने का दावा कर सकती है। परंतु यह कविता क्षेत्र विशेष रूप से संकीर्ण है। दूसरी दिशा में देखा जाए तो हमारे तुलसी और सूर जो हिंदी के प्रतिनिधि कवि हैं, वे भी अच्छे संस्कृतज्ञ थे। तुलसी ने *वाल्मीकि रामायण* और सूर ने *श्रीमद्भागवत* से काव्य प्रेरणा प्राप्त की थी और काव्य सामग्री भी। परंतु हिंदी के ये प्रतिनिधि कवि इतनी अपार मौलिकता लेकर आए कि हिंदी के लिए वे ही शास्त्रीय बन गए और हिंदी की सामान्य साहित्यिक परंपरा में पृथक रीति से संस्कृत की आवश्यकता ही नहीं रह गई। सूर और तुलसी ने संस्कृत का त्याग कर जो ग्राम्य-भाषा अपनाई थी (यद्यपि इस ग्राम्यभाषा को ही उनकी लेखनी ने संस्कृत बना दिया) जो शास्त्रीय या क्लासिक परंपरा का त्याग ही समझना चाहिए। फिर एक नवीन धार्मिक उत्थान के प्रवाह में शुद्ध कवियों की भावधारा भी नवीन जीवन लेकर ही पहुंची थी जिस पर प्राचीन संस्कृत का प्रभाव कम ही था। इस विषय पर चाहे जितना विवाद किया जाए कि संस्कृत की शास्त्रीय शैली का अनुसरण कर हिंदी में 'क्लासिक' संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के हकदार केशवदास-किशोरीलाल-कवि चक्रवर्ती आदि की परंपरा है अथवा तुलसी-सूर-रत्नाकर आदि की, पर इस विषय में विशेष विवाद की जगह नहीं है कि हिंदी संसार ने तुलसी-सूर की परंपरा को ही अपनी श्रद्धांजली चढ़ाई है। अपितु यहां तो यह भी कहा जा सकता है कि तुलसी और सूर आदि की काव्यरचना स्वयं की हिंदी के लिए शास्त्रीय बनकर अपने अनुगामी 'क्लासिक' कवियों की सृष्टि करने लगी। इसी कवि मंडली में अंतिम नाम 'रत्नाकर' का लिया जा सकता है। यूरोप में अनेक कवियों में मध्यकालीन 'फ्यूडल' समाज से प्रेरणा मिली थी और अब भी मिलती है। रत्नाकरजी को भी उसी तरह भारत के मध्ययुग का साहित्य और समाज खूब ही भाया था और उन्होंने उसे अपनाया भी था।

साहित्यिक और सामाजिक इतिहास के विद्यार्थी 'रत्नाकरजी' को इसी रूप में देखते हैं परंतु नवंबर की *सरस्वती* में 'कविवर रत्नाकर' शीर्षक लेख में कुछ नए ही ढंग के विचार प्रकट किए गए हैं। संपादकीय टिप्पणी में भी इस लेख की ओर पाठकों का ध्यान खींचा गया है किंतु लेख का पाठ करने पर लेखक और संपादक दोनों ही के भ्रांत दृष्टिकोण का पता लगता है। लेखक ने 'रत्नाकरजी' को जिस अतिसामयिक (Ultra modern) रूप में देखने की चेष्टा की है वह एक हंसी की बात है, यद्यपि मनोरंजक भी है। *उद्धव शतक* में उद्धव के ज्ञानकांड को गोपियों की भक्ति से पराजित करने की योजना नवीन नहीं है, रत्नाकरजी की उक्तियां भी अनेक अंशों में सूरदास, नंददास आदि से अभिन्न ही हैं। प्राचीन हिंदी का प्रत्येक पाठक इसका समर्थन करेगा। सगुण और निर्गुण भक्ति की यह रसमय रागिनी वैष्णव साहित्य की एक सार्वजनिक विशेषता है। न केवल कृष्णायन संप्रदाय ने, तुलसीदास जैसे रामभक्त कवि ने भी इस रागिनी में अपना स्वर मिलाया है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि रत्नाकरजी के *उद्धव शतक* की गोपियों की उक्तियां नवीन युग के व्यक्तिवाद का संदेश सुनाती हैं, अथवा भावी अनीश्वरवाद का संकेत करती हैं, प्रसंग के साथ अन्याय करना और रत्नाकरजी की प्रकृति से अपरिचय प्रकट करना है। उमर खैयाम से रत्नाकरजी की तुलना करने को सन्नद्ध होना केवल एक चमत्कार की सृष्टि करना है। लेखक इस विषय में अपनी कमजोरी का आप ही आप प्रदर्शन करता है जब वह रत्नाकरजी के अन्य काव्यों में आदर्शवाद का संकेत करता, प्राचीन कथा और प्राचीन भाषा का पल्ला पकड़े रहने की उनकी विशेषता का उल्लेख करता है। पहले एक सिद्धांत बनाकर पीछे रत्नाकरजी के काव्य से उसके उद्धरण देने की चेष्टा करने में खींचतान करनी ही पड़ेगी—विशेषकर वैसी दशा में जबकि सिद्धांत अपनी ही कल्पना की उपज हो, लेखक को भी खींचतान करनी पड़ी है। रत्नाकरजी वैष्णव कवि थे, उमर खैयाम कुछ और था। रत्नाकरजी प्राचीन हिंदी की काव्यधारा में स्नात होकर निष्णात बने थे, उनकी प्रकृति भी उसी सांचे में ढली थी। उनको पंडों, पादरियों और पुरोहितों के विरुद्ध आंदोलन करने की फुरसत नहीं थी। यदि आधुनिक हिंदी का कोई कवि विनीत भाव से प्राचीन पंथ पर चलने का साहस कर सफलमनोरथ हो सका है तो वह रत्नाकरजी थे। इस युग में लीक छोड़कर चलने की अपेक्षा लीक पर ही चलना अधिक कठिन हो गया है। रत्नाकरजी की विशेषता लीक पर ही चलने की थी जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिए हम उनकी सराहना करते हैं। यदि अंग्रेजी के एक अर्थपूर्ण शब्द को उधार लेना अनुचित न हो तो हम कह सकते हैं कि रत्नाकरजी 'मेथ्यू आर्नल्ड' की भांति हिंदी के अंतिम 'क्लासिक' कवि थे। उनको नवीनतावादी अथवा भावीयुग का क्रांतिकारी कवि बतलाना और शायर-सिंह-सपूत की भांति लीक छोड़कर चलने की सिफारिश करना भ्रमजाल खड़ा करना और वास्तविक 'रत्नाकर' से कोसों दूर जा पड़ना है। साहित्यिक इतिहास का अध्ययन और प्रौढ़ होने की आवश्यकता है। तभी यह निर्णय भी हो सकेगा कि आधुनिक हिंदी का सर्वश्रेष्ठ कवि कौन है, कौन नहीं और 'सर्वश्रेष्ठ कवि' का अनुसंधान करना कोई साहित्यिक कार्य भी है या नहीं।

(रविवार, 6 नवंबर 1932)

## अवसर-ग्रहण

दो वर्षों से अधिक *भारत* के संपादकीय पद पर काम करने के उपरांत आज मैं अवसर ग्रहण कर रहा हूं। कारण? कारण की इस विश्व-वैचित्र्य में क्या कमी है। किंतु मुझे ये सब कारणों के तार टूटे हुए-से, खिन्न-खिन्न, बोलते-से जान पड़ते हैं। मैं यह स्वर ही चाहता। जिसमें ये अशेष कार्यकारिणी के तार एकाकार होकर बजते हैं मुझे तो वह विश्ववीणा अच्छी लगती है। उस एक अशेष को लेकर शेष की मैं चिंता नहीं करता।

विदाई के समय बहुत थोड़ी बातें कही जाती हैं। यह प्रणाली नहीं है, स्वभाव है। स्टेशन पर छोड़ने आए हुए अपने इष्ट मित्रों के प्रति हम जैसे मौन-से बन जाते हैं। गाड़ी छूटने पर हम केवल कुछ इंगित मात्र कर पाते हैं। भाषा मनोमय हो जाती है।

मैं भी अपने प्रेमी पाठकों से इस अवसर पर कुछ अधिक नहीं कह सकूंगा! दो वर्षों तक आपके साथ घुल-मिलकर रहने के कारण आज आपका स्नेहसंबंध मेरी वाणी पर अधिकार कर रहा है। मुझ में कृतज्ञता प्रकाशित करने की भी शक्ति नहीं। विवशता क्षमा।

मेरी राजनीति मेरी परिस्थिति की उपज है। उसे मैंने जीवन की आवश्यकता समझकर अर्जित किया है। *भारत* द्वारा मैंने उसे जिस रूप में व्यक्त किया है वह पत्र की नीति के अनुकूल था। मेरा मतभेद सदैव मेरे मन में रहा है। आज भी है।

साहित्य मेरे जीवन की अमूल्य वस्तु है। उसमें मैं समझौते की गुंजाइश बहुत कम रखता हूं क्योंकि मैं जीवन को पंगु नहीं बना सकता। मेरी इस प्रवृत्ति को हिंदी के सब बड़े विद्वानों ने सराहा है परंतु कुछ ने उसे बुरा भी माना है। यही मेरी लाचारी है। जो कुछ मैं सत्य समझता हूं उसके लिए मैं अकेला ही अपने को पर्याप्त पाता हूं। साहित्य विषय के प्रोपेगेंडा में मेरी किंचित रुचि नहीं। अनेक-अनेक विद्वान मित्रों और संपादकों की सहायता मैंने अस्वीकार कर दी। मेरी आत्मा का यही आदेश था। इस विषय में मैंने विशेष रस लिया, यही मेरा आनंद रहा है। समाज और शिक्षा संबंधी समस्याओं में जितना लिखने की आवश्यकता है उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अल्पांश भी मैंने अब तक नहीं लिखा।

दो वर्ष का जीवन होता ही क्या है? अभी तो मैंने अपना आरंभिक रेखाचित्र भी पाठकों को भेंट नहीं किया। परंतु जो उपहार उनके नाम का होगा वह उन्हें मिलकर ही रहेगा। मैं उसे रोक नहीं रखूंगा।

स्थानीय प्रेस के सहयोगियों के प्रति मेरा व्यवहार सदैव एक-सा रहा है। बदले में उनका जो सौजन्य मुझे प्राप्त हुआ है उसकी स्मृति मेरे साथ रहेगी। प्रकाशक महाशय के विचारपूर्ण परामर्शों का मैंने यथाशक्ति सम्मान किया है।

पाठकों से एक बार फिर क्षमा।

नंददुलारे वाजपेयी

(गुरुवार, 10 नवंबर 1932)

143280

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Acc. 15-3-08

Class 08/05/08

Cat

Tag

Filing

E.A.

Checked

Recommended By डा० कमलकान्त बुद्धकर

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

Entered in Database

Signature with
28/03/08

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**नंददुलारे वाजपेयी** का जन्म 4 सितंबर 1906 को मगरायर में (जिला उन्नाव, उत्तर प्रदेश) हुआ था। हजारीबाग (बिहार) के मिशन हाई स्कूल से उन्होंने मैट्रिकुलेशन और वहीं के सेंट कोलंबस कॉलेज से इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। फिर काशी हिंदू विश्वविद्यालय से उन्होंने बी.ए. और एम.ए. किया।

वाजपेयी जी ने अपना साहित्यिक जीवन पत्रकार के रूप में आरंभ किया। 1 सितंबर 1930 से लेकर 10 नवंबर 1932 तक उन्होंने प्रयाग से प्रकाशित अर्धसाप्ताहिक पत्र *भारत* का संपादन किया। पत्रकारिता के इस अनुभव से उनकी भाषा में प्रखरता और तेजस्विता आई जो अंत तक बनी रही। इसी दौर में उनका आलोचक व्यक्तित्व निर्मित हुआ। उनकी सर्वश्रेष्ठ आलोचना-कृति *हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी* काफी हद तक भारत में प्रकाशित उनके साहित्यिक मूल्यांकनों पर आधारित है।

1933 से 1937 तक वाजपेयी जी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के लिए *सूरसागर* का संपादन किया, फिर 1937 से 1939 तक गीता प्रेस, गोरखपुर में *रामचरितमानस* का संपादन। 1939 से 1941 तक वे प्रयाग में रहकर स्वतंत्र लेखन-कार्य करते रहे। जुलाई 1941 में उनकी नियुक्ति काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई जहां वे फरवरी 1947 तक रहे। 1943 में उन्होंने काशी में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। मार्च 1947 से 30 सितंबर 1965 तक वे सागर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। अप्रैल 1956 के 18वें अंक से लेकर अप्रैल 1959 के 26वें अंक तक उन्होंने प्रसिद्ध पत्रिका *आलोचना* का संपादन किया। अक्टूबर 1965 को वे विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति बने। इस पद पर वे अपनी मृत्यु-पर्यंत 21 अगस्त 1967 तक रहे।

नंददुलारे वाजपेयी शुक्लोत्तर समीक्षा को संचालित करने वाले प्रमुख आलोचक माने जाते हैं। रामचंद्र शुक्ल अपने युग की मुख्य काव्य-धारा 'छायावाद' को अपेक्षित सहानुभूति नहीं दे सके थे। अनेक पुराणपंथी लेखक भी छायावाद के खिलाफ थे। ऐसे समय वाजपेयी जी ने आगे बढ़कर छायावाद को प्रतिष्ठित करने में अग्रणी भूमिका निभाई। प्रसाद-निराला-पंत को उन्होंने 'हिंदी कवियों की बृहत्त्रयी' के रूप में स्थापित किया। रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद की, उनके जीवनकाल में ही उन्होंने तीखी आलोचना की और उनकी सीमाओं का निर्देश किया। आलोचना-प्रतिमानों के विकास में सामयिक जीवन-प्रवाह और समसामयिक रचनाशीलता की भूमिका पर इतना बल शायद ही किसी आलोचक ने दिया हो। सामयिक जीवन से विच्छिन्न होने के कारण ही उन्होंने रत्नाकर के काव्य को युग का 'अनिवार्य' काव्य नहीं माना। प्रसाद के नाटकों और उनके उपन्यास *कंकाल* के मूल्यांकन में उन्होंने सूक्ष्म अंतर्दृष्टि का परिचय दिया। आलोचक के रूप में यह उनका युगांतरकारी कार्य था— और इनमें से अधिकांश उपलब्धियां *भारत* के संपादन के दौर की हैं।

**कृष्णदत्त शर्मा** : जन्म (1942) कम्पिल, ज़िला फर्रुखाबाद (उ.प्र.) में। उच्च शिक्षा इलाहाबाद और दिल्ली में। 1971-83 हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) में सहायक निदेशक, फिर 1983-88 वहीं संयुक्त निदेशक। 1988 से हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। अप्रैल 1996 से मार्च 1999 तक तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय (तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ारेन स्टडीज़), तोक्यो (जापान) में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर। लेखक के अन्य उल्लेखनीय प्रकाशन हैं : *ड्राइडन के आलोचना सिद्धांत* (1994), *टी.एस. इलियट : रचना-संघर्ष और सामाजिक समीक्षा* (2003)। प्रकाशनाधीन : *वर्ड्सवर्थ और कोलरिज : आलोचना-सिद्धांत।*

आई.एस.बी.एन. : 978-81-7975-187-9 (सेट)

मूल्य : 1500 रु. (दोनों खंड)

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि.

4697/3, 21 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar